

श्रीगणेशाय नमः

श्रीराधकृष्णान्न्याय नमः

श्रीगण-संहिता

गोलोकस्वरूपसे विज्ञानरखण्डतक नौ स्वरूपकी अध्यायक्रमसे विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	श्रीगोविन्दस्तोत्रम् (संकलित)	... सूचीका छठा पृष्ठ	३—श्रीयमुनाजीका गोलोकसे अवतरण	...	५८
	श्रीगण-संहिताका संक्षिप्त परिचय (लेख)	... २	४—बत्सासुरका उद्धार	...	६०
	गोलोकस्वरूप		५—बकासुरका उद्धार	...	६१
१—नारदजीके द्वारा अवतार-मेदका निरूपण	...	३	६—अघासुरका उद्धार	...	६३
२—ब्रह्मादि देवोंद्वारा गोलोकधामका दर्शन	...	५	७—ब्रह्माजीके द्वारा गौओं, गोवसों एवं गोप-बालकोंका हरण	...	६४
३—भगवान् के भूतलपर अवतीर्ण होनेका उद्घोग	...	८	८—ब्रह्माजीका श्रीकृष्णके सर्वव्यापी स्वरूपका दर्शन	...	६५
४—गोपी-भावकी प्राप्तिमें कारणभूत पूर्वप्राप्त वरदानोंका विवरण	...	११	९—ब्रह्माजीके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति	...	६७
५—अवतार-व्यवस्थाका वर्णन	...	१४	१०—यशोदाकी चिन्ता; श्रीबलराम तथा श्रीकृष्णका गोचारण	...	७०
६—कालनेमिके अंशसे उत्पन्न कंसके बलका वर्णन	...	१६	११—धेनुकासुर-उद्धार	...	७२
७—कंसकी दिग्विजय	...	१८	१२—श्रीकृष्णद्वारा कलियदमन तथा दावानल-पान	...	७३
८—सुचन्द्र और कल्यावतीका वृषभानु तथा कीर्तिके रूपमें अवतरण	...	२१	१३—शोभजीका उपाख्यान	...	७५
९—वसुदेवजीके विवाहका प्रसङ्ग	...	२२	१४—गरुडके भयमें कालियका यमुना जलमें निवास	...	७७
१०—बलभद्रजीका अवतार; व्यासदेवद्वारा उनका स्वावन	२४		१५—श्रीराधा-कृष्णका प्रेमप्रसङ्ग	...	७८
११—श्रीकृष्णका प्राकटय	...	२६	१६—तुलसी-माहात्म्य और श्रीराधाद्वारा तुलसीसेवन	...	८०
१२—श्रीकृष्णका जन्मोत्सव; देवताओंका आगमन	...	३१	१७—श्रीकृष्णका गोपदेवी-रूप-धारण	...	८२
१३—पूतनाका उद्धार	...	३३	१८—श्रीकृष्णके द्वारा गोपदेवीरूपसे श्रीराधाके प्रेमकी परीक्षा तथा श्रीराधाको श्रीकृष्णके दर्शन	...	८४
१४—शकटासुर और तृणावर्तका उद्धार	...	३५	१९—रासलीलाका वर्णन	...	८६
१५—यशोदाद्वारा श्रीकृष्णके मुखमें ब्रह्माण्डका दर्शन तथा श्रीकृष्ण और बलरामका नामकरण-संस्कार	३९	२०—श्रीराधा और श्रीकृष्णका परस्पर शृङ्गार-धारण तथा रासक्रीडा	...	८८	
१६—श्रीराधा और श्रीकृष्णके विवाहका वर्णन	...	४२	२१—श्रीकृष्णका अन्तर्धान होना	...	९०
१७—श्रीकृष्णकी बाल-लीलामें दधि-चोरीका वर्णन	...	४६	२२—श्रीकृष्णका प्रकट होकर गोपियोंको नारायण-स्वरूपके दर्शन कराना तथा यमुना-विहार	...	९२
१८—मृदुक्षण-लीला तथा मुखमें ब्रह्माण्डका दर्शन	...	४८	२३—श्रीकृष्णके द्वारा शङ्खचूड़का उद्धार	...	९४
१९—उलूखल-बन्धन तथा यमलार्जुन-उद्धार	...	४९	२४—रास-विहार तथा आसुरि मुनिका उपाख्यान	...	९६
२०—सुर्वासाके द्वारा भगवान् की मायाका दर्शन तथा श्रीनन्दननन्दनस्तोत्र	...	५१	२५—शिव और आसुरिका गोपीरूपसे रासमण्डलमें श्रीकृष्णका दर्शन तथा सावन	...	९८
श्रीकृष्णवनस्वरूप					
१—महावनसे कृन्दावन चर्वनेका उद्घोग	...	५४			
२—गिरिराज गोवर्धनकी उत्पत्तिका वर्णन	...	५६			



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

२६—विरजा तथा श्रीदामाका प्रसङ्ग	... १००	१२—दिव्य, अदिव्य, त्रिगुणवृत्तिमयी भूतल-गोपियोंका तथा होली सेल्जेका वर्णन ... १३२
गिरिराजखण्ड		१३—देवाङ्गनास्वरूपा गोपियों ... १३४
१—गिरिराजकी पूजा-विधि	... १०२	१४—गोजि गोपकी पुत्रीरूपमें जालंधरी गोपियोंका प्राकट्य ... १३४
२—गोपोद्धारा गिरिराज-पूजनका महोत्सव	... १०३	१५—बृहिष्मतीपुरीकी वनिताओंका गोपीरूपमें प्राकट्य १३६
३—श्रीकृष्णका गोवर्धन-भारण; इन्द्रके द्वारा क्रोधपूर्वक करायी गयी धोर जलवृष्टिसे बचकी रक्षा ... १०४		१६—श्रीयमुनाकवच ... १३७
४—हन्द्रद्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति तथा श्रीकृष्णका सुरभि और ऐरावतद्वारा अभिषेक	१०६	१७—श्रीयमुनास्तोत्र ... १३८
५—गोपोंका विवाद तथा श्रीनन्दराज एवं वृत्सभानुवरके द्वारा समाधान ... १०७		१८—यमुनाजीके जप, पठल और पद्धतिका वर्णन ... १३९
६—श्रीकृष्णकी भगवत्ताका परीक्षण; स्वेतमें मोती उपजना और अपार मोतियोंके द्वारा वृषभानुके यहाँ भैजना ... १०९		१९—यमुनासहस्रनाम ... १४०
७—गिरिराजके तीर्थोंका वर्णन ... १११		२०—यलदेवजीके हाथसे प्रलम्बासुरका वध ... १५३
८—गिरिराजकी विभिन्न विभूतियोंका वर्णन ... ११२		२१—दावानलम्बे रक्षा; विप्रपस्नियोंको श्रीकृष्णकादर्शन १५४
९—गिरिराज गोवर्धनकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग ... ११३		२२—श्रीकृष्णका नन्दराजको वरुणलोकमें ले आना और गोप-गोपियोंको वैकुण्ठधामका दर्शन कराना १५६
१०—दिव्यरूपधारी सिद्धके मुख्से गोवर्धनकी महिमाका वर्णन ... ११५		२३—अम्बिका वनमें अजगरने नन्दराजकी रक्षा तथा मुदर्शन-नामक विद्याधरका उद्धार ... १५७
११—सिद्धके पूर्वजन्मका वृत्तान्त तथा उसका गोलोकप्रयाण ... ११६		२४—अरिष्टासुर और व्यौमासुरका वध ... १५७
माधुर्यखण्ड		श्रीमथुराखण्ड
१—श्रुतिरूपा गोपियोंका वृत्तान्त ... ११८		१—कंमका नारदजीके कथनानुसार वल्लाम और श्रीकृष्णको अपना शत्रु समझकर वसुदेव देवकीको कैद करना; उनको मारनेका व्यवस्थामें ल्याना ... १५९
२—शृष्टिरूपा गोपियोंका तथा मङ्गलगोपकी कन्याओंका उपाख्यान ... १२०		२—केदीवध ... १६०
३—मैथिली गोपियोंका आख्यान; चीरहरणलीला ... १२१		३—अकूरका नन्दमास-गमन; श्रीकृष्णकी मथुरा- यात्राकी चर्चारों गोपियोंका उद्विग्न हो उठना ... १६१
४—कोसलग्नानीय गोपियोंका वृत्तान्त ... १२२		४—श्रीकृष्णका गोपियोंको सान्त्वना देकर मथुराकी ओर प्रस्थित होना ... १६३
५—अयोध्यावासिनी गोपियोंका आख्यान ... १२३		५—अकूरको भगवान् श्रीकृष्णके परत्रहास्वरूपका साक्षात्कार तथा उनकी स्तुति; श्रीकृष्णका मथुरा- पुरी-दर्शन; रजकका उद्धार ... १६५
६—अयोध्यापुरवासिनी लिंगयोंकी राजा विमलके यहाँ पुत्रीरूपसे उत्पत्ति ... १२४		६—सुदामा माली और कुञ्जापर कृपा; धनुर्भज्ज १६७
७—राजा विमलके यहाँ श्रीकृष्णका आगमन; विमल- का मोक्ष; श्रीकृष्णके द्वारा राजकुमारियोंका ग्रहण १२५		७—रजद्वारपर कुवलयापीड़का वध ... १७०
८—यशसीतास्वरूपा गोपियोंका वृत्तान्त ... १२७		८—चाणू-मुषिक आदि मल्लोंका तथा कंम और उसके भाइयोंका वध ... १७२
९—एकादशी-ब्रतका माहात्म्य; यशसीतास्वरूपा गोपिकाओंको श्रीकृष्ण-सांनिष्ठकी प्राप्ति ... १२९		९—वसुदेव-देवकीकी बन्धन-मुक्ति; श्रीकृष्ण-बलरामका गुरुकुलमें विद्याध्ययन; श्रीअकूरको हस्तिनापुर मैलना तथा कुञ्जाका मनोरथ पूर्ण करना ... १७४
१०—पुलिन्दकम्बारपिणी गोपियोंके सौभाग्यका वर्णन १३०		१०—घोबी, दली और मालीके पूर्वजन्मका परिचय १७७
११—लक्ष्मीजीकी लखियोंका वृषभानुओंके बरोंमें कन्या- रूपसे उत्पन्न होकर माघमात्रके ब्रतसे श्रीकृष्णको रिक्षाना और पाना ... १३१		११—कुञ्जा और कुवलयापीड़के पूर्वजन्मका वृत्तान्त १७८

१२—चाणूर आदि मस्ल, कंसके छोटे भाइयों तथा पञ्चजन देव्यके पूर्वजन्मगत वृत्तान्तका वर्णन ...	१७९	६—श्रीकृष्णद्वारा रुक्मिणीका हरण तथा यादव- बीरोंके साथ युद्धमें विपक्षी शर्जाओंकी पराजय ...	२१७
१३—उद्धवका ब्रजरामन और सखाओंका उनसे श्रीकृष्ण-विरहके दुःखका निवेदन ...	१८०	७—इकमीकी पराजय; रुक्मिणी और श्रीकृष्णका विवाह ...	२१९
१४—उद्धवका श्रीकृष्ण-सखाओं तथा नन्द-यशोदासे मिलना ...	१८२	८—श्रीकृष्णका सोलह हजार एक सौ आठ कन्याओं- के साथ विवाह; प्रथमनका प्राकृत्य तथा उनका विवाह ...	२२१
१५—कदली-वनमें उद्धवका गोपाङ्गनाओंकी स्तुति करना तथा पञ्च अर्पित करना ...	१८४	९—द्वारकापुरीके पृथ्वीपर आनेका कारण; आनन्दकी तपस्या और उनपर श्रीकृष्णकी कृपा ...	२२२
१६—उद्धवद्वारा श्रीराधा तथा गोपीजनोंको आशासन १८७		१०—द्वारकापुरी, गोमती और चक्रतीर्थका माहात्म्य; दुर्वासाद्वारा घटानाद और पार्वतमौलिको शाप ...	२२४
१७—श्रीराधा तथा गोपियोंके करुण उद्धार ...	१८८	११—गज और ग्राह बने हुए मन्त्रियोंका युद्ध ...	२२६
१८—गोपियोंसे विदा लेकर उद्धवका मथुरा लौटना १९१		१२—त्रितके शापसे कक्षीवानका शङ्खरूप होकर सरोवरमें रहना; श्रीकृष्णके द्वारा उसका उद्धार ...	२२७
१९—श्रीकृष्णका उद्धवके प्रसङ्गमें नारदजीका उपास्थ्यान ...	१९७	१३—प्रभास, सरस्वती आदिका माहात्म्य ...	२२८
२०—श्रीकृष्णका कदली वनमें श्रीराधा और गोपियोंके साथ मिलन; रासोत्सव तथा रोहिताचलपर महामुनि श्रुतुका मोक्ष ...	१९८	१४—द्वारकाक्षेत्रके समुद्र तथा रैवतका पर्वतका माहात्म्य २३०	
२१—श्रीकृष्णकी द्रवरूपताके प्रसङ्गमें नारदजीका उपास्थ्यान ...	१९९	१५—यशतीर्थ, कपिटङ्गतीर्थ, नृग्रन्थ, गोपीभूमि तथा गोपीचन्दनकी महिमा ...	२३१
२२—नारदका गोलोकमें भगवान् श्रीकृष्णको अपनी कला दिखाना तथा श्रीकृष्णका द्रवरूप होना ...	१९९	१६—सिद्धाभ्रमकी महिमामें श्रीराधा और गोपाङ्गनाओंके साथ सोलह हजार रानियोंसहित श्रीकृष्णका समागम २३२	
२३—श्रीकृष्णका ब्रजसे लौटकर मथुरामें आगमन ...	२०१	१७—श्रीराधा और श्रीकृष्णका मिलन; रानियोंके द्वारा श्रीराधाका सत्कार ...	२३५
२४—बलदेवजीके द्वारा कोल देव्यका वध; उनकी तीर्थयात्रा; माण्डुकदेवको वरदान ...	२०२	१८—सिद्धाभ्रममें ब्रजाङ्गनाओं तथा रानियोंके साथ श्यामपुन्द्रकी रासकीड़ा ...	२३६
२५—मथुरापुरीका माहात्म्य	२०६	१९—लीलासरोवर, हरिमन्दिर आदि तीर्थोंका वर्णन ...	२३९
द्वारकाखण्ड		२०—इन्द्रतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ आदिका माहात्म्य ...	२४०
१—जरासंधका मथुरापर आक्रमण और मगध- राजकी पराजय ...	२०८	२१—तृतीय दुर्गके द्वारा देवताओंके दर्शन और पूजनकी महिमा तथा पिण्डारक-तीर्थका माहात्म्य २४१	
२—मथुरापर जरासंध और काल्यवनका आक्रमण; काल्यवनको मुन्त्रकुन्दके दृष्टिपातरे दग्ध कराना और म्लेच्छ सेनाका संहार करके श्रीकृष्ण- बलामका द्वारका पहुँचना ...	२१०	२२—सुदामा ब्राह्मणका उपास्थ्यान ...	२४२
३—बलदेवजीका रैवतीके साथ विवाह ...	२१२	विश्वजितखण्ड	
४—श्रीकृष्णको रुक्मिणीका संदेश; ब्राह्मणसहित श्रीकृष्णका कुण्डनपुरमें आगमन ...	२१३	१—राजा महत्तका उपास्थ्यान ...	२४६
५—रुक्मिणीकी श्रीहरिके श्रुभागमनके समाचारसे प्रसन्नता; रुक्मिणीकी कुलदेवीके पूजनके लिये यात्रा; देवीसे प्रार्थना ...	२१५	२—उग्रसेनके राजसूय-यज्ञका उपक्रम और दिविजयके लिये प्रथमनका विजयमिष्ठे ...	२४८
		३—प्रथमनके नेतृत्वमें प्रसिद्ध यादवसेनाका वर्णन ...	२४९
		४—सेनासहित यादववीरोंकी दिविजय-यात्रा ...	२५०
		५—कल्ञ और कलिञ्ज देवापर विजय ...	२५२
		६—राजा गयकी पराजय तथा मालव और माहिमतीके राजाओंद्वारा भेट-प्राप्ति ...	२५३

७—शृङ्खपर विजय तथा चेदिदेश-यात्रा	...	२५५	३३—संग्रामजित्के द्वारा भूतसंतापन दैत्यका वध	...	३०७
८—दिशुपालके भित्र द्युमान् तथा शताका वध	...	२५६	३४—अनिरुद्धके हाथसे बृक दैत्यका वध	...	३०९
९—रङ्ग-पिङ्गका वध तथा चेदिदेशपर विजय	...	२५८	३५—साम्बद्धारा काळनाम दैत्यका वध	...	३११
१०—कोहृण, कुट्टक आदि देशोंपर विजय	...	२५९	३६—दीसिमानके द्वारा महानाम दैत्यका वध	...	३१२
११—दन्तवक्तकी पराजय; करुष देशपर विजय	...	२६१	३७—भानुके हाथमे हरिश्मशु दैत्यका वध	...	३१३
१२—उज्जीनर आदि देशोंपर विजय; मुनिवर अगस्त्यद्वारा तत्त्वशानका उपदेश	...	२६३	३८—प्रद्युम्न और शकुनिमें घोर युद्ध	...	३१४
१३—शाल्व आदि देशों तथा द्विविद बानरपर विजय; विभीषणके द्वारा भेट-समर्पण	...	२६५	३९—शकुनिके माथामय अस्त्रोंका निवारण; युद्धस्थलमे भगवान् श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव	...	३१६
१४—दन्ताश्रेयके दर्शन; परशुरामजीके द्वारा सत्कार तथा श्रेष्ठ भक्तके स्वरूपका निरूपण	...	२६७	४०—शकुनिके जीवस्वरूप शुकका निधन	...	३१८
१५—उर्ध्वीश, डामर, वंग तथा असमके नरेशोंपर विजय	...	२६९	४१—भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा युक्तिपूर्वक शकुनिका वध	...	३२१
१६—मिथिलानरेशद्वारा प्रद्युम्नका पूजन	...	२७१	४२—चन्द्रावतीपुरीमें जाकर शकुनिपुत्रको राज्य देना	३२२	३२२
१७—मगधदेशपर विजय	...	२७३	४३—इलावृतवर्षमें भेट-प्राप्ति	...	३२४
१८—माशुर तथा शूरसेन आदिपर विजय	...	२७५	४४—रागिनियों तथा रागपुत्रोंके नाम	...	३२६
१९—कौरवोंपर चढ़ाई	...	२७७	४५—रागिनियों तथा रागपुत्रोंद्वारा श्रीकृष्णका स्वरूप	३२८	३२८
२०—कौरव-यादव-युद्ध और दुर्योधनकी पराजय	...	२७९	४६—बलभद्रजीके द्वारा गन्धर्वराजकी पराजय	...	३३०
२१—कौरव-यादव-युद्ध और बलराम तथा श्रीकृष्ण- का प्रकट होकर उनमें मेल कराना	...	२८१	४७—शकुनिकी पराजय	...	३३२
२२—चण्डपर विजय	...	२८३	४८—शक्रसत्यमें भेट-प्राप्ति; लालावतीपुरीके स्वयंवरमे प्रद्युम्नको सुन्दरीकी प्राप्ति	...	३३४
२३—याणासुरसे भेट प्राप्ति; यओंसे युद्ध	...	२८५	४९—राजसूय यशमे ऋषियों, देवताओं, सुहृदोंका शुभागमन	...	३३६
२४—यादव-यक्ष-युद्ध	...	२८७	५०—राजसूय यशके महोत्सवका वर्णन	...	३३६
२५—गुहाकेसनापर विजय; कुबेर आदिके द्वारा भेट	...	२९०			
२६—किपुरुषोंद्वारा हरिचंपित्रगान; गन्धर्वका उद्धर	...	२९२			
२७—गुरुद्वालके द्वारा गीधोंके आक्रमणसे रक्षा; दशार्णदेशपर विजय	...	२९५			
२८—उच्चरकुरवर्षपर विजय; राजा गुणाकरद्वारा प्रद्युम्नका समादर	...	२९६			
२९—हिरण्यवर्षपर विजय; मधुमक्षी तथा चानरोंके आक्रमणसे छुटकारा	...	२९८			
३०—रम्यकर्वर्षपर विजय; मानवगिरिपर शाढ़देव मनुद्वारा प्रद्युम्नकी स्तुति	...	२९९			
३१—मन्मथशालिनीपुरीके लेगोद्वारा श्रीकृष्ण लीलागान	३०२				
३२—भद्राश्वर्षमें प्रद्युम्नका पूजन; चन्द्रावतीपुरीमें बृकके द्वारा हृष्ट दैत्यका वध	...	३०५			

श्रीबलभद्रस्त्रण

१—श्रीबलभद्रजीके अवतारका कारण	...	३३८
२—श्रीबलभद्रजीके अवतारकी तैयारी	...	३३९
३—ज्योतिष्मतीका उपाय्यान	...	३४०
४—रेवतीजीका उपाय्यान	...	३४१
५—श्रीबलराम और श्रीकृष्णका प्राकृत्य	...	३४४
६—श्रीबलराम-कृष्णकी बजलीलाका वर्णन	...	३४५
७—श्रीबलराम कृष्णकी मधुरालीलाका वर्णन	...	३४७
८—श्रीबलराम कृष्णकी द्वारकालीलाका वर्णन	...	३४९
९—श्रीबलरामजीकी रासलीलाका वर्णन	...	३५१
१०—श्रीबलभद्रजीकी पूजा-पद्धति और पटल	...	३५२
११—श्रीबलराम-स्तोत्र	...	३५४
१२—श्रीबलराम कवच	...	३५५
१३—श्रीबलराम-सहस्रनाम	...	३५६

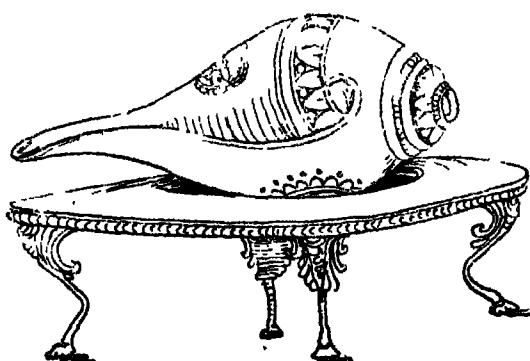
श्रीविज्ञानस्फुट

१—द्वारकामें वेदव्यासजीका आगमन और उग्रतेन- द्वारा उनका स्वागत-पूजन	... ३६४	५—भक्तिकी महिमाका वर्णन ३६९
२—व्यासजीके द्वारा गतियोंका निरूपण	... ३६५	६—मन्दिर-निर्माण तथा विश्राह-प्रतिष्ठा-पूजाकी विधि	... ३७०
३—सकाम-निष्काम भक्तियोगका वर्णन	... ३६६	७—नित्यकर्म और पूजा विधिका वर्णन ३७१
४—भक्त-संतकी महिमाका वर्णन ३६७	८—पूजाविधिका वर्णन ३७२
		९—पूजोपचार तथा पूजन-प्रकारका वर्णन	... ३७३
		१०—परमात्माका स्वरूप-निरूपण	... ३७६

चित्र-सूची

बहुरंगे चित्र

१—दिव्य रस और भावमय युगल-स्वरूप मुखपृष्ठ	... १५	१५—अष्टमुजा देवी'	... २५
२—पोलोकधाममें श्रीराधाकृष्णकी दिव्य झाँकी	... ८	१६—वसुदेव देवकीकी कारामुक्ति	... २५
३—पोपियोंके द्वारा क्षीरसागरमें लक्ष्मीरूपिणी		१७—पूतना-उद्धार	... ३७
राधाके साथ शोपणायी अष्टमुज श्रीकृष्णके दर्शन	५४	१८—रत्नमालाको वामनका वरदान	... ३७
४—गिरिराजरूपमें श्रीकृष्णके द्वारा अचकूट-भोजन	१०४	१९—उत्कचको लोभणका शाप	... ३७
५—राजा विमलके यज्ञमें श्रीकृष्णका पूजन	... १२५	२०—सहस्राक्षको दुर्वासाका शाप	... ३७
६—कन्याओंके श्रीकृष्णके अपर्ण वरनेपर विमलको		२१—वर्षा तूफानमें नन्दकी गोदमें श्रीकृष्ण	... ४१
भगवत्स्वरूपताकी प्राप्ति	... १२५	२२—नन्दके द्वारा राधा-स्तुति	... ४१
७—अक्षूरके द्वारा श्रीवत्सराम-कृष्णका स्वरूप	... १७६	२३—ब्रह्माके द्वारा श्रीराधा-कृष्ण-स्तुति	... ४१
८—कुब्जाके द्वारा श्रीकृष्णका सल्कार	... १७६	२४—राधाके द्वारा यशोदाको श्रीकृष्णपूजा	... ४१
९—श्रीराधा और इकिमणी आदिका मिलन	... २३३	२५—सखी-वेशमें श्रीकृष्ण	... ८६
१०—श्रीराधाके हृदयमें श्रीकृष्णचरणोंकी नित्यस्थिति	२३३	२६—सखी-वेशा कृष्णके साथ राधाका वन विचरण	... ८६
११—गहडद्वारा फेंके हुए पिंजरस्थ श्वककी मृत्यु	... ३२१	२७—सखी-वेशा कृष्णके साथ राधाका वार्तालाप	... ८६
१२—शकुनिपत्नी मदालता अपने पुत्रसहित		२८—श्रीकृष्णका प्रकट मिलन	... ८६
भगवानकी शरणमें	... ३२१	२९—महादेव और आसुरीका वार्तालाप	... ९७
रेखा-चित्र—		३०—द्वारपालिकाओंके द्वारा महादेव तथा आसुरीका	
१३—व्यासजीके द्वारा बलदेव-स्तुति	... २५	रोका जाना	... ९७
१४—श्रीकृष्णका ग्राकट्ट	... २५	३१—महादेव और आसुरीको गोपी देहकी प्राप्ति	... ९७
		३२—सखीरूप महादेव आसुरीको राधा कृष्ण-दर्शन	... ९७



श्रीगोविन्दस्तोत्रम्

चिन्तामणिप्रकरसद्वसु कलयुक्ष-
लक्षाबृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम् ।
लक्ष्मीसहस्रशानसम्भ्रमसेव्यमानं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥ १ ॥
 मैं उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द (श्रीकृष्ण) की
 शरण लेता हूँ, जिनकी लाखों कल्याणोंमें आवृत एवं चिन्तामणि-
 समूहसे निर्भित भवनोंमें लाखों लक्ष्मी सहस्र युवतियोंके द्वारा
 निरन्तर भेदभाव सेवा होती रहती है और जो स्वयं वनवनमें घूम-घूमकर
 गौओंकी सेवा करते हैं ।
ब्रेणुं कण्ठमरविन्ददलायताक्षं
बहौदतंसमसिनाम्युदसुन्वराक्षम् ।
कंदर्पकोटिकमनीयिवशेषोर्यं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥ २ ॥

जो वंशीमें स्वर पूँक रहे हैं, कमलों पैखुड़ियोंके समान
 वढ़े-वढ़े जिनके नेत्र हैं जो मोरणपक्ष का युकुट धारण किये
 रहते हैं, मेघके समान व्यामुन्दर जिनके श्रीअङ्ग दें, जिनकी
 विरोप नोभा करोड़ों कामदंबोंके द्वारा भी रथुहांस है, उन
 आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं भजन करता हूँ ।

आलोलचन्द्रकलस्थृत्यन्मालासंशी-
रक्षाङ्कं प्रणयकेतिवलायिलाम् ।
इयाम त्रिभङ्गलितं नियनप्रकाशं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥ ३ ॥

जो हवामें अठनेलियो करते हुए मोरणव, सुन्दर
 वनमाला, वर्णा एव रक्तमय यानूरुंदमें सुरोभिन हैं, जो प्रणय
 केलि कला-प्रियकर्ममें दथ है, जिनमा त्रिभङ्गलितं इयामसुन्दर
 विषय है और जिनका प्रभाग कभी फीका नहीं होता—
 सदा स्थिर रहता है, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका
 मैं आश्रय लेता हूँ ।

अङ्गानि यस्य भक्तेन्द्रियवृत्तिमन्ति
पश्यन्ति पान्ति कलयन्ति शिरं उगन्ति ।
आनन्दचिन्मयसदृज्ज्वलविग्रहम्
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥ ४ ॥

जिनमा मञ्चिदानन्दभय प्रकाशयुक्त श्रीविग्रह है
 तथा सम्पूर्ण इन्द्रिय द्वितीयोंमें युग्म जिनके श्रीअङ्ग दीर्घ
 काल्यक विभिन्न लोकोंपर रहिए रहते हैं, उनकी रक्षा करते
 हैं तथा उनका ध्यान रखते हैं, उन आदिपुरुष भगवान्
 गोविन्दका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ ।

अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूप-
माद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनं च ।
ब्रेदेषु दुर्लभमदुर्लभमात्मभक्तो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥ ५ ॥

जो द्वैतमे रहते हैं, अपने स्वरूपसे कभी ज्युत नहीं होते,
 जो सदके आदि हैं, परंतु जिनका कहीं आदि नहीं है और जो
 अनन्त रूपोंमें प्रकाशित है, जो पुराण (सनातन) पुरुष
 होते हुए भी नित्य नवयुक्त हैं, जिनका स्वरूप वेदोंमें भी
 प्राप्त नहीं होता (नियेत्रमुखमें ही वेद जिनमा वर्णन करते
 हैं), किंतु अपनी भक्ति प्राप्त हो जानेपर जो दुर्लभ नहीं रह
 जाते—अपने भक्तोंके लिये जो सुलभ हैं, उन आदिपुरुष
 भगवान् गोविन्दका मैं धरण ग्रहण करता हूँ ।

पन्थास्तु कोटिशतवत्सरसम्ब्रगम्यो
वायोरथापि मनसो मुनिपुंगवानप् ।
सोऽप्यत्तिं यत्प्रपदसीम्यविचिन्मयतत्त्वे
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥ ६ ॥

(भगवत्पापिने) जिस मार्गोंमें वढ़े वढ़े सुनि प्राणायाम
 तथा चित्तनिरोधके द्वारा अर्थोंमें प्राप्त करते हैं, वही
 मार्ग जिनके अनिन्य साहाय्ययुक्त नरणोंके अग्रभागकी
 सीधारमें स्थित रहता है, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका
 मैं आधय ग्रहण करता हूँ ।

एकोऽप्यसौ रचयितुं जगदण्डकोर्टि
यच्छक्तिकरसि जगदण्डचया यद्वन्तः ।

अण्डान्तरस्थपरमाणुनयान्तरस्थं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥ ७ ॥

जो गद्यरि भर्त्या एव उनके लिया दूसरा कोई
 नहीं है, किंतु भी ओ (अपनी भर्तिमात्र) करोड़ों ब्रह्माण्डोंको
 रखने की अकिञ्चन नहीं—यही नहीं ब्रह्माण्डोंके समूह जिनके
 भीतर रहते हैं; रात्र ही जो ब्रह्माण्डोंके भीतर रहनेवाले
 परमाणु समूहके भी भीतर स्थित रहते हैं, उन आदिपुरुष
 भगवान् गोविन्दका मैं भजता हूँ ।

यद्गायधर्मितधियो भनुजास्तथैव
सम्प्राप्य स्पृमहिमासनयानभूषाः ।
सूक्ष्यंमेव निगमप्रथितैः स्तुवन्ति
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥ ८ ॥

जिनकी भक्तिएं भावित बुद्धिवाले मनुष्य उनके रूप,
 महिमा, आभन, यान (वाहन) अथवा भूषणोंकी साँझी
 प्राप्त रूपके वेदभिन्दु सूक्तों (मन्त्रों) द्वारा सुति करते हैं,
 उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं भजन करता हूँ ।

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभि-
स्तम्भिर्य एव निजरूपनया कलाभिः ।
गोलोक एव नियसत्यविलात्मभूतो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥ ९ ॥
 जो भर्तिमा होकर भी आनन्दचिन्मयरसप्रतिभावित

अपनी ही स्वरूपभूता उन प्रसिद्ध कलाओं (गोप, गोपी एवं गोओं) के साथ गोलोकमें ही निवास करते हैं, उन आदिपुरुष गोविन्दकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ ।

प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन
सन्तः सदैव हृदयेऽपि विलोकयन्ति ।
यं श्यामसुन्दरमविन्द्यगुणस्वरूपं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१०॥

संतजन प्रेमरूपी अङ्गनमें सुशोभित भक्तिरूपी नेत्रोंसे सदा-सर्वदा जिनका अपने हृदयमें ही दर्शन करते रहते हैं, जिनका श्यामसुन्दर विग्रह है तथा जिनके स्वरूप एवं गुणोंका यथार्थरूपसे चिन्तन भी नहीं हो सकता, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ ।

रामादिमूर्निषु कलानियमेन निष्ठुर्
नानावतारमकरोद्गवनेषु किंतु ।
कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥११॥

जिन्होंने श्रीरामादि विग्रहोंमें नियत संख्याकी कलारूपसे स्थित रहकर भिन्न भिन्न भुवनोंमें अवतार ग्रहण किया, परंतु जो परात्पर पुरुष भगवान् श्रीकृष्णके रूपमें स्वयं प्रकट हुए, उन आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्णका मैं भजन करता हूँ ।

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि-
कोटिष्ठशेषवसुधादिविभूतिभिन्नम् ।
तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१२॥

जो क्रोटि-क्रोटि ब्रह्माण्डोंमें पृथ्वी आदि समस्त विभूतियोंके रूपमें भिन्न-भिन्न दिवायाँ देता है, वह निष्कल (अण्ड), अनन्त एवं अशेष ब्रह्म जिन सबसंर्मर्थ प्रसुकी प्रभा है, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दको मैं भजता हूँ ।

माया हि यस्य जगदण्डशतानि सूते
त्रैगुण्यतद्विषयवेदवितायमाना ।
सस्यावलन्विपरस्त्वविशुद्धसस्यं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१३॥

सत्त्व, रज एवं तमके रूपमें उन्हीं तीनों गुणोंका प्रतिपादन करनेवाले वेदोंके द्वारा विस्तारित जिनकी माया सैकड़ों ब्रह्माण्डोंका दूजन करती है, उन सत्त्वगुणका आश्रय लेनेवाले, सत्त्वसे परे एवं विशुद्धस्वरूप आदिपुरुष भगवान् गोविन्दकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ ।

आत्मविन्द्यरसात्मतया अनसु
यः प्राणिनां प्रतिफलन् स्वरतामुपेत्य ।

लीलायितेन भुवनानि जयस्यजस्यं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१४॥

जो स्मरण करनेवाले प्राणियोंके मनोंमें अपने आनन्द-चिन्मयरसात्मक स्वरूपसे प्रतिविनिष्ट होते हैं तथा अपने लीलायित्रके द्वारा निरन्तर समस्त भुवनोंको वशीभूत करते रहते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ ।

गोलोकनामिन निजधामिन तले च तस्य
देवमिहेशाहरिधामसु तेषु तेषु च ।
ते ते प्रभावनिच्या विहिनाश्च येन
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१५॥

जिन्होंने गोलोकः नामक अपने धाममें तथा उसके नीचे स्थित देवीलोक, कैलान तथा वैकुण्ठ नामक विभिन्न धामोंमें विभिन्न ऐश्वर्योंकी सृष्टि की, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दको मैं भजता हूँ ।

सुश्रिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका
छायेव यस्य भुवनानि विभर्ति दुर्गा ।

इच्छानुरूपमपि यस्य च चेष्टते सा
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१६॥

सृष्टि, स्थिति एवं प्रलयकारिणी शक्तिरूपा भगवती दुर्गा, जिनकी छायाकी भाँति समस्त लोकोंका धारण-पोषण करती हैं और जिनकी इच्छाके अनुसार चेष्टा करती है, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं भजन करता हूँ ।

क्षीरं यथा दधिविकारविशेषयोगात्
संजायने नहि ततः पृथगस्ति हतोः ।

यः शम्भुनामपि तथा समुर्पति कार्यद्

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१७॥

जावन आदि विशेष प्रकारके विशारंके संयोगसे दूध जैसे दहीके रूपमें परिवर्तित हो जाता है, किंतु अपने कारण (दूध) से फिर भी विजातीय नहीं बन जाता, उसी प्रकार जो (संहाररूप) प्रयोजनको लेफर भगवान् शंकरके स्वरूपको प्राप्त हो जाते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ ।

दीपार्चिरेव हि दशान्तरमभ्युपेत्य
दीपायते विवृतंहतुसमानधर्मा ।
यस्ताद्वगेव च विष्णुतया विभानि
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१८॥

जैसे एक दीपककी लो दूधरी वन्तीका सयोग पाकर दूसरा दीपक बन जाता है, जिसमें अपने कारण (पहले दीपक) के गुण प्रकट हो जाते हैं, उसी प्रकार जो अपने स्वरूपमें स्थित रहते हुए ही विष्णुरूपमें दिखायी देने

आते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ।

यः कारणार्णवजले भजति स्त योग-
निद्रामनस्तजगदण्डसरोमकृपः ।

आधारशक्तिमवलम्ब्य परं स्वमूर्तिं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१९॥

आधारशक्तिमवलम्ब्य अपनी (नारायणरूप) श्रेष्ठ मूर्तिके धारण करके जो कारणार्णवके जलमें योगनिद्राके वशीभूत होकर स्थित रहते हैं और उस समय उनके एक-एक रोमकृपमें अनन्त ब्रह्माण्ड समाये रहते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दको मैं भजता हूँ।

यस्यैकनिश्चयितकालमथावलम्ब्य
जीवन्ति लोभविलजा जगदण्डनाथाः ।
विष्णुर्मंहान् स इह यस्य कलाविशेषोऽ
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२०॥

जिनके रोमकृपोंसे प्रकट हुए विभिन्न ब्रह्माण्डोंके स्वामी (ब्रह्म, विष्णु, महेश) जिनके एक श्वास जितने कालक ही जीवन धारण करते हैं तथा सर्वावदित महान् विष्णु जिनकी एक विशिष्ट कलामात्र है, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं भजन करता हूँ।

भासान् यथाद्मसकलेषु निंजेषु तेजः
स्त्रीयं कियत् प्रकटयत्यपि तद्वदत्र ।
ब्रह्मा य एष जगदण्डविधानकर्ता
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२१॥

जैसे सूर्य सूर्यकान्त नामक समूर्ण मणियोंमें अपने तेजका किञ्चित् अश प्रकट करते हैं, उसी प्रकार एक ब्रह्माण्डका शासन करनेवाले ब्रह्मा भी अपने अंदर जिनके तेजका किञ्चित् अश प्रकट करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

यत्पातपल्लवयुगं विनिधाय कुम्भ-
द्वन्द्वे प्रणामसमये स गणाधिराजः ।
विष्णान् निहन्तुमलमस्य जगत्त्रयस्य
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२२॥

प्रणाम करते समय जिनके चरणयुगलको अपने मलक-के दोनों भागोंपर रखकर सर्वसिद्ध भगवान् गणपति इन सीनों लोकोंके विष्णुका विनाश करनेमें समर्थ होते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ।

अग्निमहीगगनमभुमरुहिताम्
कालस्तथाऽऽस्ममनसीरि जगत्त्रयाणि ।

यस्माद् भवन्ति विभवन्ति विशस्ति यं च

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२३॥

अग्नि, पृथ्वी, आकाश, जल, वायु एवं चारों दिशाएँ; काल, बुद्धि, मन, पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं स्वर्गरूप तीनों लोक जिनसे उत्पन्न होते हैं, समृद्ध (पुष्ट) होते हैं तथा जिनमें पुनः लीन हो जाते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दको मैं भजता हूँ।

यश्चभुत्रेव सविता सकलग्रहणां

राजा समस्तसुरमूर्तिरशेषतेजाः ।

यस्याङ्गया धमति सम्भृतकालचक्री

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२४॥

जिनके नेत्ररूप सूर्य, जो समस्त प्रहोंके अधिपति, सम्पूर्ण देवताओंके प्रतीक एवं सम्पूर्ण तेजःत्वरूप तथा कालचक्रके प्रवर्तनक होते हुए भी जिनकी आकाश स्त्रोंकोंमें चक्कर लगाते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दको मैं भजता हूँ।

धर्मांश्च पापनिचयः श्रुत्यस्तपांसि

ब्रह्मादिकीर्तपतगावधयश्च जीवाः ।

यहत्तमात्रविभवप्रकटप्रभावा

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२५॥

धर्म एवं पाप समूह, वेदकी ऋत्नाएँ, नाना प्रकारके तप तथा ब्रह्मासे लेकर कीट-पतञ्जलिक भम्पूर्ण जीव जिनकी दी हुई शक्तिके द्वारा ही अपना-अपना प्रभाव प्रकट करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं भजन करता हूँ।

यस्त्वन्दगोपमथवेन्द्रभ्यो खकर्म-

वद्धानुरूपफलभाजनमातनोति ।

कर्मणि निर्दहति किंतु च भक्तिभाजां

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२६॥

जो एक बीरबहूटीको एवं देवराज इन्द्रको भी अपने-अपने कर्म-बन्धनके अनुरूप फल प्रदान करते हैं, किंतु जो अपने भक्तोंके कर्मोंको निःशोषरूपसे जला डालते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

यं क्रोधकामसहजप्रणयादिभीति-

वास्तव्यमोहगुरुणौरवसेव्यभावैः ।

संविश्व तस्य सहशीं तनुमापुरेते

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२७॥

क्रोध, काम, सहज स्नेह आदि, भय, वास्तव्य, मोह (सर्वविश्वाति), गुरु-गोरव (बड़ोंके प्रति होनेवाली गौरव-बुद्धिके सहज महान् सम्मान) तथा सेव्य-बुद्धिसे (अपनेको दात समानकर) जिनका चिन्तन करके लोग उन्हींके समान रूपको प्राप्त हो गये, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ।

॥ श्रीरामाधाराय नमः ॥

श्रीगर्ग-संहिता

[दशखण्डात्मिका]

श्रीमन्महर्षिगर्गचार्यप्रणीता ।

मूल संस्कृतका पूर्ण हिंदी-अनुवाद



अनुवादक—

पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री पाण्डेय 'राम'

पं० श्रीगदाधरजी शर्मा एवं पं० श्रीरामाधारजी शुक्ल

श्रीगर्ग-संहिताका संक्षिप्त परिचय

श्रीगर्ग-संहिता युक्तुकुलके महान् आचार्य महामुनि श्रीगर्गकी रचना है। यह सारी संहिता अस्थन्त मधुर श्रीकृष्णलीलासे परिपूर्ण है। श्रीराधाकी दिव्य माधुर्यमावमिश्रित लीलाओंका इसमें विशद वर्णन है। श्रीमद्भागवतमें जो कुछ सूत्ररूपमें कहा गया है, गर्ग-संहितामें वही विशद वृत्तिरूपमें वर्णित है। एक प्रकारसे यह श्रीमद्भागवतोक श्रीकृष्णलीलाका महाभास्य है। श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीकृष्णकी पूर्णताके सम्बन्धमें महर्षि व्यासने ‘कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्’—इतना ही कहा है, महामुनि गर्गाचार्यने—

यस्मिन् सर्वाणि तेजासि विलीयन्ते स्वतेजसि ।
तं वदन्ति परे साक्षात् परिपूर्णतम् स्वयम् ॥

—कहकर श्रीकृष्णमें समस्त भगवत् तेजोंके प्रवेशका वर्णन करके श्रीकृष्णकी परिपूर्णतमताका वर्णन किया है।

श्रीकृष्णकी मधुरलीलाकी रचना हुई है दिव्य ‘रस’के द्वारा; उस रसका रासमें प्रकाश हुआ है। श्रीमद्भागवतमें उस रासके केषल पक वारका वर्णन पाँच अध्यायोंमें किया गया है; किंतु इस गर्ग-संहितामें वृद्धावनखण्डमें, अश्वमेधखण्डके प्रभासमिलनके समय और उसी अश्वमेधखण्डके दिग्दिजयके अनन्तर लौटते समय—यों तीन बार कई अध्यायोंमें उसका बड़ा सुन्दर वर्णन है। परम ग्रेमस्वरूपा, श्रीकृष्णसे नित्य अभिश्वरूपा शक्ति श्रीराधार्जीके दिव्य आकर्षणसे श्रीमधुरानाथ पवं श्रीद्वारकाधीश श्रीकृष्णने बार-बार गोकुलमें पथारकर नित्य रासेश्वरी, नित्य निकुञ्जेश्वरीके साथ महारासकी दिव्य लीला की है—इसका विशद वर्णन है। इसके माधुर्यखण्डमें विभिन्न गोपियोंके पूर्वजन्मोंका बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। और भी बहुत-सी नयी-नयी कथाएँ हैं।

यह संहिता भक्त-भावुकोंके लिये परम समादरकी वस्तु है; क्योंकि इसमें श्रीमद्भागवतके गृह तत्त्वोंका स्पष्ट रूपमें उल्लेख है। आशा है ‘कल्याण’के पाठक इससे विशेष लाभ उठायेंगे।

श्रीहरि:

ॐ वामोदर हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते

श्रीगर्ग-संहिता

(गोलोकखण्ड)

पहला अध्याय

शौनक-गर्ग-संवाद; राजा बहुलाश्वके पूछनेपर नारदजीके द्वारा अवतार-मेदका निरूपण

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
हेवीं सरस्वतीं व्यासं ततो अग्मुहीरयेत् ॥
शरद्विक्षुपङ्कजश्चियमतीविद्वेषकं
मिथिलापुरुनिसेवितं कुलिशकं चिद्धावृतम् ।
द्युरक्षमनूपुरं दक्षितभक्तापत्रवं
चलद्युतिपद्मवं हृदि दधामि राधापतेः ॥
वदनकमलनिर्यद् यस्य पीयूषमाणं
पिषति जनवरोऽयं पातु सोऽयं गिरं मे ।
वदनविहारः सत्यवस्थाः कुमारः
प्रणतदुरितहारः शार्ङ्गधन्वावतारः ॥

‘भगवान् नारायण, नरश्रेष्ठ नरु देवी सरस्वती तथा महर्षि व्यासको नमस्कार करनेके पश्चात् जय (श्रीहरिकी विजय-गाथासे पूर्ण इतिहास-पुराण) का उच्चारण करना चाहिये । मैं भगवान् श्रीराधाकाल्तके उन युगल-चरणकमलोंको अपने हृदयमें धारण करता हूँ, जो शरद्मृतुके प्रकुलित कमलोंकी शोभाको अत्यन्त नीचा दिखानेवाले हैं, मुनिस्त्री भ्रमरोंके द्वारा जिनका निरन्तर सेवन होता रहता है, जो वज्र और कमल आदिके चिह्नोंसे विभूषित हैं, जिनमें सोनेके नूपुर चमक रहे हैं और जिन्होंने भक्तोंके चिकित्थ तापका सदा ही नाश किया तथा जिनसे दिव्य ज्योति छिटक रही है । जिनके मुख-कमलसे निकली हुई आदि-कथारूपी सुधाका बहुमार्गी मनुष्य सदा पान करता रहता है, वे बद्रीवनमें विहार करनेवाले प्रणतजनोंका ताप हरनेमें समर्थ, भगवान् विष्णुके अवतार सत्यवतीकुमार श्रीव्यासजी मेरी वाणीकी रक्षा करें—उसे दोषमुक्त करें’ ॥ १-१ ॥

एक समयकी बात है, शानिशिरोमणि परमतेजस्वी मुनिवर गर्गजी, जो योगशास्त्रके सूर्य हैं, शौनकजीसे मिलनेके लिये नैमित्यारण्यमें आये । उन्हें आया देख मुनियोंसहित शौनकजी सहसा उठकर लड़े हो गये और उन्होंने पाञ्च आदि उपचारोंसे विधिवत् उनकी पूजा की ॥ ४-५ ॥

शौनकजीने कहा—‘आधुपुरुषोंका सब ओर विचरण धन्य है; क्योंकि वह गृहस्थ-जनोंको शान्ति प्रदान करनेका हेतु कहा गया है । मनुष्योंके भीतरी अन्धकारका नाश महात्मा ही करते हैं, न कि सूर्य । भगवन् ! मेरे मनमें यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई है कि भगवान्के अवतार कितने प्रकारके हैं । आप कृपया इसका निवारण कीजिये ॥ ६-७ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—‘ब्रह्मन् ! भगवान्के गुणानुवादसे सम्बन्ध रखनेवाला आपका यह प्रश्न बहुत ही उत्तम है । यह कहने सुनने और पूछनेवाले—तीनोंके कल्याणका विस्तार करनेवाला है । इसी प्रसङ्गमें एक प्राचीन इतिहासका कथन किया जाता है, जिसके अवणमात्रसे यहें-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं । पहलेकी बात है, मिथिलापुरीमें बहुलाश्व नामसे विज्ञ्यात एक प्रतापी राजा राज्य करते थे । वे भगवान् श्रीकृष्णके परम भक्त, शाल्तचित्त एवं अहंकारसे-रहित थे । एक दिन भुनिवर नारदजी आकाशमार्गसे उत्तरकर उनके यहाँ पधारे । उन्हें उपस्थित देखकर राजाने आसनपर बिठाया और भलीभांति उनकी पूजा करके हाथ जोड़कर उनसे इस प्रकार पूछा ॥ ८—११ ॥

श्रीजनकजी बोले—‘महामते ! जो भगवान् अनादि, प्रकृतिसे परे और सबके अन्तर्यामी ही नहीं, आत्मा हैं, वे शारीर के से

शरण करते हैं ! (जो सर्वत्र व्यापक है, वह शरीर से परिच्छिन्न कैसे हो सकता है ?) यह मुझे बतानेकी कृपा करें ॥ १२ ॥

नारदजीने कहा—गौ, साधु, देवता, ब्राह्मण और वेदोंकी रक्षाके लिये साक्षात् भगवान् श्रीहरि अपनी लीलासे शरीर धारण करते हैं । [अपनी अचिन्त्य लीलाशक्तिसे ही वे देहभारी होकर भी व्यापक बने रहते हैं । उनका वह शरीर प्राकृत नहीं, चिन्मय है ।] जैसे नट अपनी मायासे मोहित नहीं होता और दूसरे लोग मोहमें पड़ जाते हैं, वैसे ही अन्य प्राणी भगवान्की माया देखकर मोहित हो जाते हैं, किंतु परमात्मा मोहसे परे रहते हैं—इसमें लेखामात्र भी संशय नहीं है ॥ १३-१४ ॥

श्रीजनकजीवे पूछा—मुनिवर ! संतोंकी रक्षाके लिये भगवान् विष्णुके कितने प्रकारके अवतार होते हैं ? यह मुझे बतानेकी कृपा करें ॥ १५ ॥

श्रीनारदजी बोले—राजन् ! व्याल आदि मुनियोंने अंशांशा, अंशा, आवेश, कला, पूर्ण और परिपूर्णतम—ये छः प्रकारके अवतार बताये हैं । इनमेंसे छठा—परिपूर्णतम अवतार साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही है । मरीचि आदि ‘अंशांशावतार’, ब्रह्मा आदि ‘अंशावतार’, कपिल एव कूर्म प्रमृति ‘कलावतार’ और परशुराम आदि ‘आवेशावतार’ कहे गये हैं । दृष्टिः, राम, इवेत्तदीपाधिष्ठि हरि, वैकुण्ठ, यश और नर-नारायण—ये ‘पूर्णवतार’ हैं एवं साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही ‘परिपूर्णतम’ अवतार हैं । असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिष्ठिति वे प्रभु गोलोकधाममें विराजते हैं । जो भगवान्के दिये सुष्ठु आदि कार्यमात्रके अधिकारका पालन करते हैं, वे ब्रह्मा आदि ‘सत्’ (सत्यस्वरूप भगवान्) के अंश हैं । जो उन अंशोंके कार्यभारमें हाथ बटाते हैं, वे ‘अंशांशावतार’ के नामसे विद्युतात हैं । परम बुद्धिमान् नरेश ! भगवान् विष्णु स्वयं जिनके अन्तःकरणमें आविष्ट हो, अमीष कार्यका सम्पादन करके फिर अल्पा हो जाते हैं, राजन् ! ऐसे नानाविध अवतारोंको ‘आवेशावतार’ समझो । जो ग्रन्थेक युगमें प्रकट हो, युगधर्मको बानकर, उसकी स्थापना करके, पुनः अन्तर्धान हो जाते हैं, भगवान्के उन अवतारोंको ‘कलावतार’ कहा गया है । जहाँ चार व्यूह प्रकट हैं—जैसे श्रीराम, लक्ष्मण, भरत तथा शशुभ्र एवं बासुदेव, संकर्षण, प्रशुभ्र और अनिष्ट, तथा जहाँ

नौ रसोंकी अभिव्यक्ति देखी जाती हो एवं जहाँ वृङ्-पराक्रमकी भी पराकाष्ठा हृषिगोचर होती हो, भगवान्के उस अवतारको ‘पूर्णवतार’ कहा गया है । जिसके अपने तेजमें अन्य सम्पूर्ण तेज विलीन हो जाते हैं, भगवान्के उस अवतारको श्रेष्ठ विद्वान् पुरुष साक्षात् ‘परिपूर्णतम’ बताते हैं । जिस अवतारमें पूर्णका पूर्ण लक्षण हृषिगोचर होता है और मनुष्य जिसे वृथक्-वृथक् भावके अनुसार अपने परम प्रिय रूपमें देखते हैं, वही यह साक्षात् ‘परिपूर्णतम’ अवतार है । [इन सभी लक्षणोंसे सम्बन्ध] स्वयं परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं, दूसरा नहीं; क्योंकि श्रीकृष्णने एक कार्यके उद्देश्यसे अवतार लेकर अन्यान्य करोड़ों कार्योंका सम्पादन किया है । जो पूर्ण, पुराण पुरुषोत्तमोत्तम एवं परात्पर पुरुष परमेश्वर हैं, उन साक्षात् सदानन्दमय, कृपानिधि, गुणोंके आकर भगवान् श्रीकृष्णनन्दको मैं शरण लेता हूँ । यह सुनकर

* श्रीनारद उवाच ,

अद्वाशोऽशस्त्रात्तदेवः कला पूर्णः प्रकृत्यते ।
व्यासाचैश्च स्मृतः पष्ठः परिपूर्णतमः स्वयम् ॥
अंशांशाश्रतु मरम्यादिरंशा ब्रह्मादयस्याऽप्य ।
कला कपिलकूर्माद्या आवेशा भार्गवादयः ॥
पूर्णो नृसिंहो रामश्च इवेन्द्रायाधिष्ठो हरिः ।
बैकुण्ठोऽपि नथा यशो नरनारायणः स्मृतः ॥
परिपूर्णतमः साक्षात्कृष्णो भगवान् स्वयम् ।
असंख्यब्रह्माण्डपतिगोलोके धान्ति राजते ॥
कार्यधिकारं तुर्वन्तः सदंशास्ते प्रकीर्तिः ।
तत्कार्यभारं कुर्वन्नर्तेऽशाशा विदिताः प्रयोः ॥
येवामन्तर्गतो विष्णुः कार्यं कृत्वा विनिर्तिः ।
नानावेशावताराश्च विद्वि राजन् मदामते ॥
पर्यं विकाय कृत्वा यः पुनरन्नर्तीयत ।
युगे युगे वर्तमानः सोऽवतारः कला हरेः ॥
चतुर्थ्यंहो भवेष्व इव्यन्ते च रसा नव ।
अतः परं च वीर्याणि स तु पूर्णः प्रकृत्यते ॥
यस्मिन् सर्वाणि तेजासि विलीयते स्वतेजसि ।
त वदन्ति परे साक्षात् परिपूर्णतमें स्वयम् ॥
पूर्णस्य लक्षणे यत्र यं पश्वन्ति पृथक् पृथक् ।
भावेनापि जनाः सोऽयं परिपूर्णतमः स्वयम् ॥
परिपूर्णतमः साक्षात्कृष्णो नान्य एव हि ।
एक कार्यार्थमागत्य कोटिकार्यं चकार ह ॥

राजा हर्षमे भर गये । उनके शरीरमें रोमाङ्ग हो आया । वे प्रेमसे विहृल हो गये और अशुर्पूर्ण नेत्रोंको पौँछकर नारदजीसे यों बोले ॥ १६-२८ ॥

राजा बहुलाश्वने पूछा—महर्षे ! साक्षात् परिपूर्णतम् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सर्वव्यापी चिन्मय गोलोकधामसे उत्तरकर जो भारतवर्षके अन्तर्गत द्वारकापुरीमें विराज रहे हैं—इसका क्या कारण है ? ब्रह्मन् ! उन भगवान् श्रीकृष्णके सुन्दर तृहत् (विशाल या ब्रह्मस्वरूप) गोलोकधामका कर्णन कीजिये । महामुने ! साथ ही उनके अपरिमेय कायोंको भी कहनेकी कृपा कीजिये । मनुष्य जब तीर्थयात्रा तथा सी जन्मोत्तक उत्तम तपस्या करके उसके फलस्वरूप सत्सङ्गका सुअवसर पाता है, तब वह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको शीघ्र

इस प्रकार श्रीगर्भ-सहितामें गोलोकस्वरूपके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें ‘श्रीकृष्णमाहात्म्यका वर्णन’ नामक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

—००६०—

दूसरा अध्याय

ब्रह्मादि देवोऽद्वारा गोलोकधामका दर्शन

श्रीनारदजी कहते हैं—जो जीभ पाकर भी कीर्तनीय भगवान् श्रीकृष्णका कीर्तन नहीं करता, वह दुर्जुदि मनुष्य मोक्षकी सीढ़ी पाकर भी उत्तरपर चढ़नेकी चेष्टा नहीं करता । राजन् ! अब इस वाराहकल्पमें भराधामपर जो भगवान् श्रीकृष्णका पदार्पण हुआ है और यहाँ उनकी जो-जो लीलाएँ हुई हैं, वह सब मैं तुमसे कहता हूँ; सुनो । यहुत पहलेकी बात है—दानव, दैत्य, आसुर-स्वभावके मनुष्य और दुष्ट राजाओंके भारी भारसे अत्यन्त पीड़ित हो, पृथ्वी गौका रूप धारण करके, अनाथकी भाँति रोती-शिलस्ती हुई अपनी आन्तरिक व्यथा निवेदन करनेके लिये ब्रह्माजीकी शरणमें गयी । उस समय उसका शरीर

कॉप रहा था । वहाँ उसकी कष्टकथा सुनकर ब्रह्माजीने उसे धीरज बँधाया और तत्काल समस्त देवताओं तथा शिवजीको साथ लेकर वे भगवान् नारायणके ब्रह्मण्ठधाममें गये । वहाँ जाकर ब्रह्माजीने चतुर्भुज भगवान् विष्णुको प्रणाम करके अपना सारा अभिप्राय निवेदन किया । तब लस्मीपति भगवान् विष्णु उन उद्दिष्ट देवताओं तथा ब्रह्माजीसे इस प्रकार बोले ॥ १-६ ॥

श्रीभगवान् ने कहा—ब्रह्मन् ! साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही अगणित ब्रह्माण्डोंके स्वामी, परमेश्वर, अखण्डस्वरूप तथा देवातीत हैं । उनकी लीलाएँ अनन्त एवं अनिव॰चनीय हैं । उनकी कृपाके बिना यह कार्य कदापि सिद्ध नहीं

पूर्णः पुराणः पुरुषोत्तमोत्तमः परात्परो यः पुरुषः परेष्वरः ।

स्वयं सदाऽऽनन्दमयं कृपाकरं गुणाकरं तं शरणं ब्रजाम्बहूम् ॥

(गर्भ०, गोलोक० १ । १६-२७)

* श्रीकृष्णदासस्य च दासदासः कदा भवेत् मनसाऽऽर्द्धचितः । यो दुर्जमो देववरः परात्पा स मे कर्म गोचर आदिदेवः ॥

(गर्भ०, गोलोक० १ । ३२)

† जिहा लक्ष्मापि यः कृष्णं कीर्तनीयं न कीर्तयेत् । लक्ष्मापि मोक्षनिःश्रेणी स नारोहति दुर्मतिः ॥

(गर्भ०, गोलोक० २ । १)

होगा, अतः तुम उम्हीके अविनाशी एवं परम उज्ज्वल
धारमे शौष्ठ्र ज्ञानोऽ॥ ७ ॥

श्रीब्रह्माजी बोले—प्रभो ! आपके अतिरिक्त कोई
दूसरा भी परिषूर्णतम तत्व है, यह मैं नहीं जानता । यदि
कोई दूसरा भी आपसे उत्कृष्ट परमेश्वर है, तो उसके लोकका
मुझे दर्शन कराइये ॥ ८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—ब्रह्माजीके इस प्रकार कहने
पर परिषूर्णतम भगवान् विष्णुने समूर्ण देवताओंसहित
ब्रह्माजीको ब्रह्माण्ड-शिखरपर विराजमान गोलोकधार्मका
मार्ग दिखाया । वामनजीके पैरके बायें अङ्गूठेसे ब्रह्माण्डके
शिरोभागका मैदान हो जानेपर जो छिद्र हुआ, वह 'ब्रह्माद्रव'
(नित्य अक्षय नीर) से परिषूर्ण था । सब देवता उसी
मार्गसे बहाँके लिये नियत जलयानदारा बाहर निकले ।
बहाँ ब्रह्माण्डके ऊपर पहुँचकर उन सबने नीचेकी ओर
उस ब्रह्माण्डको कलिङ्गविम्ब (तैवे) की भौति देखा ।
इसके अतिरिक्त अन्य भी बहुत-से ब्रह्माण्ड उसी जलमे
इन्द्रायण-फलके सदृश इधर-उधर लहरोंमें छुड़क रहे थे ।
यह देखकर सब देवताओंको विस्मय हुआ । वे चकित
हो गये । बहाँसे करोड़ों योजन ऊपर आठ नगर मिले,
जिनके चारों ओर दिव्य चहारदीवारी शोभा बढ़ा रही
थी और सूंड-के-सूंड रत्नादिमय वृक्षोंसे उन पुरियोंकी
मनोरमता बढ़ गयी थी । बहाँ ऊपर देवताओंने विराजनदीका
सुन्दर सट देखा, जिससे विराजकी तरंगें टकरा रही थीं ।
वह तटप्रदेश उज्ज्वल रेशमी बख्तके समान हुआ दिलायी
देता था । दिव्य मणिमय सोपानोंसे वह अत्यन्त उद्घासित
हो रहा था । तटकी शोभा देखते और आगे बढ़ते हुए
वे देवता उस उत्तम नगरमें पहुँचे, जो अनन्तकोटि
सूर्योंकी ज्योतिका महान् पुञ्ज जान पड़ता था । उसे
देखकर देवताओंकी आँखें चौंधिया गयीं । वे उस तेजसे
पराभूत हो जाहौं-केतहाँ खड़े रह गये । तब भगवान्
विष्णुकी आशाके अनुसार उस तेजको प्रणाम करके ब्रह्माण्डी

* श्रीभगवानुवाच

कृष्णं स्वं विगणिताण्डपां परेश
साक्षाद्ब्रह्माण्डमतिदेवमतीबलीङ्गम् ।
कार्यं करापि न भविष्यति यं विना हि
गच्छशु तत्य विश्वरं पदमव्ययं त्वम् ॥
(गर्ग०, गोलोक० २ । ७)

उत्तमा ध्यान करने लगे । उसी द्योतिके भौतर तन्होंने
एक परम शान्तिमय साकार धार्म देखा । उसमें परम
अद्भुत, कमलनालके समान ध्वल-वर्ण इजार मुखबाले
शेषनागका दर्शन करके सभी देवताओंने उन्हें प्रणाम किया ।
राजन् ! उन शेषनागकी गोदमें महान् आलोकमय लोक-
विनिदि गोलोकधार्मका दर्शन हुआ, जहाँ धाराभिमानी
देवताओंके हृष्वर तथा गणनाशीलोंमें प्रधान कालका भी
कोई वश नहीं चलता । वहाँ माया भी अपना प्रभाव
नहीं ढाल सकती । मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार, लोलह
विकार तथा महसूल भी वहाँ प्रवेश नहीं कर सकते हैं;
फिर तीनों गुणोंके विषयमें तो कहना ही क्या है । वहाँ
कामदेवके समान मनोहर रूप-लाभपूर्णशालिनी, श्यामसुन्दर-
विग्रहा श्रीकृष्णपार्षदा द्वारपालका कार्य करती थीं । देवताओं-
को द्वारके भौतर जानेके लिये उद्यत देख उन्होंने मना
किया ॥ ९-२० ॥

तब देवता बोले—हम सभी ब्रह्मा, विष्णु, शंकर
नामके लोकपाल और इन्द्र आदि देवता हैं । भगवान्
श्रीकृष्णके दर्शनार्थ यहाँ आये हैं ॥ २१ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—देवताओंकी बात सुनकर उन
संसियोंने, जो श्रीकृष्णकी द्वारपालिकाएँ थीं, अन्तःपुरमें जाकर
देवताओंकी बात कह सुनायीं । तब एक सखी, जो
शतचन्द्रानना नामसे विख्यात थी, जिसके बछ पीले थे और
जो हाथमें बेंतकी छड़ी लिये थी, बाहर आयी और उनसे
उनका अभीष्ट प्रयोजन पूछा ॥ २२-२३ ॥

शतचन्द्रानना बोली—यहाँ पधारे हुए आप सब
देवता किस ब्रह्माण्डके निवासी हैं, यह शौष्ठ्र बताइये ।
तब मैं भगवान् श्रीकृष्णको सूचित करनेके लिये उनके
पास जाऊँगी ॥ २४ ॥

देवताओंने कहा—अहो ! यह तो बड़े आश्रयकी
बात है, क्या अन्यान्य ब्रह्माण्ड भी हैं ? हमने तो उन्हें कभी
नहीं देखा । शुमे ! हम तो यही जानते हैं कि एक ही
ब्रह्माण्ड है, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई है ही नहीं ॥ २५ ॥

शतचन्द्रानना बोली—ब्रह्मदेव ! यहाँ तो विरजा
नदीमें करोड़ों ब्रह्माण्ड इधर-उधर छुड़क रहे हैं । उनमें भी
आप-जैसे ही पृथक्-पृथक् देवता बास करते हैं । अरे !
क्या आपलोग अपना नाम-गाँवतक नहीं जानते ? जान
पड़ता है—कभी यहाँ आये नहीं हैं; अपनी योही-सी

आनकारीमें ही हथसे पूछ उठे हैं। जान पढ़ता है, कभी धरसे बाहर निकले ही नहीं। जैसे गूलके फलोंमें रहनेवाले कीड़े जिस फलमें रहते हैं, उसके सिवा दूसरेको नहीं जानते, उसी प्रकार आप-जैसे साचारण जन जिसमें उत्पन्न होते हैं, एकमात्र उसीको 'ब्रह्माण्ड' समझते हैं॥ २६-२८॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार उपहासके पात्र बने हुए सब देवता नुपचाप सहे रहे, कुछ बोल न सके। उन्हें चकित-से देखकर भगवान् विष्णुने कहा॥ २९॥

श्रीविष्णु बोले—जिस ब्रह्माण्डमें भगवान् पृथिवी-गर्भका स्नातन अवतार हुआ है तथा त्रिविक्रम (विराट्-रूपधारी बासन) के नस्लसे जिस ब्रह्माण्डमें विवर बन गया है, वहाँ हम निवास करते हैं॥ ३०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—भगवान् विष्णुकी यह बात सुनकर शतचन्द्राननाने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और स्वयं भीतर चली गयी। फिर शीघ्र ही आयी और सबको अन्तःपुरमें पधारनेकी आशा देकर बापस चली गयी। तदनन्तर सम्पूर्ण देवताओंने परमसुन्दर भाम गोलोकका दर्शन किया। वहाँ 'गोवर्धन' नामक गिरिराज शोभा पा रहे। गिरिराजका वह प्रदेश उस समय वसन्तका उत्तम मनानेवाली गोपियों और गौओंके समूहसे घिरा था, कस्य-वृक्षों तथा कस्यलताओंके समुदायसे सुशोभित था और रास-पण्डल उसे मणिष (अलंकृत) कर रहा था। वहाँ इयामवर्णवाली उत्तम यमुना नदी स्वच्छन्द गतिरे वह रही है। तटपर बने हुए करोड़ों प्रासाद उसकी शोभा बढ़ाते हैं तथा उस नदीमें उत्तरनेके लिये वैद्युर्यमणिकी सुन्दर सीदियों बनी हैं। वहाँ दिव्य वृक्षों और लताओंसे भरा हुआ 'हृन्दायन' अत्यन्त शोभा पा रहा है; भाँति-भाँतिके विचित्र पक्षियों, भ्रमरों तथा बंशीबटके कारण वहाँकी सुषमा और बढ़ रही है। वहाँ सहस्रदल कमलोंके सुगन्धित परागको चारों ओर पुनः-पुनः विस्तरती हुई शीतल बायु मन्द गतिरे वह रही है। हृन्दायनके मध्यमागमें बचीउ बनोंटे युक्त एक गिनेज निकुञ्ज' है। चाहारदीवारियों और चाइयाँ उसे बुशोभित कर रही हैं। उसके आँगनका भाग लाल बर्णवाले अक्षयबट्टोंसे अलंकृत है। पश्चारामादि चात प्रकारकी मणियोंसे बनी दीवारें तथा आँगनके कर्ण बड़ी शोभा पाते हैं। करोड़ों चन्द्रमाओंके मण्डलकी छाँपि भारण

करनेवाले चंदोवे उसे अलंकृत कर रहे हैं तथा उनमें चमकीले गोले लटक रहे हैं। फारसी हुई दिव्य पताकाएँ एवं लिले हुए फूल मण्डिरों एवं मार्गोंकी शोभा बढ़ाते हैं। वहाँ भ्रमरोंके गुलारम संगीतकी लृष्टि करते हैं तथा मत्त मध्यों और कोकिलोंके कलरब सहा अवणगोचर होते हैं। वहाँ बालसूखके सहशा कान्तिमान् अरण-पीत कुण्डल भारण करनेवाली ललनाएँ शत-शत चन्द्रमाओंके समान गौरवणसे उद्घासित होती हैं। सच्छन्द गतिसे चलनेवाली वे सुन्दरियाँ मणिरम्भम भिसियोंमें अपना मनोहर मुख देखती हुई वहाँके रमजटित आँगनोंमें भागती फिरती हैं। उनके गलेमें हार और बौंदोंमें केयर शोभा देते हैं। नूपुरों तथा करधनीकी मधुर धनकार वहाँ गैंजती रहती है। वे गोपाङ्गनाएँ मस्तकपर चूँडामणि भारण किये रहती हैं। वहाँ द्वार-द्वारपर कोटि-कोटि मनोहर गौओंके दर्शन होते हैं। वे गौएँ दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं और इवेत पर्वतके समान प्रतीत होती हैं। सब-की-सब दूध देनेवाली तथा नथी अवस्थाकी हैं। सुशीला, सुकचा तथा सदुणवती हैं। सभी सबत्सा और पीली पूँछकी हैं। ऐसी भव्य रूपवाली गौएँ वहाँ सब और विचर रही हैं। उनके धंटों तथा मङ्गीरोंसे मधुर घ्वनि होती रहती है। किंकिणीजालोंसे विभूषित उन गौओंके सींगोंमें सोना मढ़ा गया है। वे सुवर्ण-नुल्य हार एवं मालाएँ भारण करती हैं। उनके अङ्गोंसे प्रभा छिटकती रहती है। सभी गौएँ भिज्ञ-भिज्ञ रंगवाली हैं—कोई उजली, कोई काली, कोई पीली, कोई लाल, कोई हरी, कोई ताँबिके रंगकी और कोई चितकनरे रंगकी हैं। किन्हीं-किन्हींका बर्ण धूँप-जैसा है। बहुत-सी कोयलके समान रंगवाली हैं। दूध देनेमें समुद्रकी तुलना करनेवाली उन गायोंके शारोरपर तश्णियोंके कर-चिह्न शोभित हैं, अर्थात् युवतियोंके हाथोंके रंगीन छापे दिये गये हैं। हिन्दनके समान छलाँग भरनेवाले बछड़ोंसे उनकी अधिक शोभा बढ़ गयी है। गायोंके छुंडमें विशाल शरीरवाले साँड़ भी इधर-उधर बूँद रहे हैं। उनकी लंबी गर्दन और बड़े-बड़े सींग हैं। उन साँड़ोंको साक्षात् धर्मभुरंभर कहा जाता है। गौओंकी रक्षा करनेवाले चरबाहे भी अनेक हैं। उनमेंसे कुछ तो हाथमें बेतकी छड़ी लिये हुए हैं और दूसरोंके हाथोंमें सुन्दर बाँसुरी शोभा पाती है। उन सबके शरीरका रंग इयामल है। वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाएँ ऐसे मधुर स्वरोंमें गाते हैं कि उसे सुनकर कामदेव भी मोहित हो जाता है॥ ३१-४८॥

इस दिव्य लिङ्ग निकुञ्ज को समूर्ण देवताओंने प्रणाम किया और भीतर चले गये। वहाँ उन्हें हजार दलबाला एक बहुत बड़ा कमल दिखायी पड़ा। वह ऐसा दुश्मनीभित था, मानो प्रकाशका पुल हो। उसके ऊपर एक सोलह दलका कमल है तथा उसके ऊपर भी एक आठ दलबाला कमल है। उसके ऊपर चमचमाता हुआ एक ऊँचा सिंहासन है। तीन सीढ़ियोंसे सम्पन्न वह परम दिव्य सिंहासन कौस्तुभ-मणियोंसे जटित होकर अनुपम शोभा पाता है। उसीपर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र श्रीराधिकारीके साथ विराजमान है। ऐसी झाँकी उन समस्त देवताओंको मिली। वे युगलरूप भगवान् मोहिनी आदि आठ दिव्य दासियोंसे समन्वित तथा श्रीदामा प्रभृति आठ गोपालोंके द्वारा देवित हैं। उनके ऊपर हंसके समान सफेद रंगवाले पंख छले जा रहे हैं और हीरोंसे बनी मूँठवाले चौंबर छुलये जा रहे हैं। भगवान् की सेवामें करोड़ों ऐसे छत्र प्रस्तुत हैं, जो कोटि चन्द्रमाओंकी प्रभासे दुलित हो सकते हैं। भगवान् श्रीकृष्णके वामभागमें विराजित श्रीराधिकारीसे

इस प्रकार श्रीगर्ज-संहितामें गोलोकसंषदके अन्तर्गत नारद-बहुलश्व-संवादमें 'श्रीगोलोकधारामका वर्णन'

नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णके श्रीविग्रहमें श्रीविष्णु आदिका प्रवेश; देवताओंद्वारा भगवान् की स्तुति; भगवान् का अवतार लेनेका निष्ठय; श्रीराधिकी चिन्ता और भगवान् का उन्हें सान्त्वना-प्रदान श्रीजनकर्त्ताने पूछा—मुझे । परात्पर भात्मा भगवान् क्या किया, मुझे यह बतानेकी कृपा करें ॥ १ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन प्राप्तकर समूर्ण देवताओंने आगे श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! उस समय सबके

* क्योगिष्ठा मण्डलं पदं सहस्रदलशोभितम् ॥

तदूर्ध्वं शोऽद्वादलं ततोऽप्तरक्षयम् । तस्योपरि सूर्योर्ध्वं सोपानत्रयमण्डितम् ॥

सिंहासनं परं दिव्यं कौस्तुभैः लक्षितं शुभम् । ददृशुदेवतासत्र श्रीकृष्ण राधिका युनम् ॥

दिव्यैर्षतस्त्वीसंवैमोहिन्यादिभिरनितम् । श्रीदामारैः सेव्यमानमण्डोपालसेवितम् ॥

इसामैर्व्यजनान्दोकन्वामरैर्जसुषिमिः । कोटिविद्युप्रतीक्षाः सेवितं छत्रकोटिभिः ॥

श्रीराधिकारंकृतवामयादुःख्यम् । स्वरूपददलशीकृतदद्विणाद्विष्टम् ।

बंशीपरं सुन्दरमम्बदरात् श्रूमण्डलमोहितकामराशिम् ॥

वनप्रभं पश्चदकाष्ठेष्वणं प्रकृत्यादुःख्यातवाससम् ।

बृहदावनोमस्तमिलिन्दशदैविराजितं श्रीवन्मात्रम् । दरिम् ॥

काशीकल्पकृष्णन्दुपरुति कसम्भनोहरिमहोक्तव्यस्मितम् ।

श्रीवस्तरज्ञोस्मकुन्तकप्रियं किरीदारकृष्णकृष्णतिष्यम् ॥

(गर्ज०, गोलोक० ४९-५६)

देवते-देवते अष्ट भुजाधारी बैकुण्ठाभिपति भगवान् श्रीहरि उठे और साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके श्रीविग्रहमें लीन हो गये। उसी समय कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी, प्रचण्ड-प्रकारमी पूर्णस्वरूप भगवान् नुसिंहजी पधारे और भगवान् श्रीकृष्णके तेजमें वे भी समा गये। इसके बाद सहस्र भुजाओंसे मुश्किलित, श्वेतद्वीपके स्वामी विराट् पुरुष, जिनके शुद्ध रथमें सफेद रंगके लाल घोड़े जुते हुए थे, उस रथपर आरुद्ध होकर बहाँ आये। उनके साथ श्रीलक्ष्मीजी भी थीं। वे अनेक प्रकारके अपने आयुधोंसे सम्पन्न थे। पांचदण्ड चारों ओरसे उनकी देवामें उपस्थित थे। विभी भगवान् भी उसी समय श्रीकृष्णके श्रीविग्रहमें सहस्र प्रविष्ट हो गये। फिर वे पूर्णस्वरूप कमललोचन भगवान् श्रीराम स्वयं बहाँ पधारे। उनके हाथमें धनुष और बाण थे तथा साथमें श्रीसीताजी और भरत आदि तीनों भाई भी थे। उनका दिव्य रथ दूर करोड़ सूर्योंके समान प्रकाशमान था। उसपर निरन्तर चौंबर हुलाये जा रहे थे। असंख्य वानरयूथपति उनकी रक्षके कार्यमें संलग्न थे। उस रथके एक लाल चक्रोंसे मेघोंकी गर्जनाके समान गम्भीर ध्वनि निकल रही थी। उसपर लाल ध्वनाएँ फहरा रही थीं। उस रथमें लाल घोड़े जुते हुए थे। वह रथ सुवर्णमय था। उसीपर बैठकर भगवान् श्रीराम बहाँ पधारे थे। वे भी श्रीकृष्णचन्द्रके दिव्य विग्रहमें लीन हो गये। फिर उसी समय साक्षात् यज्ञनारायण श्रीहरि बहाँ पधारे, जो प्रलयकालकी जाज्वल्यमान अग्निशिखाके समान उद्भासित हो रहे थे। देवेश्वर यह अपनी धर्मपल्नी दक्षिणाके साथ ज्योतिर्मय रथपर बैठे दिखायी देते थे। वे भी उस समय श्यामविग्रह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें लीन हो गये। तत्पश्चात् साक्षात् भगवान् नर-नारायण बहाँ पधारे। उनके शरीरकी कान्ति मेघके समान श्याम थी। उनके चार भुजाएँ थीं, नेत्र विशाल थे और वे मुनिके वेषमें थे। उनके सिरका जटा-जटू कौंधती हुई करोड़ों विजलियोंके समान दीक्षिमान् था। उनका दीक्षिमण्डल लब्द और उद्भासित हो रहा था। दिव्य मुनीन्द्र-मण्डलोंसे मण्डित वे भगवान् नारायण अपने अखण्डित ब्रह्मचर्यसे शोभा पाते थे। राजन्! सभी देवता आश्चर्यसुक्त मनसे उनकी ओर देख रहे थे; किंतु वे भी श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्णमें तत्काल लीन हो गये। इस प्रकारके विलक्षण दिव्य दर्शन प्राप्तकर सर्वोच्च देवताओंको महान् आश्रय हुआ। उन सबको यह भलीभांति शात् हो गया

कि परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं परिपूर्णतम् भगवान् है। तब वे उन परमप्रभुकी स्मृति करने लगे ॥ २-१४ ॥

देवता बोले——जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पूर्णपुरुष, परसे भी पर, यज्ञोंके स्वामी, कारणके भी परम कारण, परिपूर्णतम परमात्मा और साक्षात् गौलोकधामके अधिवासी हैं, इन परम पुरुष श्रीराधारको इम सादर नमस्कार करते हैं। योगेश्वर लोग कहते हैं कि आप परम तेजःपुजा हैं; शुद्ध अन्तःकरणवाले भक्तजन ऐसा मानते हैं कि आप लीला-विग्रह धारण करनेवाले अथतारी पुरुष हैं; परंतु इमलोगोंने आज आपके जिस स्वरूपको जाना है, वह अद्वैत—सबसे अभिन्न एक अद्वितीय है; अतः आप महत्तम तत्त्वों परं महात्माओंके भी अधिपति हैं; आप परब्रह्म परमेश्वरको इमारा नमस्कार है। किंतु विद्वानोंने व्यञ्जना, लक्षण और स्फोटद्वारा आपको जानना चाहा; किंतु फिर भी वे आपको पहचान न सके; क्योंकि आप निर्दिष्ट भावसे रहते हैं। अतः मायासे निलैप आप निर्गुण ब्रह्मकी इम शरण ग्रहण करते हैं। किन्हींने आपको 'ब्रह्म' माना है, कुछ दूसरे लोग आपके लिये 'काल' शब्दका व्यवहार करते हैं। किंतु नोंकी ऐसी धारणा है कि आप शुद्ध 'प्रशान्त' स्वरूप हैं तथा कतिपय मीमांसक लोगोंने तो यह मान रखता है कि पृथ्वीपर आप 'कर्मस्वप्नसे विराजमान हैं। कुछ प्राचीनोंने 'योग' नामसे तथा कुछने 'कर्ता'के रूपमें आपको स्वीकार किया है। इस प्रकार सबकी परस्पर विभिन्न ही उक्तियाँ हैं। अतएव कोई भी आपको बस्तुतः नहीं जान सका। (कोई भी यह नहीं कह सकता कि आप यही हैं, 'ऐसे ही' हैं।) अतः आप (अनिर्देश्य, अचिन्त्य, अनिर्वचनीय) भगवान्की इमने शरण ग्रहण की है। भगवन्। आपके चरणोंकी सेवा अनेक कल्याणोंको देनेवाली है। उसे छोड़कर जो तीर्थ, यज्ञ और तपका आचरण करते हैं, अथवा ज्ञानके द्वारा जो प्रसिद्ध हो गये हैं; उन्हें बहुतसे विज्ञोंका सामना करना पड़ता है; वे सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। भगवन्! अब इम आपसे क्या निवेदन करें, आपसे तो कोई भी बात छिपी नहीं है; क्योंकि आप चराचरमात्रके भीतर विद्यमान हैं। जो शुद्ध अन्तःकरणवाले परं देहवन्धनसे मुक्त हैं, वे (इम विष्णु आदि) देवता भी आपको नमस्कार ही करते हैं। ऐसे आप पुष्पोत्तम भगवानको इमारा प्रणाम है। जो श्रीराधिकाजीके हृदयको मुक्तोभित करनेवाले चन्द्रहर

हैं गोपियोंके नेत्र और जीवनके मूळ आधार हैं तथा भ्वजाकी
भौति गोलोकधारामको अलंकृत कर रहे हैं, वे आदिदेव भगवान्
आप संकटमें पढ़े हुए हम देवताओंकी रक्षा करें, रक्षा करें।
भगवन् ! आप बृन्दावनके स्वामी हैं, गिरिराजपति भी
कहलाते हैं। आप व्रजके अधिनायक हैं, गोपालके रूपमें
अवतार धारण करके अनेक प्रकारकी नित्य विहार-लीलाएँ
करते हैं। श्रीराधिकाजीके प्राणवल्लभ एवं श्रुतिधरोंके भी
आप स्वामी हैं। आप ही गोवर्धनधारी हैं, अब आप
धर्मके भारको धारण करनेवाली इस पृथ्वीका उद्धार करनेकी
कृपा करें॥ १५-२२॥

* श्रीदेवा कन्तुः—

कृष्णाय	पूर्णपुरुषाय	परात्पराय
	थष्टेभराय	परकारणकारणाय ।
राधाकराय	परिपूर्णमाय	सक्षाद्
	गोलोकधाराधिष्ठणाय	नमः परमै ॥
योगेश्वराः	किल बदन्ति महः परं त्वं	
	तत्रैव सात्वतजनाः कृतविग्रहं च ।	
असामिरथ	विदितं यददोऽद्वयं ते	
	तदैव न नोऽस्तु भवत्ता पनये परस्मै ॥	
व्यङ्गयेन वा न न हि लक्षणया कदापि		
स्कोटेन यच्च कवयो न विशन्ति मुख्याः ।		
निदेश्यभावरहितं प्रज्ञुते: परं च		
	त्वां वदा निर्गुणमलं शरणं ब्रजामः ॥	
त्वा वदा केनिदवयवित् परे च कालं		
	केनिव व्रशान्तमपरे भुवि कर्मस्पद् ।	
पूर्वे च योगमपरे किल कर्तुभाव-		
	मन्योक्तिभिर्विदितं शरणं गताः सः ॥	
भेषरकर्ती	भगवत्सत्त्वं पादसेवा	
	हित्याय तीर्थयजनादि तपश्चरनि ।	
शानेन च च विदिता चकुविभूमयैः		
	संतानिताः किल भवान्ति न ते कृतार्थाः ॥	
विष्णवमय विषु देव अहेषसाक्षी		
	यः सर्वभूतादयेषु विराजमानः ।	
देवैनमद्विरमणाश्यमुक्तदेहै-		
	स्तरमै नगो भगवते पुरुषोत्तमाः ॥	
शो रामिष्ठस्तुम्बद्वचद्वाहारः		
	अंगोपिकान्यनवीकृन्यूल्लासारः	

भारद्वजी कहते हैं—इस प्रकार सुनि करनेपर
गोकुलेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रणाम करते हुए देवताओं-
को सम्बोधित करके मेघके लगान गम्भीर वाणीमें बोले—॥२३॥

श्रीकृष्ण भगवान्ने कहा—ब्रह्मा, शंकर एवं (अन्य)
देवताओं ! तुम सब मेरी बात सुनो । मेरे आदेशानुसार
तुमलोग अपने अंशोंसे देवियोंके साथ यदुकुलमें जन्म
धारण करो । मैं भी अवतार लूँगा और मेरे द्वारा पृथ्वीका
भार दूर होगा । मेरा वह अवतार यदुकुलमें होगा और
मैं तुम्हारे सब कार्य सिद्ध करूँगा । वेद मेरी वाणी,
ब्रह्मण मुख और गौ शरीर है । ममी देवता मेरे अङ्ग
है । साधुपुरुष तो द्वृदयमें वास नहनेवाले मेरे प्राण ही
हैं । अतः प्रत्येक युगमें जब दम्भपूर्ण दुष्टेऽद्वारा इन्हे पीड़ा
होती है और धर्म, यश तथा दयापर भी आघात पहुँचता
है, तब मैं न्यून अपने आपको भूतलपर प्रकट करता
हूँ ॥ २४-२७ ॥

श्रीनारद्वजी कहते हैं—जिस समय जगत्पति भगवान्
श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार बातें कर रहे थे, उसी क्षण ‘अब
प्राणनाथसे मेरा वियोग हो जायगा’ यह भमशक्तर श्रीराधिकाजी
व्याकुल हो गयी और दावानलसे दग्ध लताकी भौति
मूर्चिंच्छ होकर गिर पड़ी । उनके शरीरमें अश्रु, कृप, रोमाञ्च
आदि सात्त्विक भावोंका उदय हो गया ॥ २८ ॥

श्रीराधिकाजीने कहा—आप पृथ्वीका भार उतारने-
के लिये भूमण्डलपर अवश्य पधारें; परंतु मेरी एक
प्रतिशा है, उमे भी सुन लें—प्राणनाथ ! आपके चले
जानेपर एक क्षण भी मैं यहाँ जीवन धारण नहीं कर सकूँगी ।
यदि आप मेरी इस प्रतिशापर ध्यान नहीं दे रहे हैं तो मैं
दुवारा भी कह रही हूँ । अब मेरे प्राण अधरतक
पहुँचनेको अत्यन्त विहृल हूँ । ये इस शरीरसे वैसे ही उड़
जायेंगे, जैसे कपूरके धूलिकण ॥ २९-३० ॥

गोलोकधाराधिष्ठणवज्ज आदिदेवः

स स्वं विपत्सु विनुभान् परिपाहि पापि ॥	
बृन्दावनेषु गिरिराजपते ब्रजेषु	
	गोपालवेषकृन् नित्यविहारलील ।
राधापते भुतिभराधिष्ठते भरा त्वं	
	गोवर्धनोद्धरण उद्धर धर्मशाराम् ॥
	(गण०, गोलोक० ३ । १५-२२)

श्रीभगवान् बोले—राधिके ! तुम विषाद भत करो । मैं तुम्हरे साथ चलूँगा और पृथ्वीका भार कूर करूँगा । मेरे द्वारा तुम्हारी बात अवश्य पूर्ण होगी ॥ ३१ ॥

श्रीराधिकाजीने कहा—(परंतु) प्रभो ! जहाँ शृन्दावन नहीं है, यमुना नदी नहीं है और गोवर्धन पर्वत भी नहीं है, वहाँ मेरे मनको सुख नहीं मिलता ॥ ३२ ॥

नारदजी कहते हैं—(श्रीराधिकाजीके इस प्रकार कहनेपर) भगवान् श्रीकृष्णानन्दने अपने धामसे चौरासी कोस भूमि, गोवर्धन पर्वत एवं यमुना नदीको भूतलपर भेजा । उस समय सम्पूर्ण देवताओंके साथ ब्रह्माजीने परिपूर्णतम मंगवान् श्रीकृष्णको बार-बार प्रणाम करके कहा ॥ ३३-३४ ॥

श्रीब्रह्माजीने पूछा—भगवन् ! मेरे लिये कौन स्थान होगा ? आप कहों पधारेंगे ? तथा ये सम्रूप देवता किन गृहोंमें रहेंगे और किन-किन नामोंसे इनकी प्रसिद्धि होगी ? ॥ ३५ ॥

श्रीभगवान्नने कहा—मैं स्वयं वसुदेव और देवकी-के यहाँ प्रकट होऊँगा । मेरे कलास्वरूप ये 'शोष' रोहिणीके

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'भूतलपर अवतीर्ण होनेके उद्घोगका वर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

नन्द आदिके लक्षण; गोपीयूथका परिचय; श्रुति आदिके गोपीभावकी प्राप्तिमें कारणभूत पूर्वप्राप्त वरदानोंका विवरण

भगवान्नने कहा—ब्रह्मान् ! 'सुश्वल' और 'श्रीदामा' नामके मेरे सखा नन्द तथा उपनन्दके घरपर जन्म धारण करेंगे । इसी प्रकार और भी मेरे सखा हैं, जिनके नाम 'स्तोककृष्ण', 'अर्जुन' एवं 'अंशु' आदि हैं, वे सभी नौ नन्दोंके वहाँ प्रकट होंगे । ब्रजमण्डलमें जो छः वृषभानु हैं, उनके गृहमें विशाल, प्रशस्त, तेजस्वी, देवप्रस्थ और वस्त्रथप नामके मेरे सखा अवतीर्ण होंगे ॥ १-२ ॥

श्रीब्रह्माजीने पूछा—देवेश्वर ! किसे 'नन्द' कहा जाता है और किसे 'उपनन्द' तथा 'वृषभानु'के कथा लक्षण हैं ? ॥ ३ ॥

गम्भीर जन्म लेंगे—इसमें संशय नहीं है । शाक्षात् 'स्त्री' राजा भीपक्षके घर पुत्रीलालसे उत्पन्न होंगी । इनका नाम 'शक्मिणी' होगा और 'पार्वती' 'जाम्बवती'के नामसे प्रकट होंगी । यशपुरुषकी पत्नी 'दक्षिणा देवी' वहाँ 'लक्ष्मणा' नाम धारण करेंगी । यहाँ जो 'विरजा' नामकी नदी है वही 'कालिन्दी' नामसे विल्यात होगी । भगवती 'लक्ष्मा' का नाम 'भद्रा' होगा । समस्त पापोंका प्रशमन करनेवाली 'गङ्गा' 'मित्रविन्दा' नाम धारण करेंगी । जो इस समय 'कामदेव' है, वे ही रुक्मिणीके गम्भीर 'प्रद्युम्न' रूपमें उत्पन्न होंगे । प्रद्युम्नके घर तुम्हारा अवतार होगा । उस समय तुम्हें 'अनिरुद्ध' कहा जायगा, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है । ये 'घमु' जो 'द्रोण'के नामसे प्रसिद्ध हैं, वज्रमें 'नन्द' होंगे और स्वयं इनकी प्राणप्रिया 'धरा देवी' 'यशोदा' नाम धारण करेंगी । 'सुचन्द्र' 'वृषभानु' बनेंगे तथा इनकी सहधर्मिणी 'कलावती' धराधामपर 'कीर्ति'के नामसे प्रसिद्ध होंगी । फिर उन्होंके यहाँ इन श्रीराधिकाजीका प्राकृत्य होगा । मैं ब्रजमण्डलमें गोपियोंके साथ सदा रासविहार करूँगा ॥ ३६-४१ ॥

श्रीभगवान् कहते हैं—जो गोशालाओंमें सदा गौओं-का पालन करते रहते हैं एवं गो-सेवा ही जिनकी जीविका है, उन्हें मैंने 'घोपाल' संज्ञा दी है । अब तुम उनके लक्षण सुनो । गोपालोंके साथ नौ लाख गायोंके स्वामीको 'नन्द' कहा जाता है । पाँच लाख गौओंका स्वामी 'उपनन्द' पदको प्राप्त करता है । 'वृषभानु' नाम उसका पड़ता है, जिसके अधिकारमें दस लाख गौएँ रहती हैं । ऐसे ही जिसके यहाँ एक करोड़ गौओंकी रक्षा होती है, वह 'नन्दराज' कहलाता है । पचास लाख गौओंके अध्यक्षकी 'वृषभानु-बर' संज्ञा है । 'सुचन्द्र' और 'द्रोण'—ये दो ही ब्रजमें इस प्रकारके सम्पूर्ण लक्षणोंसे सम्पन्न गोपराज बनेंगे और

मेरे दिव्य ब्रजमें सुन्दर बच्च धारण करनेवाली शतचन्द्रानना
गोप-सुन्दरियोंके सौ यूथ होंगे॥ ४-८ ॥

श्रीब्रह्माजीने कहा—भगवन् ! आप दीनजनोंके बन्धु
और जगत्‌के कारण (प्रकृति) के भी कारण हैं। प्रभो ! अब
आप मेरे समक्ष यूथके सम्पूर्ण लक्षणोंका वर्णन कीजिये ॥९॥

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्माजी ! मुनियोंने दस कोटि-
को एक 'अबुंद' कहा है। जहाँ दस अबुंद होते हैं, उसे
‘यूथ’ कहा जाता है। वहाँ सी गोपियोंमें कुछ गोलोकवासिनी
हैं, कुछ दारपालिका हैं, कुछ शृङ्गार-साधनोंकी व्यवस्था
करनेवाली हैं और कुछ शय्या सेवारनेमें संलग्न रहती
हैं। कई तो पार्षदगोटिमें आती और कुछ गोपियाँ
श्रीहृष्णदावनकी देख रेख किया करती हैं। कुछ गोपियोंका
गोवर्धन गिरिपर निवास है। कई गोपियों कुञ्जवनको सजाती-
सँवारती हैं तथा बहुतेरी गोपियोंमेरे निकुञ्जमें रहती हैं। इन
सबको मेरे ब्रजमें पधारना होगा। ऐसे ही यमुना-गङ्गाके भी
यूथ हैं। इसी प्रकार रमा, मधुमाधवी, विरजा, ललिता,
विशाला एवं मायाके यूथ होंगे। ब्रह्माजी ! इसी प्रकार
मेरे ब्रजमें आठ, सोलह और बत्तीस सखियोंके भी यूथ
होंगे। पूर्वके अनेक युगोंमें जो श्रुतियाँ, मुनियोंकी पलियों,
अयोध्यानी महिलाएँ, यशमें स्थापित की हुईं सीता, जनकपुर
एवं कोमलदेशानी निवागिनी सुन्दरियों तथा पुलिन्द-
कल्याएँ थीं तथा जिनको मैं पूर्वतीं युग-युगमें बर दे चुका
हूँ, वे सब मेरे पुण्यमय ब्रजमें गोपीरूपमें पधारेंगी और उनके
भी यूथ होंगे ॥ १०—११ ॥

श्रीब्रह्माजीने पूछा—पुरुषोत्तम ! इन जियोंने कौन-
सा पुण्य-कार्य किया है तथा इन्हे कौन-कौनसे बर मिल
चुके हैं, जिनके फलस्वरूप ये ब्रजमें निवास करेंगी ?
कारण, आपका वह स्थान तो योगियोंके लिये भी दुर्लभ
है ॥ १८ ॥

श्रीभगवान् बोले—पूर्वकालमें श्रुतियोंने इच्छाप्राप्ति
जाकर वहाँ मेरे स्वरूपभूत भूमा (विराट् पुरुष या परब्रह्म)-
का मधुर वाणीमें स्थान किया। तब सहस्रपाद विराट्
पुरुष प्रसन्न हो गये और बोले ॥ १९ ॥

श्रीहरिने कहा—श्रुतियो ! तुम्हें जो भी पानेकी इच्छा
हो, वह बर माँग लो। जिनके ऊपर मैं स्थयं प्रसन्न
हो गया, उनके लिये कौन-सी बस्तु दुर्लभ है ? ॥ २० ॥

श्रुतियाँ बोली—भगवन् ! आप मन-वाणीसे नहीं
जाने जा सकते; अतः हम आपको जाननेमें असमर्थ हैं।
पुराणवेत्ता शानीपुरुष यहाँ जिसे केवल ‘आनन्दमात्र’
बताते हैं, अपने उसी रूपका हमें दर्शन कराइये। प्रभो !
यदि आप हमें बर देना चाहते हों तो यही दीजिये ॥ २१ ॥

श्रुतियोंकी ऐसी बात सुनकर भगवान् ने उन्हें अपने
दिव्य गोलोकधामका दर्शन कराया, जो प्रकृतिसे परे है।
वह लोक शानानन्दस्वरूप, अविनाशी तथा निर्विकार है।
वहाँ ‘वृन्दावन’ नामक बन है, जो कामपूरक कल्पवृक्षोंसे
सुशोभित है। मनोहर निकुञ्जोंमें सम्पन्न वह वृन्दावन सभी
श्रुतुओंमें सुखदायी है। वहाँ सुन्दर झरनों और गुफाओंसे
सुशोभित ‘पोकर्धन’ नामक गिरि है। रस्ते एवं धारुओंसे
भरा हुआ वह श्रीमान् पर्वत सुन्दर पक्षियोंसे आवृत है।
वहाँ स्वच्छ जलवाली श्रेष्ठ नदी ‘यमुना’ भी लहराती है।
उसके दोनों तट रस्तोंसे बैधे हैं। हंस और कमल आदिसे
वह सदा व्याप रहती है। वहाँ विविध रास-रङ्गसे उन्मत्त
गोपियोंका समुदाय ज्ञोमा पाता है। उसी गोपी-समुदायके
मध्यमागमें किदूर वयसे सुशोभित भगवान् श्रीकृष्ण विराजते
हैं। उन श्रुतियोंकी इस प्रकार अपना लोक दिखाकर
भगवान् बोले—‘कहो, तुम्हारे लिये अब क्या करूँ ? तुमने
मेरा यह लोक तो देख ही लिया, इससे उत्तम दूसरा कोई
बर नहीं है’ ॥ २२-२७ ॥

श्रुतियोंने कहा—प्रभो ! आपके करोड़ों कामदेवोंके
समान मनोहर श्रीविग्रहको देखकर हममें कामिनी-भाव आ गया
है और हमें आपसे मिलनेकी उस्कट इच्छा हो रही
है। हम विह-ताप संतुष्ट हैं—इसमें संदेह नहीं है। अतः
आपके लोकमें इनेवाली गोपियों आपका सङ्ग पानेके लिये जैसे
आपकी सेवा करती हैं, हमारी भी वैसी ही अभिलाषा
है ॥ २८-२९ ॥

श्रीहरि बोले—श्रुतियो ! तुमलोगोंका यह मनोरथ
दुर्लभ एवं दुर्बट है; फिर भी मैं इसका भलीभाँति
अनुमोदन कर चुका हूँ, अतः वह स्थय होकर रहेगा।
आगे होनेवाली सुष्ठिमें जब ब्रह्मा जगत्‌की रचनामें संलग्न
होंगे, उम समय सारस्वत-कल्प वीतनेपर तुम सभी श्रुतियाँ
ब्रजमें गोपियों होओगी। भूमण्डलपर भारतवर्षमें मेरे
मातृरमण्डलके अन्तर्गत हृन्दावनमें रासमण्डलके भीतर
मैं त्रिमूरा प्रियतम बैठूँगा। त्रिमूरा मेरे प्रति सुहृद

प्रेम होगा, जो उब प्रेमोंसे बढ़कर है। तब तुम कब शुतियाँ
मुझे पाकर सफल-मनोरथ होओगी ॥ ३०—३१ ॥

श्रीभगवान् कहते हैं— ब्रह्माजी! पूर्व कल्यामें मैंने
वर दे दिया है, उसीके प्रभावसे वे शुतियाँ ब्रजमें गोपियाँ
होंगी। अब अन्य गोपियोंके लक्षण तुमो ॥ ३४ ॥

त्रेतायुगमें देवताओंकी रक्षा और राक्षसोंका संहार करनेके
लिये मेरे स्वरूपभूत महापराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी अवतोर्ण हुए थे।
कमलोचन श्रीरामने सीताके स्वयंवरमें जाकर धनुष तोड़ा
और उन जनकनन्दिनी श्रीसीताजीके साथ विवाह किया।
ब्रह्माजी! उस अवसरपर जनकपुरकी जियाँ श्रीरामको
देखकर प्रेमविहृल हो गयीं। उन्होंने एकान्तमें उन महा-
भागसे अपना अभिप्राय प्रकट किया—‘प्राघव! आप हमारे
परम प्रियतम बन जायें।’ तब श्रीरामने कहा—‘सुन्दरियो!

तुम शोक मत करो। द्वापरके अन्तमें मैं तुम्हारी इच्छा
पूर्ण करूँगा। तुमलोग परम श्रद्धा और भक्तिके साथ
तीर्थ, दान, तप, शौच एवं सदाचारका भलीमाति पालन
करती रहो। तुम्हे ब्रजमें गोपी होनेका सुअवसर प्राप्त होगा।’
इस प्रकार वर देकर धनुर्धारी कर्णानिधि श्रीरामने अयोध्याके
लिये प्रस्थान कर दिया। उस समय मार्गमें अपने प्रतापसे
उन्होंने भगुकुलनन्दन परशुरामजीको परास्त कर दिया था।
कोसल-जनपदकी जियोंने भी राजपथसे जाते हुए उन
कमनीय-कान्ति रामको देखा। उनकी सुन्दरता कामदेवको
मोहित कर रही थी। उन जियोंने श्रीरामको मन-ही-मन
पतिके रूपमें वरण कर लिया। उस समय सर्वश श्रीरामने
उन समस्त जियोंको मन-ही-मन वर दिया—‘तुम सभी
ब्रजमें गोपियाँ होओगी और उस समय मैं तुम्हारी इच्छा
पूर्ण करूँगा।’ ॥ ३५—४२ ॥

फिर सीता और मैनिकोंके साथ रघुनाथजी अयोध्या
पधारे। यह सुनकर अयोध्यामें रहनेवाली जियों उन्हें देखनेके
लिये आयीं। श्रीरामको देखकर उनका मन मुग्ध हो गया।
वे प्रेमसे बिहूल हो मूर्छित-सी हो गयीं। फिर वे श्रीरामके
ब्रतमें परायण होकर सरयूके तटपर तपस्या करने लगीं। तब
उनके सामने आकाशवाणी हुई—‘द्वापरके अन्तमें यमुनाके
किनारे वृन्दावनमें तुम्हारे मनोरथ पूर्ण होंगे, इसमें संदेह
नहीं है’ ॥ ४३—४५ ॥

जिस समय श्रीरामने पिताकी आकासे दृष्टकवनकी यात्रा
की, सीता तथा लक्ष्मण भी उनके साथ थे और वे हाथमें

धनुष लेकर इधर-उधर बिचर रहे थे। वहाँ बहुतसे मुख्य
थे। उनकी गोपाल-बैषष्ठारी भगवान्नके स्वरूपमें निष्ठा थी।
रासलीलाके निश्चित वे भगवान्नको ध्यान करते थे। उस समय
श्रीरामकी युवा अवस्था थी—वे हाथमें धनुष-बाण धारण
किये हुए थे। जटाओंके मुकुटसे उनकी विचित्र दोमा थी।
अपने आत्रमपर पधारे हुए श्रीराममें उन मुनियोंका ध्यान
लग गया। (वे श्रुतिलोग गोपाल-बैषष्ठारी भगवान्नके
उपासक थे) अतः दूसरे ही स्वरूपमें आये हुए श्रीरामको
देखकर सबके मनमें अत्यन्त आश्रय हो गया। उनकी
समाधि दूट गयी और देखा तो करोड़ों कामदेवोंके समान
सुन्दर श्रीराम हृषिगोचर हुए। तब वे बोल उठे—‘अहो!
आज हमारे गोपालजी वंशी एवं बैतकेविना ही पधारे हैं।’—
इस प्रकार मन-ही-मन विचारकर सबने श्रीरामको प्रणाम
किया और उनकी उत्तम स्तुति करने लगे ॥ ४६—५० ॥

तब श्रीरामने कहा—‘मुनियो! वर माँगो।’ वह
सुनकर सभीने एक सरसे कहा—‘जिस माँति सीता आपके
प्रेमको प्राप्त है, वैसे ही हम भी चाहते हैं।’ ॥ ५१ ॥

श्रीराम बोले— यदि तुम्हारी ऐसी प्रार्थना हो कि जैसे
भाई लक्षण हैं, वैसे ही हम भी आपके भाई बन जायें, तब
तो आज ही मेरेद्वारा तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण हो सकती है।
किंतु तुमने तो ‘सीता’के समान होनेका वर माँगा है। अतः
यह वर महान्, कठिन और दुर्लभ है; क्योंकि इस समय
मैंने एकपली-ब्रत धारण कर रखता है। मैं भर्यादाकी रक्षामें
तत्पर रहकर ‘मर्यादापुरुषोत्तम’ भी कहलाता हूँ। अतएव
तुम्हे मेरे वरका आदर करके द्वापरके अन्तमें जन्म धारण
करना होगा और वहाँ मैं तुम्हारे इस उत्तम मनोरथको
पूर्ण करूँगा ॥ ५२—५४ ॥

इस प्रकार वर देकर श्रीराम स्वयं पञ्चवटी पधारे। वहाँ
पर्णकुटीमें रहकर बनवासकी अवधि पूरी करने लगे। उस
समय भीलोंका जियोंने उन्हें देखा। उनमें भिलेकी उल्कट
इच्छा उत्पन्न होनेके कारण वे प्रेमसे बिहूल हो गयी। यहौतक
कि श्रीरामके चरणोंकी धूल मस्तकपर रखकर अपने प्राण
छोड़नेकी तैयारी करने लगीं। उस समय श्रीराम ब्रह्मचारीके
वेषमें वहाँ आये और इस प्रकार बोले—‘जियो! तूम
ध्यर्थ ही प्राण स्थागना चाहती हो; एसा मत करो। द्वापरके
ब्रोष होनेपर वृन्दावनमें तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा।’ इस
प्रकारका आदेश देकर श्रीरामका वह ब्रह्मचारी रूप वही
अन्तर्हित हो गया ॥ ५५—५८ ॥

तत्स्थात् श्रीरामने सुनीव आदि प्रधान बानरोंकी सहायतासे लक्ष्मामें जाकर रावण-प्रभूसे राक्षसोंको परात्त किया। फिर सीताको पाकर पुष्पक विमानद्वारा अयोध्या चले गये। राजाभिराज श्रीरामने लोकापादके कारण सीताको घनमें छोड़ दिया। अहो! भूमण्डलपर दुर्जनोंका होना बहुत ही दुःखदायी है। जब-जब कमलोचन श्रीराम यह करते थे, तब-तब विधिपूर्वक सुवर्णमयी सीताकी प्रतिमा बनावी जाती थी। इनलिये श्रीराम-भवनमें यश-सीताओंका एक समूह ही एकत्र हो गया। वे सभी दिव्य चैतन्यघनस्वरूपा होकर श्रीरामके पास गयीं। उस समय श्रीरामने उनसे कहा—‘प्रियाओ! मैं तुम्हें स्वीकार नहीं कर सकता।’ वे सभी प्रेमप्रशयणा सीता-मूर्तियाँ दशरथनन्दन श्रीरामसं कहने लगीं—‘ऐसा क्यो? हम तो आपकी संवा करनेवाली हैं। हमारा नाम भी भिथिलेशकुमारी सीता है और हम उत्तम व्रतका आचरण करनेवाला ततियों भी हैं; फिर हमें आप ग्रहण क्यों होंगी।’

इस प्रकार श्रीराम-सहितामें गोलोकवाङ्के अन्तर्गत भगवद् ब्रह्म-संवादमें ‘अवतारके द्योगविषयक प्रदेनका वर्णन’ नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

भिन्न-भिन्न स्थानों तथा विभिन्न वर्गोंकी लियोंके गोपी होनेके कारण एवं अवतार-व्यवस्थाका वर्णन

भगवान् श्रीहरि कहते हैं—‘वैकुण्ठमें विराजनेवाली रमादेवीकी सहचरिणीं, इतेतदीपकी पत्नियाँ, भगवान् अजित (विष्णु) के चरणोंके आश्रित ऊर्ख्वेकुण्ठमें निवास करनेवाली देवियाँ तथा श्रीलोकाचान्तर्यन्तपर रहनेवाली, समुद्रसे प्रकटिन श्रीलक्ष्मीकी समियो—ये गभी भगवान् कमलापतिके वरदानमें व्रजमें गोपियाँ होगी। पृथक्त विविध पुण्योंके प्रमाणसे कोई दिव्य, कोई अदिव्य और कोई सत्त्व, रज, तम—तीनों गुणोंसे युक्त देवियों व्रजमण्डलमें गोपियाँ होंगी ॥ १-३३ ॥

इन्हिके यहाँ पुत्ररूपसे अवतारीण, द्युमोक्षपति द्यन्तरविग्रह भगवान् यहको देखकर देवाङ्गनाएँ प्रेम-रसमें निमन्न हो गयीं। तदनन्तर वे देवलजीके उपदेशमें हिमाञ्चल वर्षतपर आकर वरम भक्तिभावसे तपस्या करने लगीं। ब्रह्मन्! वे सब मेरे व्रजमें जाकर गोपियाँ होंगी ॥ ४-५ ॥

भगवान् धन्वन्तरि जब इड भूतङ्गपर अन्तर्धीन हुए,

नहीं करते! यह करते समय हम आपकी अधोङ्कीनी बनकर निरन्तर कार्योंका संचालन करती रही हैं। आप धर्मात्मा और वेदके मार्गका अवलम्बन करनेवाले हैं, यह अधर्मपूर्ण बात आपके श्रीमुखसे कैसे निकल रही है! यदि आप लोकोंका हाथ पकड़कर उसे त्यागते हैं तो आपको पापका भागी होना पड़ेगा’ ॥ ५९—६५ ॥

श्रीराम बोले—सतियो! तुमने मुझसे जो बात कही है, वह बहुत ही उचित और सत्य है। परंतु मैंने ‘एकपल्नी-ब्रत’ धारण कर रखवा है! सभी लोग मुझे ‘राजार्पि’ कहते हैं। अतः नियमको छोड़ भी नहीं सकता। एकमात्र सीता ही मेरी सहधर्मिणी है। इसलिये तुम सभी द्वापरके अन्तमें श्रेष्ठ बृन्दावनमें पधारना, वहीं तुम्हारी मनःकामना पूर्ण करूँगा ॥ ६६-६७ ॥

भगवान् श्रीहरिने कहा—ब्रह्मन्! वे यश-सीता ही व्रजमें गोपियों होंगी। अन्य गोपियोंका भी लक्षण सुनो ॥ ६८ ॥

उस समय सम्रण ओषधियाँ अत्यन्त दुःखमें दूब गयीं और भारतवर्षमें अपनेको निष्कल मानने लगीं। फिर सबने सुन्दर लोकोंका वेष धारण करके तपस्या आरम्भ की। चार युग व्यतीत होनेपर भगवान् श्रीहरि उनपर अत्यन्त ग्रसन्न हुए और बोले—‘तुम सब वर माँगो।’ यह सुनकर लियोंने उस महात् वनमें जब आँखें लोरीं, तब उन श्रीहरिका दशन करके वे सब-की-सब मोहित हो गयीं और लोरीं—‘आप हमारे पतितुस्य आराध्यदेव होनेकी कृपा करें’ ॥ ६-८ ॥

भगवान् श्रीहरि बोले—ओषधिस्वरूपा लियो। द्वापरके अन्तमें तुम सभी लतारूपसे बृन्दावनमें रहोगी और वहाँ रसमें मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा ॥ ९ ॥

श्रीभगवान् कहते हैं—ब्रह्मन्! मत्किमाबसे परिपूर्ण वे वहभगिनी वराङ्गनाएँ बृन्दावनमें ‘स्त्री-गोपी’ होंगी। इसी प्रकार जाकंधर नगरकी लियाँ बृन्दापति भगवान्

श्रीहरिका दर्शन करके मन-ही-मन संकल्प करने लगी—‘ये साक्षात् श्रीहरि हम सबके सामी हों।’ उस समय उनके लिये आकाशवाणी हुई—‘तुम सब शीघ्र ही रमापतिकी आराधना करो; फिर बृन्दावनी ही भाँति तुम भी बृन्दावनमें भगवान्की प्रिया गोपी होओगी।’ मत्स्यावतारके समय मत्स्यविग्रह श्रीहरिको देखकर समुद्रकी कन्याएँ मुख हो गयी थीं। श्रीमत्स्यभगवान्के वरदानसे वे भी ब्रजमें गोपियाँ होंगी॥ १०-१४॥

मेरे अंशभूत राजा पृथु वडे प्रतापी थे। उन महाराजने सम्पूर्ण शत्रुओंको जीतकर पृथ्वीसे सारी अमीष वस्तुओंका दोहन किया था। उस समय वर्हिष्मती नगरीमें रहनेवाली बहुत-सी स्थिरों उन्हें देखकर मुख हो गयी और प्रेमसे चिह्न हो अत्रिजीके पास जाकर बोर्ली—‘महामुने। समस्त राजाओंमें श्रेष्ठ महाराजा पृथु वडे ही पराक्रमी हैं। ये किस प्रकारसे हमारे पति होंगे? यह बतनेकी इच्छा कीजिये॥ १५-१६॥

अत्रिजीने कहा—‘तुम सब शीघ्र ही आज इस गौको दुहो। यह सम्पूर्ण पदार्थोंको धारण करनेवाली धारणामयी धरणी देवी है। तुम्हारे सारे मनोरथोंको—चाहे वे समुद्रके समान अगाध, अपार एवं दुर्गम ही क्यों न हों,—अवश्य पूर्ण कर देंगी॥ १७॥

ब्रह्मन्! तब उन स्थिरोंने मनको दोहन-पात्र बनाकर अपने मनोरथोंका दोहन किया। इसी कारणसे वे सब-की-सब बृन्दावनमें गोपियाँ होंगी। बहुत-सी श्रेष्ठ अप्सराएँ, जिनका रूप अत्यन्त मनोहर था और जो कामदेवकी सेनाएँ थीं, भगवान् नारायण शृष्टिको मोहित करनेके लिये गन्धमादन पर्वतपर गयीं। परंतु उन्हें देखकर वे भी अपनी सुख-मुख खो बैठीं। उनके मनमें भगवान्को पति बनानेकी इच्छा उत्पन्न हो गयी। तब सिद्धतपस्वी नारायण मुनिने कहा—‘तुम ब्रजमें गोपियाँ होओगी और वहीं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा॥ १८-२०॥

ब्रह्मन्! सुतल देवाकी स्थिरों भगवान् वामनको देखकर उन्हें पानेके लिये उस्कट इच्छा प्रकट करने लगी। फिर तो उन्होंने तपस्या आरम्भ कर दी। अतः वे भी बृन्दावनमें गोपियाँ होंगी। जिन नागराज-कन्याओंने शेषावतार भगवान्को देखकर उन्हें पति बनानेकी इच्छासे उनकी सेवा-समाराधना की है, वे उब बलदेवजीके साथ राष्ट्र-विहार करनेके लिये ब्रजमें उत्पन्न होंगी॥ २१-२२॥

कश्यपजी बसुदेव होंगे। परम पूजनीया अदिति देवकीके रूपमें अवतार लेंगी। प्राण नामक बसु शूरसेन और ‘श्रुत’ नामक बसु देवक होंगे। ‘बसु’ नामके जो बसु हैं, उनका उद्घाटके रूपमें प्राकट्य होगा। दयापरायण दक्ष प्रजापति अकूरके रूपमें अवतार लेंगे। कुबेर हृदीक नामसे और जलके सामी बरुण बृत्यर्मा नामसे प्रसिद्ध होंगे। पुरातन राजा प्राचीनवर्हि गद एवं मरुत देवता उग्रसेन बनेंगे। उन उग्रसेनको मैं विधानतः राजा बनाऊँगा और उनकी भलीभौति रक्षा करूँगा। भक्त राजा अम्रारीष युयुधान और भक्तप्रवर प्रह्लाद सात्यकिके नामसे प्रकट होंगे। क्षीरसागर शंतनु होगा। बसुओंमें श्रेष्ठ द्रोण साक्षात् भीमपितामहके रूपमें उत्पन्न होंगे। दिवोदास शलके रूपमें एवं भग नामके सूर्य धूतराष्ट्रके रूपमें अवतार लेंगे। पूषा नामसे विश्वात देवता पाण्डु होंगे। सत्पुरुषोंमें आदर पानेवाले धर्मराज ही राजा युधिष्ठिरके रूपमें अवतार लेंगे। वायु देवता महान् पराक्रमी भीमसेनके तथा स्वायम्भूत मनु अञ्जनके बेषमें प्रकट होंगे। शत्रुघ्नाजी सुभद्रा होंगी और मूर्यनारायण कणके रूपसे अवतार लेंगे। अधिनीकुमार नकुल एवं सहदेव होंगे। धाता महान् बलशाली बाह्यीक नामसे विश्वात होंगे। अग्निदेवता महान् प्रतापी द्रोणाचार्यके रूपमें अवतार लेंगे। कलिका अंश दुर्योधन होगा। चन्द्रमा अभिमन्युके रूपमें अवतार लेंगे। पृथ्वीपर द्रोणपुत्र अश्वथामा साक्षात् भगवान् शंकरका रूप होगा। इस प्रकार तुम सब देवता मेरी आशाके अनुसार अपने अंशों और स्थिरोंके साथ यदुवंशी, कुरुवंशी तथा अन्यान्य वंशोंके राजाओंके कुलमें प्रकट होओ। पूर्व समयमें मेरे जितने अवतार हो चुके हैं, उनकी रानियाँ रमाका अंश रही हैं। वे भी मेरी रानियोंमें सोलह इजारकी संख्यामें प्रकट होंगी॥ २३-२५॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! कमलासन ब्रह्मासे यौं कहकर भगवान् श्रीहरिने दिव्यरूपधारिणी भगवती योगमायासे कहा॥ २३॥

भगवान् श्रीहरि बोले—महामते! तुम देवकीके सातवें गर्भको खोन्चकर उसे बसुदेवकी पली रोहिणीके गर्भमें स्थापित कर दो। वे देवी कंसके डरसे ब्रजमें नन्दके वर रहती हैं। साथ ही तुम भी ऐसे अङ्गौलिक कार्य करके नन्दरानीके गर्भसे प्रकट हो जाना॥ २४-२५॥

श्रीनारदजी कहते हैं—परम श्रेष्ठ राजन्! भगवान्,

श्रीकृष्णके बचन मुनकर सम्पूर्ण देवताओंके साथ ब्रह्माजीने परात्पर भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया और अपने बचनों-द्वारा पृथ्वीदेवीको धीरज दे, वे अपने धामको चढ़े गये। मिथिलेश्वर जनक ! तुम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको साक्षात् परिशूर्णतम परमात्मा समझो। कंस आदि दुष्टोंका विनाश करनेके लिये ही ये इस धराधामपर पधारे हैं। शरीरमें

जितने रोएँ हैं, उतनी जिहाँ हो जायें, तब भी भगवान् श्रीकृष्णके असंख्य महान् गुणोंका वर्णन नहीं किया जा सकता। महाराज ! जिस प्रकार पक्षीगण अपनी शक्तिके अनुसार ही आकाशमें उड़ते हैं, वैसे ही शानीजन भी अपनी मति एवं शक्तिके अनुसार ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी दिव्य लीलाओंका गायन करते हैं। ३६-३९॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकस्थापनके अन्तर्गत नारद-बहुलाश-संवादमें ‘अवतार-व्यवस्थाका वर्णन’ नामक पाँचदो अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

छठा अध्याय

कालनेमिके अंशसे उत्पन्न कंसके महान् बल-पराक्रम और दिविजयका वर्णन

राजा यहुलाश्वने कहा—देवर्षिशिरोमणे । यह महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न कंस पहले किस दैत्यके नामसे विख्यात था ? आप इसके पूर्वजन्मों और कर्मोंका विवरण मुझे सुनाइये ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! पूर्वकालमें समुद्र-मन्थनके अवगुरपर महान् असुर कालनेमिने भगवान् विष्णुके साथ युद्ध किया। उस युद्धमें भगवानने उसे बलपूर्वक मार डाला। उस समय शुक्रनार्यजीने अपनी संजीवनी-विद्याके बलसे उसे पुनः जीवित कर दिया। तब वह पुनः भगवान् विष्णुसे युद्ध करनेके लिये मन-ही-मन उथोग करने लगा। उस समय वह दानव मन्दराचल पर्वतके समीप तपस्या करने लगा। प्रतिदिन दूबका रस पीकर उसने देवेश्वर ब्रह्माकी आराधना की। देवताओंके कालमानसे सौ वर्ष बीत जानेपर ब्रह्माजी उसके पास गये। उस समय कालनेमिके शरीरमें केवल हङ्कियों रह गयी थीं और उसपर दीमकें चढ़ गयी थीं। ब्रह्माजीने उससे कहा—‘वर माँगो’ ॥ २—५ ॥

कालनेमिने कहा—इस ब्रह्माण्डमें जो-जो महाबली देवता स्थित हैं, उन सबके मूल भगवान् विष्णु हैं। उन सम्पूर्ण देवताओंके हाथसे भी मेरी मृत्यु न हो ॥ ६ ॥

ब्रह्माजीने कहा—दैत्य ! तुमने जो यह उत्कृष्ट वर माँगा है, वह तो अत्यन्त तुर्लभ है; तथापि किसी दूसरे समय तुम्हें यह प्राप्त हो सकता है। मेरी वाणी कभी छठी नहीं हो सकती ॥ ७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! फिर वही कालनेमि नामक अहुर पृथ्वीपर उप्रेषेनकी जी (कर्मावृती) के

गर्भसे उत्पन्न हुआ। कुमारावस्थामें ही वह बड़े-बड़े पहलवानोंके साथ कुश्टी लड़ा करता था। (एक समयकी बात है—) मगधराज जरासंध दिविजयके लिये निकला। यमुना नदीके निकट इधर-उधर उसकी छावनी पड़ गयी। उसके पास ‘कुबलयापीड़’ नामका एक हाथी था, जिसमें हजार हाथियोंके समान शक्ति थी। उसके गण्डस्थलसे भद्र चूरहा था। एक दिन उसने बहुत-सी सॉकलोंको तोड़ डाला और शिविरसे बाहरकी ओर दौड़ा चला। शिविरों, यहों और पर्वतीय तटोंको तोड़ता-फेझता हुआ वह उस रक्षभूमि (अखाड़े) में जा धमका, जहों कंस भी कुश्टी लड़ रहा था। उसके अनेपर सभी शूरवीर भाग चले। उसे आया देख कंसने उस हाथीकी सूँड पकड़ी और पृथ्वीपर गिरा दिया। इसके बाद कंसने कुबलयापीड़को पुनः दोनों हाथोंसे पकड़कर उमाया और जरासंधकी सेनामें, जो वहाँसे बहुत दूर थी, फेंक दिया। मगधनरेश जरासंध कंसके इस अद्भुत बलको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने ‘अस्ति’ तथा ‘प्राप्ति’ नामकी अपनी दो परम-सुन्दरी कन्याओंका विवाह उसके साथ कर दिया। उस जरापुन्ने एक अरब धोड़े, एक लाख हाथी, तीन लाख रथ और दस हजार दासियाँ, कंसको दहेजमें दी ॥ ८—१५ ॥

कंस दृन्दयुद्धका प्रेमी था। अपने बाहुबलके मदसे अकेला ही दृन्दयुद्धके लिये उन्मत्त रहता था। वह प्रचण्ड-पराक्रमी वीर माहिमतीपुरीमें गया। माहिमतीनरेशके पाँच पुत्र प्रसन्नतम भल्ल थे और मल्लयुद्धमें विजय पानेका हौसला रखते थे। उनके नाम थे—चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और

तोशल । कंसने सामनीतिका आधय से ग्रेमूर्ख क उनसे कहा—‘तुम्हेग मेरे साथ मल्लयुद करो । वहि तुम्हारी विजय हो जायगी तो मैं तुम्हारा सेवक होकर रहूँगा; और कदाचित् मेरी विजय हो गयी तो तुम सबको भी मैं अपना सेवक बना दूँगा ।’ वहाँ जितने भी नागरिक महान् पुरुष थे, उन सबके सामने कंसने इस प्रकारकी प्रतिक्रिया की और विजय पानेकी इच्छा रखनेवाले उन बीरोंके साथ मल्लयुद आरम्भ कर दिया । ज्यों ही चाणूर आया, यादवेश्वर कंसने उच्चस्वरसे गर्जना करते हुए उसे पकड़कर पृथ्वीपर दे मारा । उसी क्षण मुष्टिक भी वहाँ आ गया । वह रोषसे मुक्ख ताने हुए था । कंसने उसे भी एक ही मुक्खसे धराशायी कर दिया । अब कूट आया, कंसने उसके होनों पैर पकड़ लिये और जमीनपर दे मारा । फिर ताल ठोकता हुआ शल भी हौड़कर आ पहुँचा । कंसने उसे एक ही हाथसे पकड़ा और जमीनपर पटककर घसीटने लगा । इसके बाद कंसने तोशलके दोनों हाथ ग्रेमूर्ख क पकड़ लिये और जमीनपर पटक दिया । फिर तत्काल उठाकर दस योजनकी दूरीपर कैंक दिया । इस प्रकार यादवेश्वर कंस उन सभी बीरोंके अपना सेवक बनाकर, मेरे (नारदजीके) कहनेसे उन योद्धाओंके साथ उसी क्षण श्रेष्ठ पर्वत प्रवर्षणगिरिपर जा पहुँचा । वहाँ वह बानर द्विविदको अपना अभिप्राय बताकर उसके साथ बीस दिनोंतक अविराम युद्ध करता रहा । द्विविदने पर्वतकी चट्टान उठाकर उसे कंसके मस्तकपर कैंक, किंतु कंसने उस शिलास्तण्डको पकड़कर उसीके ऊपर चला दिया । तब द्विविद कंसपर मुक्खसे प्रहार करके आकाशमें उड़ गया । कंसने भी उसका पीछा करके उसे पकड़ लिया और लाकर जमीनपर पटक दिया । कंसके प्रहारसे द्विविदको मूर्ढा आ गयी । उसकी सारी उत्साहशक्ति जाती रही । इन्हियाँ चूर-चूर हो गयीं । फिर तो वह भी कंसका सेवक बन गया ॥ १६—२९ ॥

तदनन्तर कंस द्विविदके साथ वहाँसे शृङ्खल-वनमें गया । वहाँ ‘केती’ नामसे विख्यात एक महादेव रहता था, जिसकी घोड़ेके समान आङ्गति थी । वह बादलके समान गर्जता था । उसे मुक्खोंकी मारसे अपने बद्धमें करके कंस उसपर सवार हो गया । इस प्रकार वह महान् पराक्रमी कंस महेन्द्रपिरिपर जा पहुँचा । दानवराज कंसने उस पर्वतको सौ बार उछालकर ऊपरको उठा लिया । फिर वहाँ रहनेवाले मुनिवर परशुरामजीके लिनके नेत्र कोषसे

बाल थे और जो ग्रेमूर्खालके सर्वेषी भौंति तेजसी थे, चरणोंमें मस्तक मुकाया और बार-बार उनकी ग्रहणिणी की । फिर उनके दोनों चरणोंमें वह लेट गया । तब अत्यन्त उप दृष्टिकाले परशुरामजीकी कोषादिन शान्त हो गयी । वे बोले—‘मेरे कीट ! ऐ बैश्वरियाके बच्चे ! तू मन्त्रके समान दुर्लभ है । तू बलके धमंडमें चूर रहनेवाला दुष्ट क्षत्रिय है । मैं आज ही दुसे भौतके मुखमें मैजाता हूँ । देख, मेरे पास वह महान् धनुष है । इसकी गुरुता लाल भार (लगभग तीन लाख मन)के बराबर है । शिरपुरासुरसे युद्धके समय भगवान् विष्णुने यह धनुष भगवान् शंकरको दिया था । फिर क्षत्रियोंका विनाश करनेके लिये यह शंकरजीके हाथसे मुझे प्राप्त हुआ । यदि तू इसे चढ़ा सका, तथ तो कुशल है; यदि नहीं चढ़ा सका तो तेरे सारे बलका विनाश कर दूँगा ।’ परशुरामजीकी बात सुनकर कंसने उस धनुषको, जो सात ताङ्के बराबर लंबा था, उठा लिया और परशुरामजीके देखते-देखते उसे लीलागूर्खक चढ़ा दिया । फिर कालतक सींच-सींचकर उसे सौ बार फैलाया । उसकी प्रत्यक्षाके सींचनेसे विजलीकी गड्गडाहटके समान टंकार शब्द होने लगा । उसकी भीषण ध्वनिसे सातों लोकों और पातालोंके साथ पूरा ब्रह्माण्ड गूँज उठा, दिग्गज विचलित हो गये और तारागण दृट-दृटकर जमीनपर गिरने लगे । फिर कंसने धनुषको नीचे रख दिया और परशुरामजीको बार-बार प्रणाम करके कहा—‘भगवन् ! मैं क्षत्रिय नहीं हूँ । मैं आपका सेवक दैत्य हूँ । आपके दासोंका दास हूँ । पुरुषोत्तम ! मेरी रक्षा कीजिये ।’ कंसकी ऐसी प्रार्थना सुनकर परशुरामजी प्रसन्न हो गये । फिर वह धनुष उन्होंने कंसको ही दे दिया ॥ ३०—४२ ॥

परशुरामजीने कहा—‘यह धनुष भगवान् विष्णुका है । इसे जो तोड़ देगा, वही यहाँ साक्षात् परिपूर्णतम पुरुष है । उसीके हाथसे तुम्हारी मृत्यु होगी ॥ ४३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर बलके महसे उन्मत्त रहनेवाला कंस मुनिवर परशुरामजीको प्रणाम करके भूतलपर विचरने लगा । किन्हीं राजाओंने उसके साथ युद्ध नहीं किया—सबने उसे कर देना स्वीकार कर लिया । अब कंस समुद्रके तटपर गया । वहाँ ‘अश्वसुर’ नामक एक दानव रहता था, जो सूर्यके आकारका था । वह फुफ्फकरता और लपल्पाती जीभसे चाटता-सा दिस्ताती देता था । वह आकर कंसको ढंसने लगा । यह देख

पराक्रमी दैत्यराजने निर्भयतापूर्वक उसे पकड़ा और धरतीपर पटक दिया। फिर उसे अपने गलेकी माला बना लिया। उन दिनों पूर्वदिवावर्ती बंगदेशमें 'अरिष्ट' नामक दैत्य रहता था, जिसकी आकृति बैलके समान थी। उस दैत्यके साथ कंस हस प्रकार जा भिड़ा, जैसे एक हाथीके साथ दूसरा हाथी लड़ता है। वह दानव अपनी सींगोंसे बड़े-बड़े पर्वतोंको उठाता और कंसके मस्तकपर पटक देता था। कंस भी उसी पर्वतको हाथमें लेकर अरिष्टासुरपर दे मारता था। उस युद्धमें दैत्यराज कंसने मुक्केसे अरिष्टासुरपर प्रहार किया, जिससे वह दानव मूर्छित हो गया। इस प्रकार उस अरिष्टासुरको पराजित करके उसके साथ ही कंस उत्तर दिवाकी ओर चल दिया। प्राण्योतिष्ठपुरके स्वामी महाबली भूमिपुत्र 'नरक'के पास जाकर युद्धार्थी कंसने उससे कहा—‘दैत्येश्वर ! तुम मुझ युद्ध करनेका अवसर हो। यदि संशयमें तुम्हारी जीत हो गयी तो मैं तुम्हारा सेवक बन जाऊँगा। साथ ही मुझे विजय प्राप्त होनेपर तुम सबको मेरा भूत्य बनना पड़ेगा’॥ ४४—५१ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! प्राण्योतिष्ठपुरमें सर्वप्रथम महापराक्रमी प्रलभ्यासुर कंसके साथ इस प्रकार युद्ध करने लगा, जैसे किसी पर्वतपर एक उद्धट सिंहके साथ दूसरा उद्धट सिंह लड़ता हो। कंसने उस मल्लयुद्धमें प्रलभ्यासुरको पकड़ा और धृष्टीपर दे मारा। फिर उसे उठाकर प्राण्योतिष्ठपुरके स्वामी भौमासुरके पास फेंक दिया। तदनन्तर ‘घेनुक’ नामसे विख्यात दानवने आकर कंसको रोषपूर्वक पकड़ लिया। उसने दाढ़ण बलका प्रयोग करके कंसको दूरतक पीछे इटा दिया। तब कंसने भी

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकसंपदके अन्तर्गत नारद-बहुलाश-संवादमें कंसके बलका

वर्णन नामक छठा अव्याप्त पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

कंसकी दिग्विजय—शम्बर, व्योमासुर, बाणासुर, वत्सासुर, कालयवन तथा देवताओंकी पराजय

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर कंस पहलेके जीते हुए प्रलभ्य आदि अन्य दैत्योंके साथ शम्बरासुरके नगरमें गया। वहाँ उसने अपना युद्ध-विषयक अभियाय कह सुनाया। शम्बरासुरने अस्यन्त पराक्रमी होनेपर भी कंसके साथ युद्ध नहीं किया।

घेनुकासुरको बहुत दूर पीछे ढकेल दिया और सुहृद चूँसोंसे मारकर उसके शरीरको चूर-चूर कर दिया। तदनन्तर भौमासुरकी आकाशसे 'तृणावर्त' कंसको पकड़कर लाख घोजम ऊपर आकाशमें ले गया और वही युद्ध करने लगा। कंसने अपनी अनन्तशक्ति लगाकर बलपूर्वक उस दैत्यको आकाशसे लंबाचकर पृथ्वीपर पटक दिया। उस समय तृणावर्तके मुँहसे खूबीकी धार वह चली। इसके बाद महाबली 'बकासुर' आकर अपनी चोंचसे कंसको निशाल जानेकी चेष्टा करने लगा। कंसने बज्रके समान कठोर मुक्केसे प्रहार करके उसे भी धराशायी कर दिया। बल्बान् बकासुर फिर उठ गया। उसके पंख सफेद थे। वह मेघके समान गम्भीर गर्जना करता था। कोधपूर्वक उड़कर तीखी चोंचबाले उस बकासुरने कंसको निशाल लिया। कंसका शरीर बज्रकी भौति कठोर था। निगले जानेपर उसने उस दानवके गलेकी नलीको लैंध दिया। फिर महान् बली बकासुरने कण्ठ छिद जानेके कारण कंसको मुँहसे बाहर उगल दिया। तदनन्तर कंसने उस दैत्यको पकड़कर जमीनपर पटका और दोनों हाथोंसे घुमाता हुआ उसे वह युद्धभूमिमें धसीटने लगा। बकासुरकी एक बहन थी। उसका नाम था—‘पूतना’। वह भी युद्ध करनेके लिये उश्यत हो गयी। उसे उपस्थित देखकर कंसने हँसते हुए कहा—‘पूतने ! मेरी बात मुझ लो। तुम ल्ली हो, मैं तुम्हारे साथ कभी भी लड़ नहीं सकता। अब यह बकासुर मेरा भाई और तुम बहन होकर रहो।’ तदनन्तर महान् पराक्रमी कंसको देखकर भौमासुरने भी पराजय स्वीकार कर ली। फिर देवताओंसे युद्ध करनेके समय सहायता प्रदान करनेके लिये वह कंसके साथ सौहार्दपूर्ण बर्ताव करने लगा ॥ ५२—६४ ॥

कंसने उन सभी अस्यन्त बलवाली असुरोंके साथ मैत्री स्थापित कर ली। त्रिकूट पर्वतके शिखरपर व्योमनामक एक बल्बान् असुर सो रहा था। कंसने वहाँ पहुँचकर उसके ऊपर लात चलायी। उसके प्रहारसे व्योमासुरकी निशा दृट गयी और उसने उठकर सुहृद बैठे हुए

जेरदार मुक्कोंसे कंसपर आघात किया । उस समय उसके नेत्र कोष्ठे लाल हो रहे थे । कंस और व्योमासुरमें भयंकर युद्ध लिया गया । वे दोनों एक-दूसरे को मुक्कोंसे मारने लगे । कंसके मुक्कोंकी मारसे व्योमासुर अपनी शक्ति और उत्साह लो बैठा । उसको चक्र आने लगा । यह देख कंसने उसको अपना सेवक बना लिया । 'उसी समय मैं (नारद) वहाँ जा पहुँचा । कंसने मुझे प्रणाम किया और पूछा—'हे देव ! मेरी युद्धविषयक आकाशु । अभी पूरी नहीं हुई है । मुझे शीघ्र बताइये, अब मैं कहाँ, किसके पास जाऊँ ?' तब मैंने उससे कहा—'तुम महाबली देव्य वाणासुरके पास जाओ ।' मुझे तो युद्ध देखनेका चाह रहता ही है । मेरी इस प्रकारकी प्रेरणासे प्रेरित हो वाहुबलके मदसे उन्मत्त रहनेवाला कंस शोणितपुर गया ॥ १-७ ॥

कंसकी युद्धविषयक प्रतिशाको मुनकर महाबली वाणासुर अत्यन्त कुपित हो उठा । उसने मेघके समान गम्भीर गर्जना करके पृथ्वीपर बड़े जोरसे छात मारी । उसका वह पैर छुटनेतक धरतीमें बँस गया और पातालके निकटतक जा पहुँचा । ऐसा करके वाणने कंससे कहा—'पहले मेरे इस पैरको तो उठाओ !' उसकी यह बात मुनकर मदोन्मत्त कंसने दोनों हाथोंसे उसके पैरको उत्पाङ्किर ऊपर कर दिया । उसका पराक्रम बड़ा प्रचण्ड था । जैसे हाथी गड़े हुए कठोर दण्ड या संभेको अनायास ही उत्पाङ्क लेता है, उसी प्रकार कंसने वाणासुरके पैरको लीचकर ऊपर कर दिया । उसके पैरके उत्पाङ्क ही पृथ्वीतलके लोक और सातों पाताल हिल उठे, अनेक पर्वत धराशायी हो गये और सुदृढ़ दिग्गज भी अपने स्थानसे विचलित हो उठे । अब वाणासुरको युद्धके लिये उद्यत हुआ देख भगवान् शंकर स्वयं वर्हा आ गये और सबको समझा-मुक्ताकर युद्धसे रोक दिया । फिर उन्होंने बलिनन्दन वाणसे कहा—'देव्यराज ! भगवान् श्रीकृष्णको छोड़कर भूतलपर दूसरा कोई ऐसा वीर नहीं है, जो युद्धमें इसे जीत सकेगा । परशुरामजीने इसे ऐसा ही वर दिया है और अपना वैष्णव भनुष भी अर्पित कर दिया है' ॥ ८-१३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! यो कहकर साक्षात् महेश्वर शिवने कंस और वाणासुरमें तत्काल बड़ी शान्तिके साथ मनोरम मौहार्द स्वापित कर दिया ।

तदनन्तर पश्चिम दिशामें महाकुर वस्त्रात नाम सुनकर कंस बहाँ गया । उस देव्यराजने बछड़ेका रूप धारण करके कंसके साथ युद्ध लेइ दिया । कंसने उस बछड़ेकी पूँछ पकड़ ली और उसे पृथ्वीपर दे मारा । इसके बाद उसके निवासभूत पर्वतको अपने अधिकारमें करके कंगने स्तेच्छ-देवांपर धावा किया । मेरे मुखसे महाबली दैत्य कंसके आक्रमणका समाचार सुनकर कालयवन उसका सामना करनेके लिये निकला । उसकी दाढ़ी-मूँछका रंग लाल था और उसने हाथमें गदा ले रखकी थी । कंसने भी लाल भार लोहेकी बनी हुई अपनी गदा लेकर यकनराजपर चलायी और टिंडिके समान गर्जना की । उस समय कंस और कालयवनमें बड़ा भयानक गदा-युद्ध हुआ । दोनोंकी गदा-ब्रांसे आगकी चिनगारियाँ बरस रही थीं । वे दोनों गदाएँ परस्पर टकराकर चूर-चूर हो गयीं । तब कंसने कालयवनको पकड़कर उसे धरती-पर हे मारा और पुनः उठाकर उसे पटक दिया । इस तरह उसने उस यवनको मूतक-तुल्य बना दिया । यह देख कालयवनकी सेना कंसपर बाणोंकी वर्षा करने लगी । तब बलवान् देव्यराज कंसने गदाकी मारसे उस सेनाका कच्चमर निकाल दिया । गहुतसे हाथियों, घोड़ों, उत्तम रथों और बीरोंको धराशायी करके गदा-युद्ध करनेवाला वीर कंस समराङ्गमें मेघके समान गर्जना करने लगा ॥ १४-२२ ॥

फिर तो सारे म्लेच्छ सैनिक रणभूमि छोड़कर भाग निकले । कंस बड़ा नीतिश था; उसने भयभीत होकर भागते हुए म्लेच्छोंपर आघात नहीं किया । कंसके पैर ऊँचे थे, दोनों शुटने बड़े थे, जाँबंग खंभोंके समान जान पड़ती थीं । उसका कटिप्रदेश पतला, बक्षःस्थल किवाढ़ोंके समान चौड़ा और कंचे मोटे थे । उसका शरीर हृष्ट-पृष्ठ, कद ऊँचा और भुजाएँ विशाल थीं । नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान प्रतीत होते थे । सिरके बाल बड़े-बड़े थे, देहकी कान्ति अरुण थी । उसके अङ्गोंपर काले रंगका बख्त सुदोभित था । मस्तकपर किरीट, कानोंमें कुण्डल, गलेमें हार और बक्षपर कमलोंकी माला शोभा दे रही थी । वह प्रलयकालके सूर्यकी भाँति तेजस्वी जान पड़ता था । लड्ग, तूणीर, कबच और मुद्गर आदिसे सम्बन्ध धनुर्धर एवं मदमत्त वीर कंस देवताओंको जीतनेके लिये अमरावती पुरीपर जा चढ़ा । चाणूर, मुहिक, अरिष्ठ, शल, तोशल, केशी, प्रलम्ब, वक

दिविद, तृणावतं, अवासुर, कूट, भौम, बाण, शम्वर, व्योम, वेनुक और वस्त्र नामक असुरोंके साथ कंसने अमरावती पुरीपर चारों ओरसे वेरा डाल दिया ॥ २३-२८ ॥

कंस आदि असुरोंको आया देख, त्रिभुवन सम्भाट देवराज इन्द्र समस्त देवताओंको साथ ले रोषपूर्वक युद्धके लिये निकले । उन दोनों दलोंमें भयंकर एवं रोमाञ्चकारी त्रुमुख युद्ध होने लगा । दिव्य शशोंके समूह तथा चमकीले तीखे बाण छूटने लगे । इस प्रकार शशोंकी बौलारसे वहाँ अन्धकार-सा छा गया । उस समय रथपर बैठे हुए सुरेश्वर इन्द्रने कंसपर विद्वृत्के समान कान्तिमान् सौ भ्रातोंवाला बग्र छोड़ा । किंतु उस महान् असुरने इन्द्रके बग्रपर मुद्गरसे प्रहार किया । इससे बग्रकी धारें टूट गयीं और वह युद्ध-भूमिमें गिर पड़ा । तब वशधारीने बग्र छोड़कर बड़े गोपके साथ तलवार हाथमें ली और भयंकर सिंहनाद करके तल्काल कंसके मस्तकपर प्रहार किया । परंतु जैसे हाथीको फूलकी मालसे मारा जाय और उसको कुछ पता न ल्यो, उसी प्रकार खड़गसे आहत होनेपर भी कंसके विरपर खरोचतक नहीं आयी । उस दैत्यराजेने अष्टधातुमयी मजबूत गदा, जो लाल भार लोहेके बराबर भारी थी, लेकर इन्द्रपर चलायी । उस गदाको अपने ऊपर आती देख नमुचिस्दून वीर देवेन्द्रने तल्काल हाथसे पकड़ लिया और उसे उग दैत्यपर ही दे मारा । इन्द्रके रथका संचालन मातलि कर रहे थे और देवेन्द्र शत्रुदलका दलन करते हुए युद्धभूमिमें बिचर रहे थे । कंसने परिष लेकर असुरोंही इन्द्रके कंधेपर प्रहार किया । उस प्रहारसे देवराज क्षणभर के लिये मूर्झित हो गये ॥ २९-३७ ॥

उस समस्त समस्त महदगणोंने गीधके पंखवाले चमकीले बाणसमूहोंसे कंसको उसी तरह ढक दिया, जैसे वर्षाकालके सूर्यको मेघमालाएँ आञ्चाहित कर देती हैं । यह देख एक हजार सुजाओंसे युक्त बलवान् वीर बाणासुरने बारंबार धनुषकी टंकार करते हुए अपने बाण समूहोंसे उन महदगणोंको लायल करना आरम्भ किया । बाणासुरपर भी बहु, बहु, आदित्य तथा अन्यान्य देवता एवं ऋषि चारों ओरसे टूट पड़े और नाना प्रकारके शब्दोंका उत्पर प्रहार करने लगे । इनमें ही प्रलम्ब आदि असुरोंके साथ गर्जना करता हुआ भौमासुर भा पहुँचा । उसके उस भयानक सिंहनादसे देवताओंग मूर्झित होकर भूमिपर गिर पड़े । उस समय देवराज इन्द्र शीघ्र ही उठ गये

इस प्रकार श्रीगर्भ-संहितामें गोदोकभास्माके अन्तर्गत नारद-बृहस्पति-संवादमें कंसकी दिविदय नामक सततवाँ असाध पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

और लाल आँखें किये ऐरावत हाथीपर आसू थे ही उस ॥ मदमत्त गजराजको कंसकी ओर उसे कुचल डालनेके लिये प्रेरित करने लगे । अकुशकी मारसे कुपित हुआ वह गजराज शत्रुओंको अपने पैरोंसे मार-मारकर युद्धभूमिमें गिराने लगा । उसके गलेमें घंटे बँधे हुए थे, वह किंचिणीजाल तथा रत्नमय कम्बलसे मणित था । गोरोचन, सिन्दूर और कल्परीसे उसके मुखमण्डलपर पत्ररचना की गयी थी । कंसने निकट आनेपर उस महान् गजराजके ऊपर मुट्ठ मुक्केसे प्रहार किया । साथ ही उसने समराङ्गणमें देवराज इन्द्रपर भी दूसरे मुक्केका प्रहार किया । उसके मुक्केकी मार खाकर इन्द्र ऐरावतसे दूर जा गिरे । ऐरावत भी घरतोपर हुटने टेककर ब्याकुल हो गया । फिर तुरंत ही उठकर गजराजने दैत्यराज कंसपर दाँतोंसे आघात किया और उसे सूँझपर उठाकर कई योजन दूर फेंक दिया । कंसका शरीर बग्रके समान सुदृढ़ था । वह उतनी दूरसे गिरनेपर भी धायर्ल नहीं हुआ । उसके मनमें किंचित् व्याकुलता हुई; किंतु गोपसे ओठ फड़फड़ता अत्यन्त गोपमें भरकर वह पुनः युद्धभूमिमें आ पहुँचा ॥ ३८-४९ ॥

कंसने नागराज ऐरावतको पकड़कर नमराङ्गणमें धराशायी कर दिया और उसकी सुँझ मरोड़कर उसके दाँतोंको चूर-चूर कर दिया । अब तो ऐरावत हाथी उस समराङ्गणसे तल्काल भाग चला । वह बड़े-बड़े बीरोंको गिराता हुआ देवताओंकी राजधानी अमरावती पुरीमें जा पुसा । तदनन्तर दैत्यराज कंसने वैष्णव धनुषपर प्रत्यक्षा चढ़ाकर जाण-समूहों तथा धनुषकी टंकारोंसे देवताओंको खदेहना आरम्भ किया । कंसकी मार पड़नेसे देवताओंके होश उड़ गये और वे चारों दिशाओंमें भाग निकले । कुछ देवताओंने रणभूमिमें अपनी शिखाएँ खोल दीं और 'हम ढरे हुए हैं (हमें न मारो)'—इस प्रकार कहने लगे । कुछ लोग हाथ जोड़कर अत्यन्त दीनकी भौति लड़े हो गये और अम्ब-शस्त्र नीचे डालकर उन्होंने अपने अधोवज्रकी लंग भी खोल डाली । कुछ लोग अत्यन्त व्याकुल हो युद्धस्थलमें राजा कंसके समुख लड़े होनेतक का साहस न कर सके । इस प्रकार देवताओंको भगा हुआ देख वहाँके छत्रपुक्त सिंहासनको साथ लेकर नरेश्वर कंस समस्त दैत्योंके साथ अपनी राजधानी मथुराको लौट आया ॥ ५०-५५ ॥

आठवाँ अध्याय

सुचन्द्र और कलावतीके पूर्व-पुण्यकाल वर्णन, उन दोनोंका वृषभानु तथा कीर्तिके रूपमें अवतारण

श्रीगर्गजी कहते हैं—शौनक ! राजा बहुलाश्वका हृदय भक्तिभावसे परिपूर्ण था । हरिभक्तिमें उनकी अविचल निष्ठा थी । उन्होंने इस प्रसङ्गमें सुनकर शानियोंमें श्रेष्ठ एवं महाविलक्षण स्वभाववाले देवर्षि नारदजीको प्रणाम किया और पुनः पूछा ॥ १ ॥

राजा बहुलाश्वने कहा—भगवन् ! आपने अपने आनन्दप्रद, नित्य बृद्धिशील, निमंल यशसे मेरे कुलको पृथ्वीपर अत्यन्त विशद (उल्लब्ध) बना दिया; क्योंकि श्रीकृष्णभक्तोंके क्षणभरके सङ्गसे साधागण जन भी सत्युरुष—महात्मा बन जाता है । इस कियायमें अधिक कहनेसे क्या लाभ । देवर्षि ! श्रीराधाके साथ भूतलपर अवतीर्ण हुए साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् ने ब्रजमें कौन-सी लीलाएँ की—यह मुझे कृपाश्रवक बताइये । देवर्षि ! श्रृंगीश्वर ! इस कथामृत-द्वारा आप विताप-हुःखसे मेरी रक्षा कीजिये ॥ २-३ ॥

श्रीनारदजी कहने हैं—राजन् ! वह कुल धन्य है, जिसे परात्पर श्रीकृष्णभक्त राजा निमिने समस्त सहृदयोंसे परिपूर्ण बना दिया है और जिसमें तुम-जैसे योगयुक्त एवं भव-बन्धनसे मुक्त पुरुषने जन्म लिया है । तुम्हारे इस कुलके लिये कुछ भी विचित्र नहीं है । अब तुम उन परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्णकी परम मङ्गलमयी पवित्र लीलाका अवण करो । वे भगवान् केवल कंसका मंहार करनेके लिये ही नहीं, अपितु भूतलके सतजनोंकी रक्षाके लिये अवतीर्ण हुए थे । उन्होंने अपनी तेजोमयी पराशक्ति श्रीराधाका वृषभानुकी पत्नी कीर्ति-रानीके गर्भमें प्रवेश कराया । वे श्रीराधा कलिन्दजा-कूलवतीं निकुञ्जप्रदेशके एक सुन्दर मनिदरमें अवतीर्ण हुईं । उस समय भाद्रपदका महीना था । शुक्रपक्षकी अष्टमी तिथि एवं सोमका दिन था । मध्याह्नका समय था और आकाशमें बादल छाये हुए थे । देवगण नन्दनवनके भव्य प्रसून लेकर भवनपर बरसा रहे थे । उस समय श्रीराधिकाजीके अवतार धारण करनेसे नदियोंका जल स्वच्छ हो गया । सम्रूप दिशाएँ प्रसङ्ग—निमंल हो उठीं । कमलोंकी सुगन्धसे व्यास शीतल वायु मन्दगतिसे प्रवाहित हो रही थी । शततूर्षीमाके शत-शत चन्द्रमाओंसे भी अधिक अमिराम कम्बको देखकर गोपी कीर्तिदा आनन्दमें

निमन्न हो गयीं । उन्होंने मङ्गलकृत्य कराकर पुश्चिके कल्याणकी कामनासे आनन्ददायिनी दो लाल उत्तम गौरें ब्राह्मणोंको दान कीं । जिनका दर्शन यहै-यहै देवताओंके लिये भी दुर्लभ है, तत्त्वज्ञ मनुष्य तैकड़ों जन्मोतक तप करनेपर भी जिनकी शाँकी नहीं पाते, वे ही श्रीराधिकाजी वृषभानुके यहाँ स्थानरूपमें प्रकट हुईं और गोप-न्नक्षत्राएँ जब उनका लालन-गालन करने लगीं, तब लंबे साधारण लोग उनका दर्शन करने लगे । सुवर्णजटित एवं सुन्दर रस्तेसे लचित, चन्दननिर्मित तथा रत्नकिरण-मणिष्ठ पालनेमें सखीजनोंद्वारा नित्य छुलायी जाती हुई श्रीराधा प्रतिदिन शुक्रपक्षके चन्द्रमाकी कलाकी भाँति बढ़ने लगीं । श्रीराधा क्या है—रासकी रङ्गस्थलीको प्रकाशित करनेवाली चन्द्रिका, वृषभानु-मनिदरकी दीपावली, गोलोक-चूडामणि श्रीकृष्णके कष्टकी हारावली । मैं उन्हीं पराशक्तिका ध्यान करता हुआ भूतलपर विचरता रहता हूँ ॥ ४-१२ ॥

राजा बहुलाश्वने पूछा—मुने ! वृषभानुजीका सौभाग्य अद्भुत है, अवश्यनीय है; क्योंकि उनके यहाँ श्रीराधिकाजी स्वयं पुत्रस्त्रपमें अवतोर्ण हुईं । कलावती और सुचन्द्रने पूर्व-जन्ममें कौन-सा पुण्यकर्म किया था, जिसके फलस्वरूप इन्हें यह सौभाग्य प्राप्त हुआ ? ॥ १३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! राजराजेश्वर महाभाग सुचन्द्र राजा वृग्के पुत्र थे । परम सुन्दर सुचन्द्र चक्रवतीं नरेश थे । उन्हें साक्षात् भगवान्का अंश माना जाता है । पूर्वकालमें (अर्यमा-प्रश्नति) पितरोंके यहाँ तीन मानसी कन्याएँ उत्पन्न हुईं थीं । वे सभी परम सुन्दरी थीं । उनके नाम थे—कलावती, रस्तमाला और मेनका । पितरोंने स्वेच्छासे ही कलावतीका हाथ श्रीहरिके अंशभूत बृद्धिमान् सुचन्द्रके हाथमें दे दिया । रस्तमालाको विदेशराजके हाथमें और मेनकाको हिमालयके हाथमें अर्पित कर दिया । सभी ही विभिन्नरूपक देवजीकी बस्तुएँ भी दीं । महामते ! रस्तमालासे सीताजी और मेनकाके गर्भसे पार्वतीजी प्रकट हुईं । इन दोनों देवियोंकी कथाएँ पुराणोंमें प्राप्तिहैं । तदनन्तर कलावतीको साथ लेकर महाभाग सुचन्द्र गोमतीके सदपर जैमिष नामक बनमें गये । उन्होंने श्रावजीकी प्रसन्नताके लिये तपस्था आरम्भ

की । वह तथ देवताओं के कालमानसे बारह वर्षोंतक चलता रहा । तदनन्तर ब्रह्माजी वहाँ पधारे और बोले—‘वर माँगो ।’ राजा के शरीरपर दीमके चढ़ गयी थीं । ब्रह्माजी सुनकर वे दिव्य रूप भारण करके बाँधीसे बाहर निकले । उन्होंने स्वर्णग्रथम ब्रह्माजीको प्रणाम किया और कहा—‘मुझे दिव्य परात्पर मोक्ष प्राप्त हो ।’ राजा की बात सुनकर साथी रानी कलावतीका मन दुखी हो गया । अतः उन्होंने ब्रह्माजीसे कहा—‘पितामह ! पति ही नारियोंके लिये स्वर्णकृष्ण देवता माना गया है । यदि ये मेरे पतिदेवता मुक्ति प्राप्त कर रहे हैं तो मेरी क्या गति होगी ? इनके बिना मैं जीवित नहीं रहूँगी । यदि आप हन्ते मोक्ष देंगे तो मैं पतिसाहन्यमें विक्षेप पद्मनेके कारण विहृल हो आपको शाप दे दूँगी ॥१४-२४॥

ब्रह्माजीने कहा—‘देवि । मैं तुम्हारे शापके भयसे अवश्य छूटता हूँ; किंतु मेरा दिया हुआ वर कभी विफल नहीं हो रहता । इसलिये तुम अपने प्राणपतिके साथ स्वर्णमें जाओ । वहाँ स्वर्णसुख मोगकर कालान्तरमें फिर पृथ्वीपर जन्म लोगी । द्वापरके अन्तमें भारतवर्षमें, गঙ्गा और यमुनाके बीच, तुम्हारा जन्म होगा । तुम दोनोंसे दृग्गी ॥१४-२४॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकस्थष्टके अन्तर्गत नारद-बहुलाश-सवादमें श्रीराधिकाके पूर्वजन्मका वर्णन नामक अठड्डों अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवाँ अध्याय

गर्जीकी आङ्गासे देवकका वसुदेवजीके साथ देवकीका विवाह करना; विदाईके समय आकाशवाणी सुनकर कंसका देवकीको मारनेके लिये उद्यत होना और वसुदेवजीकी शर्तपर उसे जीवित छोड़ना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! एक समयकी बाल है, श्रेष्ठ मधुरापुरीके परम सुन्दर राजभवनमें गर्जी पधारे । वे ज्यौतिष-शास्त्रके बड़े प्रामाणिक विद्वान् थे । सम्पूर्ण श्रेष्ठ यादवोंने शूरदेवनकी इच्छासे उन्हें अपने पुरोहितके पदपर प्रसिद्धि किया था । मधुराके उस राजभवनमें खेनेके किंवाह लो थे, [उन किंवाहोंमें हीरे भी जड़े गये थे । राजाद्वारपर बड़े-बड़े गजराज छूटते थे । उनके मस्तकपर छुंड-के-छुंड भौंरे थाते और उन शशियोंके बड़े-बड़े कल्पोंसे आहत होकर गुड़ा-रख छूटे हुए उन जाते थे । इस प्रकार वह राजद्वार उन भ्रमरोंके नामसे कोलाइल्पूर्ण

जब परिशुरांतम भगवान्‌की प्रिया साक्षात् श्रीराधिकाजी पुत्री-स्पर्में प्रकट होंगी, तथ तुम दोनों साथ ही मुक्त हो जाओगे ॥ २३-२४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—इस प्रकार ब्रह्माजीके दिव्य पंच अमोघ वरसे कलावती और सुचन्द्र—दोनोंकी भूतल्यपर उत्पत्ति हुई । वे ही ‘नीरिं’ तथा ‘श्रीवृषभानु’ हुए हैं । कलावती कान्यकुञ्ज देश (कल्नौज) में राजा भलन्दनके यशकुञ्जसे प्रकट हुईं । उस दिव्य कन्यानों अपने पूर्वजन्मकी साथी बातें सरण थीं । सुरभानुके घर सुचन्द्रका जन्म हुआ । उस समय वे ‘श्रीवृषभानु’ नामसे विलयात हुए । उन्हें भी पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रही । वे गोपोंमें श्रेष्ठ होनेके साथ ही दूसरे कामदेवके समान परम सुन्दर थे । परम बुद्धिमान् नन्दराजजीने इन दोनोंका विवाह-सम्बन्ध जोड़ा था । उन दोनोंको पूर्वजन्मकी स्मृति थी ही, अतः वे एक-दूसरेको चाहते भी थे और दोनोंकी इच्छासे ही यह सम्बन्ध हुआ । जो मनुष्य वृषभानु और कलावतीके इस उपाख्यानको अवण करता है, वह सभूपां पापोंसे छूट जाता है और अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सायुज्यको प्राप्त कर लेता है ॥२५-३०॥

हो रहा था । गजराजोंके गण्डस्थलसे निर्झरकी भाँति झरते हुए मदकी धारासे वह स्थान समाप्त था । अनेक मण्डप समूह उस राजमन्दिरकी शोभा बढ़ाते थे । बड़े-बड़े उद्भट बीर कवच, चन्द्र, ढाल और तलवार भारण किये राजभवनकी सुशक्तिमें तत्पर थे । रथ, हाथी, बोडे और पैदल—इस चतुरझिणी सेना तथा माण्डलिकोंकी मण्डली-दारा भी वह राजमन्दिर सुरक्षित था ॥ १-३ ॥

मुनिवर गणने उस राजभवनमें प्रवेश करके इन्हेंके सहश उत्तम और कंचे सिंहस्त्रनपर विराजमान राजा उग्रेनको देखा । अकूर, देवक तथा कंस उनकी सेवाये

खड़े थे और राजा छपरांदोबैसे सुशोभित थे तथा उनपर बैंबर ढुलाये जा रहे थे। मुनिको उपस्थित देख राजा उप्रसेन सहसा लिहासनसे उठकर खड़े हो गये। उन्होंने अन्यान्य यादोंके साथ उन्हें प्रणाम किया और सुभद्रपीठपर घिठाकर उनकी सम्मक् प्रकारसे पूजा की। फिर स्तुति और परिक्षमा करके वे उनके सामने विनीतभावसे खड़े हो गये। गर्ग मुनिने राजाको आशीर्वाद देकर समस्त राजपरिवारका कुशल-मङ्गल पूछा। फिर उन महामना महर्षिने नीतिशेत्ता शुद्धभेष्ट देवकसे कहा ॥ ४-६ ॥

श्रीगर्गजी बोले—राजन्! मैंने बहुत दिनोंतक इच्छा-उधर ढूँढ़ा और सोचा-विचारा है। मेरी इष्टिमें बसुदेवजीको छोड़कर भूमण्डलके नरेशोंमें दूसरा कोई देवकीके योग्य वर नहीं है। इसलिये नरदेव ! बसुदेवको ही वर बनाकर उन्हें अपनी पुत्री देवकीको सौंप दो और विभिन्नक दोनोंका विवाह कर दो ॥ ७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! गर्गजीके उक्त आदेशको ही शिरोधार्य करके समस्त धर्मधारियोंमें भेष्ट श्रीदेवकने सर्गाईके निश्चयके लिये पानका बीड़ा मेज दिया और गर्गजीकी इच्छासे मङ्गलाचारका सम्पादन करके विवाहमें बसुदेव-वरको अपनी पुत्री अपित कर दी। विवाह हो जानेपर विदाईके समय बसुदेवजी घोड़ोंसे सुशोभित अस्थन्त सुन्दर रथपर सुवर्ण निर्मित एवं रकमय आभृण्णोंकी शोभामें सम्पन्न नववधू देवकराज-कन्या देवकीके साथ आरूढ़ दुए ॥ ८-९ ॥

बसुदेवके प्रति कंसका बहुत ही स्नेह और कृपामाल था। वह अपनी बहिनका अस्थन्त प्रिय करनेके लिये चतुरविणी सेनाके साथ आकर गमनोद्धत घोड़ोंकी बागडोर अपने हाथमें ले स्थयं रथ हाँकने लगा। उस समय देवकने अपनी पुत्रीके लिये उत्तम दोजके रूपमें एक इजार दाखियाँ, दस इजार इच्छी, दस लाल घोड़े, एक लाल रथ और दो लाल गौपें प्रदान कीं। उस विदाकालमें भेरी, उसम मृदङ्ग, गोमुख, बन्धुरि, बीणा, ढोल और बेणु आदि वायोंका और साथ जानेवाले यादोंका महान् कोळाहल दुआ। उस समय मङ्गलगीत गाये जा रहे थे और मङ्गलपाठ भी हो रहा था। उसी समय आकाशवाणीने कंसको सम्मोभित करके कहा—‘अरे मूर्ख कंस ! घोड़ोंकी बागडोर हाथमें लेकर जिसे रथपर बैठाये लिये जा रहा है, इसीकी आठवीं संतान अनायास ही तेरा वध कर डालेगी—नू इस बातको नहीं

जानता ।’ कंस सदा दुष्टोंका ही साथ करता था। स्वभाव-से भी वह अस्थन्त लड़ (दुष्ट) था। अब तो उसे शू नहीं गयी थी। वह निर्वय होनेके कारण वहे भवंतर कर्म कर डालता था। उन्होंने तीसी भारवाली तत्त्वात् श्राव्यमें उठा ली, बहिनके केवा पक्ष लिये और उसे मारनेका निष्पय कर लिया। उस समय बाजेबालोंने बाजे बंद कर दिये। जो आगे थे, वे चकित होकर पीछे देखने लगे। उसके मुँहपर मुर्दनी छा गयी। ऐसी स्थितिमें बहुरुद्धोंमें भेष्ट श्रीबसुदेवजीने कंससे कहा ॥ १०-१५ ॥

श्रीबसुदेवजी बोले—भोजेन्द्र ! आप इस बंधकी कीर्तिका विस्तार करनेवाले हैं। भौमासुर जरासंघ, लकासुर, बत्तासुर और बाणासुर—सभी योद्धा आपसे लड़नेके लिये युद्धभूमियमें आये; किंतु उन्होंने आपकी प्रशंसा ही की। वे ही आप तत्त्वात् से बहिनका वध करनेको कैसे उचित हो गये ? लकासुरकी बहिन पूतना आपके पास आकर लड़नेकी इच्छा करने लगी; किंतु आपने राजनीतिके अनुरूप वर्ताव करनेके कारण उसी समझकर उसके साथ युद्ध नहीं किया। उस समय शान्ति-स्थापनके लिये आपने पूतनाको बहिनके तुल्य बनाकर छोड़ दिया। फिर वह तो आपकी लाक्षात् बहिन है। किस विचारसे आप इस अनुचित फूलमें लग गये ? मशुरानदीरा ! यह कन्या यहाँ विवाहके शूभ अवसरपर आयी है। आपकी छोटी बहिन है। बालिका है। पुत्रीके समान दयनीय—दयापात्र है। यह सदा आपको सद्भावना प्रदान करती आयी है। अतः इसका वध करना आपके लिये कदापि उचित नहीं है। आपकी चित्तशुद्धि तो दीन-दुखियोंके दुःख दूर करनेमें ही सभी रहती है ॥ १६-१८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार बसुदेवजी-के समानेपर भी अस्थन्त खल और कुसङ्गी कंसने उनकी बात नहीं मानी। तब बसुदेवजी, यह भगवान्का विधान है, अथवा कालकी ऐसी ही गति है—यह समझकर मगवत-शरणापाल हो, पुनः कंससे बोले ॥ १९ ॥

श्रीबसुदेवजीने कहा—राजन् ! इस देवकीसे तो आपको कभी भय है नहीं। आकाशवाणीने जो कुछ कहा है, उसके विषयमें मेरा विचार मुनिये। मैं इसके गम्भीर उत्तम उभी पुष्प आपको दे ॥ २० ॥ क्योंकि उन्हसि आपको भय है। अतः व्यथित न होइये ॥ २० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! कंसने बसुदेवजी-

के विश्वयपूर्वक कहे गये बचनपर विचार कर लिया । अतः बसुदेवजी भी भयभीत हो देवकीके साथ अपने भवनको उनकी प्रशंसा करके वह उसी क्षण घरको चला गया । इधर पढ़ारे ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीगर्भ-संहितामें गोलोकस्थःके अन्तर्गत नारद-बहुलाश-संवादमें 'बसुदेवके विवाहका दर्जन' नामक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

कंसके अत्याचार; बलभद्रजीका अवतार तथा व्यासदेवद्वारा उनका स्वतन्त्र

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् । कंसने सोचा, बसुदेव-
जी मयभीत होकर कहीं भाग न आय—ऐसा विचार मनमें
आते हो उसने बहुत-से सैनिक भेज दिये । कंसकी आशासे
दस हजार शशधारी सैनिकोंने पहुँचकर बसुदेवजीका घर
बेर लिया । बसुदेवजीने यथासमय देवकीके गर्भसे आठ
पुत्र उत्पन्न किये, वे क्रमशः एक वर्षके बाद होते गये ।
फिर उन्होंने एक कन्याको भी जन्म दिया, जो भगवान्की
सनातनी माया थी । सर्वप्रथम जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका
नाम कीर्तिमान् था । बसुदेवजी उसे गोदमें उठाकर कंसके
पास ले गये । वे दूसरेके प्रयोजनको भी अच्छी तरहसे
समझते थे, इसलिये वह बालक उन्होंने कंसको दे दिया ।
बसुदेवजीको अपने सत्यवचनके पालनमें तत्पर देख कंसको
इया आ गयी । साधुपुष्ट दुःख सह लेते हैं, परंतु अपनी
कहीं हुई बात मिथ्या नहीं होने देते । सचाई देखकर
किसके मनमें क्षमाका भाव उदित नहीं होता ? ॥ १-४ ॥

कंसने कहा—बसुदेवजी ! यह बालक आपके साथ
ही घर लौट जाय, इससे मुझे कोई भय नहीं है । परंतु आप
दोनोंका जो आठवाँ गर्भ होगा, उसका वध में अवश्य
कहुँगा—इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् । कंसके यो कहनेपर
बसुदेवजी अपने पुत्रके साथ घर लौट आये, परंतु उस
दुरात्माके बचनको उन्होंने तनिक भी सत्य नहीं माना ।
उस समय आकाशसे उत्तरकर मैं बहाँ गया । उग्रसेन-
कुमार कंसने मुझे मस्तक छुकाकर मेरा स्वागत-सत्कार किया,
और मुझसे देवताओंका अभिप्राय पूछा । उस समय मैंने
उसे जो उत्तर दिया, वह मुझसे सुनो । मैंने कहा—नन्द
आदि गोप बसुके अवतार हैं और दृष्टमानु आदि देवताओंके ।
नरेश्वर कंस ! इस व्रजभूमिमें जो गोपियाँ हैं, उनके स्वरमें
बैदोंकी शृच्छाएँ आदि यहाँ निवास करती हैं । मधुरमें

बसुदेव आदि जो वृष्णिवंशी हैं, वे सब-के-सब मूलतः
देवता ही हैं । देवकी आदि नमूर्ण लियाँ भी निश्चय ही
देवाङ्गनार्दें हैं । सात बार गिन लेनेपर सभी अङ्ग आठ
ही हो जाते हैं । तुम्हारे शातककी संख्यामें गिना जाय तो
यह प्रथम बालक भी आठवाँ हो सकता है; क्योंकि
देवताओंकी 'बामतो गति' है ॥ ६-१० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! उससे यो
कहकर जब मैं चल आया, तब देवताओंद्वारा किये गये
दैत्यवधके लिये उद्योगपर कंसको बड़ा क्रोध हुआ । उसने
उसी क्षण यादोंको मार डालनेका विचार किया । उसने
बसुदेव और देवकीको मजबूत वेदियोंसे बॉधकर कैद कर
लिया और देवकीके उस प्रथमगर्भजनित शिशुको
शिलागृष्णपर रखकर पीस डाला । उसे अपने पूर्वजन्मकी
घटनाओंका स्मरण था, अतः भगवान् विष्णुके भयसे
तथा अपने दुष्ट स्वभावके कारण भी उसने इस भूतलपर
प्रकट हुए देवकीके प्रत्येक बालकको जन्म लेते ही मार
डाला । ऐसा करनेमें उसे तनिक भी हिचक नहीं हुई ।
यह सब देखकर यदुकुलनरेश राजा उग्रसेन उस समय
कृपित हो उठे । उन्होंने बसुदेवजीकी सहायता की और
कंसको अत्याचार करनेसे रोका । कंसके दुष्ट अभिप्रायको
प्रत्यक्ष देख महान् यादव बीर उसके विस्तृत उठ लड़े हुए ।
वे उग्रसेनके पीछे रहकर, खड़गहस्त हो उनकी रक्षा करने
लगे । उग्रसेनके अनुगामियोंको युद्धके लिये उच्चत देख कंस-
के निजी बीर सैनिक भी उनका सामना करनेके लिये
लड़े हुए । राजवंशाके मण्डपमें ही उन दोनों दलोंके
बीरोंमें परस्पर युद्ध छिड़ गया । वे सब लोग खुलकर एक
दूसरेपर लड़गांका प्रहार करने लगे । इस संघर्षमें दस हजार
मनुष्य लेत रहे । तदनन्तर कंसने गदा हाथमें कैर

पिताको सेनाको कुचलना आरम्भ किया । उत्तरकी गदासे जूँ जानेसे ही कितने ही लोगोंके मल्टक फट गये, कितनोंके पाँच कट गये, नब विदीण हो गये, बाँह कट गयीं और उनकी आशापर पानी किर गया । कोई अौंच मुँह और कोई उत्तान होकर अख-शब्द लिये क्षणमरमें धराशायी हो गये । बहुत-से चौर खून उगलते हुए मूर्छित हो कालके गालमें चले गये । वहाँ इतना रक्त प्रवाहित हुआ कि सारा सभामण्डप रंग गया ॥ १९-२० ॥

राजराजेश्वर ! इस प्रकार दुष्ट एवं मदमत्त कंगने कुपित हो, उद्भट शशुओंको धराशायी करके अपने पिताको कंद कर लिया । उन्हे राजसिंहासनसे उतारकर उस दुष्टने पाशांभ चौधा और उनके मिथोंके साथ उन्हें भी काशगारमें बंद कर दिया । मधु और शूरमेनकी सारी सम्पत्तियोंपर अधिकार करके कंस स्वयं सिंहासनपर जा बैठा और गड्यशासन करने लगा । समस्त पोडित यादव सम्बन्धोंके घर जानेके बहाने तुरंत चारों दिशाओंमें विभिन्न देवोंके भीतर जाकर रहने लगे और उचित अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे । देवकीका सातवाँ गर्भ उनके लिये हर्ष और शोक दोनोंकी दृढ़ि करनेवाला हुआ, उसमें साक्षात् अनन्तदेव अवतीर्ण हुए थे । योगमायाने देवकीके उस गर्भको स्त्रीचकर नजरें रोहिणीकी कुक्षिके भीतर पहुँचा दिया । ऐसा हो जानेपर भथुरांके लोग खेद प्रकट करते हुए कहने लगे - ‘अहो ! बेचारी देवकीका गर्भ कहाँ चला गया ? कैसे गिर गया ?’ प्रजमें उस गर्भको गये पाँच ही दिन बीते थे कि भाद्रपद शुक्ल पूषीको, स्वाती नक्षत्रमें, बुधके दिन बनुदेवगती रोहिणीके गर्भमें अनन्तदेवका प्राप्तश्य हुआ । उच्चस्थानमें स्थित पाँच श्रहोंसे घिरे हुए तुला लग्नमें, दोपहरके समय बालकका जन्म हुआ । उस जन्मवेळामें जब देवता फूल वरसा रहे थे और आदल वारिनिन्दु विलेले रहे थे, प्रकट हुए अनन्तदेवने अपनी अङ्गकान्तिसे नन्दभवनको उद्धासित कर दिया । नन्दरायजीने भी उस शिशुका जातकर्म-संस्कार करके ब्राह्मणोंको दम लाल गौण दान की । गोपोंको बुलाकर उत्तम गान विद्यामें निपुण गायकोंके संगीत-के साथ महान् मङ्गलमय उत्सवका आयोजन किया । देवल, देवरात, वसिष्ठ, बृहस्पति और मुक्त नारदके साथ आकर श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास भी वहाँ बैठे और नन्दजीके दिये हुए पात्र आदि उपहारोंसे अस्तन्त प्रसन्न हुए ॥ २१-२० ॥

नन्दरायजीने पूछा—महर्षियो ! यह सुन्दर बालक

८० सं० अ० ४

कौन है, जिसके समान दूसरा कोई बेलनेमें नहीं आता ! महामुने ! इसका जन्म पाँच ही दिनोंमें कैसे हुआ ? यह मुझे बताइये ॥ ३१ ॥

श्रीव्यासजी बोले—नन्द ! तुम्हारा अद्भुत सौभाग्य है, इस शिशुके रूपमें माक्षात् सनातन देवता शेषनाग पधारे हैं । पहले तो मधुरापुरीमें बनुदेवसे देवकीके गर्भमें इनका आविभाव हुआ । फिर भगवान् श्रीकृष्णकी इच्छाये इनका देवकीके उदरमें कल्याणभवी रोहिणीके गर्भमें आगमन हुआ है । नन्दराय ! ये योगियोंके लिये भी दुर्लभ हैं, किंतु तुम्हें इनका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ है । मैं महामुनि वेदव्यास इनके दर्शनके लिये ही यहाँ आया हूँ, अतः तुम शिशुल्पधारी हूँ परात्पर देवताका हम सबको दर्शन कराओ ॥ ३२-३४ ॥

श्रीनारदजी कहने हैं—राजन् ! तदनन्तर नन्दने विस्मित होकर शिशुल्पधारी दोषका उन्हें दर्शन कराया । पालनेमें विराजमान शेषजीका दर्शन करके सत्यवतीनन्दनने उन्हें प्रणाम किया और उनकी स्तुति की ॥ ३५ ॥

श्रीव्यासजी बोले—भगवन् ! आप देवताओंके भी अधिदेवता और कामपाल (सबका मनोरथ पूर्ण करनेवाले) हैं, आपको नमस्कार है । आप साक्षात् अनन्तदेव शेषनाग हैं, बलराम हैं; आपको मेरा प्रणाम है । आप धरणीधर, पूर्णस्वरूप, स्वयंप्रकाश, हाथमें हल धारण करनेवाले, सहस्र मस्तकोंसे युद्धोगित तथा संकरणदेव हैं, आपको नमस्कार है । रेतीरमण ! आप ही बलदेव तथा श्रीकृष्णके अप्रज हैं । हलायुध एवं प्रलभ्यासुरके नाशक हैं । पुरुषोत्तम ! आप मेरी रक्षा कीजिये । आप बल, बलभद्र तथा तालके चिह्नसे युक्त ध्वजा धारण करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है । आप नीलवस्त्रधारी, गोरवर्ण तथा रोहिणीके सुपुत्र हैं; आपको मेरा प्रणाम है । आप ही धेनुक, सुषिक, कुम्भाण्ड, रुक्मी, कूपकण, कूट तथा बल्बलके शत्रु हैं । कालिन्दीकी धाराको मोइनेवाले और हस्तिनापुरको गङ्गाकी ओर आकर्षित करनेवाले आप ही हैं । आप द्विविदके विनाशक, यादवोंके स्वामी तथा व्रजमण्डलके मण्डन (भूपण) हैं । आप कंसके भाइयोंका वध करनेवाले तथा तीर्थयात्रा करनेवाले प्रभु हैं । दुर्योधनके गुरु भी साक्षात् आप ही हैं । प्रभो ! जगत्की रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले परात्पर देवता साक्षात् अनन्त ! आपकी जय हो,

अब हो । आपका सुयदा समस्त दिग्नन्तमें व्याप्त है । आप दुरेन्द्र, मुनीन्द्र और फणीन्द्रोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं । मुसलधारी, इक्षुधर सथा बलधारा हैं; आपको नमस्कार है । जो इस जगत्में सदा ही इस स्वावनका पाठ करेगा, वह श्रीहरिके परमपदको प्राप्त होगा । संसारमें उसे शत्रुओंका संहार करनेवाला सम्पूर्ण बल प्राप्त होगा । उसकी सदा जय होगी

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकस्थःके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाभ्य-संवादमें बलभद्रजीके जन्मका वर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

भगवानका वसुदेव-देवकीमें आवेश; देवताओंद्वारा उनका स्ववन; आविर्भाविकाल; अवतार-विग्रहकी झाँकी; वसुदेव-देवकीकृत भगवत्-स्ववन; भगवान्-द्वारा उनके पूर्वजन्मके वृत्तान्तवर्णनपूर्वक अपनेको नन्दभवनमें पहुँचानेका आदेश; कंसद्वारा नन्दकन्या योगमायासे कृष्णके प्राकद्वयकी बात जानकर पथात्तापपूर्वक वसुदेव-देवकीको बृन्धनमुक्त करना, क्षमा माँगना और दैत्योंको बाल-वधका आदेश देना

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! तदनन्तर परात्पर एवं परिपूर्णतम माक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण पहले वसुदेवजी-के मनमें आविष्ट हुए । भगवानका आवेश होते ही महामना वसुदेव सूर्य, चन्द्रमा और अग्निके समान महान् तेजस उद्भासित हो उठे, मानो उनके रूपमें दूसरे यशनाराश्रण ही प्रकट हो गये हों । फिर सबको अभय देनेवाले श्रीकृष्ण देवी देवकीके गर्भमें आविष्ट हुए । इससे उस काराग्रहमें देवकी उसी तरह दिव्य दीपिसे

और वह प्रचुर धनका स्वामी होगा* ॥ ३६-४४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! पराशरनन्दन विशाल-तुद्धि बादराश्रण मुनि सत्यवतीकुमार श्रीकृष्ण-द्वैपायन वेदव्याप्त उन मुनियोंके साथ बलशमजीको सौ बार प्रणाम और परिक्रमा करके सरस्वती नदीके तटपर चले गये ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकस्थःके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाभ्य-संवादमें बलभद्रजीके जन्मका

वर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

—४५—

दमक उर्टी, जैसे धनमालामें चपला चमक उठती है । देवकीके उस तेजस्मी रूपको देखकर कंस मन-ही-मन भयसे ज्याकुल होकर बोला—‘यह मेरा प्राणहन्ता आ गया; क्योंकि इसके पहले यह ऐसी तेजस्विनी नहीं थी । इस शिशुको जन्म लेते ही मै अवश्य मार डालूँगा ।’ यो कहन्तर वह भयसे चिह्नित हो उस बालकके जन्म-सी प्रतीक्षा करने लगा । भयके कारण अपने पूर्वशत्रु भगवान् विष्णुका चिन्तन करते हुए वह सर्वत्र उन्हींको देखने लगा । अहो !

* श्रीव्यास उचाच—

देवाधिदेव	भगवन्	कामगाल	नमोऽस्तु	ते । नमोऽनन्नाथ	शेषाय	साक्षाद्रामाय	ते नमः ॥
धराधराय	पूर्णाय	स्वयम्भने	सारपाणये	। साहस्रित्यसे	नित्यं	नमः	संकरणाय ते ॥
रेवतीरमण	त्वं	वै	बलदेवोऽच्युनाभ्यः	। हलायुधः	प्रलभ्वः	पाहि	मा पुरुषोत्तम ॥
बलाय	बलभद्राय	तालाङ्गाय	न-रो	नमः । नालाभराय	गौराय	रौहिणीयाय	ते नमः ॥
भंतुकारिमुष्टिकारिः		कुम्भाण्डारिस्त्वेव	हि	। नवम्यरिः	कृपकणीरिः	कूटारिर्बलवलन्तकः ॥	
कालिन्दीमेदनोऽसि	त्वं	हस्तिनापुरकर्षकः	। दिविदारिर्यादेवन्द्रो			व्रजमण्डलमण्डनः ॥	
कंसभ्रातुर्महन्तासि	नीर्थयात्राकरः	प्रभुः	। दुर्योधनशुरः	साक्षात्	पाहि	प्रभो जगत् ॥	
जय	जयाच्युत	देव	परात्पर	स्वयमनन्न	दिग्नतगतश्चतु		
	सुरमुनीन्द्रफणीन्द्रवराय		ने	मुसल्लिने	बलिने	हलिने	नमः ॥
	इह	पठेस्ततं	स्ववनं	तु यः	स तु इरे:	परमं	पदमावजेत् ।
	जगनि	सर्वबलं	त्वरिमर्दनं	भवनि	तस्य	जयः	स्ववनं धनम् ॥

(गर्ग०, गोलोक० १० । ३६-४४)

दद्वतापूर्वक वैर बैध जानेसे भगवान् कृष्णका भी प्रलयक्षकी भोति दर्शन होने लगता है। इसलिये असुर श्रीकृष्णकी प्राप्तिके उद्देश्यसे ही उनके साथ वैर करते हैं। जब भगवान् गभमें आविष्ट हुए, तब ब्रह्मादि देवता तथा अस्मदादि (नारद-प्रभुति) मुनीश्वर वसुदेवके गृहके ऊपर आकाशमें गिरत हो, भगवान्को प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे ॥ १-७ ॥

देवता बोले—जाग्रत्, स्वप्न आदि अवस्थाओंमें प्रतीत होनेवाले विश्वके जो एयमात्र हेतु होते हुए भी अहेतु हैं, जिनके गुणोंका आश्रय लेकर ही ये प्राणिसमुदाय सब और विचरते हैं तथा जैसे अग्रिमं निकलकर सब और फैल हुए विस्फुलिङ्ग (चिनगारियाँ) पुनः उसमें प्रवेश नहीं करते, उसी प्रकार महत्त्व, इन्द्रियवर्ग तथा उनके अधिष्ठाता देव-समुदाय जिनसे प्रकट हो पुनः उनमें प्रवेश नहीं पाते, उन परमात्मा आप भगवान् श्रीकृष्णको हमारा सादर नमस्कार है। बलवानोंमें भी सबसे अधिक बलिष्ठ यह काल भी जिनपर शासन करनेमें समर्थ नहीं है, माया भी जिनपर कोई प्रभाव नहीं ढाल सकती तथा नित्य-शब्द (वेद) जिनको अपना विषय नहीं बना पाता, उन परम अमृत, प्रशान्त, शुद्ध, परामर्प पूर्ण ब्रह्मस्वरूप आप भगवान्की हम शरणमें आये हैं। जिन परमेश्वरके अंशावतार, अंशांशावतार, कलावतार, आवेशावतार तथा पूर्णावतारसहित विभिन्न अवतारोंद्वारा इस विश्वके सुष्ठि-पालन आदि कार्य सम्पादित होते हैं, उन्हीं पूर्णसे भी परे परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णको हम प्रणाम करते हैं। प्रभो ! अतीत, वर्तमान और अनागत (भविष्य) मन्वन्तरों, युगों तथा कल्पोंमें आप अपने अंश और कलाद्वारा अवतार-विग्रह धारण करते हैं। किंतु आज ही वह सौभाग्यपूर्ण अवसर आया है, जब कि आप अपने परिपूर्णतम धाम (तेजःपुजा) का यहाँ विस्तार कर रहे हैं। अब इस परिपूर्णतम अवतारद्वारा भूतलपर धर्मकी स्थापना करके आप लोकमें मङ्गल (कल्याण) का प्रसार करेंगे। [आनन्दकंद ! देवकीनन्दन ! आपकी जो चरणरज विशुद्ध अन्तःकरणवाले योगियोंके लिये भी दुर्लभ और अगम्य है, वही उन बड़भागी भक्तोंके लिये परम सुलभ है, जो अपने निर्मल हृदयमें भक्तियोग धारण करके, सदा ग्रीतिरसमें निमग्न हो, द्रष्टव्य-चित्त रहते हैं। विशुद्धरूपमें मन्द-मन्द विचरनेवाले आपके चरणारबिन्दोंके

मकरन्द एवं परागको हम सानुराग सिरपर धारण करें, यही हमारी आन्तरिक अभिलाषा है। आप पहलेसे ही परम कमनीय कलेशरधारी हैं और यहाँ इस अवतारमें भी उसी कमनीय रूपसे आप सुशोभित होंगे। आपका रूप कोटिशत कामदेवोंको भी मोहित करनेवाला और परम अद्भुत है। आप गोलेकधाममें धारित दिव्य दीसि-राशिको यहाँ भी धारण करेंगे। सर्वोक्तुह धर्मजनके धारयिता आप श्रीराधावल्लभको हम प्रणाम करते हैं* ॥ ८-१३ ॥

उस समय सुनियोसहित ब्रह्मा आदि सब देवता श्रीहरिको नमस्कार करके उनकी महिमाका गान तथा स्वभावकी प्रशंसा करते हुए प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने धामको चले गये। मिथिला-सम्माट् बहुलाक्ष ! तदनन्तर जब श्रीहरिके प्राकृत्यका समय आया, आकाश स्वच्छ हो गया।

* यज्ञागराणिषु अवेतु परं श्वेतु-

श्वेतुः स्विदस्य विचरन्ति गुणव्येण ।

नेतद् विशन्ति महदिव्यदेवतसंबा-

स्तस्मै नमोऽग्निमित्व विशुद्धविस्फुलिङ्गः ॥

नवेशितुं प्रभुर्यं गङ्गां वलीयाश्

भाया न शब्द उत नो विषयी करोति ।

तद्रह्मा पूर्णमसृतं परमं प्रशान्तं

शुद्धं परात्परतं शरणं गताः सः ॥

अंशाशक्तिशक्तिलघुवतार बृद्धे-

रावेशपूर्णसहितैश्च परस्य यस्य ।

सर्गाद्यः किं भवन्ति तमेव कृष्णं

पूर्णात्परं तु परिपूर्णतमं नताः सः ॥

मन्वन्तरेषु च युगेषु गतागतेषु

कर्त्त्येषु चाशक्तिया स्वपुर्विभवि ।

अवैद धाम परिपूर्णतमं तनोषि

धर्मं विशाव शुद्धि मङ्गलमात्मोषि ॥

यदुर्कमं विशदयोगिभिरप्यगम्य

गम्य द्रवदभिरमलाश्वयसक्तियोगैः ।

आनन्दकंद चरतस्तव मन्द्यान-

पादारविश्वभकरन्दरजो दधामः ॥

पूर्वं तथात्र कमनीयविष्टुप्यं त्वा

कंदपंकोटिशतमोहनमद्भुनं च ।

गोलेकधामविषणुनिमादधानं

राधापनि धरमधुर्येषनं दधानम् ॥

(गर्ग०, गोलोक० ११ । ८-१३)

दसों दिशाएँ निर्मल हो गयी । तारे अत्यन्त उद्दीप हो उठे । भूमण्डलमें प्रसन्नता छा गयी । नदी, नद, सरोवर और समुद्रके जल सच्छ हो गये । सब ओर सहस्रदल तथा शतदल कमल खिल उठे । बायुके स्वर्णसे उनके सुगन्धयुक्त पराग सब दिशाओंमें फैलने लगे । उन कमलोंपर भ्रमर गुंजार करने लगे । शीतल, मन्द, सुगन्ध बायु बहने लगी । जनपद और ग्राम सुख-सुविधासे सम्पन्न हो गये । बड़े-बड़े नगर तो मङ्गलके धाम बन गये । देवता, ब्राह्मण, पर्वत, कृष्ण और गौँ—सभी सुख-सामर्थ्यसे परिपूर्ण हो गये । देवताओंकी दुन्हुभियाँ बज उठीं । साथ ही जय-जयकारकी ध्वनि सब और व्यास हो गयी । महाराज ! जहाँ-तहाँ सब जगह सबका परम मङ्गल हो गया । गायन-कलमें निषुण विद्याधर, गन्धर्व, सिंह, किंनर तथा चारण गीत गाने लगे । देवतालोग सोन पढ़कर उन परम पुरुषका स्वबन करने लगे । देवलोकमें गन्धर्व तथा विद्याधरियाँ आनन्दमन्न होकर नाचने लगीं । मुख्य-मुख्य देवता परिजात, मन्दार तथा माल्लीके मनोरम फूल बरसाने लगे और मेष गर्जना करते हुए जलकी वृष्टि करने लगे । भ्रातृपद मास, कृष्णपक्ष, रोहिणी-नक्षत्र, हर्षणयोग तथा वृष लग्नमें अष्टमी तिथिको आधी रातके समय चन्द्रोदय-कालमें, जब कि जगत्में अनधकार छा रहा था, बसुदेव-मन्दिरमें देवकीके गर्भसे साक्षात् श्रीहरि प्रकट हुए—ठीक उसी तरह, जैसे अरण-काष्ठसे अनिका आविर्भाव होता है ॥ १४-२४ ॥

कण्ठमें प्रकाशमान सच्छ एवं विचित्र मुक्ताहार, वक्षपर शोभा-प्रभा-समन्वित सुन्दर कौस्तुभ-मणि तथा रत्नोंकी माला, चरणोंमें नूपुर तथा बाहोंमें बाजूबंद धारण किये भगवान् मण्डलाकार प्रभापुरुषे उद्घासित हो रहे थे । मस्तकपर किरीट तथा कानोंमें कुण्डल-सुगल बाल्मीकिके सदृश उद्दीप हो रहे थे । कलाइयोंमें प्रज्वलित अग्निके समान कन्तिमान् अद्भुत कहूँण हिल रहे थे । कटिकी करधनीमें जो ढोर या जंजीर लगी थी, उसकी प्रभा विद्युतके समान सब और व्यास हो रही थी । कण्ठदेशमें कमलोंकी माला शोभा पाती थी, जिसके ऊपर मधु-लोलुप मधुकर मँडरा रहे थे । उनके श्रीअङ्गोंपर जो दिव्य पीतबल्ल था, वह नृत्न (तपाये हुए) जाग्नद (मुवर्ण) की शोभाको तिरस्कृत कर रहा था । श्यामसुन्दर विग्रहपर सुशोभित वह पीताम्बर विशुद्धिलाससे विलसित नीलमेषके सौभाग्यपूर्ण सौन्दर्यको छीने लेता था । मुखके क्षणपर शिरोदेशमें काढ़े-काढ़े झुँझराके कैश शोभा पाते थे ।

मुखन्दन्द्रकी चञ्चल रक्षियाँ बहाँका सम्मूर्ण अन्धकार दूर किये देती थीं । वह परम सुन्दर शुभद आनन प्रकृत इन्दीवर-सहश्र युगल नैऋत्यसे सुशोभित था । उसपर विचित्र रीतिसे मनोहर पत्रचना की गयी थी, जिससे मणित अभिराम मुख सदैव करोड़ों कामदेवोंको मोहे लेता था । वे परिपूर्णतम परात्पर भगवान् मधुर ध्वनिमें वेणु बजानेमें तत्पर थे ॥ २५-२८ ॥

ऐसे पुत्रका अवलोकन करके यदुकुलतिलक बसुदेवजीके नेत्र भगवान्के जन्मोत्सवजनित आनन्दसे खिल उठे । फिर उन्होंने शीत्र ही ब्राह्मणोंवो एक लाख गो-दान करनेका मन-ही-मन संकल्प किया । सूतिकागारमें प्रभुका आविभाव प्रत्यक्ष हो गया, इससे बसुदेवजीका सारा भय जाता रहा । वे अत्यन्त विस्तित हो, हाथ जोड़कर आदि-अन्तरहित श्रीहरिको प्रणाम करके, स्तोत्रोंद्वारा उनका स्वबन करने लगे ॥ २९-३० ॥

श्रीवसुदेवजी बोले— भगवन् । जो एकमात्र— अद्वितीय हैं, वे ही परब्रह्म परमात्मा आप प्रकृतिके सत्त्वादि गुणोंके कारण अनेक रूपोंमें प्रतीत होते हैं । आप ही संहारक, आप ही उत्सादक तथा आप ही इस जगत्के पालक हैं । हे अदिदेव ! हे त्रिमुखनपते परमात्मन ! जैसे स्फटिकमणि औपाधिक रंगोंसे लिस नहीं होती, उसी प्रकार आप देहके बणोंसे निर्लिस ही रहते हैं । ऐसे आप परमेश्वरको मेरा नमस्कार है ॥ ३१ ॥

जैसे हृधनमें आग छिपी रहती है, उसी तरह आप अव्यक्तरूपसे इस सम्मूर्ण जगत्में विद्यमान हैं; तथा जैसे आकाश सबके भीतर और बाहर भी रहता है, उसी प्रकार आप सबके भीतर और बाहर भी स्थित हैं । आप ही पृथ्वीकी भाँति इस समस्त जगत्के आधार हैं, सबके

* स्फुरद्धलविचित्रहारिणं विलसलौसुमरक्षारिणम् ।

परिविशुतिनुप्राक्षं भृत्यालक्षिरीटकुण्डलम् ॥

चलद्धृतविहिक्षणं चलद्धृतुष्णमेष्वलाच्चितम् ॥

मधुशूद्धनिपथमालिन नवजाम्बूनददिव्यवाससम् ॥

सतहिष्वलदिव्यसीमणं चलनीलालक्ष्मूलभूम्लम् ॥

चलद्धृतमोहरं परं शुभदं सुन्दरमम्बुजेष्वणम् ॥

कृतप्रविचित्रमण्डनं सततं कोटिमनोजमोहनम् ॥

परिपूर्णतमं परात्परं कलवेणुध्वनिवालतप्यरम् ॥

(गण०, गोलोक० ११ । २५-२८)

साक्षी हैं तथा बायुकी भाँति सर्वत्र जानेकी शक्ति
रखते हैं। आप गौ, देवता, ब्रह्मण, अपने भक्तजन
तथा बछड़ोंके पालक हैं और उद्गट भूभारका हरण
करनेके लिये ही मेरे घरमें अवतार्ण हुए हैं। इस भूतल्पर
समस्त पुरुषोंसामें से भी उत्तम आप ही हैं। भुवनपते !
पापी कंससे मुझे बचाइये॥ ३२-३३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलापते ! सर्वदेवता-
स्वरूपिणी देवकीको भी यह जात हो गया कि मेरे घरमें
परिपूर्णतम भगवान् साक्षात् इयामसुन्दर श्रीकृष्णका
आविर्भाव हुआ है। अतः वे भी उन्हें नमस्कार करके
बोलीं॥ ३४ ॥

देवकीने कहा—हे सच्चिदानन्दधन श्रीकृष्ण ! हे
अगणित ब्रह्माण्डोंके स्वामी ! हे परमेश्वर ! हे गोलोकधाम-
मदिरकी धजा ! हे आदिदेव ! हे पूर्णरूप ईश्वर ! हे
परिपूर्णतम परमेश ! हे प्रभो ! आप पापी कंसके भयसे
मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये॥ ३५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! पिता-माताकी ओरसे
किया गया वह स्तवन सुनकर पापनाशन साक्षात् परिपूर्णतम

* श्रोतुदेव उत्तर—

एको यः प्रकृतिगुणैरनेकथामि

इति त्वं जनक उनास्य पालकस्त्वम् ।

निर्दिशः स्फटिक इवाच देहर्ण-

स्तरमै श्रीभुवनपते नमामि तुम्बम् ॥

पथस्तु त्वनल इवात्र बत्तमानो

मोऽन्तःस्त्रो बहिरपि चामरं बद्धा हि ।

आधारो अरणिरिकास्य सर्वसाक्षी

तस्मै ते नम इव सर्वगो नमस्त्वाम् ॥

भूमारोद्भवरणार्थमेव जातो

गोदैवदिजनिजवस्तपाम्बोदसि ।

गेहे मे भुवि पुरुषोंसामोरमस्त्व

कसान्मा भुवनपते प्रभाहि पापात् ॥

(गण०, गोलोक० ११ । ३१-३३)

हे कृष्ण हेऽविगणिताण्डपते पदेश

गोलोकधामधिष्ठित आदिदेव ।

पूर्णेश पूर्णं परिपूर्णतम प्रभो मा

त्वं प्राहि पाहि परमेश्वर कसापात् ॥

(गण०, गोलोक० ११ । ३०)

भगवान् श्रीकृष्ण मन्द-मन्द मुस्कराने हुए देवकी तथा
बसुदेवजीसे बोले—॥ ३६ ॥

श्रीभगवान् ने कहा—पूर्वसुष्टुमें ये माता पतित्रता
पृष्ठिन थीं और आप प्रजापति सुतरा। आप दोनोंने संतानके
लिये ब्रह्माजीकी आशासे अज्ञ और जलका त्याग करके
बड़ी भारी तपस्या की थी। एक मन्दन्तरका समय बीत
जानेपर भी प्रजाकी कामनासे आपकी तपस्या चलती
रही, तब मैं आप दोनोंपर प्रसन्न होकर बोला—‘आपलोग
कोई उत्तम वर मॉग लें।’ मेरी बात सुनकर आप तत्काल
बोले—‘प्रभो ! हम दोनोंको आपके समान पुत्र प्राप्त
हो !’ उस समय ‘तथास्तु’ कहकर जब मैं चला आया,
तब आप दोनों दम्पति अपने पुण्यकर्मके फलस्वरूप प्रजापति
हुए। संसारमें मेरे समान तो कोई पुत्र है नहीं—
यह बिनारकर मैं स्वयं परमेश्वर ही आपका पुत्र हुआ।
उस समय भूतल्पर मैं ‘पृष्ठिनगम्भ’ नामसे विख्यात हुआ।
फिर दूसरे जन्ममें जब आप कश्यप और अदिति हुए,
तब मैं आपका पुत्र बामन आकारबाला उपेन्द्र हुआ।
उसी प्रकार इस बन्धमान जन्ममें भी मैं परात्पर
परमेश्वर आप दोनोंका पुत्र हुआ हूँ। पिताजी ! अब
आप मुझे नन्दभवनमें पहुँचा दें। इससे आप दोनोंको
कंससे कोई भय नहीं होगा। नन्दरायकी पुत्रीको यहाँ
ले आकर आप सुखी होइयेगा॥ ३७-४१ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! ये कहकर
भगवान् वहाँ मौन हो, उन दोनोंके देखते-देखते बर्तमान
स्वरूपको अदृश्य करके, बालरूप हो पृथ्वीपर पढ़ गये—
जैसे किसी नटने क्षणभरमें वेष-परिवर्तन कर लिया
हो। शिशुको पालनेमें सुल्लक्षकर ज्यों ही बसुदेवजी के
जानेको उद्धत हुए, त्वयी-ही महावनमें नन्दपत्नीके गम्भी
योगमायने स्वतः जन्मग्रहण किया। उसीके प्रभावसे
सब लोग सो गये। पहरेदार भी नींद लेने लगे। सारे
दरवाजे मानो किनीने लोल दिये। साँकल और अर्गलाएँ
दृट-पूट गर्वी। श्रीकृष्णको माथेपर लिये जब बसुदेवजी
गृहसे बाहर निकले, उस समय उनके भीतरका
अज्ञान और बाहरका अंधेरा स्वतः दूर हो गया—ठीक उसी
तरह, जैसे सर्योदय होनेपर अन्धकारका तत्काल नाश
हो जाता है। आकाशमें बादल धिर आये और वे जलकी
शृष्टि करने लगे। तब सदृश मूल्यवाले स्वयंप्रकाश शोषनाग

अपने फलोंसे छछड़ाया करके गिरती हुई जलकी धाराओंका निवारण करते हुए उनके पीछे-पीछे चलने लगे । उस समय यमुनामें जलके बेगमे बहनेके कारण ऊँची लहरें उठतीं और भैंवरें पढ़ रही थीं । वे सिंह और सर्वादि जन्माओंको भी बहाये लिये जाती थीं; किंतु नरिताओंमें श्रेष्ठ उन कलिङ्गनन्दिनी यमुनाने बसुदेवजीको तत्काल मार्ग दे दिया । नन्दरायजीका सारा व्रज गाढ़ी नींदमें गो रहा था । वहाँ पहुँचकर बसुदेवजीने अपने परम शिशुको यशोदाजीकी शम्भापर शीघ्र सुलाकर उस दिव्य कन्याको देखा । यशोदाजीकी उस कन्याको गोदमें लेकर बसुदेवजी पुनः अपने घर लौट आये । वे यमुनाजीको पार करके प्रवृत्त अपने घरमें स्थित हो गये ॥ ४२-४९ ॥

उधर गोपी यशोदाको इतना ही शात हुआ कि उसे कोई पुत्र या पुत्री हुई है । वे प्रसव-वेदनाके श्रमसे अत्यन्त यकी होनेके कारण अपनी शश्यापर आनन्दकी नींद लेती हुई सो गयी थीं । इधर बालकके रोनेकी आवाज सुनकर पहरेदार राजभवनमें उपस्थित हुए और जाकर बीर कंसको बालकके जन्मनेकी सूचना दी । यह समाचार कानमें पढ़ते ही कंस भयमें कातर हो तुरंत दृष्टीगृहमें जा पहुँचा । उस समय मती-साखी बहिन देवकी दीनकी तरह रोती हुई भाईसे बोली ॥ ५०-५२ ॥

देवकीने कहा—भैया ! आप दीन-दुखियोंके प्रति स्नेह और दया करनेवाले हैं । मैं आपकी बहिन हूँ, तथापि कागगारमें डाल दी गयी हूँ । मेरे सभी पुत्र मार डाले गये हैं । मैं वह अभागिनी मा हूँ, जिसके बेटोंका वध कर दिया गया है । एकमात्र यह बेटी बच्ची है, इसे मुझे भीखमें दे दीजिये । यह स्त्री है, इसका वध करना आप-जैसे वीरके योग्य नहीं है । कल्याणकारी भाई ! इस कस्त्याणी कन्याको तो मेरी गोदमें दे ही दीजिये । यही आपके योग्य कार्य होगा ॥ ५३-५४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! देवकीके मुहपर आँसुओंकी धारा बह रही थी । उसने मोहके कारण बेटीको आँचलमें छिपाकर बहुत बिनती की—बह बहुत रोयी-गिरिहितायी; तो भी उस दुष्टने बहिनको डॉट-डपटकर उसकी गोदसे बह कन्या छीन ली । वह यदुकुलका कलङ्क एवं महानीच्छ था । सदा कुसङ्गमें रहनेके कारण उसका जीवन पापमय हो गया था । उस दुरात्माने अपनी बहिनकी

बच्चीके दोनों पैर पकड़कर उसे शिलापर दे मारा । वह कल्या साक्षात् योगमायाका अवतार देवी अनंशा थी । कंसके हाथसे छूटते ही वह उछलकर आकाशमें चली गयी । सहस्र अश्वोंसे जुते हुए दिव्य 'शतपत्र' रथपर जा बैठी । वहाँ चॅवर बुलाये जा रहे थे । उस शुभ रथपर बैठकर वह दिव्य रूप धारण किये दृष्टिगोचर हुई । उसके आठ भुजाएँ थीं और सबमें अयुध शोभा पा रहे थे । वह मायादेवी अपने पार्वदोंसे परिसेवित थी । उसका तेज सौ सूर्योंके समान दिखायी देता था । उसने मेघगर्जनातुल्य गम्भीर वाणीमें कहा ॥ ५५-५८ ॥

श्रीयोगमाया बोली—कंस ! तुमे मारनेवाले परि-पूर्णतम परमात्मा साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण तो कहीं और चगह अवतीर्ण हो गये । इस दीन देवकीको तू व्यर्थ दुःख दे रहा है ॥ ५९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! उससे यों कहकर भगवती योगमाया विन्द्यपर्वतपर चली गयीं । वहाँ वे अनेक नामोंसे प्रसिद्ध हुईं । योगमायाकी उत्तम बात सुनकर कंसको बड़ा आश्र्य हुआ । उसने देवकी और बसुदेवको तत्काल बन्धनमुक्त कर दिया ॥ ६०-६१ ॥

कंसने कहा—बहिन और बहनोई बसुदेवजी ! मैं आपात्मा हूँ मेरे कर्म पापमय हूँ । मैं इस यदुवंशमें महानीच्छ और दुष्ट हूँ । मैं ही इस भूतल्पर आप दोनोंके पुत्रोंका हत्यारा हूँ । आप दोनों मेरे द्वाग किये गये इस अपराधको क्षमा कर दें । मेरी बात सुनें । मैं समझता हूँ, यह सब कालने किया-कराया है । जैसे बायु मेघमालाको जहाँ चाहे उड़ा ले जाती है, उसी तरह कालने मुझे भी स्वेच्छानुसार चलाया है । मैंने देव-वाक्यपर विश्वास कर लिया, किंतु देवता भी असलवादी ही निकले । इस बोगमायाने बताया है कि भेरा शत्रु भूतल्पर अवतीर्ण हो गया है । किंतु वह कहाँ उसक हुआ है, यह मैं नहीं जानता ॥ ६२-६४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! यों कहकर कंस बहिन और बहनोईके चरणोंपर गिर पड़ा और फूट-फूटकर रोने लगा । उसके मुँहपर अशुधारा बह चली । उसने उन दोनोंके प्रति सौहार्द (अस्यन्त स्नेह) दिखाते हुए उनकी बच्ची देवा की । अहो ! परिपूर्णतम प्रभु श्रीकृष्णबन्दके दया-दान-दक्ष कटाक्षोंसे भूतल्पर क्या नहीं

हे सकता । तदनन्तर प्रातःकाल दुरास्ता कंसने प्रकल्प आदि बड़े-बड़े असुरोंको बुलाया और योगमायामे जो कुछ कहा था, वह सब उनसे कह मुनाया ॥ ६५-६७ ॥

कंसने कहा—मित्रो ! जैसा कि योगमायाने बताया है, मेरा विनाश करनेवाला शशु पृथ्वीपर कहीं उत्पन्न हो चुका है । अतः तुमलोग जो दस दिनके भीतर उत्पन्न हुए हैं और जिनको जन्म लिये दससे अधिक दिन निकल गये हैं, उन समस्त बालकोंको मार डालो ॥ ६८ ॥

दैत्योंने कहा—महाराज ! जब आप द्वन्द्व-युद्धमें उत्तरे थे, उन समय रणभूमियं आपके चढाये हुए धनुषकी टंकार सुनकर सब देवता भाग खड़े हुए थे, फिर उन्हसे आप भय क्यों मान रहे हैं ? गौ, ब्राह्मण, साधु, बैद्य, देवता तथा धर्म और यश आदि जो दूसरे-दूसरे तत्त्व हैं, वे ही भगवान् विष्णुके शरीर माने गये हैं । इन सबके विनाशमें दैत्योंका बल ही समर्थ माना गया है । यदि महाविष्णु, जो आपका शशु है, इस पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ है तो उसके बधका यही उपाय है कि गौ-ब्राह्मण

इस प्रकार श्रीगर्भ-संहितामे गोलोकवाहणके अन्तर्गत नरद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीकृष्ण-जन्म-वृत्तान्तका

'वर्णन' नामक ग्रन्थहर्वाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९१ ॥

बारहवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण-जन्मोत्सवकी धूम; गोप-गोपियोंका उपायन लेकर आना; नन्द और यशोदा-रोहिणीद्वारा सबका यथावत् सन्कार; ब्रह्मादि देवताओंका भी श्रीकृष्णदर्शनके लिये आगमन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर गोष्ठमे विद्यमान नन्दजीने अपने परमे पुत्रोत्सव होनेका समाचार सुनकर प्रातःकाल ब्राह्मणोंको बुलाया और स्वस्तिवाचन-पूर्वक मङ्गल-कार्य कराया । विधिपूर्वक जातकर्म-संस्कार सम्पन्न करके महामनस्त्री नन्दराजने ब्राह्मणोंको आनन्दपूर्वक दक्षिणा देनेके साथ ही एक लाख गौएँ दान कीं । एक कोख लंबी भूमिमें सप्तधान्योंके पर्वत खड़े किये गये । उनके शाथ सरस एवं लिंग पदार्थ भी थे । वे सब पर्वत नन्दजीने बिनीतभावसे ब्राह्मणोंको दिये । मृदङ्ग, बीणा, शङ्क और दुन्दुभि आदि बाजे बारंबार बजाये जाने लगे । नन्दद्वारपर गायक मङ्गल-गीत गाने लगे । बाराङ्गनाएँ गृह्य करने

आदिकी विशेषरूपसे हिंसाका अभियान चलाया जाय ॥ ६९-७१ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! कंसने दैत्योंको यह करनेकी आशा दे दी । इस प्रकार उसका आदेश पाकर वे महान् उद्भट दुष्ट देत्य आकाशमें उड़ चले और गौ, ब्राह्मण आदिको पीड़ा देने तथा नवजात बालकोंकी हत्या करने लगे । समुद्रपर्यन्त समस्त भूमण्डलमें वे हच्छानुसार रूप धारण करनेवाले दैत्य सर्वों और चूहोंकी तरह धर-करमें धुसने और विचरने लगे । उद्भट देत्य तो स्वभावसे ही कुमारगंगागी ढूँने तै, उसपर भी उन्हें शंसकी ओरसे प्रेरणा प्राप्त हो गयी थी । एक तो बंदर, फिर वह शाराय पी के और उसपर भी उसे विच्छू ढंक मार दे तो उसकी चपलनाके लिये क्या कहना ? यही दशा उन दैत्योंकी थी, वे भूतप्रस्तु-से हो गये थे । विदेहकुलनन्दन, मैथिलनरेश, विष्णुभक्त, धर्मात्माओंमें मुख्य, परम तपस्वी, प्रतापी, अङ्गराज, बहुलाश्व जनक ! भूमण्डलपर साधु-संतोषी यह अवहेलना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका सम्पूर्णतया नाश कर देती है ॥ ७२-७५ ॥

लगीं । पताकाओं, सोनेके कलशों, चँदोंवाँ, सुन्दर बंदनबारों तथा अनेक रंगके चिन्होंसे नन्द-मन्दिर उद्घासित होने लगा । सदकें, गलियाँ, द्वार-देहलियाँ, दीवारें, ऑगन और बेदियाँ (चबूतरे)—इनपर सुगन्धित जलका छिङ्काव करके सब ओरसे बड़ों और शंदियोंद्वारा सजावट कर दी गयी थी, जिससे ये सब चिन्नमण्डप या चिन्नशालाके समान शोभा पा रहे थे । गौओंके सींगोंमें सोना मढ़ दिया गया था । उनके गलेमें सुवर्णकी माला पहना दी गयी थी । उनके गलेमें प्रंटी और पैरोंमें मङ्गीरकी शंकार होती थी । उनकी पीठपर कुँड़-कुँड़ लाल रंगकी शूलें ओढ़ायी गयी थीं । इस प्रकार समस्त गौओंका शृङ्गार किया गया था । उनकी पूँछें पीछे रंगमें रंग दी गयी थीं । उनके साथ बड़े भी थे, उनके अङ्गोंपर

तरफी खिलोके हाथोंकी छाँप लगी थी। हल्दी, कुङ्गम तथा चिन्निच धातुओंसे वे चिकित्स की गयी थीं। मोरपंख और पुष्पोंसे अलंकृत तथा सुगन्धित जल्से अभिषिक्त धर्मधुरंधर मनोहर दृष्टम श्रीनन्दरायजीके द्वारपर इधर-उधर सुशोभित थे। गौओंके मफेद बछड़े सोनेकी मालाओं और मोतियोंके हारोंसे विभूषित हो, इधर-उधर उछलते-कूदते फिर रहे थे। उनके पैरोंमें भी मङ्गीर बैथे थे ॥ १-१० ॥

नन्दरायजीके यहाँ पुत्रोत्सवका समाचार सुनकर दृष्टभानुवर रानी बलावती (कीर्तिदा) के साथ हाथीपर चढ़कर नन्दमन्दिरमें आये। वजमें जो नौ नन्द, नौ उपनन्द तथा छः दृपगानु थे, वे सब भी नाना प्रकारकी भेट-सामग्री-के साथ वहाँ आये। वे मिरपर पगड़ी तथा उमके ऊपर माला धारण किये, पीले रंगके जामे पहने, केशोंमें मोरपंख और गुज्जा बौधे तथा बनमालामें चिन्मूरित थे। हाथोंमें बंशी और बैतकी छड़ी लिये, मुन्दर पत्रचनाके साथ तिलक लाये, कमरमें मोरपंख बौधे गोपालगण भी बहा आ गये। वे नाचते-गाते और बख्त हिलाते थे। मूँछवाले तरुण और विना मूँछके बालक भी भौति भौतिर्णी भेट लेकर बहाँ आये। बूढ़े लोग हाथमें डंडा लिये अपने साथ मायन, दूध, दही और घोकी भेट लेकर नन्दमवनमें उपस्थित हुए। वे आपसमें ब्रजराजके यहाँ पुत्रोत्सवका सवाद सुनाते हुए प्रेमसे चिह्नित हो, नेंगोंमें आनन्दके ओंसूनहातं थे। पुत्रोत्सव होनेपर श्रीनन्दरायजीना आनन्द नरम सीमाओं पहुँच गया था, उनके नेत्र हर्षके झाँसुओंमें भरे हुए थे। उन्होंने अपने द्वारपर आये हुए यमन गोरोंमा तिलक, आदिके द्वारा विभिन्न सत्कार किए ॥ ११-११ ॥

गोप बोले—हे वंशभर ! हे नन्दराज ! आपके यहाँ जो पुत्रोत्सव हुआ है, यह संतानहीनताके कल्पको मिटानेवाल है। इसमें बढ़कर परम मङ्गलकी शान और क्या हो सकती है ? दैवने बहुत दिनोंके बाद आज आपको यह दिन दिखाया है, हमलोग श्रीनन्दगन्धनगा दर्शन करके आज कृतार्थ हो जायेंगे। जब आप दूरसे आकर पुत्रोंको गोदमें लेकर मोदपूर्वक लाइ लड़ाते हुए होहन ! कहकर पुकारेंगे, उस समय हमें बड़ा सुख मिलेगा ॥ १२-२१ ॥

श्रीनन्दने कहा—बन्धुओ ! आपलोगोंके आशीर्वाद और पुष्यसे आज यह आनन्ददायक शुभ दिवस प्राप्त हुआ है, मैं तो ब्रजवासी गोप-गोपियोंका आशापालक सेवक हूँ ॥ २२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! श्रीनन्दरायजीके यहाँ पुत्र होनेका अद्भुत समाचार सुनकर गोपियोंके हर्षकी सीमा न रही। उनके हृदय, उनके तन-मन परमानन्दसे परिपूर्ण हो गये। वे धरके मारे काम-काज तत्काल छोड़कर भेट-सामग्री लिये तुरंत ब्रजराजके भवनमें जा पहुँची। नरेन्द्र ! अपने वरसे नन्दमन्दिरतक इधर-उधर बहो उतावलीके साथ आर्ती-जातों सब गोपियाँ रास्तेकी भूमिपर मोती छुटाती चलती थीं। शीघ्रतापूर्वक आने जानेसे उनके बख्त, आमूषण तथा केशोंके बन्धन भी ढीले पड़ गये थे; उस दशामें उनकी बड़ी जोमा हो रही थी। इनकारते हुए नूपुर, नये बाजबंद, सुनहरे लहंगे, मङ्गीर, हार, मणिमय कुण्डल, करधनी, कण्ठमूर्त, हाथोंके कण्ठ तथा भालदेशमें लगी हुई वैरियोंकी नयी-नयी लड़ाओंमें उनकी छाँव देखते ही बनती थी। नरेन्द्र ! वे सब की सब राई-नोन, हल्दीके विशेष चूर्ण, गेहूँके आटे, पीली सरसों तथा जौ आदि हाथोंमें लेकर बड़े लाइसं लाटके मुख्यपर उतारती हुई उने आशीर्वाद देती थीं। यह सब करके उन्होंने यशोदाजीसे कहा—॥ २३-२६ ॥

गोपियाँ बोलीं—यशोदाजी ! बहुत उत्तम, बहुत अच्छा हुआ। अहोभाग्य ! आज परम संभाग्यका दिन है। आप धन्य हैं और आपनी कोख धन्य है जिसने ऐसे बालकोंको जन्म दिया। दीर्घकालके बाद देवने आज आप ही इच्छा पूरी की है। कैसे कमल-जैसे नेत्र हैं इस श्यामसुन्दर बालकके ! कितनी मनोहर मुस्तक है इसके होठोंपर। बड़ी संभालके साथ इसका लालन-गालन कीजियं ॥ २७-२८ ॥

श्रीयशोदाने कहा—यहिन ! आप भवकी दया और आशीर्वादसे ही मेरे भरमें यह सुख आया है, यह आनन्दोत्सव प्राप्त हुआ है। मेरे ऊपर आपनी सदा हो बड़ी दया रही है। इसके बाद आप सनां भी दैवकृपासे ऐसा ही परम सुख प्राप्त हो यह भेरी मङ्गल-कामना है। वहिन रोहिणी ! तुम बड़ी बुद्धिमती हो। मत कार्य बड़े अच्छे ढंगसे करती हो। अपने घर आयी हुई ये ब्रजवासिनी गोपियों बड़े उत्तम कुलकी हैं। तुम इनका पूजन—स्वागत-सत्कार करो। अपनी इच्छाके अनुसार इन सबकी मनोवाच्छा पूर्ण करो ॥ २९-३० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! रोहिणीजी भी राजाकी बेटी थीं। उनके हाथ तो स्वभावमें ही दानशील

वे, उसपर भी यशोदाजीने दान करनेकी प्रेरणा दे दी। फिर ह्या था ! उन्होंने अत्यन्त उदारचित्त होकर दान देना आरम्भ किया। उनकी अङ्गकान्ति और चर्णकी थी। शरीरपर दिव्य बल शोभा पाते थे और वे रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित थीं। रोहिणीजी साक्षात् लक्ष्मीकी माँति ब्रजाङ्गनाओंका सत्कार करती हुई सब और विचरने लगीं। साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णके ब्रजमें पधारनेपर सब और मानव-बाच्य बजने लगे। वहे जोर-जोरसे जै-जैकारकी व्यनि होने लगीं। उत समय गोप दही, दूध और जीसे तथा गोपाङ्गनाएँ ताजे माखनके लौंदोंसे एक दूसरेको हँडोल्सासे भिगोने और उच्चस्वरसे गीत गाने लगीं। नन्दभवनके बाहर और भीतरसब ओर दहीकी कीच मच गयी। उसमें बूढ़े और मोटे शरीरवाले लोग फिलकर गिर चढ़ते थे और दूसरे लोग स्कूल ताली पीट-पीटकर हँसते थे। महाराज। वहाँ जो पौराणिक सूत, वंशोंके प्रवांसक मागल और निर्मल बुद्धिवाले तथा अवसरके अनुरूप बातें कहनेवाले बंदीजन पधारे थे, उन सबको नन्दरायजीने प्रस्तेके लिये अलग-अलग एक-एक हजार गोपें प्रदान कीं। वस्त्र, आभूषण, रत्न, घोड़े और हाथी आदि सब कुछ दिये। समस्त बंदियों तथा मागधजनोंको अनी गोप वज्रेश्वर नन्दरायने बहुत धन दिया। अनराशिकी वर्षा कर दी। ब्रजकी गली-गलीमें धर-धरमें निधि, सिद्धि, बुद्धि, मुक्ति और मुक्ति—ये लेटटी-सी दिलायी देती थीं। उन्हें पानेकी इच्छा वहाँ किसीके भी मनमें नहीं होती थी ॥ ३१—३१ ॥

उस समय सनकुमार, कपिल, शुक और व्यास आदिको तथा इंस, दत्तानेय, पुलस्त्य और मुक्ष (नारद)को

इस प्रकार श्रीराम-संहितामें गोलोकजगत्के अन्तर्गत शारद-बुद्धलक्ष्म-पंचदामें श्रीकृष्णदर्शनार्थ ब्रजादि देवताओंका आगमन ' नामक बारहनाँ अम्बाय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

पूर्णाङ्ग उद्धार

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! नन्दजी राजा कंसका कर चुकाने, बसुदेवजीकी कुशल पूछने और उन्हें अपने वहाँके पुत्रोत्तबका समाचार देनेके लिये मशुरा चले गये। उसी समय कंसकी मेजी हुई बाल्यातिनी हुआ राजसी

साथ के ब्रजाली वहाँ गये। ब्रजालीका नर्व तस लुचरणके समान था। उनके मस्तकोंपर मुकुट तथा कानोंमें कुण्डल जगमगा रहे थे। वे देवकर्ता चतुर्मुख ब्रह्म हंसपर आस्त हो उपर्युक्तवालको देवीप्रामाण करते हुए वहाँ आये थे। उनके पीछे भूतोंसे फिरे हुए वृषभारु भैश्वर पधारे। फिर रथपर चढ़े हुए साक्षात् सर्व, ऐरावत हाथीरथ सवार देवराज इन्द्र, खञ्जरीटपर चढ़े हुए बायुदेव, महिषवाहन यम, पुष्टकारुद बुवेश, मृगवाहन चन्द्रमा, बकरेपर बैठे हुए अग्निदेव, मगरपर आस्त वृषभ, मयूरवाहन कार्तिकेय, हंसवाहिनी सरस्वती, गङ्गारात् लक्ष्मी, लिहवाहिनी हुगा तथा गोरुपधारिणी पृथ्वी, जो विमानपर बैठी थीं, वे सब वहाँ आये। दिव्यकान्तिवाली मुख्य-मुख्य लोकह मातुकाएँ पालकीपर बैठकर आयी थीं। खड्ग, चक्र तथा यहि धारण करनेवाली वहीदेवी शिविकापर सवार हो वहाँ पहुँची थीं। मङ्गल देवता बानरपर और बुध देवता भास नामक पक्षीपर चढ़कर वहाँ पधारे थे। काढे मृगपर बैठे बृहस्पति, गवयपर चढ़े शुक्रवार्य, मगरपर आस्त शनिदेव और छँटपर आस्त लिहिकाकुमार राहु—ये सभी ग्रह, जो करोड़ों बालस्त्रोंके समान तेजस्ती थे, नन्दमन्दिरमें पधारे। वहाँ बड़ा कोळाइक मच रहा था। वह नन्दभवन छांड-के-छांड गोपों और गोपियोंसे भरा हुआ था। देवताओंग वहाँ पहुँचकर ध्यानभर इके ओर फिर चढ़े गये। बालरूपधारी परिपूर्णतम परमात्मा साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णको देखकर, उन्हें मस्तक नवाकर, देवताओंवे उस समय उनका उत्तम स्वावन किया। बड़ा आदि सब देवता श्रृंगियोंसहित वहाँ श्रीकृष्णका दर्शन करके प्रेमशिवह और इर्षयिमोर होकर अपने-अपने धामको चढ़े गये ॥ ४०—५१ ॥

गोलोक, वर्षकी अवस्थावाली तबणी बन गयी। उसका शैम्भव्य इतना दिव्य था कि वह अपनी अङ्गकान्तिसे शान्ती, सरस्वती, लक्ष्मी, रमा तथा रतिको भी तिरस्कृत कर रही थी। चलते समय उसके उड़त ऊच दिव्य आभासे अङ्गको और हिलते थे। उस देखकर रोहिणी तथा यशोदा भी इतप्रतिभ हो गयीं। उसने आते ही बालगोपालको गोदमें के लिया और बारंगार लाइ लड़ाती हुई उस महाघोर दानबीने शिशुके मुखमें हलाइल विगसे लिस अपना स्तन दे दिया। यह देख तीक्ष्ण रोगने आइत हो श्रीहरिने उसका सारा दूध उसके प्राणोंसहित पी लिया। उसके स्तनोंमें जब असाध पीड़ा हुई, तब 'छोड़ो-छोड़ो' कहते हुए वह उठकर भागी। बच्चेको तिथे-दिये घरसे बाहर निकल गयी। बाहर जानेपर उसकी माया नष्ट हो गयी और वह अपने असली रूपमें दिखायी देने लगी। उसके नेत्र बाहर निकल आये। सारा शरीर रुकेद पह गया और वह रोती-चिल्डाती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ी। उसकी चिल्डाइटे सातों लोक और सातों पातालसहित सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा। छीपेंसहित सारी पुरुषों दोखने लगी। वह एक अद्भुत-सी घटना हुई। रूपेश्वर। पूतनाका विशाक शरीर छः कोष लवा और वज्रके समान सुट्ठ था। उसके गिरनेसे उसकी पीठके नीचे आये हुए नड़े-नड़े दृश्य प्रसकर चकनाचूर हो गये। उस समय गोपगण उस दानबीके भयंकर और विशाल शरीरको देखकर परस्पर कहने लगे—
‘इसकी गोदमें गया हुआ बालक कदाचित् जीवित नहीं होगा।’ परंतु वह अद्भुत बालक उसकी कातीपर बैठा हुआ आनन्दसे खेलता और प्रसकरता था। वह पुतनाका दूध पीकर जम्हाई के रहा था। उसे उस अवस्थामें देखकर यशोदा तथा रोहिणीके साथ जाकर छियोने उठा छिया और कातीसे लगाकर वे सब की-सब घड़े विस्तयमें पह गयीं। बच्चेको के जाकर गोपियोने सब ओरसे विधिपूर्वक उसकी रक्षा की। यमुनाजीकी पवित्र मिही ल्याकर उसके ऊपर यमुना-जलका छाँटा दिया, फिर उसके ऊपर गायकी पूँछ बुमायी। गोमृत और गोरजमिश्रित जलसे उसको नहड़ाया और निम्नाहित रूपसे कबचका पाठ किया—॥ १-१४ ॥

श्रीगोपियाँ छोलीं—मेरे लाल। श्रीकृष्ण तेरे सिरकी रक्षा करें और भगवान् बैकुण्ठ कण्ठकी। स्वेतद्वीपके स्त्री दोनों कानोंकी, यशस्वप्रधारीं श्रीहरि नासिक-की, भगवान् दृष्टिं होनीं नेत्रोंकी, दशरथनवन श्रीराम

जिहाकी और नरनारायण शृष्टि तेरे अधरोंकी रक्षा करें। साक्षात् श्रीहरिके कलावतार सनक-सनन्दन आदि चारों महर्षि तेरे दोनों कपोलोंकी रक्षा करें। भगवान् इवेतवायाह तेरे भालदेशकी तथा नारद दोनों भ्रलताओंकी रक्षा करें। भगवान् कपिल तेरी ठोटीकी और दत्तात्रेय तेरे वक्षःस्थलको सुरक्षित रखें। भगवान् शृष्टम तेरे दोनों कंधोंकी और मत्स्यभगवान् तेरे दोनों हाथोंकी रक्षा करें। पृथुल-पराक्रमी राजा पृथु सदा तेरे बाहुदण्डोंको सुरक्षित रखें। भगवान् कच्छप उदरनी और धन्वन्तरि तेरी नाभिकी रक्षा करें। मोहिनी-रूपधारी भगवान् तेरे गुहादेशको और बामन तेरी कटिको हनिसे बचायें। परशुरामजो तेरे पृष्ठभागकी और बादरायण व्याख्याती तेरी दोनों जोधोंकी रक्षा करें। बलभद्र दोनों शुटनोंकी और बुद्धदेव तेरी पिंडलियोंकी रक्षा करें। धर्मपालक भगवान् कस्ति गुरुकोंसहित तेरे दोनों पैरोंको सुखाक रखें। वह सबकी रक्षा करनेवाला परम दिव्य ‘श्रीकृष्ण-कवच’ है। इसका उपदेश भगवान् विष्णुने अपने नाभि-कमलमें विद्यमान ब्रह्माजीको दिया था। ब्रह्माजीने शम्भुको, शम्भुने दुर्योगाको और दुर्बिशाने नन्द-मन्दिरमें आकर श्रीयशोदाजीको इसका उपदेश दिया था। इस कबचके द्वारा गोपियोंसहित श्रीयशोदाने नन्द-गन्दनकी रक्षा करके उन्हें अपना स्तन पिलाया और ब्राह्मणोंको प्रचुर धन दिया॥ १५-२४ ॥

* श्रीगोपिय छन्दः—

भ्रीकृष्णसे छिः पातु द्वृकुण्ठः कण्ठमेव हि ।
इवेतदीपपतिः कर्णो नासिका यशस्वप्रधृः ॥
कृतिदो नेत्रपुष्पं च छिह्नो दक्षयात्मजः ।
भ्रश्वरवताचे तु नरनारायणदृष्टी ॥
कपोली पातु ते साक्षात् सनकाकाः कर्ण हरेः ।
भारं ते इवेतवाराहो नारदो भ्रूलदेवतु ॥
चिकुंकं कपिकः पातु दत्तात्रेय ब्रह्मेऽवतु ।
स्त्रीलो द्वाषपमः पातु कर्ण मस्त्यः प्रपातु ते ॥
दोदण्डं सततं रुकेद पृथुः पृथुलविक्रमः ।
उदरं कमठः पातु नाभि धन्वन्तरिश्च ते ॥
मोहिनी गुहादेशं च कटि ते बामनोऽवतु ।
पृष्ठं परशुरामश तोक बादरायणः ॥
बडो जानुदृथं पातु जहे बुद्धः प्रपातु ते ।
पहीं पातु सुउल्लो च कस्तिर्धर्मपतिः प्रङ्गुः ॥
सर्वद्वाकरं दिव्यं श्रीकृष्णकवचं परम् ।
इदं भगवान् दृष्टं वक्ष्ये नाभिस्तुते ॥

उसी समय नन्द आदि गोप मधुरापुरीसे गोदुलाम्बी
बैठ आये। पूतनाके भवानक शरीरको देखकर वे सबकी
सब भयसे व्याकुल हो गये। गोपोंने कुठारेंसे उसके
शरीरको काट-काटकर यमुनाजीके किनारे कई चितार्यं
बनायी और उसका बाह-संस्कार किया। पूतनाका शरीर
परम पवित्र हो गया था। जलनेपर उससे जो छुआँ निकला,
उसमें इलायची-लवङ्ग, चन्दन, तगर और अगरकी सुगन्ध
भरी हुई थी। अहो ! जिन पतितपावनने पूतनाको मोक्ष-
गति प्रदान की, उन श्रीकृष्णको छोड़वर हम यहाँ किसकी
शरणमें जायें ! ॥ २५-२८ ॥

बहुलाद्वने पूछा—देवर्षे ! यह बालधारिनी राक्षसी
पूतना पूर्वजन्ममें कौन थी ? इसके स्तनमें विष लगा हुआ
था तथा इसके भीतरका भाव भी दूषित ही था; तथापि
इसे उत्तम मोक्षकी प्राप्ति कैने हुई ! ॥ २९ ॥

नारदजी थोले—पूर्वकालमें राजा बलिके यजमान
इस प्रकार श्रीगर्व-संहितामें गोलोकक्षणद्वके अन्तर्गत नारद-बहुलाद्व-संवादमें ‘पूतना-मोक्ष’ नामक तेगदर्जा अज्ञाय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

शकटभावन; उत्कृष्ट और तुणवर्ती का उद्धार; दोनोंके पूर्वजन्मोंका वर्णन

गर्वजीने कहा—शौनक ! इस प्रकार मैंने भगवान् श्रीकृष्णके सर्वोक्तुष्ट दिव्य चरित्रका वर्णन किया। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसका अवण करता है, वह कृतार्थ है, उसे परम पुरुषार्थ प्राप्त हो गया—इसमें संशय नहीं है ॥ १ ॥

श्रीशौनकजी थोले—मुने ! भगवान् श्रीकृष्णका मङ्गल-
मय चरित्र अमृत-रससे तैयार की हुई परम मधुर खोड़ है। इसे
साक्षात् आपके मुखसे सुनकर हम कृतार्थ हो गये। तपोधन !
संतोंमें श्रेष्ठ राजा बहुलाद्व भगवान् श्रीकृष्णके परम भक्त
ये। उनके मनमें सदा शान्ति बनी रहती थी। इसके बाद
उन्होंने मुनिवर नारदजीसे कौन सी बात पूछी, वह मुझे
बतानेकी कृपा कीजिये ॥ २-३ ॥

श्रीशौनकजीने कहा—शौनक ! तदनन्तर मिथिला
महाराज बहुलाद्व हथसे उत्कृष्ट और प्रेमसे विहृल हो गये।

भगवान् बामनके परम उत्तम रूपको देखकर बहिकन्या
रत्नमालाने उनके प्रति पुश्पोचित स्नेह किया था। उसने
मन-ही-मन यह संकल्प किया था कि ‘यदि मेरे भी ऐसा
ही बालक उत्पन्न हो और उम पवित्र मुसकानबाले शिशुको
मैं अपना स्तन पिला सकूँ तो उससे मेरा चित्त प्रसन्न हो
जायगा ।’ बलि भगवान्के परम भक्त हैं, अतः उनकी
पुत्रीको बामनभवानाने यह वर दिया कि ‘तेरे मनमें जो
मनोरथ है, वह पूर्ण हो ।’ वही रत्नमाला द्वापरके अन्तर्में
पूतना नामसे विद्युत राशसी हुई। भगवान् श्रीकृष्णके
स्वास्थ्यसे उसका उत्तम मनोरथ मफल हो गया। मिथिला-
नरेश ! जो मनुष्य परात्मर भगवान् श्रीकृष्णके इस पूतनोद्धार-
सम्बन्धी प्रगङ्गको मुनता है, उसको भगवान्की ग्रेमपूर्ण
भक्ति प्राप्त हो जाती है; फिर उसे धर्म, अर्थ और काम-
रूप त्रिवर्गकी उपलब्धि हो जाय, इसके लिये तो कहना
ही क्या है ॥ ३०-३४ ॥

फिर उन धर्मात्मा नरेशने परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णका
चिन्तन करते हुए नारदजीने कहा ॥ ४ ॥

राजा बहुलाद्व थोले—मुने ! आपने भूरि-भूरि पुण्य-
कर्म किये हैं। आपके राघपक्षे मैं धन्व और कृतार्थ हो
गया; क्योंकि भगवान्के भक्तोंका सङ्ग दुर्लभ और दुस्साध्य
है। मुने ! अहुत भक्तवत्सल साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने
बालयावस्थामें आगे चलकर कौन नी विचित्र लीला की, वह
मुझे बताइये ॥ ५-६ ॥

श्रीनारदजी कहने हैं—राजन् ! तुम श्रीकृष्ण-
सम्मत धर्मके पालक हो, तुमने यह बहुत उत्तम प्रसन्न किया
है। निश्चय ही संत पुरुषोंका सङ्ग सबके कल्याणका विस्तार
करनेवाला होता है ॥ ७ ॥

एक दिन, जब भगवान् श्रीकृष्णके जन्मवा नक्षत्र प्राप्त
हुआ था, नन्दरानी श्रीयशोदाजीने गोप और गोपियोंको

प्रह्लाद शम्भवे दसं शशमुद्देशसे ददौ । दुर्बालाः श्रीयशोदाजीनन्दरान्दरे ॥

अनेन रक्षा कृत्वाद्य गोपीभिः श्रीयशोदाजी । पायवित्वा स्तनं दानं विप्रेभ्यः प्रददौ महत ॥

(गण०, गोलोक० १३ । २६-२४)

अपने वहाँ बुलाकर ब्राह्मणोंके बताये अनुसार मङ्गलविधान समझ किया । उस समय इवाम-संहोने बालक श्रीकृष्णको छाल रंगका बद्ध पहनाया गया । अङ्गोंको मुखर्जमय भूषणोंसे शूषित किया गया । उन्हें गोदामें छेकर मैयाने उनके विकसित कमल-सदृश कमनीय नेत्रोंमें काजल लगाया और गलेमें बघनलायुक्त चन्द्रहार धारण कराया तथा देवताओंको नमस्कार करके ब्राह्मणोंके लिये उत्तम धनका दान दिया । तदनन्तर गोपी यशोदाजीने शीघ्र ही अपने लालको पालनेपर किटा दिया और मङ्गल-दिवतपर गोपियोंमेंसे प्रत्येकका अङ्ग-अङ्ग स्वागत किया । उस मङ्गल-भवनमें उस दिन बहुत-से गोपोंका आना-जाना लगा रहा, अतः उन्होंके सत्कारमें अस्त रहनेके कारण वे अपने रोते हुए बालकका रुदन-शब्द सुन न सकीं । उसी क्षण पापात्मा कंसका मेजा हुआ एक राक्षस अस्ता । उसका नाम 'उत्कच' था । वह वायुमय शरीर धारण किये रहता था । वह आकर छकड़ेपर (जिसपर बड़े-बड़े बजनदार दही-दूधके मटके रक्खे जाते थे) बैठ गया और बालकके मस्तकपर उस शकटको उलटकर गिरानेके प्रयासमें लगा । इतनेमें ही श्रीकृष्णने रोते-रोते ही उस शकटपर पैरसे प्रहार कर दिया । फिर तो वह बड़ा छकड़ा ढूँक-ढूँक हो गया और देस्य मरकर नीचे आ गिरा । पेशी श्वितिमें वह वायुमय शरीर छोड़कर निर्भर्तु दिव्य देहसे सम्पन्न हो गया और भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम करके सौ घोड़ोंसे जुते हुए दिव्य विमानपर बैठकर भगवान्के निजी परमधाम गोलोकको चला गया । उस समय भजवासी नन्द आदि गोप तथा गोपियाँ सद-के-सद एक साथ वहाँ आ गये और बालकोंसे पूछने लगे—‘जुनकुमारो’ । यह शकट अपने-आप ही गिर पड़ा या किसीने इसे गिराया है? कैसे इसकी यह दशा हुई है, तुम जानते हो तो बताओ?’ ॥ ८—१३ ॥

बालकोंने कहा— पालनेपर सोया हुआ यह बालक दूध दीनेके लिये रोते-रोते ही पैर फेंक रहा था । वही पैर छकड़ेसे ठकराया, इसीसे यह छकड़ा उलट गया । अब बालकोंकी इस बातपर गोप और गोपियोंको विश्वास नहीं हुआ । वे सभी आस्तर्यमग्र होकर सोचने लगे—‘कहाँ तो तीन महीनेका यह छोटा-सा बालक और कहाँ इतने विश्वाल बोक्षवाला यह छकड़ा ! यशोदाको यह शङ्खा हो गयी कि बच्चोंको कोई बालक्षण्य लग गया है । अतः उन्होंने बालकको गोदमें लेकर ब्राह्मणोंद्वारा विभिन्नरूप ग्रहण करवाया ।

उसमें उन्होंने ब्राह्मणोंको धन आदिसे पूर्णतया दूत कर दिया ॥ १४—१६ ॥

श्रीबहुलाभ्यने पूछा— महामुने ! इस ‘उत्कच’ नामके राक्षसने पूर्वजन्ममें कौन-सा पुण्यकर्म किया था, जिसके फलस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके चरणका स्वर्ण पाकर वह तत्काल मोक्षका भागी हो गया ? ॥ १७ ॥

श्रीनारदजीने कहा— मिथिलेश्वर ! यह उत्कच पूर्व-जन्ममें हिरण्याक्षका पुत्र था । एक दिन वह लेमशजीके आभमपर गया और वहाँ उसने आभमके वृक्षोंको चूर्ण कर दिया । स्थूलदेहसे युक्त महाबली उत्कचको लङ्घा देख ब्राह्मण शृणुपि रोषयुक्त होकर उसे शाप दे दिया—‘दुमते ! तू देह-रहित हो जा ।’ उसी कर्मके परिपाकसे उसका वह शरीर सर्प-शरीरसे केंचुलकी भाँति छूटकर गिर पड़ा । यह देख वह महान् दानव मुनिके चरणोंमें गिर पड़ा और बोल ॥ १८—२० ॥

उत्कचने कहा— मुने ! आप कृपाके सागर हैं । मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिये । भगवन् ! मैंने आपके प्रभावको नहीं जाना । आप मेरी देह मुक्ते दे दीजिये ॥ २१ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं— राजन् ! तदनन्तर वे मुनि लोमश प्रसन्न हो गये । जिन्होंने विधाताकी सौ नीतियाँ देखी हैं, अर्थात् जिनके सामने सौ ब्रह्मा बीत चुके हैं, ऐसे संतोंका रोप भी वरदायक होता है । फिर उनका वरदान मोक्षप्रद हो, इसके लिये तो कहना ही क्या है ॥ २२ ॥

लोमशजी बोले— चाषुप-मन्वन्तरतक तो तेरा शरीर वायुमय रहेगा । इसके बीत जानेपर वैवस्वत-मन्वन्तर आयेगा । उसी समयमें (अङ्गाईसवें द्वापरके अन्तमें) भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंका स्वर्ण होनेसे तेरी मुनि होगी ॥ २३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं— राजन् ! उक्त वरद शापके कारण लोमशजीके प्रतापसे दानव उत्कच भी भगवान्के परम धारका अधिकारी हो गया । जो वर और शाप देनेमें पूर्ण स्वतन्त्र हैं, उन श्रेष्ठ संतोंके लिये मेरा नमस्कार है ॥ २४ ॥

राजन् ! एक दिन नन्दरानी यशोदाजीकी गोदमें बालक श्रीकृष्ण सेल रहे थे और नन्दरानी उन्हें अङ्ग छकड़ा लगी थीं । योही ही देरमें बालक धर्वतके समान भारी प्रतीत होने

ल्या । वे उसे गोदमें उठाये रखनेमें असमर्थ हो गयी और मन-ही-मन सोचने लगीं—‘अहो ! इस बालकमें पहाड़-सा भारीपन कहाँसे आ गया ?’ फिर उन्होंने बाल्योपाल्को भूमिपर रख दिया, किंतु यह रहस्य किसीको बताया नहीं । उसी समय कंसका मैत्रा तुझा महावर्जी दैत्य ‘तुणावर्त’ वहाँ आकर आँगनमें खेले हुए सुन्दर बालक श्रीकृष्णको बवंडरस्परे उठा के गया । तब गोदूङ्कमें पेसी धूल उठी, जिसके कारण अँधेरा का गया और भयंकर शब्द होने लगा । दो घृतीक सबकी आँखोंमें धूल भरी रही । उस समय यशोदाजी नन्द-मन्दिरके आँगनमें अपने लालाको न देखकर चरा गयी । रोती हुई महलके शिशरोंकी ओर देखने लगीं । वे बड़े भयंकर दीखते थे । जब कहीं भी अपना लाला नहीं दिखायी दिया, तब वे मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं और होशमें अनेपर उत्थावरसे इस प्रकार करण-विलाप करने लगीं, मानो बछड़के मर जानेपर गौ कन्दन कर रही हो । प्रेम और स्नेहने व्याकुल हुई गोपियाँ भी रो रही थीं । उन लबके पुखपर आँखुओंकी चारा वह रही थी । वे इधर-उधर दैखती हुई नन्दनन्दनकी खोजमें का गर्भी । उधर तुणावर्त आकाशमें दस योजन ऊपर आ पहुँचा । बालक श्रीकृष्ण उसके कंपेपर थे । उनका शरीर उसे सुमेह पर्वतीकी भाँति भारी प्रतीत होने लगा । उसे अस्तन्त पीड़ा होने लगी । तब वह दानव श्रीकृष्णको वहाँ नीचे पटकनेकी चेष्टामें ल्या गया । यह जानकर परिषूर्जतम भगवान्ने स्वयं उसका गला पकड़ लिया । निशाचरके ‘छोड़ दे, छोड़ दे !’ कहनेपर अद्भुत बालक श्रीकृष्णने बड़े जोरसे उसका गला छाया, इससे उसके प्राण-पलेह उड़ गये । उसकी देहसे ज्योति निकली और घनश्याममें उसी प्रकार विलीन हो गयी, जैसे बादलमें विजली । तब आकाशसे दैत्यका शरीर बालकके साथ ही एकशिलापर गिर पड़ा । गिरते ही उसकी बोटी-बोटी छितरा गयी । गिरनेके धमाकेसे सम्भूर्ण दिशाएँ प्रतिष्ठित हो उठीं, भूमण्डल काँपने लगा । उस समय रोती हुई सब गोपियोंने राक्षसकी पीठपर चुपचाप बैठे बालक श्रीकृष्णको एक साथ ही देखा और हौड़कर उद्दें उठा लिया । फिर माता यशोदाको देकर वे कहने लगीं—॥ २५-३७ ॥

गोपियाँ खोल्नी—यशोदे ! तुममें बालकके आँख-पाल्नकी रत्तीभर भी योग्यता नहीं है । कहनेसे तो तुम बुद्ध मान जाती हो; किंतु सच बात यह है कि कहीं, कभी

तुममें दया देखी ही नहीं गयी । भला कहो तो, इत्य प्रकार अन्वकार आ जानेपर कोई भी अपने बन्धेको गोदसे अल्प करता है ! तू पेसी निर्देश है कि ऐसे महान् भयके अवसरपर भी बालकको जामीनपर रख दिया ! ॥ ३८-३९ ॥

यशोदाजीने कहा—अहिनो ! समझमें नहीं आता कि उस समय मेरा लाला क्यों गिरिराजके समान भारी लगने लगा था; इसीलिये उस महाभर्तकर बवंडरमें भी मैंने इसे गोदीसे उतारकर भूमिपर रख दिया ॥ ४० ॥

गोपियाँ कहने लगीं—यशोदाजी ! रहने दो, धूत न बोलो । कल्याणी ! तुम्हारे दिलमें जरा भी दया-मया नहीं है । यह उधमुँहा बचा तो फूल और रुईके समान हल्का है ॥ ४१ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—बालक श्रीकृष्णके घर आ जानेपर नन्द आदि गोप और गोपियाँ—सभीको बड़ा हर्ष हुआ । वे सब लोगोंके साथ उगकी कुशल-बार्ता कहने लगे । यशोदाजी बालक श्रीकृष्णको उठा के गर्भी और बार-बार लाल्य पिलाकर, मस्तक लूँधकर और आँचलसे छातीमें छिपाकर छोह-मोहके बशीभूत हो, रोहिणीसे कहने लगीं ॥ ४२-४३ ॥

श्रीयशोदाजी खोल्नी—बहिन ! मुझे देखने यह एक ही पुत्र दिया है, मेरे बहुत-से पुत्र नहीं हैं; इस एक पुत्रपर भी क्षणभरमें अनेक प्रकारके अरिष्ट आते रहते हैं । आज यह मौतके मुँहसे बचा है । इससे अधिक उत्सात और क्या होगा ? अतः अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ तथा अब और कहाँ रहनेवाली व्यवस्था करूँ ? धन, शरीर, मकान, अटारी और विविध प्रसारके रसन—इन सबसे बढ़कर मेरे लिये यह एक ही बात है कि मेरा यह बालक कुशलसे रहे । यदि मेरा यह बचा अरिष्टोंपर विजयी हो जाय तो मैं भगवान् श्रीहरिकी पूजा, दान प्रदान यश करूँगी; तड़ाग-बापी आदिका निर्माण करूँगी और सैकड़ों मन्दिर बनवा दूँगी । प्रिय रोहिणी ! जैसे अंधेके लिये लाडी ही सद्वारा है, उसी प्रकार मेरा सारा सुख इस बालकने ही है । अतः बहिन ! अब मैं अपने लालाको उग स्थानपर ले जाऊँगी, जहाँ कोई भय न हो ॥ ४४-४५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! उसी समय नन्द-मन्दिरमें बहुत-से विद्वान् ब्राह्मण पधारे और उत्तम आसन-

पर बैठे । नन्द और यशोदाजीने उन सबका विचित्रता पूछन किया ॥ ४९ ॥

महाभाग ब्राह्मण बोले— ब्रजपति नन्दजी तथा ब्रजेश्वरी यशोदे ! तुम चिन्ता मत करो । हम इस बालककी कवच अदिसे रक्षा करेंगे, जिससे यह दीर्घजीवी हो जाय ॥ ५० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं— राजन् ! उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने कुशांगी, नूतन पल्लवी, पवित्र कलशी, शुद्ध जल तथा शृङ्, यजु एवं सामवेदके स्तोत्रों और उच्चम स्वस्ति-वाचन आदिके हारा विचित्रिधानसे यश करवाकर अग्निकी पूजा करायी । तब उन्होंने बालक श्रीकृष्णकी विचित्रता 'रक्षा की (रक्षार्थ निम्नाङ्कित कवच पढ़ा) ॥ ५१-५२ ॥

ब्राह्मणोंने कहा— भगवान् दामोदर तुम्हारे चरणोंकी रक्षा करें । विष्णुश्रवा धुटनोंकी, श्रीविष्णु जाँघोंकी और स्वयं परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारी नाभिकी रक्षा करें । भगवान् राष्ट्रवड्डम तुम्हारे कटिभागीकी तथा पीताम्बरधारी तुम्हारे उदरकी रक्षा करें । भगवान् पश्चानाम दुर्दयेशकी, गोवर्धनधारी बाँहोंकी, मशुराधीश्वर मुखकी एवं हारकानाथ लिंगकी रक्षा करें । असुरोंका संहार करनेवाले भगवान् पीठकी रक्षा करें और साक्षात् भगवान् गोविन्द सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करें । तीन स्तोकवाले इस स्तोत्रका जो मनुष्य निरन्तर पाठ करेगा, उसे परम सुलक्षण प्राप्ति होगी और उसे कहीं भी भयका सामना नहीं करना पड़ेगा ॥ ५३-५४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं— तदनन्तर नन्दजीने उन

इस प्रकार श्रीगर्ग-सहितामें गोलोकस्पष्टके अन्तर्गत नारद-ब्रह्माश-संवादमें 'शकटसुर और तृणवर्तका मोक्ष' नामक चौदहबाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

ब्राह्मणोंको एक लाख गायें, इस लाख स्वर्णमुद्राएँ, एक इजार नूतन रत्न और एक लाल बद्धिया बल्ल दिये । उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके चले जानेपर नन्दजीने गोपोंको बुला-बुलाकर मोजन कराया और मनोहर ब्रजाभ्यष्णोंसे उन सबका सत्कार किया ॥ ५७-५८ ॥

श्रीब्रह्माश्वने पूछा— मुने ! यह तृणवर्त पहले जन्ममें कौन-सा पुण्यकर्म मनुष्य था, जो साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णमें लीन हो गया ? ॥ ५९ ॥

श्रीनारदजी बोले— राजन् ! पाण्डुदेशमें 'सहस्राक्ष' नामसे विख्यात एक राजा थे । उनकी कीर्ति सर्वत्र व्याप्त थी । भगवान् विष्णुमें उनकी अपार श्रद्धा थी । वे धर्ममें इच्छा रखते थे । यह और दानमें उनकी बड़ी लगान थी । एक दिन वे रेवा (नर्मदा) नदीके दिव्य तटार गये । लताएँ और बैत उस तटकी शोभा बढ़ा रहे थे । वहाँ बहुसौ जियोंके साथ आनन्दका अनुभव करते हुए वे विचरने लगे । उसी समय स्वयं दुर्वासा मुनिने वहाँ पदार्पण किया । राजा उनकी बन्दना नहीं की, तब मुनिने शाप दे दिया—‘तुर्द्वे ! त् राष्ट्रस दो जा ।’ फिर तो राजा सहस्राक्ष दुर्वासाजीके चरणोंमें पड़ गये । तब मुनिने उन्हें बर दिया—‘राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णके विग्रहका सर्व होनेसे तुम्हारी मुक्ति हो जायगी’ ॥ ६०-६४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं— राजन् ! वे ही राजा सहस्राक्ष दुर्वासाजीके शापसे भूमण्डलपर तृणवर्त नामक दैत्य हुए थे । भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य श्रीविग्रहका सर्व होनेसे उनको सर्वात्म मोक्ष (गोलोकधाम) प्राप्त हो गया ॥ ६४ ॥

* ब्राह्मण कन्तुः—

दामोदरः पातु पादौ जानुनी विष्णुश्रवाः । ऋष यातु हरिनाभि परिपूर्णतमः स्वयम् ॥

कटि राथपतिः पातु पीतवासासात्योदरम् । हृदयं पूर्मनाभहच शुजौ गोवर्धनोदधरः ॥

सुखं च मशुरानामो हारकेतः लिंगोऽन्तु । पृष्ठं पात्वसुरद्यंसी सुवंतो भगवान् स्वयम् ॥

इलोकत्रयमिदं स्तोत्रं यः पठेन्नामः उदा । महासौख्यं मवेत्तम्य न भवं विष्वते वरचित् ॥

(गर्म०, गोलोक० १४ । ५३-५४)

पंद्रहवाँ अध्याय

**यशोदाद्वारा श्रीकृष्णके मुखमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका दर्शन; नन्द और यशोदाके पूर्वपुण्यका परिचय;
गर्गचार्यका नन्द-भवनमें जाकर बलराम और श्रीकृष्णके नामकरण-संस्कार करना तथा
बुधभानुके यहाँ जाकर उन्हें श्रीराधा-कृष्णके नित्य-सम्बन्ध एवं माहात्म्यका ज्ञान करना**

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् । एक दिन सौंबद्धे सखेने बालक श्रीकृष्ण सोनेके रत्नजटित पालनेपर सोये हुए थे । उनके मृदूपर लोगोंके मनको मोहनेवाले मन्दद्वाल्यकी छटा छा रही थी । दृष्टिजनित पीड़िके निवारणके लिये नन्दनन्दनके ललाटपर नाजलका ढिठांना शोभा पा रहा था । कमलके समान सुन्दर नेत्रोंमें काजल लगा था । अपने उस सुन्दर लालको मैया यशोदाने गोदमें ले लिया । वे बालमुकुन्द पैरका अँगूठा चूस रहे थे । उनका स्वभाव चपल था । नील, नूतन, कोमल एवं धुंधलाले केशबन्धोंसे उनकी अङ्गज्ञटा अद्भुत जान पड़ती थी । वक्षःस्यलपर श्रीवत्सचिह्न, वधनखा तथा चमकीला अर्धचन्द्र-(नामक आभूषण) शोभा दे रहे थे । अपार दयामयी गोदी श्रीयशोदा अपने उस लालको लाल लड़ाती हुई वडे आनन्दका अनुभव कर रही थी । राजन् । बालक श्रीकृष्ण दूध पी चुके थे । उन्द्र ज़ैभाई आ रही थी । माताकी दृष्टि उधर पढ़ी तो उनके मुखमें वृथिव्यादि पाँच तत्त्वोंसहित सम्पूर्ण विराट्(ब्रह्माण्ड) तथा इन्द्र-प्रभुति श्रेष्ठ देवता दृष्टिगोचर हुए । तब श्रीयशोदाके मनमें प्रास छा गया । अतः उन्होंने अपनी आँखें मौद ली ॥१-३॥

महाराज ! परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण सर्वश्रेष्ठ हैं । उनकी ही मायासे सम्पूर्ण संसार सत्तावान् बना है । उसी मायाके प्रभावसे यशोदाजीकी स्मृति टिक न सकी । फिर अपने बालक श्रीकृष्णपर उनका वात्सल्यगूण दयामाव उत्सन्न हो गया । अहो ! श्रीनन्दरानीके तपका वर्णन कहाँतक कहूँ ॥४॥

श्रीबहुलाद्वने पूछा—पुनिवर ! नन्दजीने यशोदाके साथ कौन-सा महान् तप किया था, जिसके प्रभावसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उनके यहाँ पुत्ररूपमें प्रकट हुए ॥५॥

श्रीनारदजीने कहा—आठ बहुओंमें प्रधान जो ‘दोण’ नामक वसु हैं, उनकी छीका नाम ‘धरा’ है । इन्हें संतान नहीं थी । वे भगवान् श्रीविष्णुके परम भक्त थे । देवताओंके राज्यका भी पालन करते थे । राजन् । एक उमय पुत्रकी

अभिलाषा होनेपर ब्रह्माजीके आदेशसे वे अपनी सहचर्मिणी धराके साथ तप करनेके लिये मन्दरान्वल पर्वतपर गये । वहाँ दोनों दमति कंद, मूल एवं फल खाकर अथवा सूखे पसे चबाएँ तपस्या करते थे । बादमें जलके आधार-पर उनका जीवन चलने लगा । तदनन्तर उन्होंने जड़ पीना भी बंद कर दिया । इस प्रकार जनशूल्य देवामें उनकी तपस्या चलने लगी । उन्हें तप करते जब दस करोड़ वर्ष बीत गये, तब ब्रह्माजी प्रसन्न होकर आये और बोले—‘कर माँगो’ ॥६-९॥

उस समय उनके ऊपर दीमके चढ़ गयी थीं । अतः उन्हें इटाकर द्रोण अपनी पत्नीके साथ बाहर निकले । उन्होंने ब्रह्माजीको प्रणाम किया और विधिवत् उनकी पूजा की । उनका मन आनन्दसे उत्सुकित हो उठा । वे उन प्रसुसे बोले—॥१०॥

श्रीद्रोणने कहा—ब्रह्मन् । विधे । परिपूर्णतम जनाद्वन्द्व भगवान् श्रीकृष्ण मेरे पुत्र हो जायें और उनमें हम दोनोंकी प्रेमलक्षणा भक्ति सदा बनी रहे, जिसके प्रभावसे मनुष्य दुर्लभ्य भवसागरको सहज ही पार कर जाता है । इस दोनों तपत्वीजनोंको दूसरा कोई वर अभिलिषित नहीं है ॥११-१२॥

श्रीब्रह्माजी बोले—तुमलोगोने मुखसे जो वर माँगा है, वह कठिनाईसे पूर्ण होनेवाला और अत्यन्त दुर्लभ है । फिर भी दूसरे जन्ममें तुमलोगोंकी अभिलाषा पूरी होगी ॥१३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् । वे ‘दोण’ ही इस पृथ्वीपर नन्द हुए और ‘धरा’ ही ‘यशोदा’ नामसे विद्युत दुइ हैं । ब्रह्माजीकी बाणी सत्य करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण पिता बहुदेवजीकी मुरी मधुरसे ब्रह्ममें पचारे थे । भगवान् श्रीकृष्णका शुभ चरित्र मुधा-निर्मित लौहरे भी अधिक मीठा है । गन्धमादन पर्वतके शिखरपर भगवान् नरनारायणके श्रीमुखसे मैंने इसे चुना है । उनकी छाते

मैं कृतार्थ हो गया । वही कथा मैंने तुमसे कही है; अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १४-१६ ॥

श्रीवृद्धार्थने पृछा—महामुने ! शिशुरपश्चाती उन सनातन पुरुष भगवान् श्रीहरिने बलरामजीके साथ कौन-कौन-सी लीलाएँ कीं, यह मुझे बताइये ॥ १७ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! एक दिन बासुदेवजीके भेजे हुए महामुनि गर्गार्चार्य अपने शिष्योंके साथ नन्दभवनमें पधारे । नन्दजीने पाठ्य आदि उत्तम उपचारों-द्वारा मुनिश्रेष्ठ गर्गकी विवित् पूजा की और प्रदक्षिणा करके उन्हें साक्षात् प्रणाम किया ॥ १८-१९ ॥

नन्दजी बोले—आज हमारे पितर, देवता और अग्नि—सभी संतुष्ट हो गये । आपके चरणोंकी धूलि पढ़नेसे हमारा धर परम पवित्र हो गया । महामुने ! आप भी बालकका नामकरण कीजिये । विग्रहर प्रभो ! अनेक पुण्यों और सीधीयोंका बेवन करनेपर भी आपका शुभागमन मुक्तम नहीं होता ॥ २०-२१ ॥

श्रीगर्गजीने कहा—नन्दरायजी ! मैं तुम्हारे पुत्रका नामकरण करूँगा, इसमें संशय नहीं है; किंतु कुछ पूर्वकाळ की बात बताऊँगा, अतः एकान्त स्थानमें चलो ॥ २२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर गर्गजी नन्द-यशोदा तथा दोनों बालक—श्रीकृष्ण एवं बलरामको साथ छेकर गोशालामें, जहाँ दूसरा कोई नहीं था, चढ़े गये । वहाँ उन्होंने उन बालकोंका नामकरण-संस्कार किया । सर्वप्रथम उन्होंने गणेश आदि देवताओंका पूजन किया, फिर यत्नपूर्वक श्रहोंका शोषण (विचार) करके हृषीे पुकारित हुए महामुनि गर्गार्चार्य नन्दसे बोडे ॥ २३-२४ ॥

गर्गजीने कहा—ये जो रोहिणीके पुत्र हैं इनका नाम बताता हूँ—सुनो । इनमें योगीजन रमण करते हैं अथवा ये सबमें रमते हैं या अपने गुणोद्घारा भक्तजनोंके मनको रमाया करते हैं इन कारणोंसे उल्लङ्घ शानीजन इन्हें शाम् नामसे जानते हैं । योगमायाद्वारा गर्भका संकरण होनेसे इनका प्रादुर्भाव हुआ है, अतः वे 'संकरण' नामसे प्रसिद्ध होंगे । अशेष जगत्का संहार होनेपर भी ये शेष रह जाते हैं, अतः इन्हें लोग 'शेष' नामसे जानते हैं । सबसे अधिक बलवान् होनेसे ये खल नामसे भी विस्मयात होंगे ॥ २५-२६३ ॥

* रमन्ते योगिनो शास्त्रित् सर्वम् रमतीति च ॥
शुभेष्य रमन् सकास्तेन एवं विदुः च ॥

नन्द ! अब अपने पुत्रके नाम सावधानीके साथ दुनो—ये सभी नाम तत्काल प्राणिमात्रको पावन करनेवाले तथा चराचर समस्त जगत्के लिये परम कस्यणकारी हैं । क' का अर्थ है—कमलाकान्त; 'भू'कारका अर्थ है—राम; 'ष' अक्षर षड्विध ऐश्वर्यके स्वामी श्वेतदीपनिवासी भगवान् विष्णुका बाचक है । 'ग' नरसिंहका प्रतीक है और 'अकार' अक्षर अग्निसुक् (अग्निस्त्रपसे हविष्यके भोक्ता अथवा अग्निदेवके रक्षक) का बाचक है तथा दोनों विसर्गरूप विदु (:) नर-नारायणके बोधक हैं । ये छहों पूर्ण तत्त्व जिस महामन्त्ररूप परिपूर्णतम् शब्दमें लीन हैं, वह इसी व्युत्पत्तिके कारण 'कृष्ण' कहा गया है । अतः इस बालकका एक नाम 'कृष्ण' है । सत्ययुग, ज्ञेता, द्वापर और कलियुग—इन शुगोंमें इन्होंने शुक्ल, रक्त, पीत तथा कृष्ण कान्ति ग्रहण की है । द्वापरके अन्त और कलिके आदिमें यह बालक 'कृष्ण' अङ्गकान्तिको प्राप्त हुआ है । इस कारणसे भी यह नन्दननन्दन 'कृष्ण' नामसे विस्थार होगा ॥ २७—३२ ॥

इनका एक नाम 'बासुदेव' भी है । इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'वसु' नाम है इन्द्रियोंका । इनका देवता है—चित्त । उस चित्तमें स्थित रहकर जो चेष्टाशील हैं, उन अन्तर्यामी भगवान्को 'बासुदेव' कहते हैं । वृषभानुकी पुनी राधा जो कीर्तिके भवनमें प्रकट हुई है, उनके बे साक्षात् प्राणनाथ बनेंगे; अतः इनका एक नाम 'राधापति' भी है । जो साक्षात् परिपूर्णतम् स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र है,

गमतंकृष्णादस संकरण इति स्तुतः ॥

सम्बन्धेषाद् वं वैषं वक्षिष्याद् वल विदुः ।

(गर्ग०, गोलोक० १५ । २५-२६३३)

† सच्चप्राणिपवित्राणि जगती मक्तानि च ।

कलारः कमलाकान्त ज्ञानरो राम इत्यपि ॥

पक्षरः षट्पूर्णपतिः श्वेतदीपनिवासकृष्ण ।

पक्षारो नरसिंहोद्यमक्षरो शक्तरोद्यनभुक् ॥

विसर्गो च तथा शेषो नरनारायणाहृषी ।

सम्बन्धेषाद् पट् पूर्ण वक्षिष्याद् महामनो ॥

परिपूर्णमें साक्षात् तेन कृष्णः प्रकीर्तिः ।

शुभेष्ये रक्षस्तथा पीतो वणोऽस्यानुयुगं शृतः ॥

द्वापरान्ते कलेशदीप बालोऽवं कृष्णतां गतः ।

सम्बाद् कृष्ण इति स्वातो नामनाथ नन्दनन्दनः ॥

(गर्ग०, गोलोक० १५ । २८-२९३)

असंख्य ब्रह्माण्ड जिनके अधीन हैं और जो गोलोकधारमें विचारते हैं, वे ही परम प्रभु तुम्हारे यहाँ बालकरूपसे प्रकट हुए हैं। पृथ्वीका भार उतारना, कंस आदि तुष्टोंका संहर करना और भक्तोंकी रक्षा करना—ये ही इनके अवतारके उद्देश्य हैं ॥ ३३—३६ ॥

भरतवंशोद्धव नन्द ! इनके नामोंका अन्त नहीं है । वे सब नाम वेदोंमें गूढ़रूपसे कहे गये हैं। इनकी लीलाओंके कारण भी उन-उन कर्मोंके अनुसार इनके नाम विख्यात होंगे। इनके अद्भुत कर्मोंके लेकर आश्रय नहीं करना चाहिये। तुम्हारा अहोभाग्य है; क्योंकि जो साक्षात् परिपूर्णतम परात्पर श्रीपुरुषोत्तम प्रभु है, वे तुम्हारे घर पुत्रके रूपमें शोभा पा रहे हैं ॥ ३७-३८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् । यों कहकर श्री-गर्गजी जब चले गये, तब प्रमुदित हुए प्रभामति नन्दराजने यशोदासहित अपनेको पूर्णकाम एवं कृतकृत्य माना ॥ ३९ ॥

तदनन्तर शानिशिरोमणि शानदाता मुनिश्रेष्ठ श्रीगर्गजी यमुनातटपर सुशोभित वृषभानुजीकी पुरीमें पधरे। छत्र धारण करनेसे वे दूसरे इन्द्रकी तथा दण्ड धारण करनेसे साक्षात् धर्मराजकी भाँति सुशोभित होते थे। साक्षात् दूसरे सूर्यकी भाँति वे अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे। पुस्तक तथा मेखलासे युक्त विग्रहर गर्ग दूसरे ब्रह्माकी भाँति प्रतीत होते थे। शुक्ल वस्त्रोंसे सुशोभित होनेके कारण वे भगवान् विष्णुकी-सी शोभा पाते थे। उन मुनिश्रेष्ठको देखकर वृषभानुजीने तुरंत उठकर अत्यन्त आदरके साथ विर छूकाकर उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर वे उनके सामने लड़े हो गये। पूजनोपचारके शाता वृषभानुने मुनिको एक मङ्गलमय आसनपर विठाकर पाय आदिके द्वारा उन शानिशिरोमणि गर्गका विधिवत् पूजन किया। फिर उनकी परिक्रमा करके महान् 'वृषभानुवर' इस प्रवार बोले ॥ ४०—४५ ॥

श्रीवृषभानुने कहा—संत पुरुषोंका विचरण शान्तिमय है; क्योंकि वह यहस्यजनोंको परम शान्ति प्रदान करनेवाला है। मनुष्योंके भीतरी अन्धकारका नाश महात्माजन ही करते हैं, स्मृदेव नहीं। भगवन् ! आपका दर्शन पाकर इम सभी गोप पवित्र हो गये। भूमण्डलपर आप जैसे साधु-महात्मा पुरुष तीर्थोंको भी पावन बनानेवाले होते हैं। मुने ! मेरे यहाँ एक कन्या हुई है, जो मङ्गलकी

चाम है और जिलका 'राधिका' नाम है। आप भलीभांति विचारकर यह बतानेकी कृपा कीजिये कि इसका सुभ विवाह किसके साथ किया जाय। सर्वकी भाँति आप तीनों लोकोंमें विचरण करते हैं। आप दिव्यवर्णन हैं, जो इसके अनुरूप सुयोग्य थर होगा, उसीके हाथमें इस कस्याणमयी कम्याको ढूँगा ॥ ४६—४७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् । तदनन्तर मुनिकर गर्गजी वृषभानुजीका हाथ पत्रके यमुनाके तटपर गये। वहाँ एक निर्जन और अत्यन्त मुन्द्र स्थान था, जहाँ कालिन्दी-जलकी कल्होलमालीओंकी कल-कल ध्वनि सदा गूँजती रहती थी। वहाँ गोपेश्वर वृषभानुको बैठाकर धर्मस मुनीन्द्र गर्ग इस प्रकार कहने लगे ॥ ५०-५१ ॥

श्रीगर्गजी बोले—वृषभानुजी ! एक गुप बात है, वह तुम्हें किसीसे नहीं कहनी चाहिये। जो असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, गोलोकधामके स्वामी, परात्पर तथा साक्षात् परिपूर्णतम हैं; जिनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है; स्वयं वे ही भगवान् श्रीकृष्ण नन्दके घरमें प्रकट हुए हैं ॥ ५२-५३ ॥

श्रीवृषभानुने कहा—महामुने ! नन्दजीका भी भाग्य अद्भुत है, घन्य एवं अवर्णनीय है। अब आप भगवान् श्रीकृष्णके अवतारका सम्पूर्ण कारण मुझे बताइये ॥ ५४ ॥

श्रीगर्गजी बोले—पृथ्वीका भार उतारने और कंस आदि तुष्टोंका विनाश करनेके लिये ब्रह्माजीके प्रार्थना करने-पर भगवान् श्रीकृष्ण पृथ्वीपर अवतोर्ण हुए हैं। उन्हों परम प्रभु श्रीकृष्णकी पटरानी, जो प्रिया श्रीराधिकाजी गोलोकधाममें विराजती हैं, वे ही तुम्हारे घर पुश्चरूपसे प्रकट हुए हैं। तुम उन पराद्यकि राधिकाको नहीं जानते ॥ ५५-५६ ॥

श्रीनारदजी कहने हैं—राजन् । उस समय गोप वृषभानुके मनमें आनन्दकी बाढ़ आ गयी और वे अत्यन्त विस्मित हो गये। उन्होंने कलावती (कीर्ति) को बुलाकर उनके साथ विचार किया। पुनः श्रीराधा-कृष्णके ग्रभावको जानकर गोपबर वृषभानु आनन्दके आँसू बहाते हुए पुनः महामुनि गर्गसे कहने लगे ॥ ५७-५८ ॥

श्रीवृषभानुने कहा—द्विजवर ! उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णको मैं अपनी यह कमलनयनी कन्या समर्पण करूँगा। आपने ही मुझे यह सन्मार्ग दिखलाया है; अतः आपके द्वारा ही इसका शुभ विवाह-संस्कार सम्पन्न होना चाहिये ॥ ५९ ॥

श्रीगर्जीने कहा—राजन् ! श्रीराधा और श्रीकृष्णका पाणिग्रहण-संस्कार मैं नहीं करऊँगा । यमुनाके तटपर भाष्ठीर-बनमें इनका विवाह होगा । बृन्दावनके निकट जनशृन्य सुरम्य स्थानमें स्वयं श्रीव्रजाजी पधारकर इन दोनोंका विवाह करायेंगे । गोपवर ! तुम इन श्रीराधिकाओं भगवान् श्रीकृष्णकी बलभा समझो । संसारमें राजाओंके शिरोमणि तुम हो और लोकोंका शिरोमणि गोलोकधाम है । तुम सम्पूर्ण गोप गोलोकधामसे ही इस भूमण्डलपर आये हो । वैसे ही समस्त गोपियाँ भी श्रीराधिकाजीकी आशा मानकर गोलोकसे आयी हैं । बड़े-बड़े यज्ञ करनेपर देवताओं-को भी अनेक जन्मोंतक जिनकी छाँकी सुलभ नहीं होती, उनके लिये भी जिनका दर्शन दुर्घट है, वे साक्षात् श्रीराधिकाजी तुम्हारे मन्दिरके आँगनमें गुपरूपसे विरज रही हैं और बहुसंख्यक गोप और गोपियाँ उनका साक्षात् दर्शन करती हैं ॥ ६०-६४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! श्रीराधिकाजी और भगवान् श्रीकृष्णका यह प्रशंसनीय प्रभाव सुनकर श्रीकृष्णमानु और कीर्ति दोनों अत्यन्त विस्मिततमा आनन्दमें आहादित हो उठे और गर्जीमें कहने लगे ॥ ६५ ॥

दम्पति बोले—ब्रह्मन् ! 'राधा' शब्दकी तात्त्विक

इस प्रकार श्रीगर्ज-संहितामें गोलोकधामके अन्तर्गत नारद-बहुलाश-संवादमें 'नन्द-पक्षीका विश्वस्तपदर्शन तथा श्रीकृष्ण-

बलरामका नामकरण-संस्कार' नामक पद्मबाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

सोलहवाँ अध्याय

भाण्डीर-बनमें नन्दजीके द्वारा श्रीराधाजीकी स्तुति; श्रीराधा और श्रीकृष्णका ब्रह्माजीके द्वारा विवाह; ब्रह्माजीके द्वारा श्रीकृष्णका स्तवन तथा नव-दम्पतिकी मधुर लीलाएँ

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! एक दिन नन्दजी अपने नन्दनको अङ्कमें लेकर लाड लड़ाते और गाँए चराते हुए खिरकके पासमें वहुत दूर निकल गये । धीरे-धीरे भाण्डीर-बनमें जा पहुँचे, जो कालिन्दी-नीरका सर्व करके

बहनेवाले तीरवर्ती शीतल समीरके झोंकेसे कमित हो रहा था । योइं ही देरमें श्रीकृष्णकी इच्छासे बायुका वेग अत्यन्त प्रख्लर हो उठा । आकाश मेंओंकी घटासे आच्छादित हो गया । तमाल और कदम्ब वृक्षोंके पल्लव दू-

* रम्या तु रकारः स्यादाकाररत्वादिगोपिका । धक्कारो धरया हि स्यादाकारो विरजा नदी ॥
श्रीकृष्णस्य धरसापि चतुर्था वैजसोऽमवत् । लीला भूः श्रीकृष्ण विरजा चतुर्थः पत्स्य धरय हि ॥
सम्प्रलीनाश तः सर्वा राधाया कुजमन्दिरे । परिपूर्णतमा राधा तस्यादाकुम्नेविषणः ॥
राधाकृष्णेति हे गोप ये जपन्ति पुनः पुनः पुनः । चतुर्थदार्थं कि तेषा साक्षात् कृष्णोऽपि लभ्यते ॥
(गर्ग०, गोलोक० १५ । ६८-७१)

दृढ़कर गिरने, उड़ने और अत्यन्त भयका उत्पादन करने लो। उस समय महान् अन्धकार छा गया। नन्दनन्दन रोने लगे। वे पिताकी गोदमें बहुत भयभीत हिलायी देने लगे। नन्दको भी भय हो गया। वे शिशुको गोदमें लिये परमेश्वर श्रीहरिकी शरणमें गये॥ १—३॥

उसी क्षण करोड़ों स्त्रीयोंके समृद्धकी-सी दिव्य दीपि उदित हुई, जो समूर्ण दिशाओंमें व्याप्त थी; वह कमशः निकट आती सी जान पड़ी। उस दीतिराशिके भीतर नी नन्दोंके राजाने बृष्टमानुनन्दिनी श्रीराधारोंके देखा। वे करोड़ों चन्द्र मण्डलोंकी कान्ति धारण किये हुए थीं। उनके श्रीअङ्गोंपर आदिनार्ण नील रंगके सुन्दर वस्त्र शोभा पा रहे थे। चरण-प्रान्तमें मञ्जीरोंमें धीर-ध्वनिसे युक्त नूपुरोंमें अत्यन्त मधुर शब्द हो रहा था। उस शब्दमें काञ्चीकलाप और कङ्कणोंकी झनकार भी मिली थी। रत्नमय हार, मुद्रिका और वाज्रुंदीकी प्रभामें वे और भी उद्धारित हो रही थीं। नाकमें मोतीकी तुलक और नक्केसरकी अपूर्व शोभा हो रही थी। कण्ठमें कंठा, सीमन्तपर चूड़ामणि और कानोंमें कुण्डल शलमला रहे थे। श्रीराधारोंके दिव्य तेजसे अभिभूत हो नन्दने तत्काल उनके सामने भस्तु छुकाया और हाथ जोड़कर कहा—‘राधे! ये साक्षात् पुरुषोत्तम हैं और तुम इनकी मुख्य प्राणवल्लभा हो, यह गुप्त रहस्य में गर्जीके मुखसे सुनकर जानता हूँ। राधे! अपने प्राणनाथको मेरे अङ्गोंसे क्षेलो। ये बादलोंकी गर्जनमें डर गये हैं। इन्होंने लीलावत्ता यहाँ प्रकृतिके गुणोंको स्वीकार किया है। इसीलिये इनके विषयमें इस प्रकार भयभीत होनेकी बात कही गयी है। देवि! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। तुम इस भूतल्पर मेरी यथेष्ट रक्षा करो। तुमने कृपा करके ही मुझे दर्शन दिया है, बास्तवमें तो तुम सब लोगोंके लिये दुर्लभ हो॥ ४—८॥

* तदेव क्षेत्रं क्षेत्रं श्रीसिरागच्छती वा चक्री दिव्याद् ।
क्षेत्रं तस्या पृष्ठभानुपुणी ददर्श राजा नन्दनन्दराजः ॥
क्षेत्रोन्दुविन्मधुतिमादधानां नीलाम्बरं सुन्दरभद्रिवर्णं भ् ।
मञ्जीरभीरचन्द्रनिन्पुराणमाविज्ञानी शाहमण्डलीवभञ्जनम् ॥
काञ्चीकलाकुण्डलशद्मिका इशारकुलीवाङ्गदविस्फुरन्त्याम् ॥
श्रीनामिकामौक्तिकाहसिकीभिः श्रीकण्ठच्छामणिकुण्डलाढथाम् ॥
तर्तुजेत्ता धर्षित आशु नन्दो नत्वाय तामाह कृताधिः सन् ।
अथं तु साक्षात्पुरुषोत्तमस्त्वं प्रियासि मुख्यासि सदैव राधे ॥
गुप्तं स्तिवं गर्गसुखेन वेष्यि गृहाण राधे निजनाथमधुरात् ।
दत्तं गुहं प्रापय भेषभीतं वदामि चेत्वं प्रकृतेगुणाक्षरम् ॥

श्रीराधारे कहा—नन्दजी! तुम टीक कहते हो। मेरा दर्शन दुर्लभ ही है। आज तुम्हारे भक्ति-भावसे प्रसन्न होकर ही मैंने तुम्हें दर्शन दिया है॥ ९॥

श्रीनन्द बोले—देवि! यदि बास्तवमें तुम मुख्यपर प्रसन्न हो तो तुम दोनों प्रिया-प्रियतमके चरणारबिन्दोंमें मेरी सुदृढ़ भक्ति बनी रहे। साथ ही तुम्हारी भक्तिसे भरपूर साधु भंतोंका सङ्ग मुझे सदा यिलता रहे। प्रत्येक युगमें उन संत-महात्माओंके चरणोंमें मेरा प्रेम बना रहे॥ १०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तब ‘तथास्तु’ कहकर श्रीराधारे नन्दजीकी गोदसे अपने प्राणनाशको दोनों हाथोंमें ले लिया। फिर जब नन्दरायजी उन्हें प्रणाम करके बहाँसे चले गये, तब श्रीराधिकारी भाण्डीर-वनमें गयीं। पहले गोलोकधारमसे जो ‘पृथ्वी देवी’ इस भूतल्पर उतरी थीं, वे उस समय अपना दिव्य रूप धारण करके प्रकट हुई। उक्त धारममें जिस तरह पश्चिमराग मणिसे जटित सुवर्णमयी भूमि शोभा पाती है, उसी तरह इस भूतल्पर भी व्रज-मण्डलमें उस दिव्य भूमिका तत्क्षण अपने संश्लृण रूपसे आविर्भाव हो गया। बृन्दावन कामपूरक दिव्य शुक्षोंके साथ अपना दिव्य रूप धारण करके शोभा पाने लगा। कलिन्दनन्दिनी यमुना भी तटपर सुवर्णनिर्मित प्रासादों तथा सुन्दर रत्नमय सोपानोंसे सम्पन्न हो गयीं। गोवर्धन पर्वत रत्नमयी शिलाओंसे परिपूर्ण हो गया। उसके स्वर्णमय शिखर सब ओरसे उद्घासित होने लगे। राजन्! मतवाले भ्रमरों तथा शरनोंसे सुशोभित कन्दराओंद्वारा वह पर्वतराज अत्यन्त ऊँचे अङ्गवाले गजराजकी भाँति सुशोभित हो रहा था। उस समय बृन्दावनके निकुञ्जने भी अपना दिव्य रूप प्रकट किया। उसमें सभाभवन, प्राणण तथा दिव्य मण्डप शोभा पाने लगे। वसन्त शुद्धकी सारी मधुरिमा वहाँ अभिस्वरूप हो गयी। मधुरों, मधूरों, करोतों तथा कोकिलोंके कबूलव सुनायी देने लगे। निकुञ्जवर्ती दिव्य मण्डपोंके शिखर सुवर्ण-रजादिसे खचित कल्पणोंसे अलंकृत थे। सब ओर फैहराती हुई पताकाएँ उनकी शोभा बढ़ाती थीं। वहाँ एक सुन्दर सरोवर प्रकट हुआ, जहाँ सुवर्णमय सुन्दर सरोज खिले हुए थे और उन सरोजोंपर बैठी हुई मधुपावलियाँ उनके मधुर मकरनन्दका पान कर रही थीं॥ ११—१६॥

नमामि तुम्हं प्रुषि रक्ष मा त्वं पवैस्तुतं सर्वजनेदुर्गापा ।

(गण०, गोलोक० १३। ४—८२)

दिव्यधामकी शोभाका अवतरण होते ही साक्षात् पुरुषोत्तमोत्तम घनश्याम भगवान् श्रीकृष्ण किशोरावस्थाके अनुरूप दिव्य देह भारण करके श्रीराधाके सम्मुख खड़े हो गये । उनके श्रीअङ्गोंपर पीताम्बर शोभा पा रहा था । कौस्तुभमणिसे विभूषित हो, हाथमें बंशी धारण किये वे नन्दनन्दन राजि-राजि मनमयों (कामदेवों) को मोहित करने लगे । उन्होंने हँसते हुए प्रियतमाका हाथ अपने हाथमें थाम लिया और उनके साथ विवाह मण्डपमें प्रविष्ट हुए । उस मण्डपमें विवाहकी सब सामग्री संग्रह करके रखली गयी थी । मेखला, कुशा, सप्तमृतिका और जलसे भरे कलश आदि उस मण्डपकी शोभा बढ़ा रहे थे । वहाँ एक श्रेष्ठ सिंहासन प्रकट हुआ, जिसपर वे दोनों प्रिया-प्रियतम एक-दूसरेसे सटकर विराजित हो रहे थे और अपनी दिव्य शोभाका प्रसार बरने लगे । वे दोनों एक-दूसरेसे मीठी-मीठी बातें करते हुए मेघ और विश्वुद्धकी भाँति अपनी प्रभासे उद्धीस हो रहे थे । उसी समय देवताओंमें श्रेष्ठ विधाता—भगवान् ब्रह्मा आकाशसे उत्तरकर परमात्मा श्रीकृष्णके सम्मुख आये और उन दोनोंके चरणोंमें प्रणाम करके, हाथ जोड़, कमनीय वाणीद्वारा चारों मुखोंसे मनोहर खुति करने लगे ॥ १७-२० ॥

श्रीशङ्कराजी श्वेते—प्रभो ! आप सबके आदिकारण हैं, किन्तु आपका कोई आदि-अन्त नहीं है । आप समस्त पुरुषोत्तमोंमें उत्तम हैं । अपने भन्नोंपर सदा बात्स्वर्यभाव रखनेवाले और 'श्रीकृष्ण' नामसे विरुद्धता है । अगणित ब्रह्माण्डोंके पालक-पति हैं । ऐसे आप परात्पर प्रभु राधा-प्रणवस्त्रकम् श्रीकृष्णचन्द्रकी मैं शरण लेता हूँ । आप गोलोकधामके अधिनाथ हैं, आपकी छोलाओंका कहीं अन्त नहीं है । आपके साथ ये छोलावती श्रीराधा अपने श्वेत (निस्वाम्य) में बङ्गित बङ्गिएँ किया करती हैं । जब आप ही 'वैकुण्ठनाथ' के रूपमें विराजमान होते हैं तब ये शृणभानुनन्दिनी ही 'लक्ष्मी' रूपसे आपके साथ चुशोभित होती हैं । जब आप 'श्रीरामचन्द्र' के रूपमें भूतलपर अवतीर्ण होते हैं, तब ये जनकनन्दिनी 'सीता' के रूपमें आपका सेवन करती हैं । आप 'श्रीविष्णु' हैं और ये कमलवन-वासिनी 'कमला' हैं; जब आप 'यशपुरुष' का अवतार धारण करते हैं, तब ये श्रीजी आपके साथ 'दक्षिणा' रूपमें निवास करती हैं । आप पतिशिरोमणि हैं तो ये पलियोंमें प्रधान हैं । आप 'भूसिंह' हैं तो ये आपके

द्वदयमें 'रमा' रूपसे निवास करती हैं । आप ही भर-नारायण' रूपसे रहकर तपस्या करते हैं, उस समय आपके साथ ये 'परम शान्ति' के रूपमें विराजमान होती हैं । आप जहाँ जिस रूपमें रहते हैं वहाँ तदनुरूप देह भारण करके ये छायाकी भाँति आपके साथ रहती हैं । आप 'ब्रह्म' हैं और ये 'तटस्था प्रकृति' । आप जब 'काल' रूपसे स्थित होते हैं, तब इन्हें 'प्रधान' (प्रकृति) के रूपमें जाना जाता है । जब आप जगत्के अङ्गुर 'महान्' (महत्त्व) रूपमें स्थित होते हैं, तब ये श्रीराधा 'संगुणा मादा' रूपसे स्थित होती हैं । जब आप मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—इन चारों अन्तःकरणोंके साथ 'अन्तरात्मा'रूपसे स्थित होते हैं, तब ये श्रीराधा 'लक्षणावृत्ति' के रूपमें विराजमान होती हैं । जब आप 'विराट्' रूप भारण करते हैं, तब ये अखिल भूमण्डलमें 'धारणा' कहलाती हैं । पुरुषोत्तमोत्तम ! आपका ही इथाम और गौर—द्विविध तेज सर्वत्र विदित है । आप गोलोकधामके अधिपति परात्पर परमेश्वर हैं । मैं आपकी शरण लेता हूँ । जो इस शुगलरूपकी उत्तम स्तुतिका सदा पाठ करता है, वह समस्त धार्मोंमें श्रेष्ठ गोलोकधाममें जाता है और इस लोकमें भी उसे स्वभावतः सौन्दर्य, समृद्धि और सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है । यद्यपि आप दोनों नित्य-दम्पति हैं और परस्पर प्रीतिसे परिपूर्ण रहते हैं, परात्पर होते हुए भी एक दूसरेके अनुरूप रूप भारण करके लीला-विलास करते हैं; तथापि मैं लोकव्यवहारकी सिद्धि या लोकसंग्रहके लिये आप दोनोंकी वैवाहिक विधि सदपद्धतिकराऊँगा ॥ २१-२९ ॥

* अनादिमात्रं पुरुषोत्तमोत्तमं श्रीकृष्णचन्द्रं निजभक्तवस्त्रकम् ।
स्वयं स्वसंस्काराप्तपतिं परात्परं राधापति त्वा शरणं ब्रजाम्यहम् ॥
गोलोकनायस्त्वमतीष्ठीको छोलावतीयं निजबोक्तवीया ।
वैकुण्ठाणोडसि वदा त्वयेव छोलावतीयेवं ब्रजभागुला हि ॥
त्वं रामवनो छोलामलेवं भूमी हरित्वं छोलामलेव ।
षष्ठावतारोडसि पदा तैर्यं श्रीदक्षिणा की पतिपतिमुखी ॥
त्वं जरसिंहोडसि रमा हृदीयं गारायणस्वं च नरेण शुकः ।
तदा त्वियं श्रान्तिरतीव साक्षात्कायेव याता च तदानुरूपा ॥
त्वं ब्रह्म चेयं प्रकृतिस्तदस्य काले यदेमा च विदुः प्रधानम् ।
महान् वदा त्वं जगद्गुरोडसि राधा तदेयं संगुणा च मादा ॥
पदान्तरात्मा विदितश्तुभिस्तदा त्वियं लक्षणरूपवृत्तिः ।
वदा विराट्-देहपरस्त्वमेव तदाखिलं या भ्रुवि भारणेष्व ॥
श्यामं च गौरं विदितं दिवा भहस्तवै शाक्षात् पुरुषोत्तमोत्तम ।
गोलोकधामाधिपति परेण्यं परात्परं त्वा शरणं ब्रजाम्यहम् ॥

श्रीनारदजीकहते हैं—राजन्। इस प्रकार स्तुति करके ब्रह्माजीने उठकर कुण्डमें अग्नि प्रज्वलित की और अग्निदेवके सम्मुख बैठे हुए उन दोनों प्रिया-प्रियतमके बैदिक विधानसे पाणिग्रहण-संस्कारकी विधि पूरी की। यह सब करके ब्रह्माजीने खड़े होकर श्रीहरि और राधिकाजीसे अग्निदेवकी सात परिक्रमाएँ करवायीं। तदनन्तर उन दोनोंको प्रणाम करके बैदंयता विधाताने उन दोनोंसे सात मन्त्र पढ़वाये। उसके बाद श्रीकृष्णके वक्षः स्थलपर श्रीराधिकाका हाथ रखवाकर और श्रीकृष्णका हाथ श्रीराधिकाके पृष्ठदेशमें स्थापित करके विधाताने उनसे मन्त्रोंका उच्चस्वरसे पाठ करवाया। उन्होंने राधाके हाथोंसे श्रीकृष्णके कण्ठमें एक केसरयुक्त माला पहनायी, जिसपर भ्रमर गुजार कर रहे थे। इसी तरह श्रीकृष्णके हाथोंसे भी वृषभानुनन्दिनीके गलेमें माला पहनवाकर बैदंय ब्रह्माजीने उन दोनोंसे अग्निदेवको प्रणाम करवाया और सुन्दर सिंहासनपर उन अभिनव दम्पतिको बैठाया। वे दोनों हाथ जोड़े भौंन रहे। पितामहने उन दोनोंसे पाँच मन्त्र पढ़वाये और जैसे पिता अपनी पुत्रीका सुयोग्य वरके हाथमें दान करता है, उसी प्रकार उन्होंने श्रीराधाको श्रीकृष्णके हाथमें सौंप दिया ॥ ३०-३४ ॥

राजन्। उस समय देवताओंने फूल वरसाये और विद्याधरियोंके साथ देवाङ्गनाओंने वृत्त्य किया। गन्धर्वों, विद्याधरों, चारों और किनरोंने मधुर स्वरसे श्रीकृष्णके लिये सुमङ्गल-गान किया। मृदङ्ग, वीणा, मुरचंग, बैणु, शङ्कु, नगारे, दुन्दुभि तथा करताल आदि बाजे बजने लगे तथा आकाशमें लड़े हुए भेष देवताओंने मङ्गल-शब्दका उच्चस्वरसे उच्चारण करते हुए बारंबार जय-जयकार किया। उस अचूतपर श्रीहरिने विधाताएँ कहा—‘श्रावन्। आप अपनी इच्छाके अनुसार दक्षिणा बसाइये।’ तब ब्रह्माजीने श्रीहरिने इस प्रकार कहा—‘प्रभो! मुझे अपने वृग्न-वरणोंकी भक्ति ही दक्षिणाके रूपमें प्रदान कीजिये।’ श्रीहरिने ‘तथास्तु’ कहकर उन्हें अभीष्ट वरदान दे दिया।

सदा पठेद् यो वृग्नस्त्वं परं गोलोकधाम प्रवरं प्रथाति सः ।
इवै सौन्दर्यसमृद्धिसिद्धयो भवन्ति तस्यापि निसर्गतः पुनः ॥
पदा मुवा प्रीतिमुनौ च दम्पती परात्परी तावनुरूपपितौ ।
तस्यापि लोकव्यवहारसंग्रहाद् विधि विवाहस्य तु कारयम्बहम् ॥

(गर्ग०, गोलोक० १६ । २१—२९)

तब ब्रह्माजीने श्रीराधिकाके मङ्गलमय वृग्न-चरणारविन्दोंको दोनों हाथों और मस्तकसे बारंबार प्रणाम करके अपने धाम-को प्रस्थान किया। उस समय प्रणाम करके जाते हुए ब्रह्माजीके मनमें अत्यन्त हृषोङ्गास छा रहा था ॥ ३५—३८ ॥

तदनन्तर निकुञ्जभवनमें प्रियतमाद्वारा अर्पित दिव्य मनोरम चतुर्विंश्च अब परमात्मा श्रीहरिने हँसते-हँसते ग्रहण किया और श्रीराधाने भी श्रीकृष्णके हाथोंसे चतुर्विंश्च अब ग्रहण करके उनकी दी हुई पान-सुपारी भी खायी। इसके बाद श्रीहरि अपने हाथसे प्रियाका हाथ पकड़कर कुञ्जकी ओर चले। वे दोनों मधुर आलाप करते तथा हृष्टावन, यमुना तथा बनकी लताओंको देखते हुए आगे बढ़ने लगे। सुन्दर लता-कुञ्जों और निकुञ्जोंमें हँसते और छिपते हुए श्रीकृष्णको शालाकी ओटमें देखकर पीछेसे आती हुई श्रीराधाने उनके पीताम्बरका छोर पकड़ लिया। फिर श्रीराधा भी माधवके कमलोपम हाथोंसे छूटकर भागीं और वृग्न-चरणोंके नपूरोंकी ज्ञानकार प्रकट करती हुई यमुना-निकुञ्जमें छिप गयीं। जब श्रीहरिसे एक हाथकी दूरीपर रह गयीं, तब पुनः उठकर भाग चलीं। जैसे तमाल सुनहरी लताएँ और मेघ चपलासे सुशोभित होता है तथा जैसे नीलमका महान् पर्वत स्वर्णाङ्कित कसौटीसे शोभा पाता है, उसी प्रकार रमणी श्रीराधासे नन्दनन्दन श्रीकृष्ण सुशोभित हो रहे थे। रास-रङ्गस्थलीके निर्जन प्रदेशमें पहुँचकर श्रीहरिने श्रीराधाके साथ रासका रस लेते हुए छोला-रमण किया। भ्रमरों और मधूरोंके कल-कूजनसे मुखरित छताओंवाले तृन्दावनमें वे दूसरे कामदेवकी भौंति विचर रहे थे। परमात्मा श्रीकृष्ण हरिने, जहाँ मतवाले भ्रमर गुजारण करते थे, वहुत-से ज्ञाने तथा सरोवर जिनकी शोभा बढ़ाते थे और किनमें दीक्षिमती छता-बस्तरियों प्रकाश लैकाती थीं, गोपर्धनरुओंमें श्रीराधाके साथ दृश्य किया ॥ ३९-४५ ॥

तस्यात् श्रीकृष्णने यमुनामें प्रवेश करके वृषभानु-नन्दिनीके साथ विहार किया। वे यमुनाजलमें लिके हुए कक्षदल कमलों राधाके हाथसे छीनकर भाग चले। तब श्रीराधाने भी हँसते-हँसते उनका पीछा किया और उनका पीताम्बर बंदी तथा बेतकी छड़ी अपने अधिकारमें कर-

१.भ्रम्य, भोग्य, लेख, चौथ—ये ही चार प्रकारके अन्न हैं।

ली । श्रीहरि कहने लगे—‘मेरी बाँसुरी दे दो ।’ तब राधाने उत्तर दिया—‘मेरा कमल लौटा दो ।’ तब देवेश्वर श्रीकृष्णने उन्हें कमल दे दिया । फिर राधाने भी पीताम्बर, बंशी और बैंत श्रीहरिके हाथमें लौटा दिये । इसके बाद फिर यमुनाके किनारे उनकी मनोहर लीलाएँ होने लगीं ॥ ४६-४८ ॥

तदनन्तर भाण्डीर-वनमें जाकर ब्रज-गोप-रत्न श्रीनन्दनन्दनने अपने हाथोंसे श्रियाका मनोहर शृङ्खार किया—उनके मुखपर पञ्च रन्धना की, दोनों वैरांग्यमें महावर लगाया, नेत्रोंमें काजलकी पतली रेखा खींच दी तथा उत्तमोत्तम रत्नों और फूलोंसे भी उनका शृङ्खार किया । इसके बाद जब श्रीराधा भी श्रीहरिको शृङ्खार धारण करानेके लिये उद्घाट हुई, उसी समय श्रीकृष्ण अपने किंगोररूपको स्थागकर छोटे-से बालक बन गये । नन्दने जिस शिशुको जिस रूपमें राधाके हाथोंमें दिया था, उसी रूपमें वे भरतीयर लोटने और भयसे रोने लगे । श्रीहरिको इच्छुरूपमें देखकर श्रीराधिका भी तत्काल चिलाप करने लगीं और बोली—‘हरे ! मुशार माया क्यों फैलाते हो ?’ इस प्रकार विवादप्रस्त होनार रोती हुई श्रीराधामे सहस्र आकाशवाणीने कहा—‘राधे ! इस गमय

इस प्रकार श्रीगर्ण-संहितामें गोलोकधारके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश-संवादमें ‘श्रीराधिकाके विवाहका वर्णन’ नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

श्रीकृष्णकी बाल-लीलामें दधि-चोरीका वर्णन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् । तदनन्तर बलराम और श्रीकृष्ण—दोनों गौर-श्याम मनोहर बालक विविध लीकाओंसे नन्दभवनको अत्यन्त मुन्द्रर पलं आकर्षक बनाने लगे । मिथिलेश्वर । वे दोनों हाथों और झुटनोंके बड़े चबड़े हुए और मीठी—तोतली बोली बोलते हुए थोड़े ही समयमें ब्रजमें इधर-उधर डोलने लगे । माता यशोदा और रोहिणीके द्वारा लालित-पालिन वे दोनों शिशु, कभी माताओंकी गोदसे निकल जाते और कभी पुनः उनके अङ्गमें आ बैठते थे । मायासे बालरूप धारण करके त्रिमुखनको मोहित करनेवाले वे दोनों भाई, राम और श्याम, इधर-उधर मङ्गीर-और करघनीकी लंकार फैलाते फिलते थे । माता यशोदा बल-चालकोंके साथ अँगनमें सेहत-कोटते तथा धूल लग

सोच न करो । तुम्हारा मनोरथ कुछ कालके पश्चात् पूर्ण होगा’ ॥ ४९-५२ ॥

यह सुनकर श्रीराधा शिशुरूपधारी श्रीकृष्णको लेकर तुरंत ब्रजराजकी धर्मपत्नी यशोदाजीके घर गयीं और उनके हाथमें बालकको देकर बोली—‘आपके पतिदेवने मार्गमें इस बालकको मुझे दे दिया था ।’ उस समय नन्द-श्रीहिणीने श्रीराधासे कहा—‘वृषभानुनन्दिनी राधे । तुम धन्य हो; मन्योंकि तुमने इम समय, जब कि आकाश में घोंकी घटासे आन्धन्न है, बनके भीतर भयभीत हुए मेरे नन्हेसे लालाकी पूर्णतया रक्षा की है ।’ यों कहकर नन्दरानीने श्रीराधाका भलीभौति मत्कर किया और उनके सदगुणोंकी प्रशंसा की । इससे वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाको बड़ी प्रसन्नता हुई । वे यशोदाजीकी आशा ले भीरे-भीरे अपने घर चली गयीं ॥ ५३-५५ ॥

राजन् । इस प्रकार श्रीराधाके विवाहकी परम मङ्गल-मयी गुप्त कथाका यहाँ वर्णन किया गया । जो लोग इसे सुनते-पढ़ते अथवा सुनाते हैं, उन्हें कभी पापोंका सर्व नहीं प्राप्त होता ॥ ५६ ॥

जानेसे धूसर अङ्गवाले अपने लालको गोदमें लेकर बड़े आवरसे बालती-पोछती थीं ॥ १-५ ॥

श्रीकृष्ण दोनों हाथों और झुटनोंके बड़े चबड़े हुए पुनः आँगनमें चढ़े जाते और बहाँसे फिर माताकी गोदमें आ जाते थे । इस तरह वे बजमें सिंह-शावककी भौति लीला कर रहे थे । माता यशोदा उन्हें सोनेके तार जड़े पीताम्बर और पीली कशुली पहनाती तथा मस्तकपर दीसिमान् रत्नसमय मुकुट धारण करती और इस प्रकार अत्यन्त शोभाशाली भव्यरूपमें उन्हें देखकर अत्यन्त आनन्दका अनुभव करती थीं । अत्यन्त मुन्द्रर बालोचित कीड़ामें तत्पर बालमुकुन्दका दर्शन करके गोपियाँ बड़ा मुख पाती थीं । वे मुखस्वरूपा गोपालनाएँ अपना घर छोड़कर

नन्दराजके गोदमें आ जाती और वहाँ आकर वे सब-की-
सब अपने बरोंकी सुध-सुध भूल जाती थीं। राजन्। नन्दराज-
जीके गृह-द्वारपर कृत्रिम सिंहकी मूर्ति देखकर भयभीतकी
तरह यह श्रीकृष्ण पीछे लौट पड़ते, तब यशोदाजी अपने
लालको गोदमें उठाकर घरके भीतर चली जाती थीं। उस
समय गोपियों ब्रजमें दयामें द्रवित हृदय हो यशोदाजीसे
इस प्रकार कहती थीं ॥ ६-९ ॥

श्रीगोपाङ्गनार्थ—कहने लगी—शुमे! तुम्हारा लाला
खेलनेके लिये वही चपलता दिखाता है। इसकी बालकेलि
अत्यन्त मनोहर है। ऐसा न हो कि इसे किसीकी नजर लग जाय।
अतः तुम इस काकपक्षधारी दुधमुँहे बालको औंगनसे
बाहर मत निकलने दिया करो। देखो न, इसके ऊपरके
दो दॉत ही पहले निकले हैं, जो मामाके लिये दोषकारक
हैं। यशोदाजी! तुम्हारे इस बालके भी कोई मामा नहीं
है, इसलिये विज्ञनिवारणके हेतु तुम्हें दान करना चाहिये।
गौ, ब्राह्मण, देवता, साधु, महात्मा तथा वेदोंकी पूजा
करनी चाहिये ॥ १०-१२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्। तरः यशोदा और
रोहिणीजी पुत्रोंकी कल्याण-कामनासे प्रतिदिन बस्त, रस्त
तथा नृतन अचका दान करने लगीं। कुछ दिनों बाद
सिंह-शावककी भाँति दीखनेवाले राम और कृष्ण—दोनों
बालक कुछ बड़े होकर गोष्ठोंमें अपने पैरोंके बल्से चलने
लगे। श्रीदामा और सुब्रत आदि ब्रज-बालक सखाओंके
साथ यमुनाजीके शुभ्र बालुकामय तटपर कौदृश्यरूपक
लोटे हुए राम और क्ष्याम नील-स्वरूप तमालोंसे घिरे और
कदम्ब-कुञ्जकी शोभासे विलसित कालिन्दी-तटबर्ती उपवनमें
विचरने लगे ॥ १३-१६ ॥

श्रीहरि अपनी बालबीलासे गोप-गोपियोंको आनन्द
प्रदान करते हुए सखाओंके साथ घरोंमें जा-जाकर मालन
और छूतकी चोरी करने लगे। एक दिन उपनन्दपत्नी
गोपी प्रभावती श्रीनन्द-मन्दिरमें आकर यशोदाजीसे
बोलीं ॥ १७-१८ ॥

प्रभावतीने कहा—यशोमति! इमरे और तुम्हारे
घरोंमें जो मालन, धी, दूध, दही और तक है, उसमें ऐसा
कोई विलम्ब नहीं है कि यह हमारा है और वह
तुम्हारा। मेरे यहाँ तो तुम्हारे कृपाप्रसादसे ही सब कुछ
हुआ है। मैं यह नहीं कहना चाहती कि तुम्हारे इस

लालने कहीं चोरी सीकी है। मालन तो यह स्वयं ही चुराता
फिरता है, परंतु तुम इसे ऐसा न करनेके लिये कभी
शिक्षा नहीं देती। एक दिन जब मैंने शिक्षा दी तो
तुम्हारा यह ढीट बालक मुझे गाली देकर मेरे औंगनसे भाग
निकला। यशोदाजी! ब्रजराजका बेटा होकर यह चोरी करे,
यह उचित नहीं है; किंतु मैंने तुम्हारे गौरबका खयाल
करके इसे कभी कुछ नहीं कहा है ॥ १९-२२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्। प्रभावतीशी बात
सुनकर नन्द-गेहिनी यशोदाने बालको ढाँठ बतायी और
वहे प्रेमसे सान्त्वनापूर्वक प्रभावतीसे कहा ॥ २३ ॥

श्रीयशोदा बोलीं—बहिन! मेरे घरमें करोड़ों गौदें
हैं, इस घरकी धरती सदा गोरससे भीगी रहती है। पता
नहीं, यह बालक क्यों तुम्हारे घरमें दही चुराता है। यहाँ
तो कभी ये सब चीजें चावसे खाता ही नहीं। प्रभावती!
इसने जितना भी दही या मालन चुराया हो,
वह सब तुम मुखसे ले लो। तुम्हारे पुत्र और मेरे लालमें
किंचिन्मात्र भी कोई भेद नहीं है। यदि तुम इसे मालन
चुराकर खाते और मुखमें मालन लपेटे हुए पकड़कर मेरे
पास ले आओगी तो मैं इसे अवश्य ताड़ना दूँगी, ढाँदूँगी
और घरमें बाँध रक्खूँगी ॥ २४-२६ ॥

श्रीनारदजी कहने हैं—राजन्। यशोदाजीकी यह
बात सुनकर गोपी प्रभावती प्रसन्नतापूर्वक अपने घर लौट
आयी। एक दिन श्रीकृष्ण समवयस्क बालकोंके साथ फिर
दही चुरानेके लिये उसके घरमें गये। घरकी दीवारके पास
सटकर एक हाथसे दूसरे बालकका हाथ पकड़े और दूसरे
घरमें धुसे। छोकेपर रक्खा हुआ गोरस हाथसे पकड़में नहीं
आ सकता, यह देव श्रीहरिने स्वयं एक ओखलीके ऊपर
पीढ़ा रखला। उसपर कुछ ब्वाल-बालोंको खड़ा किया और
उनके सहारे आप ऊपर चढ़ गये। तो भी छोकेपर रखला हुआ
गोरस अभी और ऊँचे कहके मनुष्यसे ही प्राप्त किया जा
सकता था, इसलिये वे उसे न पा सके। तब श्रीदामा
और सुब्रतके साथ उन्होंने मटकेपर ढूँढ़ेसे प्रहार किया।
दहीका बर्तन फूट गया और सारा गव्य पृथ्वीपर बह
चला। तब ब्रलरामसहित माधवने ब्वाल बालों और
बंदरोंके साथ वह मनोहर दही जी भरकर खाया। भाष्टके
झूटनेकी आवाज सुनकर गोपी प्रभावती वहाँ आ पहुँची।
अन्य सब बालक तो वहाँसे भाग निकले; किंतु श्रीकृष्ण-

का हाथ उसने पकड़ लिया। श्रीकृष्ण भयभीत से होकर मिथ्या औंसू बहाने लगे। प्रभावती उन्हें लेकर नन्द-भवन की ओर चली। सामने नन्दरायजी खड़े थे। उन्हें देखकर प्रभावतीने मुख्य पर धूँघट ढाल लिया। श्रीहरि सोचने लगे—‘इस तरह जानेपर माता मुझे अवश्य दण्ड देगी।’ अतः उन स्वच्छन्दगति परमेश्वरने प्रभावतीके ही पुत्रका रूप धारण कर लिया। रोषसे भरी हुई प्रभावती यशोदाजी के पास शीघ्र जाकर बोली—‘इसने मेरा दहीका वर्तन पकड़ दिया और सारा दही लट लिया’॥ २७—३५॥

यशोदाजीने देखा, यह तो इसीका पुत्र है; तब वे हँसती हुई उस गोपीसे बोलीं—‘पहले अपने मुख्य से धूँघट तो हटाओ, फिर बालकके दोष बताना। यदि इस तरह धूँघटे ही दोष लगाना है तो मेरे नगरसे बाहर चली जाओ। क्या तुम्हारे पुत्रकी की हुई चोरी मेरे बेटेके माथे भढ़ दी जायगी?’ तब लोगोंके बीच लजाती हुई प्रभावतीने अपने मुँहसे धूँघटको इटाकर देखा तो उसे अपना ही बालक दिखायी दिया। उसे देखकर वह मन-ही मन चकित

इस प्रकार श्रीगर्ण-संहितामें गोलोकधामके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें श्रीकृष्णाद्ये बालचरित्रगत दधि-चोरीका वर्णन नामक सत्रहदाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अठारहवाँ अध्याय

नन्द, उपनन्द और वृषभानुओंका परिचय तथा श्रीकृष्णकी मृदुभक्षण-सीला

श्रीनारदजी कहते हैं— मिथिलेश्वर। गोपाङ्गनाओंके घरोंमें विचरते और मालव-चोरीकी लीला करते हुए नवकंज-लोचन मनोहर इयाम-रूपधारी श्रीकृष्ण बालचन्द्रकी भाँति बढ़ते और लोगोंके चित्त चुराते हुए से ब्रजमें अद्भुत शोभाका विस्तार करने लगे। नौ नन्द नामके गोप अत्यन्त चञ्चल श्रीनन्दननन्दनको पकड़कर अपने भर ले जाते और वहाँ बिठाकर उनकी रूपमाधुरीका आस्वादन करते हुए मोहित हो जाते थे। वे उन्हें अच्छी-अच्छी गेंदें देकर स्लेलाते, उनका लालन-पालन करते, उनकी लीलाएँ गते और बढ़े हुए आनन्दमें निमग्न हो सारे जगतको भूल जाते थे ॥ १-२ ॥

राजाने पूछा—देवर्षे। आप मुझसे नौ उपनन्दोंके नाम बताएं। वे सब बड़े सौभार्यशाली थे। उनके पूर्वजन्मका परिचय दीजिये। वे पहले कौन थे, जो हस-

होकर बोली—‘अरे निगोहे ! तू कहाँसे आ गया ! मेरे हाथमें तो ब्रजका सार-सर्वस्व था।’ इस तरह बद्धवाती हुई वह अपने बेटेको लेकर नन्द-भवनसे बाहर चली गयी। यशोदा, रोहिणी, नन्द, बलराम तथा अन्यान्य गोप और गोपाङ्गनाएँ हँसने लगीं और बोलीं—‘अहो ! बजमें तो बड़ा भारी अन्याय दिखायी देने लगा है।’ उधर भगवान् बाहरकी गलीमें पहुँचकर फिर नन्द-नन्दन बन गये और सम्पूर्ण शरीरसे धृष्टताका परिचय देते हुए, चञ्चल नेत्र मटकाकर, जोर जोरसे हँसते हुए उस गोपीसे बोले ॥ ३६-४१ ॥

श्रीभगवान्ने कहा-- अरी गोपी ! यदि फिर कभी तू मुझे पकड़देगी तो अबकी बार मैं तेरे पतिका रूप धारण कर लूँगा, इसमें संशय नहीं है ॥ ४२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं— राजन् ! यह सुनकर वह गोपी आश्चर्यसे चकित, हो अपने घर चली गयी। उस दिनसे सब घरोंकी गोपियाँ लाजके मारे श्रीहरिका हाथ नहीं पकड़ती थीं ॥ ४३ ॥

श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें श्रीकृष्णाद्ये बालचरित्रगत

भूतलपर अवतीर्ण हुए ! उपनन्दोंके साथ ही छः वृषभानुओंके भी मङ्गलमय कर्मोंका वर्णन कीजिये ॥ ३३ ॥

श्रीनारदजीने कहा-- गय, विमल, श्रीश, श्रीधर, मङ्गलायन, मङ्गल, रङ्गवल्लीश, रङ्गोजि तथा देवनायक---ये ‘नौ नन्द’ कहे गये हैं, जो ब्रजके गोकुलमें उत्पन्न हुए थे। वीतिहास, अग्निशुक्र, साम्ब, श्रीवर, गोपति, श्रुत, ब्रजेश, पावन तथा शान्त---ये ‘उपनन्द’ कहे गये हैं। नीतिवित्, मार्गद, शूङ्ग, पतंग, दिव्यवाहन और गोपेष्ट---ये छः ‘वृषभानु’ हैं, जिन्होंने ब्रजमें जन्म धारण किया था। जो गोलोक-धाममें श्रीकृष्णचन्द्रके निकुञ्जदारपर रहकर हाथमें बेत लिये पहरा देते थे, वे इयाम अङ्गवाले गोप ब्रजमें ‘नौ नन्द’ के नामसे विद्युत द्वारा हुए। निकुञ्जमें जो करोड़ों गायें हैं, उनके पालनमें तत्पर, मोरपंख और मुरही धारण करनेवाले गोप यहाँ ‘उपनन्द’ कहे गये हैं।

निकूञ्ज-दुर्गकी रक्षाके लिये जो इष्ट और पाश धारण किये उसके छहों द्वारोपर रहा करते हैं, वे ही छः गोप यहों 'छः वृषभानु' कहलाये। श्रीकृष्णकी इच्छासे ही वे सब लोग गोलोकसे भूतल्पर उतरे हैं। उनके प्रभावका वर्णन करनेमें चतुर्मुख ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं, किंतु मैं उनके महान् अभ्युदयशाली सौभाग्यका कैसे वर्णन कर सकूँगा, जिनकी गोदमें वैठकर बाल-क्रीडापरायण श्रीहरि सदा सुशोभित होते थे ॥ ४-१२ ॥

एक दिनकी बात है, यमुनाके तटपर श्रीकृष्णने मिठ्ठीका आम्बादान किया। यह देख बालकोंने यशोदाजीके पास आकर कहा—‘येरी मैया ! उम्हारा लला तो मिठ्ठी खाता है ।’ बलभद्रजीने भी उनकी हाँ-में-हों मिला दी। तब नन्दरानीने अपने पुत्रका हाथ पकड़ लिया। बालके नेत्र भग्नभीतमें हो उठे। मैयाने उससे कहा ॥ १३-१४ ॥

यशोदाजीने पूछा—ओ महामृढ़ ! तूने क्यों मिठ्ठी खायी ? तेरे ये साथी भी बता रहे हैं और साक्षात् बड़े मैया ये बलराम भी यही बात कहते हैं कि ‘मॉ ! मना

इस प्रकार श्रीगर्भ-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुकाश-संवादमें ‘ब्रह्माण्डदर्शन’
नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

दामोदर कृष्णका उल्लङ्घन-बन्धन तथा उनके द्वारा यमलार्जुन-वृक्षोंका उद्धार

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! एक समय गोपाङ्गानाएँ धर-धरमें गोपालकी लीलाएँ गती हुई गोकुलमें सब और दधिमन्थन कर रही थीं। श्रीनन्द-मन्दिरमें सुन्दरी यशोदाजी भी प्रातःकाल उठकर दहीके भाण्डमें रई डालकर उसे मथने लगीं। मथानीकी आवाज सुनकर बालक श्रीनन्दनन्दन भी नवनीत-के लिये कौतूहलवश मझीरकी मधुरध्वनि प्रकट करते हुए नाचने लो। माताके पास बालकीडापरायण श्रीकृष्ण बार-बार चक्कर लगाते और नाचते हुए बड़ी शोभा पारहे थे और बजती हुई करधनीके शुशुर्हओंकी मधुर झंकार बारंबार फैला रहे थे। वे मातासे मीटे बच्चन बोलकर ताजा निकाला हुआ माखन माँग रहे थे। जब वह उन्हें नहीं मिला, तब वे कुपित हो उठे और एक पत्थरका ढुकड़ा

करनेपर भी यह मिठ्ठी खाना नहीं छोड़ता। हसे मिट्ठी बड़ी प्यारी लगती है ॥ १५ ॥

श्रीभगवानने कहा—मैया ! ब्रजके ये सारे बालक छठ बोल रहे हैं। मैंने कहीं भी मिठ्ठी नहीं खायी। यदि तुम्हें मेरी बातपर विश्वास न हो तो मेरा मुँह देख लो ॥ १६ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तब यशोदाने बालकका सुन्दर मुग्ध खोलकर देखा। यशोदाको उसके भीतर तीनों गुणोंद्वारा रचित और सब ओर फैला हुआ ब्रह्माण्ड दिखायी दिया। सातों द्वीप, सात समुद्र, भारत आदि वर्ष, सुहृद पर्वत, ब्रह्मलोक-पर्यन्त तीनों लेक तथा समस्त ब्रजमण्डलरहित अपने शरीरकी भी यशोदाने अपने पुत्रके मुखमें देखा। यह देखते ही उन्होंने ओँखें बंद कर लीं और श्रीयमुनाजीके तटपर बैठकर सोचने लगीं—‘यह मेरा बालक साक्षात् श्रीनारायण है ।’ इस तरह वे शाननिष्ठ हो गर्गीं। तब श्रीकृष्ण उन्हें अपनी मायासे मोहित-सी करते हुए हँसने लगे। यशोदाजीकी सरण-द्वाक्षि विलुप्त हो गयी। उन्होंने श्रीकृष्णका जो वैभव देखा था, वह सब वे तत्काल भूल गर्गीं ॥ १७-२० ॥

लेकर उसके द्वारा दही मथनेका पात्र फोड़ दिया। ऐसा करके वे भाग चले। यशोदाजी भी अपने पुत्रको पकड़ने-के लिये पीछे-पीछे दौड़ीं। वे उनसे एक ही हाथ आगे थे, किंतु वे उन्हें पकड़ नहीं पाती थीं। जो योगीश्वरोंके लिये भी दुर्लभ हैं, वे माताकी पकड़में कैसे आ सकते थे ॥ १-६ ॥

नृपेश्वर ! तथापि श्रीहरिने भक्तोंके प्रति अपनी भक्तवश्यता दिखायी, इसलिये वे जान-बूझकर माताके हाथ आ गये। अपने बालक पुत्रको पकड़कर यशोदाने रोषपूर्वक ऊख्वलमें बाँधना आरम्भ किया। वे जो-जो बड़ी-से-बड़ी रस्ती उठातीं, वही-वही उनके पुत्रके लिये कुछ छोटी पड़ जाती थी। जो प्रकृतिके तीनों गुणोंने न बँध सके, वे प्रकृतिमें परे विद्यमान परमात्मा यहाँके गुणसे (रस्तीसे) कैसे बँध सकते थे? जब यशोदा बँधते-बाँधते

एक गयी और हसोस्याह होकर बैठ रहीं तथा बाँधनेकी इच्छा भी छोड़ बैठीं, तब वे स्वच्छम्भृति भगवान् श्रीकृष्ण स्वभव द्वारा होते हुए भी कृपा करके माताके बन्धनमें आ गये। भगवान्नकी ऐसी कृपा कर्मत्यागी शानियोंको भी नहीं मिल सकी; फिर जो कर्ममें आसक्त हैं, उनको तो मिल ही कैसे सकती है। यह भक्तिका ही प्रताप है कि वे माताके बन्धनमें आ गये। नरेश्वर ! हसीलिये भगवान् शानके साधक आराधकोंको मुक्ति तो दे देते हैं, किंतु भक्ति नहीं देते। उसी समय बहुत-सी गोपियाँ भी शीघ्रतापूर्वक वहाँ आ पहुँचीं। उन्होंने देखा कि दहीं मथनेका भाष्ट फूटा हुआ है और भयभीत नन्द-शिशु बहुत-सी रसियोंद्वारा ओखलीमें बैंधे लकड़े हैं। यह देखकर उन्हें बड़ी दिया आयी और वे यशोदाजीसे बोलीं ॥ ७-११ ॥

गोपियोंने कहा—नन्दरानी ! तुम्हारा यह नन्दा-सा बालक सदा ही हमारे घरमें आकर बर्तन-भौंडे फोड़ा करता है, तथापि हम कश्चावश इसे कभी कुछ नहीं कहतीं। ब्रजेश्वर यशोदे ! तुम्हारे दिलमें जरा भी दर्द नहीं है, तुम निर्दय हो गयी हो। एक बर्तनके फूट जानेके कारण तुमने इस बच्चेको छड़ीसे डराया-धमकाया है और बाँध भी दिया है ॥ १२-१३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर ! उन गोपियोंके यो कहनेपर यशोदाजी कुछ नहीं बोलीं। वे घरके काम-धर्धोंमें लग गयीं। इसी बीच मौका पाकर श्रीकृष्ण बाल-बालोंके साथ वह ओखली लींचते हुए श्रीयमुनाजीके किनारे चले गये। यमुनाजीके तटपर दो पुराने विशाल वृक्ष थे, जो एक दूसरेसे जुड़े हुए लकड़े थे। वे दोनों ही अर्जुन-वृक्ष थे। दामोदर भगवान् कृष्ण हँसते हुए उन दोनों वृक्षोंके बीचमेंसे निकल गये। ओखली वहाँ टेढ़ी हो गयी थी, तथापि श्रीकृष्णने सहसा उसे लींचा। लींचनेसे दबाव पाकर वे दोनों वृक्ष जड़चिह्नित उलझकर पृथ्वीपर गिर पड़े। वृक्षोंके गिरनेसे जो धमाकेकी आवाज हुई, वह वज्रपातके समान भयंकर थी। उन वृक्षोंसे दो देवता निकले—ठीक उसी तरह जैसे काढ़से अग्नि प्रकट हुई हो। उन दोनों देवताओंने दामोदरकी परिक्रमा करके अपने मुकुटसे उनके पैर छूये और दोनों हाथ जोड़े। वे उन श्रीहरिके समक्ष नत-मस्तक लकड़े हो इस प्रकार बोले ॥ १४-१८ ॥

दोनों देवता कहने लगे—अच्युत ! आपके दर्शनसे

इस दोनोंको हसी क्षण ब्रह्मदण्डसे मुक्ति मिली है। हरे ! अब इस दोनोंसे आपके निज भक्तोंकी अवहेलना न हो। आप कहणाकी निधि हैं। जगत्का मञ्जल करना आपका स्वभाव है। आप 'दामोदर', 'कृष्ण' और 'गोविन्द'को इमारा बारंबार नमस्कार हैं ॥ १९-२० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार श्रीहरिको नमस्कार करके वे दोनों देवकुमार उत्तर दिशाकी ओर चल दिये। उसी समय भयसे कातर हुए नन्द आदि समस्त गोप वहाँ आ पहुँचे। वे पूछने लगे—'ब्रजबालों ! बिना आँधी-पानीके ये दोनों वृक्ष क्षेत्रे गिर पड़े ? शीघ्र बताओ।' तब उन समस्त ब्रजवासी बालकोंने कहा ॥ २१-२२ ॥

बालकोंने कहा—इस कन्हैयाने ही दोनों वृक्षोंको गिराया है। उन वृक्षोंसे दो पुरुष निकलकर यहाँ लकड़े थे, जो इसे नमस्कार करके अभी-अभी उत्तर दिशाकी ओर गये हैं। उनके अङ्गोंसे दीर्घिमती प्रभा निकल रही थी ॥ २३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! बाल-बालोंकी यह बात सुनकर उन बड़े-बड़े गोपोंने उसपर विश्वास नहीं किया। नन्दजीने ओखलीमें रस्सीसे बैंधे हुए अपने बालकों खोल दिया और लाढ़-प्यार करते हुए गोदमें उठाकर उस शिशुको दृঃঃঃ দেখने लगे। नरेश्वर ! नन्दजीने अपनी पत्नीको बहुत उलाहना दिया और ब्राह्मणोंको सौ गायें दानके रूपमें दी ॥ २४-२५ ॥

बहुलाभने कहा—देवर्षिप्रवर ! वे दोनों दिव्य पुरुष कौन थे, यह बताइये। किस दोषके कारण उन्हें यमलाञ्जन-वृक्ष होना पड़ा था ? ॥ २६ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! वे दोनों कुनेरके श्रेष्ठ पुरुष थे, जिनका नाम था—'नलकूवर' और 'भणि-ग्रीव'। एक दिन वे नन्दनवनमें गये और वहाँ मन्दाकिनीके तटपर उहरे। वहाँ अस्वराहे उनके गुण गाती रहीं और वे दोनों बालणी मरिशासे मतवाले होकर वहाँ नंग-धर्द्दंगा विचरते रहे। एक तो उनकी युवावशा थी और दूसरे वे द्रव्यके दर्प (जनके मद) से दर्पित (उन्मत्त) थे। उसी अवसरपर किसी कालमें 'देवल' नामधारी मुनीन्द्र, जो

* कलणानिषये तुम्ह जगन्मङ्गलशीलिने ।
दामोदराय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥
(गण०, गोलोक० १९ । २०)

बैदोके पारंगत विद्वान् थे, उच्चर आ निकले । उन दोनों कुजेर-पुजोंको नग्न देखकर शृङ्खिले उनसे कहा—‘तुम दोनोंके स्वभावमें तुष्टा भरी है । तुम दोनों अपनी तुष्ट-तुष्ट लो बैठे हो’ ॥ २७—२९ ॥

इतना कहकर देवलजी फिर बोले—तुम दोनों वृक्षके समान जड़, धृष्ट तथा निर्भव हो । तुम्हें अपने द्रष्ट्यका बड़ा धमंड है; अतः तुम दोनों इस भूतलपर सौ (दिव्य) वर्णोंतकके लिये वृक्ष हो जाओ । जब द्वापरके अन्तमें

इस प्रकार श्रीगण-संहितामें गोलोकद्वाष्टके अन्तर्गत नारद-बहुलाश-संदादमें ‘उत्सूक्त-वन्धन और यमतर्जुन-मोक्ष’ नामक उन्नीसवाँ ग्रन्थ पूरा हुआ ॥ १९ ॥

भारतवर्षके भीतर मधुर-जनपदके प्रदेशमध्यलमें कलन्द-नन्दिनी यमुनाके तटपर महावनके समीप तुम दोनों साक्षात् परिपूर्णतम दामोदर हरि गोलोकनाथ श्रीकृष्णका दर्शन करोगे, तब तुम्हें अपने पूर्वस्वरूपकी प्राप्ति हो जायगी ॥ ३०—३२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेभर ! इस प्रकार देवलके शापसे वृक्षभावको प्राप्त हुए नल्कूबर और मणिग्रीषका श्रीकृष्णने उद्धार किया ॥ ३३ ॥

बीसवाँ अध्याय

दुर्वासाद्वारा भगवान्‌की मायाका एवं गोलोकमें श्रीकृष्णका दर्शन तथा श्रीनन्दननन्दनस्तोत्र

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन ! एक दिन मुनि-श्रेष्ठ दुर्वासा परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करनेके लिये व्रजमण्डलमें आये । उन्होंने कालिन्दीके निकट पवित्र वाञ्छकागम युलिमके रमणीय स्थलमें महावनके समीप श्रीकृष्णको निकटसे देखा । वे शोभाशाली मदनगोपाल बालकोंके साथ वहाँ लोटते, परस्पर मङ्ग-युद्ध करते तथा भौति-भौतिकी बालोचित लोलाएँ करते थे । इन सब कारणोंसे वे बड़े मनोहर जान पढ़ते थे । उनके सारे अङ्ग धूलसे धूसरित थे । मलतकपर काले हुँसराले केश शोभा पाते थे । दिगम्बर-वेषमें बालकोंके साथ दौड़ते हुए श्रीहरिको देखकर दुर्वासाके मनमें वहा विस्मय हुआ ॥ १-४ ॥

श्रीमुनि (मन-ही-मन) कहने लगे—क्या यह वही षड्बिध ऐश्वर्यसे सम्पन्न ईश्वर है ? फिर यह बालकोंके साथ धरतीपर क्यों लोट रहा है ? मेरी समझमें यह केवल नन्दका पुत्र है, परात्मर श्रीकृष्ण नहीं है ॥ ५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन ! जब महामुनि दुर्वासा इस प्रकार मोहमें पड़ गये, तब सेल्लों हुए श्रीकृष्ण स्वर्य उनके पास उनकी गोदमें आ गये । फिर उनकी गोदसे हट गये । श्रीकृष्णकी हड्डि बाल-सिंहके समान थी । वे हँसते और मधुर बचन बोलते हुए पुनः

मुनिके सम्मुख आ गये । हँसते हुए श्रीकृष्णके शास्त्रसे सिंचकर मुनि उनके मुँहमें समा गये । वहाँ जाकर उन्होंने एक विशाल लोक देखा, जिसमें अरण्य और निर्जन प्रदेश भी दृष्टिगोचर हो रहे थे । उन अरण्यों (जंगलों) में भ्रमण करते हुए मुनि बोल उठे—‘मैं कहोसे यहाँ आ गया ?’ इतनेमें ही उन महामुनिको एक अजगर निर्गल गया । उसके पेटमें पहुँचनेपर मुनिने वहाँ सातों लोकों और पातालोंसहित समूचे ब्रह्माण्डका दर्शन किया । उसके द्वीपोंमें भ्रमण करते हुए दुर्वासा मुनि एक इवेत पर्वतपर ठहर गये । उस पर्वतपर शतकोटि बालोंतक भगवान्‌का भजन करते हुए वे तप करते रहे । इतनेमें ही सम्पूर्ण विश्वके लिये भयंकर नैमित्तिक प्रलयका समय आ पहुँचा । उसुद्ध रुब ओरसे भरातलको हुबाते हुए मुनिके पास आ गये । दुर्वासा मुनि उन समुद्रोंमें बहने लगे । उन्हें जलका कहीं अन्त नहीं मिलता था । इसी अवस्थामें एक सहस्र युग अवस्थीत हो गये । तदनन्तर मुनि एकार्णवके जलमें हूँच गये । उनकी स्मृति-शक्ति नष्ट हो गयी । फिर वे पानीके भीतर बिचरने लगे । वहाँ उन्हें एक दूसरे ही ब्रह्माण्डका दर्शन हुआ । उस ब्रह्माण्डके छिद्रमें प्रवेश करनेपर वे दिव्य सुषिर्में जा पहुँचे । वहाँसे उस ब्रह्माण्डके विशेषागमें विद्यमान लोकोंमें ब्रह्माकी आयु-पर्यन्त विचरते रहे । इसी

प्रकार वहाँ एक छिद्र देखकर श्रीहरिका सरण करते हुए वे उसके भीतर दुर्स गये । धूसते ही उस ब्रह्माण्डके बाहर आ निकले । फिर तत्काल उन्हें महती जलराशि दिखायी दी । उस जलराशिमें उन्हें कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंकी राशियाँ बहती दिखायी दीं । तब मुनिने जलको ध्यानसे देखा तो उन्हें वहाँ विरजा नदीका दर्शन हुआ । उस नदीके पार पहुँचकर मुनिने साक्षात् गोलोकमें प्रवेश किया । वहाँ उन्हें क्रमशः वृन्दावन, गोवर्धन और सुन्दर यमुना-पुलिनका दर्शन करके बड़ी प्रसन्नता हुई । फिर वे मुनि जब निकुञ्जके भीतर धूसे, तब उन्होंने अनन्त कोटि मार्त्तण्डोंके समान ज्योतिर्मण्डलके अंदर दिव्य लक्षदल कमलपर विराजमान साक्षात् पर्याप्ततम पुरुषोत्तम राधायल्लभ भगवान् श्रीकृष्णको देखा, जो अमर्त्य गोप-गोपयोंसे थ्रे तथा कोटि-कोटि गौओंसे सम्बन्धित । असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति उन भगवान् श्रीहरिके साथ ही उनके गोलोकका भी मुनिनो दर्शन हुआ ॥ ६-२० ॥

उन्हें देखकर भगवान् श्रीकृष्ण हँसने लगे । हँसते समय उनके श्वाससे खिंचकर दुर्बासा मुनि उनके मुँहके भीतर पहुँच गये । उस मुखसे पुनः बाहर निकलनपर उन्होंने उन्हीं बालकपाधारी श्रीनन्दननन्दनको देखा, जो कालिन्दीके निकटबर्ती पुष्यवालुकामय रमणस्थलीमें बालकोंके साथ चिचर रहे थे । महावनमें श्रीकृष्णका उम स्पर्में दर्शन करके दुर्बासा मुनि यह ममक्ष गये कि ये श्रीकृष्ण साक्षात् परात्पर ब्रह्म हैं । फिर तो उन्होंने श्रीनन्दनन्दनको बार बार नमस्कार करके हाथ जोड़कर कहा ॥ २१-२३ ॥

श्रीमुनि बोले—जिनके नेत्र नूतन विकसित शतदल कमलके समान विशाल हैं, अधर विष्वापलभी अद्यगिमाको तिरस्कृत करनेवाले हैं तथा श्रीअङ्ग सजल जलधरकी श्याम-मनोहर कान्तिको छीने लेते हैं, जिनके मुख्यपर मन्द मुसकान-की दिव्य छाटा छा रही है तथा जो सुन्दर मधुर मन्दगतिसे चाल रहे हैं, उन बाल्यवस्थासे विलमित मनोज्ञ श्रीनन्दनन्दनको मैं मनसे प्रणाम करता हूँ । जिनके चरणोंमें मङ्गीर और नूपुर झङ्कत हो रहे हैं और कटिमें खनखनाती हुई नूतन रसनिर्मित काञ्जी (करधनी) शोभा दे रही है; जो बछनखासे युक्त अन्नसमुदाय तथा सुन्दर कण्ठहारसे

मुशोभित हैं, जिनके मालदेशमें दृष्टिनित पीढ़ा हर लेनेवाली कब्जलकी बेंदी शोभा दे रही है तथा जो कलिन्द-नन्दिनीके तटपर बालेचित्र कीड़ामें संलग्न हैं, उन श्रीहरिकी मैं बन्दना करता हूँ । जिनके पूर्णचन्द्रोपम सुन्दर मुखपर नूतन नीलधनकी श्याम विभाको तिरस्कृत करनेवाले धुँधराले काले केदा चमक रहे हैं तथा जिनका मस्तकरूपी कुमुद कुछ छुका हुआ है, उन आप नन्दनन्दन श्रीकृष्ण तथा आपके अग्रज श्रीयश्चरामभी मेरा बारंगार नमस्कार है । जो प्रातःकाल उठकर इस 'श्रीनन्दननन्दनस्तोत्र'का पाठ करता है, उसके नेत्रोंके समक्ष श्रीनन्दनन्दन सानन्द प्रकट होते हैं* ॥ २४-२७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—इस प्रकार श्रीकृष्णको प्रणाम करके मुनिशिरोमणि दुर्वासा उन्हींका ध्यान और जप करते हुए उत्तरमें वदरिकाश्रमकी ओरचले गये ॥ २८ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—शौनक ! इस प्रकार देवर्पिंश्वकर महात्मा नारदने बुद्धिमान् राजा बहुलाश्चो भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र सुनाया था । ब्रह्मन् ! वह सब मैंने तुमसे कह सुनाया । भगवान्का सुयश कलिकलुषका विनाश करनेवाला, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष---चारों पदार्थोंको

* श्रीमुनिरुचाच—
वालं नवीनशतपत्रविशालनेऽनं
विमाधरं सजलमेघरुचिं मनोऽनम् ।
मन्दस्मितं मधुरसुन्दरमन्दयानं
श्रीनन्दननन्दनमहं मनसा नमामि ॥
मञ्जीरनूपुररणध्वरलकाञ्जी-
श्रीहारकेसरिनखप्रतियन्त्रसंधम् ।
दष्ट्यातिर्हारिमिविन्दुविराजमानं
वन्दे कलिन्दतनुजातटबालकेलिम् ॥
पूर्णन्दुसुन्दरमुखोपरि कुञ्जिताप्राः
केशा नवीनघननीलनिभाः स्फुरन्तः ।
राजन्त आनन्दशिरः कुमुदस्य यस्य
नन्दात्मजाय सबलाय नमो नमस्ते ॥
श्रीनन्दननन्दनस्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
तन्नेत्रगोचरं याति सानन्दं नन्दनन्दनः ॥
(गर्ग०, गोलोक० २० । २४-२७)

देनेवाला तथा दिव्य (लोकातीत) है । अब हुम और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ २९-३० ॥

शौनक बोले—तपोधन ! इसके बाद मिथिलामरेश वहुलक्ष्मने शान्तस्वरूप, शानदाता महामुनि नारदसे क्या पूछा, वही प्रसन्न मुझसे कहिये ॥ ३१ ॥

श्रीगर्गजीने कहा—शौनक ! शानदाता नारदजीको नमस्कार करके मानदाता मैथिलामरेशने पुनः उनसे श्रीकृष्णचरित्रके विषयमें, जो मङ्गलका धाम है, प्रश्न किया ॥ ३२ ॥

श्रीबहुलाश्वने पूछा—प्रभो ! परमानन्दविग्रह साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने इसके बाद और कौन-कौन-सी विचरण लीलाएँ कीं, यह मुझे बनाइये । पूके अवतारों-द्वारा भी मङ्गलमय चरित्र समादित हुए हैं । इस श्रीकृष्णावतारके द्वारा इसके बाद और कौन-कौन-से पवित्र चरित्र किये गये, यह सब बताइये ॥ ३३-३४ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! हुमें अनेक साधुवाद

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत नारदबहुलाश-संवादमें दुर्वसाके द्वारा भगवानकी मायाका

दर्शन तथा श्रीनन्दननन्दनस्तोत्रका वर्णनः नामक वीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

हैं; ज्ञानेकि तुमने श्रीहरिके मङ्गलमय चरित्रके विषयमें प्रश्न किया है । बृन्दावनमें जो उनकी यशोबर्धक लीलाएँ हुई हैं, उनका मैं कर्णन करूँगा । यह गोलोकखण्ड अत्यन्त गोपनीय और परम अनुत्त है । गोलोकके रासमण्डलमें साक्षात् श्रीकृष्णने इसका वर्णन किया था । इसे श्रीकृष्णने निकृष्णमें राधिकाको सुनाया और श्रीराधाने सुने इसका ज्ञान प्रदान किया है । फिर मैंने तुमसे वह सब सुना दिया । यह गोलोकखण्डका बृत्तान्त सम्पूर्ण पदार्थोंको देनेवाला उत्कृष्ट साधन है । यदि ब्राह्मण इसका पाठ करता है तो वह सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थका ज्ञाता होता है, क्षनिय इसे सुने तो वह ग्रन्थण्ड पराक्रमी चक्रवर्ती सम्प्राद् होता है, वैश्य सुने तो वह निधिपति हो जाय और शूद्र सुने तो वह संमारके वन्धनसे छुटकारा पा जाय । जो इस जगत्में फलकी कामनासे रहित होकर इयका पाठ करता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है । जो मध्यक् भक्तिभावसे युक्त हो नित्य इसका पाठ करता है, वह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके गोलोकधाममें, जो प्रकृतिसे परे है, पहुँच जाता है ॥ ३५-४० ॥

गोलोकखण्ड सम्पूर्ण ।

* इदं गोलोकखण्डं च गुरुं परमवहुनम् । श्रीकृष्णेन प्रकथितं गोलोके रासमण्डले ॥

निकृञ्जे राधिकायै च राधा मर्यादा ददाविदम् । मया तु अथं आविं च दत्तं सर्वर्थदं परम् ॥

इदं पठयि विप्रस्तु तर्वशालार्थगो भवेत् । शुनेदं चक्रवर्ती सात् क्षत्रियश्चण्डावक्रमः ॥

वैश्यो निधिपतिर्भूयाच्छ्रुतो मुच्येत वन्धनात् । निष्कलो योऽपि जगाते जीवन्मुक्तः स जायते ॥

यो नित्यं पठते सम्यग् भक्तिभावसमन्वितः । स गच्छेत् कृष्णचन्द्रस्य गोलोकं प्रकृतेः परम् ॥

(गर्ग०, गोलोक० २० । ३६-४०)

श्रीराध्रकृष्णाम्भों नमः

श्रीबृन्दावनखण्ड

प्रथम अध्याय

सञ्चन्दका गोपेको महाबनसे बृन्दावनमें चलनेकी सम्मति देना और
ब्रजमण्डलके सर्वाधिक भाषांस्म्यका वर्णन करना

मङ्गलाचरण
गुणार्थीरे कोकिलाकेहिकरे
गुआपुष्जे देवगुणादिकुञ्जे ।
कम्पुदीवी किंसवाहु चलम्बी
राधापृष्ठी भक्तं भेदताम् ॥ १ ॥

श्रीयमुनाजीके तटपर, जहाँ कोकिलाएँ तथा क्रीडाशुक विचरते हैं, गुआपुष्जे विलसित देवपुष्प (पारिजात) आदिके कुञ्जमें, शङ्ख-सूहा सुन्दर ग्रीष्मे सुशोभित तथा एक दूसरे के गलेमें बाँह ढालकर चलनेवाले प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्ण मेरे लिये मङ्गलमय हों ॥ १ ॥

मङ्गलसिराज्ञस्य शानाव्यनकाक्षया ।
चक्षुस्मीलितं वेग तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २ ॥
मैं अशानरूपी रौधीसे अंधा हो रहा था; किंहोने शानरूपी अञ्जनकी शालाकासे मेरी आँखें खोल दी हैं, उन श्रीगुरदेवको नमस्कार है ॥ २ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! एक समयकी बात है—ब्रजमें विविध उपद्रव होते देख नन्दराजने अपने सहायक नन्दों, उपनन्दों, बृषभानुओं, बृषभानुवरों तथा अन्य बड़े बूढ़े गोपोंको बुलाकर सभामें उनसे कहा ॥ ३३ ॥

नन्द बोले—गोपगण! महाबनमें तो बहुतसे उत्सात हो रहे हैं। बताइये, हमलोगोंको इस समय क्या करना चाहिये? ॥ ४ ॥

नारदजी कहते हैं—यह सुनकर उन सबमें विशेष मन्त्रकुशल बृद्ध गोप सञ्चन्दने बल्दाम और श्रीकृष्णको गोदमें लेकर नन्दराजते कहा ॥ ५ ॥

सञ्चन्द बोले—मेरे विचारसे तो हमें अपने समस्त परिकरोंके साथ यहाँसे उठ चलना चाहिये और किसी दूसरे पेसे स्थानमें आकर डेरा ढालना चाहिये, जहाँ

उत्सातकी सम्भावना न हो। तुम्हारा बालक श्रीकृष्ण हम सबको प्राणोंके समान प्रिय है, ब्रजबालियोंका जीवन है, ब्रजका धन और गोपकुलका दीपक है और अपनी बालश्रीलासे सबके मनको मोह लेनेवाला है। हाय! कितने खेदकी बात है कि इस बालकपर पूतना, शक्ट और तृणावर्तका आक्रमण हुआ, पिर इसके ऊपर वृक्ष गिर पड़े; इन सब संकटोंसे यह किसी प्रकार बचा है, इससे बदकर उत्सात और क्या हो सकता है। इसलिये हमलोग अपने बालकोंके साथ बृन्दावनमें चलें और जब उत्सात शान्त हो जायें, तब फिर यहाँ आयें ॥ ६-९ ॥

नन्दने पूछा—मुदिमानोंमें श्रेष्ठ सञ्चन्दजी! इस ब्रजसे बृन्दावन कितनी दूर है? वह बन कितने कोसोंमें फैला हुआ है, उसका लक्षण क्या है और वहाँ कौन-सा सुख मुलभ है? यह सब बताइये ॥ १० ॥

सञ्चन्द बोले—विष्णुसे ईशानकोण, यदुपुरसे दक्षिण और शोणपुरसे पदिचमकी भूमिको ‘माधुर-मण्डल’ कहते हैं। मधुरामण्डलके भीतर सादे बीस योजन विस्तृत भूमागको मनीची पुष्पोंने ‘दिव्य माधुर-मण्डल’ या ‘वज’ बताया है। एक बार मैं मधुरापुरीमें बसुदेवजीके घर ठहरा हुआ था; वहीं श्रीगर्गचार्यजीके मुखसे मैंने सुना था कि तीर्थराज प्रयागने भी इस दिव्य मधुरामण्डलकी पूजा की है। योंतो मधुरामण्डलमें बहुत से बन हैं किंतु उन सबसे श्रेष्ठ ‘बृन्दावन’ नामक बन है, जो वैकुण्ठसे भगवान्के भी मनको हरण करनेवाला लीलाक्रीडा-स्तुल है। वैकुण्ठसे बदकर दूसरा कोई लोक न तो हुआ है और न आगे होगा। केवल एक ‘बृन्दावन’ ही ऐसा है, जो वैकुण्ठकी अपेक्षा भी परात्पर (परम उत्कृष्ट) है। जहाँ ‘गोवर्धन’ नामसे प्रसिद्ध गिरिराज विराजमान है, जहाँ कालिन्दीके तटपर मङ्गलधाम पुलिन है, जहाँ दृहस्तानु (वरसाना) पर्वत है तथा जहाँ नन्दीधर

गिरि शोभा पाता है, जो चौकील कोषके विकारमें लित तथा विशाल काननोंसे आहुत है; जो पशुओंके लिये हितकृष्ट गोप-गोपी और गीधोंके लिये सेवन करनेयेग्य तथा छत-कुञ्जोंसे आहुत है, उस मनोहर बनको 'शुभदावन'के मामसे सरण किया जाता है ॥ ११-१८ ॥

नन्दजीने पूछा—सच्चन्दजी ! तीर्थराज प्रयागने कब इस ब्रजकी पूजा की है, मैं यह जानना चाहता हूँ । इसे सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल—यही उत्कृष्ट है ॥ १९ ॥

सच्चन्द बोले—नन्दराज ! पूर्वकालमें नैमित्तिक प्रलयके अवसरपर एक महान् दैत्य प्रकट हुआ, जो शङ्खासुरके नामसे प्रसिद्ध था । वह वेदद्वारा ही दैत्यराज समस्त देवताओंको जीतकर ब्रह्मलोकमें गया और वहाँ सोते हुए ब्रह्माके पाससे वेदोंकी पोथी चुराकर समुद्रमें जा गुसा । वेदोंके जाते ही देवताओंका सारा बल चला गया । तब पूर्ण भगवान् यजेश्वर श्रीहरिने मत्स्यरूप धारण करके नैमित्तिक प्रलयके सागरमें उस शङ्खासुरके साथ युद्ध किया । महाबली दैत्य शङ्खने श्रीहरिके ऊपर शूल चलाया । किंतु साक्षात् श्रीहरिने अपने चक्रसे उस शूलके सैकड़ों द्वाक्षे कर दिये । तब शङ्खने अपने सिरसे भगवान् विष्णुके वक्षःथलमें प्रहार किया । किंतु उसके उस प्रहारसे परात्पर श्रीहरि विचलित नहीं हुए । उस समय मत्स्यरूपधारी श्रीहरिने हाथमें गदा लेकर महाबली शङ्खरूपधारी उस दैत्यकी पीठपर आघात किया । गदाके प्रहारसे वह इतना पीड़ित हुआ कि उसका चित्त कुछ व्याकुल हो गया; किंतु पुनः उठकर उसने सर्वेश्वर श्रीहरिको मुक्तेसे मारा । तब कमलनयन साक्षात् भगवान् विष्णुने कुपित हो अपने चक्रसे उसके बुद्धदः मस्तकको सींगसहित काट डाला । यजेश्वर ! इस प्रकार शङ्खको जीतकर देवताओंके साथ सर्वव्यापी श्रीहरिने प्रयागमें आकर वे चारों वेद ब्रह्माजीको दे दिये । किर सम्पूर्ण देवताओंके साथ उन्होंने विधिवत् यहका अनुष्ठान किया और प्रयागतीर्थके अधिष्ठाता देवताको बुलाकर उसे 'तीर्थराज' पदपर अभिषिक्त कर दिया । साक्षात् अक्षयवटको तीर्थराजके लिये लीलाभृत-दा बना दिया । मुनिकन्या गङ्गा तथा सूर्यसुता यमुना अपनी तरङ्गरूपी चामरोंसे उनकी सेवा करने लगीं । उसी समय जमूदीपके सारे तीर्थे "ठ लेकर शुद्धिमान् तीर्थराजके पास आये और उनकी पूजा और बन्दना करके वे तीर्थ अपने-

अपने स्थानको बढ़ाए गये । नन्द ! जब देवताओंके साथ श्रीहरि भी चले गये, तब वहीं कल्पप्रिय मुनीन्द्र नारदजी आ पहुँचे और रिंहासनपर देवीप्यमान तीर्थराजसे बोले ॥ २०—३३ ॥

श्रीमात्रदजीने कहा—महातपसी तीर्थराज ! निष्ठय ही तुम समस्त तीर्थोदारा विशेषरूपसे पूजित हुए हो; तुम्हें सभी मुख्य-मुख्य तीर्थोंने यहाँ आकर भेट समर्पित की है; परंतु ब्रजके शुभदावनादि तीर्थ यहाँ तुम्हारे सामने नहीं आये । तुम तीर्थोंके राजाधिराज हो, ब्रजके प्रमादी तीर्थोंनि यहाँ न आकर तुम्हारा तिरस्कार किया है ॥ ३४-३५ ॥

सच्चन्द कहते हैं—यों कहकर साक्षात् देवर्षि-शिरोमणि नारदजी बहाँसे चले गये । तब तीर्थराजके मनमें बड़ा क्षेत्र हुआ और वे उसी क्षण श्रीहरिके लोकमें गये । श्रीहरिको प्रणाम और उनकी परिक्रमा करके सम्पूर्ण तीर्थोंसि घिरे हुए तीर्थराज हाथ जोड़कर भगवान्के सामने लड़े हुए और उन श्रीनाथसे बोले ॥ ३६-३७ ॥

तीर्थराजने कहा—देवदेव ! मैं आपकी सेवामें इस-लिये आया हूँ कि आपने तो मुझे 'तीर्थराज' बनाया और समस्त तीर्थोंने मुझे भेट दी, किंतु मधुरामण्डलके तीर्थ मेरे पास नहीं आये; उन प्रमादी ब्रजतीर्थोंने मेरा तिरस्कार किया है । अतः यह बात आपसे कहनेके लिये मैं आपके मन्दिरमें आया हूँ ॥ ३८-३९ ॥

श्रीभगवान् बोले—मैंने तुम्हें धरतीके सब तीर्थोंका राजा—'तीर्थराज' अवश्य बनाया है; किंतु अपने धरका भी राजा तुम्हें ही बना दिया हो, ऐसी बात तो नहीं हुई है ! फिर तुम मेरे गृहपर भी अधिकार जमानेकी इच्छा लेकर प्रमत्त पुरुषके समान बात कैसे कर रहे हो ? तीर्थराज ! तुम अपने धर जाओ और मेरा यह शुभ बचन सुन लो । मधुरामण्डल मेरा साक्षात् परात्पर भास है, चिलोकीसे परे है । उस दिव्यधामका प्रख्यातालमें भी संहार नहीं होता ॥ ४०—४२ ॥

सच्चन्द कहते हैं—यह सुनकर तीर्थराज बड़े विसित हुए । उनका शारा अभिमान गल गया । फिर वहाँसे आकर उन्होंने मधुरामण्डलका पूजन और उसकी परिक्रमा करके अपने स्थानको पदार्पण किया । पृथ्वीका मानभर करनेके लिये यह ब्रजमण्डल पहले दिलाया गया था । मैंने ये सारी बातें तुम्हारे सामने कहीं, अब और क्या सुनना चाहते हो ॥ ४३-४४ ॥

मन्दजीने पूछा—गोपेश्वर ! किसने पहले पृथ्वीका मान-मङ्ग करनेके लिये इस व्रजमण्डलको दिखलाया था, यह मुझे बताइये ॥ ४६ ॥

सञ्जन्दनने कहा—इसी वाराहकल्पमें पहले श्रीहरिने वराहरूप धारण करके अपनी दाढ़पर उठाकर रसातलसे पृथ्वीका उद्धार किया था । उस समय उन प्रभुकी चड़ी शोभा हुई थी । जलमें जाते हुए उन वराहरूपशारी भगवान् रमानाथ जनार्दनसे उनकी दंष्ट्रा के अग्रभागपर शोभित हुई पृथ्वी बोली ॥ ४६-४७ ॥

पृथ्वीने पूछा—प्रभो ! सारा विश्व पानीसे भरा दिखायी देता है । अतः यताइये, आप किन स्थलपर मेरी स्थापना करेंगे ? ॥ ४८ ॥

भगवान् वराह बोले—जब वृक्ष दिखायी देने लोगों और जलमें उद्देश्य का भाव प्रकट हो, तब उसी स्थानपर तुम्हारी स्थापना होगी । तुम पृथ्वीको देखती चलो ॥ ४९ ॥

पृथ्वीने कहा—भगवन् ! सावर बस्तुओंकी रचना

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीबृन्दावनखण्डके अन्तर्गत नन्द-सञ्जन-संवादमें बृन्दावनमें आगमनके उद्घोषका वर्णन नामक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

गिरिराज गोवर्धनकी उत्पत्ति तथा उसका व्रजमण्डलमें आगमन

मन्दजीने पूछा—महाप्राज्ञ सञ्जन्दजी ! आप सर्वश और वहुश्रुत हैं, मैंने आपके मुन्नमें व्रजमण्डलके माहात्म्य-का वर्णन सुना । अब ‘गोवर्धन’ नामसे प्रसिद्ध जो पर्वत है, उसकी उत्पत्ति कैसे हुई—यह मुझे बताइये । इस गिरिश्रेष्ठ गोवर्धनको लोग ‘गिरिराज’ क्यों कहते हैं ? यह साक्षात् यमुना नदी किम लोकसे यहाँ आयी है ? उसका माहात्म्य भी मृशसे कहिये; क्योंकि आप शानियोंके द्विरोमणि हैं ॥ १-३ ॥

सञ्जन्दजी बोले—एक समयकी बात है, हस्तिना-पुरमें महाराज पाण्डुने धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीभीमजीसे ऐसा ही प्रश्न किया था । उनके उस प्रश्नको और भीमजीद्वारा दिये गये उत्तरको अन्य बहुत से लोग भी सुन रहे थे । (उस समय भीमजीने जो उत्तर दिया, वही मैं गहाँ सुना रहा हूँ—) साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण, जो असंख्य

तो मेरे ही ऊपर हुई है । क्या कोई दूसरी भी धरणी है ? धारणामयी धरणी तो केवल मैं ही हूँ ॥ ५० ॥

सञ्जन्दजी कहते हैं—यों कहती हुई पृथ्वीने अपने सामने जलमे मनोहर वृक्ष देखे । उहें देखकर पृथ्वीका अभिमान दूर हो गया और वह भगवान्से बोली—‘देव ! किस स्थलपर ये पललवसहित वृक्ष विद्यमन हैं ? यह दृश्य मेरे मनमें बड़ा आश्र्य पेदा कर रहा है । यशपते ! प्रभो ! इसका रहस्य बताइये’ ॥ ५१-५२ ॥

भगवान् वराह बोले—नितम्भिनि ! यह सामने दिव्य ‘माथुर-मण्डल’ दिखायी देता है, जो गोलोककी धरतीमें जुड़ा हुआ है । प्रलयकालमें भी इसका नंदार नहीं होता ॥ ५३ ॥

सञ्जन्द बोले—यह सुनकर पृथ्वीको बड़ा विस्त्रय हुआ । वह अभिमानशृंखला हो गयी । अतः महावाहु नन्द ! यह व्रजमण्डल समस्त लोकोंमें अधिक महत्वशाली है । व्रजका यह माहात्म्य सुनकर मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है । तुम ‘माथुर-व्रजमण्डल’ को तीर्थग्राम प्रयागमें भी उत्कृष्ट समझो ॥ ५४-५५ ॥

ब्रह्माण्डोंके अधिपति, गोलोकके नाश और सब कुछ करनेमें समर्थ हैं, जब पृथ्वीका भार उतारनेके लिये स्वयं इस भूतलपर पथारनेलगे, तब उन जनार्दनदेवनें अपनी प्राणवल्लभा राधासे कहा—‘प्रिय ! तुम मेरे वियोगसे भयभीत रहती हो, अतः भीर ! तुम भी भूतलपर चलो’ ॥ ६-६ ॥

श्रीराधाजी बोली—प्राणनाथ ! जहाँ बृन्दावन नहीं है, जहाँ यह यमुना नदी नहीं है तथा जहाँ गोवर्धन पर्वत नहीं है, वहाँ मेरे मनको सुख नहीं मिल सकता ॥ ७ ॥

सञ्जन्दजी कहते हैं—नन्दराज ! श्रीराधाकी यह बात सुनकर स्वयं श्रीहरिने अपने धामसे चौरासी कोस विस्तृत भूमि, गोवर्धन पर्वत और यमुना नदीको भूतलपर भेजा । उस समय चौरासी कोस विस्तारवाली गोलोककी सर्वलोक-वन्दिता भूमि चौबीस बर्नोंके साथ यहाँ आयी । गोवर्धन पर्वतने भारतवर्षसे पश्चिम दिशामें शाल्मलीदीपके भीतर

द्रोणाचलकी पर्वतोंके गर्भमें जन्म ग्रहण किया । उस अवसर-पर देवताओंने गोवर्धनके ऊपर पूल बरसाये । हिमालय और सुमेर आदि समस्त पर्वतोंने बहाँ आकर प्रणाम और परिक्रमा करके गोवर्धनका विधिवत् पूजन किया । पूजनके पश्चात् उन महान् पर्वतोंने उसकी स्तुति प्रारम्भ की ॥ ८-१२ ॥

पर्वत बोले—तुम साक्षात् परिणूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके गोलोकभासमें, जहाँ दिव्य गौओंका समुदाय निवास करता है तथा गोपाल एवं गोपसुन्दरियाँ शोभा पाती हैं, सुशोभित होते हो । तुम्हीं 'गोवर्धन' नामसे बृन्दावनमें विराजते हो, इस समय तुम्हीं हम समस्त पर्वतोंमें 'गिरिराज' हो । तुम बृन्दावनकी गोदमें समोद निवास करनेवाले, गोलोकके मुकुटमणि हो तथा पूर्णब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णके हाथोंमें किसी विशिष्ट अवसरपर छत्रके समान शोभा पाते हो । तुम गोवर्धनको इमारा सादर नमस्कार है ॥ १३-१५ ॥

सञ्चन्द्यजी कहते हैं—नन्दराज ! जब इस प्रकार स्तुति करके सब पर्वत अपने-अपने स्थानपर चढ़े गये, तभीसे यह गिरिश्रेष्ठ गोवर्धन साक्षात् 'गिरिराज' कहाने लगा है । एक समय मुनिश्रेष्ठ पुलस्थ्यजी तीरथयात्राके लिये भूतलपर झगण करने लगे । उन महामुनिने द्रोणाचलके पुत्र इयामवर्णवाले श्रेष्ठ पर्वत गोवर्धनको देखा, जिसके ऊपर माधवी लताके मुमन सुशोभित हो रहे थे । वहाँके दूष फलोंके भासमें लड़े हुए थे । निष्ठरोंके शर-शर शब्द वहाँ गूँज रहे थे । उस पर्वतपर वही शान्ति विराज रही थी । अपनी कन्द्राओंके कारण वह मङ्गलका भास जान पड़ता था । सैकड़ों शिखरोंसे सुशोभित वह रक्षमय मनोहर शैल तपस्या करनेके लिये उपयुक्त स्थान था । विविध रंगकी चित्र-चित्रन धातुएँ उस पर्वतके अवयवोंमें विचित्र शोभाका आधान करती थीं । उसकी भूमि ढालू (चढ़ाव-उतारसे युक्त) थी और वहाँ नाना प्रकारके पक्षी सब और व्यास थे । मृग और बंदर आदि पशु चारों ओर कैले हुए थे । मधुरोंकी केकाखनिसे मण्डित गोवर्धन पर्वत मुसुमुओंके लिये मोक्षप्रद प्रतीत होता था ॥ १६-२० ॥

मुनिवर पुलस्यके मनमें उस पर्वतको प्राप्त करनेकी इच्छा हुई । इसके लिये वे द्रोणाचलके समीप गये । द्रोणगिरिने उनका पूजन—स्वागत-स्वाक्षर किया । इसके बाद पुलस्थ्यजी उस पर्वतसे बोके ॥ २१ ॥

पुलस्यने कहा—दोष ! तुम पर्वतोंके स्थानी हो । समस्त देवता तुम्हारा समादर करते हैं । तुम दिव्य ओषधियोंसे सम्पन्न और मनुष्योंको सदा जीवन देनेवाले हो । मैं काशीका निवासी मुनि हूँ और तुम्हारे निकट याचक होकर आया हूँ । तुम अपने पुत्र गोवर्धनकी मुखे दे दो । यहाँ अन्य वस्तुओंसे मेरा कोई प्रयोगन नहीं है । भगवान् विश्वेश्वरकी महानगरी 'काशी' नामसे प्रसिद्ध है, जहाँ मरणको प्राप्त हुआ पापी पुरुष भी तकाल परम मोक्ष प्राप्त कर लेता है, जहाँ गङ्गा नदी प्राप्त होती है और जहाँ साक्षात् विक्षणाथ भी विराजमान हैं । मैं वहाँ तुम्हारे पुत्रको स्थापित करूँगा, जहाँ दूसरा कोई पर्वत नहीं है । लता-बेलों और दृश्योंसे व्यास जो तुम्हारा पुत्र गोवर्धन है, उसके ऊपर रहकर मैं तपस्या करूँगा—ऐसी अभिलाषा मेरे मनमें जाग्रत् हुई है ॥ २२—२६ ॥

सञ्चन्द्यजी कहते हैं—पुलस्थ्यजीकी यह बात सुनकर पुत्र-स्नेहसे विहृत हुए द्रोणाचलके नेत्रोंमें आँसू भर आये । उसने पुलस्य मुनिसे कहा ॥ २७ ॥

द्रोणाचल बोले—महामुने ! मैं पुत्र-स्नेहसे आकुर हूँ । यह पुत्र मुझे अत्यन्त प्रिय है, तथापि आपके शापके भयसे भीत होकर मैं इसे आपके हाथोंमें देता हूँ । (फिर वह पुत्रसे बोला—) बेटा ! तुम मुनिके साथ कल्याणमय कर्मक्षेत्र भारतवर्षमें जाओ । वहाँ मनुष्य सत्कर्मोदारा धर्म, अर्थ और काम—चिर्वर्ग सुख प्राप्त करते हैं तथा (निष्काम कर्म एवं शानयोगदारा) क्षणभरमें मोक्ष भी पा लेते हैं ॥ २८-२९ ॥

गोवर्धनने कहा—मुने ! मेरा शरीर आठ योजन लंबा, दो योजन ऊँचा और पाँच योजन चौड़ा है । ऐसी दशामें आप किस प्रकार मुझे ले चलेंगे ॥ ३० ॥

पुलस्थ्यजी बोले—बेटा ! तुम मेरे हाथपर बैठकर सुखपूर्वक चढ़ो । जबतक काशी नहीं आ जाती, तबतक मैं तुम्हें हाथपर ही लेये चढँगा ॥ ३१ ॥

गोवर्धनने कहा—मुने ! मेरी एक प्रतिशा है । आप जहाँ-कहीं भी भूमिपर मुझे एक बार रख देंगे, वहाँकी भूमिसे मैं पुनः उत्थान नहीं करूँगा ॥ ३२ ॥

पुलस्थ्यजी बोले—मैं इस शाल्मलीदीपसे लेकर भारतवर्षके कोसलदेशक तुम्हें कहीं भी रास्तेमें नहीं रहूँगा, यह मेरी प्रतिशा है ॥ ३३ ॥

सम्भवन्दजी कहते हैं—नन्दराज ! तदनन्तर वह महान् पर्वत पिताको प्रणाम करके मुनिकी इथेलीपर आरुद्द हुआ । उस समय उसके नेत्रोंमें आँसू भर आये । उसे दाहिने हाथपर रखकर पुलस्थ मुनि लोगोंको अपना तेज दिखाते हुए धीरे-धीरे चले और ब्रजमण्डलमें आ पहुँचे । गोवर्धन-पर्वतको अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण था । ब्रजमें आनेपर उसने मार्गमें मन-ही-मन सोचा—‘यहाँ ब्रजमें असंख्य-ब्रह्माण्डनायक साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण अवतार क्लेश और ब्राह्मलबालोंके साथ वालीला तथा कैशोरलीला करेंगे । इतना ही नहीं, वे श्रीहरि यहाँ दानलीला और मानलीला भी करेंगे । अतः मुझे यहाँसे अन्यत्र नहीं जाना चाहिये । यह ब्रजभूमि और वह यमुना नदी गोलोकमें यहाँ आयी है । श्रीराधाके साथ भगवान् श्रीकृष्णका भी यहाँ शुभागमन होगा । उनका उत्तम दर्शन पाकर मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा ।’ मन-ही-मन ऐसा विचार करके गोवर्धनने मुनिकी इथेलीपर अपने शरीरका भार बहुत अधिक बढ़ा लिया । उस समय मुनि अस्त्वन्त थक गये । उन्हें पहलेकी कही हुई बातकी याद नहीं रही । उन्होंने पर्वतको हाथसे उतारकर ब्रजमण्डलमें रख दिया । भारते पीड़ित तो बै ये ही, क्षुश्चक्षुसे निवृत्त होनेके लिये चले गये । शौच-क्रिया करके जलमें स्नान करनेके पश्चात् मुनिवर पुलस्थने उत्तम पर्वत गोवर्धनसे कहा—‘अब उठो ।’ अधिक भासे सम्पन्न होनेके कारण जब वह दोनों हाथोंसे नहीं उठा, तब महामुनि पुलस्थने उसे अपने तेज और बलसे उठा देनेका उपक्रम किया । मुनिने स्नेहसे भीगी बाणीद्वारा द्रोणनन्दन गिरिराजको ग्रहण करनेका समूर्ण

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीबृन्दावनस्तुष्टुके अन्तर्गत ‘गिरिराजकी उत्पत्तिका वर्णन’ नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

श्रीयमुनाजीका गोलोकसे अवतरण और पुनः गोलोकधाममें प्रवेश

सम्भवन्दजी कहते हैं—नन्दराज ! गोलोकमें श्रीहरिने जब यमुनाजीको भूतल्पर जानेकी आशा दी और सरिताओंमें श्रेष्ठ यमुना जब श्रीकृष्णकी परिक्रमा करके जानेको उद्यत हुई, उसी समय विरजा तथा ब्रह्मद्रव्यसे उत्पन्न साक्षात् गङ्गा—ये दोनों नदियाँ आकर यमुनाजीमें लीन हो गयीं । इसीलिये परिपूर्णतमा कृष्ण (यमुना)को परिपूर्णतम श्रीकृष्णकी

शक्तिसे प्रथाम किया, किंतु वह एक अंगुल भी दस-से-मस न हुआ ॥ ३४-४४ ॥

तब पुलस्थजी बोले—गिरिश्रेष्ठ ! चलो, चलो ! भार अधिक न बढ़ाओ, न बढ़ाओ । मैं जान गया, तुम रुड़े हुए हो । शीघ्र चलाओ, तुम्हारा क्या अभिग्राय है ? ॥ ४५ ॥

गोवर्धन बोला—मुने ! इसमें मेरा दोष नहीं है । आपने ही मुझे यहाँ स्थापित किया है । अब मैं यहाँसे नहीं उड़ूँगा । अपनी यह प्रतिशा मैंने पहले ही प्रकट कर दी थी ॥ ४६ ॥

सम्भवन्दजी कहते हैं—यह उत्तर सुनकर मुनिश्रेष्ठ पुलस्थकी सारी हन्दियाँ ओछसे चक्कल हो उठीं । उनके ओष्ठ पफ़कने लगे । अपना सारा उद्यम व्यर्थ हो जानेके कारण उन्होंने द्रोणपुत्रको शाप दे दिया ॥ ४७ ॥

पुलस्थजी बोले—पर्वत ! तू बड़ा ढीठ है । तूने मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं किया । इसलिये तू प्रतिदिन तिल-तिल-भर क्षीण होता चला जा ॥ ४८ ॥

सम्भवन्दजी कहते हैं—नन्द ! यो कहकर पुलस्थ मुनि काशी चले गये । उसी दिनसे यह गोवर्धन पर्वत प्रतिदिन तिल-तिल करके छाण होता चला जा रहा है । जबतक भागीरथी गङ्गा और गोवर्धन पर्वत इस भूतल्पर विद्यमान हैं, तबतक कलिका प्रभाव कहापि नहीं बढ़ेगा । गोवर्धनका यह प्रकट चरित्र परम पवित्र और मनुष्योंके बड़े-बड़े पापोंका नाश करनेवाला है । यह प्रसङ्ग मैंने तुम्हारे सामने कहा है, जो भूमण्डलमें सचिर और अकृत है । यह उत्तम मोक्ष प्रदान करनेवाला है, इसमें कोई आश्रयकी बात नहीं है ॥ ४९-५१ ॥

पटरानीके रूपमें लोग जानते हैं । तदनन्तर सरिताओंमें श्रेष्ठ कालिन्दी अपने महान् वेगसे विरजाके वेगका भेदन करके निकुञ्ज-द्वारसे निकलीं और असंख्य ब्रह्माण्ड-समूहोंका स्पर्श करती हुई ब्रह्मद्रव्यमें गयीं । फिर उसकी दीर्घ जलराशिका अपने महान् वेगसे भेदन करती हुई वे महानदी श्रीयमनके बायें चरणके अँगूठेके नखसे विदीर्घ हुए ब्रह्माण्डके

शिरोभागमें विद्यमान ब्रह्मद्वयुक्त विवरमें श्रीगङ्गाके साथ ही प्रविष्ट हुई और वहाँसे वे लाइरा यमुना भ्रुवमण्डलमें स्थित भगवान् अंजित विष्णुके धाम वैकुण्ठलोकमें होती हुई ब्रह्मलोकको लॉबकर जब ब्रह्ममण्डलसे नीचे गिरीं, तब देवताओंके रैकड़ों लोकोंमें एक-से-दूसरेके कमसे विचरती हुई आगे बढ़ीं। तदनन्तर वे सुमेरुविशिरके शिखरपर बड़े वेगसे गिरीं और अनेक शैल-शृङ्गोंके लॉबकर बड़ी-बड़ी चट्टानोंके टटोंका मेदन करती हुई जब मेरुपर्वतसे दक्षिण दिशाकी ओर जानेको उद्यत हुईं, तब यमुनाजी गङ्गासे अल्पा हो गयीं। महानदी गङ्गा तो हिमवान् पर्वतपर चली गयीं, किंतु कृष्ण (श्यामसलिला यमुना) कलिन्द-शिखरपर जा पहुँचीं। वहाँ जाकर उस पर्वतसे प्रकट होनेके कारण उनका नाम ‘कालिन्दी’ हो गया। कलिन्दगिरि के शिखरोंसे दूटकर जो बड़ी-बड़ी चट्टानें पड़ी थीं, उनके सुट्ट तटोंको तोड़ती-फोड़ती और भ्रुण्डपर लोटती हुई वेगवती कृष्ण कालिन्दी अनेक देशोंको पवित्र करती हुई खाप्डबवनमें (इन्द्रप्रस्थ या दिल्लीके पास) जा पहुँचीं। यमुनाजी साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णको अपना पति बनाना चाहती थीं, इसलिये वे परम दिव्य देह भारण करके खाप्डबवनमें तपस्या करने ल्याँ। यमुनाके पिता भगवान् सूर्यने जलके भीतर ही एक दिव्य गेहका निर्माण कर दिया था, जिसमें आज भी वे रहा करती हैं। खाप्डबवनसे वेगपूर्वक चलकर कालिन्दी ब्रह्ममण्डलमें श्रीबृन्दावन और मथुराके निकट आ पहुँचीं। महावनके पास सिक्षामय रमणशालमें भी प्रवाहित हुईं। श्रीगोकुलमें आनेपर परम सुन्दरी यमुनाने (विशाला सर्वांके नामसे) अपने नेतृत्वमें गोपकिशोरियोंका एक यूथ बनाया और श्रीकृष्णचन्द्र-के रासमें समिलित होनेके लिये उन्होंने वहीं अपना निवासस्थान निश्चित कर लिया। तदनन्तर वे जब ब्रजसे आगे जाने ल्याँ, तब ब्रजभूमिके वियोगसे विहृल हो, प्रेमानन्दके आँसू बहाती हुई पवित्र दिशाकी ओर प्रवाहित हुईं ॥ १-१८ ॥

तदनन्तर ब्रजमण्डलकी भूमिको अपने वारि-वेगसे तीन यार प्रणाम करके यमुना अनेक देशोंको पवित्र करती हुई उत्तम तीर्थ प्रथागमें जा पहुँचीं। वहाँ गङ्गाजीके साथ उनका संगम हुआ और वे उन्हें साथ लेकर क्षीरसागरकी ओर गयीं। उस समय देवताओंने उनके ऊपर पूलोंकी वर्षा की ओर दिव्यजयसूचक जयघोष किया। नदीशिरोमणि

कलिन्दनिदनी कृष्णवर्णा श्रीयमुनाने समुद्रतङ्क पहुँचकर गद्यगदवाणीमें श्रीगङ्गासे कहा ॥ १९-२१ ॥

यमुनाने कहा—उमस्त ब्रह्माण्डको पवित्र करनेवाली गङ्गे ! तुम धन्य हो । साक्षात् श्रीकृष्णके चरणारविन्दीसे तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है, अतः तुम समस्त लोकोंके लिये एकमात्र वन्दनीया हो । शुभे ! अब मैं यहाँसे ऊपर उठकर श्रीहरिके लोकमें जा रही हूँ । तुम्हारी इच्छा हो तो तुम भी मेरे साथ चलो ! तुम्हारे समान दिव्य तीर्थ न तो हुआ है और न आगे होगा ही । गङ्गा (आप) सर्वतीर्थमयी हैं, अतः सुमङ्गले गङ्गे ! मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ । यदि मैंने कभी कोई अनुचित बात कही हो तो उसके लिये मुझे क्षमा कर देना ॥ २२-२४ ॥

गङ्गा बोली—कृष्ण ! समूर्ण ब्रह्माण्डको पावन बनाने-वाली तो तुम हो, अतः तुम्हीं धन्य हो । श्रीकृष्णके बामाङ्गसे तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है । तुम परमानन्द-स्वरूपिणी हो । साक्षात् परिपूर्णतमा हो । समस्त लोकोंके द्वारा एकमात्र वन्दनीया हो । परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्ण-की भी पटरानी हो । अतः कृष्ण ! तुम सब प्रकारसे उस्कृष्ट हो । तुम कृष्णाको मैं प्रणाम करती हूँ । तुम समस्त तीर्थों और देवताओंके लिये भी दुर्लभ हो । गोलोकमें भी तुम्हारा दर्शन दुष्कर है । मैं तो भगवान् श्रीकृष्णकी ही आशासे मङ्गलमय पाताललोकमें जाऊँगी । यद्यपि तुम्हारे वियोगके भयसे मैं बहुत व्याकुल हूँ, तो भी इस समय तुम्हारे साथ चलनेमें असमर्थ हूँ । ब्रजके राममण्डलमें मैं भी तुम्हारे यूथमें सम्मिलित होकर रहूँगी । हरिपिये ! मैंने भी यदि कोई अप्रिय बात कह दी हो तो उसके लिये मुझे क्षमा कर देना ॥ २५-२९ ॥

सञ्चाल्जी कहते हैं—इस प्रकार एक दूसरेको प्रणाम करके दोनों नदियाँ तुरंत अपने-अपने गन्तव्य पथपर चली गयीं। सुरधुनी गङ्गाजी अनेक लोकोंको पवित्र करती हुई पातालमें चली गयीं और वहाँ भोगवती-वनमें जाकर श्रीगवती गङ्गा^{के} नामसे प्रसिद्ध हुईं। उन्होंका जल भगवान् शंकर और शेषनाग अपने मस्तकपर धारण करते हैं ॥ ३०-३१ ॥

इधर कृष्ण अपने वेगसे सप्तसागर-मण्डलका मेदन करके सातों द्वीपोंके भूभागपर लोटती हुई और भी प्रश्नर वेगसे आगे बढ़ीं। सुवर्णमयी भूमिपर पहुँचकर लोकालोक

पर्वतपर गयीं । उसके शिलरां तथा गण्डशैलों (दृटी चाहानों) के टटका भेदन करके कालिन्दी पुष्टरेकी-सी जल-धारा के साथ उछलकर लोकालोक पर्वत के शिलरपर जा पहुँचीं । फिर वहाँसे ऊर्ध्वगमन करती हुई स्वर्णवासियोंके स्वर्णगलोक तक आ पहुँचीं । फिर ब्रह्मलोकतकके समस्त लोकोंको छाँपकर श्रीहरिके पदचिह्नसे लाङ्घित श्रीब्रह्मद्रवने युक्त ब्रह्माण्डविवरसे होती हुई आगे बढ़ गयीं । उस समय समस्त देवता प्रणाम करते हुए उनके ऊपर पूर्णोंकी

इस प्रकार श्रीगर्भ-संहितामें श्रीबुद्धावनखण्डके अन्तर्गत नन्द-सन्नन्द-संवादमें 'कालिन्दीके आगमनका वर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

श्रीबलराम और श्रीकृष्णके द्वारा बछड़ोंका चराया जाना तथा वस्त्रासुरका उदार

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! सन्नन्दकी बात सुनकर महामना नन्दराज समस्त गोपणोंके साथ बड़े प्रसन्न हुए और बृन्दावनमें जानेको तैयार हो गये । यशोदा, रोहिणी तथा समस्त गोपालानाओंके साथ घोड़े, रथों, वीर पुरुषों तथा विप्रमण्डलीसे मणित हो, परम बुद्धिमान् नन्दराज दोनों पुत्र बलराम और श्रीकृष्णासहित रथपर आरूढ़ हो बृन्दावनकी ओर चल दिये । उनके साथ गौओंकी समुदाय भी था । बड़े, बालक और सेवकोंसहित अनेक छड़के चल रहे थे । यशोदा के समय शङ्ख वजे और नगरोंकी ध्वनियाँ हुईं । बहुत-से गायक नन्दराजका यशोगान कर रहे थे ॥ १-४ ॥

गोप बृषभानुवर अपनी पत्नीके साथ हाथीपर बैठकर, पुर्णी राधाको अङ्गमें लिये, गायकोंसे यशोगान मुनाते हुए, मृदुल, ताल, बीणा और वेणुओंकी मधुर ध्वनिके साथ बृन्दावनको गये । उनके साथ भी बहुत से गोप और गौओंका समुदाय था । नन्द, उपनन्द और छहों बृषभानु भी अपने समस्त परिकरोंके साथ बृन्दावनमें गये । समस्त गोपोंने अपने सेवकोंसहित बृन्दावनमें प्रवेश करके अलग-अलग गोष्ठ बनाये और इधर-उधर निवास आरम्भ किया । बृषभानुने अपने लिये बृषभानुपुर (वरसाना) नामक नगरका निर्माण कराया, जो चार योजन विस्तृत हुगंके आकारमें था । उसके चारों ओर खाइयाँ बनी थीं । उस दुर्गके सात दरवाजे थे । दुर्गके भीतर विशाल सभामण्डप

बर्ण बर रहे थे । इस तरह सरिताओंमें बेहु मुना पुनः श्रीकृष्णके गोलोकधाममें आरूढ़ हो गयीं । कलिन्दगिरि-नन्दनीय मुनाके इस मङ्गलमय नूतन चरित्रका भूतलपर यदि अवध या पठन किया जाय तो वह उसम भूतलका विस्तार करता है । यदि कोई भी मनुष्य इस चरित्रको मनमें धारण करे और प्रतिदिन पढ़े तो वह भगवान्की निकुञ्जलीलाके द्वारा वरण किये गये उनके परमपद—गोलोक-धाममें पहुँच जाता है ॥ ३२-३७ ॥

—————♦♦♦————

या । अनेक सरोवर उस दुर्गकी शोभा बढ़ा रहे थे । बीच-बीचमें मनोहर राजमार्गका निर्माण कराया गया था । एक सहस्र कुञ्जों उस पुरकी शोभा बढ़ाती थीं ॥ ५-१० ॥

श्रीकृष्ण नन्दनगर (नन्दगाँव) तथा बृषभानुपुर (वरसाने) में बालकोंके साथ क्रीड़ा करते हुए घूमते और गोपालानाओंकी प्रीति बढ़ाते थे । राजन् ! कुछ दिनों बाद सम्पूर्ण गोपोंके समादर-भाजन मनोहर रूपवाले बलराम और श्रीकृष्ण बृन्दावनमें बछड़े चराने लगे । वे दोनों भाई ब्वाल-शालोंके साथ गाँयकी सीमातक जाकर बछड़े चराते थे । कालिन्दीके निकट उसके पावन पुलिनपर सुशोभित निकुञ्जों और कुञ्जोंमें बलराम और श्रीकृष्ण इधर-उधर लुकालिपीके स्लेल स्लेलते और कहीं-कहीं रेंगते हुए चलकर बनमें सानन्द विचरते थे । उन दोनोंके कटिप्रदेशमें करधनीकी लहियाँ शोभा देती थीं । स्लेलते समय उनके पैरोंके मझार और नूपुर मधुर झंकार फैलते थे । बलरामके अङ्गोंपर नीलाम्बर शोभा पाता था और श्रीकृष्णके अङ्गोंपर पीतपट । वे दोनों भाई हार और भुजवंदोंसे भूषित थे । कभी बालकोंके साथ क्षेपणों (ढेलवासीं) द्वारा ढेले फेंकते और कभी बाँझुरी बजाते थे । कुछ ब्वाल-बाल अपने मुखसे करधनीके बुँधुरओंकी-सी ध्वनि करते हुए दौड़ते और उनके साथ वे दोनों बन्धु—राम और श्याम भी पङ्कियोंकी छायाका अनुपरण करते भागते हुए सुशोभित होते थे । सिरपर मयूरपिंड लालकर फूलों और पल्लवोंके मुङ्गार धारण करते थे ॥ ११-१७ ॥

नरेश्वर ! एक दिन उनके बछड़ोंके स्तुदमें कंठका भेजा हुआ बत्सासुर आकर मिल गया । श्रीकृष्णको यह बात चिह्नित हो गयी और वे उसके पास गये । वह दैत्य गोप-बालोंके बीचमें सब ओर पूँछ उठाकर बार-बार दौड़ता हुआ दिखायी देता था । उसने अचानक आकर अपने पिछले पैरोंसे श्रीकृष्णके कंठोंपर प्रहार किया । अन्य गोप-बालक तो भाग चले, किंतु श्रीकृष्णने उसके द्वीपों पैर पकड़ लिये और उसे शुमार करतीपर पटक दिया । इसके बाद श्रीहरिने फिर उसे हाथोंसे उठाकर कपित्थ-बृक्षपर दे मारा । फिर तो वह दैत्य तल्काल मर गया । उसके खड़ोंसे महान् कपित्थ झुकने स्वयं गिरकर दूसरे-दूसरे शुक्रोंको भी भरायायी कर दिया । यह एक अद्भुत-सी बात हुई । समल ग्वाल-बाल आश्वर्यमें अकित हो कन्दैयाको वहाँ साधुवाद देने लगे । देवतालोग आकाशमें खड़े हो जय-जयकार करते हुए फूल बरसाने लगे । उस दैत्यकी विशाल ज्योति श्रीकृष्णमें लीन हो गयी ॥ १८-२३ ॥

बहुलाश्वने पूछा—मुने ! यह तो बड़े आश्वर्यकी बात है । बताइये तो, इस बत्सासुरके रूपमें पहलेका कौन-सा पुण्यात्मा पुरुष प्रकट हो गया था, जो परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णमें विलीन हुआ ? ॥ २४ ॥

श्रीनारदजी बोले—राजन् ! मुरके एक पुच था, जो महादैत्य 'प्रमील'के नामसे विख्यात था । उसने

इस प्रकार श्रीगर्ग-सहितामें श्रीबृन्दावनस्त्रके अन्तर्गत 'बत्सासुरका मोक्ष' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

वकासुरक्षा उद्धार

श्रीनारदजी कहते हैं—एक दिन बलराम तथा ग्वाल-बालोंके साथ बछड़े चराते हुए श्रीहरिने यमुनाके निकट आये हुए बकासुरको देखा । वह श्वेत पर्वतके समान ऊँचा दिखायी देता था । यहीं-बहीं टाँगें और मेष-गर्जनके समान अध्नि ! उसे देखते ही ग्वाल-बाल ढरके मारे भागने लगे । उसकी चौंच बड़के समान तीखी थी । उसने आते ही श्रीहरिको अपना ग्रास बना लिया । यह देख सब ग्वाल-बाल रोने लगे । रोते-रोते वे निष्ठाण-से हो गये । उस समय हाहाकार करते हुए सब देवता वहाँ आ पहुँचे । इन्हने तल्काल बत्र चलाकर उस महान् वकपर प्रहार किया । वक्रकी चोटसे वकासुर धरतीपर गिर पड़ा, किंतु

देवताओंको भी उद्धमें जीत लिया था । एक दिन वह वसिष्ठ मुनिके आश्रमपर गया । वहाँ उसने मुनिकी होमयेतु नन्दिनीको देखा । उसे पानेमी हच्छाते वह ब्रह्मणका रूप धारण करके मुनिके पास गया और उस मनोहर गोके लिये शाचना करने लगा । महर्षि दिव्यदर्शी थे; अतः तब कुछ जानकर भी सुप रह गये, कुछ बोले नहीं । तब गौने स्वयं कहा ॥ २५-२६ ॥

श्रीनन्दिनी बोली—दुमते ! तू मुरका पुच दैत्य है, तो भी मुनियोंकी गौका अपहरण करनेके लिये ब्राह्मण बनकर आया है; अतः गायका बछड़ा हो जा ॥ २७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! नन्दिनीके इतना कहते ही वह सुरुचि महान् गोवस्त बन गया । तब उसने मुनिवर वसिष्ठ तथा उस गौकी परिकमा एवं प्रणाम करके कहा—‘मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये’ ॥ २८ ॥

गौ बोली—महादैत्य ! द्वापरके अन्तमें जब तू श्रीकृष्णके बछड़ोंमें बुस जायगा, उस समय तेरी मुकि होगी ॥ २९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—उसी शाप और बरदानके कारण परिपूर्णतम पतितपाषन साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णमें दैत्य बत्सासुर विलीन हुआ । इसमें विस्मयकी कोई बात नहीं है ॥ ३० ॥

मरा नहीं । वह फिर उठकर खड़ा हो गया । तब ब्रह्माजीने भी कुपित होकर उसे ब्रह्मदण्डसे मारा । उन आशातसे गिरकर वह असुर दो बड़ीतक मूँछित पड़ा रहा । फिर अपने शरीरको कँपाता हुआ ज़माई लेकर वह बड़े बेगसे उठ खड़ा हुआ । उसकी मृत्यु नहीं हुई । वह बलवान् दैत्य मेषके समान गर्जना करने लगा । इसी समय त्रिनेत्र-धारी भगवान् शंकरने उस महान् असुरपर त्रिशूलसे प्रहार किया । उस प्रहारने दैत्यकी एक पॉल कट गयी, तो भी वह महाभयंकर असुर मर न सका । तदनन्तर बायुदेवने वकासुरपर बायव्याल चलाया; उससे वह कुछ ऊपरकी ओर उठ गया, परंतु पुनः अपने स्थानपर आकर खड़ा हो

यथा ॥ इसके बाद अपने सामने आकर उसपर यमदण्डसे प्रहार किया, परंतु प्रचण्ड-पराक्रमी वकासुरकी उस इण्डसे भी सूख नहीं हुई । यमराजका वह इण्ड भी टूट गया, किंतु वकासुरको कोई क्षति नहीं पहुँची । इतनेमें ही प्रचण्ड किरणोंवाले चण्डपराक्रमी सूर्यवेद उसके सामने आये । उन्होंने भनुष वाहयमें लेकर वकासुरको सौ बाण मारे । वे तीसे बाण उसकी पाँखमें छूँस गये, फिर भी वह मर न सका । तब कुबेरने तीसी तलवारसे उसके ऊपर चोट की । इससे उसकी दूसरी पाँख भी कट गयी, किंतु वह दैत्य-पुंगव मृत्युको नहीं प्राप्त हुआ । तदनन्तर सोमदेवताने उस महाबकपर नीहाराञ्चका प्रयोग किया । उसके प्रहारसे शीतपीडित हो वकासुर मर्जित तो हो गया, किंतु मरा नहीं । फिर उठकर खड़ा हो गया । अब अग्रिदेवताने उस महाबकपर आगेनेयाङ्गमें प्रहार किया; इससे उसके रोँ जल गये, परंतु उस महाकुष्ठ दैत्यकी मृत्यु नहीं हुई । तस्याचात् जलके स्वामी बहुगने उसको पाशसे बांधकर धरतापर लीटा । लीटनेसे वह महापापी असुर ज्ञात विक्षत हो गया, किंतु मरा नहीं ॥ १-१५ ॥

तदनन्तर वेगशालिनी भद्रकालीने आकर उसपर गदासे प्रहार किया । गदाके प्रहारसे मर्जित हो वकासुर अत्यन्त वेदनाके कारण मुध-बुध खो बैठा । उसके मस्तकपर चोट पहुँचा थी, तथापि वह अपने शरीरको कँपता और फड़फड़ता हुआ फिर उठकर खड़ा हो गया और वह महाकुष्ठ दैत्य धीरतापूर्वक समराङ्गणमें स्थित हो मेवोंकी भाँति गर्जना करने लगा । उस समय शति-धारी स्फन्दने बड़ी उतावलीके साथ उसके ऊपर अपनी शक्ति चलायी । उसके प्रहारसे उस पक्षिपत्रवर असुरकी एक टॉग टूट गयी, किंतु वह मर न सका । तदनन्तर विद्युतकी गङ्गगङ्गाहटके समान गर्जना करते हुए उस दैत्यने सहसा क्रोधपूर्वक धावा किया और अपनी तीसी चोंचसे भार-मारकर सब देवताओंको खदेढ़ दिया । आकाशमें आग-आग देवता भाग रहे थे और पीछेसे वकासुर उन्हें खदेढ़ रहा था । इसके बाद वह दैत्य पुनः वहीं लौट आया और समस्त दिक्ष्मण्डलको अपने सिंहादमें निनादित करने लगा ॥ १६-२० ॥

उस समस्त देवर्णियों, ब्रह्मर्णियों तथा द्विजोंने श्रीनन्दननन्दनको शीघ्र ही सफल आशीर्वाद-प्रदान किया । उसी समय श्रीकृष्णने वकासुरके शरीरके भीतर अपने

न्योतिर्मय दिव्य देहको बढ़ाकर विस्तृत कर लिया । फिर तो उस महाबकका कण्ठ फटने लगा और उसने सहसा श्रीकृष्णको उगल दिया । फिर तीसी चोंचसे श्रीकृष्णको पकड़नेके लिये जय वह पास आया, तब श्रीकृष्णने झापटकर उसकी पूँछ पकड़ ली और उसे पृथ्वीपर दे मारा; किंतु वह पुनः उठकर चोंच फैलाये उसके सामने खड़ा हो गया । तब श्रीकृष्णने दोनों हाथोंसे उसकी दोनों चोंचें पकड़ लीं और जैसे हाथी किसी शूक्रकी शाखाको चीर ढाले, उसी तरह उसे विदीर्ण कर दिया ॥ २१-२४ ॥

उस समय मृत्युको प्राप्त हुए दैत्यकी देहसे एक ज्योति निकली और श्रीकृष्णमें समा गयी । फिर तो देवता जय-जयकार करते हुए दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करने लगे । तब समस्त खाल-बाल आश्चर्यचकित हो, सब ओरसे आकर श्रीकृष्णसे लिघ्ट गये और बोले—‘सुखे । आज तो तुम मौतके मुखसे कुशल-पूर्वक निकल आये’ ॥ २५-२६ ॥

इस प्रकार वकासुरको मारनेके पश्चात् बछड़ोंको आगे करके श्रीकृष्ण बलराम और खाल-बालोंके साथ गीत गाते हुए सर्व राजभवनमें लौट आये । परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णके इस पराक्रमपूर्ण चरित्रका घर लौटे हुए खाल-बालोंने विस्तारपूर्वक बर्णन किया । उन्में सुनकर समस्त गोप अत्यन्त विस्मित हुए ॥ २७-२८ ॥

बहुलाश्वने पूँछा—देवर्णे ! यह वकासुर पूर्वकालमें कौन था और किस कारणसे उसको बगुलेका शरीर प्राप्त हुआ था ? यह पूर्णब्रह्म सर्वेश्वर श्रीकृष्णमें लीन हुआ, यह कितने सौभाग्यकी बात है ॥ २९ ॥

श्रीनारदजीने कहा—नरेश्वर ! ‘हयग्रीव’ नामक दैत्यके एक पुत्र था, जो ‘उत्कल’ नामसे प्रसिद्ध हुआ । उसने समराङ्गणमें देवताओंको परात्त करके देवराज इन्द्रके छन्द्रको छीन लिया था । उस महावली दैत्यने और भी बहुतसे मनुष्यों तथा नरेण्योंकी राज्य-सम्पत्तिका अपहरण करके सौ वर्षोंतक सर्ववैभवंसम्भव राज्यका उपभोग किया । एक दिन इधर-उधर विचरता हुआ दैत्य उत्कल गङ्गासागर-संगमपर यिद्य सुनि जाजिली पर्णशालाके समीप गया । और पानीमें बंसी ढालकर बारंबार मछलियोंको पकड़ने लगा । यथापि सुनिने मना किया, तथापि उस दुर्बुद्धिने उनकी बात नहीं मानी । सुनिश्चेष्ट जाजिलि सिद्ध महात्मा थे, उन्होंने उत्कलको शाप देते हुए कहा—‘भूमते । तू बगुले-

की भाँति मछली पकड़ता और लाता है इसलिये बगुला ही हो जा ।' फिर क्या था ? उसकल उसी क्षण बगुलेके रूपमें परिणत हो गया । तेजोभ्रष्ट हो जानेके कारण उसका सारा गर्व गल गया । उसने हाथ जोड़कर मुनिको प्रणाम किया और उनके दोनों चरणोंमें पढ़कर कहा ॥३०-३५॥

उसकल घोला—मुने ! मैं आपके प्रचण्ड तपोबलको नहीं जानता था । जाजिल्जी । मेरी रक्षा कीजिये । आप-जैसे साधु-महात्माओंका सङ्ग तो उच्चम भोक्षकका द्वार माना गया है । जो शशु और मित्रमें, मान और अपमानमें, सुवर्ण और भिट्ठीके ढेलेमें तथा सुख और दुःखमें भी समझाव रखते हैं, वे आप-जैसे महात्मा ही सच्चे साधु हैं । मुने ! इस भूतल्यपर महात्माओंके दर्शनसे मनुष्योंका कौन-कौन मनोरथ नहीं पूरा हुआ । ब्रह्मपद, इन्द्रपद, सम्प्राट्का पद तथा योगसिद्धि—सब कुछ संतोंकी कृपासे सुलभ हो सकते हैं । मुनिश्रेष्ठ जाजिले । आप-जैसे महात्माओंसे लोगोंको धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्ति हुई तो क्या हुई ? साधुपुरुषोंकी कृपासे तो साक्षात् पूर्ण-ब्रह्म परमात्मा भी मिल जाता है ॥ ३६-३९ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीबृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'बकासुरका मोक्ष'नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

छठा अध्याय

अघासुरका उद्धार और उसके पूर्वजन्मका परिचय

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! एक दिन व्याल-बालोंके साथ बछड़े चराते हुए श्रीहरि कालिन्दीके निकट किसी रमणीय स्थानपर बालोंचित खेल खेलने रहे । उसी समय अघासुर नामक महान् देव्य एक कोस लंबा शरीर धारण करके भीषण मुखोंके फैलाये थहाँ मार्गमें स्थित हो गया । दूरसे ऐसा जान पड़ता था, मानो कोई पर्वत खड़ा हो । बृन्दावनमें उसे देखकर सब व्याल-बाल ताली बजाते हुए बछड़ोंके साथ उसके मुँहमें छुस गये । उन सबकी रक्षाके लिये बलरामसहित श्रीकृष्ण भी अघासुरके मुखमें प्रविष्ट हो गये । उस सर्परूपधारी असुरने जब बछड़ों और व्याल-बालोंको निगल लिया, तब देवताओंमें हाहाकार मच गया; किंतु दैत्योंके मनमें हर्ष ही हुआ । उस समय श्रीकृष्णने अघासुरके उदरमें अपने विराट् स्वरूपको बढ़ाना आरम्भ किया । इससे अवश्य हुए अघासुरके प्राण उसका महाक फोड़कर बाहर निकल गये । मिथिलेश्वर ! फिर

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर ! उस समय उसकली विनयमुक्त यात्रा सुनकर वे जाजिल मुनि प्रसन्न हो गये । इन्होंने साठ इजार बधाँतक तपस्या की थी । उन्होंने उसकलसे कहा ॥ ४० ॥

जाजिल बोले—वैस्तव मन्यन्तर प्राप्त होनेपर जब अहारैसवं द्वापरका अन्तिम समय बीतता होगा, उस समय भारतवर्षके माधुर-जनपदमें स्थित ब्रजमण्डलके भीतर साक्षात् परिपर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण बृन्दावनमें गोवस्त चराते हुए विचरेंगे । उन्हीं दिनों तुम भगवान् श्रीकृष्णमें लीन हो जाओगे, इसमें संशय नहीं है । हिरण्याक्ष आदि दैत्य भगवान्के प्रति वैरभाव रखनेपर भी उनके परम-पदको प्राप्त हो गये हैं ॥ ४१-४३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—इस प्रकार अघासुरके रूपमें परिणत हुआ उसकल देव्य जाजिलके वरदानसे भगवान् श्रीकृष्णमें लयको प्राप्त हुआ । संतोंके सङ्गसे क्या नहीं सुलभ हो सकता ॥ ४४ ॥

बालकों और बछड़ोंके साथ श्रीकृष्ण अघासुरके मुखसे बाहर निकले । जो बछड़े और बालक मर गये थे, उन्हें माधवने अपनी कृपाहालिसे देखकर जीवित कर दिया । अघासुरकी जीवन-ज्योति इथामध्यमें विषुत्की भाँति श्रीघनश्याममें बिलीन हो गयी । राजन् ! उसी समय देवताओंने पुण्यवर्षी की । देवर्षि नारदके मुखसे यह बृत्तान्त सुनकर मिथिलेश्वर बहुलाभ्यने कहा ॥ १-८ ॥

राजा बोले—देवर्षि ! यह देव्य पूर्वकालमें कौन था, जो इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णमें बिलीन हुआ ? अहो ! कितने आश्वर्यकी बात है कि वह देव्य वैर बाँधनेके कारण शीघ्र ही श्रीहरिको प्राप्त हुआ ॥ ९ ॥

नारदजीने कहा—राजन् ! अघासुरके एक पुत्र था, जो 'अघ' नामसे विख्यात था । महाबली अघ युद्धावस्थामें अत्यन्त सुन्दर होनेके कारण साक्षात् दूसरे कामदेव-सा

जान पढ़ता था। एक दिन मलयाचलपर जाते हुए अद्यावक्तुनिको देखकर अधासुर जोर-जोर से हँसने लगा और बोल—‘यह कैसा कुरुप है! उस महादुष्को शाप देते हुए मुनिने कहा—‘मुमर्ते! तू सर्व हो जा; क्योंकि भूमण्डलपर सर्वोंकी ही जाति कुरुप एवं कुटिल प्रतिमे चलनेवाली होती है! ज्यों ही उसने यह सुना, उस दैत्यका सारा अभिमान गल

इस प्रकार श्रीगर्ग-सहितामें श्रीबृन्दावनखण्डके अन्तर्गत ‘अधासुरका मौक्ष’ नामक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

गया और वह दीनभावसे मुनिके चरणोंमें गिर पड़ा। उसे इस अवस्थामें देखकर मुनि प्रसन्न हो गये और पुनः उसे बर देते हुए बोले—॥ १०-१३ ॥

अद्यावक्तने कहा—करोड़ों कदमोंसे भी अधिक लावण्यशाली भगवान् श्रीकृष्ण जब तुम्हारे उद्दरमें प्रवेश करेंगे, तब इस सर्परूपसे तुम्हें छुटकारा मिल जावगा ॥ १४ ॥

सातवाँ अध्याय

ब्रह्माजीके द्वारा गौओं, गोवत्सों एवं गोप-बालकोंका दृश्य

नारदजी कहते हैं—राजेन्द्र! अब भगवान् श्रीकृष्ण-की अन्य लीला सुनिये। यह लीला उनके बाल्यकाली है, तथापि उनके पौगण्डावस्थाकी प्राप्तिके बाद प्रकाशित हुई। श्रीकृष्ण गोवत्स एवं गोप-बालकोंकी मुत्युके समान (भयंकर) अधासुरके मुखसे रक्षा करनेके उपरान्त उनका आनन्द बढ़ानेकी इच्छासे यसुना तटपर जाकर बोले—‘प्रिय सखाओ! अहा, यह कोमल बालुकामय तट बहुत ही सुन्दर है। शरद ऋतुमें लिले हुए कमलोंके परागमे पूर्ण है। शीतल, मन्द एवं सुगन्धित—प्रिविध वायुसे सौरभित है। यह तटभूमि भौंरोकी गुजारसे युक्त एवं कुञ्ज और वृक्ष-लताओंसे सुशोभित है। गोप-बालको! दिनका एक पहर बीत गया है। भोजनका समय भी हो गया है। अतएव इस स्थानपर बैठकर भोजन कर लो। कोमल बालुकाबाली यह भूमि भोजन करनेके उपयुक्त दीख रही है। बछड़े भी यहाँ जल पीकर हरी-हरी घास चरते रहेंगे।’ गोप-बालकोंने श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर कहा—‘ऐसा ही हो’ और वे सबके सब भोजन करनेके लिये यसुनातटपर बैठ गये। इसके उपरान्त जिनके पास भोजन-सामग्री नहीं थी, उन बालकोंने श्रीकृष्णके कानमें दीन-बाणीसे कहा—‘हमलोगोंके पास भोजनके लिये कुछ नहीं है, हमलोग क्या करें? नन्दगाँव यहाँसे बहुत दूर है, अतः हमलोग बछड़ोंको लेकर चले जाते हैं।’ यह सुनकर श्रीकृष्ण बोले—‘प्रिय सखाओ! शोक मत करो। मैं सबको यतनपूर्वक (आग्रहके साथ) भोजन कराऊँगा। इसलिये तुम सब मेरी बातपर भरोसा करके निश्चिन्त हो जाओ।’ श्रीकृष्णकी यह उक्ति सुनकर वे लोग उनके निकट ही बैठ गये। अन्य बालक

(अपने अपने) छीकोंको खोलकर श्रीकृष्णके साथ भोजन करने लगे ॥ १-११ ॥

श्रीकृष्णने गांप बालूकोंके साथ, जिनकी उनके सामने भीड़ लगी हुई थी, एक राजसभाका आयोजन किया। समस्त गोप-बालक उनको धेरकर बैठ गये। वे लोग अनेक रंगोंके बस्त्र पहने हुए थे और श्रीकृष्ण पीला बस्त्र भारण करके उनके बीचमें बैठ गये। विदेह! उस समय गोप-बालकोंसे चिरे हुए श्रीकृष्णकी शोभा देखताओंसे चिरे हुए देवराज हन्द्रके समान अथवा पैंखुडियोंसे चिरी हुई स्वर्णीम कमलकी कर्णिका (केसरयुक्त भीतरी भाग) के समान हो रही थी। कोई बालक कुसुमों, कोई अद्भुतों, कोई पल्लवों, कोई पत्तों, कोई फलों, कोई अपने हाथों, कोई परथरों और कोई छीकोंको ही पात्र बनाकर भाजन करने लगे। उनमेंसे एक बालकने शीतलासे कौर उठाकर श्रीकृष्णके मुखमें दे दिया। श्रीकृष्णने भी उस ग्रासका भोग लगाकर सबकी ओर देखते हुए कहा—‘भैया! अन्य बालकोंको अपनी-अपनी स्वादिष्ट सामग्री चखाओ। मैं स्वादके बारेमें नहीं जानता।’ बालकोंने ‘ऐसा ही हो’ कहकर अन्यान्य बालकोंको भोजनके ग्रास ले जाकर दिये। वे भी उन ग्रासोंको खाकर एक-दूसरेका हँसी करते हुए उसी प्रकार बोल उठे। सुवर्णने पुनः हरिके मुखमें ग्रास दिया, परंतु श्रीकृष्ण उस कौरमेंसे थोड़ा-सा खाकर हँसने लगे। इस प्रकार जिस-जिसने कौर खाया, वे सभी जोरसे हँसने लगे। बालक बोले—‘नन्दनन्दन! सुनो! जिसके नाना मूढ़ (मूर्ख) हैं, उसको भोजनका शान नहीं रहता। इसलिये तुमको स्वाद ग्रास नहीं हुआ।’ ॥ १२-१३ ॥

इसके उपरान्त श्रीदामाने माधवको और अन्य बालकोंको भोजनके ग्रास दिये। ब्रज-बालकोंने उसको उत्तम बताकर उपकी बहुत प्रशंसा की। इसके बाद वरुथर नामके एक बालकने पुनः श्रीकृष्णको एवं अन्य बालकोंको आग्रहपूर्वक कौर दिये। श्रीकृष्ण आदि वे सभी लोग थोड़ा-थोड़ा खाकर हँसने लगे। बालकोंने कहा—‘यह भी सुबलके ग्रास-जैसा ही है। इस सभी उसे खाकर उद्विघ्न हुए हैं।’ इस प्रकार सभीने अपने-अपने ग्रास चखाये और सभी परस्पर हँसने हँसाने और खेलने लगे। कटिवलमें वेणु, बगलमें लकुटी एवं सींगा, वायें हाथमें भोजनका कौर अङ्गुलियोंके बीचमें फल, मायेपर मुकुट, कंधेपर पीला दुपट्ठा, गलेमें बनमाला, कमरमें करधनी, पैरोंमें नूपुर और हृदयपर श्रीवस्त तथा कौसुभमणि भारण किये हुए श्रीकृष्ण गोप-बालकोंके दीन्द्रमें बैठकर अपनी विनोदभरी बातोंमें बालकोंको हँसाने लगे। इस प्रकार यशमोक्ता श्रीहरि भोजन करने लगे, जिसको देखता एवं मनुष्य आश्वर्यचकित होकर देखते रहे। इस प्रकार श्रीकृष्णके द्वारा रक्षित बालकोंका जिस समय भोजन हो रहा था, उसी समय बछड़े धासकी लालचमें पड़कर दूरके एक गहन बनमें छुमे

इस प्रकार श्रीगर्ग-सहितमें श्रीबृन्दाबनकृष्णके अन्तर्गत ‘ब्रह्माजीके द्वारा गौओं, गोकर्त्तों और गोप-बालकोंका हरण’ नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय

ब्रह्माजीके द्वारा श्रीकृष्णके सर्वव्यापी विश्वात्मा स्वरूपका दर्शन

नारदजी कहते हैं—‘श्रीकृष्ण गोवत्सोंको न पाकर यमुना-किनारे आये, परंतु वहाँ गोप-बालक भी नहीं दिखायी दिये। बछड़ों और वस्तपालों—दोनोंको हँड़ते समय उनके मनमें आया कि यह तो ब्रह्माजीका कार्य है।’ तदनन्तर अखिलविश्वविधायक श्रीकृष्णने गायों और गोपियोंको आनन्द देनेके लिये लीलाये ही अपने-आपको दो भागोंमें विभक्त कर लिया। वे स्वयं एक भागमें रहे तथा दूसरे भागमें समस्त बछड़े और गोप-बालकोंकी सुषिट्ठि की। उन लोगोंके जैसे शरीर, हाथ, पैर आदि थे; जैसी लाटी, सींगा आदि थे; जैसे स्वभाव और गुण थे, जैसे आभूषण और वस्त्रादि थे; भगवान् श्रीहरिने अपने श्रीविग्रहसे ठीक वैसी ही सुषिट्ठि उत्पन्न करके यह प्रत्यक्ष दिखला दिया कि यह

गये। गोप-बालक भयसे व्याकुल हो गये। यह देखकर श्रीकृष्ण बोले—‘नुमलोग मत जाओ। मैं बछड़ोंको यहाँ के आड़ंगा।’ यों कहकर श्रीकृष्ण उठे और भोजनका कौर हाथमें लिये ही गुफाओं एवं कुञ्जोंमें तथा गहन बनमें बछड़ोंको हँड़ने लगे ॥ २०-३० ॥

जिस समय ब्रजबासी बालकोंके साथ श्रीकृष्ण यमुना-तटपर रुचिगूर्वक भोजन कर रहे थे, उसी समय पश्योनि ब्रह्माजी अघासुरमणि भुक्ति देखकर उसी स्थानपर पहुँच गये। इस दृश्यको देखकर ब्रह्माजी मन-ही-मन कहने लगे—‘ये तो देवाधिदेव श्रीहरि नहीं हैं, अपितु कोई गोपकुमार हैं। यदि ये श्रीहरि होते तो गोप-बालकोंके साथ इन्हें अपवित्र अजका भोजन कैसे करते?’ राजन्। ब्रह्माजी परमात्माकी मायामें मोहित होकर इस प्रकार बोल गये। उन्होंने उनकी (भगवानकी) मनोऽव महिमाको जाननेका निश्चय किया। ब्रह्माजी गवयं आकाशमें अवस्थित थे। इसके उपरान्त अघासुर-उद्धारकी लीलाके दर्शनसे चकित होकर समस्त गायों-बछड़ों तथा गोप बालकोंका हरण करके वे अन्तर्धान हो गये ॥ ३१-३४ ॥

स्नानादिके द्वारा स्नेहमयी सेवा करके तब श्रीकृष्णके दर्शनके लिये आयीं ॥ १—१० ॥

इसके बाद अनेक बालकोंका विवाह हो गया। अब श्रीकृष्णस्वरूप अपने पति उन बालकोंके साथ करोड़ों गोवधुएँ प्रीति करने लगीं। इस प्रकार वस्त पालनके बहाने अपनी आत्माकी अपनी ही आत्मादारा रक्षा करते हुए श्रीहरिको एक वर्ष भीत गया। एक दिन बलरामजी गोचारण करते हुए बनमें पहुँचे। उस समयतक ब्रह्माजीद्वारा वस्तों एवं बलपालोंका हरण हुए। एक वर्ष पूर्ण होनेमें देखल पाँच छः रात्रियों शेष रही थीं। उस बनमें स्थित पहाड़की चोटीपर गायें चर रही थीं। दूरसे बछड़ोंको धास चरते देखकर वे उनके निकट आ गयीं और उनको चाटने तथा अपना अमृत-तुल्य दूध पिलाने लगीं। राजन्! गोपोंने देखा कि गायें बछड़ोंको दूध पिलाफर स्नेहके कारण गोवधनकी तलहटीमें ही रुक गयी हैं, तब वे अत्यन्त कोखमें भरकर पहाड़से नीचे उतरे और अपने बालकोंको दण्ड देनेके लिये शीशतासे बहाँ पहुँचे। परंतु निकट पहुँचते ही (स्नेहके बद्धीभूत होकर) गोपोंने अपने बालकोंको गोदमें उठा लिया। युवक अथवा वृद्ध—सभीके नेत्रोंमें स्नेहके औसू आ गये और वे अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ मिलकर वहाँ बैठ गये ॥ १—१८ ॥

संकर्षण बलरामने इस प्रकार जब गोपोंको प्रेमपरायण देखा, तब उनके मनमें अनेक प्रकारके संदेह उठने लगे। उन्होंने मन-ही-मन कहा—‘अहा! प्रायः एक वर्षसे ब्रजमें क्या हो गया है, वह मेरी समझमें नहीं आ रहा है। दिन-प्रतिदिन सबके हृदयोंका स्नेह अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है। क्या यह देवताओं, गन्धवों या राक्षसोंकी माया है? अब मैं समझता हूँ कि यह मुझे मोहित करनेवाली कृष्णकी मायासे भिज और कुछ नहीं है।’ इस प्रकार विचार करके बलरामजीने अपने नेत्र बंद कर लिये और दिव्यचक्षुसे भूत, भविष्य तथा वर्तमानको देखा। बलरामजीने समस्त गोवत्स एवं पहाड़की तलहटीमें खेलनेवाले गोप-बालकोंको बंशी-वेन-बिभूषित, मयूरपिण्डधारी, श्यामवर्ण, मणिसमूही एवं गुजाफलोंकी मालासे शोभित, कमल एवं कुमुदिनीकी मालाएँ दिव्य पगड़ी एवं मुकुट धारण किये हुए, कुण्डलों एवं अलकावलीसे सुशोभित, शरकालीन कम्भलसदृश नेत्रोंसे निहारकर आनन्द देनेवाले, करोड़ों कामदेवोंकी शोभासे कुम्भक, नालिकास्त्रिव मुकामरणसे अलंकृत, शिखा-भूषणसे

युक्त, दोनों हाथोंमें आभूषण धारण किये हुए, पीछा वज्र धारण किये हुए, मेलला, कड़े और नूपुरसे शोभित, करोड़ों बाल-विद्योंकी प्रभासे युक्त और मनोहर देखा। बलरामजीने गोवधनसे उत्तरकी ओर एवं बमुनाजीसे दक्षिणकी ओर स्थित बृन्दावनमें सब कुछ कृष्णमय देखा। वे इस कार्यकी ब्रह्माजी और श्रीकृष्णका किया हुआ जानकर पुनः गोवस्तों एवं वस्तपालोंका दर्शन करते हुए श्रीकृष्णसे बोले—‘ब्रह्मा, अनन्त, धर्म, इन्द्र और शंकर भक्तियुक्त होकर सदा तुम्हारी सेवा किया करते हैं। तुम आत्माराम, पूर्णकाम, परमेश्वर हो। तुम शून्यमें करोड़ों ब्रह्माण्डोंकी सुष्ठि करनेमें समर्थ हो’* ॥ १९—२० ॥

नारदजीने कहा—जिस समय बलरामजी यों कह रहे थे, उसी समय ब्रह्माजी वहाँ आये और उन्होंने गोवस्तों एवं गोप-बालकोंके साथ बलरामजी एवं श्रीकृष्णके दर्शन किये। ‘ओहो! मैं जिस स्थानपर शोवत्स तथा गोप-बालकोंको रख आया था, वहाँसे श्रीकृष्ण उनको के आये हैं।’—यों कहते हुए ब्रह्माजी उस स्थानपर गये और वहाँपर उन सबको पहलेकी तरह ही पाया। ब्रह्माजी उनको निहित देखकर पुनः ब्रजमें आये और गोप-बालकोंके साथ श्रीहरिके दर्शन करके विसित हो गये। वे मन-ही-मन कहने लगे—‘ओहो, कैसी विचित्रता है! ये लोग कहाँसे यहाँ आये और पहलेकी ही भाँति श्रीकृष्णके साथ स्नेह रहे हैं! यह सब खेल करनेमें मुझे एक त्रुटि (क्षण) जितना काल लगा, परंतु इतनेमें इस भूलोंमें एक वर्ष पूरा हो गया। तथापि सभी प्रसन्न हैं, कहीं किसीको इस प्रट्टनाका पता भी नहीं चला।’ इस प्रकारसे ब्रह्माजी मोहतीत विश्वमोहनको मोहित करने गये, परंतु अपनी मायाके अनधिकारमें वे स्वयं अपने शरीरको भी नहीं देख सके। गोप-बालकोंके हरणसे जगत्प्रतिकी तो कुछ हानि हुई नहीं, अपितु श्रीकृष्णरूप सूर्यके सम्मुख ब्रह्माजी ही जुगान्से दीखने लगे। ब्रह्माके इस प्रकार मोहित एवं जड़ीभूत हो जानेपर श्रीकृष्णने कृपापूर्वक अपनी मायाको हटाकर उनको अपने स्वरूपका दर्शन कराया। भक्तिके द्वारा ब्रह्माजीको शाननेत्र प्राप्त हुए। उन्होंने एक बार गोवत्स

* ब्रह्मानन्दो धर्मं इन्द्रः शिवम्

सेवन्ते त्वा भक्तियुक्तः सदैते ।

आत्मारामः पूर्णकामः परेणः

जड़ुं शक्तः क्षेत्रिशोऽनानि यः ये ॥

(गर्ग०, बृन्दावन० ८ । १०)

एवं गोप-बालक—सबको श्रीकृष्णरूप देखा । राजन् । ब्रह्माजीने द्वारीरके भीतर और बाहर अपने सहित समूह अगतको विष्णुभय देखा ॥ ३१—४० ॥

इस प्रकार दर्शन करके ब्रह्माजी तो जड़ताको प्राप्त होकर निश्चेष्ट हो गये । ब्रह्माजीको बृन्दादेवी द्वारा अधिष्ठित बृन्दादेव में जहाँ तहाँ दीखनेवाली भगवान्की महिमा देखनेमें असमर्थ जानकर श्रीहरिने मायाका पर्दा हटा लिया । तब ब्रह्माजी नेत्र पाकर निद्रासे जागे हुएकी भाँति उठकर, अस्यन्त कष्टसे नेत्र लोलकर अपनेसहित बृन्दादेव को देखनेमें समर्थ हुए । बहाँपर वे उसी समय एकाग्र होकर दसों दिशाओंमें देखने लगे और बसन्तकालीन सुन्दर व्याघ्रोंसे युक्त रमणीय श्रीबृन्दादेव का उन्होंने दर्शन किया । वहाँ बाघके बच्चोंके साथ मृग-शावक लेल रहे थे । बाज और कबूतरमें, नेवला और साँपमें वहाँ जग्मजात वैरभाव नहीं था । ब्रह्माजीने देखा कि एकमात्र श्रीकृष्ण ही हाथमें भोजनका कौर लिये हुए प्यारे गोवत्सोंको बृन्दादेव में ढूँढ़ रहे हैं । गोलोकपति साक्षात् श्रीहरिको गोपाल-वैष्णवें अपनेको छिपाये हुए देखकर तथा ये साक्षात् श्रीहरि हैं—यह

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीबृन्दादेवनक्षणके अन्तर्गत 'दर्शन' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

पहचानकर ब्रह्माजी अपनी करतूतको स्मरण करके भयभीत हो गये । राजन् । उन चारों और प्रज्वलित दीखनेवाले श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिये ब्रह्माजी अपने बाहनसे उत्तर और लज्जाके कारण उन्होंने सिर नीचा कर लिया । वे भगवान्को प्रणाम करते हुए और 'प्रसन्न हों'—यह कहते हुए धीर-धीरे उनके निकट पहुँचे । यों भगवान्को अपनी आँखोंसे शरते हुए हश्चके आँसुओंका अर्थ देकर दण्डकी भाँति वे भूमिपर गिर पड़े । भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्माजीकी उठाकर आक्षस्त किम्बा और उनका इस प्रकार स्पर्श किया, जैसे कोई प्यारा अपने प्यारेका स्पर्श करे । तत्पश्चात् वे सुधासिक्त हृषिसे उसी सुन्दर भूमिपर दूर लड़े देवताओंकी ओर देखने लगे । तब वे सभी उच्चस्तरसे जयन्त्रयकार करते हुए उनका स्वबन करने लगे । साथ-साथ प्रणाम भी करने लगे । श्रीकृष्णकी दयाहृष्टि पाकर सभी आनन्दित हुए और उनके प्रति आदरसे भर गये । ब्रह्माजीने भगवान्को उस स्थानपर देखकर भक्तियुक्त मनसे हाथ जोड़कर प्रणाम किया और रोमाञ्चित हाकर दण्डकी भाँति वे भूमिपर गिर पड़े । पुनः वे गदगद बाणीसे भगवान्का स्वबन करने लगे ॥ ४१—५२ ॥

नवाँ अध्याय

ब्रह्माजीके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति

ब्रह्माजी

कृष्णाय मेषवपुषे चपकाम्बराय
पीयूषमिष्टवचनाय परात्पराय ।
वंशीधराय शिखिचन्द्रकृष्णाञ्चिताय
देवाय आत्मसहिताय नमोऽस्तु तस्मै ॥

ब्रह्माजी बोले—“मेषकी-सी कान्तिसे युक्त विद्युत-वर्ण-का वज्र धारण करनेवाले, अमृत-नुल्य मीठी बाणी बोलनेवाले, परात्पर, वंशीधारी, मधुरपिंच्छको धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको उनके भ्राता बलरामसहित नमस्कार है । श्रीकृष्ण (आप) साक्षात् स्वयं पुरुषोत्तम, पूर्ण परमेश्वर, प्रकृतिसे अतीत श्रीहरि हैं । हम देवता जिनके अंश और कलावतार हैं, जिनकी शक्तिसे हमलोग क्रमशः विश्वकी सुष्ठि, पालन एवं संहर करते हैं, उन्हीं क्षणे साक्षात् कृष्णचन्द्रके

रूपमें अवतीर्ण होकर धराधामपर नन्दका पुञ्च होना स्वीकार किया है । आप प्रधान-प्रधान गोप-बालकोंके साथ गोपवेषसे बृन्दादेव में गोचारण करते हुए विराज रहे हैं । करोड़ों कामदेवके समान रमणीय, तेजोमय, कौस्तुभधारी, व्यामवर्ण, पीतवस्त्रधारी, वंशीधर, वज्रेश, राधिकापति, निकुञ्ज-विहारी परमसुन्दर श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ । जो मेषसे निर्लिंग आकाशके समान प्राणियोंकी देहमे क्षेत्रज्ञ रूपसे स्थित हैं, जो अविद्या एवं चैत्यस्वरूप हैं, जो मायारहित हैं और जो निर्मल भक्ति तथा प्रबल वैराग्य आदि भावोंसे प्राप्त होते हैं, उन आदिदेव हरिकी मैं वन्दना करता हूँ । सर्वश ! जिस समय मनमें प्रबल रजोगुणका उदय होता है, उसी समय मन संकल्प-विकल्प के वदीभूत मनमें ही अभिमानकी उत्पत्ति होती है

और वही अभिमान धीरे-धीरे बुद्धिको विकृत कर देता है। शास्त्रायार्थी शिजलीके समान, बदलते हुए श्रृङ्गशुणोंके समान, अल्पर खीची गयी रेखाके समान, पिशाचके द्वारा उत्पन्न किये हुए अंगारोंके समान और कपटी याकीकी प्राप्तिके समान जगत्के सुख मिथ्या हैं। विषय-सुख हुःखोंमें विरे हुए हैं एवं अलातचक्रवत् (जलते हुए अंगारोंके वेगसे चक्राकार बुमानेपर जो क्षणस्यायो दृश्य बनता है, उसके समान) हैं। जैसे एक न चलते हुए भी, जलके चलनेके कारण चलते हुए-से दीखते हैं, नेत्रोंको वेगसे बुमानेपर अचल पृथ्वी भी चलती हुई-सी दीखती है, कृष्ण ! उसी प्रकार प्रकृतिसे उत्पन्न शुणोंके वशमें होकर भ्रान्त जीव उस प्रकृतिजन्य सुखको सत्य मान लेता है। सुन्व एवं हुःख मनसे उत्पन्न होते हैं, निद्रावस्थामें वे छुप हो जाते हैं और जागनेपर पुनः उनका अनुभव होने लगता है। जिनको इस प्रकारका विवेक प्राप्त है, उनके लिये यह जगत् निरन्तर स्वप्नावस्थाके भ्रमके समान ही है। शानी पुरुष ममता एवं अभिमानका त्याग करके नदा वैराग्यमें प्राप्ति दरनेवाले तथा शान्त होते हैं। जैसे एक दियांग सैकड़ों दियं उत्पन्न होते हैं, वैसे ही एक परमात्मासे सब कुछ उत्पन्न हुआ है—ऐसी तात्त्विक दृष्टि उनकी रहती है॥ ११-१० ॥

“भक्त निर्वूम अनिश्चितावी भौति गुणमुक्त एवं आत्मनिष्ठ होकर हृदयमें ब्रह्माके भी स्वामी भगवान् बासुदेवका भजन करते हैं। जिस प्रकार हम एक ही चन्द्रविष्वको अनेकों धड़ोंके जलमें देखते हैं, उसी प्रकार आत्माके एकत्वका दशन करके अष्ट परमहस भी कृतार्थ होते हैं। निरन्तर तत्वन करते रहनेपर भी वेद जिनके माहात्म्यके बोहदशांशाका भी कभी जान नहीं प्राप्त कर सके, तब अिलोकीमें उन श्रीहरिके गुणाका वर्णन, भला, दूसरा कौन कर सकता है ? मैं चार मुखोंसे, देवाधिदेव महादेवजी पाँच मुखोंसे तथा हजार मुखवाले शेषजी अपने सहस्र मुखोंमें जिनकी स्तुति-सेवा करते हैं; वैकुण्ठनिवासी विष्णु, श्रीरोदशायी साक्षात् हरि और धर्मसुत नारायण श्रुति उन गोलोकपर्ति आपकी सेवा किया करते हैं। अहा ! मुरारे ! आपकी महिमा धन्य है। भूतल्पर उस महामाको न मुनिगण जानते हैं न मनुष्य ही। मुर-अमुर तथा चौदहों मनु भी उसे जाननेमें असमर्थ हैं। ये सब स्वप्नमें भी आपके चरणकमलोंके दशान पानेमें असमर्थ हैं। गुणोंके लागर, मुक्तिदाता, परात्मर, रमापति, गुणेश, ब्रजेश्वर

श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ। ताम्बूल-रागरजित सुन्दर मुखसे सुशोभित, मधुरभाषी, पके हुए ब्रिम्बफलके समान लाल-लाल अधरोंवाले, स्मितहास्ययुक्त, कुन्दकलीके समान श्वभ दलपत्तिसे जगमगाते हुए, नील अल्कोंसे आवृत कपोलोंवाले मनोहर-कानित तथा छलते हुए स्वर्ण-कुण्डलोंसे मणिष्ठ श्रीकृष्णकी मैं बन्दना करता हूँ। आपका परम सुन्दर रूप मन्मथके मनको भी इरनेवाला है। मेरे नेत्रोंमें उर्वदा मकरकुण्डलधारी इयामक्षेत्र श्रीकृष्णके उस रूपका प्रकाश होता रहे। जिनकी लीला वैकुण्ठ-स्त्रीलाकी अपेक्षा भी अष्ट है और जिनके परम श्रेष्ठ मनोहर रूपको देवगण भी नमस्कार करते हैं, उन गोपलालाकारी गोलोकनाथको मैं मस्तक नवाकर प्रणाम करता हूँ। वसन्तकालीन सुन्दर कण्ठवाले कोकिलादि पक्षियोंसे युक्त, सुगन्धित, नवीन पल्लवयुन्न वृक्षोंसे अलंकृत, सुधाके समान शीतल, धीर (मन्द) पवनकी कीड़ोंसे सुशोभित बृन्दावनमें विचरण करनेवाले श्रीकृष्णकी जय हो ! वे सदा भक्तोंकी रक्षा करें॥ ११-२० ॥

“आपके विशाल नेत्र तथा उनकी तिरछी चित्रबन कमलपुष्पोंका मान और छलते हुए मोतियोंका अभिमान दूर करनेवाली है, भूतलके समस्त रसिकोंको रसका दान करती है तथा कामदेवके वाणोंके समान पैनी एवं प्रीतिदानमें निपुण है। जिनकी नवमणियाँ शरत्कालीन चन्द्रभाके समान सुखकर, सुरक्ष, हृदयग्राहिणी, गाढ़ अन्धकारका नाश करनेवाली और जगत्के समस्त प्राणियोंके पार्णोंका छ्वंस करनेवाली हैं तथा स्वर्णमें देवमण्डली जिनका श्रीविष्णु एवं हरिकी नवावलीके रूपमें स्वत्वन करता है, मैं उनकी आराधना करता हूँ। आपके पादपद्मोंकी सर्वदा वजनेवाली, श्रीहरिके सैकड़ों किरणोंसे युक्त (सुदर्शन) चक्रके समान आकारवाली पैजनियाँ ऐसी हैं, जिनसे गौल घेरेकी भौति किरणें इस प्रकार निकलती हैं, जैसे सूर्यके प्रकाशयुक्त रथचक्रकी परिधि हो, अथवा जो आपके पादपद्मोंकी परिधिके समान सुशोभित हैं। आपकी कमरमें छोटी-छोटी घंटियोंसे युक्त दिव्य पीताम्बर जगमगा रहा है। मैं अविलष्टकर्मा भगवान् श्रीकृष्ण (आप) के उस मनोहर रूपकी आराधना करता हूँ। जिनके कानितमान् कसौटी-सदृश एवं भृगुपद-अङ्कित विशाल वक्षःस्यल्पर लक्ष्मी विलास करती हैं, जिनके गलेमें स्वर्णमणि एवं मोतियोंकी लड़ियोंसे युक्त तथा तारोंके समान जिलमिल प्रकाश करनेवाले तथा अमरोंकी

ज्ञनिसे युक्त हीरोंके हार हैं, जो लिन्दूरवर्णकी सुन्दर अङ्गुस्थियोंसे वंशी बजा रहे हैं, जिनकी अङ्गुलियोंमें खोनेकी अङ्गृतियाँ सुशोभित हैं, जिनके दोनों हाथ द्विजोंको दान देनेवाले, चन्द्रमाके समान नखोंसे युक्त एवं कामदेवके बनके कदम्बवृक्षोंके पुष्पोंकी सुगन्धसे सुबालित हैं, जिनकी मन्दगति राजहंसकी भाँति सुन्दर है, जिनके कथे गलेतक ऊँचे उठे हुए हैं, उन श्रीहरिकी मेघमालाका मान हरण करनेवाली मनोहर काकुलका मैं सारण करता हूँ। जो स्वच्छ दर्पणकी भाँति निर्मल, सुखद, नवयौवन-की कान्तिसे युक्त, मनुष्योंके रक्षक तथा मणि-कुण्डलों एवं सुन्दर मुँधराले बालोंसे सुशोभित हैं, श्रीहरिके सूर्य तथा चन्द्रमाकी भाँति प्रभासे युक्त उन दोनों कपोलोंका मैं सारण करता हूँ। जो सुवर्ण तथा मुक्ता एवं वैदूर्यमणिसे जटित लाल वस्त्रका बना हुआ है, जो कामदेवके मुखपर कीहि। करनेवाले सम्पूर्ण लौन्दयसे विलसित है—जो अरुण-कान्ति तथा चन्द्र एवं करोड़ों सूर्योंके समान प्रभा-सम्पन्न है और मयूरगिर्वच्छसे अलंकृत है, श्रीकृष्णके उस मुकुटको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनके द्वारदेशपर स्वामिकार्तिकेय, गणेश, इन्द्र, चन्द्र एवं सूर्यकी भी गति नहीं है; जिनकी आज्ञाके दिना कोई निरुद्धार्म प्रवेश नहीं कर सकता, उन जगदीश्वर श्रीकृष्णचन्द्रकी मैं आराधना करता हूँ॥२१-३०॥

ब्रह्माजी इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णका स्वचन करके पुनः हाथ जोड़कर कहने लगे—‘जगत् के स्वामी ! मैं आपके नाभि कमलसे उत्सज्ज हूँ; अतएव जिस प्रकार माता अपने पुत्रके अपराधोंको क्षमा कर देती है, उसी प्रकार आप भी मेरे अपराधोंको क्षमा कर दें। ब्रजपते ! कहाँ तो मैं एक लोकका अधिपति और कहाँ आप करोड़ों ब्रह्माण्डोंके नायक ! अतएव ब्रजेश, मधुसूदन ! देव ! आप मेरी रक्षा करें। जिनकी भायासे देवता, दैत्य एवं मनुष्य—सभी भोहित हैं, मैं मूर्ख उनको अपनी भायासे भोहित करने चला था ! गोविन्द ! आप नारायण हैं, मैं नारायण नहीं हूँ। हरि ! आप कल्पके आदिमें ब्रह्माण्डकी रचना करके नारायणरूपसे शेषशायी हो गये। आपके जिस ब्रह्मरूप तेजमें योगी प्राणत्याग करके जाते हैं, बालघातिनों पूतना भी अपने कुलसहित आपके उसी तेजमें समा गयी। माधव ! मेरे ही अपराधसे आपने गोवत्स एवं गोप-बालकोंका रूप धारण करके बनोंमें विचरण किया। अतएव मो ! आप मुखको खामा करें। गोविन्द ! पिता जैसे पुष्कका

अपराध नहीं देखता, जैसे ही आप भी मेरे अपराधकी उमेशा करके मेरे ऊपर प्रसन्न हों। जो लोग आपके भक्त न होकर जानमें रति करते हैं, उनको कलेजा ही हाथ लगता है, जैसे भूसेके लिये परिश्रमपूर्वक लेत जोतनेवालोंको भूतामात्र प्राप्त होता है। आपके भक्तिभावमें ही नितरा रत रहनेवाले अनेकों योगी, मुनि एवं ब्रजवासी आपको प्राप्त हो जुके हैं। दर्शन और अवण—दो प्रकारसे उनकी आपमें रति होती है, किंतु अहो ! श्रीहरिकी भायाके कारण उनके प्रसि मेरी रति नहीं हुई॥ २१-४१॥

ब्रह्माजीने यो कहकर नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए उनके (श्रीकृष्णके) पादपद्मोंमें प्रणाम किया एवं सारे अपराधोंको क्षमा करानेके लिये पर्तिभावमें श्रीकृष्णसे बं फिर निवेदन करने लगे—“मैं गोपकुलमें जन्म लेकर आपके पादपद्मोंकी आराधना करता हुआ सुगति प्राप्त कर सकूँ, इसका व्यतिरिक्त न हो। भगवान् शंकर आदि हम (इन्द्रियोंके अधिष्ठाता) देवगणने भारतवासी इन गोपोंकी देहमें स्थित होकर एक बार भी श्रीकृष्णका दशन कर लिया, अतः हम धन्य हो गये। श्रीकृष्ण ! आपके माता-पिता एवं गोप-गोपियोंका तो कितना अनिवृच्नीय सौभाग्य है, जो ब्रजमें आपके पूर्णलूपका दशन कर रहे हैं। सम्पूर्ण विश्वका उपकार करनेवाले, मुक्ताहार भारण करनेवाले, विश्वके रचयिता, सबोधारु लीलाके धाम, रवितनया यमुनामें विहार करनेवाले, कीड़ापरायण, श्रीकृष्णचन्द्रका अवतार ग्रहण करनेवाले प्रभु मेरी रक्षा करें। वृष्णिकुलरूप सरोवरके कमलस्वरूप नन्दननन्दन, राधापति, देव-देव, मदनमोहन, ब्रजपति, गोकुलपति, गोविन्द मुख नायासे मोहितकी रक्षा करें। जो व्यक्ति श्रीकृष्णकी प्रदक्षिणा करता है, उसको जगत् के सम्पूर्ण तीर्थोंकी यात्राका फल प्राप्त होता है। वह आपके सुखदायक परात्पर ‘गोलोक’ नामक लोकको जाता है।” ॥ ४२-४८॥

नारदजी कहने लगे—ल्योकपति ल्योक-पितामह ब्रह्माने इस प्रकार सुन्दर वृन्दावनके अधिपति गोविन्दका स्वचन करके प्रणाम करते हुए उनकी तीन बार प्रदक्षिणा की और कुछ देरके लिये अदृश्य होकर गोवत्स तथा गोप-बालकोंको बरदान देकर लौट जानेके लिये अनुमतिकी प्रार्थना की॥ ४९-५०॥

तदनन्तर श्रीहरिने नेत्रोंके संकेतसे उनको जानेवा आदेश दिया। शोकपितामह ब्रह्म भी पुनः प्रणाम करके

अपने लोकको चले गये । राजन् ! इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्ण बनसे शीघ्रतापूर्वक गोवत्स एवं गोप-बालकोंको ले आये और यमुनातटपर जिस स्थानपर गोपमण्डली विराजित थी, उन लोगोंको लेकर उसी स्थानपर पहुँचे । गोवत्सोंके साथ लौटे हुए श्रीकृष्णको देखकर उनकी मायासे विमोहित गोपोंने उनने समयको आये क्षण-जैसा समझा । वे लोग गोवत्सोंके साथ आये हुए श्रीकृष्णसे कहने लगे—‘आप शीघ्रतासे आकर भोजन करें । प्रभो ! आपके चले जानेके कारण किसीने भी भोजन नहीं किया ।’ इसके उपरान्त श्रीकृष्णने हँसकर बालकोंके साथ भोजन किया और बालकोंको अजगर-

इस प्रकार श्रीगर्ग-सहितामें श्रीबुद्धावनखण्डके अन्तर्गत ‘ब्रजाजीद्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी सुति’नामक

नवम अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

ब्रजोदाजीकी चिन्ता; नन्दद्वारा आशासन तथा ब्राह्मणोंको विविध प्रकारके दान

देना; श्रीबलराम तथा श्रीकृष्णका गोचारण

नारदजी कहते हैं—अधावकके शापसे सर्व होकर अपासुर उन्हींके बरदान-बलसे उस परम मोक्षको प्राप्त हुआ, जो देवताओंके लिये भी हुर्लभ है । बत्सासुर, बकासुर और फिर अपासुरके मुखसे श्रीकृष्ण किसी तरह बच गये हैं और कुछ ही दिनोंमें उनके ऊपर ये सारे संकट आये हैं—यह सुनकर यशोदाजी भयसे व्याकुल हो उठी । उन्होंने कलावती, रोहिणी, बड़े-बड़े गोप, ब्रह्मानुवर, ब्रजेश्वर नन्दराज, नौ नन्द, नौ उपनन्द तथा प्रजाजनोंके स्वामी छः ब्रह्मानुओंको बुलाकर उन सबके सामने यह बात कही ॥ १—४ ॥

यशोदा बोली—आप सब लोग बतायें—मैं क्या कहूँ कहाँ जाऊँ और कैसे मेरा कल्याण हो ! मेरे पुत्रपर तो यहाँ क्षण-क्षणमें बहुत से अरिष्ट आ रहे हैं । पहले महावन छोड़कर हमलोग बृन्दावनमें आये और अब इसे भी छोड़कर दूसरे किस निर्भय देशमें मैं चली जाऊँ, यह बतानेकी कृपा करें । मेरा यह बालक स्वभावसे ही चपल है । खेलने-खेलने दूरतक चला जाता है । ब्रजके दूसरे बालक भी बड़े चक्कल हैं । वे सब मेरी बात मानते ही नहीं । तीखी नौंचबाल बलवान् बकासुर पहले मेरे बालकको निगल गया था । उससे छूटा तो इस बेचारेको अपासुरने समझा ग्वाल-बालोंके साथ

का चमड़ा दिखाया । तदनन्तर बलरामजीके साथ गोपोंसे विरे हुए श्रीकृष्ण बत्सबृन्दको आगे करके धीरे-धीरे बजको लौट आये । सफेद, चितकबरे, लाल, पीले, धूम्र एवं हरे आदि अनेक रंग और स्वभावबाले गोवत्सोंको आगे करके धीरे-धीरे सुखद बनसे गोष्ठमें लौटते हुए गोपमण्डलीके बीच स्थित नन्दनन्दनकी मैं बन्दना करता हूँ । राजन् ! श्रीकृष्णके विरहमें जिनको क्षणभरका समय युगके समान लगता था, उन्हींके दर्शनसे उन गोपियोंको आनन्द प्राप्त हुआ । बालकोंने अपने-अपने घर जाकर गोष्ठोंमें अल्प-अल्प बछड़ोंको बाँधकर अधासुर-बध एवं श्रीहरि-द्वारा हुई आस्मरक्षाके बृत्तान्तका वर्णन किया ॥ ५१-५९ ॥

अपना ग्रास बना लिया । भगवान्की कृपासे किसी तरह उससे भी हसकी रक्षा हुई । इन सबसे पहले बत्सासुर इसकी धातमें लगा था, किंतु वह भी दैवके हाथों मारा गया । अब मैं बछड़े चरानेके लिये अपने बच्चेको घरसे बाहर नहीं जाने दूँगी ॥ ५—९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—इस तरह कहती तथा निरन्तर रोती हुई यशोदाकी ओर देखकर नन्दजी कुछ कहनेको उच्यत हुए । पहले तो धर्म और अर्थके शाता तथा धर्मासांख्योंमें श्रेष्ठ नन्दने गर्जनीके बच्चोंकी याद दिलाकर उन्हें धीरज बैधाया, फिर इस प्रकार कहा ॥ १० ॥

नन्दराज बोले—यशोदे ! क्या तुम गर्जनी कही हुई सारी बातें भूल गयीं ? ब्राह्मणोंकी कही हुई बात सदा सत्य होती है, वह कभी असत्य नहीं होती । इमलिये समस्त अरिष्टोंका निवारण करनेके लिये तुम्हे दान करते रहना चाहिये । दानसे बढ़कर कल्याणकारी कृत्य न तो पहले हुआ है और न आगे होगा ही ॥ ११-१२ ॥

नारदजी कहते हैं—नरेश्वर ! तव यशोदाने बलराम और श्रीकृष्णके मङ्गलके लिये ब्राह्मणोंको बहुमूल्य नवरस्त और अपने अलंकार दिये । नन्दजीने उस समय

इस हजार बैल, एक लाल मनोहर गायें तथा दो लाल मार अम दान दिये ॥ १३-१४ ॥

श्रीनारदजी पुनः कहते हैं—राजन् । अब गोपोंकी हङ्कासे बलराम और श्रीकृष्ण गोपालक हो गये । अपने गोपाल मित्रोंके साथ गाय चराते हुए वे दोनों भाई बनमें शिष्टरण करने लगे । उस समय श्रीकृष्ण और बलरामका सुन्दर मुह निहारती हुई गौएँ उनके आगे-पीछे और अगल-बगलमें विचरती रहती थीं । उनके गलेमें क्षुद्रघण्ठिकाओंकी माला पहिनायी गयी थी । सोनेकी मालाएँ भी उनके कण्ठकी शोभा बढ़ाती थीं । उनके पैरोंमें हुँधुरु बैधे थे । उनकी पूँछोंके स्वच्छ बालोंमें लगे हुए मोरपंख और मोतियोंके गुच्छे शोभा दे रहे थे । वे बंटों और नूपुरोंके मधुर शंकारको फैलाती हुई इधर-उधर चरती थीं । चमकते हुए नूतन रत्नोंकी मालाओंके समूहसे उन समस्त गौओंकी बड़ी शोभा होती थी । राजन् ! उन गौओंके दोनों सींगोंके नीचमें सिरपर मणिमय अलंकार धारण कराये गये थे, जिनसे उनकी मनोहरता बढ़ गयी थी । सुवर्ण-रदिमयोंकी प्रभासे उनके सींग तथा पाइव-प्रवेष्ट (पीठपरकी छाल) चमकते रहते थे । कुछ गौओंके भालमें किंचित् रक्तवर्णके तिलक लगे थे । उनकी पूँछें पीले रंगसे रँगी गयी थीं और पैरोंके खुर अरुणरागसे रँगित थे । बहुत-सी गौएँ कैलास पर्वतके समान इवेतर्वर्णवाली, सुशीला, सुरुपा तथा अत्यन्त उत्तम गुणोंसे सम्पन्न थीं । मिथिलेश्वर । बछडेवाली गौएँ अपने स्तनोंके भारसे धीरे-धीरे चलती थीं । कितनोंके थन घड़ोंके बराबर थे । बहुत-सी गौएँ लालरंग-की थीं । वे सब-की-सब भव्यमूर्ति दिखायी देती थीं । कोई पीली, कोई चितकबरी, कोई इयामा, कोई हरी, कोई तांबेके समान रंगवाली, कोई धूमिलवर्षकी और कोई भेंटोंकी घटा-जैसी नीली थीं । उन सबके नेत्र बनश्याम श्रीकृष्णकी ओर लगे रहते थे । किन्हीं गौओं और बैलोंके सींग छोटे, किन्हींके बड़े तथा किन्हींके ऊँचे थे । कितनोंके सींग हिरनोंके से थे और कितनोंके टैटै-मेडे । वे सब गौएँ कपिला तथा मङ्गलकी धाम थीं । बन-बनमें कोमल कमनीय धात्र खोज-खोजकर चरती हुई कोटि-कोटि गौएँ श्रीकृष्णके ढभय पाथरोंमें विचरती थीं ॥ १५-१६ ॥

यमुनाका पुण्य-पुलिन तथा उसके निकट इयाम तमालोंसे सुशोभित इन्द्रावन नीप, कदम्ब, नीम, अशोक, प्रवाल, लकड़, कदली, कचनार, अम, मनोहर आगुन,

बैल, पीपल और कैथ आदि वृक्षों तथा माधवी छताओंसे मणिहत था । बहन्त बहुतके शुभासमनसे मनोहर बृन्दावनकी दिव्य शोभा हो रही थी । वह ऐवहाओंके नन्दन-बन-सा आनन्दप्रद और सवंतोभद्र-बन-सा लक खोरसे महङ्ग-कारी जान पढ़ता था । उसने (कुबेरके) चैत्ररथ बनकी शोभाको तिरस्कृत कर दिया था । वहाँ शरनों और कंदराओं-से संयुक्त रत्नधातुमय श्रीमान् गोवर्धन पर्वत शोभा पाता था । वहाँका बन पारिजात या मन्दारके वृक्षोंसे व्याप्त था । वह चन्दन, बेर, कदली, देवदार, बरगद, पलास, पाकुर अशोक, अरिष्ट (रीठा), अर्जुन, कदम्ब, पारिजात, पाटल तथा चम्पाके वृक्षोंसे सुशोभित था । इयाम वर्णवाले इन्द्रयद्वनामक वृक्षोंसे धिरा हुआ वह बन करज्ञ-जाङ्गुसें विलक्षित कुञ्जोंसे सम्पन्न था । वहाँ मधुर कण्ठवाले नर-कोकिल और मधूर कलरब कर रहे थे । उस बनमें गौएँ चराते हुए श्रीकृष्ण एक बनसे दूसरे बनमें विचरा करते थे । नरेश्वर । बृन्दावन और मधुवनमें, तालबनके आस-पास कुमुदवन, बहुलावन, कामबन, बृहस्पतानु और नन्दीश्वर नामक पर्वतोंके पार्श्ववर्ती प्रदेशमें, कोकिलोंकी काकलीसे कूजित सुन्दर कोकिलबनमें, लताजाल-मणिहत सौम्य तथा रमणीय कुश-बनमें, परम पावन भद्रबन, भाण्डीर उपवन, लोहर्गांड तीर्थ तथा यमुनाके प्रत्येक टट और तटबर्ती विपिनोंमें पीताम्बर धारण किये, बद्धपरिकर, नटवेषधारी मनोहर श्रीकृष्ण बैठे लिये, बंशी बजाते और गोपाङ्गनाओंकी प्रीति बदाते हुए बड़ी शोभा पाते थे । उनके सिरपर शिखियिच्छका सुन्दर मुकुट तथा गलेमें वैजयन्तीमाला सुशोभित थीं ॥ २५-२६ ॥

संध्याके समय गोबृन्दको आगे किये अनेकानेक रागोंमें बाँसुरी बजाते साक्षात् श्रीहरि कृष्ण नन्दनजग्में आये । आकाशको गोरजसे व्याप देख श्रीवंशीबटके मार्गसे आती हुई बंशी-ध्वनिसे आकुल हुई गोपियाँ इयामसुन्दरके दर्शनके किये घरोंसे बाहर निकल आयीं । अपनी मानसिक पीड़ा कूर करने और उत्तम सुखको पानेके लिये वे गोपसुन्दरियाँ श्रीकृष्णदर्शनके हेतु घरसे बाहर आ गयी थीं । उनमें श्रीकृष्ण-को भुला देनेकी शक्ति नहीं थी । श्रीनन्दनन्दन तिहकी भाँति पीछे धूमकर देखते थे । उनके नेत्र प्रकुल्ल कमङ्गके समान शोभा पाते थे । गो-समुदायसे व्याप संकीर्ण गङ्गियोंमें मन्द-मन्द गतिसे आते हुए इयामसुन्दरको उत्त अस्त

गोपवधुओं अच्छी तरहसे देख नहीं पाती थीं। मिथिलेश्वर ! गोधूलिसे धूसरित उसम नील केशकल्प भारण किये, सुर्वानिर्मित बाजूबंदसे विभूषित, मुकुटमणिडत तथा कानतक खीचकर वक भावसे हृषिवाणका प्रहार

करनेवाले, गोरज-समलंकृत, कुन्दमालासे अलंकृत, कानोंमें खोंसे हुए पुष्पोंकी आभाए उदीस, पीताम्बरधारी, वेणुवादनशील तथा भूतलका भूरिभार हरण करनेवाले प्रभु श्रीकृष्ण आप सबकी रक्षा करें ॥ ३७-४२ ॥

इस प्रकार श्रीगर्व-सहितमें श्रीकृष्णावत्सर्वके अन्तर्गत 'यशोदाजीकी चिन्ता, नन्दद्वारा आशासन तथा दान, श्रीकृष्णकी गोकारण-लीलाका वर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

उपारहवाँ अध्याय

धेनुकासुरका उद्धार

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् । एक दिन श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ मनोहर गौएँ नराते हुए नूतन तालवनके पास चले गये । उस समय समस्त गोपाल उनके साथ थे । वहाँ धेनुकासुर रहा करता था । उसके भयने गोपाण बनके भीतर नहीं गये । श्रीकृष्ण भी नहीं गये । अकेले बलराम-जीने उसमें प्रवेश किया । अपने नीले वस्त्रकी कमरमें बांधकर महाबली बलदेव परिपक्व फल लेनेके लिये उस बनमें विनाशने लगे । बलरामजी साक्षात् अनन्तदेवके अवतार हैं । उनका पराक्रम भी अनन्त है । अतः दोनों हाथोंसे ताङ्के वृक्षोंको हिलाते और फल-समूहोंको गिराते हुए वहाँ निर्भय गर्जना करने लगे । गिरते हुए फलोंकी आवाज सुनकर वह गर्दभाकार असुर रोषमें आग-बबूल हो गया । वह दोपहरमें सोया करता था, किंतु आज विघ्न पड़ जानेसे वह दुष्ट क्रोधसे भयंकर हो उठा । धेनुकासुर कंसका सखा होनेके साथ ही यहा बलवान् था । वह बलदेवजीके सम्मुख युद्ध करनेके लिये आया और उसने अपने पिछले पैरोंसे उनकी छातीमें तुरंत आघात किया । आघात करके वह बारंबार दौड़ लगाता हुआ गधेकी भाँति रेंकने लगा । तब बलराम-जीने धेनुकके दोनों पिछले पैर पकड़कर शीघ्र ही उसे ताङ्के वृक्षपर दे मारा । यह कार्य उन्होंने एक ही हाथसे खेल-खेलमें कर डाला । इससे वह तालवृक्ष स्थानं तो दूट ही गया, गिरते-गिरते उससे अपने पाइवर्वतीं दूसरे बहुत से ताङोंको भी भराशायी कर दिया । राजेन्द्र ! वह एक अद्भुत-सी बात हुई । दैत्यराज धेनुकने पुनः उठकर रोषपूर्वक बलरामजीको पकड़ लिया और जैसे एक हाथी अपना सामना करनेवाले दूसरे हाथीको दूरतक टेल ले जाता है, उसी प्रकार उन्हें धक्का देकर एक योजन पीछे हटा दिया । अब बलरामजीने तस्काल धेनुकको एकहकर धुमाना आरम्भ

किया और धुमाकर उसे धरतीकी पीठभर दे मारा । तब उसे मूँछा आ गयी और उसका मस्तक फट गया । तो भी वह क्षणभरमें उठकर खड़ा हो गया । उसके शरीरमें भयानक क्रोध टपक रहा था । इसके बाद उस दैत्यने अपने मस्तकमें चार सींग प्रकट करके, भयानक रूप धारणकर उन तीखे और भयंकर नींगोंसे गोपोंको बनेहना आरम्भ किया । गोपोंको आगे-आगे भागते देख वह मदमत्त भ्रसुर तुरंत ही उनके पीछे दौड़ा ॥ १—१२३ ॥

उस समय श्रीदामाने उसपर छड़ेसे प्रहार किया, सुबलने उसको मुककेसे मारा, स्तोककृष्णने उम महाबली दैत्यपर पाशसे प्रहार किया, अर्जुनने क्षेपणसे और अंशुने उस गर्दभाकार दैत्यपर लातसे आघात किया । इसके बाद विशालर्घभने आकर शीघ्रतापूर्वक अपने पैरसे और बलसे भी उस दैत्यको दबाया । तेजस्वीने अद्वचन्द्र (गर्दनियाँ) देकर उसे पीछे हटाया और देवप्रस्थने उस असुरके कई तमाचे जड़ दिये । वरुथपने उस विशालकाय गधेको मैंदसे मारा । तदनन्तर श्रीकृष्णने भी धेनुकासुरको दोनों हाथोंसे उठाकर धुमाया और तुरंत ही गोवर्धन पर्वतके ऊपर फेंक दिया । श्रीकृष्णके उस प्रहारसे धेनुक दो घड़ीतक मूर्च्छित पड़ा हा । फिर उठकर अपने शरीरको कंपाता हुआ मुँह फाइकर आगे बढ़ा और दोनों सींगोंसे श्रीहरिको उठाकर वह दैत्य दौड़िकर आकाशमें चला गया । आकाशमें एक लाल योजन ऊँचे जाकर उनके साथ युद्ध करने लगा । भगवान् श्रीकृष्णने धेनुकासुरको पकड़कर नीचे भूमिकी ओर फेंका । इससे उसकी हड्डियाँ चूर चूर हो गयीं और वह मूर्च्छित हो गया । तथापि पुनः उठकर अत्यन्त भयंकर सिंहनाद करते हुए उसने दोनों सींगोंसे गोवर्धन पर्वतको

उसकु लिया और श्रीकृष्णके ऊपर चलाया। श्रीकृष्णने पर्वत-को हाथसे पकड़कर पुनः उसके मस्तकपर दे मारा। तदनन्तर उस बलवान् देवतने फिर पर्वतको हाथमें ले लिया और श्रीकृष्णके ऊपर फेंका। किंतु श्रीकृष्णने गोवर्धनको ले आकर उसके पूर्व स्थानपर रख दिया। तदनन्तर फिर धावा करके महादेव्य खेनुकने दोनों सींगोंसे पृथ्वीको विहीर्ण दिया और पिछले पैरोंसे पुनः बलरामपर प्रहार करके बड़े जोसे गर्जना की। उसकी उस गर्जनासे समस्त ब्रह्माण्ड गूँज उठा और भूमण्डल कौपने लगा। तब महाबली बलदेवने दोनों हाथोंसे उसको पकड़ लिया और उसे पृथ्वी-पर दे मारा। इससे उसका मस्तक फूट गया और होश-हवास जाता रहा। इसके बाद श्रीकृष्णके बड़े भाईने पुनः उस दैत्यर मुक्तेसे प्रहार किया। उस प्रहारसे खेनुकासुरकी तत्काल मृत्यु हो गयी। उसी समय देवताओंने वहाँ नन्दन-वनके फूल बरसाये ॥ १३—२६ ॥

देहसे पृथक् होकर खेनुक श्यामसुन्दर-विग्रह धारणकर पुष्पमाला, पीताम्बर तथा बनमालासे समलङ्घत देवता हो गया। लाख-लाख पार्षद उसकी सेवामें जुट आये। सहस्रों ध्वज उसके रथकी शोभा बढ़ाने लगे। सहस्रों पहियोंकी घर्षरघ्वनिसे युक्त उस रथमें दस हजार थोड़े जुते थे। लाखों चंचवर्णोंकी वहाँ शोभा हो रही थी। वह रथ अद्वितीयोंकी जाली लगी थी। धंडे और मङ्गीर बजते थे। दिव्यरूपधारी दैत्य खेनुक बलरामसहित श्रीकृष्णकी परिक्रमा करके, उक्त दिव्य रथपर आरुद्ध हो, दिशामण्डलको

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें इन्द्रवनस्तम्भके अन्तर्गत 'खेनुकासुरका उद्धार' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७ ॥

देहोप्यमान करता हुआ, प्रकृतिसे परे किञ्चमान गौलेहपात्रमें चला गया। इस प्रकार खेनुकका वध करके बलरामसहित श्रीकृष्ण अपना यशोग्रान करते हुए ग्वाल-बालोंके साथ ब्रजको लौटे। उनके साथ गौओंका समुदाय भी था ॥ २७—३० ॥

राजाने पूछा—मुने ! खेनुकासुर धूर्षणमें कौन था ? उसे मुक्ति कैसे प्राप्त हुई ? तथा उसे गधेका धारीर कमों मिला ? यह सब मुझे ठीक-ठीक बताइये ॥ ३१ ॥

श्रीवारदजीने कहा—विरोचनकुमार बलिका एक बलवान् पुत्र था, जिसका नाम था—साहसिक। वह दस हजार जियोंके साथ गन्धमादन पर्वतपर विहार कर रहा था। वहाँ बनमें नाना प्रकारके बायों तथा रमणियोंके नपुरोंका महान् शब्द होने लगा, जिससे उस पर्वतकी कन्दरामें रहकर श्रीकृष्णका चिन्तन करनेवाले दुर्बासा सुनिका ध्यान भङ्ग हो गया। वे खड़ाऊँ पहनकर बाहर निकले। उस समय मुनिवर दुर्बासाका धारीर अस्पन्त दुर्बल हो गया था। दाढ़ी-मूँछ बहुत बड़े गयी थीं। वे लाठीके सहारे चलते थे। क्रोधकीसो वे मूर्तिमान् राशि ही थे और अनिके समान तेजस्वी जान पहुंचते थे। दुर्बासा उन शृणियोंमेंसे हैं, जिनके शापके भयसे यह सारा विश्व काँपता रहता है। वे बोले ॥ ३४—३७ ॥

दुर्बासाने कहा—दुर्बुद्धि असुर ! तू गदहेके समान भोगासत्त है, इसलिये गदहा हो जा। आजसे चार लाख वर्ष बीतनेपर भारतमें दिव्य माधुर-मण्डलके अन्तर्गत पवित्र तालवनमें बलदेवजीके हाथसे तेरी मुक्ति होगी ॥ ३८—३९ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! उस शापके कारण ही भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजीके हाथसे उसका वध करवाया; क्योंकि उन्होंने प्रहादजीको यह वर दे रखा है कि तुम्हारे बंशका कोई दैत्य मेरे हाथसे नहीं मारा जायगा ॥ ४० ॥

बारहवाँ अध्याय

श्रीकृष्णदारा कालियदमन तथा दावानल-पान

श्रीवारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! एक दिन बलरामजीको साथमें लिये बिना ही श्रीहरि स्वयं ग्वाल-बालोंके साथ गाय चराने चले आये। यमुनाके टटपर आकर उन्होंने उत्त विषाक जलको पी लिया, जिसे नागराज कालियने अपने विषसे दूषित कर दिया था। उस जलको पीकर बहुत-सी गायें और गोपगण प्राणहीन होकर पानीके निकट ही गिर

पड़े। यह देख सर्वपापहारी साक्षात् भगवान् श्रीहरिका चित्त द्याये दृष्टित हो उठा। उन्होंने अपनी पीयूषपूर्ण हाईसे देखकर उन सबको जीवित कर दिया। इसके बाद पीताम्बरको कमरमें कसकर बौध लिया। फिर वे माधव तटवर्ती कदम्ब वृक्षपर चढ़ गये और उसकी ऊँची ढालसे उत्त विष-दूषित जलमें कूद पड़े। भगवान् श्रीकृष्णके कूदनेसे

वह बूधित जल चक्र काटकर ऊपरको उछला । युनाके उठ भगवामें कालियनाग रहता था । भैवर उठनेसे उस सर्पका भवन इस तरह चक्र काटने लगा, जैसे जलमें पानीके भैर घूमते हैं । नरेश ! उस समय सौ फाँगोंसे युक्त फणि-राज कालिय कुद्द हो उठा और माधवको दाँतोंसे ढंसते हुए उसने अपने शरीरसे उन्हें आच्छादित कर लिया । तब श्रीकृष्ण अपने शरीरको बड़ा करके उसके बन्धनसे छूट गये और उस सर्पराजकी पूँछ पकड़कर उसे इधर-उधर छुमाने लगे । छुमाते-छुमाते उन्होंने उसे पानीमें गिराकर पुनः दोनों हाथोंसे उठा लिया और दुरंत उसे सौ धनुष दूर फेंक दिया । उस भयानक नागराजने पुनः उठकर जीभ लप-लपाते हुए दोषपूर्वक माधव श्रीहरिका बायाँ हाथ पकड़लिया । तब श्रीहरिने उस महादुष्को दाहिने हाथसे पकड़कर उस जलमें उसी प्रकार दबा दिया, जैसे गहड़ किसी नागको राढ़ दे । फिर अपने सौ मुखोंको बहुत अधिक फैलाकर वह सर्प उनके पास आ गया । तब उसकी पूँछ पकड़कर श्रीकृष्ण उसे सौ धनुष दूर खींच ले गये । श्रीकृष्ण-के हाथसे सहसा निकलकर उसने पुनः उन्हें ढँस लिया । यह देख अपनेमें त्रिमुखनका बल धारण करनेवाले श्रीहरिने उस सर्पको एक मुक्का मारा । श्रीकृष्णके मुक्केकी चोट खाकर वह सर्प मूर्जित हो अपनी सुध-बुध खो बैठा । तदनन्तर अपने सौ मुखोंको आनंद करके वह श्रीकृष्णके सामने रिथत हुआ । उसके सौ फन सौ मणियोंके प्रकाशसे अत्यन्त मनोहर जान पड़ते थे । श्रीकृष्ण उन फनोंपर चढ़ गये और मनोहर नट-बेष धारण करके नटकी भाँति नृत्य करने लगे । साथ ही वे सातों स्वरोंसे किसी रागका अलाप करते हुए तालके साथ संगीत प्रस्तुत करने लगे । उस समय नटराजकी भाँति मुन्द्र ताण्डव करनेवाले श्रीकृष्णके ऊपर देवतालोग फूल बरसाने लगे और प्रसन्नतापूर्वक बीणा, ढोल, नगारे तथा बाँसुरी बजाने लगे । तालके साथ पदविन्यास करनेसे श्रीकृष्णने लंबी साँस खींचते हुए महाकाय कालियके बहुत से उच्चवल फनोंको भग्न कर दिया । उसी समय भयसे विहृल हुई नागपतियाँ आ पहुँची और भगवान् श्रीकृष्ण-के चरणोंमें नमस्कार करके गदगद वाणीद्वारा इस प्रकार स्तुति करने लगीं ॥ १—१७ ॥

नागपतियाँ बोलीं—भगवन् ! आप परिपूर्णतम परमात्मा तथा असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति हैं । आप गोलोकनाथ श्रीकृष्णचन्द्रको इमार बारंबार नमस्कार है ।

ब्रजके अधीश्वर आप श्रीराधाबल्लभको नमस्कार है । नन्दके लाल एवं यशोदानन्दनको नमस्कार है । परमदेव ! आप इस नागकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । तीनों लोकोंमें आपके सिवा दूसरा कोई इसे शरण देनेवाल नहीं है । आप स्वयं सक्षात् परात्पर श्रीहरि हैं और लीलासे ही स्वच्छन्दतापूर्वक नाना प्रकारके श्रीविग्रहोंका विस्तार करते हैं ॥ १८-२० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—अबतक कालियनागका गर्व चूर्ण हो गया था । नागपतियोंद्वारा किये गये इस स्वादनके पश्चात् वह श्रीकृष्णसे बोला—‘भगवन् ! पूर्णकाम परमेश्वर ! मेरी रक्षा कीजिये ।’ ‘पाहि-पाहि’ कहता हुआ कालियनाग भगवान् श्रीहरिके सम्मुख आकर उनके चरणोंमें गिर पड़ा । तब उन जनार्दनदेवने उससे कहा ॥ २१-२२ ॥

श्रीभगवान् बोले—तुम अपनी पत्नियों और सुहृदोंके साथ रमणकद्वीपमें चले जाओ । तुम्हरे मस्तकपर मेरे चरणोंके चिह्न बन गये हैं, इसलिये अब गहड़ तुम्हें अपना आहार नहीं बनायेगा ॥ २३ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! तब उस सर्पने श्रीकृष्ण की पूजा और परिक्रमा करके, उन्हें प्रणाम करनेके अनन्तर, श्री-पुत्रोंके साथ रमणकद्वीपको प्रस्थान किया । इधर ‘नन्दनन्दनको कालियनागने अपना ग्रास बना लिया है’—यह समाचार मुनकर नन्द, आदि समस्त गोपगण वहाँ आ गये थे । श्रीकृष्णको जलसे निकलते देख उन सब लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई । अपने बेटोंको छातीसे लगाकर नन्दजी परमानन्दमें निमग्न हो गये । यशोदाने अपने खोये हुए पुत्र-को पाकर उसके कल्याणकी कामनासे ब्राह्मणोंको धनका दान किया । उस समय उनके स्तनोंसे स्नेहाधिक्यके कारण दूध

* नागपत्न्य अनु:—

नमः श्रीकृष्णचन्द्राय गोलोकपतये नमः ।

असंख्याण्डधिष्ठये परिपूर्णतमाय से ॥

श्रीराधापतये तुम्यं ब्रजाधीशय से नमः ।

नमः श्रीनन्दपुत्राय यशोदानन्दनाय से ॥

पाहि पाहि परदेव पत्नये

तत्परं न शरणं जगत्पत्ये ।

तं परात्परतो हरिः स्वयं

लीलाया किं तनोषि विग्रहम् ॥

(गर्व-संहिता, इन्द्रावन १२ । १८-२०)

कर रहा था । राजन् ! उस दिन रातमें अधिक श्रमके कारण गोपालनाओं और ग्रामीणोंके साथ समस्त गोप यमुनाके निकट उसी खानपर सो गये । निशीथकालमें दौलोंकी रागड़से प्रलयाग्निके समान दाबानल प्रकट हो गया, जो तब औरसे मानो गोपोंको दग्ध करनेके लिये उधर फैलता आ रहा था । उस समय मिश्रकोटिके गोप बलरामसहित श्रीकृष्ण-मैरी शरणमें गये और भयसे कातर हो दोनों हाथ जोड़कर बोले ॥ २४—३० ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें बृन्दावनस्तुष्टके अन्तर्गत 'कालियदमन तथा दाबानल-पान' नामक बाहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

गोपोंने कहा—दारणागतवस्तुल महायादु हुण !
हुण ! प्रभो ! बनके भीतर दावाग्निके बष्टमें पढ़े हुए सजनोंको बचाओ । बचाओ !! ॥ ३१ ॥

नारदजी कहते हैं—लव वोगेष्वरेश्वर देव माधव उनसे बोले—'झो भत । अपनी-अपनी औंखें मूँद लो ।' यों कहकर वे सारा दाबानल स्वयं ही पी गये । फिर—प्रातःकाल विस्मित हुए गोपगणों तथा गौओंके साथ नन्दनन्दन शोभाशाली ब्रजमण्डलमें आये ॥ ३२-३३ ॥

तेरहवाँ अध्याय

मुनिवर वेदशिरा और अश्वशिराका परस्परके शापसे क्रमशः कालियनाग और काकभुष्टुष्ट होना तथा शेषनागका भूमष्टुष्टको धारण करना

विवेहराज बहुलाश्वने पूछा—देवर्षे ! संसारमें जिनकी धूलि अनेक जन्मोंमें योगियोंके लिये भी दुर्लभ है, भगवान्‌के साक्षात् वे ही चरणादविन्द कालियके महस्तकोंपर सुशोभित हुए । नागोंमें श्रेष्ठ यह कालिय पूर्वजन्ममें कौन-सा पुण्यकर्म कर चुका था, जिसने इसको यह सौभाग्य प्राप्त हुआ—यह मैं जानना चाहता हूँ । देवर्षीविद्विरोगने । यह बात मुझे बताइये ॥ १-२ ॥

नारदजीने कहा—राजन् ! पूर्वकालकी बात है । स्वायम्भुव मन्वन्तरमें वेदशिरा नामक मुनि, जिनकी उत्पत्ति भूगंवंशमें हुई थी, विन्ध्य पर्वतपर तपस्या करते थे । उन्हें आश्रमपर तपस्या करनेके लिये अश्वशिरा मुनि आये । उन्हें देखकर वेदशिरा मुनिके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और वे शोष्यूर्जक बोले ॥ ३-४ ॥

वेदशिराने कहा—ब्रह्मन् ! मेरे आश्रममें तुम तपस्या न करो, क्योंकि वह दुखद नहीं होगी । तोधन ! क्या और कहीं तुम्हारे तपके योग्य भूमि नहीं है ! ॥ ५ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! वेदशिराकी यह बात मुनकर अश्वशिरा मुनिके भी नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और वे मुनिपुंगवसे बोले ॥ ६ ॥

अश्वशिराने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! यह भूमि तो महाविष्णुकी है; न तुम्हारी है न मेरी । यहाँ कितने मुनियोंने उत्तम तपका अनुष्ठान नहीं किया है ? तुम व्यर्थ ही

सर्पकी तरह फुफकारते हुए क्रोध प्रकट करते हो, इसलिये सदाके लिये सर्प हो जाओ और तुम्हें गरुडसे भय प्राप्त हो ॥ ७-८ ॥

वेदशिरा बोले—दुर्मते ! तुम्हारा भाव बड़ा ही दूषित है । तुम छोटे-मे द्वेष या अपराधपर भी महान् दण्ड देनेके लिये उच्चत रहते हो और अपना काम बनानेके लिये कौपकी तरह इस पृथ्वीपर ढोलने-फिरते हो; अतः तुम भी कौआ हो जाओ ॥ ९ ॥

नारदजी कहते हैं—इसी समय भगवान् विष्णु परस्पर शाप देते हुए दोनों शृणियोंके बीच प्रकट हो गये । वे दोनों अपने-अपने शापसे बहुत दुखी थे । भगवान् ने अपनी बाणीद्वारा उन दोनोंको सान्त्वना दी ॥ १० ॥

श्रीभगवान् बोले—मुनियो ! जैसे शरीरमें दोनों भुजाएँ समान हैं, उसी प्रकार तुम दोनों समानरूपसे मेरे भक्त हो । मुनीभरो ! मैं अपनी बात तो छढ़ी कर सकता हूँ, परंतु भक्तकी बातको मिथ्या करना नहीं चाहता—यह मेरी प्रतिशा है । वेदशिरा ! नर्ककी अवस्थामें तुम्हारे महस्तकपर मेरे दोनों चरण अङ्गित होंगे । उस समयसे तुम्हें गरुडसे कदापि भय नहीं होगा । अश्वशिरा ! अब तुम मेरी बात सुनो । सोचन करो, सोच न करो । काकरूपमें रहनेपर भी तुम्हें निश्चय ही उत्तम शान प्राप्त होगा । योगसिद्धियोंसे युक्त उच्चकोटिका त्रिकालदर्शी शान सुलभ होगा ॥ ११—१४ ॥

चारकांगी कहते हैं—नरेश्वर ! यो कहकर भगवान् विष्णु अब चले गये, तब अधशिरा मुनि साक्षात् योगीन्द्र काकभुग्ण्ड हो गये और नीलपर्वतपर रहने लगे । वे सम्भूर्ण शास्त्रोंके अर्थको प्रकाशित करनेवाले महातेजस्वी रामभक्त हो गये । उन्होंने ही महात्मा गद्धको रामायणकी कथा सुनायी थी ॥ १५-१६ ॥

मिथिलानरेश ! चाक्षुष मन्वन्तरके प्रारम्भमें प्रचेताओंके पुत्र प्रजापति दक्षने महर्षि कवयपको अपनी परम मनोहर घ्यारह कन्याएँ पल्लीखूपमें प्रदान कीं । उन कन्याओंमें जो श्रेष्ठ कदू थी, वही इस समय वसुदेव-प्रिया रोहिणी होकर प्रकट हुई है, जिनके पुत्र बलदेवजी हैं । उस कदूने करोड़ों महासप्तोंको जन्म दिया । वे सभी सर्प अत्यन्त उद्धर, विषरूपी बलसे सम्पन्न, उग्र तथा पाँच सौ फनोंसे युक्त थे । वे महान् मणिरत्न धारण किये रहते थे । उनमेंसे कोई-कोई सौ मुखोंवाले एवं दुस्तह विषधर थे । उन्हींमें वेदशिरा 'कालिय' नामसे प्रसिद्ध महानाग हुए । उन सबमें प्रथम राजा फणिराज शेष हुए, जो अनन्त एवं परात्मर परमेश्वर हैं । वे ही आजकल बलदेव'के नामसे प्रसिद्ध हैं । वे ही राम, अनन्त और अन्युताग्रज आदि नाम धारण करते हैं ॥ १७-२१ ॥

एक दिनकी बात है । प्रकृतिसे परे साक्षात् भगवान् श्रीहरिने प्रसन्नचित्त होकर मेवके समान गम्भीर वाणीमें शोषणे कहा ॥ २२ ॥

श्रीभगवान् बोले—इस भूमण्डलको अपने ऊपर धारण करनेकी शक्ति दूसरे किसीमें नहीं है, इसलिये इस भूगोलको तुम्हीं अपने मस्तकपर धारण करो । तुम्हारा पराक्रम अनन्त है, इसीलिये तुम्हें 'अनन्त' कहा गया है । जन-कल्याणके हेतु तुम्हें यह कार्य अवश्य करना चाहिये ॥ २३-२४ ॥

शोषणे कहा—प्रभो ! पृथ्वीका भार उठानेके लिये आप कोई अवधि निश्चित कर दीजिये । जितने दिनकी अवधि होगी, उतने समयतक मैं आपकी आशासे भूमिका भार अपने सिरपर धारण करूँगा ॥ २५ ॥

श्रीभगवान् बोले—नागराज ! तुम अपने सहस्र मुखोंसे प्रतिदिन पृथक्-पृथक् मेरे गुणोंसे स्फुरित होनेवाले नूतन नामोंका सब और उच्चारण किया करो । जब मेरे दिव्य नाम समाप्त हो जायें, तब तुम अपने सिरसे पृथ्वीका भार उतारकर सुखी हो जाना ॥ २६-२७ ॥

शोषणे कहा—प्रभो ! पृथ्वीका आधार तो मैं हो जाऊँगा, किंतु मेरा आधार कौन होगा ? बिना किसी आधारके मैं जलके ऊपर कैसे स्थित रहूँगा ? ॥ २८ ॥

श्रीभगवान् बोले—मेरे मित्र ! इसकी चिन्ता मत करो । मैं 'कच्छप' बनकर 'महान् भारसे युक्त तुम्हारे विशाल शरीरको धारण करूँगा ॥ २९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर ! तब शोषने उठकर भगवान् श्रीगरुद्ध्वजको नमस्कार किया । फिर वे पातालसे लाल योजन नीचे चले गये । वहाँ अपने हाथसे इस अत्यन्त गुह्यतर भूमण्डलको पकड़कर प्रचण्डपराकर्मी शोषने अपने एक ही फनपर धारण कर लिया । परात्मर अनन्तदेव संकषणके पाताल चले जानेपर ब्रह्माजीकी प्रेरणासे अन्यान्य नागराज भी उनके पीछे-पीछे चले गये । कोई अतलमें, कोई वितलमें, कोई सुतल और महातलमें तथा कितने ही तलातल एवं रसातलमें जाकर रहने लगे । ब्रह्माजीने उन सर्पोंके लिये पृथ्वीपर 'रमणकद्वीप' प्रदान किया था । कालिय आदि नाग उसीमें सुखपूर्वक निवास करने लगे । राजन् ! इस प्रकार मैंने तुमसे कालियका कथानक कह सुनाया, जो सारभूत तथा भोग और मोक्ष देनेवाला है । अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ३०-३५ ॥

इस प्रकार श्रीराम-संहितामें बृन्दावनस्थम् के अन्तर्गत 'शोषके उपाख्यानका वर्णन' नामक तेरहाँ अथाय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

कालियका गरुड़के भयसे बचनेके लिये बमुना-जलमें निवासका रहस्य

राजा बहुलाङ्गवने पूछा—ब्रह्मन् ! रमणकहीपमें रहनेवाले अन्य सर्पोंको छोड़कर केवल कालियनागको ही गरुड़से भय क्यों हुआ ? यह सारी बात आप मुझे बताइये ॥ १ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! रमणकहीपमें नागोंका विनाश करनेवाले गरुड़ प्रतिदिन जाकर बहुत से नागोंका संहार करते थे । अतः एक दिन भयसे ब्याकुल हुए बहाँके सर्पोंने उस द्वीपमें पहुँचे हुए कुछ गरुड़से इस प्रकार कहा ॥ २ ॥

नाग थोले—हे गरुडम् ! तुम्हें नमस्कार है । तुम साक्षात् भगवान् विष्णुके बाहन हो । जब इस प्रकार हम सर्पोंको खाते रहोगे तो हमारा जीवन कैसे सुरक्षित रहेगा । इसलिये प्रत्येक मासमें एक बार पृथक्-पृथक् एक-एक घरसे एक सर्पकी बलि ले लिया करो । उसके साथ बनस्पति तथा अमृतके समान मधुर अज्ञकी सेवा भी प्रस्तुत की जायगी । यह सब विधानके अनुसार तुम शीघ्र स्वीकार करो ॥ ३-४ ॥

गरुडजी थोले—आपलोग एक-एक घरसे एक-एक नागकी बलि प्रतिदिन दिया करें; अन्यथा सर्पके बिना दूसरी बस्तुओंकी वलियें मैं कैसे पेट भर सकूँगा ? वह तो मेरे लिये पानके शीढ़के तुल्य होगी ॥ ५ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! उनके यो कहने-पर सब सर्पोंने आत्मरक्षाके लिये एक-एक करके उन महात्मा गरुड़के लिये नित्य दिव्य बलि देना आरम्भ किया ॥ ६ ॥

नरेश्वर ! जब कालियके घरसे बलि मिलनेका अवसर आया, तब उसने गरुड़को ही जानेवाली बलिकी सारी बस्तुएँ बल्यर्वक स्वयं ही भक्षण कर लीं । उस समय प्रचण्ड पराक्रमी गरुड़ बड़े रोषमें भरकर आये । आते-ही उन्होंने कालियनागके ऊपर अपने पंखेसे प्रहार किया । गरुड़के उस पाद-प्रहारसे कालिय मूर्छित हो गया । फिर उठकर लंबी लौस लेते और जिहाओंसे मुँह चाटते हुए नागोंमें श्रेष्ठ चलवान् कालियने अपने सौ कण फैलाकर विवैले दाँतोंसे गरुड़को बैगांधक ढाँच लिया । तब दिव्य बाहन गरुड़ने

उसे चौंचमें पकड़कर पृथ्वीपर दे मारा और पाँखोंसे बारंबार पीटना आरम्भ किया । गरुड़की चौंचसे निकलकर सर्पने उनके दोनों पंजोंको आवेष्टित कर किया और बारंबार फुँकार करते हुए उनकी पाँखोंको खींचना आरम्भ किया । उस समय उनकी पाँखसे दो पक्षी उत्पन्न हुए—नीलकण्ठ और मध्यर । मिथिलेश्वर ! आदिवन शृङ्ग दशभीको उन पक्षियोंका दर्शन पवित्र एवं सम्पूर्ण मनोबान्धित फलोंका देनेवाला माना गया है । रोषसे भे हुए गरुड़ने पुनः कालियको चौंचसे पकड़कर पृथ्वीपर पटक दिया और सहसा वे उसके शरीरको धसीटने लगे । तब भयसे बिहुल हुआ कालिय गरुड़की चौंचसे छुटकर भागा । प्रचण्ड पराक्रमी पक्षिराज गरुड़ भी सहसा उसका पीछा करने लगे । सात द्वीपों, सात खण्डों और सात समुद्रोंतक वह जहाँ-जहाँ गया, बहाँ-बहाँ उतने गरुड़को पीछा करते देखा । वह नाग भूलोंक, भुवलोंक, खलोंक और महलोंकमें कमशः जा पहुँचा और बहाँसे भागता हुआ जनलोकमें पहुँच गया । जहाँ जाता, वहीं गरुड़ भी पहुँच जाते । इसलिये वह पुनः नोचे-नीचे लोकोंमें कमशः गया; किंतु श्रीकृष्ण (भगवान् विष्णु)के भयसे किसीने उसकी रक्षा नहीं की । जब उसे कहाँ भी चैन नहीं मिली, तब भयसे ब्याकुल कालिय देवाखिदेव शोषके चरणोंके निकट गया और भगवान् शोषको प्रणाम करके परिक्रमार्पक हाथ जोड़ विशाल पृष्ठवाला कालिय दीन, भयातुर और कथित होकर बोला ॥ ७—२० ॥

कालियने कहा—भूमिभर्ता भुवनेश्वर ! भूमन् ! भूमि-भारद्वारी प्रभो ! आपकी लीलाएँ अपार हैं, आप सर्वसमर्थ पूर्ण परामर्श पुराणपुरुष हैं; मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ २१ ॥

नारदजी कहते हैं—कालियको दीन और भयातुर देख काणीश्वरदेव जनार्दनने मधुर बाणीसे उसको प्रसन्न करते हुए कहा ॥ २२ ॥

शोष थोले—महामते कालिय ! मेरी उत्तम बात सुनो । इसमें सदैह नहीं कि संसारमें कहीं भी तुम्हारी रक्षा नहीं होगी । (रक्षाका एक ही उपाय है; उसे बताता हूँ, सुनो—) पूर्वकालमें सौभारि नामसे प्रसिद्ध एक लिद्ध मुनि थे । उन्होंने

बुन्दावनमें यमुना के जलमें रहकर दस हजार वर्षोंतक तपस्या की। उस जलमें भीनराजका विहार देखकर उनके मनमें भी घर बसानेकी इच्छा हुई। तब उन महाबुद्धि महर्षिने राजा मांधाराकी सौ पुत्रियोंके साथ विवाह किया। श्रीहरिने उन्हें परम ऐश्वर्यशालिनी वैष्णवी सम्पत्ति प्रदान की, जिसे देखकर राजा मांधारा आश्वर्यचकित हो गये और उनका धनविषयक सारा अभिमान जाता रहा। यमुना के जलमें जब सौभरि मुनिकी दीर्घकालिक तपस्या चल रही थी, उन्हीं दिनों उनके देखते-देखते गशडने भीनराजको भार ढाला। भीन-परिवारको अत्यन्त दुखी देखकर दूसरोंका दुःख दूर करनेवाले दीनबस्तल मुनिश्रेष्ठ सौभरिने कुपित हो गशडको शाप दे दिया। २५—२८॥

सौभरि बोले—पश्चिम ! आजके दिनसे लेकर

इस प्रकार श्रीगर्ण-सहितमें बुन्दावनखण्डके अन्तर्गत कालियके उपाख्यानका वर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ। १४॥

पंद्रहवाँ अध्याय

श्रीराधाका गवाक्षभार्गसे श्रीकृष्णके रूपका दर्शन करके प्रेम-विहृल होना; ललिताका श्रीकृष्णसे राधाकी दशाका वर्णन करना और उनकी आङ्गके अनुसार लौटकर श्रीराधाको श्रीकृष्ण-प्रीत्यर्थ सत्कर्म करनेकी प्रेरणा देना

नारदजी कहते हैं—राजन् ! यह मैंने तुमसे कालिय-मर्दनरूप पवित्र श्रीकृष्ण-चरित्र कहा। अब और क्या सुनना चाहते हो ! ॥ १ ॥

बहुलाभ्य बोले—देवर्ण ! जैसे देवता अमृत पीकर तथा भ्रमर कमल-कर्णिकाका रस लेकर तुम नहीं होते, उसी प्रकार श्रीकृष्णकी कथा सुनकर कोई भी भक्त तुम नहीं होता (वह उसे अधिकाधिक सुनना चाहता है)। जब शिशुरूपधारी परमात्मा श्रीकृष्ण रास करनेके लिये भाण्डी-बनमें गये और उनका यह लशुरूप देखकर श्रीराधा मन-ही-मन खेद करने लगीं, तब देववाणीने कहा—कृत्याणि ! सोच न करो। मनोहर बुन्दावनमें महात्मा श्रीकृष्णके द्वारा तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा। देववाणीद्वारा इस प्रकार कहा गया वह मनोरथका महात्मागर किस तरह पूर्ण हुआ और उस मनोहर बुन्दावनमें भगवान् श्रीकृष्ण किस रूपमें प्रकट हुए ! उस बुन्दाविपिनमें साक्षात् परिषूलितमं भगवान् भीराधाके साथ मनोहर रासकीद्वा किस प्रकार की ! ॥ २-६ ॥

भविष्यमें यदि तुम इस कुण्डके भीतर वल्पूष्क मछलियोंको खाओगे तो मेरे शापसे उसी क्षण तुरंत तुम्हारे ग्राणोंका अन्त हो जायगा ॥ २९ ॥

श्रोषजी कहते हैं—उस दिनसे मुनिके शापसे भयभीत हुए गशड वहाँ कभी नहीं आते। इसलिये कालिय ! तुम मेरे कहनेसे शीघ्र ही श्रीहरिके विपिन—बुन्दावनमें चले जाओ। वहाँ यमुनामें निर्भय होकर अपना निवास नियत कर लो। वहाँ कभी तुम्हें गशडसे भय नहीं होगा ॥ ३०-३१ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! शोभनागके थों कहनेपर भयभीत कालिय अपने छी-बालकोंके साथ कालिन्दी-में निवास करने लगा। फिर श्रीकृष्णने ही उसे यमुनाजलसे निकालकर बाहर भेजा ॥ ३२ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ण-सहितमें बुन्दावनखण्डके अन्तर्गत कालियके उपाख्यानका वर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ। १४॥

नारदजीने कहा—राजन् ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया। मैं उस मङ्गलमय भगवान्नरिति, उस मनोहर लीलाख्यानका, जो देवताओंको भी पूर्णतया शात नहीं है, वर्णन करता हूँ। एक दिनकी बात है, श्रीराधाकी दो प्रधान सखियाँ, शुभस्वरूपा ललिता और विशारदा, बृषभानुके घर पहुँचकर एकान्तमें श्रीराधासे मिलीं ॥ ७-८ ॥

सखियाँ बोलीं—राधे ! तुम जिनका चिन्तन करती हो और स्वतः जिनके गुण गाती रहती हो, वे भी प्रतिदिन ब्वाल-बालोंके साथ वृषभानुपुरमें आते हैं। राधे ! तुम्हें रातके पिछले पहरमें, जब वे गो-चारणके लिये निकलते हैं, उनका दर्शन करना चाहिये। वे वहे सुन्दर हैं ॥ ९-१० ॥

राधा बोलीं—पहले उनका मनोहर चित्र बनाकर तुम शीघ्र सुन्दर दिखाओ, उसके बाद मैं उनका दर्शन करूँगी—इसमें संशय नहीं है ॥ ११ ॥

नारदजी कहते हैं—तब दोनों सखियोंने मन्दनका सुन्दर चित्र बनाया, जिसमें नूतन यौवनका माझुर्य-

भय था । वह चित्र उन्होंने दुरंत श्रीराधाके हाथमें दिया । वह चित्र देखकर श्रीराधा हृषी स्तिल उठीं और उनके हृदयमें श्रीकृष्णदर्शनकी लालता जाग उठी । हृषीमें रखे हुए चित्रको निहारती हुई वे आनन्दमन्न होकर सो गयीं । भवनमें सोती हुई श्रीराधाने स्वन्में देखा—‘यमुनाके किनारे भाण्डीरवनके एक देशमें नीलमेघकी सी कान्तिवाले श्रीपटधारी इयामसुन्दर श्रीकृष्ण मेरे निकट ही नृत्य कर रहे हैं ।’ विदेहराज ! उसी समय श्रीराधाकी नींद दूट गयी और वे शश्यासे उठकर, परमामा श्रीकृष्णके वियोगसे विहृल हो, उन्हींके कमनीय रूपका चिन्तन करती हुई चिलोकीको लृणवत् मानने लगीं । इतनेमें ही ब्रजेश श्रीनन्दननन्दन अपने भवनसे चलकर वृषभानुनगरकी साँकरी गलीमें आ गये । सखीने तत्काल खिड़कीके पास आकर श्रीराधाको उनका दर्शन कराया । उन्हें देखते ही सुन्दरी श्रीराधा मूर्च्छित हो गयीं । लीलासे मानव-शरीर धारण करनेवाले माधव श्रीकृष्ण भी सुन्दर रूप और वैद्यन्तसे युक्त गुणनिधि श्रीवृषभानुनन्दिनीका दर्शन करके मन-ही-मन उनके साथ विहारकी अत्यधिक कामना करते हुए अपने भवनको छैटे । वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाको इस प्रकार श्रीकृष्ण-वियोगसे विहृल तथा अतिशय कामज्वरसे संततचित्त देखकर नखियोंमें झेंड ललिताने उनसे इस प्रकार कहा ॥ १२-१८ ॥

ललिताने पूछा—राखे ! तुम क्यों इतनी विहृल, मूर्च्छित (वेसुध) और अस्यन्त व्यथित हो ? सुन्दरी ! यदि श्रीहरिको प्राप्त करना चाहती हो तो उनके प्रति अपना स्लेह दृढ़ करो । वे इस समय चिलोकीके भी समर्पण सुखपर अधिकार किये बैठे हैं । शुभे ! वे ही दुःखाभिनकी ज्वालाको बुझा सकते हैं । उनकी उपेक्षा पैरोंसे ढुकरायी हुई कुम्हरके आँखेकी अभिके समान दाहक होगी ॥ १९-२० ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! ललिताकी यह ललित बात सुनकर ब्रजेश्वरी श्रीराधाने आँखें खोलीं और अपनी उस प्रिय सखीसे वे गदृगद बाणीमें यों बोलीं ॥ २१ ॥

राधाने कहा—सखी ! यदि मुझे ब्रजभूषण इयामसुन्दरके चरणारबिन्द नहीं प्राप्त हुए तो मैं कदापि अपने शरीरको नहीं धारण करूँगी—यह मेरा निश्चय है ॥ २२ ॥

नारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! श्रीराधाकी यह बात सुनकर ललिता भयसे विहृल हो, यमुनाके मनोहर तटपर श्रीकृष्णके पास गयी । वे माधवीलाके जालसे

आच्छ और अमरीकी गुंजारेंसे ब्यास एकमत्र प्रेषणमें कदम्बकी जड़के पास अकेले बैठे थे । वहाँ ललिताने श्री-इरिटे कहा ॥ २३-२४ ॥

ललिता बोली—श्यामसुन्दर ! जिस दिनसे श्रीराधाने तुम्हारे अद्भुत मोहनलूपको देखा है, उसी दिनसे वह सम्पन्न-रूप सात्स्विकभावके अधीन हो गयी है । काठकी पुतलीकी भाँति किसीसे जुळ बोलती नहीं । अलंकार उसे अधिकी ज्वालाकी भाँति दाहक प्रतीत होते हैं । सुन्दर बल भाइकी तरीके हुई बालूके उमान जान वहूते हैं । उसके लिये हर प्रकारकी सुगन्ध कड़वी तथा परिचारिकाओंसे भरा हुआ भवन भी निर्जन बन हो गया है । हे प्यारे ! तुम यह जान लो कि तुम्हारे विरहमें मेरी सखीको फूल बाण-सा तथा चन्द्र-बिम्ब विषकंद-सा प्रतीत होता है । अतः श्रीराधाको तुम शीघ्र दर्शन दो । तुम्हारा दर्शन ही उसके दुःखोंको दूर कर सकता है । तुम सबके साथी हो । भूतल्यर कौन-सी ऐसी बात है, जो तुम्हें विदित न हो । तुम्हीं इस जगत्की दृष्टि, पालन और संहार करते हो । यद्यपि परमेश्वर होनेके कारण तुम सब लोगोंके प्रति समानभाव रखते हो, तथापि अपने भक्तोंका भजन करते हो (उनके प्रति अधिक प्रेम-भाव रखते हो) ॥ २५-२८ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! ललिताकी यह ललित बात सुनकर ब्रजेश्वरी श्रीराधाने अँखें खोलीं और अधिगर्जनके समान गम्भीर बाणीमें बोले ॥ २९ ॥

श्रीभगवान्नने कहा—भासिनि ! मनका सारा भाव स्वतः एकमात्र मुझ परात्पर पुरुषोत्तमकी ओर नहीं प्रवाहित होता; अतः सबको अपनी ओरसे मेरे प्रति प्रेम ही करना चाहिये । इस भूतल्यर प्रेमके समान दूसरा कोई साधन नहीं है (मैं प्रेमसे ही सुलभ होता हूँ) । भाण्डीरवनमें श्रीराधाके हृदयमें जैसे मनोरथका उदय हुआ या, वह उसी रूपमें पूर्ण होगा । सत्पुरुष अहेतुक प्रेमका आश्रय लेने हैं । संत, महात्मा उस निहेतुक प्रेमको निश्चय ही निर्णय (तीनों गुणोंसे अतीत) मानते हैं । जो मुझ केशबमें और श्रीराधिकामें थोड़ा-सा भी भेद नहीं देखते, वलिक दूष और उसकी चुक्लातके समान हम दोनोंको सर्वथा अभिष्ठ मानते हैं, उन्हींके अन्तःकरणमें अहेतुकी भक्तिके लक्षण प्रकट होते हैं तथा वे ही मेरे ब्रह्मपद (गोलोकधाम) में प्रवेश पाते हैं । रम्भोद ! इस भूतल्यर जो कुदुकि मानन

कुल केशव हरिमें तथा श्रीराधिकामे भेदभाव रखते हैं, वे अपतक चन्द्रमा और सूर्यकी सत्ता है, तबतक निष्पत्ति ही कालसूच नामक नरकमें पहकर दुःख भोगते हैं॥ ३०-३३॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! श्रीकृष्णकी यह सारी वात सुनकर ललिता सखी उन्हें प्रणाम करके श्रीराधाके पास गयी और एकान्तमें बोली । बोलते, समय उसके मुखपर मधुर हासकी छटा छा रही थी ॥ ३४ ॥

ललिताने कहा—सखी ! जैसे तुम श्रीकृष्णको चाहती हो, उसी तरह वे मधुसूदन श्रीकृष्ण भी तुम्हारी अभिलाषा रखते हैं । तुम दोनोंका तेज भेद-भावसे रहित, एक है । लोग अकानवश वी ही उसे दो मानते हैं । तथापि सती-साध्या

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें बुन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'श्रीराधाकृष्णके प्रेमोद्योगका वर्णन' नामक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

सोलहवाँ अध्याय

**तुलसीका माहात्म्य, श्रीराधाद्वारा तुलसीसेवन-व्रतका अनुष्ठान तथा दिव्य
तुलसीदेवीका प्रत्यक्ष प्रकट हो श्रीराधाको वरदान देना**

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! श्रीराधाकी वात सुनकर समस्त सखियोंमें ओष्ठ चन्द्राननाने अपने हृदयमें एक क्षणतक कुछ विचार किया फिर इस प्रकार उत्तर दिया ॥ १ ॥

चन्द्रानना बोली—राधे ! परममौभाग्यदायक, महान् पुण्यजनक तथा श्रीकृष्णकी भी प्राप्तिके लिये वगदायक व्रत है—तुलसीकी सेवा । मेरी रायमें तुलसी-सेवनका ही नियम तुम्हें लेना चाहिये; क्योंकि तुलसीका यदि स्पर्श अथवा ध्यान,

देवि ! तुम श्रीकृष्णके लिये निष्काम कर्म करो, जिससे परामत्किके द्वारा तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो ॥ ३५-३६ ॥

नारदजी कहते हैं—नरेश्वर ! ललिता सखीकी यह वात सुनकर रासेश्वरी श्रीराधाने समूर्ण धर्मवेत्ताओंमें ओष्ठ चन्द्रानना सखीसे कहा ॥ ३७ ॥

श्रीराधा बोली—सखी ! तुम श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये किसी देवताकी ऐसी पूजा बताओ, जो परम सौभाग्य-वर्द्धक, महान् पुण्यजनक तथा मनोषाञ्छित वस्तु देनेवाली हो । भद्रे ! महामते ! तुमने गर्गाचार्यजीके मुखसे शास्त्र-चर्चा सुनी है । इसलिये तुम मुझे कोई व्रत या पूजन बताओ ॥ ३८-३९ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें बुन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'श्रीराधाकृष्णके प्रेमोद्योगका वर्णन'

नाम-कीर्तन, स्तवन, आरोपण, सेचन और तुलसीदलमें ही नित्य पूजन किया जाय तो वह महान् पुण्यप्रद होता है । शुभे ! जो प्रतिदिन तुलसीकी नौ प्रकारसे भक्ति करते हैं, वे कोटि सहस्र युगोंतक अपने उस सुकृतका उत्तम फल भोगते हैं । मनुष्योंकी लगायी हुई तुलसी जयतक शाखा, प्रशाखा, बीज, पुष्प और सुन्दर दलोंके साथ पृथ्वीपर बढ़ती रहती है, तबतक उनके बंधामें जो-जो जन्म लेते हैं, वे सब उन आरोपण करनेवाले मनुष्योंके साथ दो हजार कल्पोंतक

* श्रीमग्नवलुवाच—

सर्वं हि भावं भनतः परात्परं न शेषको मामिनि जायते ननः । प्रेमैव कर्तन्यमतो मयि स्वनः प्रेम्णा समानं मुखि नास्ति किञ्चित् ॥
यथा हि भाष्मीरकने भनोरको गम्भू तथा हि तथा मविष्यति । अैतुंकं प्रेम च सद्भिरामितं तत्त्वापि समः किल निर्गुणं शिदुः ॥
वे रातिकार्या मयि केशवे वरी कुर्वन्ति भेदं कुर्वन्ति जना मुखि । ते कालम् प्रपञ्चिति दुःखिता रम्मोह यावतिक्ल चन्द्रभासकरी ॥

(गर्ग०, वृद्धावन० १५ । ३०-३३)

* ललितोद्योग—

त्वयिन्द्रिये दद्या कृष्णं तदा त्वा मधुसूदनः । कुषयोभेदरहितं तेजस्येकं द्विषा वनैः ॥
तथापि देवि कृष्णाय कर्म निष्कारणं कुरु । बेन ते वाञ्छितं शूदाद भवत्या वरमया सति ॥

(गर्ग०, वृद्धावन० १५ । ३५-३६)

श्रीहरिके भासमें निवास करते हैं। राखिके ! समूर्ण पक्षों और पुष्पोंको भगवान्‌के चरणोंमें चढ़ानेसे जो फल मिलता है, वह सदा एकमात्र तुलसीदलके अर्पणसे प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य तुलसीदलोंसे श्रीहरिकी पूजा करता है, वह जलमें पश्चपत्रकी भाँति पापसे कभी लिप्त नहीं होता। सौ भार सुवर्ण तथा चार सौ भार रजतके दानका जो फल है वही तुलसीबनके पालनसे मनुष्यको प्राप्त हो जाता है। राखे ! जिसके घरमें तुलसीका बन या बगीचा होता है, उसका वह घर तीर्थरूप है। वहाँ यमराजके दूत कभी नहीं जाते। जो श्रेष्ठ मानव सर्वपापहारी, पुण्यजनक तथा मनोवाङ्छित वस्तु देनेवाले तुलसीबनका रोपण करते हैं, वे कभी सूर्यपुत्र यमको नहीं देखते। रोपण, पालन, सेवन, दर्शन और स्वर्ण करनेसे तुलसी मनुष्योंके मन, वाणी और शरीरद्वारा संचित समस्त पापोंको दृग्भ कर देती है। पुष्कर आदि तीर्थ, गङ्गा आदि नदियाँ तथा वासुदेव आदि देवता तुलसीदलमें सदा निवास करते हैं। जो तुलसीकी मङ्गरी सिरपर रखकर ग्राण-त्याग करता है, वह सैकड़ों पापोंसे युक्त क्यों न हो, यमराज उसकी ओर देव भी नहीं सकते। जो मनुष्य तुलसी-काष्ठका घिसा हुआ चन्दन लगाता है, उसके शरीरको यहाँ क्रियमाण पाप भी नहीं छूता। शुभे ! जहाँ-जहाँ तुलसीबनकी छाया हो, वहाँ-वहाँ पितरोंका आद्व करना चाहिये। वहाँ दिया हुआ श्राद्ध-सम्बन्धी दान अक्षय होता है। सखी ! आदिदेव चतुर्भुज ब्रह्माजी भी शार्णधन्वा श्रीहरिके माहात्म्यकी भाँति तुलसीके माहात्म्यको भी कहनेमें समर्थ नहीं हैं। अतः गोपनन्दिनि ! तुम भी प्रतिदिन तुलसीका सेवन करो, जिससे श्रीकृष्ण सदा ही तुम्हारे वशमें रहें। ॥ २-१८ ॥

* यदा सूर्याद्या च्याता कीर्तिता नामभिः स्तुता ।
रोपिता तिक्षिता नित्यं पूजिना तुलसीदलैः ॥
नवधा तुलसीमस्कि ये कुर्वन्ति दिने दिने ।
युगकेटिवहस्ताणि ते यान्ति द्वृक्तं शुभे ॥
मायाज्ञायाप्रवायाज्ञामिवीजपुष्पदलैः शुभे ।
रोपिता तुलसी मर्त्यवर्धते बसुधातले ॥
तेषां बंशेषु ये जाता गतास्ते वै द्वारालगे ।
आकर्ष्ययुग्माद्यां तेषां वासो हरेगृहे ॥
यस्तत्त्वं सर्वपत्रेषु सर्वपुष्पेषु राखिके ।
तुलसीदलेन चैकेन सर्वदा प्राप्यते तु ततः ॥

ग० सं० अ० ११—

श्रीलालरहडी कहते हैं—नरेश्वर ! इस प्रकार चम्भानना-की कही हुई बात सुनहर रातेश्वरी श्रीराधाने साक्षात् श्रीहरि-को संतुष्ट करनेवाले तुलसीसेवनका ग्रन्थ अस्त्रभ किया। केतकीबनमें सौ हाथ गोलाकार भूमिपर यहुत ऊँचा और अत्यन्त मनोहर श्रीतुलसीका मन्दिर बनवाया, जिसकी दीवार सोनेमें जड़ी थी और किनारे-किनारे पश्चारागमणि लगी थी। वह सुन्दर मन्दिर पन्ने, हीरे और मोसियोंके परकोटेसे अत्यन्त सुशोभित था तथा उसके बारों और परिकल्प-के लिये गली बनायी गयी थी, जिसकी भूमि चिन्तामणि-से मण्डित थी। बहुत ऊँचा तोरण (मुख्यद्वार या गोपुर) उस मन्दिरकी दोभा बढ़ाता था। वहाँ सुवर्णमय घजदण्डसे युक्त पताका फहरा रही थी। चारों ओर ताने हुए सुनहले वितानों (चँदोबों) के कारण वह तुलसी-मन्दिर बैजयन्ती पताकासे युक्त इन्द्रभवन-सा देदीप्यमान था। ऐसे तुलसी-मन्दिरके

तुलसीप्रभवैः पत्रैयोः नरः पूजयेद्दरिम् ।
लिप्यते न स पापेन पश्चपत्रमिवाभसा ॥
सुवर्णभारशतकं रजतं यच्चतुर्युणम् ।
तत्फलं समवाप्नोति तुलसीबनपालनात् ॥
तुलसीकाननं रावे गृहे यस्याबतिष्ठति ।
तदरुहं तीर्थरूपं हि न यान्ति यमकिंकराः ॥
सर्वपापरं पुण्यं कामदं तुलसीबनम् ।
रोपयन्ति नराः भेषास्ते न पश्चयन्ति भास्करिम् ॥
रोपयात् पालनात् सेकद् दशनात् स्पर्शनान्दृणाम् ।
तुलसी दहते पापं बास्तवःकायसंचितम् ॥
पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाज्ञाः सरितस्तथा ।
बाङ्गदेवादयो देवा बसन्ति तुलसीदले ॥
तुलसीमङ्गरीतुलो वस्तु प्राणान् विमुक्तति ।
यतोऽपि नेत्रितुं शक्तो युक्तं पापशैनैरपि ॥
तुलसीकाश्चजं यस्तु नन्दनं भारयेन्नरः ।
तदेहं न सङ्क्षेप्यापं क्रियमाणपीडं यत् ॥
तुलसीविष्णिन्ज्ञाया यत्र यत्र भवेच्छुमे ।
तत्र भाद्रं प्रकर्तव्यं पितराणां दत्तमक्षयम् ॥
तुलस्याः सखि माहात्म्यमादिरेवश्चतुर्मुखाः ।
न सम्भो भवेत्सुं यथा देवत्य शार्ङ्गिणः ॥
तुलसीसेवनं नित्यं कुरु त्वं गोपकन्यके ।
श्रीकृष्णो बश्यता यानि येन वा सर्वदैव हि ॥
(गर्म०, इन्द्रावग० १६ । ३—१८)

यस्यमात्रमें हीरे पल्लवोंसे बुशोभित तुलसीकी स्थापना करके श्रीराधाने अभिजित् मुहूर्तमें उनकी सेवा प्रारम्भ की । श्रीगर्वांजीको बुलाकर उनकी बतायी हुई विधिसे सती श्रीराधाने वडे भक्तिभावसे श्रीकृष्णको संतुष्ट करनेके लिये आदिवन शृङ्खला पूर्णिमासे लेकर चैत्र पूर्णिमातक तुलसी-सेवन-प्रक्रिया अनुष्ठान किया ॥ १९—२५ ॥

ब्रत आरम्भ करके उन्होंने प्रतिमास पृथक्-पृथक् रसमें तुलसीको संचालित करके रससे, पौष्ट्रमें द्राक्षारससे, मार्गशीर्षमें इवत्वे रससे, पौष्ट्रमें द्राक्षारससे, मार्गशीर्षमें आमके रसमें, फाल्गुन मासमें अनेक वस्तुओंसे मिथित मिश्रीके रसमें और चैत्र मासमें पञ्चामूर्तसे उसका सेचन किया । नरेश्वर ! इस प्रकार व्रत पूरा करके बृषभानुनन्दिनी श्रीराधाने गर्जांजीकी बतायी हुई विधिसे वैशाख कृष्णा प्रतिपदाके दिन उथापनका उत्सव किया । उन्होंने दो लाख ब्राह्मणोंको छप्पन भोगोंमें नृस करके बल्ल और आभूषणोंके साथ दक्षिणा दी । विदेशराज ! मोटे-मोटे दिव्य भोतियोंका एक लाख भार और सुवर्णका एक कोटि भार श्रीगर्वांजार्यजीको दिया । उस समय आकाशमें देवताओंकी हुन्हुभियाँ बजाने लगीं, अप्सराओंका नृत्य होने लगा और देवतालोग उस तुलसी-मन्दिरके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ २६—३० ॥

उसी समय सुवर्णमय सिंहासनपर विराजमान हरिप्रिया तुलसीदेवी प्रकट हुई । उनके चार भुजाएँ थीं । कमलदलके समान विशाल नेत्र थे । सोलह वर्षकी-सी अवस्था एवं श्याम कान्ति थी । मस्तकपर हेममय किरीट प्रकाशित था और

इस प्रकार श्रीगर्वांसहितमें बृन्दावनवाचःके अन्तर्गत 'तुलसीपूजन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका गोपदेवीके रूपसे बृषभानु-भवनमें जाकर श्रीराधासे मिलना

राजा बहुलाश्व थोले—मुने ! श्रीराधाकृष्णके चरित्र-को भुनते-भुनते भेरा मन अधाता नहीं—ठीक उसी तरह ऐसे शशदृश्टुके प्रफुल्ल कमलका रसमान करते समय भ्रमरोंको तृप्ति नहीं होती । राजन् ! तपोधन ! श्रीकृष्णपद्मी रसेश्वरीदाय तुलसी-सेवनका व्रत पूर्ण कर

कानोंमें काञ्जनमय कुण्डल बालमला रहे थे । पीताम्बरसे आच्छादित केशोंकी बँधी हुई नाशिन-जैसी वेणीमें वैजयन्ती माला धारण किये, गद्धसे उत्तरकर तुलसीदेवीने रङ्गवल्ली-जैसी श्रीराधाको अपनी भुजाओंसे अङ्गमें भर लिया और उनके मुखन्चन्द्रका चुम्बन किया* ॥ ३१-३२ ॥

तुलसी बोलीं—कलबतीं-कुमारी राखे । मैं तुम्हारे भक्ति-भावमें बशीभूत हो निरन्तर प्रसन्न हूँ । भासिनि ! तुमने केवल लोकसंग्रहकी भावनासे इस सर्वतोमुखी व्रतका अनुष्ठान किया है (वासवमें तो तुम पूर्णकाम हो) । यहाँ हन्दिय, मन, बुद्धि और चित्तद्वारा जो-जो मनोरथ तुमने किया है, वह सब तुम्हारे सम्मुख सफल हो । पति सदा तुम्हारे अनुकूल हो और इसी प्रकार कीर्तनीय परम सौभाग्य बना रहे ॥ ३३-३४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! यौं कहती हुई हरिप्रिया तुलसीको प्रणाम करके बृषभानुनन्दिनी राधाने उनसे कहा—न्देवि ! गोविन्दके युगल चरणारविन्दोंमें मेरी अहैतुकी भक्ति बनी रहे । मैथिलराजशिरोमणे ! तब हरिप्रिया तुलसी 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गयीं । तबसे बृषभानुनन्दिनी राधा अपने नगरमें प्रसन्न-चित्त रहने लगीं । राजन् ! इस पृथ्वीपर जो मनुष्य भक्तिपरायण हो श्रीराधिकाके इस विवित उपाख्यानको सुनता है, वह मन-ही-मन विवर्ग-सुखका अनुभव करके अन्तमें भगवान्को पाकर कृतकृत्य हो जाता है ॥ ३५—३७ ॥

लिये जानेके बाद जो बृत्तान्त घटित हुआ, वह मुझे सुनाइये ॥ १-२ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! श्रीराधिकाकी तुलसी-देवी-के निभित्त की गयी तपस्याको जानकर, उनकी प्रीतिकी परीक्षा लेनेके लिये, एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण बृषभानुपुरमें गये । उस

* तदाऽविरासीतुलसी हरिप्रिया भुवणींठोपरिशोभितासना । चतुर्मुङ्गा पश्चपलाशबोक्षणा इयामा स्फुरद्देवकिरीदकृष्णका ॥

गीताम्बद्वाच्छित्तसंपेती ऋजुं दधाना नवैजयन्तीम् । ऋगात्समुर्तीयं च रङ्गवल्लीं चुनुम्ब राधां परिरम्य वापुभिः ॥

(गां०, वृद्धावन० १६ । ३१-३२)

समय उच्छैने अद्भुत गोपाङ्गनाका रूप धारण कर लिया था । चलते समय उनके पैरोंसे नुपुरोंकी मधुर शनकार हो रही थी । कठिकी करधनीमें लगी हुई शुद्धण्टिकाओंकी भी मधुर लग्नानाहट सुनायी पढ़ती थी । अद्भुतियोंमें सुद्धिकाओंकी अपूर्व शोभा थी । कलाइयोंमें रत्नजटित कंगन, बौहोंमें भूजबंद तथा कण्ठ एवं बक्षःथलमें मोतियोंके हार शोभा दें रहे थे । बालविके समान दीतिमान् शीशफूलसे सुशोभित केश-पाशोंकी बेणी-रचनामें अपूर्व कुशलताका परिचय मिलता था । नासिकामें मोतीकी बुलाक हिल रही थी । शरीरकी दिव्य आभा लिङ्घ अलकोंके समान ही ह्याम थी । ऐसा रूप धारण करके श्रीहरिने वृषभानुके मन्दिरको देखा । खाई और पर्कोटोंसे युक्त वह वृषभानु-भवन चार दरवाजोंसे सुशोभित था तथा प्रत्येक द्वारपर काजल वर्णके समान वाले गजराज हामते थे, जिससे उस राजभवनकी मनोहरता बढ़ गयी थी । उस मण्डपका प्राङ्गण बायु तथा मनके समान वेगशाली एवं हार और चौंरोंसे सुशब्दित विचित्र वर्णवाले अश्वोंसे शोभा पा रहा था ॥ ३-८ ॥

नरेश्वर ! सबस्ता गौओंके समुदाय तथा धर्मधुरंधर वृषभवृन्दसे भी उस भवनकी बड़ी शोभा हो रही थी । बहुत-से गोपाल वहाँ बंशी और बैत धारण किये गीत गा रहे थे । मायामयी युवतीका वेष धारण किये ह्यामसुन्दर उस प्राङ्गणसे अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुए, जहाँ कोटि सूर्योंके समान कान्तिमान् कपाटों और संभोंकी पंक्तियाँ प्रकाश फैल रही थीं । वहाँके रत्न-मणिहर आँगनोंमें बहुत-सी रत्नस्त्रपा लक्ष्मायं सुशोभित हो रही थीं । बीणा, ताल और मूदङ्ग आदि बाजे बजाती हुई वे मनोहरिणी गोप-सुन्दरियाँ फूलोंकी छड़ी लिये श्रीराधिकाके गुण गा रही थीं । उस अन्तःपुरमें दिव्य एवं विश्वाक उपबनकी छटा छा रही थी । उसके भीतर अनार, कुन्द, मन्दार, नीबू तथा अन्य ऊँचे-ऊँचे वृक्ष लहलहा रहे थे । केतकी, मालती और माघवी लतायं उस उपबनको सुशोभित करती थीं । वही श्रीराधाका निकुञ्जथा, जिसमें कस्यकृष्णके पुष्पोंकी सुगम्भ भरी थी । नृपेश्वर ! उस उपबनमें मधु पीकर मतवाले हुए भौंरे दूटे पढ़ते थे । वहाँ शीतल मन्द-नुगम्ब बायु चल रही थी, जो सहस्रल कमलोंके परागको बारंबार विल्सेरा करती थी । उस उच्चानमें निकुञ्ज-शिखरोंपर बैठे हुए नर-कोकिल, मादा-कोकिल, मोरु सरस और शुक पक्षी भीठी आवाजमें

कृज रहे थे । वहाँ फूलोंकी सहस्रों शम्भायं संजित थीं और पानीकी हजारों नहरें वह रही थीं । वहाँके मेघ-मन्दिरमें सेकदों फुहरे छूट रहे थे । बालविके समान कान्तिमान् कुण्डल तथा विचित्र वर्णवाले बल्ल धारण किये करोड़ों कुशलताका परिचय देती थीं । उनके बीचमें श्रीराधिका रानी उस राजमन्दिरमें ठहल रही थीं । वह राजमन्दिर केसरिया रंगके सूक्ष्म बछोंसे सजाया गया था । वहाँकी भूमिपर पर्वतीय पुष्प, जलज पुष्प तथा स्वल्पर होनेवाले बहुत-से पुष्प और कोमल पल्लव इतनी अधिक संख्यामें बिछाये गये थे कि वहाँ पाँव रखनेपर गुल्क (शुद्धी) तकका भाग ढक जाता था । मालतीके मकरन्दोंकी बैंदूं वहाँ करती रहती थीं । ऐसे आँगनमें करोड़ों चन्द्रोंके समान कान्तिमती, कोमलाङ्गी एवं कृशाङ्गी श्रीराधा धीरे-धीरे अपने कोमल चरणारबिन्दोंका संचालन करती हुई घूम रही थीं । मणि-मन्दिरके आँगनमें आयी हुई उस नवीना गोपसुन्दरीको वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाने देखा । उसके तेजसे वहाँकी समस्त ललनायं हत्याम हो गयी, जैसे चन्द्रमाके उदय होनेसे ताराओंकी कान्ति फीकी पह जाती है । उसके उत्तम एवं महान् गौरवका अनुभव करके श्रीराधाने अभ्युत्थान दिया (अगवानी की) और दोनों बौहोंसे उसका गाढ़ आलिङ्गन करके उसे दिव्य सिंहासनपर विठाया । फिर लोकरीतिके अनुसार जल आदि उपचार अप्रित करके उसका सुन्दर पूजन (आदर-सत्कार) आरम्भ किया ॥ ३-२३ ॥

श्रीराधा बोली—सुन्दरी ससी ! तुम्हारा स्वागत है । मुझे शीघ्र ही अपना नाम बताओ । तुम स्वतः आज यहाँ आ गयीं, यह मेरे लिये ही महान् सौभाग्यकी बात है । इस भूतलपर तुम्हारे समान दिव्य रूपका कहीं दर्शन नहीं होता । सुभ्रु ! जहाँ तुम-जैसी सुन्दरी निकास करती हैं, वह नगर निवास ही धन्य है । देवि ! अपने आगमनका कारण विस्तारपूर्वक बताओ । मेरे योग्य जो कार्य हो, वह तुम्हें अवश्य कहना चाहिये । तुम अपनी बौंकी वित्तबन, सुन्दर दीसि, मधुर बाणी, मनोहर मुखकान, चाल-डाल और आकृतिरु इस समय मुझे श्रीपतिके सहश दिलायी देती हो । शुभे ! तुम प्रतिदिन मुझसे मिलनेके लिये आया करो । यदि न आ सको तो मुझे ही अपने निवासस्थानका संकेत भद्रन करो । जिस विधिसे हमारा तुम्हारे साथ मिलना सम्भव हो, वह

विधि तु हे सदा उपयोगमें लानी चाहिये । हे सली ! तुम्हारा यह शरीर मुझे बहुत प्यारा लगता है; क्योंकि मेरे प्रियतम श्रीब्रजराजनन्दनकी आकृति तुम्हारी ही जैसी है, जिन्होंने मेरे मनको हर लिया है । अतः तुम मेरे पास रहो । जैसे भौजाईं अपनी ननदको प्यार करती हैं, उसी प्रकार मैं तुम्हारा आदर करूँगी ॥ २४—२९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! यह सुनकर मायासे युक्तीका वेष धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने कमलनयनी राधासे इस प्रकार कहा ॥ ३० ॥

श्रीभगवान् बोले—रम्भोष ! नन्दनगर गोकुलमें नन्दभवनसे उत्तर दिशामें मेरा निवास है । मेरा नाम 'गोपदेवी' है । मैंने ललिताके मुखसे तुम्हारी रूप-माधुरी और गुण-माधुरीका वर्णन सुना है; अतः हे चक्रल लेचनीयाली सुन्दरी ! मैं तुम्हें देखनेके लिये यहाँ तुम्हारे घरमें चली आयी हूँ । कमललोचने ! जहाँ लिंग लवज्ञलताकी सुस्पष्ट सुगन्ध छा रही है, जहाँके गुआ-निकुञ्जमें मधुपीकी मधुर ध्वनिसे युक्त कंजपुष्प खिल रहे हैं, वह श्रुतिपथमें आया हुआ तुम्हारा नित्य-नूतन दिव्य नगर आज अपनी आँखों देख लिया । इसके समान सुन्दर तो देवराज इन्द्रकी पुरी अमरायती भी नहीं होगी ॥ ३१—३३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! इस प्रकार दोनों प्रिया-प्रियतमका मिलन हुआ । वे परस्पर प्रीतिका परिचय देते हुए वहाँ उपवनमें शोभा पाने लगे ।

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें बृन्दावनसङ्केते अन्तर्गत 'श्रीराधा-कृष्ण-संगम' नामक सत्रहनाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अठारहवाँ अध्याय

श्रीकृष्णके द्वारा गोपदेवीरूपसे श्रीराधाके ग्रेमकी परीक्षा तथा श्रीराधाको श्रीकृष्णका दर्शन

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! तदनन्तर रात व्याहीत होनेपर मायासे नारीका रूप धारण करनेवाले श्रीहरि श्रीराधाका दुःख शान्त करनेके लिये वृषभानु-भवनमें गये । उन्हें आया देखकर श्रीराधा उठकर वहे हर्षके साथ भीतर लिया ले गयी और आँख देकर विधि-विधानके साथ उनका पूजन किया ॥ १-२ ॥

श्रीराधा बोली—सली ! तुम्हारे बिना मैं रातभर बहुत तुसी रही और तुम्हारे आ जानेसे मुझे इसनी प्रलक्षण दूर है, मानो कोई सोयी दूर बस्तु मिल गयी हो । जैसे

पुष्पमय कन्दुक (गेंद) के खेल खेलते हुए वे दोनों हँसते और गीत गाते थे । वनके वृक्षोंको देखते हुए वे इधर-उधर बिचारने लगे । राजन् ! कला-कौशलसे सम्मन कमललोचना राधाको सम्मोऽधित करके गोपदेवीने मधुर वाणीसे कहा ॥ ३४—३६ ॥

गोपदेवी बोली—व्रजेश्वरि ! नन्दनगर यहाँसे दूर है और अब संध्या हो गयी है, अतः जाती हूँ । कल प्रातःकाल तुम्हारे पास आँऊँगी, इसमें संशय नहीं है ॥ ३७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! गोपदेवीकी यह बात सुनकर व्रजेश्वरी श्रीराधाके नयनोंसे तल्काल आँसुओंकी धारा वह चली । वे रोमाञ्च तथा हर्षाद्वामके भावसे आवृत हो करे हुए कदलीवृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ी । यह देख वहाँ सखियाँ सदाशङ्क हो गयीं और तुरंत व्यजन लेकर, पास लड़ी हो, "हवा करने लाएँ । उनके वस्त्रोंपर चन्दन-पुष्पोंके इत्र छिके गये । उस समय गोपदेवीने श्रीराधासे कहा ॥ ३८-३९ ॥

गोपदेवी बोली—राधिके ! मैं प्रातःकाल अवश्य आँऊँगी तुम चिन्ता न करो । यदि ऐसा न हो तो मुझे गाय, गोरस और अपने भाईकी सौगन्ध है ॥ ४० ॥

नारदजी कहते हैं—नूपेश्वर ! यों कहकर मायासे युक्तीका वेष धारण करनेवाले श्रीहरि राधाको धीरज बँधाकर श्रीनन्दगोकुल (नन्दगाँव) में चले गये ॥ ४१ ॥

कुपथ्य-सेवनसे पहले तो सुख मालम होता है, किंतु पीछे दूःख भोगना पड़ता है, इसी तरह सत्सङ्गसे भी पहले सुख होता है और पीछे वियोगका दुःख उठाना पड़ता है ॥ ३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! श्रीराधाकी यह बात सुनकर गोपदेवी अनमनी हो गयी । वे श्रीराधासे कुछ भी नहीं बोलीं । किसी दुःखिनीकी भाँति चुपचाप बैठी रहीं । गोपदेवीके स्विन्न जानकर श्रीराधिकाने सखियोंके साथ बिचार करके, स्नेहस्पर हो, इस प्रकार कहा ॥ ४-५ ॥

श्रीराधा बोली—गोपदेवि ! तुम अनमनी क्यों हो

गर्भी ! कल्याणि ! मुझे इसका कारण बताओ । माता, पति, ननद अथवा सातने कुपित होकर दुम्हें फळकारा तो नहीं है ! मनोहर ! किसी सौतके दोषसे या अपने पतिके वियोगसे अथवा अन्यत्र चित्त लग जानेसे तो तुम्हारा मन लिप्त नहीं हुआ है ? क्या कारण है ? महाभागे ! राता चलनेकी थकावटमें या शरीरमें कोई रोग हो जानेसे तो दुम्हें खेद नहीं हुआ है ? अपने दुःखका कारण शीघ्र बताओ । रम्भोह ! किसी कृष्णभक्त या ब्राह्मणको छोड़कर दूसरे जिस-किसीने भी तुमसे कोई कुरुतित वात कह दी हो तो मैं उसकी चिकित्सा करूँगी (उसे दण्ड ढूँगी) । यदि तुम्हारी इच्छा हो तो हाथी, घोड़े आदि बाहन, नाना प्रकारके रथ, वस्त्र, धन और विचित्र भवन मुझसे प्राप्त होंगे । धन देकर शरीरकी रक्षा करे, शरीरका भी उत्सर्ग करके लाजकी रक्षा करे तथा मित्रके कार्यकी सिद्धिके लिये तन, धन और लज्जाको भी अर्पित कर दे । धन देकर निरन्तर प्राणोंकी रक्षा करे । जो बिना किसी कारण या कामनाके निश्चलभावसे मित्रताका निर्वाह करता है, वही मनुष्य परम धन्य है । जो मैत्री स्थापित करके कपट करता है, उस स्वार्थ-साधनमें पढ़ लम्पट नटको खिकार है । राजेन्द्र ! उनका यह प्रेमर्ण बचन सुनकर गोपदेवीके रूपमें आये हुए भगवान् उन कीर्तिनन्दिनी श्रीराधासे हँसते हुए बोले ॥ ६-१३ ॥

गोपदेवीने कहा—राधे ! वरसानुगिरिकी धाटियोंमें जो मनोहर सौंकरी गली है, उसीसे होकर मैं स्वयं दही बेचने जा रही थी । इतनेमें नन्दजीके नवतरण कुमार श्यामसुन्दरने मुझे मार्गमें रोक लिया । उनके हाथमें बंशी और बैंकी छड़ी थी । उन रसिकशेखरने लाजको तिलाजालि दे, तुरंत मेरा हाथ पकड़ लिया और जोर-जोरसे हँसते हुए, उस एकान्त बनमें वे इस प्रकार कहने लो—‘भुत्तरी’ ! मैं कर देनेवाला हूँ । अतः तू मुझे करके रूपमें दहीका दान दे ।’ मैंने कहा—‘चलो, हटो । अपने-आप कर देनेवाले बने हुए दुम्हें गोरस-लम्पटको मैं कहापि दान नहीं ढूँगी ।’ मेरे इतना कहते ही उन्होंने किरपरसे दहीका मटका उतार लिया और उसे फोड़ डाला । मटका फोड़कर योड़ी-सी दही पीकर मेरी चाहर उतार ली और नन्दीश्वर शिरिकी ईशानकोणवाली दिशाकी ओर वे चल दिये । इससे मैं बहुत अनमनी हो रही हूँ । जातका खाला, काला-कदूटा रंग, न धनवान् न बीर, न सुरील और न सुरुम ! सुरील ! ऐसे पुरुषके प्रति तुमने प्रेम किया, यह ठीक नहीं । मैं कहती

हूँ, तुम आजमे शीघ्र ही उम निर्मोही कृष्णको मनसे निकाल दो (उसे सर्वथा त्याग दो) । इस प्रकार वैरभावसे युक्त कठोर बचन सुनकर वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाको बड़ा विसय हुआ । वे वाक्य और पदोंके प्रयोगके सम्बन्धमें सरस्वतीके चरणोंका स्मरण करती हुई उनसे बोलीं ॥ १४-१९ ॥

श्रीराधाने कहा—सखी ! जिनकी प्राप्तिके लिये ब्रह्मा और शिव आदि देवता अपनी उत्कृष्ट योगरीतिसे पञ्चामिसेवनपूर्वक तप करते हैं; दत्तात्रेय, शुक, कपिल, आसुर और अङ्गिरा आदि भी जिनके चरणरविन्दीोंके मकरन्द और परागका सादर स्वर्ण करते हैं; उन्हीं अजन्मा, परिपूर्ण देवता, लीलावतारधारी, सर्वजनदुःखहारी, भूतल-भूरिभार-हरणकारी तथा सत्पुरुषोंके कल्याणके लिये यहाँ प्रकट हुए आदिपुरुष श्रीकृष्णकी निन्दा कैसे करती हो ? तुम तो बड़ी ढीठ जान पड़ती हो । ज्वाले सदा गौओंका पालन करते हैं, गोरजकी गङ्गामें नहाते हैं, उसका स्वर्ण करते हैं तथा गौओंके उत्तम नामोंका जप करते हैं । इतना ही नहीं, उन्हें दिन-शत गौओंके सुन्दर मुखका दर्शन होता है । मेरी समझमें तो इस भूतलपर गोप-जातिसे बढ़कर दूसरी कोई जाति ही नहीं है । तुम उसे काला-कलूटा बताती हो; किंतु उन श्यामसुन्दर श्रीकृष्णकी श्याम-विभासे विलसित सुन्दर कलाका दर्शन करके उन्हींमें मन लग जानेके कारण भगवान् नीलकण्ठ औरोंके सुन्दर मुखको छोड़कर जटाजूट, हालाहल विष, भस्त्र, कपाल और सर्प धारण किये उस काले-कलूटेके लिये ही पागलोंकी भाँति त्रजमें दौड़ते फिरते हैं ! स्वर्गलोक, सिद्ध, मुनि, यक्ष और मरुदग्णोंके पालक तथा समस्त नरों, किनरों और नागोंके स्वामी भी निरन्तर भक्तिभावसे जिनके चरणरविन्दीोंमें प्रणिपात करके उत्कृष्ट लक्ष्मी एवं ऐश्वर्यको पाकर निश्चय ही उन्हे बलि (कर) समर्पित किया करते हैं, उनको तुम निर्धन कहती हो ? बत्तासुर, अष्टासुर, कालियनाग, बकासुर, यमलाञ्जुन वृक्ष, तृणावर्त, शक्टासुर और पूतना आदिका वध (सम्भवतः तुम्हारी दृष्टिमें उनकी बीरताका परिचायक नहीं है) ! मेरा भी ऐसा ही मत है ।) उन मुरारिके लिये क्या यथा देनेवाला हो सकता है, जो कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड-समूहोंके एकमात्र स्त्री और संहारक हैं ! उन पुरुषोंतमके लिये भक्तसे बढ़कर कोई प्रिय हो, ऐसा शात नहीं होता । शंकर, ब्रह्मा, लक्ष्मी तथा रोहिणीनन्दन बल्यमजी भी उनके लिये भक्तोंसे अधिक प्रिय नहीं हैं । वे भक्तिसे बढ़चित्त होकर भक्तोंके पीछे-पीछे

चलते हैं । अहं श्रीकृष्ण केवल सुशील ही नहीं, समस्त लोकोंके सुजन-समुदायके चूडामणि हैं । वे भक्तोंके पीछे चलते हुए अपने रोम-रोममें स्थित लोकोंको पवित्र करते रहते हैं । वे परमात्मा अपने भक्तजनोंके प्रति सदा ही अभिहृति सूचित करते रहते हैं । अतः अत्यन्त भजन करनेवालोंको भगवान् मुकुन्द मुक्ति तो अनायास दे देते हैं, किंतु उच्चम भक्तियोग कदापि नहीं देते; क्योंकि उन्हें भक्तिके बन्धनमें बँधे रहना पड़ता है ॥ २०-२७ ॥

गोपवेदी बोली—श्रीराधे ! तुम्हारी बुद्धि बहुस्पतिका भी उपहास करती है और वाणी अपने प्रबन्धन-कौशलसे वेदवाणीका अनुकरण करती है । किंतु देवि ! तुम्हारे बुलानेमें यदि परमेश्वर श्रीकृष्ण सचमुच यहाँ आ जायें और तुम्हारी बातका उत्तर दें, तब मैं मान कूँगी कि तुम्हारा कथन सच है ॥ २८ ॥

श्रीराधा बोली—मुझु ! यदि परमेश्वर श्रीकृष्ण मेरे बुलानेसे यहाँ आ जायें, तब मैं तुम्हारे प्रति क्ष्या करूँ, यह तुम्हीं बताओ । परंतु अपनी ओरसे इतना ही कह सकती हूँ कि यदि मेरे समरण करनेसे बनमालीका शुभागमन नहीं हुआ तो मैं अपना सारा धन और यह भवन तुम्हें दे दूँगी ॥ २९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर श्रीराधा उठकर श्रीनन्दनन्दनको नमस्कार करके आसनपर बैठ गयीं और उनका ध्यान करने लगीं । उस समय उनके नेत्र ध्यान-

इस प्रकार श्रीगर्भसंहितामें बृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'श्रीराधाको श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन' नामक अठारहवाँ ध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

रत होनेके कारण निश्चल हो गये थे । श्रीहरिने देखा—'प्रियतमा श्रीराधा मेरे दर्शनके लिये उत्कृष्टित हैं । इनके अङ्ग-अङ्गमें स्वेद (पसीना) हो आया है और मुखपर ऑसुओंकी धारा वह चली है ।' यह देख अपना पुष्पस्त्रप धारण करके भक्तवत्सल श्रीकृष्ण सखियोंके देखते-देखते सहसा वहाँ प्रकट हो गये और प्रसन्नित हो बनगर्जनके समान गम्भीर वाणीमें श्रीराधासे बोले ॥ ३०-३२ ॥

श्रीकृष्णने कहा—रम्भोर ! चन्द्रबदने ! ब्रजसुन्दरी-शिरोमणे ! नूतनयौवनशालिनि ! मानशीले ! प्रिये राधे ! तुमने अपनी मधुरवाणीमें मुझे बुलाया है, इसलिये मैं तुरंत यहाँ आ गया हूँ । अब आँख खोलकर मुझे देखो । ल्लने ! 'प्रियतम कृष्ण ! आओ'—यह बाक्य यहाँसे प्रकट हुआ और मैंने सुना । फिर उसी क्षण अपने गोकुल और गोपहन्दको छोड़कर, बंशीवट और यमुनाके तटसे वेगपूर्वक दौड़ता हुआ तुम्हारी प्रसन्नताके लिये यहाँ आ पहुँचा हूँ । मेरे आते ही कोई सखीरूपधारिणी यक्षी, आसुरी, देवाङ्गना अथवा किन्नरी, जो कोई भी मायाविनी तुम्हें छलनेके लिये आयी थी, यहाँसे चल दी । अतः तुम्हें ऐसी नाशिनपर विश्वास ही नहीं करना चाहिये ॥ ३३-३५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—तदनन्तर श्रीराधा श्रीहरिको देखकर उनके चरणकम्लोंमें प्रणत हो परमानन्दमें निमग्न हो गयीं । उनका मनोरथ तत्काल पूर्ण हो गया । श्रीकृष्णचन्द्र-के ऐसे अद्भुत चरित्रोंका जो भक्तिभावसे श्रवण करता है, वह मनुष्य कृतार्थ हो जाता है ॥ ३६-३७ ॥

उच्चीसवाँ अध्याय

रातकीडाका वर्णन

राजा बहुलाश्वने पूछा—देवर्ण ! श्रीराधाको दर्शन दे, उसके प्रेमकी परीक्षा करके, भगवान् श्रीकृष्णने अपनी लीलाशक्तिके द्वारा आगे चलकर कौन-सी लीला प्रकट की ! ॥ १ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! माधव (वैशाख) मासमें माघवी लक्षाओंसे व्यास बृन्दावनमें रासेश्वर माधवने त्वयं रासका आरम्भ किया । वैशाख मासकी कृष्णपक्षीया पक्षमीको जब सुन्दर चन्द्रेश्वर हुआ, उस समय मनोहर

इयमसुन्दरने यमुनाके तटवत्तों उपवनमें रासेश्वरी श्रीराधाके साथ रास-विहार किया । मिथिलेश्वर । इसके पूर्व गोलोकसे जिस भूमिका पृथ्वीपर अवतरण हो चुका था, वह सबकी-सभ तत्काल सुवर्ज तथा पश्चरागमणिते मणित हो गयी । बृन्दावन भी दिव्यरूप धारण करके, कामपूरक कल्पवृक्षों तथा माधवी लक्षाओंसे लमलंकृत हो, अपनी शोभासे नन्दनवनको भी तिरस्कृत करने लगा । राजन् ! रसोंके सौवानों और सुखर्ण-निर्मित तोलिकाओं (गुपटियों)से मणित तथा ईसों और कमल

आदि के पुण्योंसे व्याप्त यमुना नदीकी अपूर्व शोभा हो रही थी। शिरिराज गोवर्धन गजराजके समान शोभा पाता था। जैसे गजराजके गणस्थलमें मदकी धाराएँ झरती हैं और उसपर भग्नोंकी भीड़ लगी रहती है, उसी प्रकार शिरिराजकी घाटियोंसे जलके निर्षर प्रवाहित होते थे और सुन्दरी दरियों (कन्दराओं) तथा भ्रमरियोंसे वह पर्वत व्याप्त था। वहाँ निमिज्ज धातुओंकी जगह नाना प्रकारके रस्ते उद्घासित होते थे। उसके रस्तमय शिखरोंकी दिव्य दीति तथा ओर प्रकाशित हो रही थी। वह पक्षियोंके कलरबसे मुखरित तथा लता-पुष्पोंसे मनोहर जान पड़ता था। शिरिराजके चारों ओर समस्त निकुञ्ज दिव्यरूप धारण करके सुशोभित होने लगे। समा-मण्डपोंसे मणिहत बीथियाँ, प्राङ्गण और खंभोंकी पङ्क्तियाँ उनकी शोभा बढ़ाने लगीं। नरेश्वर! फ़हराती हुई दिव्य पताकाएँ, सुवर्णमय कलश तथा पुष्पमय मन्दिरोंमें विद्यमान इवेतारण पुष्पदल उन निकुञ्जोंको विभूषित कर रहे थे। उन सबमें वसन्त शृङ्खुकी माझुरी भरी थी। वहाँ कोकिल और सारस अपने मीठे घोल सुना रहे थे। जहाँ-तहाँ सब ओर कबूतर और मोर आदि पक्षी कलरब करते थे। श्रीराधा-कृष्णकी पुण्यमयी गाथाका गान करते हुए दूट पङ्कनेबाले मधुमत्त भ्रमरोंसे सभी कुञ्ज विशेष शोभा पाते थे। यमुना-पुलिनपर सहस्रदल कमलोंके पुष्प-परागको बारंबार बिखेरता हुआ शीतल-मन्द-सुगन्ध समीर प्रवाहित हो रहा था॥ २—१६॥

इसी समय बहुत-सी गोपाङ्गनाएँ श्रीकृष्णकी सेवामें उपस्थित हुईं। कोई गोलोकनिवासिनी थीं, कोई शास्त्र सजानेमें सहयोग करनेवाली थीं। कोई शृङ्खलार धारण करनेकी कलामें कुशल थीं, तो कोई द्वारपालिका थीं। कुछ गोपियाँ 'पार्षद' नामधारिणी थीं, कुछ छत्र-चैत्र धारण करनेवाली सखियाँ थीं और कुछ श्रीवृन्दावनकी रक्षामें नियुक्त थीं। कुछ गोवर्धनवासिनी, कुछ कुञ्ज-विभायिनी और कुछ निकुञ्जनिवासिनी थीं। कोई नृत्यमें निपुण और कोई वाद-वादनमें प्रवीण थीं। नरेश्वर! उन सबके मुख अपने सौन्दर्य-माझुरोंसे चन्द्रमाको भी लजित करते थे। वे सब-की-सब किशोरावस्थावाली तरुणियाँ थीं। इन सबके बारह यूथ श्रीकृष्णके, समीप आये। इसी प्रकार साक्षात् यमुना भी अपना यूथ लिये आयी। उनके अङ्गोंपर नीलबल शोभा पा रहे थे। वे रस्तमय आभृष्णोंसे विभूषित तथा इयामा (सोलह वर्षकी अवस्था अथवा इयाम कान्तिसे

मुक्त) थीं। उनके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलको लिरकृत कर रहे थे। उन्हींकी तरह जहुनन्दिनी गङ्गा भी यूथ बाँधकर वहाँ आ पहुँची। उनकी अङ्ग-कान्ति इवेतगौर थी। वे इवेत बल तथा मोतीके आभृष्णोंसे विभूषित थीं। जैसे ही साक्षात् रमा भी अपना यूथ लिये आयी। उनके भी अङ्गोंपर अरुण बल सुशोभित थे। चन्द्रमाकी-सी अङ्ग-कान्ति अङ्गोंपर मन्द-मन्द हासकी छटा तथा विभिन्न अङ्गोंमें पश्चरागमणिके बने हुए अलंकार शोभा दे रहे थे॥ १४—२०॥

इसी तरह कृष्णपत्नीके नामसे अपना परिचय देनेवाली मधुमाधवी (वसन्त-लहसी) भी वहाँ आयी। उनके साथ भी सखियोंका समूह था। वे सब-की-सब प्रफुल्ल कमलकी-भी अङ्ग-कान्तिवाली, पुष्पहारमें अलंकृत तथा सुन्दर बलोंसे सुशोभित थीं। इसी रीतिसे साक्षात् विरजा भी सखियोंका यूथ लिये वहाँ आयी। उनके अङ्गोंपर हरे रंगके बल शोभा दे रहे थे। वे गौरवर्णा तथा रस्तमय अलंकारोंसे अलंकृत थीं। ललिता, विशाला और लक्ष्मीके भी यूथ वहाँ आये। इसी प्रकार अष्टसखियोंके, घोड़श सखियोंके तथा बस्तीस सखियोंके सम्पूर्ण यूथ भी वहाँ आ पहुँचे। राजत्। भगवान् इयामसुन्दर श्रीकृष्ण उन युवतीजनोंके साथ रासमण्डलकी रङ्गभूमिमें बड़ी शोभा पाने लगे॥ २१—२४॥

जैसे आकाशमें चन्द्रमा ताराओंके साथ सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार श्रीवृन्दावनमें उन सुन्दरियोंके साथ श्रीकृष्णचन्द्रकी शोभा हो रही थी। उनकी कमरमें पीताम्बर कसा हुआ था। वे नटवेषमें सबका मन मोहे लेते थे। उनके हाथमें बैतकी छड़ी थी। वे बंशी बजाकर उन गोप-सुन्दरियोंकी प्रीति बढ़ा रहे थे। माथेपर मोरपंखका मुकुट, बक्षःस्थलपर पुष्पहार एवं बनमाला तथा कानोंमें कुण्डल—ये ही उनके अलंकार थे। रीतिके साथ रतिनाथकी जैसी शोभा होती है, उसी प्रकार रासमण्डलमें श्रीराधाके साथ राधाबलभकी हो रही थी। इस प्रकार सुन्दरियोंके अलापसे संयुक्त होकर साक्षात् श्रीहरि अपनी प्रिया राधाके साथ यमुनाके पुण्य-पुलिनपर आये। उन्होंने अपनी प्राणबलभाका हाथ अपने करकमलमें ले रखा था। यमुनाके मनोहर तीरपर उन सुन्दरियोंके साथ इयामसुन्दर योही देर बैठे रहे॥ फिर

* वृन्दावने यमाऽङ्गवासे चन्द्रस्तारागणेवैषा।
पीताम्बासः परिक्षो नटवेषो मनोहरः॥
बैतक्षुदावदयू वंशी गोपीना श्रीतिमावद्यु।
मनूरपक्षुम्भीकिः सर्वा कुण्डलमणिणः॥

मधुर-मधुर बातें करते हुए अपने प्रिय बृन्दाविपिनकी शोभा निहारने लगे ॥ २५—२९ ॥

वे श्रीराधाके साथ चलते और हास-बिनोद करते हुए कुख्यनमें बिचरने लगे । एक कुञ्जमें प्रियाका हाथ छोड़कर वे तुरंत कही छिप गये । किंतु एक शाखाकी ओटमें उन्हें खड़ा देख श्रीराधाने माधवको अविलम्ब जा पकड़ा । फिर श्रीराधा उनके हाथसे छूटकर पग-पगपर नूपुरोंका कंकाल प्रकट करती हुई भारी और माधवके देखते-देखते कुञ्जमें छिपने लगा । माधव हरि ज्यों-ही दौड़कर उनके स्थानपर पहुँचे, त्यों ही गधा वहांमें अन्यत्र चली गया । बृक्षोंके पास हाथभरका दूरीपर इधर-उधर वे भागने लगा । उस समय श्रीराधाके साथ इशामसुन्दर हरिकी उसी तरह शोभा हो रही थी, जैसे सुवर्णलतासे इशाम तमालकी, चपलासे घनमण्डलकी तथा भोजेकी सानमें नीलाचलकी होती है । बृन्दावनमें रामकी रङ्गस्थलीमें रातके साथ कामदेवकी भाँति विश्वमोहिनी श्रीराधाके साथ मदनमोहन श्रीकृष्ण सुशोभित हो रहे थे । जितनी ब्रजसुन्दरियों वहा विद्यमान थीं, उतने ही रूप धारण करके रङ्गभूमिमें नटके समान नटवर श्रीकृष्ण रासरङ्गमें वृत्त करने लगे । उनके साथ सम्मूर्ण मनोहर गोपसुन्दरियों भा गाने और मृत्यु करने लगी । अनेक कृष्णचन्द्रोंके साथ वे गोपसुन्दरियों ऐसी जान पढ़ती थीं,

इस प्रकार श्रीगर्व संहितामें बृन्दावनवधकं अन्तर्गत 'रासलीला' नामक उक्तसर्वां अध्याय पूरा हुआ ॥ ५० ॥

बीसवाँ अध्याय

श्रीराधा और श्रीकृष्णके परस्पर भृङ्गार-धारण, रास, जलविहार एवं बनविहारका वर्णन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर मनोहर श्यामसुन्दर श्रीहरि जलकीड़ा समाप्त करके समस्त गोपालानाओंके साथ गोवधनं पर्वतम् गये । उस पर्वतकी कन्दरामें रत्नमयी भूमिपर रासशर्मा श्रीराधाके साथ भाथात् श्रीहरिने रासमृत्यु किया । वहां पुष्टोंसे सुमजित रथ्य मिहासन-पर दोनों प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधव विरजमान हुए, मानो किसी पर्वतपर विद्युत-सुन्दरी और श्याम-घन एक साथ सुशोभित हो रहे हों । वहाँ सब सखियोंने बड़ी प्रसन्नताके

साथ स्वामिनी श्रीराधाका शृङ्गार किया । चन्दन, केसर, कस्तूरी आदिसे तथा महावर, इत्र, अरगजा और काजल तथा सुगन्धित पुष्ट-रसोंसे कीर्तिकुमारी श्रीराधाकी विधिपूर्वक अर्चना करके साक्षात् श्रीयमुनाने उन्हें नूपुर धारण कराया । जहनगिदनी गङ्गाने भजीर नामक देव्य भूषण अर्पित किया । श्रीरमाने कटिप्रदेशमें किञ्चिणी-जाल पहिनाया । श्रीमध्य-माधवीने कण्ठमें हार अर्पित किया । विरजाने कोटि चन्द्रमाओंके समान उज्ज्वल एवं सुन्दर चन्द्रहार धारण

रथवा शुशुभे रसे यथा रत्या रतीश्वरः । एवं गायन् हरिः साक्षात् सुन्दरीरागसंहृतः ॥

वधुनारुदिनं पुण्यमायदी रथया युतः । गृहीत्वा इस्तपद्मेन पदमामं लप्रियाकरम् ॥

निवसाद हरिः कृष्णार्तीरे नीरमनोहरे । (गग०, बृन्दावन० १९ । २५—२६)

कराया। ललिताने मणिमणित कञ्जुकी पहनायी। विशालाने कष्ठभूषण धारण कराया। चन्द्रननाने रत्नमयी मुद्रिकाएँ अपूर्ण कीं। एकादशीकी अधिष्ठात्री देवीने श्रीराधाको रत्न-जटित दो कंगन भेट किये। शतचन्द्रनना सखीने रत्नमय शुभकञ्जण (बाजूबंद, विजायठ, जोसन और सविया आदि) दिये। साक्षात् मधुमतीने दो अङ्गद भेट किये; जिनमें जडे हुए रत्न उद्दीप हो रहे थे। बन्दीने दो ताटक (तरकियाँ) और सुखदायिनीने दो कुण्डल दिये। सखियोंमें प्रधान आनन्दीने श्रीराधाको भालतोरण भेट किया। पद्माने चन्द्रकलाके समान चमकनेवाली माथेकी बैंकी (टिकुली) दी। सती पद्मावतीने नासिकामें मोतीकी बुलाक पहना दी, जो शोड़ी थोड़ी हिलती रहती थी। राजन्! सुन्दरी चन्द्रकान्ता सखीने श्रीराधाको ग्रातःशालिक सूर्यकी कान्तिसे युक्त मनोहर शशफल अपूर्ण किया। सुन्दरीने चूडामणि तथा प्रहर्षिणीने रत्नमयी वैणी प्रदान की। बृन्दावनाधीश्वरी बृन्दादेवीने श्रीराधाको करोड़ों विजलियोंके समान विघोतमान चन्द्र-सूर्य-नामक दो आभूषण भेट किये। इस प्रकार शृङ्खर धारण करके श्रीराधाका रूप दिव्य व्योतिमे उद्घासित हो उठा ॥१—१४॥

राजन्! उनके साथ पिरिराजगर श्रीहरि दक्षिणाके साथ यशनारायणकी भौति सुशोभित हुए। मिथिलेश्वर! जहाँ रासमें श्रीराधाने शृङ्खर धारण किया, गोष्ठवनं पर्वतपर वह स्थान 'शृङ्खर-मण्डल'के नामसे विख्यात हो गया। तदनन्तर श्रीकृष्ण अपनी प्रिया गोपसुन्दरियोंके साथ चन्द्रमरेवरपर गये। उसके जलमें उन्होंने दृथिनियाँके साथ गजराजकी भौति विहार किया। वहाँ साक्षात् चन्द्रमाने आकर स्वामिनी श्रीराधा और श्यामसुन्दर श्रीहरिको दो सुन्दर चन्द्रकान्तमणियाँ तथा दो सहस्रदल कमल भेट किये। तत्पश्चात् साक्षात् श्रीहरि कृष्ण बृन्दावनकी शोभा निहारते हुए लला-बल्लरियोंसे व्यास बहुलवनमें गये। वहाँ सम्पूर्ण सलीजनोंको पतीनेसे भीगा देख वंशीधरने 'भेषमल्लार' नामक राग गाया। फिर तो वहाँ उसी समय बादल घिर आये और जलकी कुहारें बरसाने लगे ॥१५—२०॥

विदेहराज! उसी समय अपनी सुगन्धसे सबका मन मोह लेनेवाली शीतल वायु चलने लगी। उससे समस्त गोपाङ्गनाओंको बहा सुख मिला। वे वहाँ एकत्र सम्मिलित हो उत्तरसे श्रीमुरारिका यश गाने लगीं। वहाँसे राधाबल्लभ श्रीकृष्ण तालवनको गये। उस बनमें बजक्षूष्टियोंसे घिरे हुए श्रीहरिने मण्डलकार रासनृत्य आरम्भ किया। उस नृस्मये

समस्त गोपसुन्दरियाँ पतीवा-पतीना हो गयीं और व्याससे व्याकुल हो उठीं। उन सबने हाथ जोड़कर रासमण्डलमें रासेश्वरसे कहा ॥ २१—२४॥

गोपियाँ बोलीं—देव! ! गङ्गाजी तो यहाँसे बहुत दूर है और हमलोगोंको नडे जोरसे प्यास लगने लगी है। हरे ! इम यह भी चाहती हैं कि आप यहीं दिव्य मनोहर रास करें। इम आपके साथ यहीं जलविहार और जलपान करेंगी। आप इस जगत्के सृष्टि, पालन तथा संहारके भी नायक हैं ॥ २४—२५॥

श्रीनारदजी कहते हैं—यह सुनकर श्रीकृष्णने बैतकी छढ़ीसे भूमिपर ताङ्गन किया। इससे वहाँ तन्काल पानीका स्रोत निकल आया, जिसे 'वेत्रगङ्गा' कहते हैं। उसके जलका सर्वा करनेमात्रसे ब्रह्महत्या दूर हो जाती है। मिथिलेश्वर ! उस वेत्रगङ्गामें स्नान करके कोई भी मनुष्य गोलोन-धाममें जानेका अधिकारी हो जाता है। मदनमोहनदेव भगवान् श्रीकृष्ण हरि वहाँ श्रीराधा तथा गोपाङ्गनाओंके साथ जलविहार करके कुमुदवनमें गये, जो लता-बैंकोंके जालमें मनोहर जान पड़ता था। वहाँ भ्रमरोंकी ध्वनि भव और गूँज रही थी। उस बनमें भी सखियोंके साथ श्रीहरिने रास किया। वहाँ श्रीराधाने ब्रजाङ्गनाओंके सामने नामा प्रकारके दिव्य पुष्पोद्धारा श्रीकृष्णका शृङ्खार किया। चम्पाके फूलोंमें रुष्टि-प्रदेशको अलंकृत किया। सुनहरी जहीके पुष्पोद्धारा निर्मित बाजूबंद धारण कराया। सहस्रदल कमलकी कर्णिकाओंको कुण्डलका रूप देकर उसमें बानोंकी शोभा बढ़ायी गयी। मोहिनी, भालिनी, कुन्द और केतार्काके फूलोंमें निर्मित हास श्रीकृष्णने धारण किया। कदम्बके फूलोंमें शोभायमान किरीट और कडे धारण करके श्रीहरिके श्रीअङ्ग और भी उद्घासित हो उठे थे। मन्दार-पुष्पोंका उत्तरीय (दुपट्टा) और कमलके फूलोंकी छढ़ी धारण किये प्रभु श्यामसुन्दर बड़ी शोभा पांचे। तुलसी-भजरीगे युक्त बनमाला उन्हे विभूषित कर रही थी। राजन् ! अपनी प्रियतमाके द्वारा इस प्रकार शृङ्खर धारण कराये जानेपर श्रीकृष्ण उस कुमुदवनमें हर्षोत्कुल मूर्तिमाल् वस्तकी भौति शोभा पाने लगे ॥ २६—३४॥

मुदङ्ग, बीणा, बृशी, मुरचंग, झाँझ और करताल आदि बाद्योंके साथ गोपियाँ ताली वजाती हुई मनोहर गीत गाने लगीं। भैरव, मेषमल्लार, दीपक, मालकोश, श्रीराग और हिन्दोल राग—इन सबको पृथक्-पृथक् गाकर आठ ताल,

तीन ग्राम और सात स्वर्णोंसे तथा हाव-भावसमन्वित नाना प्रकारके रमणीय वृत्त्योंसे कटाक्ष-विक्षेपपूर्वक ब्रजगोपिकाएँ श्रीराधा और श्यामसुन्दरको रिक्षाने लगीं। वहाँसे मधुर गीत गाते हुए माधव उन सुन्दरियोंके साथ मधुवनमें गये। वहाँ पहुँचकर स्वयं रामेश्वर श्रीकृष्णने राजेश्वरी श्रीराधाके साथ रासकीड़ा की। बैशाख मासके चन्द्रमाकी चाँदनीमें प्रकाश-

इस प्रकार श्रीगं-संहितामें बृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'रासकीड़ा'नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

इक्षीसवाँ अध्याय

गोपाङ्गनाओंके साथ श्रीकृष्णका वन-विहार, रास-कीड़ा; मानवती गोपियोंको छोड़कर श्रीराधाके साथ एकान्त-विहार तथा मानिनी श्रीराधाको भी छोड़कर उनका अन्तर्धान होना

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर ! इस प्रकार रमणीय कुमदवनमें मालती-पुण्योंके सुन्दर बनमें; आम, नारंगी तथा नींबुओंके सघन उपवनमें; अनार, दाल और बादामोंके विपिनमें; कदम्ब, श्रीफल (बेल) और कुट्ठोंके काननमें; बरगद, कटहल और पीपलोंके सुन्दर बनमें; तुलसी, कोविदार, केतकी, कदली, करील-कुज्जा, बहुल (मौलिश्री) तथा मन्दारोंके मनोहर विपिनमें विचरते हुए, श्यामसुन्दर ब्रज-वधुटियोंके साथ कामवनमें जा पहुँचे ॥ १-४ ॥

वहाँ एक पर्वतपर श्रीकृष्णने मधुर म्बरमें चाँसुगी बजायी। उसकी मोहक तान सुनकर ब्रजसुन्दरियों मूर्च्छित और चिह्नित हो गयीं। राजन् ! आकाशमें देवताओंके साथ विमानोपर बैठी हुई देवाङ्गनाएँ भी मोहित हो गयीं। कामदेवके वाणोंसे उनके अङ्ग-अङ्ग विभ गये तथा उनके नीचवनध ढीले होकर खिसकने लगे। स्थावरोंसहित चारों प्रकारके जीव-समुदाय मोहको प्राप्त हो गये, नदियों और नदोंका पानी स्थिर हो गया तथा पर्वत भी पिघलने लगे। कामवनकी पहाड़ी श्यामसुन्दरके चरणनिहोंगी युक्त हो गयी, जिसे 'चरण पहाड़ी' कहते हैं। उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है ॥ ५-८ ॥

तदनन्तर राधाबल्लभ श्रीकृष्णने नन्दीश्वर तथा बहुत्सानुगिरियोंके तट-प्रान्तमें रास-बिलास किया। मिथिलेश्वर ! वहाँ गोपियोंको अपने सौभाग्यपर बड़ा अभिमान हो गया, तः श्रीहरि उन सबको वहाँ छोड़ श्रीराधाके साथ अदृश्य हो गये। मिथिलानरेश ! उस निर्जन बनमें श्रीकृष्णके

मान सौगन्धिक कहार-कुसुमोंसे जरते हुए परागोंसे पूर्ण तथा मालतीकी सुगन्धसे वासित बायु चल रही थी और चारों ओर माधवी लताओंके फूल खिल रहे थे। इन सबसे सुशोभित निर्जन बनमें गोपाङ्गनाओंके साथ श्रीकृष्ण उसी प्रकार रम रहे थे, जैसे नन्दनवनमें देवराज इन्द्र विहार करते हैं ॥ ३५—४१ ॥

इस प्रकार श्रीगं-संहितामें बृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'रासकीड़ा'नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

विना समस्त गोपाङ्गनाएँ विरहकी आगमें जलने लगीं। उनके नेत्र आँसुओंमें भर गये और वे चकित हिरनियोंकी भाँति इधर उधर भटकने लगीं। जैसे बनमें हाथीके विना हथिनियाँ और कुरुके विना कुररियाँ व्यथित होकर कसण-कन्दन करनी हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णको न देखकर व्यथित तथा विरहमें अत्यन्त व्याकुल हो ब्रजाङ्गनाएँ फूट-पूटकर रोने लगीं। राजन् ! नरेश्वर ! वे सब की-सन एक साथ मिलकर तथा पृथक् पृथक् दल बनाकर बन बनमें जारी और उन्मत्सकी तरह बृक्षों तथा लतामूर्छोंसे पूलतां 'तरुओं नथा बहरियो ! शीघ्र बनाओ, हमारे प्यारे नन्दनन्दन कहों जालिये हैं !' अपनी बाणीमें 'श्रीकृष्ण ! श्रीकृष्ण !' कहकर पुकारती थीं। उनका चित्त श्रीकृष्ण-चरणारविन्दोंमें ही लगा हुआ था। अतः वे सब अङ्गनाएँ श्रीकृष्णमूर्त्ता हो गयीं—ठाक उर्मा तरह जैसे भृङ्गके द्वारा बंद किया हुआ काँड़ा उमीके चिन्तनसे भृङ्गरूप हो जाता है। इसने कोई आश्वर्यकी बात नहीं है। श्रीकृष्णकी चरणगाढ़ाम-चिह्नित स्थानपर पहुँचकर गोपियाँ श्रीपादुकाब्ज-की शरणमें गयीं। तदनन्तर भगवानकी ही कृपामें उसके चरणनिहोंगे अर्चन और दर्शनसे गोपियोंको भगवत्तरणनिहोंमें अलंकृत भूमिका विशेषरूपसे दर्शन होने लगा ॥ ९-१६ ॥

बहुलाश्वने पूछा—प्रभो ! राधाबल्लभ श्यामसुन्दर अन्य गोपियोंको छोड़कर श्रीराधिकाके साथ कहाँ चले गये ? किर गोपियोंको उसका दर्शन कैसे हुआ ? ॥ १७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधिकाके साथ संकेतवटके नीचे चले गये और वहाँ प्रियतमा श्रीराधाके केशपादोंकी बैणीमें पुष्परचना करने लगे। श्रीकृष्णके नीले केशोंमें श्रीराधिकाने बकता स्थापित की अर्थात् अपने केशरचना-कौशलसे उनके केशोंको बुँधराला दिया और उनके पूर्णनन्दोपम मुख्यमण्डलमें उन्होंने विचित्र पत्रावलीकी रचना की। इस प्रकार परस्पर शक्तार करके श्रीकृष्ण प्रियाके साथ भद्रबन, महान् खदिरबन, विलवन और कोकिलावनमें गये। उधर श्रीकृष्णको खोजता हुई गोपियोंने उनके चरणचिह्न देखे। जौ, चक्र, घ्वजा, छत्र, स्वस्तिक, अकुश, विन्दु, अष्टकोण, बज्र, कमल, नीलदाढ़ी, घट, मस्त्य, त्रिकोण, बाण, ऊर्ध्वरेखा, धनुष, गोखुर और अर्धचन्द्रके चिह्नोंसे सुशोभित महात्मा श्रीकृष्णके पदचिह्नोंका अनुसरण करती हुई गोपाङ्कनाएँ उन चिह्नोंकी धूलि ले लेकर अपने मस्तकपर रखतीं और आगे बढ़ती जाती थीं। फिर उन्होंने श्रीकृष्णके चरणचिह्नोंके साथ-भाथ दूसरे पदचिह्न भी देखे। वे घ्वजा, पद्म, छत्र, जौ, ऊर्ध्वरेखा, चक्र, अर्धचन्द्र, अकुश और विन्दुओंसे शोभित थे। विदेहराज ! लवङ्गलता, गदा, पाठीन (मस्त्य), शङ्ख, गिरिराज, शक्ति, सिंहासन, रथ और दो विन्दुओंके चिह्नोंसे विचित्र शोभाशाली उन चरणचिह्नोंको देखकर गोपियों परस्पर कहने लगीं—‘निष्प्रय ही नन्दनन्दन श्रीराधिकाको साथ लेकर गये हैं।’ श्रीकृष्ण-चरणारविन्दोंके चिह्न निहारती हुई गोपियाँ कोकिलावनमें जा पहुँचीं। १८-२७॥

उन गोपाङ्कनाओंको लोलाहल सुनकर माधवने श्रीराधासे कहा—‘कोटि चन्द्रमाओंको अपने सौन्दर्यसे तिरस्कृत करनेवाली प्रिये श्रीराधे ! सब ओरसे गोपिकाएँ आ पहुँचीं। अब वे तुम्हें अपने साथ ले जायेंगी। अतः यहाँसे जल्दी निकल चलो।’ उस समय रूप, यौवन, कौशल्य (चातुरी) और शीलके गर्वसे गरबीली मानवती राधा रमापतिसे बोलीं। २८-३०॥

श्रीराधाने कहा—‘प्यारे ! मैं कभी राजभवनसे बाहर

इस प्रकार श्रीर्ग-संहितामें बृन्दावनस्त्रके अन्तर्गत ‘शतकीका’ नामक इक्षीसवाँ अध्याय पूरा हुआ। २१॥

नहीं निकली थी, किंतु आज अधिक चलना पड़ा है; अतः अब एक पग भी चलनेमें समर्थ नहीं हूँ। देखते नहीं, मैं तुकुमारी राजदुमारी पसीना-पसीना हो गयी हूँ ? फिर मुझे कैसे ले चलोगे ! ॥ ३१ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—यह बचन सुनकर राधिकावल्लभ श्रीकृष्ण श्रीराधाके ऊपर अपने दिव्य पीताम्बरसे इवा करने लगे। फिर उनका हाथ थामकर बोले—‘श्रीराधे ! अब तुम अपनी मौजसे धीरे-धीरे चलो।’ उस समय श्रीकृष्णके आरंभार कहनेपर भी श्रीराधाने अपना पैर आगे नहीं बढ़ाया। वे श्रीहरिकी ओर पीठ करके सुपचाप लड़ी रहीं। तब संतोंके प्रिय श्रीकृष्णने मानिनी प्रिया राधासे कहा ॥ ३२-३४ ॥

श्रीभगवान् बोले—मानिनि ! यहों अन्य गोपियाँ भी मुझसे मिलनेकी हार्दिक कामना रखती हैं, तथापि उन्हें छोड़कर मैं मनसे तुम्हारी आराधना करता हूँ; तुम्हें जो प्रिय हो, वही करता हूँ। राधे ! मेरे कंधेपर चढ़कर तुम सुखपूर्वक दीप यहाँसे चलो ॥ ३५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर ! उनके यों कहनेपर प्रियाने जब उनके कंधेपर चढ़ना चाहा, तभी स्वच्छन्द गतिवाले ईश्वर प्रियतम श्रीकृष्ण वहाँसे अन्तर्धान हो गये। राजेन्द्र ! फिर तो कीर्तिकुमारी राधाका मान उत्तर गया। वे उस महान् कोकिलावनमें भगवद्-विरहसे व्याकुल हो उत्स्वरसे रोदन करने लगीं। ३६-३७ ॥

मिथिलेश्वर ! उसी समय गोपियोंके धूथ वहों आ पहुँचे। श्रीराधाका अत्यन्त दुःखजनक रोदन सुनकर उन्हें बड़ी दया और लज्जा आयी। कोई अपनी स्वामिनीको पुष्प मकरन्दों (इत्र आदि) से नहलाने लगीं; कुछ चन्दन, अशुद्ध, कस्तूरी और केत्रसे मिथित जलके छाटि देने लगीं; कुछ व्यजन और चौंबर हुलाकर अङ्गोंमें इवा देने लगीं तथा अनुनय-विनयमें कुशल नाना बचनोंद्वारा परादेवी श्रीराधाको धीरज बँधाने लगीं। मैथिलेन्द्र ! श्रीराधाके मुखसं मानी श्रीकृष्णके द्वारा दिये गये सम्मानकी बात सुनकर मानवती गोपाङ्कनाओंको बढ़ा विस्य द्वारा हुआ। ३८-४१ ॥

बाईसवाँ अध्याय

**गोपाङ्गनाओंद्वारा श्रीकृष्णका स्वतन्त्र परात्पर स्वां शरणं द्वजाम्यहम्
पृष्ठनेपर हंसमुनिके उद्धारकी कथा सुनाना तथा गोपियोंको क्षीरसागर-
इवेतद्वीपके नारायण-स्वरूपोंका दर्शन कराना**

नारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर श्रीकृष्णके शुभागमनके लिये समस्त ब्रजाङ्गनाएँ मिलकर सुरम्य ताल-स्वरके साथ उन श्रीहरिके रमणीय गुणोंका गान करने लगीं ॥ १ ॥

गोपियाँ बोलीं—लोकसुन्दर ! जनभूषण ! विश्वदीप ! मदनमोहन ! तथा जगत्की पापराति एवं पीड़ा हर लेनेवाले ! आनन्दकंद यदुनन्दन ! नन्दनन्द ! तुम्हारे चरणारविन्दोंका मकरन्द भी परम स्वच्छन्द है, तुम्हें बारंगार नमस्कार है। गौओं, ब्राह्मणों और साधु-मंतोंके विजयध्वजरूप ! देववन्द्य तथा कंसादि दैत्योंके वधके लिये अवतार धारण करनेवाले ! श्रीनन्दराज-कुल कमल-दिवाकर ! देवाधिदेवोंके भी जादिकारण ! मुक्त-जनदर्पण ! तुम्हारी जय हो। गोपवंशरूपा सागरमें परम उज्ज्वल मोतीके समान रूप धारण करनेवाले ! गोपाल कुलरूपी गिरिराजके नीलरत्न ! परमात्मन् ! गोपालमण्डल-रूपी सरोवरके प्रफुल्ल कमल ! तथा गोपवृन्दरूपी चन्दन बनके प्रधान कलहंस ! तुम्हारी जय हो। व्यारे स्यामसुन्दर ! तुम श्रीराधिकाके मुखारविन्दका मकरन्द पान करनेवाले मधुप हो; श्रीराधाके मुखचन्द्रकी मुधामयी चन्द्रिकाके आस्तादक चक्रोर हो; श्रीराधाके वक्षःस्थलपर विद्योत-मान चन्द्रहार हो तथा श्रीराधिकारूपिणी माधवीलताके लिये कुमुमाकर (श्रूतुराज वसन्त) हो। जो रास-रङ्ग-स्थलीमें अपने वैभव (लीलाशक्ति) से भूरि-भूरि लीलाएँ प्रकट करते हैं, जो गोपाङ्गनाओंके नेत्रों और जीवनके भूलाधार एवं हारस्वरूप हैं तथा श्रीराधाके मान करनेपर जिन्होंने स्वयं मान कर लिया है, वे इयामसुन्दर श्रीहरि हमारे नेत्रोंके समक्ष प्रकट हों। जिन्होंने गोपिकाओंके समस्त यूथोंको, श्रीबृन्दावनकी भूमिको तथा गिरिराज गोवर्धनको अपनी चरण-धूलिसे अलंकृत किया है; जो सम्पूर्ण जगत्के उद्धरण तथा पालनके लिये भूतल्पर शक्ट हुए हैं; जिनकी कान्ति अस्यन्त स्याम है और शुजाएँ नागराजके शरीरकी भाँति मुश्योमित होती हैं,

उन नन्दनन्दन माधवकी हम आराधना करती हैं। प्राणनाश ! तुम्हारे विना वियोग-व्यथासे पीड़ित हुई हम सब गोपियोंको चन्द्रमा सूर्यकी किरणोंके समान दाहक प्रतीत होता है। यह सम्पूर्ण बनान्त-भाग जो पहले प्रसन्नताका केन्द्र था, अब इसमें आनेपर पेसा जान पड़ता है, मानो इमलोग अस्पित्रवनमें प्रविष्ट हो गयी हैं और अत्यन्त मन्द-मन्द गतिसे प्रवाहित होनेवाली बायु हमें वाण-सी लगती है। हरे ! राजा सौदासकी रानी मदयन्तीको आर्ने पतिके विरहसे जो दुःख हुआ था, उससे हजारहुना दुःख नलका महारानी दमयन्तीको पति-वियोगके कारण प्राप्त हुआ था। उनसे भी कोटि-गुना अधिक दुःख पतिविराहिणी जनकनन्दिनी सीताको हुआ था और उनसे भी अनन्तगुना अधिक दुःख आज हम सबको हो रहा है * ॥ २-९ ॥

* गोप्य उन्नुः—

लोकाभिराम जनभूषण विश्वदीप कंदर्पमोहन जगद्वज्जिनातिशारिन् । आनन्दकंद यदुनन्दन नन्दधनो स्वच्छन्दपश्चमकर्त्तव्य नमो नमस्ते ॥ गोपिप्रसाधुविजयध्वज देववन्द्य कंसादिदंत्यवधेतुक्रतावतार । श्रीनन्दराजकुलपथदिनेश देव देवादिमुक्तजनदर्पण ते जयोऽस्तु ॥ गोपालसिंहुपर्भौत्तिक्षरूपधारिन् गोपालबंशगिरीलमणे परात्मन् । गोपालमण्डलसरोवरकर्मजमूर्ते गोपालचन्दनवने कलहंसमुख्य ॥ श्रीराधिकावदनपशुजप्त्यदस्त्वं श्रीराधिकावदनचन्द्रकोरक्षपः । श्रीराधिकावदनपशुजप्त्यदस्त्वं श्रीराधिकावदनचन्द्रकोरक्षपः ॥ यो रासरक्षनिजवैभव भूरीलीले यो गोपिकानप्यनजीवनभूलाहः । मानं चक्रर रहसा किल मानवर्या सोऽर्थं इरिर्भवतु नो नन्यनाशगामी ॥ यो गोपिकासक्षम्यमलं चक्रर वृन्दावनं च निष्पादरजोभिरद्विम् । यः सर्वलोकविभवाय बभूव भूमौ तं भूरिनीलसुरगोक्षभुजं भजामः ॥ चक्रं प्रतपक्षिरणजवलं प्रसन्नं सर्वे बनामतमिपत्रवनप्रवेशम् । वाणं प्रभञ्जनमतीवसुमन्दयानं मन्यामहे किल भवन्तस्ते व्यथाताः ॥ सौदासराजमहिषीविरहादतीव जातं सहस्रगुणितं नक्षपट्टराह्याः । तस्मात् कोटिगुणितं जनकाम्यजायात्तासादनन्तमतिदुःखमकं हरे नः ॥

(गां०, स्मदावन० २३ । २-९)

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार योती हुई गोपाङ्गनाओंके बीचमें कमलनयन श्रीकृष्ण सहसा प्रकट हो गये, मानो अपना अभीष्ट मनोरथ म्यवं आकर मिल गया हो । उनके मस्तकपर किरीट, भुजाओंमें केन्द्र और अङ्गद तथा कानोंमें कुण्डल नामक भूषण अपनी दीपि फैला रहे थे । किंग्घ, निर्मल, सुगन्धपूर्ण, नीले, धुँबराले केश-कलाप मनको मोहे लेने थे । उन्हें आया हुआ देव तमस्त ब्रजाङ्गनाएँ एक साथ उठकर खड़ी हो गयीं, जैसे शब्दादि शूक्रम भूतोंके समूहको देखकर ज्ञानेन्द्रियों सहसा सचेष्ट हो जाती है । राजन् ! उन गोपसुन्दरियोंके मध्यभागमें राधाके साथ श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण बाँसुरी बजाते हुए इस प्रकार नृत्य करने लगे, मानो रतिके साथ मूर्तिमान् काम नाच रहा हो । जितनी संख्यामें समस्त गोपियों थीं, उनमें ही रूप धारण करके श्रीहरि उनके साथ बजमें रास-विहार करने लगे—ठीक उसी तरह, जैसे जाप्रत् आदि अवस्थाओंके साथ मन कीड़ा कर रहा हो । उस समय उस बनप्रदेशमें हुःख-रहित हुई ब्रजाङ्गनाएँ वहाँ खड़े हुए श्यामसुन्दर श्रीकृष्णसे हाथ जोड़ गद्गद वाणीमें बोलीं ॥१०-१५॥

गोपियोंने पूछा—श्यामसुन्दर ! जो सारे जगत्को तिनकेकी भाँति त्यागकर तुम्हारे चरणारविन्दोमें अपना तन, मन और प्राण अर्पित कर चुकी हैं, उन्हीं इन गोपियोंके इस महान् समुदायको छोड़कर तुम कहाँ चढ़े गये थे ? ॥ १६ ॥

श्रीभगवान् बोले—गोपाङ्गनाओ ! पुष्करदीपके दधिमण्डोद समुद्रके भीतर रहकर ‘इंस’ नामक महामुनि तपस्या कर रहे थे । वे मेरे ध्यानमें रत रहकर बिना किसी हेतु या कामनाके भजन करते थे । उन तपस्वी महामुनिको तपस्या करते हुए दो मन्वन्तरका समय इसी तरह बीत गया । उन्हें आज ही आवेद्योजन लंबा शरीर धारण करनेवाला एक मत्स्य निगल गया था । फिर उसे भी मत्स्यरूपधारी महान् असुर पौण्ड्र निगल गया । इस प्रकार कष्टमें पढ़े हुए मुनिवर हंसके उद्धारके लिये मैं शीघ्र बहाँ गया और चक्कसे उन दोनों मत्स्योंका वध करके मुनिको संकटसे छुकाकर द्वेषद्वीपमें चला गया । ब्रजाङ्गनाओ ! वहाँ श्वीरसागरके भीतर शेषदाव्यापर मैं सो गया था । फिर अपनी प्रियतमा दुम सब गोपियोंको हुसी जान

नीद त्यागकर सहसा यहाँ आ पहुँचा; क्योंकि मैं सदा भक्तोंके बशमें रहता हूँ । जो जितेन्द्रिय, समदर्शी तथा किसी भी वस्तुकी इच्छा न रखनेवाले भद्रान् संत हैं, वे निरपेक्षताको ही मेरा परम सुख जाने हैं; जैसे ज्ञानेन्द्रियों आदि इस आदि रूपम् भूतोंको ही सुख समझते हैं ॥ २७-२८ ॥

गोपियोंने कहा—माधव ! यदि हमपर प्रसन्न हों तो श्वीरसागरमें शेषदाव्यापर तुमने जो रूप धारण किया था, उसका हमें भी दर्शन कराओ ॥ २४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—तब ‘तथास्तु’ कहकर भगवान् गोपी-समुदायके देखते-देखते आठ भुजाधारी नारायण हो गये और श्रीराधा लक्ष्मीरूपा हो गयीं । वहाँ चञ्चल तरङ्गमालाओंसे मणिडत श्वीरसागर प्रकट हो गया । दिव्य रत्नमय मङ्गलरूप प्रासाद दण्डिगोचर होने लगे । वहाँ कमलनालके सदृश इनेत शोपनाग कुण्डली बाँधे स्थित दिखायी दिये, जो बालसूर्यके समान तेजस्वी सहस्र फलोंके छत्रसे सुशोभित थे । उस शेषदाव्यापर माधव सुखसे लौ गये तथा लक्ष्मीरूपधारिणी श्रीराधा उनके चरण दबानेकी सेवा करने लगीं । करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी उस सुन्दर रूपको देखकर गोपियोंने प्रणाम किया और वे सभी परम आश्चर्यमें निमग्न हो गयीं । मैथिल ! जहाँ श्रीकृष्णने गोपियोंको इस रूपमें दर्शन दिया था, वह परम पुण्यमय पापनाशक क्षेत्र बन गया ॥ २५-३० ॥

तदनन्तर माधव गोपाङ्गनाओंके साथ यमुना-तटपर आकर कालिन्दीके वेगपूर्ण प्रवाहमें संतरण-कला-केलि करने लगे । श्रीराधाके हाथमें उनका लक्ष्मदल कमल और चादर लेकर माधव पानीमें ढौढ़ते तथा हँसते हुए दूर निकल गये । तब श्रीराधा भी उनके चमकीले पीताम्बर, वंशी और बैत लेकर हँसती हुई यमुनाजलमें चली गयीं । अब महात्मा श्रीकृष्ण उन्हें माँगते हुए बोले—‘राधे ! मेरी बाँसुरी दे दो ।’ श्रीराधा कहने लगी—‘माधव ! मेरा कमल और बख लौटा दो ।’ श्रीकृष्णने श्रीराधाको कमल और बख दे दिये । तब श्रीराधाने भी महात्मा श्रीकृष्णको वंशी, पीताम्बर

* जाननि सत्त्वः समदर्शिनो वे दान्ता महान्तः किंल नैरपेक्षयाः ।
ते नैरपेक्षं परमं सुखं मे ज्ञानेन्द्रियादीनि यथा रसादीन् ॥
(गण०, बृद्धावन० २२ । २४)

और बैंस लौटा दिये । तदनन्तर श्रीकृष्ण आजानुलभिनी (घुटनेतक लटकती हुई) वैजयन्ती माला धारण किये, मधुर गीत गाते हुए भाष्टीरवनमें गये । वहाँ चतुर-चूडामणि श्यामसुन्दरने प्रियाका शङ्कर किया । भाल तथा कपोलोंपर पश्चरचना की, पैरोंमें महावर ल्याया, फूलोंकी माला धारण

करायी, वैणीको भी फूलोंसे सजाया, ललाटमें कुहुमकी बैंदी तथा नेत्रोंमें काजल लगाया । इसी प्रकार कीर्तिनिदिनी श्रीगांधाने भी उस शङ्कर-श्वलमें चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और केसर आदिसे श्रीहरिके मुखपर मनोहर पत्र-रचना की ॥ ३१-३८ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संवितामें वृन्दावनसंग्रहके अन्तर्गत 'सासक्रीडा' नामक वर्तमानीं अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

तईमवाँ अध्याय

कंस और शङ्कचूडमें युद्ध तथा मैत्रीका वृत्तान्त; श्रीकृष्णद्वारा शङ्कचूडका वध

श्रीनारदजी कहने हैं—राजन् ! नत्याशात् श्रीकृष्ण व्रजाङ्गनाओंके साथ लोहजङ्क-वनमें गये, जो वसन्तकी माधवी तथा अन्यान्य लता-बलरियोंमें व्याप्त था । उस वनके सुगन्ध विरेनरनेवाले सुन्दर 'फूलोंके हारोंमें श्रीहरिने वहाँ समस्त गोपियोंकी वंगेयाँ अलंकृत कीं । भ्रमरोंकी गुजारसे निनादित और सुगन्धित वायुमें वामित यमुनातट-पर अपनी प्रेयसियोंके साथ श्यामसुन्दर विचाने लो । विचरते-विचरते रासेनवर श्रीकृष्ण उस महापुण्यवनमें जा पहुँचे, जो करील, पील तथा श्याम तमाल और ताल आदि सप्तम वृक्षोंमें व्याप्त था । वहाँ रामेश्वरी श्रीराधा और गोपाङ्गनाओंके साथ उनके मुखसे अपना यशोगान सुनते हुए श्रीहरिने राम आरम्भ किया । उस समय वे यदा गती हुई अपमराओंमें गिरे हुए देवराज इन्द्रके समान मुशोभित हो रहे थे ॥ १-५ ॥

राजन् ! वहाँ एक विचित्र घटना घटित हुई, उसे तुम मेरे मुखमें सुनो । शङ्कचूड नामसे प्रसिद्ध एक वलवान् यथा, जो कुबेरका सेवक था । इस भूतलपर उसके समान गदायुद्ध विशारद योद्धा दूर्मा कोई नहीं था । एक दिन मेरे मुँहमें उग्रसेनकुमार कंसके उत्कट वलकी गात सुनकर वह प्रचण्ड पराक्रमी यथराज लाख भार लोहेकी बनी हुई भारी गदा लेकर अपने निवासस्थानसे मथुरामें आया । उस मदोन्मत्त धारने राजसभामें पहुँचकर वहाँ सिंहासनपर बैठे हुए कंसको प्रणाम किया और कहा—'राजन् ! सुना है कि तुम त्रिभुवनविजयी बीर हो; इसलिये मुझे अपने साथ गदायुद्धका अवसर दो । यदि तुम विजयी हुए तो मैं तुम्हारा दास हो जाऊँगा और यदि मैं विजयी हुआ तो तत्काल द्वार्हे अपना दास बना लूँगा ।' विदेहराज । तब

'तथास्तु' कहकर, एक विशाल गदा हाथमें ले, कस रङ्गभूमिमें शङ्कचूडके साथ युद्ध करने लगा । उन दोनोंमें घोर गदायुद्ध प्रारम्भ हो गया । दोनोंके परस्पर आशात प्रत्याशातसे होनेवाला चट चट शब्द प्रलैकालके मेत्रोंकी गर्जना और विजलीकी गङ्गगङ्गाहटके समान जान पड़ता था । उस रङ्गभूमिमें दो मल्हों, नाथ्यमण्डलोंके दो नरों, विशाल अङ्गवाले दो गजराजों तथा दो उद्भट चिंहोंके भमान कंस और शङ्कचूड परस्पर जूझ रहे थे । राजन् ! एक दूसरेको जीत लेनेकी इच्छासे जूझते हुए उन दोनों वीरोंकी गदाएँ आगकी चिनगारियों वरसाती हुई परस्पर दक्षरानर नूर चूर हो गयीं । कंसने अत्यन्त कोपसे भरे हुए यथको मुक्तेसे मारा; तब शङ्कचूडने भी कंसपर मुक्तेसे प्रहार किया । इस तरह मुक्ता मुक्ती करते हुए उन दोनोंको सत्ताईस दिन बीत गये । दोनोंमेंसे किसाका वल क्षीण नहीं हुआ । दोनों ही एक दूसरेके पराक्रमसे चक्रित थे । तदनन्तर दैत्यराज महावली कंसने शङ्कचूडको सहसा पकड़कर यल्पूर्वक आकाशमें फेंक दिया । वह सौ योजन ऊपर चला गया । शङ्कचूड आकाशसे जय वेगपूर्वक नीचे गिरा तो उसके मनमें किंचित व्याकुलता आ गयी, तथापि उसने भी कंसको पकड़कर आकाशमें दस हजार योजन ऊँचे फेंक दिया । कंस भी आकाशसे गिरनेपर मन ही-मन कुछ व्याकुल हो उठा । फिर उसने यथको पकड़कर सहसा पृथ्वीपर दे मारा । फिर शङ्कचूडने भी कंसको पकड़कर भूमिपर पटक दिया । इस प्रकार घोर युद्ध चलते रहनेके कारण भूमण्डल कोपने लगा । इसी बीचमें सर्वश सुनिवर साक्षात् गर्गाचार्य वहाँ आ गये । दोनोंने रङ्गभूमिमें उन्हें देखकर प्रणाम किया । तब गगने ओमस्तिनी वाणीमें कंससे कहा ॥ ६-२१ ॥

श्रीगर्गजी बोले—राजेन्द्र ! युद्ध न करो । इस युद्धसे कोई फल मिलनेवाला नहीं है । यह महावली शङ्खचूड तुम्हारे समान ही बीर है । तुम्हारे मुकेकी भार खाकर गजराज प्रेरणतने धरतीपर बुटने टेक दिये थे और उसे अस्त्यन्त मूल्ला आ गयी थी । और भी बहुत-से देख्य तुम्हारे मुकेकी भार खाकर मृत्युके ग्रास नन गये हैं, परंतु शङ्खचूड धराशायी नहीं हो सका । इसमें संदेह नहीं कि यह तुम्हारे लिये अजेय है । इसका कारण सुनो । वे परिषूर्णतम परमात्मा जैसे तुम्हारा वध करनेवाले हैं, उसी तरह भगवान् शिवके वरसे वलशाली हुए इस शङ्खचूडको भी मारेंगे । अतः यहुनन्दन ! तुम्हें शङ्खचूडपर प्रेम करना चाहिये । यक्षगञ्ज ! तुम्हें भी अवश्य ही कंसपर प्रेमभाव रखना चाहिये ॥ २२-२६ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् । गर्भाचार्यजीके यो कहनेपर शङ्खचूड तथा कंस—दोनों परस्पर मिले और एक दूसरों अस्त्यन्त प्रेम करने लगे । तदनन्तर कंससे विदा ले गङ्गचूड अपने शरको जाने ल्या । रात्रिके समय भागमे उसे गमण्डल मिला । वहाँ ताल-स्वरसे युक्त मनोहर गान उसके बानमे पड़ा । फिर उसने रासमें श्रीरासेश्वरीके साथ गमेश्वर श्रीकृष्णका दर्शन किया । उनकी बायीं भुजा श्रांगधाके कधेपर सुशोभित थी । वे स्वेच्छानुसार अपने दाहिने पैरको टेढ़ा किये लहवे थे । हाथमें बंशी लिये मुखसे मुन्दर मन्द हाथकी छटा छिटका रहे थे । उनके भ्रूमण्डलपर गङ्गा राशि कामदेव मोहित थे । व्रजसुन्दरियोंके यूथपति व्रजेश्वर श्रीकृष्ण नोटिं-कोटि लघु चौबरोंसे सुसेवित थे । उन्द अस्त्यन्त क्रोमल शिशु जानकर शङ्खचूडने गोपियोंको हर ले जानेका विचार किया ॥ २७-३१ ॥

यहुलाभ्यने पृछा—विप्रवर ! आप भूत और भविष्य—मन जानते हैं; अतः बताइये, रासमण्डलमें शङ्खचूडके आनेपर क्या हुआ ? ॥ ३२ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् । शङ्खचूडका मुँह था बाघके समान और शरीरका रंग था एकदम काला-कल्टा । वह दस ताङ्के बराबर ऊँचा था और जीभ लपलपाकर जबहे चाटता हुआ बढ़ा भयंकर जान पड़ता था । उसे देखकर गोपाङ्गनाएँ भयसे थर्हा उठीं और चारों ओर

मागने लगीं । इससे महान् कोलाहल होने लगा । इस प्रकार शङ्खचूडके आने ही रासमण्डलमें हाहाकार मच गया । वह कामपीडित दुष्ट यक्षराज शतचन्द्रानना नामवाली गोपमुन्दरीको पकड़कर बिना किसी भय और आशङ्काके उत्तर दिशाकी ओर दौड़ चला । शतचन्द्रानना भयसे ब्याकुल हो कृष्ण ! कृष्ण !! पुकारती हुई रोने लगी । यह देख श्रीकृष्ण अस्त्यन्त कुपित हो, शालका वृक्ष हाथमें लिये, उसके पीछे दौड़े । कालके समान दुर्जय श्रीकृष्णको पीछा करते देख यक्ष उस गोपीको छोड़कर भयसे बिहूल हो ग्राण बचानेकी इच्छामे भागा । महायुद्ध शङ्खचूड भागकर जहाँ-जहाँ मरा, वहाँ-वहाँ श्रीकृष्ण भी शालवृक्ष हाथमें लिये अस्त्यन्त रोषपूर्वक गये ॥ ३३-३८ ॥

राजन् ! हिमालयकी शार्दूलमें पहुँचकर उस यक्षराजने भी एक शाल उखाड़ लिया और उनके सामने विशेषतः युद्धकी इच्छासे वह खड़ा हो गया । भगवान् ने अपने बाहुबलसे शङ्खचूडपर उस शालवृक्षको दे मारा । उसके आधातसे शङ्खचूड आँधीके उत्थाके हुए पेइकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा । शङ्खचूडने फिर उठकर भगवान् श्रीकृष्णको मुकेसे मारा । मारकर वह दुष्ट यक्ष सम्पूर्ण दिशाओंको निनादित करता हुआ सहसा गरजने लगा । तब श्रीहरिने उसे दोनों हाथोंमें पकड़ लिया और भुजाओंके बलसे धुमान उसी तरह पृथ्वीपर पटक दिया जैसे वायु उत्थाके हुए क्रमलको फेंक देती है । शङ्खचूडने भी श्रीकृष्णको पकड़कर धरतीपर दे मारा । जब इस प्रकार युद्ध चलने लगा, तब मारा भूमण्डल कोप उठा । तब माधव श्रीकृष्णने मुकेकी मारसे उसके मिर्को धड़से अलग कर दिया और उसकी चूडामणि ले ली—ठीक उसी तरह जैसे नोई पुष्यास्मा पुष्प कहाँसे निधि प्राप्त कर लेता है । नरेश्वर ! शङ्खचूडके शरीरसे एक विशाल व्योति निकली और दिल्मण्डलको विद्योतित करती हुई व्रजमें श्रीकृष्णसरदा श्रीदामाके भीतर बिलीन हो गयी । इस प्रकार शङ्खचूडका वध करके भगवान् मधुसूदन, हाथमें मणि लिये, फिर शीघ्र ही रासमण्डलमें आ गये । दीनवस्तल श्रीहरिने वह मणि शतचन्द्राननाको दे दी और पुनः समस्त गोपाङ्गनाओंके साथ रास आरम्भ किया ॥ ३९-४७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें बृन्दावनस्तलके अन्तर्गत रास-कीड़के प्रस्त्रमें ‘शङ्खचूडका वध’ नामक

त्रैसर्वां अध्याय पूरा हुआ ॥ ३३ ॥



चौबीसवाँ अध्याय

रास-विहार तथा आसुरि मुनिका उपाख्यान

नारदजी कहते हैं—तदनन्तर गोपीगणोंके साथ यमुनातटका दृश्य देखते हुए श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण रास-विहारके लिये मनोहर वृन्दावनमें आये। श्रीहरिके वरदानसे वृन्दावनकी ओषधियाँ चिलीन हो गयीं और वे सब की-सब ब्रजाङ्गना होकर, एक यूथके रूपमें संघटित हो, रासगोष्ठीमें सम्मिलित हो गयीं। मिथिलेश्वर ! लतारुपिणी गोपियोंका समूह विचित्र कान्तिसे सुशोभित था। उन सबके साथ वृन्दावनेश्वर श्रीहरि वृन्दावनमें विहार करने लगे। कदम्ब-वृक्षोंसे आच्छादित कालिन्दीके सुरस्य तटपर सब और शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चलकर उस स्थानको सुगन्ध-पूर्ण कर रही थी। वंशीवन् उस सुन्दर पुलिनकी रमणीयताको बढ़ा रहा था। रासके श्रमसे शके हुए श्रीकृष्ण वहीं श्रीराधाके साथ आकर बैठे। उस समय गोपाङ्गनाओंके साथ-साथ आकाशस्थित देवता भी वीणा, ताल, मुदङ्ग, सुरचंग आदि भौति भाँतिके बाद वजा रहे थे तथा जय-जयकार करते हुए दिव्य पूल वरसा रहे थे। गोप-सुन्दरियाँ श्रीहरिको आनन्द प्रदान करती हुई उनके उत्तम यश गाने लगीं। कुछ गोपियाँ मेघमल्लार नामक राग गातीं तो अन्य गोपियाँ दीपक राग सुनाती थीं। राजन् ! कुछ गोपियोंने क्रमजः माल्योश, भैरव, श्रीराग तथा हिन्दौल रागका भात स्वरोंके भाथ गान किया। नरेश्वर ! उनमेंसे कुछ गोपियाँ तो अत्यन्त भोला भाली थीं और कुछ मुञ्जाएँ थीं। कितनी ही प्रेमपगाणा गोपसुन्दरियाँ प्रैदा नायिकाकी श्रेणीमें आती थीं। उन सबके मन श्रीकृष्णमें लगे थे। कितनी ही गोपाङ्गनाएँ जारभावमें गोविन्दकी सेवा करती थीं। कोई श्रीकृष्णके गाथ गेंद बेलने लगीं, कुछ श्रीहरिके साथ रहकर परस्पर पूलोंमें क्रीड़ा करने लगीं। कितनी ही गोपाङ्गनाएँ पैरोंमें नूपुर धारण करके परस्पर नृत्य-क्रीडा करती हुई नूपुरोंकी झांगरके साथ-साथ श्रीकृष्णके अधरामृतका पान कर लेती थीं। कितनी ही गोपियाँ योगियोंके लिये भी दुर्लभ श्रीकृष्णको दोनों भुजाओंसे पकड़कर हँसती हुई अत्यन्त निकट आ जाती और उनका गाढ़ आलिङ्गन करती थीं॥ १-१३ ॥

इस प्रकार परम मनोहर वृन्दावनाधीश्वर यहुराज भगवान् श्रीहरि के सरका तिलक धारण किये, गोपियोंके

साथ वृन्दावनमें विहार करने लगे। कुछ गोपाङ्गनाएँ वंशीधरकी ब्राह्मणोंके साथ वीणा बजाती थीं और कितनी ही मृदङ्ग बजाती हुई भगवान्‌के गुण गाती थीं। कुछ श्रीहरिके सामने न्वडी हो मधुर स्वरसे खड़ताल बजातीं और बहुत-सी सुन्दरियाँ माधवी लताके नीचे चंग बजाती हुई श्रीकृष्णके साथ सुस्थिरभावसे गीत गाती थीं। वे भूतलपर सांसारिक सुखको सर्वथा भुलाकर वहाँ रम रही थीं। कुछ गोपियाँ लतामण्डपोंमें श्रीकृष्णके हाथों अपने हाथमें लेहर इधर उधर धूमती हुई वृन्दावनकी शोभा निहारती थीं। किन्हीं गोपियोंके हार लता जालसे उन्धश जाते, तब गोविन्द उनके बक्षःस्थलका स्पर्श करते हुए उन हारोंमें लता जालोंमें पृथक् कर देते थे। गोप-सुन्दरियोंकी नामिकामें जो नक्केमरें थीं, उनमें मोतीकी लड़ियाँ पिरेयी गयी थीं। उनको तथा उनकी अलकावलियोंको श्यामसुन्दर स्वयं सँभालते और धीरे-धीरे सुलक्षकर सुगोभन बनाते रहते थे। माधवके चवाये हुए सुगन्धयुक्त ताम्बूलमें आधा लेकर तत्काल गोपसुन्दरियाँ भी चवाने लगती थीं। अहो ! उनका कैसा महान् तप था ! कितनी ही गोपियों हँसती हुई श्यामसुन्दरके कपोलोंपर अपनी दो अँगुलियोंमें धीरे-धीरे छूर्णी और कोई हँसती हुई बल्पूर्वक इत्याभ्या आघात कर बैठती थीं। कदम्ब-वृक्षोंके नाने पृथक् पृथक् सभी गोपाङ्गनाओंके साथ उनका क्रीडा विनोद चल रहा था ॥ १४-२५ ॥

मिथिलेश्वर ! कुछ गोपाङ्गनाएँ पुरुष-वेष धारणकर, मुकुट और गुण्डलोंमें मणिडत हो, स्वयं नायक बन जातीं और श्रीकृष्णके सामने उन्होंकी तरह दृश्य करने लगती थीं। जिनकी मुख-कान्ति शत-शत चन्द्रमाओंको तिरस्कृत करती थीं, ऐसी गोपसुन्दरियों श्रीराधाका वेष धारण करके श्रीराधा तथा उनके प्राणवल्लभको आनन्दित करती हुई उनके यश गाती थीं। कुछ ब्रजाङ्गनाएँ स्तम्भ, स्वेद आदि सात्त्विक भावोंसे युक्त, प्रेम-विहळ एवं परमानन्दमें निमग्न हो, योगिजनोंकी भौति समाचिल्स होकर भूमिपर बैठ जाती थीं। कोई लताओंमें, वृक्षोंमें, भूतलओंमें, विभिन्न दिशाओंमें तथा अपने आपमें भी भगवान् श्रीपतिका दर्शन करती हुई मौनभाव धारण कर लेती थीं। इस प्रकार रास-मण्डलमें

सर्वेश्वर, भक्तवत्सल गोविन्दकी शरण ले, वे सब गोपसुन्दरियाँ पूर्णमनोरथ हो गयीं। महामते राजन् ! वहाँ गोपियोंको भगवान्‌का जो कृपाप्रसाद प्राप्त हुआ, वह जानियोंको भी नहीं भिलता, किर कर्मियोंको तो भिल ही कैसे सकता है ? ॥ २२-२७३ ॥

महामते ! इस प्रकार राधावलभ प्रभु श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्रके रासमें जो एक विचित्र घटना हुई, उसे सुनो। श्रीकृष्णके प्रिय भक्त एवं महातपसी एक मुनि थे, जिनका नाम 'आसुरि' था। वे नारदगिरिपर श्रीहरिके ध्यानमें तत्पर हो तपस्या करते थे। हृदय-कमलमें ज्योतिर्मण्डलके भीतर राधासहित मनोहर-मूर्ति श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका वे चिन्तन किया करते थे। एक समय रातमें जब मुनि ध्यान बरने लगे, तब श्रीकृष्ण उनके ध्यानमें नहीं आये। उन्होंने बारंबार ध्यान ल्याया, किंतु सफलता नहीं भिली। इनसे वे महामुनि खिल हो गये। फिर वे मुनि ध्यानसे उठकर श्रीकृष्णदर्शनकी लालसामें बदरीखण्डमण्डित नारायणाश्रमको गये; किंतु वहाँ उन मुनीश्वरको नर-नारायणके दर्शन नहीं हुए। तब अत्यन्त विस्तित हो, वे ब्राह्मण देवता लोकालोक पर्वतपर गये; किंतु वहाँ सहस्रसिरवाले अनन्तदेवका भी उन्हें दर्शन नहीं हुआ। तब उन्होंने वहाँके पार्षदोंसे पूछा—'भगवान् यहाँसे कहाँ गये हैं ?' उन्होंने उत्तर दिया—'हम नहीं जानते।' उनके इस प्रकार उत्तर देनेपर उस समय मुनिके मनमें बड़ा खोद हुआ। फिर वे क्षीरसागरसे सुशोभित इवेतदीपमें गये; किंतु वहाँ भी शेषदाव्यापर श्रीहरिका दर्शन उन्हें नहीं हुआ। तब मुनिका चित्त और भी खिल हो गया। उनका मुख प्रेमसे पुलकित दिखायी देता था। उन्होंने पार्षदोंसे पूछा—'भगवान् यहाँसे कहाँ चले गये ?' पुनः वही उत्तर मिला—'इमलोग नहीं जानते।' उनके यो कहनेपर मुनि भारी चिन्तामें पड़ गये और सोचने लगे—'क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कैसे श्रीहरिका दर्शन हो ?' ॥ २८-३८ ॥

यों कहते हुए मनके समान गतिशाली आसुरि मुनि

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें बृन्दावनखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्वरंतादमें रासकीडा-प्रसादमें 'आसुरि मुनिका उपाख्यान' नामक चौनीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

बैकुण्ठधाममें गये; किंतु वहाँ भी लक्ष्मीके साथ निवास करनेवाले भगवान् नारायणका दर्शन उन्हें नहीं हुआ। नरेश्वर ! वहाँके भक्तोंमें भी आसुरि मुनिने भगवान्‌को नहीं देखा। तब वे योगीन्द्र मुर्माश्वर गोलोकमें गये; परंतु वहाँके बृन्दावनीय निकुञ्जमें भी परात्पर श्रीकृष्णका दर्शन उन्हें नहीं हुआ। तब मुनिका चित्त खिल हो गया और वे श्रीकृष्ण-विरहमें अत्यन्त ब्याकुल हो गये। वहाँ उन्होंने पार्षदोंसे पूछा—'भगवान् यहाँसे कहाँ गये हैं ?' तब वहाँ रहनेवाले पार्षद गोपोंने उत्तर से कहा—'वामनावतारके ब्रह्माण्डमें, जहाँ कभी पृथिवीभूमि अवतार हुआ था, वहाँ साक्षात् भगवान् पधारे हैं।' उनके यो कहनेपर महामुनि आसुरि वहाँसे उस ब्रह्माण्डमें आये। श्रीहरिका दर्शन न होनेसे तीव्र गतिसे चलते हुए मुनि केलास पर्वतपर गये। वहाँ महादेवजी श्रीकृष्णके ध्यानमें तप्तपर होकर बैठे थे। उन्हें नमस्कार करके रात्रिमें खिल-चित्त हुए महामुनिने पूछा ॥ ३९-४४३ ॥

आसुरि खोले—भगवन् ! मैंने सारा ब्रह्माण्ड इधर-उधर छान डाला, भगवदर्शनकी इच्छामें बैकुण्ठसे लेकर गोलोकतकका चक्कर ल्या आया, किंतु कहाँ भी देवाधिदेवका दर्शन मुझे नहीं हुआ। सर्वशिरोमणे ! बताइये, इस समय भगवान् कहाँ हैं ? ॥ ४५-४६३ ॥

श्रीमहादेवजी खोले—आसुरे ! तुम धन्य हो। ब्रह्मन् ! तुम श्रीकृष्णके निष्काम भक्त हो। महामुने ! मैं जानता हूँ, तुमने श्रीकृष्णदर्शनकी लालसामें महान् क्लेश उठाया है। क्षीरसागरमें रहनेवाले हंस मुनि यहै कष्टमें पड़ गये थे। उन्हें उस क्लेशसे मुक्त करनेके लिये जो बड़ी उतावलीके साथ वहाँ गये थे, वे ही भगवान् रसिकशेखर साक्षात् श्रीकृष्ण अर्पा-अर्पी बृन्दावनमें आकर सखियोंके साथ रास-कीडा कर रहे हैं। मुने ! आज उन देवेश्वरने अपनी मायासे छः मर्हने-बराबर बड़ा रात बनायी है। मैं उसी रासोत्सवका दर्शन करनेके लिये वहाँ जाऊँगा। तुम भी शीघ्र ही चलो, जिससे तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो जाय ॥ ४७-५० ॥

पचीसवाँ अध्याय

शिव और आमुरिका गोपीरूपसे रासमण्डलमें श्रीकृष्णका दर्शन और स्तवन करना तथा उनके बरदानसे बृन्दावनमें नित्य-निवास पाना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! मगवान् शिव आसुरि-
के साथ मग्न्यं हृदयमें ऐसा निश्चय करके बहाँसे चले । वे
दोनों श्रीकृष्णदर्शनके लिये ब्रजमण्डलमें गये । वहाँकी भूमि
दिव्य बृक्षों, लताओं, कुँड़ों और गुमटियोंसे सुशोभित
थी । उस दिव्य भूमिका दर्शन करते हुए दोनों ही यमुना-
तटपर गये । उम ममय अत्यन्त ब्रलशालिनी गोलोकवामिनी
गोपसुन्दरियों हाथमें बैठ की छड़ी लियं, बहाँ पहरा दे रही
थीं । उन द्वारपालिकाओंने मार्गमें अस्ति होकर उन्हें
बल्पूर्वक रासमण्डलमें जानेमें रोका । वे दोनों बोले—‘इम
श्रीकृष्णदर्शनकी लालसामें यहाँ आये हैं’ । नृपश्रेष्ठ ! तब
राह रोककर खड़ी द्वारपालिकाओंने उन दोनोंमें
कहा ॥ १-४ ॥

द्वारपालिकाएँ बोलीं—विप्रवरो ! हम कोटि-कोटि
गोपाङ्गाएँ बृन्दावनको चारों ओरसे धेरकर निरन्तर रास-
मण्डलकी रक्षा कर रही हैं । इम कार्यमें श्यामसुन्दर
श्रीकृष्णने हाँ हमें नियुक्त किया है । इम एकान्त रासमण्डल-
में एकमात्र श्रीकृष्ण ही पुरुष है । उस पुकारहित एकान्त
स्थानमें गोपीयूथके भिवा दूसरा कोई भी नहीं जा सकता ।
मुनियो ! यदि तुम दोनों उनके दर्शनके अभिलागी हो तो
इस मानसरोवरमें स्नान करो । वहाँ तुम्हें शांघ ही गोपी
स्वरूपकी प्राप्ति हो जायगी, तब तुम रासमण्डलके भीतर
जा सकते हो ॥ ५-७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—द्वारपालिकाओंके यो कहनेपर
वे सुनि और शिव मानसरोवरमें स्नान करके, गोपीभावको
प्राप्त हो, सहसा रासमण्डलमें गये ॥ ८ ॥

सुर्वजटित पश्चारागमयी भूमि उस रासमण्डलकी
मनोहरता बढ़ा रही थी । वह सुन्दर प्रेदेश माधवीलका-
समूहोंसे ज्यास और कदम्बबृक्षोंसे आच्छादित था ।
वसन्त शृतु तथा चन्द्रमाकी चाँदनीने उसमें प्रदीप कर
रखा था । सब प्रकारकी कौशलपूर्ण सजावट वहाँ हृषि-
गोचर होती थी । यमुनाजीकी रत्नमयी संदिशों तथा तोलिकाओं-
से रासमण्डलकी अपूर्व शोभा हो रही थी । मोर, हंस,
चातक और कोकिल वहाँ अपनी मीठी बोली सुना रहे

थे । वह उत्कृष्ट प्रेदेश यमुनाजीके जलस्तरमें दीतल-मन्द-
बायुके बहनेमें हिलते हुए तरुपलब्दोंद्वारा बड़ी शोभा पा-
रहा था । सभामण्डपों और वीथियोंसे, प्राङ्गणों और
खंभोंकी पंक्तियोंसे, फहराती हुई दिव्य पताकाओंसे और
सुवर्णमय कलशोंमें सुशोभित तथा इवतारण पुष्पमूहोंमें
सजित तथा पुष्पमन्दिर और मार्गमें एवं भ्रमरोंकी गुंजारों और
बाणोंकी मधुर ध्वनियोंसे व्यास रासमण्डलकी शोभा देखते
ही बनती थी । सहस्रदल कमलोंकी सुगन्धमें पूरित दीतल,
मन्द एवं परम पुण्यमय समीर सब ओरसे उस स्थानको
सुवासित कर रहा था । रासमण्डलके निमुड़में कोटि-कोटि
चन्द्रमाओंके भमान प्रकाशित होनेवाली पंचिनीमायिका
हंसगामिनी श्रीराधामें सुशोभित श्रीकृष्ण विराजमान थे ।
रासमण्डलके भीतर निरन्तर स्त्रारत्नोंस धिरे हुए श्यामसुन्दर-
विग्रह श्रीकृष्णका लावण्य करोड़ों कामदेवोंको लिजित करने-
वाला था । दाथमें बंशी और बैत लिये तथा श्रीअङ्गपर
पीताम्बर धारण किये वे वडे मनोहर जान पड़ते थे ।
उनके बक्षरथलमें श्रीकृष्णका निह्न कौस्तुभमणि तथा बनमाला
शोभा दे रही थी । शंखरते हुए गृपुर, पायजेव, करधनी
और वाजदंदमें वे चिर्मुकित थे । हार, कङ्कण तथा बाल-
रविके भमान कान्तिमान दो कुण्डलोंसे वे मण्डित थे । करोड़ों
चन्द्रमाओंकी कान्ति उनके आगे फीकी जान पड़ती थी ।
भस्त्रक्षण मोरमुकुट धारण किये वे नन्दनन्दन मनोरथ-
दान दक्ष कटाखोंद्वारा युवतियोंका मन हर लेते थे ॥ ९-११ ॥

राजन् ! आसुरि और शिव—दोनोंने दूरसे ही जब
श्रीकृष्णको देखा तो हाथ जोड़ लिये । नृपश्रेष्ठ ! समस्त
गोपसुन्दरियोंके देखते-देखते श्रीकृष्ण-चरणारविन्दमें मस्तक
झुमाझर, आनन्दविहूल हुए उन दोनोंने कहा ॥ २०३ ॥

दोनों बोले—कृष्ण ! महायोगी कृष्ण ! देवाखिदेव
जगदीश्वर ! पुण्डरीकाश ! गोविन्द ! गरुडध्वज ! आपको
नमस्कार है । जनादन ! जगज्ञाथ ! पश्चनाम ! त्रिविक्रम !
दामोदर ! हृषीकेश ! बासुदेव ! आपको नमस्कार है ।
देव ! आप परिपूर्णतम साक्षात् भगवान् हैं । इन दिनों
भूतलका भारी भार हरने और सत्पुरुषोंका कल्याण

करनेके लिये अपने समस्त लोकोंको पूर्णतया शून्य करके यहाँ नन्दभवनमें प्रकट हुए हैं। बास्तवमें तो आप परात्पर परमात्मा ही हैं। अंशांदा, अंश, कला, आवेश तथा पूर्ण—समस्त अवतारसमूहोंसे संयुक्त हो, आप परिपूर्णतम परमेश्वर सम्पूर्ण विश्वकी रक्षा करने तथा वृन्दावनमें सरम रासमण्डलको भी अलंकृत करते हैं। गोलोकनाथ ! गिरिराजपते ! परमेश्वर ! वृन्दावनाधीश्वर ! नित्यविहार-लीलाका वितार चरोवाले राधावल्लभ ! ब्रजसुन्दरियोंके मुखमें अपना यशोगान सुनेवाले गोविन्द ! गोकुलपते ! भर्वथा आपसी जय हो। शोभाशालिनी निकुञ्जलताओंके विकासके लिये आप ऋदुगाज वसन्त हैं। श्रीगणेशिके वक्ष और कण्ठको विभूषित करनेवाले रत्नहार हैं। श्रीरासमण्डलके पालक, ब्रजमण्डलके अधीश्वर तथा ब्रह्माण्ड-मण्डलकी भूमिके संरक्षक हैं॥ २१-२६॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तब श्रीराधारहित भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न हो मन्द-मन्द सुसकराते हुए मेघगंगनकी-सी गम्भीर वार्णा में मुनिसे बोले ॥ २७ ॥

भ्रीभगवान्नके कहा—तुम दोनोंने साठ हजार वर्षोंतक निरपेक्षभावमें तप किया है, इसीमें तुम्हें मेरा दर्शन प्राप्त हुआ है। जो अकिञ्चन, द्वान्त तथा भवंत्र शत्रुभावनासं रहित है, वही मेरा सखा है। अतः तुम दोनों अपने मनके अनुमार अभीष्ट वर मांगो॥ २८-२९॥

शिव और आसुरि बोले—भूमन् ! आपको नमस्कार है। आप दोनों प्रिया-प्रियतमके चरणकमलोंकी संनिधिमें सदा ही वृन्दावनके भीतर हमारा निवास हो। आपके

इस प्रकार श्रीमर्ग-संहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत

पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

→ ३० ←

* कृष्ण कृष्ण महायोगिन् वेददेव जगत्पते । पुण्डरीकाश गोविन्द गसुद्धवज ते नमः ॥

जनादेव जगन्नाथ पश्चानाम त्रिविक्रम । दामोदर इषीकेश बासुदेव ननोडस्तु ते ॥

असैव देव परिपूर्णतमन्तु सक्षाद् भूभूरिमारहरणाय सर्ता शुभाय । प्रासोऽसि नन्दभवने परतःपरत्स्वं कृत्वा हि सर्वनिजलोकमशेषशून्यम् ॥

अंशाशक्ताशक्तकलभित्ताभिरामं वेशप्रपूर्णनिच्याभिरतीवयुक्तः । विश्वं विभार्य रसरासमलंकरोपि वृन्दावनं च परिपूर्णतमः स्वयं त्वम् ॥

गोलोकनाथ गिरिराजपते परेश वृन्दावनेश कृतनित्यविहारलील । राधापते ब्रजबृहनगीतकीैं गोविन्द गोकुलपते किल ते जयोऽस्तु ॥

श्रीपञ्चिकालतिकाकुटुम्बकरस्त्वं श्रीराधिकाहृदयकाण्डविभूषणस्त्वम् । श्रीरासमण्डलपतिर्ब्रजमण्डले श्रीब्रह्माण्डमण्डलसहीपरिपालकोऽसि ॥

(गर्ग ०, वृन्दावन ० २५ । २१-२६)

चरणसे भिज और कोई वर हमें नहीं रखता है; अतः आप दोनों—श्रीहरि एवं श्रीगणेशिकाको हमारा सादर नमस्कार है ॥ ३० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तब भगवान्नने ‘तथास्तु’ कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तभीसे शिव और आसुरि मुनि मनोहर वृन्दावनमें वशीवटके समीप रासमण्डलसे मण्डित कालिन्दाके निकटवर्ती पुलिनपर निकुञ्जके पास ही निवास करने लगे ॥ ३१-३२ ॥

तदनन्तर श्रीकृष्णने, जहाँ कमलपुष्टोंके सौरभयुक्त पराग उड़ रहे थे और भ्रमर मँडग रहे थे, उस पद्माकर वनमें गोपाङ्गनाओंके साथ रासक्रीड़ा प्रारम्भ की। मिथिलेश्वर ! उस समय श्रीकृष्णने छः मर्हानेकी रात बनायी। परंतु उस गमलीलामें सम्मिलित हुई गोपियोंके लिये वह सुख और आमोदसं पूर्ण रात्रि एक क्षणके समान बीत गयी। राजन् ! उन सबके मनोरथ पूर्ण हो गये। अरुणोदयकी वेलामें वे सभी ब्रजसुन्दरियाँ ह्युंड-की-ह्युंड एक साथ होकर अपने घरकी लौटीं। श्रीनन्दननन्दन साक्षात् नन्दमन्दिरमें चले गये और श्रीवृषभानुनन्दिनी द्वारंत ही वृषभानुपुरमें जा पहुँचीं ॥ ३३-३५ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका यह मनोहर रासोपाख्यान सुनाया गया, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यप्रद, मनोरथपूरक तथा मङ्गलका धाम है। साधारण लोगोंको यह धर्म, अथ और काम प्रदान करता है तथा मुमुक्षुओंको मोक्ष देनेवाला है। राजन् ! यह प्रसङ्ग मैंने तुम्हारे सामने कहा। अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ३७-३८ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका विरजाके साथ विहार; श्रीराधाके भयसे विरजाका नदीरूप होना, उसके सात पुत्रोंका उसी शापसे सात समुद्र होना तथा राधाके शापसे श्रीदामाका अंशतः शङ्खचूड होना

ब्रह्मलाल्हवने पूछा—महामते देवर्षे ! आप परावर वेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं । अतः यह वताइये कि अघासुर आदि दैत्योंकी ऊपोति तो भगवान् श्रीकृष्णमें प्रविष्ट हुई थी, और तु शङ्खचूडका तेज श्रीदामामें लीग हुआ; इसका कारण है ? अहो ! श्रीकृष्णचन्द्रका चरित्र अत्यन्त अद्भुत है ॥ १-२ ॥

नारदजी बोले—महामते नरेण ! यह पूर्वगालमें घटित गोलोकका दृच्छान्त है, जिस मैंने भगवान् नारायणके मुख्यमं सुना था । यह तर्वगमहारी पुण्य प्रसन्न तुम समझने सुनो । श्रीहरिके तीन पत्निया हूई—श्रीराधा, विजया (विरजा) और गृदेवी । इन तीनोंमें महात्मा श्रीकृष्णको श्रीराधा हां अधिक प्रिय है । राजन् ! एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण एकान्त कुञ्जमें कोटि चन्द्रमाओंकी नीं कानितवाली तथा श्रीराधिका मटका मुन्दरी विरजाके नाथ विहार कर रहे थे । सर्वोक्तु मुखमें यह सुनपर कि श्रीकृष्ण मेरी भौतिके साथ हैं, श्रीराधा भन-ही-मन अत्यन्त प्रिय हो उठती । सप्तलाके सौख्यमें उनको दुःख हुआ, तथा नगवन्-प्रसा श्रीराधा सौ योजन विस्तृत, सौ योजन ऊँचे और फरोड़ी अर्द्धविन्योग-से जुते सूर्यनुल्य-कानितमान् रथपर—जो कोटि पताकाओं और सुवर्ण-कलशोंमें मणिडत था तथा जिसमें विचित्र रंगके रसों, सुवर्ण और सोतियोंकी लङ्घियों लटक रही थीं—आरुढ़ हो, इस अरव वेत्रधारिणी सखियोंके साथ तत्काल श्रीहरिको देखनके लिये गयीं । उस निकुञ्जके द्वारपर श्रीहरिके द्वारा नियुक्त महावती श्रीदामा पहरा दे रहा था । उसे देखकर श्रीराधाने बहुत फटकारा और सखियोंनो द्वारा बेतमें पिटवाकर सहस्र कुञ्जदारके भीतर जानेको उद्यन हुई । सखियोंका कोलाहल सुनकर श्रीहरि वहांसे अन्तर्धन हो गये ॥ ३-११ ॥

श्रीराधाके भयसे विरजा सहस्र नदीके रूपमें परिणत हो, कोटियोजन विस्तृत गोलोकमें उसके चारों ओर प्रवाहित होने लगी । जैसे समुद्र इस भूतलको बेरे हुए है, उसी प्रकार विरजा नदी सहस्र गोलोकको अपने बेरेमें लेकर बहने

लगी । रत्नमय पुष्पोंसे विचित्र अङ्गोंवाली वह नदी विविध प्रकृतरके फूलोंकी छापमें अद्वित उण्णीष बद्धकी भाँति शोभा पाने लगी ।—‘श्रीहरि चले गये और विरजा नदीरूपमें परिणत हो गयी’—यह देख श्रीराधिका अपने कुञ्जको लौट गयी । नृपंश्वर ! तदनन्तर नर्दा-हृष्पमें परिणत हुई विरजाको श्रीकृष्णने गांधा ही अपने बरके प्रभावसे मूर्तिमर्ती एवं विमल बल्ला-भूषणोंमें विनूपित दिव्य नारी बना दिया । इसके बाद वे विरजा तटवर्ती बनमें ब्रह्मदावनके निकुञ्जमें विरजाके साथ रव राम करने लो । श्रीकृष्णके तेजसे विरजाके गर्भसे सात पुत्र हुए । वे सातों शिशु अपनी बालकीड़ामें निकुञ्जकी शोभा पढ़ाने लाए । एक दिन उन बालकोंमें क्षणिका हुआ । उनमें जो वहं थे, उन सप्तने मिलकर छोटेको मारा । लोटा मध्यनीत होकर भागा और मातानी गोदमें चला गया । सती विरजा पुत्रको आश्वासन दे उसे दुलारने लगी । उस समय साक्षात् भगवान् वहांमें अन्तर्धन हो गये । तब श्रीकृष्णके विरहमें व्याकुल हो, रोपसे अपने पुत्रको शाप देते हुए विरजाने कहा—‘तु बुद्ध ! तू श्रीकृष्णं वियोग कराने-वाला है, अतः जल हो जा; तेरा जल मनुष्य कभी न पाये ।’ फिर उसने बहोंको शाप देते हुए कहा—‘तुम सब-के-सभ क्षणिकाल हो; अतः पृथ्वीपर जाओ और वहाँ जल होकर रहो । तुम सखीं पृथक्-पृथक् गति होगी । एक-दूसरेमें कभी मिल न सकोगे । सदा ही प्रलयकालमें तुम्हारा नैमित्तिक मिलन होगा ॥ १२-२२ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रस्तार माताके शापसे वे सब पृथ्वीपर आ गये और राजा प्रियव्रतके रथके पद्धियोंसे बर्ना हुई परिवाओंमें समाविष्ट हो गये । खारा जल, इस्तुरस, मदिरा, घृत, दधि, क्षीर तथा शुद्ध जलके बे सात सागर हो गये । राजन् ! वे सातों समुद्र अक्षोभ्य तथा दुर्लक्षण हैं । उनके भीतर प्रवेश करना अत्यन्त कठिन है । वे बहुत ही गहरे तथा लाल योजनसे लेकर क्रमशः द्विगुण विस्तारवाले होकर पृथक्-पृथक् द्वायोंमें स्थित हैं । पुत्रोंके चले जानेपर विरजा उनके स्नेहसे अत्यन्त व्याकुल हो

उठी । तब अपनी उस विरहिणी प्रियाके पास आकर श्रीकृष्णने वर दिया—‘भीरु ! तुम्हारा कभी मुझसे वियोग नहीं होगा । तुम अपने तेजसे सदैव पुत्रोंकी रक्षा करती रहोगी ।’ विदेहराज ! तदनन्तर श्रीराधाको विरह-दुःखसे व्यथित जान इयामसुन्दर श्रीहरि स्वयं श्रीदामाके साथ उनके निकुञ्जमें आये । निकुञ्जके द्वारपर सलाके साथ आये हुए प्राण-बलभक्ती और देखकर राधा मानवती हो उनसे इस प्रकार बोलीं ॥ २३-२९ ॥

श्रीराधाने कहा—हरे ! वहाँ चले जाओ, जहाँ तुम्हारा नया नेह जुड़ा है । विरजा तो नदी हो गयी, अब तुम्हें उसके साथ नद हो जाना चाहिये । जाओ, उसीके कुञ्जमें रहो । मुझसे तुम्हारा क्या मतलब है ? ॥ ३० ॥

नारदजी कहने हैं—राजन् ! यह सुनकर भगवान् विरजाके निकुञ्जमें चले गये । तब श्रीकृष्णके मित्र श्रीदामाने राधासे रोषपूर्वक कहा ॥ ३१-३२ ॥

श्रीदामा बोला—राधे ! श्रीकृष्ण साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् हैं । वे स्वयं असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिगति और गोलोकके स्वामीके रूपमें विराजमान हैं । परस्पर श्रीकृष्ण तुम-जैसी करोड़ों शक्तियोंको बना सकते हैं । उनकी तुम निन्दा करती हो ? ऐसा मान न करो, न करो ॥ ३२-३३२ ॥

राधा बोली—ओ मूर्ख ! तू वापकी स्तुति करके मुझ माताकी निन्दा करता है ! अतः दुर्बुद्ध ! रक्षस हो जा और गोलोकसे बाहर चला जा ॥ ३४२ ॥

श्रीदामा बोला—शुभे ! श्रीकृष्ण सदा तुम्हारे अनुकूल रहते हैं, इसीलिये तुम्हें इतना मान हो गया है । अतः परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णसे भूतलपर तुम्हारा सौ बातोंके लिये वियोग हो जायगा, इसमें संशय नहीं है ॥ ३५-३६ ॥

इस प्रकार श्रीराध-संहितामें बुद्धावनखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाक्ष-संवादमें ‘शङ्खचूडोपारव्यान’ नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६ ॥

श्रीबुद्धावनखण्ड सम्पूर्ण

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार परस्पर शाप देकर अपनी ही नरनीसे भयभीत हो, जब राधा और श्रीदामा अत्यन्त विन्तामें द्वूष गये, तब स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ प्रकट हुए ॥ ३७ ॥

श्रीभगवान् ने कहा—राधे ! मैं अपने निगमस्वरूप वचनको तो छोड़ रक्ता हूँ, किंतु भक्तोंकी बात अन्यथा करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ ॥ कल्याणि राधिके ! शोक मत करो, मेरी बात सुनो । वियोगकालमें भी प्रतिमास एक बार तुम्हें मेरा दर्शन हुआ करेगा । वाराहकल्पमें भूतलका भार उतारने और भन्जनोंको दर्शन देनेके लिये मैं तुम्हारे साथ पृथ्वीपर चलूँगा । श्रीदामन् ! तुम भी मेरी बात सुनो । तुम अपने एक अंशांग असुर हो जाओ । वैवस्वत मन्वन्तरमें रासमण्डलमें आकर जब तुम मेरी अवहेलना करोगे, तब मेरे हाथसे तुम्हारा वध होगा, इसमें संशय नहीं है । तत्प्रात्, फिर मेरे वरदानसे तुम अपना पूर्व शरीर प्राप्त कर लोग ॥ ३८-४२ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार शापवश महातपस्वी श्रीदामाने पूर्वकालमें यक्षलोकमें सुधनके घर जन्म लिया । वह शङ्खचूड नामसे विल्यात हो यक्षराज कुबेरका सेवक हो गया । यही कारण है कि शङ्खचूडकी ज्योति श्रीदामामे लीन हुई ॥ ४३-४४ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण स्वात्माराम हैं, एकमात्र अद्वितीय परमात्मा हैं । वे अपने ही धाममें लीलापूर्वक सारा काय करते हैं । जो रावेश्वर, सर्वरूप एव महान् आत्मा हैं, उनके लिये यह सब कार्य अद्भुत नहीं है; मैं उन श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार करता हूँ ॥ ४५ ॥

विदेहराज ! यह मनोहर बृन्दावनखण्ड मैंने तुम्हारे सामने कहा है । जो नरश्रेष्ठ इस चरित्रका अवण करता है, वह पुण्यतम परमपदको प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

* वचनं वै स्वनिगमं दूरीकर्तुं क्षमोऽस्म्यद्युम् । मत्तमां वचनं राधे दूरीकर्तुं न च क्षमः ॥

श्रीराधाकृष्णाम्यां नमः

गिरिराजखण्ड

पहला अध्याय

श्रीकृष्णके द्वारा गोवर्धनपूजनका प्रस्ताव और उसकी विधिका वर्णन

राजा बहुलाभ्वने पूजा—देवये ! जैसे बालक खेल ही-खेलमें गोवर्धने से उत्थाइवर हाथमें ले लेता है, उसी प्रकार भगवान् ने एक ही हाथमें महान् पर्वत गोवर्धनको लीलापूर्वक उठाकर छत्रकी भाँति धारण कर लिया था—ऐसी बात सुनी जाती है। ऐसे यह प्रसङ्ग कैसे आया ? मुनिसत्तम ! इन परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके उसी दिव्य अद्भुत चरित्रका आप वर्णन कीजिये ॥ १२ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! जैसे खेती करनेवाले किसान राजा को वार्षिक कर देते हैं, उसी प्रकार ममस्तम गोप प्रतिवर्ष शरदमूर्तुमें देवराज इन्द्रके लिये वलि (पूजा और भोग) अर्पित करते हैं। एक समय श्रीहरिने महेन्द्रग्रामके लिये भास्मशीरा संचय होता देल गोपसभामें नन्दजीसे प्रश्न किया। उनके उस प्रश्नमें अन्यान्य गोप भी सुन रहे थे ॥ ३४ ॥

श्रीभगवान् घोले—यह जो इन्द्रकी पूजा की जाती है, इसका क्या कल है ? विदान् लोग इसका कोई लौकिक कल बताते हैं या पारलैकिक ? ॥ ५ ॥

श्रीनन्दने कहा—श्यामसुन्दर ! देवराज इन्द्रका यह पूजन भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला परम उत्तम माधन है। भूतलपर इसके विना भनुष्य कहाँ और कभी सुखी नहीं हो सकता ॥ ६ ॥

श्रीभगवान् घोले—पिताजी ! इन्द्र आदि देवता अपने पूर्वकृत पुण्यक्रमोंके प्रभावमें ही सत्र और स्वर्गका सुख भोगते हैं। भोगद्वारा शुभकर्मका क्षय हो जानेपर उन्हें भी मर्त्यलोकमें आना पड़ता है। अतः उनकी सेवाको आप मोक्षका साधन मत मानिये। जिसमें परमेष्ठी ब्रह्माको भी भय प्राप्त होता है, फिर उनके द्वारा पृथ्वीपर उत्तम विषये गये प्राणियोंकी तो बात ही क्या है, उस कालको ही श्रेष्ठ विदान् सबसे उत्कृष्ट, अनन्त तथा सब प्रकारमें वलिष्ठ मानते हैं। इसलिये उस कालका ही आश्रय लेकर मनुष्यको सत्कर्मद्वारा सुरेश्वर यशपति परमात्मा श्रीहरिका भजन करना चाहिये। अपने सम्मूर्ख सत्कर्मोंके फलका मनसे परिस्थापन करके जो

श्रीहरिका भजन करता है, वही परममोक्षको प्राप्त होता है; दूसरे किसी प्रकारमें उसको मोक्ष नहीं मिलता। गौ, ब्राह्मण, साधु, अग्नि, देवता, वेद तथा धर्म—ये भगवान् यजेश्वरकी विमूर्तियाँ हैं। इनको आधार यनाकर जो श्रीहरिका भजन नहीं है, वे नहीं इस लोक और परलोकमें सुख पाते हैं। भगवान्के वशरथलमें प्रकट हुआ वह गिरिन्द्रोंका सम्प्राट् गोवर्धन नामक पर्वत महर्षि पुलस्त्यके प्रभावमें इस वज्रमण्डलमें आया है। उसके दर्शनमें मनुष्यका इस जगत्में पुनर्जन्म नहीं होता। गौओं, ब्राह्मणों तथा देवताओंका पूजन करके आज ही यह उनमें भेट-नामग्री महान् गिरिराज-को अर्पित की जाय। यह यज नहीं, यज्ञोंका राजा है। यही मुक्ष प्रिय है। यदि आप यह काम नहीं करना चाहते तो जाइयें; जैसा इच्छा हो, वैसा कीजिये ॥ ७-१२ ॥

श्रीनारदजी कहने हैं—राजन् ! उन गोपोंमें सञ्चन्दनाभ्यु, एक वढ़ बढ़ गोप थे, जो वढ़ नीतिवंता थे। उन्होंने अत्यन्त प्रमद्ध होए र नन्दजीके सुनत हुए श्रीकृष्णसे कहा ॥ १३ ॥

सञ्चन्द घोले—नन्दनन्दन ! तात ! तुम तो साक्षात् ज्ञानकी निधि हो। गिरिराजकी पूजा किस विधिसे करना होगी, यह ठांक-ठीक बताओ ॥ १४ ॥

श्रीभगवान् कहा—जहाँ गिरिराजकी पूजा करनी हो, वहाँ उनके नीचेकी धरतीको गोवर्धनमें लीप-पोतकर वहीं सब सामग्री रखनी चाहिये। इन्द्रियोंको वशमें रखकर बड़े भक्ति भावसे ‘सहस्रशारीरा०’ मन्त्र पढ़ते हुए, ब्राह्मणोंके साथ रहकर गङ्गाजल या यमुनाजलसे गिरिराजको स्नान कराना चाहिये। फिर इवेत गोदुभक्ती धारासे तथा पञ्चमूर्त्ये स्नान कराकर, पुनः यमुना-जलसे नहलाये। उसके बाद गन्ध, पुष्प, वस्त्र, आसन, भाँति भाँतिके नैवेद्य, माला, आभूषण-समूह तथा उत्तम दीपमाला समर्पित करके गिरिराजकी परिक्रमा करे। इसके बाद साष्टाङ्ग प्रणाम करके, दोनों हाथ जोड़कर, इस प्रकार कहे—‘जो श्रीबृन्दावनके अद्भुत अवस्थित तथा गोलोकके मुकुट हैं, पूर्णत्रिष्ण परमात्माके

छत्ररूप उन गिरिराज गोवर्धनको हमारा बारंबार नमस्कार है।' तदनन्तर पुष्पाङ्गालि अर्पित करे। उसके बाद धैटा, फ़ाक्ष और मृदङ्ग आदि मधुर ध्वनि करनेवाले बाजे बजाते हुए गिरिराजकी आरती करे। तदनन्तर 'वेदाहमेतं पुरुषं महामृतम्' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए उनके ऊपर लावाकी वर्षा करे और ऋषायूर्वक गिरिराजके समीप अज्ञकृत खांचित करे। फिर चौसठ कटोरोंको पाँच पद्मिनीयोंमें रखवे और उनमें तुलसीदल मिथित गङ्गा-यमुनाका जल भर दे। फिर एकाग्रचित्त हो गिरिराजकी सेवामें छप्पन भोग अर्पित करे। तत्पश्चात् अनिमें होम करके ब्राह्मणोंकी पूजा करे तथा गौओं और देवताओंपर भी गन्ध-पुष्प चढ़ाये। अन्तमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंमें सुगन्धित मिष्ठान भोजन कराकर, अन्य लोगोंको—यहाँतक कि चण्डाल भी छूटने न पाये—उत्तम भोजन दे। इनके बाद गोपियों और गोपियोंके समुदाय गौओंके सामने दृश्य करें, मङ्गल-गीत गायें और जन जयकार करते हुए गोवर्धन-पूजनोत्सव सम्पन्न करें। ॥१५-२६॥

इस प्रकार श्रीर्ग-संहितामें गिरिराजस्वार्ण्ये अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीगिरिराजकी पूजा-विधि-

वर्णन' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

जहाँ गोवर्धन नहीं हैं, वहाँ गोवर्धन-पूजाकी कथा विधि है यह सुनो। गोवर्धने गोवर्धनका बहुत ऊँचा आकार बनाये। फिर उन्हें पुष्प-समूहों, लता-जालों और सीकोने सुशोभित करके, उसे ही गोवर्धन-गिरि मानकर सदा भूतल-पर मनुष्योंको उसकी पूजा करनी चाहिये। यदि कोई गोवर्धनकी शिला ले जाकर पूजन करना चाहे तो जितना बड़ा प्रस्तर ले जाय, उतना ही सुवर्ण उम पर्वतपर छोड़ दे। जो बिना सुवर्ण दिये वहाँकी शिला ले जायगा, वह महारौप नरकमें पड़ेगा। शालग्राम भगवान्‌की सदा सेवा करनी चाहिये। शालग्रामको पूजाको पातक उसी तरह स्पर्श नहीं करते, जैसे पद्मपत्रपर जलका लेप नहीं होता। जो श्रेष्ठ द्विज गिरिराज-शिलाकी सेवा करता है, वह सातों द्वीपोंसे युक्त भूमण्डलके तीर्थोंमें स्नान करनेका फल पाता है। जो प्रतिवर्ष गिरिराजकी महाएँजा करता है, वह इन लोकमें सम्पूर्ण सुख भोगकर परलोकमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥२७-३२॥

दूसरा अध्याय

गोपेंद्रारा गिरिराज-पूजनका महोत्सव

श्रीनारदजी कहते हैं—साधात् श्रीनन्दनन्दनकी यह बात सुनकर श्रीनन्द और सन्नन्द आदि ब्रजेश्वरगण बड़े विस्मित हुए। फिर उन्होंने पहलेका निश्चय त्यागकर श्रीगिरिराज-पूजनका आयोजन किया। मिथिलेश्वर ! नन्दराज अपने दोनों पुत्र—बलराम और श्रीकृष्णको तथा भेट-पूजाकी सामग्रीओं लेकर यशोदाजीके साथ गिरिराज-पूजनके लिये उत्कर्णित हो प्रसन्नतापूर्वक गये। उनके साथ गर्गजी भी थे। वे अपनी पत्नीके साथ बहुत ऊँचे चित्र विनिन्द्रियोंसे रँगे हुए तथा सोनेकी सॉकल धारण करनेवाले हाथीपर आरूढ़ हो, गौओंके साथ गोवर्धन पर्वतके समीप गये, मानो इन्द्राणीके साथ इन्द्र ऐरावतपर आरूढ़ हो शरद श्रुतुके इयत बादलोंके साथ उपस्थित हुए हों। नन्द, उपनन्द और वृषभानुगण अपने पुत्रों, पोतों और पलियोंके साथ यशोका सारा सम्भार लिये गिरिराजके पास आ पहुँचे। सहस्रों बालरुपियोंकी दीपिसे प्रकाशित विशिकामें आरूढ़ हो दिय बग्गों तथा रस्मय आभूषणोंसे विभूषित श्रीराधा सखी-समुदायके साथ वहाँ आकर उसी प्रकार

सुशोभित हुईं, जैसे शाची चकोरी और भ्रमरियोंके साथ शोभा पाती हीं ॥ १-५ ॥

राजत् ! श्रीराधाके दोनों बगलमे आशी हुई विविध अलंकारोंसे अलंकृत तथा करोड़ों समियोंसे आबृत दो सर्व-श्रेष्ठ चन्द्रमुखी सखियाँ—ललिता और विशाला—चार चँचर हुलाती हुई शोभा पाती थीं। नंदश्वर ! इसी प्रकार रमा, विरजा, माधवी, माया, यमुना और गङ्गा आदि वत्तीस सखियाँ, आठ सखियाँ, सोलह सखियाँ और उन सबके यूथमें सम्मिलित असंख्य सखियाँ वहाँ आयीं। मिथिलानिवासिनी, कोसल-प्रदेशवासिनी तथा अयोध्यापुरनिवासिनी, श्रुतिरूपा, शृष्टिरूपा, यशोनीताम्बरपा तथा वनवासिनी गोपियोंका समुदाय भी वहाँ उपस्थित हुआ। रमा आदि वैकुण्ठवासिनी देवियाँ, वैकुण्ठसे भी ऊपरके लोकोंमें रहनेवाली दिव्याङ्गनाएँ, परम उच्चबल द्यंतदीपकी निवासिनी बालाएँ और प्रुवादि लोकों तथा लोकाचलमें रहनेवाला देवारूपा गोपाङ्गनाओंका दल भी वहाँ आ गया। जो समुद्रसे उत्पन्न लक्ष्मीकी सखियाँ थीं, दिव्य गुणत्रयमयी अङ्गनाएँ थीं, अदिव्य

गिरिराजस्तुष्टकी बनिताएँ थीं; जो ओषधिस्वरूपा थीं, औ जालधरके अन्तःपुरकी छियाँ थीं, जो समुद्र-कन्याएँ थीं तथा जो वर्षभूतीनगरी तथा सुतल आदि लोकोंमें निवास करनेवाली थीं, उन समस्त दिग्भाङ्गनाओंका समुदाय गिरिराज गोवर्धनके पास आकर विराजमान हुआ। इसी प्रकार अप्सराओं, समस्त नागकन्याओं तथा वज्रासिनियोंके यूथ भी ब्रजाभूषणोंसे विभूषित हो, हाथोंमें पूजन-सामग्री और प्रदीप लिये गिरिराजके पास आ पहुँचे। बालक, युवक और बृद्ध गोप भी पीताम्बर, पगड़ी तथा मोरपंखसे मणित तथा सुन्दर हाथ गुज्जा और बनमालाओंमें विभूषित हो, नृन यष्टि तथा वेणु लिये, वहाँ आकर शोभा पाने लगे। गिरिराज हिमालयके मुखसे उस उत्सवका समाचार मुनकर गङ्गाधर शिव मस्तकपर जटा-जटू बांधि, हाथमें कपाल लिये, अङ्गोंमें चिताकी भस्म लगाये, सर्पोंकी माला तथा कंगनोंसे विभूषित हो, माँग, धन्तुर और विष पीकर मत्त हुए, गिरिराज-नन्दिनी उमाके साथ आदिवाहन नन्दीश्वरपर आरुद हो, प्रमथगणोंसे चिरे हुए, गिरिराज-मण्डलमें आये। मुख्य-मुख्य राजर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, सिंदेश्वर, हस आदि योगेश्वर तथा सहस्रों ब्राह्मण-बृन्द गिरिराजका दर्शन करनेके लिये आस पास एकत्र हो गये ॥ ६—१५ ॥

गोवर्धन पर्वतकी एक-एक शिला रत्नमयी हो गयी। उसके मुख्यमय शूङ्ग चारों ओर अपनी दीसि कैलाने लगे। राजन् ! वह पर्वत मतवाले भ्रमरों तथा निक्षर शोभित कन्दराओंसे उत्तरकाय गरजराजकी शोभा धारण करने लगा। उसी समय मेह और हिमालय आदि गिरिन्द्र दिव्य रूप धारण करके, भेट और माझलिक चतुर्हाँ द्वारमें लिये मूर्तिमान गोवर्धनको प्रणाम करने लगे। भगवान् श्रीकृष्णकी बतायी हुई विधिके अनुसार दिजोंद्वारा गोवर्धन-पूजन सम्पन्न करके, ब्राह्मणों, अग्नियों तथा गोधनकी समयकू पूजा करनेके पश्चात्, ब्रजेश्वर नन्दने गिरिराजकी सेवामें बहुत सा धन तथा बहुमूल्य

इस प्रकार श्रीर्ग-संहितामें गिरिराजस्तुष्टक, अन्तर्गत नारद-ब्रह्मलाश्व-संवादमें गिरिराज-महोत्सवका दर्जन' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

श्रीकृष्णका गोवर्धन पर्वतको उठाकर इन्द्रके द्वारा क्रोधपूर्वक करायी गयी घोर जलवृष्टिसे रक्षा करना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर मेरे मुखसे अपने यजका लोप तथा गोवर्धन-पूजनोत्सवके सम्बन्ध होनेका

भेट-सामग्री प्रस्तुत की। नन्द, उपनन्द, ब्रह्मानु, गोपीबृन्द तथा गोपगण नाचने, गाने और बाजे बजाने लगे। उन सबके नाथ हृष्टसे भरे हुए श्रीकृष्णने गिरिराजकी प्ररिकमा की। आकाशसे देवता फूल वरसाने लगे और भूतलवासी जनसमुदाय लाजा (लावा, या खील) छीटने लगा। उस यशमें गिरिन्द्रोंका सप्तांश् गोवर्धन लोगोंसे घिरकर किसी महाराजके समान सुशोभित होने लगा। साक्षात् श्रीकृष्ण भी व्रजस्थित शैल गोवर्धनके बीचमें एक दूसरा विशाल रूप धारण बरके निकले और ऐसे गिरिराज गोवर्धन हुए—यों कहते हुए बहांका साग अन्नकूट भोग लगाने लगे। गोपालों और गोपियोंके समुदायमें जो मुख्य-मुख्य लोग थे, उन्होंने गिरिका यह प्रभाव अपनी आँखों देखा तथा गिरिराजको वहाँ बर देनेके लिये उद्यत देव सब के सब आश्चर्यचित हो उठे। सबके मनमें आग्रह उल्लास छा गया ॥ १६—२२ ॥

उस समय गोपीयोंने कहा—प्रभो ! आज हमने जान लिया कि आप साक्षात् गिरिराज देवता है। स्वयं नन्द-नन्दनने हमें आपके दर्शनका अवसर दिया है। आपकी कृपामें हमारा गोधन और पन्धुबर्ग प्रतिदिन इस भूतलपर बृद्धिको प्राप्त हो। 'ऐसा ही होगा'—यों कहकर किरीट और केयूर आदि आमूर्योंमें मनोहर अङ्गवाले दिव्यरूपधारी गिरिराजराज गोवर्धन ध्यानभरमें वहा उनके निकट ही अन्तर्धान हो गये। तब नन्द, उपनन्द, ब्रह्मानु, ब्रह्मराम, ब्रह्मभानुराज सुनन्द, धीनन्दराज, श्रीहरि एवं समस्त गोप-गोपीयाण अपने गोधनोंके साथ वहाँसे चले। ब्राह्मण, योगेश्वर-समुदाय, भिद्यमंथ, शिव आदि देवता तथा अन्य सब लोग गिरिराज हो, प्रणाम और उनका पूजन करके प्रसन्नता-पूर्वक अनिच्छासे अपने-अपने धरको गये। राजन् ! श्रीकृष्ण-चन्दके इस उत्तम चरित्रका तथा गिरिराजराजके उस विचित्र महोत्सवका मैने तुम्हारे सामने बर्णन किया। यह पावन प्रसङ्ग बड़े-बड़े पापोंको हर लेनेवाला है ॥ २३—२७ ॥

समाचार द्वन्दकर देवराज इन्द्रने बहा क्रोध किया। उन्होंने उस सांबर्तक नामक भेगणको, जिसका बन्धन केवल

प्रलयकालमें खोला जाता है, बुलाकर तत्काल ब्रजका विनाश कर डालनेके लिये भेजा। आज्ञा पासे ही विचित्र वर्णवाले मेघगण दीपपूर्वक गर्जना करते हुए चले। उनमें कोई काले, कोई पीले और कोई हरे रंगके थे। किन्हींकी काल्पि इन्द्र-गोप (बीरबहूटी) नामक कीड़ोंकी तरह लाल थी। कोई कफ्फुके समान सफेद थे और कोई नील कमलके समान नीली प्रभासे युक्त थे। इस तरह नाना रंगोंके मेघ मदोन्मत्त हो हाथीके समान मोटी वारिधाराओंची वर्षा करने लगे। कुछ चक्कल मेघ हाथीकी सैँडके समान मोटी धाराएँ गिगाने लगे। पर्वतशिखरके समान करोड़ों प्रस्तर-खण्ड बहाँ बहें बेगमें गिरने लगे। साथ ही प्रचण्ड अँधी चलने लगी, जो वृक्षों और घरोंको उखाड़ के करती थी। मिथिलेन्द्र ! प्रलयकर मंधों तथा वत्प्रापोंका महाभयंकर शब्द ब्रजभूमिपर व्याप्त हो गया। उस भयकर नादसे गातों लोकों और पातालोंसहित ब्रह्मण्ड गूँज उठा, दिग्गज विचालित हो गये और आकाशमें भूतलपर तारे दूट-दूटकर गिरने लगे। अब तो प्रधान-प्रधान गोप भयभीत हो, प्राण बनानीकी इच्छामें अपने-अपने शिशुओं और कुदुम्बको आगे करके नन्दमन्दिरमें आये। ब्रह्मामसहित परमेश्वर श्रानन्दनन्दनकी शरणमें जाकर समस्त भयभीत ब्रजवासी उन्हें प्रणाम करके कहने लगे ॥ १-१० ॥

गोप बोले—महावाहु राम ! राम !! और ब्रजेश्वर कृष्ण !! इन्द्रके दिये हुए इस महान् कष्टसे आप अपने जनोंकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। तुम्हारे कहनेमें हमलोगोंने इन्द्रयाग छोड़कर गोवर्धन पूजाका उत्सव मनाया, इससे आज इन्द्रका कोप बहुत बढ़ गया है। अब दीप बताओ, हमें क्या करना चाहिये ? ॥ ११-१२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! गोपी और ब्राह्मणोंने युक्त गोकुलको व्याकुल देख तथा बछड़ोंसहित गो-समुदायको भी पीड़ित निहार, भगवान् विना किसी घबराहटके बोले ॥ १३ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—आपलोग ढरें नहीं। समस्त परिकरोंके साथ गिरिराजके तटपर चलें। जिन्होंने तुम्हारी पूजा ग्रहण की है, वे ही तुम्हारी रक्षा करेंगे ॥ १४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! यों कहकर श्रीहरि सज्जनोंके साथ गोवर्धनके पास गये और उस पर्वतके उखाइकर एक ही हाथसे खेल खेलमें ही धारण कर लिया।

जैसे बालक विना अपके ही गोवर-छता उठा लेता है; अथवा जैसे हाथी अपनी सैँडमें कमलको अनायास उत्ताप लेता है; उर्मी प्रकार कृष्ण करणामय प्रभु श्रीब्रह्माजननन्दन गोवर्धन पर्वतके धारण करके सुशोभित हुए ॥ १५-१६ ॥

फिर वे गोपोंसे बोले—मैया ! वाचा ! ब्रजवलभेदवर-गण ! आप सब लोग सारी सामग्री, समूल धन तथा गौओंके साथ गिरिराजके गतमें समा जाइये। यही एक ऐसा स्थान है, जहाँ इन्द्रका कोई भय नहीं है ॥ १७ ॥

श्रीहरिका यह वैचन सुनकर गोधन, कुदुम्ब तथा अन्य समस्त उपकरणोंके साथ वे गोवर्धन पर्वतके गढ़में समा गये। नरेश्वर ! श्रीकृष्णका अनुग्रहदन पाकर ब्रह्मामजी-सहित समस्त मखा ब्राह्म-बालोंने पर्वतको रोकनेके लिये अपनी-अपनी लाडियोंको भी लगा दिया। पर्वतके नीचे जलप्रवाहको आता देख भगवान्ने मन ही मन सुदर्शनचक्र तथा शेषका सरण करके उसके निवारणके लिये आज्ञा प्रदान की। मिथिलेश्वर ! उस पर्वतके ऊपर स्थित हो, कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी सुदर्शनचक्र गिरती हुई जलकी धाराओंकी उसी प्रकार पीने लगा, जैसे अगस्त्यमुनिने समुद्रको पी लिया था। उस पर्वतके नीचे शेषनागमें चारों ओरसे गोलाकार स्थित हो, उधर आंत हुए जलप्रवाहको उसी तरह रोक दिया, जैसे तटभूमि समुद्रको गेके रहती है। गोवर्धनधारी श्रीहरि एक सताईतक सुस्थिरभावमें खड़ रहे और समस्त गोप चकोरोंकी भाँगि श्रीकृष्णचन्द्रकी ओर निहारते हुए बैठे रहे। तदनन्तर मतवाले ऐरावत हाथीपर चढ़कर अपनी नेना साथ ले गोपमें भरे हुए देवराज इन्द्र ब्रजमण्डलमें आये। उन्होंने दूरसे ही नन्दब्रजको नष्ट कर डालनेकी इच्छासे अपना बछ नलानेकी चेष्टा की। किंतु माधवने ब्रह्मसहित उनकी भुजाको सम्भित कर दिया। फिर तो इन्द्र भयभीत हो गये और जैसे सिंहकी छोट खाकर हाथी भागे, उसी प्रकार वे सांवर्तकगणों तथा देवताओंके साथ सहसा भाग चले। नरेश्वर ! उर्मी समय सूर्योदय हो गया। ब्रादल इधर-उधर छूट गये। हवाका वेग रुक गया और नदियोंमें बहुत थोड़ा पानी रह गया। पृथ्वीपर पङ्कज का नाम भी नहीं था। आकाश निमंल हो गया। चौपाये और पक्षी सब और सुली हो गये। तब भगवान्नकी आज्ञा पाकर समस्त गोप पर्वतके गतमें अपना-अपना गोधन लेकर धीर-धीर बाहर निकले ॥ १८-१९ ॥

उसके बाद गोवर्धनधारीने अपने सखाओंसे कहा—
‘भुमलेग भी निकलो ।’ तब वे बोले—‘नहीं, हमलेग
अपने बख्ते पर्वतको रोके हुए हैं; तुम्हीं निकल जाओ ।’
उन सबको इस तरहकी शांतें करते देख महामना गोवर्धन-
धारी श्रीहरिने पर्वतका आधा भार उनपर ढाल दिया। बैचारे
निर्वल गोप-वालक उस भारमें दबकर गिर पड़े। तब
उन सबको उठाकर श्रीकृष्णने उनके देखते-देखते पर्वतको
पहलेकी ही भाँति लीलापूर्वक रख दिया। नरेश्वर! उस
समय प्रसुत गोपियों और प्रधान प्रधान गोपिने नन्दनन्दन-
का गन्ध और अक्षत आदिमें पूजन करके उन दर्दा
दूषका भोग अर्पित किया और उनको परमात्मा जनकर

इस प्रकार श्रीगर्भ-संहितामें श्रीगिरिराजसङ्केतः अनन्तर श्रीनरद-बहुलाइकन्तवादमें ‘गोवर्धनोद्घारणः’

नामवृत्तासामान्य पूरा हुआ ॥ ३ ॥

त्रौथा अध्याय

इन्द्रद्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति तथा सुरभि और ऐरावतद्वारा उनका अभिषेक

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर गर्व गल
जानेके कारण देवराज इन्द्र देवताओंके साथ उन पर्वतपर
आये और एकान्तमें श्रीकृष्णको प्रणाम करके उनमें
बोले ॥ १ ॥

इन्द्रने कहा—आप देवताओंके भी देवता, मवनमय,
पूर्ण परमेश्वर, पुराण पुरुष, पुरुषोत्तमोत्तम, प्रकृतिमें परे तथा
परात्पर श्रीहरि हैं। स्वर्गके स्वामी जगत्यते! मेरे रक्षा
कीजिये, रक्षा कीजिये। धर्म, गौ तथा वैदर्भी रक्षा करनेके
लिये दस अवतार धारण करनेवाले भगवान् आप हो हैं।
इस समय भी आप परिपूर्णतम वेचता कंसादि दंत्यराजोंके
विनाशके लिये ही अवतारण हुए हैं। आपकी मायामें जिसकी
चित्तवृत्ति मोहित है, जो मदम उन्मत्त और अवहेलनाका
पात्र है, वही मैं आपका अपराधी इन्द्र हूं हूं। युपते! जैमे
पिता पुत्रके अपराधको क्षमा कर देता है, उसी प्रकार आप
मुझ अपराधीको क्षमा करें। देवेश्वर! जगन्निवास! मुक्षपर
प्रसन्न होइये। गोवर्धनको उठानेवाले आप गोविन्दको
नमस्कार है। गोकुलनिवासी गोपालको नमस्कार है।
गोपालके पति, गोपीजनोंके भर्ता और गिरिराजके उद्धर्ताको
नमस्कार है। करुणाकी निधि तथा जगत्के विधाता, विश्व-
मञ्जलकरी तथा जगत्के निवासियान आप परमात्माको

सबने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। राजन्! नन्द,
यशोदा, रोहिणी, बलराम तथा सजन्द आदि हृषि गोपोंने
श्रीकृष्णको हृदयसं लगाकर धनका दान किया और दयासे
द्रवित हो, उन्हे शुभार्थीर्वाद प्रदान किये। तदनन्तर उनकी
भूरि-भूर प्रशंसा करके, समस्त व्रजवासी सफलमनोरथ हो
नन्दनन्दनके समीप गाने, बजाने और नाचने लगे तथा
उन श्राविणी आगे करके अपने धरको लौटे। उसी समय
हृषिये भरे हुए देवता वहाँ नन्दनवनके सुन्दर-सुन्दर फूलोंकी
बर्षा करने लगे तथा आकाशमें खड़े हुए प्रधान-प्रधान
गन्धर्व और शिद्धोंके समुदाय गोवर्धनधारीके यश गाने
लगे ॥ ३०—३७ ॥

—००५०—

त्रौथा अध्याय

प्रणाम है। जो विश्विमोहन तथा करोड़ों कामदेवोंके भी
मनको मथ देनेवाले हैं, उन वृपभानुर्निर्दिनोंके स्वामी
नन्दगजकुलदीपकृ परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार
है। अमेघ ब्रह्माण्डोंके पति, गोलेक्षमधामके अधिपति एवं
वल्लभके नाथ रहन्वाले आप साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णको
बारबार नामस्कार है, नमस्कार है ॥ २-५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—इन्द्रद्वारा किये गये इस
स्तोत्रवा जो प्रातःकाल उठकर पाठ करेगा, उसे सब प्रकारकी
सिद्धियाँ सुलभ होंगी और उसे किसी संकटसे भय नहीं
होगा। ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीहरिकी रुपांते करके देवराज

* त्वं देवदेवः परमेश्वरः प्रसुः पूर्णः पुराणः पुरुषोत्तमः ।
परात्परस्त्वं प्रसुते, परो दर्शनो पाइ वाहि शुपते जगत्पते ॥
दशवनारो यगवांस्त्वमेव रिक्षया धर्मगवा श्रुतेऽत् ।
अथैव जानः परिपूर्णदेवः कंसादिदैत्येन्द्रविनाशनाय ॥
स्वन्मायाय भोगितचित्तवृत्ति मदोद्धतं हेलनभाजनं साम् ।
पितेव पुत्रं शुपते क्षनस्व प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥

ॐ नमो गोवर्धनोद्घरणाय गोविन्दाय गोकुलनिवासाय गोपालव
गोपालपनये गोपीजनभन्ने गिरिजोद्वारे करुणानिषये जगद्विषये
जगद्वालाय जगन्निवासाय जगम्बोहनाय कोटिमन्मथमन्मथाय
वृषभानुसुनावराय श्रीनन्ददराजकुलप्रीयाय श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय

इन्द्रने हाथ जोड़कर समस्त देवताओंके लाय उन्हें प्रणाम किया। इसके बाद क्षीरसागरसे उत्पन्न हुई सुरभि गैने उस सुरम्य गोवर्धन पर्वतपर आकर अपनी दुर्घटारासे गोपेश्वर श्रीकृष्णको स्नान कराया। फिर मत गजराज ऐरावतने गङ्गाजलसे भरी हुई चार देंडोद्वारा भगवान् श्रीकृष्णका अभिषेक किया। राजन्! फिर हृषीलाससे भरे हुए समूर्ण देवता, गन्धर्व और किंनर ऋषियोंको साथ ले वेद-मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक पुष्टवर्ण करते हुए श्रीहरिकी सुति करने लगे॥६—१०॥

राजन्! श्रीकृष्णका अभिषेक सम्पन्न हो जानेपर वह महान् पर्वत गोवर्धन हर्ष पर्व आनन्दमें द्रवीभूत होकर सब और वहने लगा। तब भगवान् ने प्रसन्न होकर उसके ऊपर अपना हस्त-कमल रखका। नरेश्वर! उस पर्वतपर भगवान् के हाथका वह विह्व आज भी दृष्टिगोचर होता है। वह परम पवित्र तीर्थ हो गया, जो मनुष्योंके पापोंका नाश करनेवाला है। वहीं चरणचिह्न भी है। मैथिल! उसे भी परम तीर्थ समझो। जहाँ हस्तचिह्न है, वहीं उतना ही बड़ा चरणचिह्न

इस प्रकार श्रीगर्म-संहितामें श्रीगिरिराजलक्षणके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाद्व-संवादमें श्रीकृष्णका अभिषेक नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ॥४॥

पाँचवाँ अध्याय

गोपोंका श्रीकृष्णके विषयमें संदेहमूलक विवाद तथा श्रीनन्दराज एवं बृहभानुवरके द्वारा समाधान

श्रीनारदजी कहते हैं—एक समय समस्त गोपों और गोपियोंने नन्दनन्दनके उस अद्भुत चरित्रको देखकर यशोदातहित नन्दके पास जाकर कहा॥१॥

गोप बोले—हे यशोमय गोपराज! तुम्हारे वंशमें पहले कभी कोई भी ऐसा बालक नहीं उत्पन्न हुआ था, जो पर्वत उठा ले। तुम स्वयं तो एक शिलाखण्ड भी सात दिनतक नहीं उठाये रह सकते। कहाँ तो सात वर्षका बालक और कहाँ उसके द्वारा इतने बड़े गिरिराजको हाथपर उठाये रखना। इससे तुम्हारे इस महावली पुनर्के विषयमें

तत्संख्याप्तमत्ये गोलोक्यामधिवर्णपितये स्वयं भगवते समवत नमस्ते नमस्ते नमस्ते ।

श्रीनन्द उवाच

इति शक्तहतं स्तोतं ग्रातस्त्वाय यः पठेत् । सर्वसिद्धिर्वेत्स्य संक्षय भवं भवेत् ॥

(गर्म०, गिरिराज० ४ । २-६)

भी हुआ। मैथिल! उसी स्थानपर सुरभि देवीके चरणचिह्न भी बन गये। मिथिलेश्वर! श्रीकृष्णके स्थानके निमित्त जो आकाशगङ्गाका जल गिरा, उससे वहीं भानसी गङ्गा प्रकट हो गयी, जो समूर्ण पापोंका नाश करनेवाली है। नरेश्वर! सुरभिकी दुर्घ-धाराओंसे गोविन्दने जो स्नान किया, उसमें उस पर्वतपर 'गोविन्दकुण्ड' प्रकट हो गया, जो बड़े-बड़े पापोंको हर लेनेवाला परमपावन तीर्थ है। कभी-कभी उस तीर्थके जलमें दूधका-सा स्वाद प्रकट होता है। उसमें स्नान, करके मनुष्य साक्षात् गोविन्दके धामको प्राप्त होता है। इस प्रकार वहों श्रीहरिकी परिकल्पा करके, उन्हें प्रणामपूर्वक बलि (पूजोपहार) समर्पित करनेके पश्चात्, इन्द्र आदि देवता जय-जयकारपूर्वक उप बरसाते हुए बड़े सुखसे स्वर्गलोकको लैट गये। राजेन्द्र! जो श्रीकृष्णाभिषेककी इस कथाको सुनता है, वह इस अश्वमेष यज्ञोंके अवस्थ-स्नानसे अधिक पुण्य फलको पाता है। फिर वह परम-विधाता परमेश्वर श्रीकृष्णके परमपदको प्राप्त होता है॥११—१९॥

हमें शङ्का होती है। जैसे गजराज एक कमल उठा ले और जैसे बालक गोवरछाता हाथमें ले ले, उसी तरह इसने खेल-ही-खेलमें एक हाथसे गिरिराजको उठा लिया था॥२-४॥

यशोदे! तुम गोरी हो, और नन्दजी! तुम भी सुखर्ण-सहश गौरवर्णके हो; किंतु यह स्यामवर्णका उत्पन्न हुआ है। इसका रूप-रंग इस कुलके लोगोंसे सर्वथा विलक्षण है। यह बालक तो ऐसा है, जैसे क्षत्रियोंके कुलमें उत्पन्न हुआ हो। बलभद्रजी भी विलक्षण हैं, किंतु इनकी

विलक्षणता कोई दोषकी वात नहीं है; क्योंकि इनका जन्म चन्द्रयंशमें हुआ है। यदि तुम मन्य-सन्य नहीं चताओगे तो हम तुम्हें जातिसे विहित कर देंगे। अथवा यह चताओ कि गोपकुलमें इसकी उत्पत्ति कैसे हुई? यदि नहीं चताओगे तो हममें तुम्हारा क्षणका होगा ॥ ५-७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—गोपोका वात सुनकर यशोदाजी नो भयसे काँप उठी, किंतु उम नमय क्रोधसे भरे हुए गोपगांगमें नन्दराज हम प्रकार बोले ॥ ८ ॥

श्रीनन्दजीने कहा—गोपगण! मैं एकाग्रचित्त होकर गगर्जीका कही हुई वात तुम्हें चता रहा हूँ, जिससे तुम्हारे मनकी चिन्ता और व्यथा शीघ्र दूर हो जायगी। पहले 'कृष्ण'शब्दके अक्षरोंका अभिमाय सुनो— “ककार” कमलाकान्तका बाचक है; ‘कृष्ण’रामका बोधक है; ‘ककार’ इतेतदीपनिवासी पद्विध ऐश्वर्य-गुणोंके स्वामी भगवान् विष्णुका बाचक है; ‘गकार’ साक्षात् नरभिंश्वरूप है; ‘अकार’ उस अक्षर पुरुषका बोधक है, जो अनिनको भी पी जाता है। अन्तमें जो पवित्रमाया नामक दो चिन्दु हैं, ये ‘नर’ और ‘नारायण’ शृंगियोंके प्रतीक हैं। ये छहों पूर्ण तत्त्व जिस परिपूर्णतम परमात्मामें लीन हैं, वही साक्षात् ‘कृष्ण’ है। इसी अर्थमें इस बालकका नाम ‘कृष्ण’ कहा गया है। युगके अनुसार इसका वर्ण सत्ययुगमें ‘शुक्ळ’, ब्रेतामें ‘रक्त’ तथा द्वापरमें ‘पीत’ होता आया है। इस नमय द्वापरके अन्त और कलियुगके आदिमें यह बालक ‘कृष्ण’रूपको प्राप्त हुआ है, इस कारणसे यह नन्दनन्दन ‘कृष्ण’ नामसे विलक्षण है। पाँच शानेद्वयों तथा मन, बुद्धि, चित्त—ये तीन प्रकारके अन्तःकरण ‘आठ बमु’ कहे गये हैं। इनके अधिकाता देवता भी इनी नाममें प्रसिद्ध हैं। इन बसुओंमें असर्गमीर्हपसे स्थित होकर ये श्रीकृष्णदेव ही चेष्टा करते हैं, इसलिये इन्हें ‘वासुदेव’ कहा गया है ॥ ९-१५ ॥

“बृषभानुनन्दिनी राधा, जो कीर्तिके भवनमें प्रकट हुई है उसके साक्षात् पति ये ही हैं; इसलिये इन्हें ‘श्रावपति’ भी कहा गया है। ये साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति हैं और सबत्र व्यापक होते हुए भी स्वरूपसे गोलोकधारमें विराजते हैं। नन्द! वे ही ये भगवान् भूतलका भार उतारने, कंसादि दैत्योंको मारने तथा भक्तोंका पालन करनेके लिये तुम्हारे पुत्ररूपमें प्रकट

हुए हैं। भरतवंशी नन्द! इस बालकके अनन्त नाम हैं, जो बंदोंके लिये भी गोपनीय हैं तथा इसकी लीलाओंके अनुसार और भी बहुत-सं नाम विलक्षण होगे। अतः इसके कितने ही महान् विलक्षण कर्म क्यों न हों, उनके सम्बन्धमें कोई विस्मय नहीं करना चाहिये। गोपगण! अपने पुत्रके विषयमें गर्गजीकी कही हुई इस वातको सुनकर मैं कभी मदेह नहीं करता; क्योंकि पृथ्वीपर वेद-वाक्य और ब्राह्मण-वचन ही प्रमाण हैं” ॥ १६-२० ॥

गोप बोले—यदि महामुनि गर्गीचार्य तुम्हारे घर आये थे, तब उमी समय नामकरण-संस्कारमें तुमने भाई-बन्धुओंको क्यों नहीं बुलाया? चुपचाप अपने घरमें ही बालकका नामकरण संस्कार कर लिया! यह तुम्हारी अच्छी रीति है कि माग कार्य घरमें ही गुप-चुप कर लिया जाय ॥ २१-२२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर क्रोधसे भरे हुए गोप नन्दमन्दिरसे निकलकर बृषभानुवरके पास गये। बृषभानुवर नन्दराजके माक्षात् महायक थे, तथापि इसकी परवाह न करके जातीय संघटनके बलमें उन्मत्त हुए गोप उनके पास जाकर बोले ॥ २३-२४ ॥

गोपोंने कहा—हे बृषभानुवर! तुम हमारे ज्ञातिवर्गमें प्रधान और महामनवी हो। अतः गोपेवर भूपाल! तुम नन्दराजको जातिसे अलग कर दो ॥ २५ ॥

बृषभानुवर बोले—नन्दराजका क्या दोष है, जिससे मैं उनको त्याग दूँ? नन्दराज तो समस्त गोपोंके प्रिय, अपनी जातिके मुकुट तथा मेरे भी परम प्रिय हैं ॥ २६ ॥

गोप बोले—राजन्! महामते! यदि तुम नन्दराजको नहीं छोड़ोगे तो हम सब ब्रजवासी तुम्हें छोड़ देंगे। तुम्हारे घरमें कल्या वहीं आयुकी होकर विवाहके योग्य हो गयी है और तुमने हमारी जातिके प्रधान होकर भी भन-सम्पत्तिके मदसे मतवाले हो अवतक उसे किसी श्रेष्ठ वरके हाथमें नहीं सौंपा है, इसलिये तुम्हारे ऊपर पाप चढ़ा हुआ है। महामते नरेश! आजसे हम तुम्हें जातिभ्रष्ट तथा अपनेसे अलग मान लेंगे; नहीं तो शीघ्र नन्दराजको छोड़ दो, छोड़ दो ॥ २७-२९ ॥

बृषभानुवरने कहा—गोपगण! मैं एकाग्रचित्त होकर गर्गजीकी कही हुई वात चता रहा हूँ, जिससे शीघ्र

ही तुम्हारी निन्दा-व्यथा दूर हो जायगी । उन्होंने बताया है—
 “असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, लोकेश्वर, परात्म भगवान् श्रीकृष्ण नन्दगृहमें वालक होकर अवतीर्ण हुए हैं । उनसे बहुकृ श्रीराधाके लिये कोई वर नहीं है । ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे भूमिका भार उत्तरने और कंसादिका वध करनेके लिये भूतलपर श्रीकृष्णका अवतार हुआ है । गोलोकमें ‘श्रीराधा’ नामकी जो श्रीकृष्णकी पटरानी है, वे ही तुम्हारे घरमें कन्यारूपसे अवतीर्ण हुई हैं । उन ‘परा देवी’को तुम नहीं जानते । मैं इन दोनोंका विवाह नहीं कराऊँगा । इनका विवाह यमुनातटपर भाण्डीर-वनमें होगा । ब्रह्मदावनके समीप निंजन सुन्दर स्थलमें साक्षात् ब्रह्माजी पधारकर श्रीराधा तथा इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीगिरिगजखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश-संवादमें ‘गोपविवाद’ नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

श्रीकृष्णका विवाह-कार्य सम्पन्न करायेंगे । अतः गोपप्रश्नर ! तुम श्रीराधाको लोकचूडामणि साक्षात् परमात्मा श्रीकृष्णकी अर्धाङ्गस्त्रिया एवं गोलोकधामकी महारानी समझो । तुम समस्त गोपण भी गोलोकमें इस भूतलपर आये हो । इसी तरह गोपिणीं और गौणें भी श्रीराधाकी इच्छासे ही गोलोकसे गोकुलमें आयी हैं ।” यो कहकर साक्षात् सहायुक्ति गर्गाचार्य जब चले गये, उसी दिनसे श्रीराधाके विषयमें मैं कभी कोई सदैह या शङ्खा नहीं करता । इस भूतलपर ब्राह्मणवचन वेदवाक्यवत् प्रमाण है । गोपो ! यह सब रहस्य मैंने तुम्हें सुना दिया; अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ३०-३१ ॥

छठा अध्याय

गोपोंका वृषभानुवरके वैभवकी प्रशंसा करके नन्दनन्दनकी भगवत्ताका परीक्षण करनेके लिये
 उन्हें प्रेरित करना और वृषभानुवरका कन्याके विवाहके लिये वरको देनेके
 निमित्त बहुमूल्य एवं बहुसंख्यक मौक्तिक-हार भेजना तथा श्रीकृष्णकी
 कृपासे नन्दराजका वधूके लिये उनसे भी अधिक मौक्तिकलाभि भेजना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! वृषभानुवरकी यह बात सुनकर समस्त ब्रजवासी शान्त हो गये । उनका सारा संदाय दूर हो गया तथा उनके मनमें बड़ा विस्मय हुआ ॥ १ ॥

गोप बोले—राजन् ! तुम्हारा कथन सत्य है । निश्चय ही यह राधा श्रीहरिकी प्रिया है । इसीके प्रभावसे भूतलपर तुम्हारा वैभव अधिक द्विस्थायी होता है । हजारों मतलाले हाथी, चन्द्रल घोड़े तथा देवताओंके विमान-सहस्र करोड़ों सुन्दर रथ और शिविकाएँ तुम्हारे यहाँ सुशोभित होती हैं । इतना ही नहीं, सुबंध तथा रथोंके आभूषणोंसे विभूषित कोटि-कोटि मनोहर गौणें, विचित्र भवन, नाना प्रकारके मणिरल, भोजन-पान आदिका सर्वविध सौख्य—यह सब इस समय तुम्हारे घरमें प्रत्यक्ष देखा जाता है । तुम्हारा अन्तुत बल देखकर कंस भी पराभूत हो गया है ।

महाबीर ! तुम कान्यकुञ्ज देशके स्वामी साक्षात् राजा मलनन्दनके जामाता हो तथा कुबेरके समान क्षोषणिति । तुम्हारे समान वैभव नन्दराजके घरमें कही नहीं है । नन्दराज तो किसान, गोयूथके अधिपति और दीन हृदयवाले हैं ।

प्रभो ! यदि नन्दके पुत्र याक्षात् परिषुर्णतम श्रीहरि हैं तो हम सबके सामने नन्दके वैभवकी परीक्षा कराइये ॥ २-८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! उन गोपोंकी बात सुनकर महान् वृषभानुवरने नन्दराजके वैभवकी परीक्षा की । मैथिलेश्वर ! उन्होंने स्थूल मोतियोंके एक करोड़ हार लिये, जिनमें पिरोदा हुआ एक-एक मोती एक-एक करोड़ स्तर्ण-सुदाके मोलपर मिलनेवाला था और उन सबकी प्रभा दूरतक फैल रही थी । नरेश्वर ! उन सबको पात्रोंमें रखकर वहे कुशल वर-वरणकारी लोगोंद्वारा सब गोपोंके देखते-देखते वृषभानुवरने नन्दराजजीके यहाँ भेजा । नन्दराजकी सभामें जाकर अत्यन्त कुशल वर-वरणकर्ता लोगोंने मौक्तिक-हारोंके पात्र उनके सामने रथ दिये और प्रणाम करके उनसे कहा ॥ ९-१२ ॥

वर-वरणकर्ता बोले—नन्दराज ! जिसके नेत्र नूतन विकसित कमलके समान शोभा पाते हैं तथा जो सुखमें करोड़ों चन्द्रमण्डलोंकी-सी कान्ति धारण करती है, उस अपनी तुत्री श्रीराधाके विवाहके योग्य जानकर वृषभानुवरने सुन्दर वरकी स्वोज करते हुए यह विचार किया है कि

तुष्टरि गुप्त मद्दनमोहन श्रीकृष्ण दिव्य वर है। गोवर्धन पर्वतको उठानेमें समर्थ, दिव्य मुग्धओंसे सम्पन्न तथा उद्भव वीर हैं। प्रभो ! वैश्यप्रबर || यह सब देख और सोच-विचारकर वृषभानुविद्वत् वृषभानुवरने हम सबको यहाँ भेजा है। आप वरकी गोद भरनेके लिये पहले कन्यापञ्चकी ओरसे यह मौत्सिकराशि ग्रहण कीजिये। फिर इधरसे भी कन्याकी गोद भरनेके लिये पर्याप्त मौत्सिकराशि प्रदान कीजिये। यही हमारे कुलकी प्रसिद्ध दीति है॥ १३-१५ ||

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उस द्रव्यराशिको देखकर उत्सुक नन्दराज बड़े विसित हुए; तो भी वे कुछ विचारकर यशोदाजीसे ‘उसके तुल्य रत्नराशि है या नहीं’ इस बातको पूछनेके लिये वह सब रामान लेकर अन्तपुरमें गये। वहाँ उस समय नन्द और यशस्विनी यशोदाने चिरकालतक विचार किया, किंतु (अन्ततोगत्वा) इसी निष्कर्षपर पहुँचे कि ‘इस मौत्सिकराशिके वरावर दूसरी कोई द्रव्यराशि मेरे घरमें नहीं है। आज लोगोंमें हमारी सारी लाज गयी। हमलोगोंकी सब ओर इसी उड़ायी जायगी। इस धनके बदलेमें हम दूसरा कौन-सा धन दें ? क्या करें ?’ श्रीकृष्णके इन विवाहके निमित्त हमारे द्वारा क्या किया जाना चाहिये ? पहले तो जो कुछ वरके लिये आया है, उसे ग्रहण कर लेना चाहिये। पीछे अपने पास धन आनेपर वधूके लिये उपहार भेजा जायगा।’ ऐसा विचार करते हुए नन्द और यशोदाजीके पास भगवान् अधर्मदं श्रीकृष्ण अलक्षितभावमें ही वहाँ आ गये। उन मौत्सिक-हारोंमें सौ हार उन्होंने घरमें शाहर खेतोंमें ले जाकर, अपने हाथसे मोतीका एक-एक दाना लेकर, उन्होंने उसी भाँति मारे खेतमें छीट दिया, जैसे किसान अपने खेतोंमें अनाजके दाने विसेर देता है। तदनन्तर नन्द भी जब उन मुक्तामालाओंकी गणना करने लगे, तब उनमें सौ मालाओंकी कमी देखकर उनके मनमें संदेह हुआ॥ १६-२२ ||

तत्त्वजी बोले—हाय ! पहले तो मेरे घरमें जिस रत्नराशिके समान दूसरी कोई रत्नराशि थी ही नहीं, उसमें भी अब सौकी कमी हो गयी। अहो ! चारों ओरसे भाई-जन्मुओंके बीच मुक्तपर बहा भारी कलङ्क पोता जायगा। अथवा यदि श्रीकृष्ण या बलरामने खेलनेके लिये उसमेंसे कुछ मोती

इस प्रकार श्रीगणे-संहितामें श्रीगिरिराजस्थके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुकाश-संबादमें श्रीहरिकी मगदत्तका परीक्षण नामक छठ अव्याप्त पूरा हुआ॥ ६ ||

निकाल लिये हों तो अब दीनचित्त होकर मैं उन्हीं दोनों बालकोंसे पूछूँगा॥ २३-२४ ||

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार विचारकर नन्दने भी श्रीकृष्णसे उन मोतीयोंके विषयमें आदरपूर्वक पूछा। तब जोरसे हँसते हुए गोवर्धनधारी भगवान् नन्दसे बोले॥ २५ ||

श्रीभगवान्ने कहा—यावा ! हम सारे गोप किसान हैं, जो खेतोंमें सब प्रकारके बीज बोया करते हैं; अतः हमने खेतमें मोतीके बीज विवेर दिये हैं॥ २६ ||

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! बेटेके मुँहसे यह बात सुनकर ब्रजेश्वर नन्दने उसे ढाँट बतायी और उन सबको चुन-वीनकर लानेके लिये उसके साथ खेतोंमें गये। वहाँ मुक्ताफलके सैकड़ों सुन्दर वृक्ष दिखायी देने लगे, जो हरे-हरे पलवोंसे सुशोभित, और विशालकाय थे। नरेश्वर ! जैसे आकाशमें छुड़-के-छुड़ तारे शोभा पाते हैं, उसी प्रकार उन वृक्षोंमें कोटि-कोटि मुक्ताफलोंके गुच्छे समूह-के-समूह लटके हुए सुशोभित हो रहे थे। तब हर्षसे भरे हुए ब्रजेश्वर नन्दराजने श्रीकृष्णको परमेश्वर जानकर पहलेके समान ही मोटे-मोटे दिव्य मुक्ताफल उन वृक्षोंसे तोड़ लिये और उनके एक कोटि भार गाढ़ियोंपर लदवाकर उन वर-वरणकताओंको दे दिये। नरेश्वर ! वह सब लेकर वे वरदर्शी लोग वृषभानु-वरके पास गये और सबके सुनते हुए नन्दराजके अनुपम वैभवका झण्ठन करने लगे॥ २७-३२ ||

उस समय सब गोप बड़े विसित हुए। नन्दनन्दनको साक्षात् श्रीहरि जानकर गमस्त ब्रजवासियोंका संशय दूर हो गया और उन्होंने वृषभानुवरको प्रणाम किया। मिथिलेश्वर ! उसी दिनसे ब्रजके सब लोगोंने यह जान लिया कि श्रीराधा श्रीहरिकी प्रियतमा है और श्रीहरि श्रीराधाके प्राणवल्लभ हैं। मिथिलापते ! जहाँ नन्दनन्दन श्रीहरिने मोती विसेरे थे, वहाँ ‘मुक्ता-सरोवर’ प्रकट हो गया, जो तीर्थोंका राजा है। जो वहाँ एक मोतीका भी दान करता है, वह लाख मोतीयोंके दानका फल पाता है, इसमें संशय नहीं है। राजन् ! इस प्रकार मैंने तुमसे गिरिराज-महोत्सव-का वर्णन किया, जो मनुष्योंके लिये भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ?॥ ३३-३७ ||

सातवौ अध्याय

गिरिराज गोवर्धनसम्बन्धी तीर्थोंका वर्णन

बहुलाक्षणे पूछा—महायोगिन् ! आप साक्षात् दिव्यदृष्टिसे सम्भव हैं; अतः यह बताइये कि महात्मा गिरिराजके आस-पास अथवा उनके ऊपर कितने मुख्य तीर्थ हैं ? ॥ १ ॥

श्रीनारदजी बोले—राजन् ! समूचा गोवर्धन पर्वत ही सब तीर्थोंसे श्रेष्ठ भाना जाता है। बृन्दावन साक्षात् गोलोक है और गिरिराजको उसका मुकुट बताकर सम्मानित किया गया है। वह पर्वत गोपों, गोपियों तथा गौओंका रक्षक एवं महान् कृष्णप्रिय है। जो साक्षात् पूर्णव्रश्चका छत्र बन गया, उसमें श्रेष्ठ तीर्थ दूसरा कौन है ! भुवनेश्वर एवं साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णने, जो अङ्गाख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, गोलोकके स्वामी तथा परात्मर पुरुष हैं, अपने समस्त जनोंके साथ इन्द्रयागको भता बताकर जिसका पूजन आरम्भ किया, उस गिरिराजसे अधिक सौभाग्यशाली कौन होगा ! मैथिल ! जिस पर्वतपर स्थित ही भगवान् श्रीकृष्ण नदा व्याल-वालोंके साथ कीदा करते हैं, उसकी महिमाका वर्णन करनेमें तो चतुर्मुख ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं। जहाँ बड़े बड़े पापोंकी राशिका नाश करनेवाली भानसी गङ्गा विद्यमान है, विश्व गोविन्दकुण्ड तथा शुभ चन्द्र-सरोवर शोभा पाने हैं, जहाँ राधाकुण्ड, कृष्णकुण्ड, ललिताकुण्ड, गोपालकुण्ड तथा कुसुमसरोवर सुशोभित हैं, उस गोवर्धनकी महिमाका कौन वर्णन कर सकता है। श्रीकृष्णके मुकुटका स्पर्श पाकर जहाँकी शिला मुकुटके चिह्नमें सुशोभित हो गयी, उस शिलाका दर्शन करनेमात्रसे मनुष्य देवदिव्यरोमणि हो जाता है। जिस शिलापर श्रीकृष्णने चित्र अङ्कित किये हैं, वह चित्रित और पवित्र 'चित्रशिला' नामकी शिला आज भी गिरिराजके शिखरपर द्विगोचर होती है। बालोंके साथ कीड़ामें संलग्न श्रीकृष्णने जिस शिलाको बजाया था, वह महान् पापसमूहोंका नाश करनेवाली शिला 'बादिनी शिला' (बाजनी शिला)के नामसे प्रसिद्ध हुई। मैथिल ! जहाँ श्रीकृष्णने व्याल-बालोंके साथ कन्तुक-कीड़ा की थी, उसे 'कन्तुकक्षेत्र' कहते हैं। वहाँ 'शक्तपद' और 'ब्रह्मपद' नामक तीर्थ हैं, जिनका दर्शन और जिन्हें प्रणाम करके मनुष्य इन्द्रलोक और ब्रह्मलोकमें जाता है। जो वहाँकी छूलमें लोटता है, वह साक्षात् विष्णुपदको प्राप्त होता है।

जहाँ माधवने गोपोंकी पगड़ियाँ चुरायी थीं, वह महापापहारी तीर्थ उस पर्वतपर 'औषधीष' नामसे प्रसिद्ध है ॥ २-१४ ॥

एक समय वहाँ दधि बेचनेके लिये गोपवधुओंका समुदाय आ निकला। उनके नूपुरोंकी झानकार सुनकर मदनमोहन श्रीकृष्णने निकट आकर उनकी राह रोक ली। वंशी और वेश धारण किये श्रीकृष्णने व्याल-बालोंद्वारा उनको नारों ओरसे घेर लिया और स्वयं उनके आगे वैर रथकर मार्गमें उन गोपियोंसे बोले—'इस मार्गपर हमारी ओरमें कर बसूल किया जाता है, सो तुमलोग हमारा दान दे दो' ॥ १५-१६ ॥

गोपियाँ बोलीं—तुम वह रेंदे हो, जो व्याल-बालोंके साथ राह रोककर खड़े हो गये ! तुम वहे गोरस-लम्पट हो । हमारा रास्ता छोड़ दो, नहीं तो मॉ बापसहित तुमको हम बलपूर्वक राजा कंसके कारागारमें ढलवा देंगी ॥ १७ ॥

अभीभगवान्ने कहा—अरी ! कंसका कथा डर दिखाती हो ? मैं गौओंकी शापथ खाकर कहता हूँ, महान् उग्रदण्ड धारण करनेवाले कंसको मैं उसके वन्धु-नान्धव-महित मार डालूँगा; अथवा मैं उसे मधुरामे गोवर्धनकी घाटीमें खींच लाऊँगा ॥ १८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! यो कहार वालमं-द्वारा पृथक्-पृथक् सबके दहीपात्र मङ्गवाकर नन्दनादनने बड़े आनन्दके साथ भूमिपर पटक दिये। गोपियाँ परस्पर कहने लगा—'अहो ! यह नन्दका लाला तो वहा ही ढीठ और निढर है, निरकुदा है। इसके साथ तो बात भी नहीं करनी चाहिये। यह गांवमें तो निर्बल नना रहता है और बनमें आकर बीर बन जाता है। हम आज ही चलकर यशोदाजी और नन्दरायजीसे कहता है।' यों कहकर गोपियाँ मुस्कराती हुई अपने घरको लौट गयी ॥ १९-२१ ॥

इधर माधवने कदम और पलाशके पत्तेके दोने बनाकर बालोंके साथ चिकना-चिकना दही लेलेकर खाया। तबसे वहाँके बृक्षोंके पत्ते दोनेके आकारके होने लग गये। नृपेश्वर ! वह परम पुण्य क्षेत्र 'द्रोण' नामसे प्रसिद्ध हुआ। जो मनुष्य वहाँ दहीदान करके स्वयं भी पत्तेमें रखते हुए दहीको पीकर उस तीर्थको नमस्कार करता है, उसकी गोलोकसे कभी च्युति नहीं होती। जहाँ नेत्र मूँदकर माधव

बाल्कोंके साथ छुका-छिपीके खेल खेलते थे, वहाँ 'लौकिक' नामक पापनाशन तीर्थ हो गया। श्रीहरिकी लीलासे मुक्त जो 'कदम्बलण्ड' नामक तीर्थ है, वहाँ सदा ही श्रीकृष्ण व्यालारत रहते हैं। उस तीर्थका दर्शन करनेमात्रसे नर नाशयण हो जाता है। मैथिल ! जहाँ गोवर्धनपर रासमे श्रीराधने शृङ्गार धारण किया था, वह स्थान 'शृङ्गारमण्डल'के नामसे प्रसिद्ध हुआ। नरेश्वर ! श्रीकृष्णांन जिस रूपसे गोवर्धन पर्वतको धारण किया था, उनका वही रूप शृङ्गारमण्डल तीर्थमें विद्यमान है। जब कलियुगके चार हजार आठ सौ वर्ष बीत जायेंग, तब शृङ्गारमण्डल क्षेत्रमें गिरिराजकी गुफाके मध्यभागमें सबके देखते-देखते श्रीहरिका स्वतःगिर्द रूप प्रकट होगा। नरेश्वर ! देवताओंका अभिमान चूर्ण करनेवाले उम महसूपको भजन पुरुष 'श्रीनाथजी'के नाममें पुकारेंगे। राजन ! गोवर्धन पर्वतपर श्रीनाथजी सदा ही लीला करते हैं। मैथिलन्द्र ! कलियुगमें जो लोग अपने नेत्रोंसे श्रीनाथजीके रूपका दर्शन करेंगे, वे कृतार्थ हो जायेंगे ॥ २२-३२ ॥

भगवान् भारतके चारों कोनोंमें क्रमशः जगन्नाथ, श्रीगर्ग-संहितामें श्रीगिरिराजमण्डलके

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीगिरिराजमण्डलके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुताश संवादमें श्रीगिरिराजके तीर्थोंका वर्णन। नामक सानवा अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

श्रीकृष्णनाथ, श्रीद्वारकानाथ और श्रीब्रह्मनाथके नामसे प्रमिद्ध हैं। नरेश्वर ! भारतके मध्यभागमें भी वे गोवर्धननाथके नामसे विद्यमान हैं। इस प्रकार पवित्र भारतवर्षमें ये पॉच्चों नाथ देवताओंके भी स्वामी हैं। वे पॉच्चों नाथ सद्मर्मल्पी मण्डपके पॉच्च संभे हैं और सदा आर्तजनोंकी रक्षामें तत्पर रहते हैं। उन सबका दर्शन करके नर नाशयण हो जाता है। जो विद्वान् पुरुष हम भूतलपर चारों नाथोंकी यात्रा करके मध्यवर्ती देवदमन श्रीगोवर्धननाथका दर्शन नहीं करता, उस यात्राका फल नहीं मिलता। जो गोवर्धन पर्वतपर देवदमन श्रीनाथका दर्शन कर लेता है, उस पृथ्वीपर चारों नाथोंकी यात्राका फल प्राप्त हो जाता है ॥ ३३-३७ ॥

मैथिल ! जहाँ ऐरावत हाथी और सुरभि गौके चरणोंके चिह्न हैं, वहाँ नमस्कार करके पापी मनुष्य भी बैकृष्ण-वासमें चला जाता है। जो कोई भी मनुष्य महात्मा श्रीकृष्णके हस्तचिह्न और चरणचिह्नका दर्शन कर लेता है, वह साक्षात् श्रीकृष्णके धारममें जाता है। नरेश्वर ! ये तीर्थ, कुण्ड और मन्दिर गिरिराजके अङ्गभूत हैं; उन से चता दिया, अय और क्या सुनना चाहत हो ॥ ३८-४० ॥

आठवाँ अध्याय

विभिन्न तीर्थोंमें गिरिराजके विभिन्न अङ्गोंकी स्थितिका वर्णन

बहुलाश्वने पूछा महाभाग ! देव !! आप पर, अपर - भूत और भविष्यके शातांशोंमें सर्वश्रेष्ठ है। अतः यताह्ये, गिरिराजके किन तिन अङ्गोंमें कौन-कौन-से तीर्थ विद्यमान हैं ? ॥ १ ॥

श्रीनारदजी बोले - राजन् ! जहाँ, जिस अङ्गकी प्रसिद्धि है, वही गिरिराजका उत्तम अङ्ग माना गया है। क्रमशः गणना करनेपर कोई भी ऐसा स्थान नहीं है, जो गिरिराजका अङ्ग न हो। मानद ! जैसे ब्रह्म सर्वत्र विद्यमान है और सरे अङ्ग उसीके हैं, उसी प्रकार विभूति और भावकी दृष्टिसे गोवर्धनके जो शाकबत अङ्ग माने जाते हैं, उनका मैं वर्णन करूँगा ॥ २-३ ॥

शृङ्गारमण्डलके अधोभागमें 'श्रीगोवर्धनका' मुख है, जहाँ भगवानने घजवामियोंके साथ अङ्गकूटका उत्तम

किया था। 'माननी गङ्गा' गोवर्धनके दोनों नेत्र हैं, 'चन्द्रमरोवर' नासिका, 'गोविन्दकुण्ड' अधर और 'श्रीकृष्ण कुण्ड' निषुक है। 'प्राधाकुण्ड' गोवर्धनकी जिहा और 'ललितामरोवर' कपोल है। 'गोपालकुण्ड' कान और 'कुसुम-मरोवर' कांगन्तभाग है। मिथिलेश्वर ! जिस शिलापर मुकुटका चिह्न है, उसे गिरिराजका ललाट समझो। 'चित्र-शिला' उनका मलक और 'वादिनीशिला' उनकी ग्रीवा है। 'कन्दुकतीर्थ' उनका पाषांश भाग है और 'उणीषतीर्थ'को उनका कटिप्रदेश बतलाया जाता है। 'छोणतीर्थ' पृष्ठदेशमें और 'लौकिकतीर्थ' पेटमें है। 'कदम्बलण्ड' हृदयस्थलमें है। 'शृङ्गारमण्डलतीर्थ' उनका जीवात्मा है। 'श्रीकृष्ण-चरण-चिह्न' महात्मा गोवर्धनका मन है। 'हस्तचिह्नतीर्थ' बुद्धि तथा 'ऐरावतनरणचिह्न' उनका नरण है। सुरभिके चरण

चिह्नोंमें महात्मा गोवर्धनके पंख हैं। 'पुच्छकुण्ड'में पूँछकी भाषना की जाती है। 'वस्त्रकुण्ड'में उनका बढ़, 'पद्मकुण्ड'में कोथ तथा 'हन्दसरोवर'में कामकी लिखि है। 'कुंकरतीर्थ' उनका उच्चोगस्तल और 'ब्रह्मतीर्थ' प्रलन्तका प्रतीक है। पुराणवेत्ता पुरुष 'भगतीर्थ'में गोवर्धनके अहंकारी लिखि बताते हैं ॥ ४-१२ ॥

मैथिल ! इस प्रकार मैने दुर्घट सर्वत्र गिरिराजके अहं

इस प्रकार श्रीगर्वांशहितमें श्रीगिरिराजस्तम्भके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें गिरिराजकी विभूतियोंका वर्णनः नामक अठवां अष्टाम पूरा हुआ ॥ ८ ॥

क्तव्य हैं, जो समस्त फारोंको इर केनेवाके हैं। जो नरेवर गिरिराजकी इस विभूतिको तुमसा है, वह योगिनमुर्द्धम् धोलोक' नामक परमधार्ममें जाता है। गिरिराजोंका भी राजा गोवर्धन पवत श्रीहरिके बहुस्तलसे प्रकट हुआ है और पुलस्त्यमुनिके लेजसे इस ब्रजमण्डलमें उत्तरका द्वापारामन हुआ है। उसके दर्शनसे मनुष्यका इस लोकमें पुनर्जन्म नहीं होता ॥ १३-१५ ॥

नवाँ अध्याय

गिरिराज गोवर्धनकी उत्पत्तिका वर्णन

बहुलाश्व बोले—देवर्ण ! महात्म आश्चर्यकी बात है, गोवर्धन साक्षात् पवतोका राजा पर्व श्रीहरिके बहुत ही प्रिय है। उसके समान दूसरा तीर्थ न तो इस भूतल्पर है और न स्वर्णमें ही। महामते ! आप साक्षात् श्रीहरिके हृदय हैं। अतः अब यह बताइये कि यह गिरिराज श्रीकृष्णके बहुस्तलसे कब प्रकट हुआ ॥ १२ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! महामते ! गोलोकके प्राकृत्यका वृत्तान्त सुनो—यह श्रीहरिकी आदिलोकसे सम्बद्ध है और मनुष्योंको धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—चारों पुरुषार्थ प्रदान करनेवाला है। प्रकृतिर्ण परे विद्यमान साक्षात् परिपूर्णतम् भगवान् श्रीकृष्ण सर्वसमर्थ, निरुप्य पुरुष एवं अनादि आत्मा हैं। उनका लेज अन्तर्मुखी है। वे स्वयंप्रकाय प्रभु निरन्तर इमणशील हैं, जिनपर भामायिमानी गणनाशील देवताओंका ईश्वर 'काल' भी शासन करनेमें समर्थ नहीं है। राजन् ! माया भी जिनपर अपना प्रभाव नहीं ढाल सकती, उनपर महत्त्व और सत्त्वादि गुणोंका बश तो चल ही कंसे सक्ता है। राजन् ! उनमें कभी मन, चिच्च, तुदि और अहंकारका भी प्रवृद्ध नहीं होता। उन्होंने अपने संकल्पसे अपने ही स्वल्पमें साकार ब्रह्मको अप्यक किया ॥ ३-६३ ॥

सबसे पहले विशालकाय शेषनागका प्रादुर्भाव हुआ, जो कमलनालके समान इयत्पराणके हैं। उन्हींकी गोदमें लोकवन्दित महालोक गोलोक प्रकट हुआ, जिसे पाकर भक्तियुक्त पुरुष फिर इस संधारमें नहीं लौटा। तिर अद्यत्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति गोलोकमाय भगवान्

श्रीकृष्णके चरणारविन्दसे विपथगा गङ्गा प्रकट हुई । नरेवर ! तत्प्रवात् श्रीकृष्णके यायें कंपेसं सरिताओंमें भेष यमुनाजीका प्रादुर्भाव हुआ, जो शङ्कार-कुसुमोंसे उत्ती प्रकार सुशोभित हुई, जैसे छपी हुई पगड़ीके बजकी शोभा होती है। तदनन्तर भगवान् श्रीहरिके दोनों गुस्तों (टखनों या झुड़ियों) से देमरलोंसे युक्त दिव्य रासमण्डल और नाना प्रकारके शङ्कार-साधनोंके समूहका प्रादुर्भाव हुआ। इसके बाद महामत्ता श्रीकृष्णकी दोनों पिण्डियोंसे निकुञ्ज प्रकट हुआ, जो समाधवनों, आँगनों, गलियों और मण्डपोंसे विरा हुआ था। वह निकुञ्ज वसन्तकी माझुरी धारण किये हुए था। उसमें कूजंत हुए कोकिलोंकी काकड़ी सर्वत्र स्वास्थ थी। योर, भ्रमर तथा विविध उरोवरोंसे भी वह परिशोभित एवं परिसेवित दिखायी देता था। राजन् ! भगवान्के दोनों शुटनोंसे समूर्ण बनोमें उच्चम श्रीकृष्णदावनका आविभव द्वारा हुआ। साथ ही उन साक्षात् परमात्माकी दोनों जोधोंसे लीला-सरोवर प्रकट हुआ। उनके कटिप्रदेशसे दिव्य रख्लोदारा जटित प्रभामयी स्वणभूमिका प्राकृत्य हुआ और उनके उदरमें जो रोमावलियाँ हैं, वे ही विस्तृत माधवी लताएँ बन गयीं। उन लताओंमें नाना प्रकारके पक्षियोंके हुंड उब और फैलकर कलरब कर रहे थे। गुंजार करते हुए भ्रमर उन लताकुञ्जोंकी शोभा बढ़ा रहे थे। वे लताएँ सुन्दर फूलों और फलोंके भारसे इस प्रकार छहीं हुई थीं, जैसे उच्चम कुञ्जकी कन्याएँ लज्जा और विनयके भारसे नतमस्तक रहा करती हैं। भगवान्के नामिवामलसे सहस्रों कमल प्रकट हुए जो इरिकोक्के करोवरोंमें इच्छ उच्चर सुशोभित हो रहे थे।

भगवान्नहें निकटी शास्त्र से मन्दगायी और अस्यन्त शीतल
स्थीर भक्त हुआ और उनके गलेकी हँसुलीसे 'मशुरा' तथा
'पारका'—इन दो पुरियोंका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ७-१८ ॥

श्रीहरिकी दोनों भुजाओंसे 'श्रीदामा' आदि आठ पार्षद
उत्पन्न हुए। कलाहयोंसे 'नन्द' आर कराप्रभासे 'उपनन्द'
प्रकट हुए। श्रीकृष्णकी भुजाओंके मूलभागोंसे समस्त
हृषभानुओंका प्रादुर्भाव हुआ। नरेश्वर। समस्त गोपगण
श्रीकृष्णके रोमसे उत्पन्न हुए हैं। श्रीकृष्णके मनसे गौओं
तथा धर्मवृत्तवर हृषभोंका प्राकृत्य हुआ। मैथिलेश्वर।
उनकी हुड़िसे बास और शाढ़ीयाँ प्रकट हुई। भगवान्नके
वायें कंबें पक परम कान्तिमान् गौर तेज प्रकट हुआ,
जिससे लीला, श्री, भूदेवी, विरजा तथा अन्यान्य हरिप्रियाएँ
आविर्भूत हुईं। भगवान्नकी प्रियतमा जो 'श्रीराधा' हैं,
उन्होंको दूसरे छोग 'लीलावती' या 'लीला'के नामसे जानते
हैं। श्रीराधाकी दोनों भुजाओंसे 'विशाखा' और 'लक्ष्मि'—
इन दो वालियोंका आविर्भाव हुआ। नरेश्वर। दूसरो-दूसरो
ओं सहचरी गोपियाँ हैं, वे सब राधाके रोमसे प्रकट हुई हैं।
इष प्रकार मधुसुदनने गोलोककी रचना की ॥ १९-२४ ॥

राजन् । इष तरह अपने समूर्ण लोककी रचना करके
असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, परात्पर, परमात्मा, परमेश्वर,
परिशूर्ण देव श्रीहरि वहाँ श्रीराधाके साथ सुशोभित हुए।
उस गोलोकमें पक दिन सुन्दर रासमण्डलमें, जहाँ वजते
हुए नूपुरोंका मधुर शब्द गूँज रहा था, जहाँका ऊंगन
मुन्दर छारमें लगी हुई मुलाफलकी लड़ियोंसे अमृतकी वर्षा
होती रहनेके कारण रसकी बड़ी-बड़ी बँदोंसे सुशोभित था;
मालसीके बँदोंको स्वतः शरते हुए मकरन्द और गन्धसे
सरस पर्व सुवासित था; जहाँ मृदङ्ग, तालज्जनि और बंशीनाद
बब और व्यास था; जो मधुरकण्ठसे गाये गये गीत आदिके
कारण परम मनोहर प्रतीत होता था तथा सुन्दरियोंके रासरससे
परिशूर्ण एवं परम सनोरम था। उसके मध्यभागमें स्थित
कोटिमनोजमोहन हृदय-बल्लभसे श्रीराधाने रसदान-कुशल
कटाक्षपात्र करके गम्भीर बाणीमें कहा ॥ २५-२८ ॥

श्रीराधा बोली—जगदीश्वर ! यदि आप रासमें भ्रे
प्रेमसे प्रसन्न हैं तो मैं आपके सामने अपने मनकी प्रार्थना
व्यक्त करना चाहती हूँ ॥ २९ ॥

श्रीभगवान् बोले—प्रिये ! आमोह !! तुम्हरे मनमें
जो हृच्छा हो, मुझसे माँग लो। तुम्हारे प्रेमके कारण मैं तुम्हें
भ्रैव बद्ध भी है दैव ॥ ३० ॥

श्रीराधाने कहा—हृन्दावनमें यमुनाके तटपर द्विष्य
निकुञ्जके पाइर्बभागमें आप रासरसके योग्य कोई एकान्त
एवं मनोरम स्थान प्रकट कीजिये। देवदेव ! यही येर
मनोरथ है ॥ ३१ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! तव 'स्थास्तु' कहकर
भगवान्नने एकान्त-लीलाके योग्य स्थान का चिन्तन करते हुए
नेत्र-कमलोंद्वारा अपने हृदयकी ओर देखा। उसी समय
गोपी-समुदायके देखते-देखते श्रीकृष्णके हृदयसे अनुरागके
मूर्तिमान् अकुरुकी भाँति एक सघन लेज प्रकट हुआ।
रासभूमिमें गिरकर वह पर्वतके आकाशमें बढ़ गया। वह
सारा-का-सारा दिव्य पर्वत रत्नवातुमय था। सुन्दर झरनों
और कन्दराओंसे उसकी बड़ी शोभा थी। कदम्ब, बकुल
अशोक आदि वृक्ष तथा लता-आल उसे और भी मनोहर
बना रहे थे। मन्दार और कुन्दवृन्दसे सम्मन उस पर्वतपर
भाँति भाँतिके पक्षी कलर्व कर रहे थे। विदेहराज ! एक
ही क्षणमें वह पर्वत एक छाल योजन विस्तृत और शेषकी
तरह सौ कोटि योजन लंबा हो गया। उसकी ऊँचाई
पचास करोड़ योजनकी हो गयी। पचास कोटि योजनमें
फैला हुआ वह पर्वत सदाके छिये गजराजके समान स्थित
दिखायी देने लगा। मैथिल ! उसके कोटि योजन विशाल
सैकड़ों घिलर दीसिमान् होने लगे। उन विश्वरांसे गोवर्धन
पर्वत उसी प्रकार सुशोभित हुआ, मानो सुवर्जमय उन्नत
कल्पोंसे कोई ऊँचा महक शोभा पा रहा हो ॥ ३२-३८ ॥

कोई-कोई विद्वान् उस गिरिको गोवर्धन और दूसरे लोग
'शतशङ्क' कहते हैं। इन्ता विशाल होनेपर भी वह पर्वत
मनसे उस्सुक-सा होकर बढ़ने लगा। इससे गोलोक भयसे
विहळ हो गया और वहाँ सब और कोलाहल मच गया।
यह देख श्रीहरि उठे और अपने साक्षात् हाथसे शीब ही
उसे ताङ्गा दी और बोले—अरे ! प्रच्छन्नरूपसे बढ़ता
क्यों जा रहा है ? सम्पूर्ण लोकको आच्छादित करके स्थित हो
गया ! क्या ये लोक वहाँ निवास करना नहीं चाहते ? वीं
कहकर श्रीहरिने उसे शास्त्र किया—उसका बढ़ना रोक
दिया। उस उत्तम पर्वतके प्रकट हुआ देख भगवदिव्या
श्रीराधा बहुत प्रसन्न हुई। राजन् ! वे उसके एकान्त-
स्थानमें श्रीहरिके साथ सुशोभित होने लगी ॥ ३९-४२ ॥

इष प्रकार यह गिरिराज साक्षात् श्रीकृष्णसे प्रेरित होकर
इष विश्वरांसे भ्रमता है। वह चर्वीभैमय है। व्यास-मुकुटोंसे

स्वाम आमा बारज करनेवाला वह ओठ भिरि मेहमी भाँति
स्वाम तथा देवताओं का प्रिय है। भारतसे पश्चिम दिशामें
गोवर्द्धनपर्वत के मध्यभागमें द्वेषान्वलकी पत्नीके गम्भीर
गोवर्बनने अस्त्र किया। महर्षि पुलस्त्य उसको भारतके
ब्रह्मण्डमें के आये। विदेहराज। गोवर्बनके आगमनकी बात

मैं तुमसे पहले निश्चेदन कर दुआ हूँ। क्योंकि यह पहले गोवर्द्धन
उत्सुकतापूर्वक बढ़ने लगा था, उसी तरह यहाँ भी ऐसे
वह पृथ्वीतकके लिये एक ढक्कन कर जायगा—वह गोवर्द्धन
मुनिने द्वेषान्वल गोवर्बनको प्रतिदिन लीप होनेका शाप दे
दिया। ४३—४४॥

इस प्रकार श्रीगर्भान्दितमें श्रीगिरिराजस्तुतके
अन्तर्गत श्रीनारद-बहुकाशन-संवादमें 'श्रीगिरिराजकी
दृष्टिः' नामक नवाँ अव्याख्या पूरा हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

गोवर्द्धन-शिला के स्पर्श से एक राक्षस का उद्धार तथा दिव्यरूपधारी उस सिद्धके मुखसे गोवर्द्धनकी महिमाका वर्णन

ओनारदजी कहते हैं—राजन्। इस विषयमें एक
पुराने इतिहासका वर्णन किया जाता है, जिसके अवणमात्रसे
बड़े-बड़े पापोंका विनाश हो जाता है॥ १॥

गौतमी गङ्गा (गोदावरी) के तटपर विजय नामसे प्रतिदू
एक ब्राह्मण रहता था। वह अपना शृणु वस्तु करनेके लिये
पापनाशिनी मधुरापुरीमें आया। अपना कार्य पूरा करके जब वह
धरको लौटने लगा, तब गोवर्द्धनके तटपर गया। मिथिलेश्वर।
वहाँ उसने एक गोल पथर ले लिया। धीरे-धीरे बनप्रान्तमें
होता हुआ जब वह ब्रह्मण्डमें बाहर निकल गया, तब
उसे अपने सामनेसे आता हुआ एक घोर राक्षस दिखायी
दिया। उसका मुँह उसकी छातीमें था। उसके तीन पैर और
छः झुजाएँ थीं, परंतु हाथ तीन ही थे। ओठ बहुत ही मोटे
और नाक एक हाथ कँची थी। उसकी सात हाथ लंबी
जीभ लगलगा रही थी, रोएँ कॉटोंके समान थे, आँखें बड़ी-
बड़ी और लाल थीं, दाँत टेंटे-मेंटे और भयंकर थे। राजन्।
वह राक्षस बहुत भूसा था, अतः भुर-भुर' शब्द करता
हुआ वहाँ लड़े हुए ब्राह्मणके सामने आया। ब्राह्मणने
गिरिराजके पथरसे उस राक्षसको मारा। गिरिराजकी शिला-
का स्पर्श होते ही वह राक्षस-दारीर छोड़कर इयामसुन्दर-
कम्पधारी हो गया। उसके विशाल नेत्र प्रकुप्ल कमलपत्रके
समान शोभा पाने लगे। बनमाला, पीताम्बर, मुकुट और
कुण्डलोंसे उसकी बड़ी शोभा होने लगी। हाथमें बंधी और बैत
लिये वह दूसरे कामदेवके समान ग्रसीत होने लगा। इस
प्रकार दिव्यरूपधारी होकर उसने दोनों हाथ जोड़कर ब्राह्मण-
देवताओं का दर्शकर प्रणाम किया॥ २—१०॥

सिद्ध बोला—आश्रममें हुम बन्द हो। क्योंकि

दूसरोंको संकटसे बचानेके पुण्यकार्यमें हमें तुम ही। महा-
मते। आज तुमने मुझे राक्षसकी योनिसे छुटकारा दिल
दिया। इस पाषाणके स्पर्शमात्रसे मेरा कल्पाय हो गया।
तुम्हारे सिवा दूसरा कोई मेरा उद्धार करनेमें समर्थ नहीं
था॥ ११-१२॥

आश्रम बोले—सुनत। मैं तो तुम्हारी बात सुनकर
आश्रयमें पढ़ गया हूँ। मुझमें तुम्हारा उद्धार करनेकी शक्ति
नहीं है। पाषाणके स्पर्शका क्या फल है, वह भी मैं नहीं
जानता; अतः तुम्हीं बताओ॥ १३॥

सिद्धने कहा—ब्रह्मन्। श्रीमान् गिरिराज गोवर्द्धन
पर्वत साक्षात् श्रीहरिका रूप है। उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य
कृतार्थ हो जाता है। गन्धमादनकी यात्रा करनेसे मनुष्यको
जिस फलकी प्राप्ति होती है, उससे कोटिगुना पुण्य गिरिराज-
के दर्शनसे होता है। विप्रवर। केदारतीर्थमें पाँच हजार
घण्टोंका तपस्या करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही
फल गोवर्द्धन पर्वतपर तप करनेसे मनुष्यको क्षणभरमें प्राप्त
हो जाता है॥ १४—१६॥

मल्यान्वलपर एक भार स्वर्णका दान करनेसे जिस
पुण्यफलकी प्राप्ति होती है, उससे कोटिगुना पुण्य गिरिराज-
पर एक माशा सुवर्णका दान करनेसे ही मिल जाता है। जो
मङ्गलप्रस्तुत वर्षतपर सोनेकी दक्षिणा देता है, वह सैकड़ों
पापोंसे युक्त होनेपर भी भगवान् विष्णुका सास्त्र्य प्राप्त कर
देता है। भगवान्के उसी पदको मनुष्य गिरिराजका दर्शन
करनेमात्रसे पा लेता है। गिरिराजके समान पुण्यतीर्थ इहल
कोई नहीं है। शूष्मन पर्वत, कूटक पर्वत तथा कोलक वर्षतपर
सोनेसे यह सींगवाली एक करोड़ गौमोंका जो दान करता है।

वह यी आकाशोंका यस्तपूर्णक पूजन करके महान् पुण्यका अभी होता है । ब्रह्मन् । उसकी अपेक्षा भी लालशुना शुभ गोवर्धन पर्वतकी यात्रा करनेमात्रसे मुक्तम् होता है । शुभकृष्ण, साहित्यि तथा देवगिरिकी एवं सम्पूर्ण पृथ्वीकी यात्रा करनेपर मनुष्य जिस पुण्यफलको पाता है, गिरिराज गोवर्धनकी यात्रा करनेपर उसन् भी कोटिगुना अधिक फल उत्प्राप्त हो जाता है । अतः गिरिराजके समान तीर्थ न तो पहले कभी हुआ है और न भविष्यत्कालमें होगा ही ॥ १७-२३ ॥

श्रीशैलपर इस वर्षोंतक रहकर वहाँके नियावरकृष्णमें जो अविदिन स्नान करता है, वह पुण्याम्बा मनुष्य सौ वर्षोंके अनुष्ठानका फल पा लेता है; परंतु गोवर्धन पर्वतके पुच्छकृष्णमें एक दिन स्नान करनेवाला मनुष्य कोऽवर्षोंके साक्षात् अनुष्ठानका पुण्यफल पा लेता है; इसमें संशय नहीं है । वेङ्गाचल, वारिधार, महेन्द्र और विन्ध्याचलपर एक अस्वसेधयका अनुष्ठान करके मनुष्य स्वर्गलोकका अधिपति हो जाता है; परंतु इस गोवर्धन पर्वतपर जो यज्ञ करके उत्तम दक्षिणा देता है, वह स्वर्गलोकके महाकाश परे रखकर भगवान् विष्णुके धाममें चला जाता है । द्विजोत्तम । विश्वकृष्ण पर्वतपर श्रीरामनवमीके दिन पश्चिमी (मन्दकिनी) में, वैशालीकी दूरीयाको पारियात्र पर्वतपर, गूर्णिमाको कुकुर्याचलपर, द्वादशीके दिन नीलाचलधर और सप्तमीको हम्मीकीड़ पर्वतधर जो स्नान, दान और तप आदि पुण्यकर्म किये जाते हैं, वे सब कोटिगुने हो जाते हैं । ब्रह्मन् । इसी प्रकार भारतवर्षके गोवर्धन तीर्थमें जो स्नानादि शुभकर्म किया जाता है, वह सब अनन्तगुना हो जाता है ।

इस प्रकार श्रीरामतीहितामें श्रीगिरिराजकृष्णके अन्तर्गत नारद-बहुलादव-संवादमें 'श्रीगिरिराजका माहात्म्य' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

सिद्धके द्वारा अपने पूर्वजन्मके वृत्तान्तका वर्णन तथा गोलोकसे उतरे हुए विशाल रथपर आरूढ़ हो उसका श्रीकृष्ण-लोकमें गमन

श्रीबारहदजी कहते हैं—राजन् ! सिद्धकी यह बात तुमनकर आहारणको बड़ा विस्तय हुआ । गिरिराजके प्रभावको ज्ञानकर उसने लिखते पुनः प्रश्न किया ॥ १ ॥

आहारणे पूछा—महाभाग ! इस समय तो तुम जाक्षात् दिव्यस्तपथारी विशाली बैते हो । परंतु पूर्वजन्ममें

दृश्यस्तिके भिराशिमें स्थित होनेपर गोदावरीमें और कृष्ण-राशिमें स्थित होनेपर इरदारमें, पुण्यनक्षत्र आनेपर पुष्टकर्ममें शूरप्रहण होनेपर तुक्कोत्तरमें, चन्द्रप्रहण होनेपर काशीमें, काल्युन आनेपर नैनिश्वरस्थमें, एकादशीके दिन इकरतीयमें, कार्तिकी पूर्णिमाको गढ़मुक्तेश्वरमें, जन्मसाइमीके दिन मधुरामें, द्वादशीके दिन खाण्डव-वनमें, कार्तिकी पूर्णिमाको बंधुवर नामक महावटके पास, मकर-संक्रान्ति छगनेपर प्रयागतीर्थमें, वैधृतियोग आनेपर वर्हिष्मतीमें, श्रीरामनवमीके दिन अयोध्यागत सरयूके तटपर, शिव-चतुर्दशीको हुम वैद्यनाथ वनमें, सोमवारगत अमावास्याको गङ्गासागर-संगममें, दशमीको सेतुबन्धपर तथा सप्तमीको श्रीरङ्गतीर्थमें किया हुआ दान, तप, स्नान, जप, देवपूजन, ब्राह्मण-पूजन आदि जो शुभकर्म किया जाता है, द्विजोत्तम । वह कोटिगुना हो जाता है । इन सबके समान पुण्यफल केवल गोवर्धन पर्वतकी यात्रा करनेते प्राप्त हो जाता है । मंथिलेन्द्र । जो भगवान् श्रीकृष्णमें मन छापकर निर्मल गोविन्दकृष्णमें स्नान करता है, वह भगवान् श्री-कृष्णका मारुत्य प्राप्त कर लेता है—इसमें संदेश नहीं है । हमारे गोवर्धन पर्वतपर जो मानसी-गङ्गा हैं, उनमें तुम्हारी कंगानेकी समानता करनेवाले सहस्रों अशमेष यज्ञ तथा सैकड़ों राजसूय यज्ञ भी नहीं हैं । विश्वर ! आपने साक्षात् गिरिराजका दर्शन, स्वर्ण तथा वहाँ स्नान किया है, अतः इस भूतलपर आपसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है । यदि आपको विश्वास न हो तो मेरी ओर देखिये । मैं यहूत बड़ा महापातकी था, किंतु गोवर्धनकी शिलाका स्वर्ण होनेमात्रसे मैंने भगवान् श्रीकृष्णका मारुत्य प्राप्त कर लिया ॥ २४-४१ ॥

तुम कौन थे और तुमने कौन-सा पाप किया था ? ॥ २ ॥

सिद्धने कहा—पूर्वजन्ममें मैं एक धनी वैद्य था । अत्यन्त समृद्ध वैद्य-काल्युन होनेके कारण मुझे बचपनसे ही हुआ खेलनेकी आदत पढ़ गयी थी । धूतीं और कुआरिलोंकी गोलीमें मैं उससे चतुर समझा जाता था । आगे चलकर मैं

वेश्यामें आलफ हो गया, कुपथपर चलने और मदिराके महसे उमस रहने लगा। ब्रह्मन्। इसके कारण मुझे अपने माता-पिता और पत्नीकी ओरसे बड़ी फटकार मिलने लगा। एक दिन मैंने माँ-आपको तो जहर देकर मार डाला और पत्नीको साथ छेकर कही जानेके बहाने निकला और रास्तेमें मैंने तलवारसे उसकी हत्या कर दी। इस तरह उन सभके भनको हियाकर मैं उस वेश्याके साथ दक्षिण विश्वामें चल गया। यह है मेरी दुष्टात्रक परिचय। दक्षिण जाकर मैं अत्यन्त निर्दयतापूर्वक लट्ठपाटका काम करने लगा। एक दिन उस वेश्याको भी मैंने अँधेरे कुएँमें डाल दिया। डाकू तो मैं हो ही गया था, मैंने फांसा ल्लाकर सेकड़ों मनुष्योंको मौतके घाट उतार दिया। विप्रवर। भनके लोभसे मैंने सेकड़ों ब्रह्महत्यारें की। धक्षिय हत्या, वैश्य-हत्या और शूद्र-हत्याकी संख्या तो इजारोतक पहुँच गयी होगी। एक दिनकी बात है कि मैं भासं लानेके निमित्त मूर्गोंका बध करनेके लिये बनमें गया। वहाँ एक सर्पके कपर मेरा पैर पढ़ गया और उसने मुझे डैंस लिया। फिर तो तत्काल मेरी मृत्यु हो गयी और यमराजके भयंकर दूतोंने आकर मुझ कुष और महापातकीको भयानक मुदगारोंसे पीट-पीटकर बाँधा और नरकमें पहुँचा दिया। मुझे महादुष मानकर 'कुम्भीपाक'में ढाला गया और वहाँ एक मन्त्रन्तर-तक रहना पड़ा। तत्प्रात् 'तत्सूर्मि' नामक नरकमें मूँह दुष्को एक कल्पतक महान् दुःख भोगना पड़ा। इस तरह चौरासी लाख नरकोंमें प्रस्तेकमें अलग-अलग यमराजकी इच्छासे मैं एक-एक वर्षतक पड़ता और निकलता रहा। तदनन्तर भारतवर्षमें कर्मवासनाके अनुयार मेरा दस बार तो सूअरकी योनिमें जन्म हुआ और सौ बार व्याघ्रकी योनिमें। फिर सौ जन्मोंतक ऊँट और उतने ही जन्मोंतक भैंसा हुआ। इसके बाद एक सहस्र जन्मतक मुझे सर्पकी योनिमें रहना पड़ा। फिर कुछ दुष्ट मनुष्योंने मिलकर मुझे मार डाला। विप्रवर। इस तरह दस इजार वर्ष बीतनेपर जलशून्य विषिनमें मैं ऐसा बिक्राल और महालल राखत हुआ, जैसा कि तुमने अभी-अभी देखा।

इस प्रकार श्रीगर्भसहितमें श्रीगिरिराजस्वरूपके अनुरूप श्रीनगर बहुलादव-संबद्धमें श्रीगिरिराज-प्रभाव प्रस्ताव-वर्णनके प्रस्तावमें 'सिद्धमोह' नामक भागवदं अव्याप्त पूरा हुआ ॥ ११ ॥

है। एक दिन किसी शूटके शरीरमें आयिष्ट हीवर लगते गया। वहाँ हृष्टावनके निकटवर्ती यमुनाके बुब्बर तटवे हाथमें छढ़ी लिये दूर कुछ रथामवाणीको श्रीहृष्टके पार्श्व उठे और मुझे पीटने लगे। उनके इतर लिखकह द्वारा भी ब्रह्मभूमिसे इधर भाग आया; तबसे बहुत लिखकमें भूला रहा और तुम्हें ला जानेके लिये वहाँ आया। इतनेमें ही तुमने मुझे गिरिराजके परथरसे भार दिया। भूले! मुझपर लालात् श्रीकृष्णकी कृपा हो गयी, जिससे मेरा कल्याण हो गया ॥ १-१८ ॥

श्रीनारायणी कहते हैं—राजन्! वह इस प्रकार कह ही रहा था कि गोलोकसे एक विशाल रथ उत्तरा। वह सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्वी था और उसमें इस इजार लोडे जुते हुए थे। नरेश्वर! उससे इजारों पहियोंके चलनेकी ज्वनि होती थी। लाखों पार्श्व उसकी दोमा बढ़ रहे थे। मधुरी और शुद्र-घणिकाओंके समूहसे आच्छादित वह रथ अत्यन्त मनोहर दिखायी देता था। ब्राह्मणके देखते-देखते उस तिद्वाको लेनेके लिये जब वह रथ आया, तब ब्राह्मण और तिद्वा दोनोंने उस दिव्य रथको नमस्कार किया। सिथिलेश्वर। तदनन्तर वह लिद उस रथपर आलड़ हो दिष्ट्युष्टवर्को प्रकाशित करता हुआ परापर श्रीकृष्ण-लोकमें पहुँच गया, जो निकुञ्ज-लीलाके कारण ललित एवं परम यनोहर है। मैथिल! वह ब्राह्मण भी गोवर्धनका प्रभाव जान गया था, इमलिये वहाँसे लौटकर समस्त गिरिराजोंके देवता गोवर्धन गिरिपर आया और उसकी परिकल्पना एवं उसे प्रणाम करके अपने बरको गया ॥ १९-२४ ॥

राजन्! इस प्रकार मैंने यह विचित्र एवं उत्तम भोक्ष-दायक श्रीगिरिराजस्वरूप तुम्हें कह सुनाया। पापी मनुष्य भी इसका अवण करके स्वप्नमें भी कभी उग्रदण्डधारी प्रचण्ड यमराजका दर्शन नहीं करता। जो मनुष्य गिरिराजके यशसे परिपूर्ण गोपराज श्रीकृष्णकी नूतन कैलिके रहस्यको सुनता है, वह देवग्राज इन्द्रकी भाँति इस लोकमें सुख भोगता है और नन्दराजके समान परलोकमें शान्तिका अनुभव करता है ॥ २५-२६ ॥

श्रीदत्तदासै नमः

माधुर्यस्वण्ड

पहला अध्याय

**भृतिरुपा गोपियोंका वृत्तान्त, उनका श्रीकृष्ण और दुर्वासा मुनिकी बातोंमें
संशय तथा श्रीकृष्णद्वारा उसका निराकरण**

**अलसीकुमुमोपमेवकमिदंसुग्रामकृष्णमूलवर्ती ।
मवगोपवृविलासशाली वनमाली वित्तनोतु मङ्गलिष्ठ ॥**

जिनकी अङ्गकान्तिको अलसीके फूलकी उपमा दी जाती है, जो यमुनाकूलवर्ती कदम्बवृक्षके मूलभागमें विद्यमान है तथा नूतन गोपाङ्गनाओंके साथ लीला-विलास करते हुए अत्यन्त शोभा पा रहे हैं, वे वनमाली श्रीकृष्ण मङ्गलका विलास करें। १ ॥

**परिकृष्टाकृतपर्वतं हरि विविक्षिटनीकृतकन्धरम् ।
कुमुदेषुकरं चक्रकुण्डं पद्मरं गटवेष्वर्धं भजे ॥**

जिन्होंने पीताम्बरकी फैट वॉथ रक्खी है, जिनके महाकपर मोरपंखका मुकुट सुधोमित है और गर्दन एक और छाँटी हुई है, जो लकुटी और बंदी हाथमें लिये हुए हैं और जिनके कानोंमें चक्रल कुण्डल अलमला रहे हैं, उन परम पद्म, नटवेष्वरी श्रीकृष्णका मैं भजन (ध्यान) करता हूँ। २ ॥

ब्रह्मलाश्वने पूछा—मुने ! भृतिरुपा आदि गोपियोंने, जो पूर्वप्रदृश वरके अनुसार पहले ही ब्रजमें प्रकट हो चुकी थीं, किस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका साइर्चर्च पाकर अपना मनोरथ पूर्ण किया था ? महाबुद्धे ! गोपाल श्रीकृष्णचन्द्रका चरित्र परम अद्भुत है, इसे कहिये; क्योंकि आप परापरवेत्ताओंमें सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ३-४ ॥

श्रीनारदजीने कहा—विदेहराज ! भृतिरुपा जो गोपियों थीं, वे शोषशारी भगवान् विष्णुके पूर्वकथित वरसे ब्रजवासी गोपोंके उत्तम कुलमें उत्पन्न हुईं । उन सबने बृन्दावनमें परम कमलीय नन्दनन्दनका दर्शन करके उन्हें बरारूपमें पानेकी इच्छासे बृन्दावनशरीरी बृन्दादेवीकी समाप्ताधना की । बृन्दाके हिसे हुए वरसे भक्तवत्सल भगवान् श्रीहरि उनके ऊपर हीव लगाये गये और प्रतिदिन उनके सरोंमें रातकीहाके लिये

जाने लगे । नरेश्वर ! एक दिन रातमें दो पहर बीत जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण रातके लिये उनके घर गये । उस समय उत्कण्ठित गोपियोंने उन परम प्रभुका अत्यन्त भक्ति-भावसे पूजन करके मधुर वाणीमें पूछा ॥ ५—९ ॥

गोपियाँ थोली—अधनाशन श्रीकृष्ण । जैसे चकोरी चन्द्रदर्शनके लिये उत्सुक रहती है, उसी प्रकार इस गोपाङ्गनाएँ आपसे मिलनेको उत्कण्ठित रहती हैं । अतः आप हमारे घरमें शीघ्र क्यों नहीं आये ? ॥ १० ॥

श्रीभगवान् ने कहा—प्रियाओ ! जो जिसके द्वयमें बास करता है, वह उससे दूर कभी नहीं रहता । देखो न, सूर्य तो आकाशमें है और कमल भूमिपर; फिर भी वह उन्हें देखते ही खिल उठता है (वह सूर्यको अपने अत्यन्त निकटस अनुभव करता है) । प्रियाओ ! आज मेरे साक्षात् गुरु भगवान् दुर्वासा मुनि भाण्डीर-वनमें पधारे हैं । उन्होंकी सेवाके लिये मैं चला गया था । गुरु ब्रह्म हैं, गुरु विष्णु हैं, गुरु भगवान् महेश्वर हैं और गुरु साक्षात् परम ब्रह्म हैं । उन श्रीगुरुको मेरा नमस्कार है । अशानल्पी रत्नांशसे अंचे हुए मनुष्यकी हड्डिको जिन्होंने शानाङ्कनकी शलाकासे सोल दिया है । उन श्रीगुरुदेवको नमस्कार है । अपने गुरुको मेरा स्वरूप ही समझना चाहिये और कभी उनकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये । गुरु समूर्ण देवताओंके स्वरूप होते हैं । अतः साधारण मनुष्य समझकर उनका सेवा नहीं करनी चाहिये । हे प्रियाओ ! मैं उनका पूजन करके तथा उनके चरणकमलोंमें प्रणाम करके तुम्हारे घर देरोंसे पहुँचा हूँ ॥ ११-१६ ॥

* उरुबंडा उरुविष्णुउरुबंडो महेश्वरः ।

गुरुः साक्षात्तरवद्ध तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

अधनतिमिरात्मस्य शानाङ्कनशङ्कक्षात् ।

प्रदृशनभीक्षितं वैन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् । श्रीकृष्णका यह उच्चम वचन सुनकर समस्त गोपाङ्गनाओंको बड़ा विस्मय हुआ । वे हाथ लेकर सिर सुकाकर श्रीकृष्णसे बोलीं ॥ १७ ॥

गोपियोंने कहा—प्रभो । यह तो वह आश्वर्यकी वात है । आप स्वयं परिपूर्णतम परमेश्वरके भी गुण दुर्बाला हैं । यह जानकर हमारा मन उनके दर्शनके लिये उत्सुक हो उठा है । देव ! परमेश्वर ! आज रातके दो पहर बीत जानेपर उनका दर्शन हमें कैसे प्राप्त हो सकता है ? बीचमें विशाल नदी यमुना प्रतिवन्धक बनकर खड़ी है अतः देव ! जिना किसी नावके पार यमुनाजीको पार करना कैसे सम्भव होगा ॥ १८-२० ॥

श्रीभगवान् बोले—प्रियाओ । यदि तुमलोगोंको अवश्य ही वहाँ जाना है तो यमुनाजीके पास पहुँचकर मार्ग प्राप्त करनेके लिये इस प्रकार कहना—‘यदि श्रीकृष्ण बालब्रह्मचारी और सब प्रकारके दोषोंसे रहित हैं तो सरिताओंमें भेष्ट यमुनाजी । हमारे लिये मार्ग दे दो ।’ यह वात कहनेपर यमुना दुर्घट्य स्वतः मार्ग दे देंगी । उस मार्गसे दुम सभी ब्रजाङ्गनार्ये सुखपूर्वक चली जाना ॥ २१-२३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् । उनका यह वचन सुनकर सभी गोपियों अलग-अलग विशाल पात्रोंमें छप्पन भोग लेकर यमुनाजीके तटपर गयीं और सिर सुकाकर उन्होंने श्रीकृष्णकी कही हुई वात दुहरा दी । मैथिलेश्वर ! फिर तो लक्षाल यमुनाजीने उन गोपियोंके लिये मार्ग दे दिया । उस मार्गसे सभी गोपियों अस्त्वत विस्तित हो, भाष्टीर-बटके पास पहुँचीं । वहाँ उन्होंने दुर्बाला सुनिकी परिकल्पा की और उनके आगे बढ़ती भोजन-सामग्री रखकर उनका दर्शन किया । फिर सब-की-सब कहने लगी—‘मुने ! पहले मेरा अब अशृण कीजिये, पहले मेरा अब भोजन कीजिये ।’ इस तरह परस्पर विवाद करती हुई गोपियोंका भक्तिसूचक भाव जानकर सुनिश्चेष्ट दुर्बालाने यह विमल वचन कहा ॥ २४-२८ ॥

मुनि बोले—गोपियो । मैं कृतकृत्य परमहंस हूँ, निष्क्रिय हूँ । इसलिये तुमलोग अपना-अपना भोजन अपने ही हाथोंसे मेरे मुँहमें डाल दो ॥ २९ ॥

करुणं मा विवानीयान्नावमन्येत लाईचिद् ।

न मस्तुद्वा सेवेत सर्वेषवयो गुरः ॥

(पां०, पाठ्यां० २ । १३-१५)

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् । यौं कहकर वह उन्होंने अपना मुँह फेंगया, तब सभी गोपियोंने अस्त्रपत्र इर्षके साथ अपने-अपने छप्पन भोगोंके उनके मुँहमें एक साथ ही ढालना आरम्भ किया । अब ढाली हुई उन गोपियोंके देखते-देखते सुनीश्वर दुर्बाला सुधासे पीकितकी भाँति उन समस्त भोगोंको, जो करोड़ों भारते कम न थे, चट कर गये । गोपियाँ आश्वर्यचकित हो एक-दूसरीकी ओर देखने लगीं । नुपत्रेष्ट ! इस तरह उनके सारे बतन लाली हो गये । तत्पश्चात् उन परम शान्त और भक्तवत्सल सुनिको विलित हुई सभी गोपियोंने पूर्णमनोरथ होकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा ॥ ३०-३३ ॥

गोपियोंने कहा—मुने ! यहाँ आनेसे पूर्व श्रीकृष्णकी कही हुई वात दुहराकर मार्ग मिल जानेसे यमुनाजीको पार करके हमलोग आपके सभीप दर्शनकी शुभ इच्छा लेकर यहाँ आ गयी थीं । अब इधरसे हम कैसे जायेंगी, यह मानूँ संदेह द्वारा मनमें हो गया है ! अतः आप ही ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे मार्ग इच्छा हो जाय ॥ ३४-३५ ॥

मुनि बोले—गोपियो । तुम सब यहाँसे सुखपूर्वक चली जाओ । जब यमुनाजीके किनारे पहुँचो, तब मार्गके लिये इस प्रकार कहना—‘यदि दुर्बाला मुनि इस भूतलपर केवल दुर्बाला का रस पीकर रहत हैं, कभी अब और जल न लेकर ब्रतका पालन करते हैं तो सरिताओंको शिरोमणि यमुनाजी । इसे मार्ग दे दो ।’ ऐसी वात कहनेपर यमुनाजी दुर्घट्य स्वतः मार्ग दे देंगी ॥ ३६-३८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर ! यह सुनकर गोपियाँ उन मुनिपुंगवको प्रणाम करके यमुनाके तटपर आयीं और मुनिकी लतायी हुई वात कहकर नदी पार हो श्रीकृष्णके पास आ पहुँचीं । वे मङ्गलवामा गोपियाँ इस यात्राके विचित्र अनुभवसे विस्तित थीं । तदनन्तर रासमें गोपाङ्गनाओंने श्रीकृष्णकी ओर देवकर अपने मनमें उठे हुए संदेहको उनसे पूछा । एकान्तमें श्रीहरिने उन सबका मनोरथ पूर्ण कर दिया था ॥ ३९-४१ ॥

गोपियाँ बोलीं—प्रभो ! इमने दुर्बाला सुनिका दर्शन उनके सामने आकर किया है; किंतु आप दोनोंके वचनोंको सुनकर उनकी सत्यताके सम्बन्धमें हमारे मनमें संदेह उत्पन्न हो गया है । जैसे युरुजी अस्त्वादी हैं, उली तरह चेकाजी भी मिल्लाजी हैं—इसमें चंद्राय नहीं है । अबनाहन ।

आप हो गोपियोंके उपति और बचपनसे ही दर्शक हैं। ऐसे आप शालब्रह्माचारी कैसे हुए—यह हमें स्पष्ट बताइये और हमारे सामने बहुत-सा अश (भार-के-भार कल्पना भोग) खा जानेवाले ये दुवाला मुनि केवल दूर्वाला रस पीकर रहनेवाले कैसे हैं। ब्रजेश्वर। हमारे समये वह भारी सदैह उठा है॥ ४२—४४॥

श्रीभगवान्ने कहा—गोपियों! मैं ममता और अहंकार से रहित, सबके प्रति समान भाव रखनेवाला, सर्वव्यापी, उसे उत्कृष्ट, उदा विषमताशून्य तथा प्राकृत गुणोंसे रहित हूँ—इसमें संशय नहीं है। तथापि जो भक्त मेरा जिस प्रकार भजन करते हैं, उनका उसी प्रकार मैं भी भजन करता हूँ। इसी प्रकार शारीर साधु महात्मा भी उदा विषम भावनासे रहित होते हैं। योगयुक्त विद्वान् पुरुषको जाहिये कि वह किसीमें असूक्त हुए अक्षांशजनये दृढ़ि-मेह न उत्पन्न करे। उसमें सहा समझ क्योंका देखन ही कराये। जिस पुरुषके सर्वो उमारभ (आरोजन) कामना और संकल्पसे शून्य होते हैं, उनके सारे कंभ शानस्थी अग्निमें दग्ध हो जाते हैं (अथात् उनके किये

इस प्रकार श्रीगर्भस्तुतामें शारुप्यवस्थके अन्तर्गत शोनाम्ब-बुलाइ-संवादमें श्रुतेरूपा गोपियोंका

उपाख्यान नामक एहां जानाय पूरा हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

श्रुतेरूपा गोपियोंका उपाख्यान—मङ्गदेशके मङ्गल-गोपकी कन्याओंका नन्दराजके व्रजमे आगमन तथा यमुनार्जीके नटपर गमनगङ्गलमें ग्रवेश

श्रीबारदजी कहते हैं—मिथिल ! अब तुम श्रुतेरूपा गोपियोंकी कथा सुनो। वह सभ पापोंको हर देवेवाली, परम पापन तथा श्रीकृष्णके प्रति भक्ति-भावकी पूर्ढि करनेवाली है। मङ्गदेशमें मङ्गल नामके प्रभान्द एक महामनसी गोप था, जो लक्ष्मीवान्, शालब्रह्मासे सम्पन्न तथा नौ लाख गौओंका स्वामी था। मिथिलेश्वर। उसके पांच हजार पलियो थीं। किसी समय देवयोगसे उत्पन्न सारा धन नहीं हो गया। चोरोंने उसकी यौथोंका अग्निरथ कर लिया। कुछ गौओंकी उत्त देशके राजाने उत्पुर्वक अपने अधिकारी कर लिया। इस प्रकार हीनता ग्रात होनेपर मङ्गल-गोप बहुत दुखी हो गया। उन्हीं दिनों श्रीरामनन्दजीके वरदानसे शोभावको मात्र दुख रम्भकर्त्त्वके निशाची धूमि उसकी कम्पाएं हो

वे कर्म बन्धनकारक नहीं होते)। ऐसे पुरुषको शानीजन पण्डित (तत्त्वज्ञ) कहते हैं। जिसके मनमें कोई कामना नहीं है, जिसने चित्र और बुद्धिको अपने बद्धमें कर रखा है तथा जो समस्त संग्रह-पारिषद् छोड़ चुका है, वह केवल शरार निवाह सम्बन्धी कर्म करता हुआ किलिष (कमज़निव शुभाशुभ फल) को नहीं प्राप्त होता। इस संसारमें शानके समान पवित्र दूसरे कोई वस्तु नहीं है। योगसिद्ध पुरुष समयानुसार स्वयं ही अपने-अपने उस शानको प्राप्त कर लेता है। जो समस्त कर्मोंको बद्धापर्ण करके आसक्ति छोड़कर कर्म करता है, वह पापसे उसी प्रकार लिम नहीं होता, जैसे कमलका पञ्च बलसे। इसलिये दुर्वाला मुनि तुम सबके हित-साधनमें तत्पर होकर बहुत लान्वाले हो गये। स्वतः उन्हे कभी भोजनकी इच्छा नहीं होती। वे केवल परिमित दूर्वा-रखका ही आहार करते हैं॥ ४५—५२॥

श्रीबारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर। श्रीकृष्णका यह वन्न तुनवर समस्त गोपियोंका संशय नहीं हो गया। वे श्रुतेरूपा गोपाङ्गनाएँ ज्ञानमयी हो गयीं॥ ५३॥

गये। उस कन्या-तनहुँको देखकर दुखी गोप मङ्गल और भी दूँखमें हूँ गया और आधि-व्याधिसे व्याकुळ रहने लगा। उसने मन-ही-मन इस प्रकार कह॥ १—५॥

मङ्गल बोला—क्या कहूँ ? कहाँ जाऊँ ? कौन मेरा दूँख दूर करेगा ? इस समय मेरे पास न तो लक्ष्मी है, न देवी है; न कुड़मार्जन है और न कोई बड़ी ही है। हाव ! धनके दिना इन कन्याओंका विवाह कैसे होगा ? जहाँ भोजनमें भी संदेह है, वहा धनकी कैसी आशा ! दीनता तो थी ही। काकतालीकन्यासं कन्याएँ भी इस घरमें आ गयीं। इसलिये किसी धनवान् और बलवान् राजाोंसे कन्याएँ अर्पित कर्त्त्वात्, तभी इन कन्याओंको दुख मिलेगा॥ ५०—५३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार उन कन्याओंको कोई परवा न करके उसने अपनी ही बुद्धिसे ऐसा निश्चय कर लिया और उसीपर डटा रहा । उन्होंने मधुरामण्डलमें एक गोप उसके यहाँ आया । वह तीर्थ-यात्री था । उसका नाम था जय । वह बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ और बृद्ध था । उसके सुखसे मङ्गलने नन्दराजके अद्भुत वैभवका वर्णन सुना । दीनतासे पीड़ित मङ्गलने अद्भुत सोच-विचारकर अपनी नाश्लोचना कन्याओंको नन्दराजके व्रजमण्डलमें मेज दिया । नन्दराजके घरमें जाकर वे रत्नमय भूषणोंमें विभूति कन्याएँ उनके गोष्ठमें गौओंका गोबर उठानेका काम करने लगीं । वहाँ सुन्दर श्रीकृष्णको

इस प्रकार श्रीगर्गसहितमें माधुर्यहास्यके अन्तर्गत नारद-बहुलवद-संवादमें ‘ऋषिका गोपियोंका उपाख्यान’ नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

शैथिलीरूपा गोपियोंका आख्यान; वीरहरणलीला और वरदान-प्राप्ति

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! शिथिलेश्वर ! अब शिथिलादेशमें उत्पन्न गोपियोंका आख्यान सुनो । यह दशाश्वमेध-तीर्थयर ज्ञानका फल देनेवाला और भक्ति-भाष्यको बढ़ानेवाला है । श्रीरामनन्दजीके वरसे जो नौ नन्दोंके धर्मोंमें उत्पन्न हुई थीं, वे शैथिलीरूपा गोपकन्याएँ परम कमलीय नन्द-नन्दनका दर्शन करके मोहित हो गयीं । उन्होंने मार्गशीर्षके शुभ मासमें काश्यायनीका व्रत किया और उनकी मिट्टीकी प्रतिमा बनाकर वे घोड़ोपचारमें उसकी पूजा करने लगीं । अशोदयकी वेलमें वे प्रतिदिन एक साथ भगवन्के गुण गाती हुई आर्ती और श्रीयमुनाजीके जलमें स्नान करती थीं । एक दिन वे व्रजाङ्गनाएँ अपने वज्र यमुनाजीके किनारे रखकर उनके जलमें प्रविष्ट हुईं और दोनों हाथोंसे जल उछीचकर एक-दूसरीको भिगोती हुई जल-विहार करने लगीं । प्रातःकाल भगवान् इश्यमसुन्दर वहाँ आये और तुरंत उन सबके छञ्चल लेकर कदम्बपर आसू हो चोरकी तरह चुप-चाप बैठ गये । राजन् ! अपने वज्रोंको न देखकर वे गोप-कन्याएँ वैदे विसर्यमें पड़ीं तथा कदम्बपर बैठे हुए इश्यमसुन्दरको देखकर लजा गयीं और हँसने लगीं । तब चृक्षपर बैठे हुए श्रीकृष्ण उन गोपियोंसे कहने लगे—‘तुम सब लोग महाँ आकर अपने-अपने कपड़े ले जाओ, अन्यथा मैं नहीं दूँगा ।’ राजन् ! तब वे गोपकन्याएँ शीतल जलके

देखकर उन कन्याओंको अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण हो आया और वे श्रीकृष्णकी प्रासिके लिये नित्य यमुनाजीकी मेवा-पूजा करने लगीं । तदनन्तर एक दिन इश्यमल अङ्गो-वाली विशालोचना यमुनाजी उन सबको दर्शन दे, वर-प्रदान करनेके लिये उच्चत हुई । उन गोपकन्याओंने वह वर माँगा कि ‘ज्वेऽवर नन्दराजके पुत्र श्रीकृष्ण हमारे पति हों ।’ तब ‘तथात्मा’ कहकर यमुना वहीं अन्तर्धान हो गयीं । वे सब कन्याएँ शून्दावनमें कार्तिक-पूर्णिमाकी रातको रासमण्डलमें पहुँचीं । वहाँ श्रीहरिने उनके साथ उसी तरह विहार किया, जैसे देवाङ्गनाओंके साथ देवराज इन्द्र किया करते हैं ॥ १०—१७ ॥

भीतर खड़ी-खड़ी हँसती हुई लजासे मुँह नीचे किये बोलीं ॥ १-१ ॥

गोपियोंने कहा—हे मनोहर नन्दनन्दन ! हे गोप-रत्न ! हे गोपाल-बंदको कूतन हंस ! हे महान् पीड़ाको हर लेनेवाले श्रीयमसुन्दर ! तुम जो आज्ञा करोगे, वही हम करेंगी । तुम्हारी दानी होकर भी हम यहाँ बख्तीन होकर कैसे रहें ? आप गोपियोंके बल लूटनेवाले और मालवनचोर हैं । व्रजमें जन्म लेकर भी वैदे राजिक हैं । भय तो आपको क्षु नहीं सका है । हमारा बल हमें लौटा दीजिये; नहीं तो हम मधुरानरेशके दरवारमें आपके द्वारा इस अवसरपर की गयी बड़ी भारी अनीतिकी शिकायत करेंगी ॥ १०-११ ॥

श्रीभगवान् बोले—सुन्दर मन्दशास्यमें सुशोभित होनेवाली गोपकाङ्गाओं ! यदि तुम मेरी दामियों हो तो इस कदम्बकी जड़के पास आकर अपने वज्र ले लो । नहीं तो मैं इन सब वज्रोंको अपने घर उठा ले जाऊँगा । अतः तुम अविलम्ब मेरे कथनानुसार कार्य करो ॥ १२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तब वे सब व्रजवासिनी गोपियाँ अत्यन्त कौपती हुई जलसे बाहर निकलीं और आनन्द-शरीर हो, हाथोंसे योनिको ढककर शीतले

कह पाते हुए श्रीकृष्णके हाथसे दिये गये ब्रज लेकर उन्होंने अपने अङ्गोंमें धारण किये। इसके बाद श्रीकृष्णको लजीली आँखोंसे देखती हुई बहाँ मोहित हो लड़ी रही। उनके परम प्रेमसूचक अभिप्रायको जानकर मन्द-मन्द मुस्कराते हुए इयामसुन्दर श्रीकृष्ण उनपर चारों ओरसे दृष्टिप्रत करके इस प्रकार थोड़े ॥ १३-१५ ॥

श्रीभगवान् ने कहा—गोपाङ्गनाओ! तुमने मार्गदीर्घ

इस प्रकार श्रीगर्बसहितमें मातुर्बन्धके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें वैयिलीक्षा मोपियोंका

उपास्थानं नामक तीसरा अस्थाय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

मासमें मेरी प्रातिके लिये जो कास्याशनी-ब्रत किया है, वह अवश्य सफल होगा—इसमें संशय नहीं है। परसों दिनमें बनके भीतर यमुनाके मनोहर तटपर मैं तुम्हारे साथ रात करूँगा, जो तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करनेवाला होगा ॥ १६-१७ ॥

यों कहकर परिपूर्णतम श्रीहरि जब नले गये, तब आनन्दोलाससे परिपूर्ण हो मन्दहासकी छटा विस्तैरती हुई वे समस्त गोप बालाएँ अपने घरोंको गयी ॥ १८ ॥

चौथा अध्याय

कोसलप्रान्तीय स्त्रियोंका ब्रजमें गोपी होकर श्रीकृष्णके प्रति अनन्यभावसे प्रेम करना

श्रीनारदजी कहने हैं—मिथिलेश्वर! अब कोसल-प्रदेशकी गोपिकाओंका बर्णन सुनो। यह श्रीकृष्णचरितामृत समस्त पापोंका नाश करनेवाला तथा पुण्यजनक है। कोसल-प्रान्तकी स्त्रियाँ श्रीरामके बरसे ब्रजमें नौ उननन्दोंके घरोंमें उत्पन्न हुईं और ब्रजके गोपजनोंके साथ उनका विवाह हो गया। वे सद-की-त्रय रत्नमय आभूषणोंमें विभूषित हीं। उनकी अङ्गकान्ति पूर्ण चन्द्रमाकी चाँदनीके समान हीं। वे नूजन यौवनसे सम्मन्न हीं। उनकी चाल हंसके समान हीं और नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल हे। वे पश्चिमी जातिकी नारियाँ हीं। उन्होंने कगमनीय महात्मा नन्दनन्दन श्रीकृष्णके प्रति जारप्रभके अनुभार उत्तम, सुषुद्ध तथा सबमें अधिक स्नेह किया ॥ १-४ ॥

ब्रजकी गलियोंमें माधव मुस्कराकर पीताम्बर छीनकर और आँचल खींचकर उनके साथ सदा हास-परिहास किया करते थे। वे गोपवालाएँ जब दही बेननेके लिये निकलतीं तो ‘दही लो, दही लो’—यह कहना भूलकर ‘कृष्ण लो, कृष्ण लो’ कहने लगती हीं। श्रीकृष्णके प्रति प्रेमासक्त होकर वे कुञ्जपण्डिलमें शुभा करती हीं। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्रमण्डल, सम्मूर्ण दिशा, बृक्ष तथा जनसमुदायोंमें भी उन्हें केवल कृष्ण ही दिखायी देते थे। प्रेमके समस्त लक्षण उनमें प्रकट थे। श्रीकृष्णने उनके मन हर लिये थे। वे सारी गोपाङ्गनाएँ आठों सालिक भावोंसे सम्पन्न हीं * ॥५-८॥

* आठ सालिक भावोंके नाम इस प्रकार हैं—

साम्बः स्वेदोऽय रैमाङ्गः स्वरभङ्गोऽय वैपुः ।

वैष्णवंस्तु प्रव्य वस्त्रौ सालिक भावः ॥

प्रेमने उन सबको परमहंसों (ब्रह्मनिष्ठ महात्माओं) की अवस्थाको पहुँचा दिया था। नरेश्वर! वे कान्तिमती गोपाङ्गनाएँ श्रीकृष्णके आनन्दमें ही मग्न हो ब्रजकी गलियोंमें विचरा करती हीं। उनमें जड़-चेतनका भान नहीं रह गया था। वे जड़, उन्मत्त और पिशाचोंकी भाँति कभी मौन रहतीं और कभी बहुत बोलने लगती हीं। वे लाज और चिन्नाको तिलाङ्गलि दे चुकी हीं। इस प्रकार कृतार्थताको प्राप्त हो जो श्रीकृष्णमें तन्मय हो रही हीं, वे गोपाङ्गनाएँ बल्मूरुंक खींचकर श्रीकृष्णके मुख्यविन्दको चूम लेती हीं। राजन्! उनके तपका मैं क्या वर्णन करूँ? जो सारे लोकव्यवहार एवं मर्यादा-मार्गको तिलाङ्गलि देकर हृदय तथा इन्द्रिय आदिके द्वारा पूर्ण परत्रप्राप्त वासुदेवमें अविचल प्रेम करती हीं; जो रास-कीडामें श्रीकृष्णके कंधोंपर अपनी बाँहें रखकर, प्रेममें विगलितचित्त हो श्रीकृष्णको पूर्णतया अपने वशमें कर चुकी हीं; उनकी तपस्याका अपने सहस्रमुखोंसे बर्णन करनेमें नागराज दोष भी समर्थ नहीं हैं। विदेशराज! न्याय-वैशिष्ठिक आदि दर्शनोंके तत्त्वोंमें श्रेष्ठतम महात्मा योग-संस्कृत और शुभकर्मद्वारा जिस पदको प्राप्त करते हैं, वही पद केवल भक्ति-भावसे उपलब्ध हो जाता है। आदि-

‘ज्ञानोक्त वक्तव्य आना, परीना होना, रोमाश हो आना, शोलते सप्तव आवाक्षण वक्तव्य आना, शरीरमें कम्पन होना, सुंहास रंग ढक आना, नेत्रोंसे बौद्ध बहना तथा मरणान्तिक वरस्तात्क पहुँच आना—ये आठ प्रेमके सालिक भाव माने गये हैं।’

देव श्रीहरि केवल भक्तिसे ही बद्धमें होते हैं, निश्चय ही इस विषयमें सदा गोपियाँ ही प्रमाण हैं। उन्होंने कभी सांख्य वे भगवत्स्वरूपताको प्राप्त हो गयीं ॥ ९-१५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें मायुरबहुषणके अन्तर्गत नारद-ब्रह्माद्यन्तवादमें 'कोटवाशनीव गोपिकामोक्ष आख्यान' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

अयोध्यावासिनी गोपियोंके आख्यानके प्रसङ्गमें राजा विमलकी संतानके लिये चिन्ता तथा
महामुनि याह्ववल्क्यद्वारा उन्हें बहुत-सी पुत्री होनेका विश्वास दिलाना

थीनारदजी कहते हैं—राजन् । अब अयोध्यावासिनी गोपियोंका वर्णन सुनो, जो चारों पदार्थोंको देनेवाला तथा साक्षात् श्रीकृष्णकी प्राप्ति करानेवाला सर्वोन्मुख गाधन है ॥ १ ॥

मिथिलेश्वर ! सिन्धुदेशमें चम्पका नामसे प्रसिद्ध एक नगरी थी, जिसमें धर्मपरायण विमल नामक राजा हुए थे। वे कुचेरके समान शोषसे सम्पन्न तथा निहंके समान मनस्वी थे। वे भगवान् विष्णुके भक्त और प्रशान्तचित्त महात्मा थे। वे अपनी अविचल भक्तिके कारण मूर्तिमान् प्रह्लाद-से प्रतीत होते थे। उन भूपालके छः हजार रानियाँ थीं। वे सब-की-सब सुन्दर स्पष्टवाली तथा कमलनयनी थीं, परंतु भाव्यवद्य वे बन्धा हो गयीं। राजन् ! 'मुझे किस पुण्यसे उसम संतानकी प्राप्ति होगी ?'—ऐसा विचार करते हुए राजा विमलके बहुत वर्ष व्यतीत हो गये ॥ २-५ ॥

एक दिन उनके यहाँ मुनिवर याह्ववल्क्य पधारे। राजाने उनको प्रणाम करके उनका विधिवत् पूजन किया और फिर उनके सामने वे विनीतभावसे खड़े हो गये। दृपतिशिरोमणि राजाको चिन्तासे आकुल देख सर्वह, सर्ववित् तथा शान्त-स्वरूप महामुनि याह्ववल्क्यने उनसे पूछा ॥ ६-७ ॥

याह्ववल्क्य बोले—राजन् । तुम हुवर्ल क्यों हो गये हो ? तुम्हारे हृदयमें कौन-सी चिन्ता खड़ी हो गयी है ? इस समय तुम्हारे राज्यके सातों अङ्गोंमें तो कुशल-मङ्गल ही दिखायी देता है ? ॥ ८ ॥

विमलने कहा—राजन् । आप अपनी लप्स्या एवं दिव्यहृषिसे क्या नहीं जानते हैं ? तथापि आपकी आक्षाका गौरव मानकर मैं अपना कष्ट बता रहा हूँ। मुनिश्रेष्ठ ! मैं संतान-ईनताके दुःखसे चिन्तित हूँ। कौन-सा तप और दान कर्त्ता, जिससे मुझे संतानकी प्राप्ति हो ? ॥ ९-१० ॥

और योगका अनुष्ठान नहीं किया, तथापि केवल प्रेमसे ही वे भगवत्स्वरूपताको प्राप्त हो गयीं ॥ ९-१५ ॥

नारदजी कहते हैं—विमलकी यह बात सुनकर याह्ववल्क्य मुनिके नेत्र ध्यानमें स्थित हो गये। वे मुनि-श्रेष्ठ भूत और वर्तमानका चिन्तन करते हुए दीर्घकालतक ध्यानमें मग्न रहे ॥ ११ ॥

याह्ववल्क्य बोले—राजेन्द्र ! इस जन्ममें तो तुम्हारे भाव्यमें पुत्र नहीं है, नहीं है, परंतु दृपश्रेष्ठ ! तुम्हें पुत्रियाँ करोड़ोंकी संख्यामें प्राप्त होंगी ॥ १२ ॥

राजाने कहा—मुनोन्नद ! पुत्रके बिना कोई भी इस भूतलयर्पणसे मुक्त नहीं होता। पुत्रहीनके धरमें सदा ही व्यथा बनी रहती है। उसे इस लोक या परलोकमें कुछ भी मुख नहीं मिलता ॥ १३ ॥

याह्ववल्क्य बोले—राजेन्द्र ! सेव न करो। भविष्यमें भगवान् श्रीकृष्णका अवतार होनेवाला है। तुम उन्हींको दहेजके साथ अपनी सब पुत्रियाँ समर्पित कर देना। दृपश्रेष्ठ ! उसी कर्मसे तुम देवताओं, शृणियों तथा पितरोंके शृणसे शूटकर परममोक्ष प्राप्त कर लोगे ॥ १४-१५ ॥

थीनारदजी कहते हैं—महामुनिका यह बचन सुनकर उस समय राजाको बड़ा हर्ष दुआ। उन्होंने महर्ष याह्ववल्क्यसे पुनः अपना संदेह पूछा ॥ १६ ॥

राजा बोले—मुनीश्वर ! कितने वर्ष बीतनेपर किस देशमें और किस कुलमें साक्षात् श्रीहरि अवतीर्ण होंगे ? उस समय उनका रूप-रंग क्या होगा ? ॥ १७ ॥

याह्ववल्क्य बोले—महादाहो ! इस द्वापरयुगके जो अवशोष वर्ष हैं, उन्हींमें तुम्हारे राज्यकालसे एक वर्ष पंद्रह वर्ष व्यतीत होनेपर यादवपुरी मध्यरामें युद्धकुलके भीतर भाइपदमास, कृष्णपक्ष, दुष्कार, रोहिणी मध्यम, हर्षव-योग, हृष्मण, वर फरण और अष्टमी तिथिमें आधी गतकै

समय चन्द्रोदय-कालमें, जब कि सब कुछ अन्धकारसे आन्द्रज होगा, बसुदेव-भवनमें देवलीके गम्भीर साक्षात् श्रीहरिका आविर्भाव होगा—ठोक उसी तरह जैसे यहमें अरणि-काष्ठसे अंगिका प्राकट्य होता है। भगवान्के वक्षः स्थलपर श्रीवत्सका चिह्न होगा। उनकी अङ्गकान्ति मेघके

समान श्याम होगी। वे बनमालसे अलंकृत और अतीव सुन्दर होंगे। पीताम्बरधारी, कमलनयन तथा अवतारकालमें चतुर्भुज होंगे। तुम उन्हें अपनी कन्याएँ देना। तुम्हारी आयु अभी बहुत है। तुम उस समयतक जीवित रहेगे, इसमें संशय नहीं है॥ १८-२२॥

इस प्रकार श्रीगणसहितामें मायुरस्त्रके अस्तर्गत नारद-बहुताश-संवादमें अयोध्यावासिनी गोपक्षनाभोंका उपाख्यान नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

छठा अध्याय

अयोध्यापुरवासिनी खियोंका राजा विमलके यहाँ पुत्रीरूपसे उत्पन्न होना; उनके विवाहके लिये राजाका मधुरामें श्रीकृष्णको देखनेके निमित्त दूत भेजना; वहाँ पता न लगनेपर भीष्मजीसे अवतार-रहस्य जानकर उनका श्रीकृष्णके पास दूत प्रेषित करना

नारदजी कहते हैं—राजन्। यों कहकर जब साक्षात् महामुनि याशवल्क्य चले गये, तब चम्पका नगरीके स्वामी राजा विमलको बड़ा हर्ष हुआ। अयोध्यापुरवासिनी खियाँ श्रीरामके बरदानसे उनकी रानियोंके गम्भीरमें पुत्रीरूपमें प्रकट हुईं। वे सभी राजकन्याएँ बही सुन्दरी थीं। उन्हें विवाहके योग्य अवस्थामें देखकर नृपशिरोमणि चम्पकेश्वर-को चिन्ता हुई। उन्होने याशवल्क्यजीकी बातको याद करके दूसरे कहा ॥ १-३ ॥

विमल बोले—दूत। तुम मधुरा जाओ और वहाँ शूर-पुत्र बसुदेवके सुन्दर धरतक पहुँचकर देलो। बसुदेवका कोई बहुत सुन्दर पुत्र होगा। उसके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न होगा, अङ्गकान्ति मेघमालाकी भाँति श्याम होगी तथा वह बनमालाधारी एवं चतुर्भुज होगा। यदि ऐसी बात हो तो मैं उसके हाथमें अपनी समस्त सुन्दरी कन्याएँ देंगा ॥ ४-५ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्। महाराज विमलकी यह बात सुनकर वह दूत मधुरापुरीमें गया और मधुराके बड़े-बड़े लोगोंसे उसने सारी अभीष्ट बातें पूछीं। उसकी बात सुनकर मधुराके बुद्धिमान् लोग, जो कंससे ढेर हुए थे, उस दूतको एकान्तमें के आकर उसके कानमें बहुत धीमे शब्दसे कोके ॥ ६-७ ॥

मधुरपुरवासिनी चहा—बसुदेवके बो बहुत-से

पुत्र हुए, वे कंसके द्वारा मारे गये। एक छोटी-सी कन्या बच गयी थी, किंतु वह भी आकाशमें उड़ गयी। बसुदेव यहीं रहते हैं, किंतु पुत्रोंसे विछुड़ जानेके कारण उनके मनमें बड़ा दुःख है। इस समय जो बात तुम हमलेगोंसे पूछ रहे हो, उसे और कहीं न कहना; क्योंकि इस नगरमें कंसका भय है। मधुरापुरीमें जो बसुदेवकी संतानके सम्बन्धमें कोई बात करता है, उसे उनके आठवें पुत्रका शयु कंस भारी दण्ड देता है॥ ८-१० ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्। जनसाधारणकी यह बात सुनकर दूत चम्पकापुरीमें लौट गया। वहाँ जाकर राजासे उसने वह अद्भुत संवाद कह सुनाया ॥ ११ ॥

दूत बोला—महाराज ! मधुरामें शूरपुत्र बसुदेव अवश्य है, किंतु संतानदीन होनेके कारण अस्यन्त दीन-की भौति जीवन व्यतीत करते हैं। मुना है कि पहले उनके अनेक पुत्र हुए थे, जो कंसके हाथसे मारे गये हैं। एक कन्या बची थी, किंतु वह भी कंसके हाथसे छूटकर आकाशमें उड़ गयी। यह बृत्तान्त सुनकर मैं बदुपुरीसे धीरे-धीरे बाहर निकला। इन्द्रावनमें कालिकीके सुन्दर एवं रमणीय तटपर चिचरते हुए मैंने छताओंके लगूरमें अक्षात् एक शिष्ठ देखा। राजन्। गोपोंके मन्त्र बूद्धरा कोई ऐसा बालक नहीं था, जिसके लक्षण उसके लगाल हों। उस बालकके वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न था।

उसकी अझकानि मेवके समान इयाम थी और वह
बनमाला धारण किये अत्यन्त सुन्दर दिखायी देता था।
परंतु अन्तर इतना ही है कि उस गोपबालके दो ही
बाँहें थीं और आपने बसुदेवकुमार श्रीहरिको चतुर्मुख यताया
था। नरेश्वर! बताइये, अब क्या करना साहिये? क्योंकि
मुनिकी वात छठी नहीं हो सकती। प्रभो! जहाँ-जहाँ,
जिस तरह आपकी इच्छा हो, उसके अनुसार वहाँ-वहाँ
मुझे मंजिये॥ १२-१७ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! राजा विमल जय
इस प्रकार विस्तित होकर विचार कर रहे थे, उसी समय
हस्तिनापुरसे सिन्धुदेशको जीतनेके लिये भीष्म आये॥ १८॥

विमल बोले—महाबुद्धिमान् भीष्मजी! पहले
याहवत्क्यजीने मुझसे कहा था कि मधुरामै साक्षात् श्रीहरि
बसुदेवकी पत्नी देवकीके गर्भसे प्रकट होंगे, इसमें संशय
नहीं है। परंतु इस समय बसुदेवके यहाँ परमेश्वर श्रीहरिका
प्राकृत्य नहीं हुआ है। साथ ही शूषिकी वात छठी हो नहीं
सकती; अतः इस समय मैं अपनी कन्याओंका दान
किसके हाथमें करूँ? आप साक्षात् महाभागवत हैं और
पूर्वापरकी बातें जाननेवालोंमें सबसे अधिक हैं। वचपनसे ही
आपने इन्द्रियोंपर विजय पायी है। आप वीर, धनुर्भर एवं
बसुओंमें श्रेष्ठ हैं। इसलिये यह बताइये कि अब मुझे क्या
करना चाहिये॥ १९-२१॥

नारदजी कहते हैं—गङ्गानन्दन भीष्मजी महान्
भगवद्गत, विदान्, दिव्यदृष्टिसे सम्पन्न, धर्मके तत्त्वव
क्षेत्रमें श्रीगर्गसिद्धिमें माधुर्यसम्पदके अन्तर्गत नारद-बहुलाशन-सवादमें अयोध्यापुरवासिनी

गौमिकाओंका ठपाहयाम नामक छठा अस्त्राय पूरा हुआ॥ २१॥

सातवाँ अध्याय

**राजा विमलका संदेश पाकर भगवान् श्रीकृष्णका उन्हें दर्शन और मोक्ष प्रदान करना
तथा उनकी राजकुमारियोंको साथ लेकर ब्रजमण्डलमें लौटना**

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर बूत
पुनः सिन्धुदेशसे मधुरा-मण्डलमें आया। बृन्दावनमें विचरते
हुए यमुनाके तटपर उसको श्रीकृष्णका दर्शन हुआ।
एकान्तमें श्रीकृष्णको प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर और
उनकी परिकल्पा करके उसने धीरे-धीरे राजा विमलकी कही
हुई वात दुहरायी॥ २१-२२॥

तथा श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेवाले थे। उन्होंने राजा
विमलसे कहा॥ २२॥

भीष्मजी बोले—राजन्! यह एक युत वात है,
जिसे मैंने वेदव्यालजीके मुँहने मुनी थी। यह प्रसङ्ग समस्त
पार्योंको हर लेनेवाला, पुण्यप्रद तथा इष्वर्यर्थक है; इसे
मुनो। परिपूर्णतम भगवान् श्रीहरि देवताओंकी रक्षा तथा
दैत्योंका वध करनेके लिये बसुदेवके धरमें अवतीर्ण हुए हैं।
फिरु आधी शतके समय बसुदेव कंसके भयसे उस बालक-
को लेकर दुरंत गोकुल चले गये और वहाँ अपने पुत्रको
यशोदाकी शश्यापर सुलाकर, यशोदा और नन्दकी पुत्री
मायाको साथ ले, मधुरापुरीमें लौट आये। इस प्रकार
श्रीकृष्ण गोकुलमें गुप्तस्थपमें पलकर बड़े हुए हैं, यह
वात दूसरे कोई भी मनुष्य नहीं जानते। वे ही गोपाल-
केशवारी श्रीहरि बृन्दावनमें ग्यारह बर्षीतक गुप्तस्थपमें वात
करेंगे। फिर कंस दैत्यका वध करके प्रकट हो जायेंगे।
अयोध्यापुरवासिनी जो नारियाँ श्रीरामनन्दजीके बरसे
गोपीभावको प्राप्त हुई हैं, वे सब तुम्हारी पत्नियोंके गर्भसे
सुन्दरी कन्याओंके रूपमें उत्पन्न हुई हैं। तुम उन गूढ-
स्थमें विद्यमान देवाधिदेव श्रीकृष्णको अपनी समस्त कन्याएं
अवस्थ दे दो। इस कार्यमें कदापि विलम्ब न करो;
क्योंकि यह शरीर कालके अपीन है॥ २३-२९॥

यों कहकर जब सर्वश भीष्मजी हस्तिनापुरको चढ़े
गये, तब राजा विमलने नन्दनन्दनके पास अपना बूत
मेजा॥ ३०॥

बूतने कहा—जो स्वयं परमेश्वर है, उससे
परे और उनके द्वारा अदृश्य हैं, जो परिपूर्ण देव पुण्यकी
राशिसे भी सदा दूर—ऊपर उठे हुए हैं, तथापि संतज्जनोंको
प्रश्नक दर्शन देनेवाले हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको मेरा
नमस्कार है। गौ, ब्राह्मण, देवता, वेद, साधु पुरुष तथा
धर्मकी रक्षाके लिये जो अजन्मा होनेपर भी इन दिनों

कंसादि देवोंके वधके लिये यदुकुलमें उत्पन्न हुए हैं, उन अनन्त गुणोंके महासागर आप श्रीहरिको मेरा नमस्कार है। अहो! ब्रजवासियोंका यहुत बदा सौमान्य है। आपके पिता नन्दराजका कुल धन्य है, यह ब्रजमण्डल तथा यह वृन्दावन धन्य हैं, जहाँ आप परमेश्वर श्रीहरि साक्षात् प्रकट हैं। प्रभो! आप श्रीराधारानीके कण्ठमें मुश्योभित सुन्दर (नीलमणिमय) हार है, कस्तुरीकी सुगन्धकी भाँति उनके प्रसिद्ध हैं और आपका सर्वत्र फैला हुआ निर्यल यश सम्पूर्ण त्रिलोकीको तत्काल इवेत किये देता है। आप लोगोंके चित्तका सम्पूर्ण अभिप्राय जानते हैं; क्योंकि आप समस्त क्षेत्रोंके जाता आत्मा हैं और वर्मराशिके साक्षी हैं। तथापि राजा विमलने जो परम रहस्यकी और स्वधर्मसंसाधन वात कही है, उसको मैं आपसे एकान्तमें बताऊँगा। सिन्धुदेशमें जो चम्पका नामसे प्रसिद्ध इन्द्रपुरीके समान सुन्दर नगरी है, उसके पालक राजा विमल देवराज इन्द्रके समान पैशवर्य-शाली है। उनकी चित्तवृत्ति सदा आपके चरणारविन्दोंमें लगी रहती है। उन्होंने आपकी प्रसन्नताके लिये सदा सैकड़ों यशोंका अनुष्ठान किया है तथा दान, तप, ब्राह्मण-सेवा, तीर्थसेवन और जप आदि किये हैं। उनके इन उत्तम साधनोंको निर्मित बनाकर आप उन्हें अपना रावौल्कृष्ण दशन अवश्य दीजिये। उनकी यहुत सी कन्याएँ हैं, जो प्रफुल्ल कमल-दलोंके समान विशाल नेत्रोंमें मुश्योभित हैं और आप पूर्ण परमेश्वरको पतिष्ठतमें अपने निकट पानेके शुभ अवसरकी प्रतीक्षा करती हैं। वे राजकुमारियाँ सदा आपकी प्राप्तिके लिये नियमों और ग्रन्तोंके पालनमें तत्पर हैं तथा आपके चरणोंकी सेवासे उनके तन, मन निर्यल हो गये हैं। ब्रजके देवता! आप अपना उत्तम और अद्भुत दर्शन देकर उन सब राजकन्याओंका पाणिग्रहण कीजिये। इस समय आपके समक्ष जो यह कर्तव्य प्राप्त हुआ है, इसका विचार करके आप सिन्धुदेशमें चलिये और वहाँके लोगोंको अपने पावन दर्शनसे विशुद्ध कीजिये। ३—११॥

शारदजी कहते हैं—राजन्! उष दूतकी यह बात सुनकर भगवान् श्रीहरि वहे प्रसन्न हुए, और क्षणभरमें हृतके साथ ही चम्पकपुरीमें जा पहुँचे। उस समय राजा विमलका भगवान् यश चालू था। उसमें वेदमन्त्रोंकी छनि गूँज रही थी। दूतसहित भगवान् श्रीकृष्ण सहस्रा आकाशसे उस यशमें उतरे। ब्रह्मस्खलमें श्रीवत्सके विहसे मुश्योभित

मेघके समान इयाम कानिताधारी, सुन्दर बनमालालंकृत, पीतपटावृत कमलनयन श्रीहरिको यशभूमिमें आया देख राजा विमल सहसा उठकर लड़े हो गये और प्रेमले विहृल हो, दोनों हाथ जोड़ उनके चरणोंके समीप शिर पढ़े। उस समय उनके अङ्ग-अङ्गमें रोमाञ्च हो आया था। फिर उठकर राजाने रत्न और सुवर्णसे जटित दिव्य सिंहासनपर भगवान्को विठाया, उनका स्थान किया तथा विधिवृत् पूजन करके वे उनके सामने लड़े हो गये। लिङ्कियोंसे झाँककर देखती हुई सुन्दरी राजकुमारियोंकी ओर दृष्टिपात करके माधव श्रीकृष्णने मेघके समान गङ्गभीर बाणीमें राजा विमलने कहा ॥ १२—१३ ॥

श्रीभगवान् घोले—महामते! तुम्हारे मनमें जो बाध्यनीय हो, वह वर मुझसे मौगो। महामुनि याज्ञवल्यके वचनसे ही इस समय तुम्हें मेरा दर्शन हुआ है ॥ १८ ॥

विमलने कहा—देवदेव! मेरा मन आपके चरण-रविन्द्रमें भ्रमर होकर निवास करे, यही मेरी इच्छा है। इसके सिवा बूसरी कोई अभिलाषा कभी मेरे मनमें नहीं होती ॥ १९ ॥

श्रीवारदजी कहते हैं—यों कहकर राजा विमलने अपना सारा कोश और महान् वैभव हाथी, घोड़े एवं रथोंके साथ श्रीकृष्णार्पण कर दिया। अपने-आपको भी उनके चरणोंकी भैट कर दिया। नरेश्वर! अपनी समस्त कन्याओंके विधिपूर्वक श्रीहरिके हाथोंमें समर्पित करके भक्ति-विहृल राजा विमलने श्रीकृष्णको नमस्कार किया। उस समय जन-मण्डलमें जय-जयकारका शब्द गूँज उठा और आकाशमें लड़े हुए देवताओंने वहाँ दिव्य पुष्पोंकी वर्षा की। फिर उसी समय राजा विमलको भगवान् श्रीकृष्णका सारस्य प्राप्त हो गया। उनकी अङ्गकान्ति कामदेवके समान प्रकाशित हो उठी। शत सूर्योंके समान तेज धारण किये वे दिवामण्डलको उद्भासित करने लो। उस यशमें उपस्थित सम्पूर्ण मनुष्योंके देखते-देखते पत्नियोंसहित राजा विमल गङ्गापर आरूढ़ हो भगवान् श्रीकृष्णजैकी नमस्कार करके वैकुण्ठलोकमें चले गये ॥ २०—२४ ॥

इस प्रकार राजाको मोक्ष प्रदान करके स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण उनकी सुन्दरी कुमारियोंको साथ ले, ब्रह्मस्खलमें आ गये। वहाँ रमणीय कामवनमें, जो दिव्य मनिदरोंसे मुश्योभित था, वे सुन्दरी कृष्णप्रियाएँ आकर रहने लगीं

और भगवान्‌के साथ कन्दुक-कीदासे मन बहलाने लगी। जितनी संख्यामें वे श्रीकृष्णप्रिया सलियाँ थीं, उतने ही रूप भारण करके सुन्दर व्रजराज श्रीकृष्ण रासमण्डलमें उनका मनोरक्षण करते हुए विराजमान हुए। उस रासमण्डलमें उन विमल-कुमारियोंके नेत्रोंसे जो आनन्दजनित जलविन्दु च्युत होकर गिरे, उन सबसे वहाँ 'विमलकुण्ड' नामक तीर्थ प्रकट हो

इस प्रकार श्रीगर्णसहितामें मातुर्वंशपट्टके अन्तर्गत नारद-बहुलाद्व-संवादमें 'अयोध्यापुरावासिनी गोपियोंका उपाह्यान' नामक सहार्दी अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय

यज्ञसीतास्वरूपा गोपियोंके पूछनेपर श्रीराधाका श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये एकादशी-व्रतका अनुष्ठान बताना और उसके विधि, नियम और माहात्म्यका वर्णन करना

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! अब यज्ञसीता-स्वरूपा गोपियोंका वर्णन सुनो, जो सब पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदायक, कामनापूरक तथा मङ्गलका धाम है ॥ १ ॥

दक्षिण दिशामें उक्षीनर नामसे प्रमिद्ध एक देश है, जहाँ एक समय इस वर्षोंतक इन्द्रने वर्षा नहीं की। उस देशमें जो गोधनमें सम्बल गोप थे, वे अनावृष्टिके भयमें व्याकुल हो अपने कुदम्ब और गोधनोंके साथ व्रजमण्डलमें आ गये। नरे भर ! नन्दराजकी महायतासे वे पवित्र बृन्दावनमें यमुनाके सुन्दर एवं सुरम्य तटपर बास करने लगे। भगवान् श्रीराधके बरसे यज्ञसीतास्वरूपा गोपाङ्गनाएँ उन्हींके घरोंमें उत्पन्न हुईं। उन सबके शरीर दिव्य थे तथा वे दिव्य यौवनमें विभूषित थीं। दृपेश्वर ! एक दिन वे सुन्दर श्रीकृष्णका दर्शन करके मोहित हो गयीं और श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये कोई व्रत पूछनेके उद्देश्यसे श्रीराधाके पास गयीं ॥ २-६ ॥

गोपियाँ बोलीं—दिव्यस्वरूपे, कमलस्त्रेचने, बृषभानुनन्दिनी श्रीराधे ! आप हमें श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये कोई शुभमृत बतायें। जो देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ हैं, वे श्रीनन्दननन्दन तुम्हारे वशमें रहते हैं। यहे ! तुम विश्वमोहिनी हो और सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थशानमें पारंगत भी हो ॥ ७-८ ॥

श्रीराधाने कहा—प्यारी नहिनो ! श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये तुम जब एकादशी-व्रतका अनुष्ठान करो। उससे

गया, जो सब तीर्थोंमें उत्सम है। दृपेश्वर ! विमलकुण्डका दर्शन करके उसका जल पीकर तथा उसमें स्नान-यूजन करके मनुष्य मेरूपर्वतके समान विशाल पापको भी नष्ट कर इलता और गोलोकवासियोंमें जाता है। जो मनुष्य अयोध्यावासिनी गोपियोंके इस कथानकको सुनेगा, वह योगिवृत्तम् परमवाम गोलोकमें जायगा ॥ २५-३० ॥

साक्षात् श्रीहरि तुम्हारे वशमें हो जायेंगे, इसमें संशय नहीं है ॥ ९ ॥

गोपियोंने पूछा—राधिके ! पूरे वर्षभरकी एकादशीयों-के रूपा नाम हैं, यह बताओ। प्रत्येक मासमें एकादशीका व्रत किस भावसे करना चाहिये ? ॥ १० ॥

श्रीराधाने कहा—गोपकुमारियो ! मार्गशीर्ष मासके कृष्णपक्षमें भगवान् विष्णुके शरीरसे ...मुख्यतः उनके मुन्दसे एक असुरका वध करनेके लिये एकादशीकी उत्पत्ति हुई, अतः वह तिथि अन्य सब तिथियोंसे अधिक है। प्रत्येक मासमें वृष्टक-पृथक् एकादशी होती है। वही सब व्रतोंमें उत्सम है। मैं तुम सबोंके हितकी कामनासे उस तिथिके छन्दीस नाम बता रही हूँ। (मार्गशीर्ष कृष्ण एकादशीसे अरम्भ करके कार्तिक शुक्ल एकादशीतक छन्दीस एकादशी तिथियाँ होती हैं) उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—) उत्पाता, मोक्षा, सफला, पुत्रदा, घट्तिला, जया, विजया, आमलकी, पापमोचनी, कामदा, वर्लयनी, मोहिनी, अपरा, निर्जला, योगिनी, देवशयनी, कामिनी, पवित्रा, अजा, पद्मा, हन्दिरा, पापतुष्णा, रमा तथा प्रवोधिनी। दो एकादशी तिथियाँ मलमासकी होती हैं। उन दोनोंका नाम सर्वसम्मत-प्रदा है। इस प्रकार जो एकादशीके छन्दीस नामोंका पाठ करता है, वह भी वर्षभरकी द्वादशी (एकादशी) तिथियोंके अतका फल पा सकता है ॥ ११-१७५ ॥

अनाहनाओ ! अब एकादशी-व्रतके नियम बुनो !

मनुष्यको चाहिये कि वह दशमीको एक ही समय भोजन करे और रातमें जितेन्द्रिय रखकर भूमिपर शयन करे। जल भी एक ही बार पीये। बुल बुआ बब्ल पहने और तन-मनसे अस्पत्न निर्मल रहे। फिर ब्राह्म-सुहृत्में उठकर एकादशीको श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम करे। तदनन्तर हौस्ताहिरे निष्ठुत हो स्नान करे। कुँएका स्नान सबसे निष्ठकोटिका है, बाषपीका स्नान मध्यमकोटिका है, तालाब और पोखरेका स्नान उत्तम श्रेणीमें गिना गया है और नदीका स्नान उससे भी उत्तम है। इस प्रकार स्नान करके ब्रत करनेवाला नरप्रेष्ठ क्रोध और लोभका त्याग करके उच्च दिन नीचों और पातवणी मनुष्योंसे बात न करे। जो असत्यवादी, ब्राह्मणनिन्दक, दुराचारी, अगम्या खोके साथ समागममें रत रहनेवाले, परधनहारी, परखीगामी, दुर्वृत्त तथा मर्यादाका भङ्ग करनेवाले हैं, उनसे भी ब्रती मनुष्य बात न करे। मन्दिरमें भगवान् केशवका पूजन करके वहाँ नैवेद्य लगावाये और भक्तियुक्त चित्तसे दीपदान करे। ब्राह्मणोंसे कथा सुनकर उन्हें दक्षिणा दे, रातको जागरण करे और श्रीकृष्ण-सम्बन्धी पदोंका गान एवं कीर्तन करे। देवधारत (एकादशी) का पालन करना हो तो दशमीके कौसेका पात्र, मांस, मसूर, कोदो, चना, साग, शहद, पराया अब्ज, दुधारा भोजन तथा मैथुन—इन दूसरे वस्तुओंको स्याग दे। जुएका लेल, निद्रा, मथ-पान, हन्तधावन, परमिन्दा, चुगली, चोपी, हिसा, रसि, शेष और असत्यभाषण—एकादशीको इन ग्यारह वस्तुओंका स्याग और देना चाहिये। कौसेका पात्र, मांस, शहद, तेल, मिथ्याभोजन, पिछी, साठीका चावल और मसूर आदिका द्वादशीको सेवन न करे। इस विधिसे उत्तम एकादशीब्रतका अनुष्ठान करे॥ १८-३०॥

गोपियों बोली—परमबुद्धिमती श्रीरामे ! एकादशी-ब्रतका समय बताओ। उससे क्या फल होता है, यह भी कहो तथा एकादशीके माहात्म्यका भी यथार्थरूपसे वर्णन करो॥ ३१॥

श्रीरामाने कहा—यदि दशमी पञ्चम घडी (दण्ड) तक देखी जाती हो तो वह एकादशी स्पष्ट है। फिर तो द्वादशी-को ही उपवास करना चाहिये। यदि पलभर भी दशमीसे देह प्राप्त हो तो वह सम्पूर्ण एकादशी तिथि स्वाग देनेयेग्य है—ठीक उसी तरह, जैसे मदिराकी एक बैंदू भी पढ़ जाय तो यह अकालज्ञसे भरा बुआ कलश स्पष्ट हो जाता है।

यदि एकादशी बढ़कर द्वादशीके दिन भी कुछ कालतक विद्यमान हो तो दूसरे दिनवाली एकादशी ही ब्रतके योग्य है। पहली एकादशीको उस ब्रतमें उपावास नहीं करना चाहिये॥ ३२-३४॥

ब्रजाङ्गनाओ ! अब मैं तुम्हें इस एकादशी-ब्रतका फल बता रही हूँ, जिसके श्रवणमात्रमें बाजपेय यजका फल मिलता है। जो अद्वानी हजार ब्राह्मणोंने भोजन कराता है, उसको जिरा फलकी प्राप्ति होनी है, उसीको एकादशीका ब्रत करनेवाला मनुष्य उस ब्रतके पालनमात्रमें पाँचेता है। जो समुद्र और बनोंसहित शारीर बमुंधराका दर्शन करता है, उसे प्राप्त होनेवाले पुण्यमें भी हजारगुना पुण्य एकादशीके महान् ब्रतका अनुष्ठान करनेसे मुलम हो जाता है। जो पापपङ्कसे भरे हुए संसार-सागरमें ढूबे हैं, उनके उद्धारके लिये एकादशी-का ब्रत ही सर्वोत्तम साधन है। रात्रिकालमें जागरणपूर्वक एकादशी-ब्रतका पालन करनेवाला मनुष्य यदि सैकड़ों पापोंसे युक्त हो तो भी यमराजके रौद्ररूपका दर्शन नहीं करता। जो द्वादशीको तुलसीदलमें भक्तिपूर्वक श्रीहरिका पूजन करता है, वह जलसे कमलपत्रनीं भोति पापमें लिप्त नहीं होता। महसूसों अश्वेष तथा सैकड़ों गजमूर्यश भी एकादशीके उपवासकी सोलहवीं कलाके बगवर नहीं हो सकते। एकादशीका ब्रत फरनेवाला मनुष्य मातुकुलकी दम, पिन्धूकुलकी दम तथा पर्णीके नुलाका दम पीढ़ीयोंका उद्धार कर देता है। जैसी शुक्रांशकी एकादशी है, वैसी ही कृष्ण-पक्षकी भी है; दोनोंका समान फल है। दुधारू गाय जैसी सफेद वैसी कालं-दोनोंमा दूध एक-सा ही होता है। गोपियो ! मेह और मन्दगच्छलके बगवर बड़े-बड़े सौ जन्मोंके पाप एक और और एक ही एकादशीका ब्रत दूसरी ओर हो तो वह उन पर्वतोपम पारोंको उर्धा प्रकार जलाकर भस्त कर देती है, जैसे आगकी चिनगारी सूईके टेरको दग्ध कर देती है॥ ३५-४४॥

गोपाङ्गनाओ ! विधिपूर्वक हो या अविधिपूर्वक, यदि द्वादशीको थोड़ा-सा भी दान कर दिया जाय तो वह मैर पर्वतके समान महान् हो जाता है। जो एकादशीके दिन भगवान् विष्णुकी कथा सुनता है, वह सात द्वीपोंसे युक्त शृङ्खीके दानका फल पाता है। यदि मनुष्य शङ्कोदार-तीर्थमें स्नान करके गदाधर देवके दर्शनका महान् पुण्य संचित कर ले, तो भी वह पुण्य एकादशीके उपवासकी सोलहवीं कलाकी भी समानता नहीं कर सकता है। प्रभाव-

कुरुदेव, केदार, बदरिकाभग, काशी तथा कुरुक्षेत्रमें
चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण तथा चार खल संकान्तियोंके अवकाशपर
मनुष्योङ्गारा जो दान दिया गया हो, वह भी एकादशीके
उपवासकी सोलहवीं कलाके बराबर नहीं है। गोपियों और
नारीयोंमें शेष, पश्चिमीयोंमें गहड़, देवताओंमें विष्णु, वर्षोंमें
सूर्य, वृक्षोंमें पीपल तथा पत्तोंमें तुलसीदल सबसे बेहुले हैं,

उसी प्रकार वर्षोंमें एकादशी तिथि उत्तोतम है। जो मनुष्य
इस इजार वर्षोंतक घोर तपसा करता है, उसके समान ही
फल वह मनुष्य भी पा लेता है, जो एकादशीका व्रत करता
है। प्रजाहनाओं। इस प्रकार मैंने तुमसे एकादशीयोंके फलका
वर्णन किया। अब तुम शीघ्र इस व्रतको आरम्भ करो।
बताओ, अब और क्या सुनना चाहती हो ! ॥ ४५-५६ ॥

इस प्रकार श्रीमांसंहितामें मायुरवर्षके अन्तर्गत श्रीकरद-मुकुरश्व-संवादमें भग्नसीताओंका उपास्थान
एवं एकादशी-नाश्वस्त्र वामक नामां नवाद पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवाँ अध्याय

**पूर्वकालमें एकादशीका व्रत करके मनोवाचित फल पानेवाले पुण्यात्माओंका परिचय तथा
यज्ञसीताखलपा गोपिकाओंको एकादशी-व्रतके प्रभावसे श्रीकृष्ण-सांनिध्यकी प्राप्ति**

गोपियाँ बोलीं—सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थशानमें पारंगत
मुन्दरी वृषभानु-नन्दिनी। तुम अपनी वाणीसे वृहस्पति मुनिकी
वाणीका अनुकरण करती हो। राजे ! यह एकादशी-व्रत पहले
किसने किया था ? यह हमें विशेषस्वप्नसे बताओ; क्योंकि
तुम साक्षात् शानकी निधि हो ॥ १-२ ॥

भीराधने कहा—गोपियो ! सबसे पहले देवताओंने
अपने छीने गये राज्यकी प्राप्ति तथा देसोंके विनाशके
लिये एकादशी-व्रतका अनुष्ठान किया था। राजा वैश्वनने
पूर्वकालमें यमलोकगत पिताके उद्धारके लिये एकादशी-व्रत
किया था। लुम्पक नामके एक राजाको उसके पापके
कारण कुटुम्बी-जनोंने अकस्मात् त्याग दिया था। लुम्पकने
भी एकादशीका व्रत किया और उसके प्रभावसे अपना खोवा
हुआ राज्य प्राप्त कर लिया। भद्रावती नगरीमें पुच्छहीन राजा
केतुमानने संतोंके कहनेसे एकादशी-व्रतका अनुष्ठान किया
और उन्हें पुत्रकी प्राप्ति हो गयी। एक ब्राह्मणीको
देवपक्षियोंने एकादशी-व्रतका पुण्य प्रदान किया, जिसे
उस मानवीने धन-धान्य तथा सर्वांगका तुला प्राप्त किया।
पुष्पदन्ती और माल्यवान्—दोनों इन्द्रके शारपरे पिशाचभाव-
को प्राप्त हो गये थे। उन दोनोंने एकादशीका व्रत किया और
उसके पुण्य-प्रभावसे उन्हें पुनः गन्धर्वत्वकी प्राप्ति हो गयी।
पूर्वकालमें ओरामचन्द्रजीने समुद्रपर सेतु बाँधने तथा रावणका
वध करनेके लिये एकादशीका व्रत किया था। प्रलयके
अन्तमें उत्पन्न हुए औंवलेके वृक्षके नीचे बैठकर देवताओं-
ने उसके कस्ताणके लिये एकादशीका व्रत किया था।

पिताकी आज्ञासे मेधावीने एकादशीका व्रत किया, जिससे
वे अप्सराके साथ समर्कके दोषसे मुक्त हो निर्मल तेजसे
सम्पन्न हो गये। लक्ष्मि-नामक गन्धर्व अपनी पत्नीके
साथ ही शापवश राक्षस हो गया था, किंतु एकादशी-व्रतके
अनुष्ठानसे उसने पुनः गन्धर्वत्व प्राप्त कर लिया। एकादशी-
के व्रतसे ही राजा मांधारा, सगर, कुरुत्य और महामति
मुनुकुन्द पुण्यलेकको प्राप्त हुए। धुन्धुमार आदि अन्य
बहुत-से राजाओंने भी एकादशी-व्रतके प्रभावसे ही सद्गति
प्राप्त की तथा भगवान् शंकर ब्रह्मकपालसे मुक्त हुए।
कुटुम्बीजनोंसे परिस्यक महादुष्ट वैश्य-पुत्र धृष्णुदि एकादशी-
व्रत करके ही बैकुण्ठलेकमें गया था। राजा रक्षमाङ्गद-
ने भी एकादशीका व्रत किया था और उसके प्रभावसे
भूमण्डलका राज्य भोगकर वे पुरवासियोंसहित बैकुण्ठलेक-
में पवरे थे। राजा अम्बरीषने भी एकादशीका व्रत किया
था, जिससे कहीं भी प्रतिहत न होनेवाला ब्रह्मशाप उन्हें छू-
न सका। हेममाली नामक यक्ष कुबेरके शापसे कोदी
हो गया था, किंतु एकादशी-व्रतका अनुष्ठान करके वह पुनः
चन्द्रमाके समान कान्तिमान् हो गया। राजा महीजितने
भी एकादशीका व्रत किया था, जिसके प्रभावसे सुन्दर पुत्र
प्राप्तकर वे स्वयं भी बैकुण्ठगामी हुए। राजा हरिश्चन्द्रने
भी एकादशीका व्रत किया था, जिससे पृथ्वीका राज्य भोग-
कर वे अन्तमें पुरवासियोंसहित बैकुण्ठ-धामको गये।
पूर्वकालके समयुगमें राजा मुनुकुन्दका दामाद शोभन

भारतवर्षमें एकादशीका उपवास करके उसके पुण्य-प्रभावसे देवताओंके साथ मन्दिराचलपर चला गया । यह आज भी वहाँ अपनी रानी चन्द्रमागाके साथ कुबेरकी भाँति राज्य-कुल भोगता है । गोपियों । एकादशीको सम्पूर्ण तिथियोंकी परमेश्वरी समझो । उसकी समानता करनेवाली बृंशी कोई लिखि नहीं है ॥ ३-२२ ॥

इस प्रकार श्रीवर्गसहितमें मानुषसंघके अन्तर्गत वारद-बहुनाद-संबद्धमें महात्मोपाल्यानके प्रसङ्गमें
‘एकादशीका माहात्म्य’ नामक वहाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

पुलिन्द-कन्यारूपिणी गोपियोंके सौभग्यका वर्णन

श्रीनारदजी कहते हैं—अब पुलिन्द (कोल-भील) वासिकी जियोंका, जो गोरी-भाष्टको प्राप्त दुई थीं, मैं वर्णन करता हूँ । यह वर्णन समस्त पार्षदोंका अपहरण करनेवाला, पुण्यज्ञनक, अद्भुत और भक्तिमावको बढ़ानेवाला है ॥ १ ॥

विन्ध्याचलके बनमें कुछ पुलिन्द (कोल-भील) निवास करते थे । वे उड़ाट योदा थे और केवल राजा का धन कूटते थे । गरीबोंकी कोई चीज कभी नहीं कूटते थे । विन्ध्यदेशके बलवान् राजाने कृपित हो हो अक्षौहिणी लेनाओंके द्वारा उन सभी पुलिन्दोंपर वेरा ढाल दिया । वे पुलिन्द भी तलवारों, भालों, शूलों, फरसों, शक्तियों, शृंखलियों, शुश्रापियों और तीर-कमानोंसे कई हिनोतक राजकीय लेनिओंके साथ युद्ध करते रहे । (जिसकी आशा न देखकर) उन्होंने सहायताके लिये यादवोंके राजा कंतके पास पत्र भेजा । तब कंतकी आशासे बलवान् दैत्य प्रलम्ब वहाँ आया । उसका शरीर दो योजन ऊँचा था । देहका दंड मैत्रेयीकी काली घटाके समान काला था । माघेपर मुकुट शश कानोंमें कुण्डल भारण किये वह दैत्य लोंगोंकी गालासे विश्रित था । उसके वैरोंमें सोनेकी साँकल थी और हाथमें गदा लेकर वह दैत्य कालके समान जान पड़ता था । उसकी ग्रीष्म लम्फलया रही थी और रूप वहा भयंकर था । वह शशुओंपर पर्वतकी चढ़ानें तथा वहे-वहे शूष उसाइकर लेकर था । वैरोंकी अमरक्षे भरतोंको कॉपाते हुए रण-हुम्हें दैत्य प्रलम्बको देखते ही भयमीत तथा पराक्रिया

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् । श्रीराधाके मुखवे इस प्रकार एकादशीकी महिमा सुनकर बहसीतास्वरूपा गोपिकाओंने श्रीकृष्ण-दर्शनकी ल्युलसाते विशिष्टवृक्ष एकादशी-व्रतका अनुष्ठान किया । एकादशी-प्रत्ये प्रसन्न हुए साक्षात् भगवान् श्रीहरिने मार्गशीर्ष मासकी पूर्णिमाकी रातमें उन सबके साथ रात किया ॥ २३-२४ ॥

हो विन्ध्यनदेश सेनासहित समराङ्गण छोड़कर सहस्र भाग चले, मानो लिंगोंको देखकर हाथी भाग जाता हो । तब प्रलम्ब उन सब पुलिन्दोंको साथ के पुनः ममुरापुरीको छोट आया ॥ २-९ ॥

वे सभी पुलिन्द कंसके सेवक हो गये । नपेश्वर ! उन सबने अपने कुदृशके साथ कामगिरिपर निवास किया । उन्होंके घरोंमें भगवान् श्रीरामके उल्काष वरदानसे वे पुलिन्द-जियों दिव्य कन्याओंके रूपमें प्रकट हुईं, जो मूर्तिमती लक्ष्मीकी भाँति पूजित एवं प्रशंसित होती थीं । श्रीकृष्णके दर्शनसे उनके हृदयमें प्रेमकी पीड़ा जाग उठी । वे पुलिन्द-कन्याएँ प्रेमसे विहळ हो भगवान्श्ली श्रीरामज्ञ चरणरजको चिरपर धारण करके दिन-रात उन्होंके ध्यान एवं चिन्तनमें हृती होती थीं । वे भी भगवान्‌की कृपासे रासमें आ पहुँचीं और साक्षात् गोलोकके अधिष्ठिति, सर्वसमर्थ, परिणार्थतम परमेश्वर श्रीकृष्णको उन्होंने सदा के लिये प्राप्त कर लिया । अहो ! इन पुलिन्द-कन्याओंका केत्ता महान् सौभग्य है कि देवताओंके लिये भी परम हुँडम श्रीकृष्ण-वरणात्मिन्दोंकी रज उन्हें विशेषरूपसे प्राप्त हो गयी । जिसकी भगवान्श्लीके परम उल्का पाद-पद्म-परागमें शुद्ध भक्ति है, वह न तो ब्रह्माचीका पद, न महेन्द्रका स्थान, न निरन्तर-स्यायी सार्वभौम सज्जाद्वाका पद, न पातालज्योक्तका आधिपत्य, न योगसिद्धि और न अपुरुषव (मोक्ष) को ही बाहता है । जो अक्षिणि है, अपने लिये हुए कर्मोंके

फलते विरक हैं, वे इरि-वरण-रज्जमें आसक भ्रातानके वही निरपेक्ष द्रुत है। दूसरे शोग किसे शुल करते स्वतन्त्र माझमां भक्त मुनि विष वदका देवन करते हैं, हैं, वह वाहाकमें निरपेक्ष नहीं है॥ १०-१६॥

इस शकार श्रीमर्त्संहितामें गमुर्जवाङ्मे असर्वनृत भरत-वृषभ-संवादमें ‘पुरिन्दी-प्रसाद्याम’
नामक दसवीं अध्याय पूरा हुआ॥ १०॥

उत्तारहृदाँ अध्याय

लक्ष्मीजीकी सत्तियोंका शुभागमनुओंके वरोंमें कल्पनारूपसे उत्पन्न द्वाकर
माघमासके व्रतसे श्रीकृष्णको रिशाना और पाना

नारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर। अब दूसरी गोपियोंका भी वर्णन कुनो, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदायक तथा श्रीहरिके प्रति भक्ति-भावकी शुद्धि करनेवाला है॥ १॥

राजन्। व्रजमें छः शुभमातु उत्पन्न हुए हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—जीविति, भार्गव, शृङ्ख, पतक, दिव्यवाहन तथा गोपेष (ये नामानुरूप गुणोंवाले थे)। उनके वरमें लक्ष्मीपति नारायणके वरदानसे जो कुमारियों उत्पन्न हुई, उनमेंसे कुछ तो रमा-बैकुण्ठवासिनी और कुछ समुद्रसे उत्पन्न हुई लक्ष्मीजीकी सत्तियाँ थीं, कुछ अवित-पदवासिनी और कुछ ऊर्जवैकुण्ठलोकनिवासिनी देवियाँ थीं, कुछ लोकान्तरवासिनी समुद्रसम्भवा लक्ष्मी-सहचरियाँ थीं। उन्होंने सदा श्रीगोविन्दके चरणारविन्दका चिन्तन करते हुए माघमासका व्रत किया। उत्त व्रतका उद्देश्य या—श्रीकृष्णको प्रसुद्ध करना। माघमासके शुक्रवाहकी पञ्चमी तिथिको, जो भावी वसन्तके शुभागमनका सूचक प्रथम दिन है, उनके प्रेमकी परीक्षा लेनेके लिये श्रीकृष्ण उनके वरके निकट आये। वे स्यामचर्मका वज्र पहने, अटाके मुकुट बांधे, समस्त अङ्गोंमें विभूति रमाये योगीके वेषमें सुशोभित हो, बैपु बजाते हुए बगतके बोगोंका मन

मोह रहे थे। अपनी गतियोंमें उनका शुभागमन हुआ देख सब ओरसे मोहित एवं प्रेमविहृल हुई गोपाङ्गनाएँ उस तरण योगीका दर्शन करनेके लिये आयीं। उन अस्यन्त शुन्दर योगीको देखकर प्रेम और आनन्दमें हृदी हुई समस्त गोपकन्याएँ परस्पर कहने लगीं॥ २-९॥

गोपियों कोली—यह कौन वालक है, जिसकी आकृति नन्दननन्दनसे ठीक-ठीक मिलती-जुलती है; अश्वा यह किसी बनी राजाका पुत्र होगा, जो अपनी जीके कठोर वचनरूपी वापसे मर्म विंध जानेके कारण वरसे विरक्त हो गया और सारे कृत्यकर्म छोड़ बैठा है। यह अस्यन्त रमणीय है। इसका शरीर कैसा सुन्दरार है। यह कामदेवके समान सारे विश्वका मन मोह लेनेवाला है। अहो! इसकी माता, इसके पिता, इसकी पत्नी और इसकी बहिन इसके विना कैसे जीवित होंगी! यह विचार करके सब ओरसे शुन्द-की-शुन्द बजाङ्गनाएँ उनके पास आ गयीं और प्रेमसे विहृल तथा आश्चर्यचकित हो उन योगीकरसे पूछने लगीं॥ १०-१२॥

गोपियोंमें पूछा—योगीबाबा। तुम्हारा नाम क्या है? युनिजी। तुम यहते कहाँ हो? तुम्हारी हृति क्या है?

* परिपूर्णतमं साक्षात्कारोऽलोक्यपिति श्रमूष्॥

श्रीकृष्णवरणान्प्रोजरो देवः सुतुर्कम्। अदोग्राम्यं पुरिल्लीला तातो शासं विद्वेषतः॥

वः पारमेष्टरमविलं न महेन्द्रधिष्ठयं नो शार्वमौमनिषं न रसाविष्टम्।

नो दोगसिद्धिपरितो न पुनर्मं वा वानस्तदं परमादरजस्तुभलः॥

निष्पित्तवानः वृक्षुर्कर्मकैविरगा वरसपरं दरिज्जा मुनयो महान्तः॥

भक्त शुश्रित इरियादरजःप्रसक्त अन्ये वरपिति न शुद्धं किं नैरपेक्षम्॥

(गर्व०, माघ० १०। ११-१३)

और तुमने कौन-सी सिद्धि पायी है ? वक्ताओंमें भेड़ !
हमें पे सब बातें बताओ ॥ १३ ॥

सिद्धयोगीने कहा—मैं बोगेश्वर हूँ और उदा
मानसरोवरमें निवास करता हूँ । मेरा नाम स्वयंप्रकाश है ।
मैं अपनी शक्तिसे सदा बिना साये-पीये ही रहता हूँ ।
ब्रजाङ्गनाओं । परमहंसोंका जो अपना स्वार्थ—आत्म-
साक्षात्कार है, उसीकी सिद्धिके लिये मैं जा रहा हूँ ।
मुझे दिव्यदृष्टि ग्रास हो चुकी है । मैं भूत, भविष्य और
बतंगान तीनों कालोंकी बातें जानता हूँ । मन्त्र-विद्यादारा
उच्चाटन, मारण, मोहन, स्तम्भन तथा बशीकरण भी
जानता हूँ ॥ १४-१५ ॥

गोपियोंने पूछा—योगीवामा । तुम तो बड़े बुद्धिमान्
हो । यदि तुम्हें तीनों कालोंकी बातें जात हैं तो बताओ न,
हमारे मनमें क्या है ? ॥ १६ ॥

सिद्धयोगीने कहा—यह बात तो आपलोगोंके
कानमें कहनेयोग्य है । अथवा यदि आपलोगोंकी आशा
हो तो सब लोगोंके सामने ही कह डालें ॥ १८ ॥

गोपियों द्वारा—मूने । तुम सचमुच योगेश्वर हो ।
तुम्हें तीनों कालोंका ज्ञान है, इसमें संशय नहीं । यदि

इस प्रकार श्रीराघवसहितमें माधुर्यस्त्रजके अन्तर्गत नाद-बहुलादव-संबंधमें रमावैकुण्ठ, इवेतदीप, ऊर्ध्ववैकुण्ठ,
अजितपद तथा श्रीलोकावलम्बे निवास कलनवाली लक्ष्मीजीकी सक्षियोंके गोपीरूपमें प्रकट

इनेका आख्यान नामक ग्वारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

बारहवाँ अध्याय

दिव्यादिव्य, त्रिगुणवृत्तिमयी भूतल गोपियोंका वर्णन तथा श्रीराधासहित गोपियोंकी श्रीकृष्णके साथ द्वेली

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर । यह मैंने तुमसे
गोपियोंके शुभ चरित्रका वर्णन किया है, अब दूसरी
गोपियोंका वर्णन सुनो । वीतिहोष, अग्निभुक्, समु,
श्रीकर, गोपति, श्रुत, ब्रजेश, पावन तथा शास्त्र—ये ब्रजमें
उत्पन्न हुए नौ उपनन्दोंके नाम हैं । वे सब के क्षब धनवान्,
स्पष्टवान्, पुष्पवान्, बहुतसे शास्त्रोंका ज्ञान रखनेवाले,
शीख-सदाचारादि गुणोंसे सम्पन्न तथा दानपरायण हैं ।
इनके घरोंमें देवताओंकी आशाके अनुसार जो कल्याणँ
दर्शक हुई, उनमेंसे कोई दिव्य, कोई अदिव्य तथा कोई

त्रिगुणवृत्तिमयी नहीं । वे सब नाना प्रकारके पूर्वकृत पुण्योंके
फलस्वरूप भूतवार गोपकन्याओंके रूपमें प्रकट हुई थीं ।
विदेशराज । वे सब श्रीराधिकके साथ रहनेवाली उनकी
सत्त्वियाँ थीं । एक दिनकी बात है, होलिका-महोत्सवपर
श्रीराधिको आया हुआ देख उन समस्त ब्रजगोपियोंने
मानिनी श्रीराधासे कहा ॥ १-६ ॥

गोपियों द्वारा—रम्भोर ! चन्द्रवदने ! मधुमानिनि !
स्वामिनि ! छलने ! श्रीराधे ! हमारी यह सुन्दर जात सुनो ।
ये ब्रजभूषण नन्दनन्दन दुम्हरी बरसाना-नगरीके उपवनमें

होकिकोस्तुव-विहार करनेके लिये आ रहे हैं। शोभालक्षण यौवनके मदसे मत्त उनके बज्जल नेत्र घूम रहे हैं। बुँधराली नीली अङ्गकाष्ठाली उनके काँचों और कपोलमण्डलको घूम रही है। शरीरपर पीछे रंगका रेतामी शोभा अपनी कली शोभा विसरे रहा है। वे जलते हुए नूपरोंकी ध्वनिते बुक अपने अरुण चरणारविन्दोऽशारा सबका ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं। उनके मस्तकपर बाल्विके समान कान्तिमान् सुकृष्ट है। वे भुजाओंमें विमल अङ्गद, वक्षःस्थलपर हार और कानोंमें विशुद्धको भी विलिप्त करनेवाले मकराकार कुण्डल धारण किये हुए हैं। इस भूमण्डलपर पीत प्रभासे सुशोभित उनका स्थाम कान्तिमण्डल उसी प्रकार उत्कृष्ट शोभा पा रहा है, जैसे आकाशमें इन्द्रधनुशसे युक्त मेषमण्डल सुशोभित होता है। अबीर और केसरके रसते उनका सारा अङ्ग लिखा है। उन्होंने हाथमें नवी विचकारी के रखी है तथा सखि राखे। दुम्हारे साथ राखराली रक्षमधी कीकामें निम्न रहनेवाले वे इयामसुन्दर दुम्हारे शीति निकलनेकी राह देखते हुए पास ही रहे हैं।* दुम भी मान छोड़कर फूज्जा (होली) के बहाने निकले। निष्पत्य ही आज होकिकामो यथा देना चाहिये और अपने भक्तमें दुरंत ही रंग-विभित जल, चन्दनके पहुँ आर मकरन्द (इच आदि पुष्परस) का अधिक मात्रामें संचय कर लेना चाहिये। परम दुदिमती प्यारी सली। उठो और सहसा अपनी कलीमण्डलीके साथ उस स्थानपर चलो, जहाँ वे इयामसुन्दर भी मौजूद हों। ऐसा समय फिर कभी नहीं मिलेगा। वहती शारामें हाथ खो लेना चाहिये—यह कहावत सर्वत्र विदित है॥ ७—१२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राज्। तत मानवती राजा मान छोड़कर उठी और सभियोंके समूहसे छिकर होलीका

इस प्रकार श्रीगर्गसहितमें मातुर्यक्षमके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें होकिकोस्तुवकं प्रसङ्गमे प्रित्यादित्य-

विशुन्मालाभी सूतलंगोपियोका उपरूपान् नामक बारहवाँ अव्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

* श्रीवैष्णोनमदविशुद्धितको बनोड़ती लीलाकृष्णिकास्त्रहोल्मोऽः ।

सत्तीत्तक्षन्तुक्षमनाम्भौत्यमारादाचाल्लव् चानन्ता स्वपदारणन् ॥

वाल्यकंगोपियमल्लव्याहारसुव्यक्तिप्रस्तुत्युक्तमण्डलयादपानः ।

पीताम्बरेण अदाते तुलिमण्डलोऽहो भूमण्डले स चतुरेव वनो दिविषः ॥

आवीरकुम्भतेष्व विभितरेहो इत्ये शृङ्गीतनक्षेत्रवनयन आराप् ।

प्रेषांताम्बू सखि नामतीव राखे त्वद्वासप्रसकंलिः स्मितः सः ॥

(गण०, मातुर्य० १२ । ८-१०)

दस्तव भनानेके लिये निकलीं। चन्दन, अगर, कस्तूरी, इसी तथा केसरके बोल्से भरी हुई ढोलचिमाँ लिये वे बाहुसंस्थक ब्रजाङ्गनाएँ एक साथ होकर चलीं। दो तुप काल-काल हाथ, धान्दनी रंगके फीले बढ़, बजते तुप नूपरोंसे युक्त पैर तथा ज्ञानकारती हुई करधनीसे सुशोभित काटिमदेश-बड़ी मनोहर शोभा थी उन गोपाङ्गनाओंकी। वे हास्ययुक्त गालियोंसे सुशोभित होलीके गीत गा रही थीं। अबीर, गुलालके चूर्ण मुहियोंमें ले-लेकर इधर-उधर पैकड़ी हुईं वे ब्रजाङ्गनाएँ भूषि, आकाश और बञ्जको लाल किये देती थीं। वहाँ अबीरकी करोड़ी मुहियाँ एक साथ उड़ती थीं। सुगन्धित गुलालके चूर्ण भी कोटि-कोटि हाथोंसे बिल्लेरे जाते थे ॥ १४—१७ ॥

इसी समय ब्रजगोपियोंने श्रीकृष्णको जारी ओरते बैर लिया, मानो सावनकी साँझमें विशुन्मालाओंने भेषको सब ओरसे अवश्य कर लिया हो। पहले तो उनके सुँहपर खूब अबीर और गुलाल पोत दिया, फिर सारे अङ्गोंपर अबीर-गुलाल बरसाये तथा केलयुक्त रंगते भरी ढोलचिमो-द्वारा उन्हें विष्णुवंश किमोया। नूपेश्वर । वहाँ जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही रूप धारण करके भगवान् भी उनके साथ विहार करते रहे। वहाँ हेलिका-महोत्तममें श्रीकृष्ण श्रीराधाके साथ वैसी ही शोभा पाते थे, जैसे अपर्णकाल्यकी संस्था वेलमें विशुन्मालके साथ मेष सुशोभित होता है। श्रीकृष्णने भी अपना नया उत्तरीय (दुपट्टा) गोपियोंकी उपहारमें दे दिया। फिर वे परमेश्वर श्रीनन्दभवनको लौट गये। उस समय समस्त देवता उनके ऊपर फूलोंकी बांध करने लगे ॥ १८—२२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

देवाङ्गनास्वरूपा गोपिण्या

श्रीगारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! अब देवाङ्गनास्वरूपा गोपिण्योंका वर्णन सुनो, जो मनुष्योंके चारों पदार्थ देनेवाला तथा उनके भक्तिभवको बढ़ानेवाला सर्वोत्तम साधन है ॥ १ ॥

ग्रामदेशमें एक गोप थे, जिनका नाम श्री—दिवस्यति नन्द । उनके एक सहस्र पलियाँ थीं । वे वहे धनवान् और नीतिज्ञ थे । एक समय तीरथयात्रा के प्रसङ्गसे उनका मथुरामें आगमन हुआ । वहाँ व्रजाधीश्वर नन्दराजका नाम मनुकर वे उनसे मिलनेके लिये गोकुल गये । वहाँ नन्दराजसे मिलकर और हृन्दावनकी शोभा देखकर सहामना दिवस्यति नन्दराजकी आशासे वहाँ रहने ल्ये । उन्होंने दो योजन भूमिको वेष्टकर गौओंके लिये गोष्ठ बनाया । राजन् । उस वज्रमें अपने कुदूमी वनधुजनोंके साथ इसे हुए दिवस्यतिको वही प्रसन्नता प्राप्त हुई । देवल मनिके आदेशसे स्वर्ण देवाङ्गनाएँ उन्हीं दिवस्यतिकी भगवदिव्य वन्याएँ हुईं, जो प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्विनी थीं ॥ २—६ ॥

किसी समय स्यामसुन्दर श्रीकृष्णना दर्शन याकर वे सब कन्याएँ मोहित हो गयीं और उन दामोदरी प्राप्तिके लिये उन्होंने परम उत्तम माध्यमका व्रत किया । आषे सूर्यके उद्दित होते-होते प्रतिदिन वे रजाङ्गनार्थ यमुनामें जाकर स्नान करतीं और प्रेमानन्दमें बिहूल हो उत्तमदर्शने श्रीकृष्णकी लीलाएँ नाती थीं । भगवान् श्रीकृष्ण उनका प्रभज होकर

इस प्रकार श्रीरामसंहेतमें मायूरवड्के अन्तर्गत नारद-बहुलादव-संवादमें ‘देवाङ्गनास्वरूपा गोपिण्योंका उपाख्यान’ नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

कौरव-सेनासंघ पांडित रंगांचि गोपका कंसकी महायनामे व्रजमण्डलकी मीमांपर निवास तथा उसकी पुत्रीरूपमें जालंधरी गंगापिण्योंका प्राकृत्य

श्रावदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! अब जालंधरके अन्तःपुरकी जियोंके गोपीरूपमें जन्म लेनेका वर्णन सुनो । महाराज ! माय ही उनके कर्मोंको भी सुनो, जो सदा ही मनुष्योंके पार्योंका नाश दर्शनकारे हैं ॥ ७ ॥

राजन् । सप्तनदीके किनारे पञ्चपर्वत नाममें प्रसिद्ध एक उत्तम नगर था, जो सब प्रकारकी सम्पदाओंसे सम्पन्न

बोले—‘तुम कोई वर माँगो ।’ तब उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर उन परमात्माको प्रणाम करके उनसे धीरे-धीरे कहा ॥ ७—९ ॥

गोपिण्याँ शोलीं-प्रभो ! निश्चय ही आप योगीश्वरोंके लिये भी दुर्लभ हैं । सबके ईश्वर तथा कारणोंके नी कारण हैं । आप वंशीधारी हैं । आपका अङ्ग मन्मथके मनको भी मथ डालनेवाला (मोह लेनेवाला) है । आप सदा हमारे नेत्रोंके समक्ष रहें ॥ १० ॥

राजन् । तब ‘तथात्मा’ कहकर जिन आदिदेव श्रीहरिने गोपिण्योंके लिये अपने दर्शनका द्वार उत्पुक्त कर दिया, वे सदा तुम्हारे हृदयमें, नेत्रमार्गमें बसे रहें और तुलाये हुए-से नकाल चित्तमें आकर स्थित हो जायें । जिन्होंने कमरमें पीताम्बर बाँध रखवा है, जिनके सिरपर मोरपंखका मुकुट सुशोभित है और गर्दन छुकी हुई है, जिनके हाथमें बाँसुरी और लकुटी है तथा कानोंमें रत्नमय कुण्डल शालमला रहे हैं, उन पटुतर नटवंशधारी श्रीहरिका मैं भजन करता हूँ । आदिदेव श्रीहरि केवल भक्तिसे ही वशमें होते हैं । निश्चय ही इसमें गोपिण्याँ सदा प्रमाणभूत हैं, जिन्होंने न तो कभी सांख्यका विचार किया न योगका अनुष्ठान; केवल प्रेमसे ही वे भगवान्‌के स्वरूपको प्राप्त हो गयीं ॥ ११—१४ ॥

तथा विश्वाल था । वह दो योजन विस्तृत गोलाकार नगर था । उस नगरका मालिक या पुराधोश रंगोजि नामक एक गोप था, जो महान् वलवान् था । वह पुत्र-पौत्र आदिसे संयुक्त तथा धन-धान्यसे समृद्धिशाली था । इस्तिनापुरके स्वामी राजा धूतराष्ट्रको वह सदा एक क्रोड सूर्यमुदाएँ वार्षिक करके रूपमें दिया करता था ।

मिचिकेश्वर ! एक समय वर्ष बीत जलेपर भी धनके महसु
उन्मत्त गोपने राजाको वार्षिक कर नहीं दिया । इतना ही
नहीं, वह गोपनायक रंगोजि मिलनेतक नहीं गया । तब
भूतराष्ट्रके भेजे हुए दस इजार बीर आकर उस गोपको
गँडकर इस्तिनापुरमें ले आये । कई बोतक तो रंगोजि
कारागारमें बँधा पड़ा रहा । बँधे और पीटे जानेपर भी
वह लोभी गोप डरा नहीं । उसने राजा भूतराष्ट्रको थोका-सा
भी धन नहीं दिया ॥ २-८ ॥

किसी समय गोपनायक रंगोजि उस समाभयंकर
कारागारसे भाग निकला तथा रातों-रात रङ्गपुरमें आ गया ।
तब पुनः उसे पकड़ लानेके लिये भूतराष्ट्रकी भेजी हुई
शक्तिशाली बल-बाहनसे समझ तीन अक्षोहिणी लेना गयी ।
वह गोप भी कबच धारण करके युद्धभूमिमें बारंबार
धनुषकी टंकार फैलाता हुआ तीखी धारणाके अमरीके बाण-
समूहोंकी बर्पी करके भूतराष्ट्रकी उस सेनाका सामना करने
क्या । शत्रुओंने उसके कबच और धनुष काट दिये तथा
उसके स्वजनोंका भी बध कर डाला; तब वह अपने पुर
(दुर्ग) में आकर कुछ दिनोंतक युद्ध लड़ाता रहा । अन्तमें
अनाथ पवं भयसे पीडित रंगोजि किसी शरणदाता या
रक्षककी इच्छा करने लगा । उसने यादवराज कंसके पाल
अपना दूत भेजा । दूत मथुरा पहुँचकर राज-दरबारमें गया
और उसने मस्तक छाकाकर दोनों हाथोंकी अङ्गुष्ठि बोधि
उग्रसेनकुमार कंसको प्रणाम करके कृश्णासे आई बाणीमें
कहा ॥ ९-१४ ॥

‘महाराज ! रङ्गपत्नमें रंगोजि नामसे प्रसिद्ध एक
गोप है, जो उस नगरके स्वामी तथा नीतिवेत्ताओंमें शेरू है ।
शत्रुओंने उनके नगरको चारों ओरसे बेर लिया है । वे बड़ी
चिन्तामें पड़ गये हैं और अनाथ होकर आपकी शरणमें आये
हैं । इस भूतलपर केवल आप ही दीनों और दुखियोंकी पीड़ा
हरनेवाले हैं । भौमासुरादि बीर आपके गुण गाया करते हैं ।
आप महाबली हैं और देवता, असुर तथा उद्भव भूमि-
पालोंको युद्धमें जीतकर देवराज इन्द्रके समान अपनी
राजधानीमें विराजमान हैं । जैसे चकोर चन्द्रमाको, कमलोंका
समुदाय दूर्घटको, चातक शरद श्रुदुके बादलोंद्वारा बरसाये गये
बल्कियोंको, भूखले व्याकुल मनुष्य अद्वको तथा प्याससे
पीडित प्राणी पानीको ही बाद करता है, उसी प्रकार
रंगोजि गोप शत्रुके भयसे आकर्षित हो केवल आपका सरण
कर रहे हैं ॥ १५-१० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् । बूतकी यह कल
सुनकर दीनबत्सल कंसने करोड़ों दैत्योंकी सेनाके साथ
वहाँ जानेका विचार किया । उसके हाथीके गण्डस्थलपर
गोमूत्रमें घोले गये सिन्धुर और कस्तूरीके द्वारा पञ्च-न्यन्ता की
गयी थी । वह हाथी विन्ध्याचलके समान छँचा था और उसके
गण्डस्थलसे मद झार रहे थे । उसके पैरमें लँकले
थी । वह मेघकी गर्जनाके समान जोर-जोरसे चिंचाकला
था । ऐसे कुबलयोगी नामक गजराजपर चढ़कर मद-
मच राजा कंस सहस्र कबच आदिसे सुखित हो चालू
मुष्टिक आदि मलों तथा केशी, व्योमासुर और वृषासुर आदि
दैत्य-योद्धाओंके साथ रङ्गपत्नकी ओर प्रस्त्रित हुआ । वहाँ
यादवों और कौरवोंकी सेनाओंमें परस्पर बाणों, खड़गों और
निश्चलोंके प्रहररसे धोर युद्ध हुआ । जब बाणोंसे उब
ओर अन्धकार-सा छा गया, तब कंस एक विशाल गदा
हाथमें लेकर कौरव-सेनामें उसी प्रकार बुसा, जैसे बनमें
दावानल प्रविष्ट हुआ है । जैसे इन्द्र अपने बाल्से पर्वतमें
पिरा देते हैं, उसी प्रकार कंसने अपनी वज्र-सीरीखी गदाकी
मारसे कितने ही कबचधारी बांरोंको धराशायी कर दिया ।
उसने पैरोंके आवातसे रथोंको रौद्र डाल, दैत्योंसे मार-
मारकर घोड़ोंका कच्चमर निकाल दिया । हाथीको हाथीसे
ही मारकर कितने ही गजोंको उनके पौव पकड़कर उछाल
दिया । महाबली कंसने कितने ही हाथियोंके कंबों अथवा कष्ठ-
भागोंको पकड़कर उन्हें हौदों और छलोंसहित बल्पूर्वक
घुमाते हुए आकाशमें फेंक दिया । राजन् । उस युद्धभूमिमें
बलवान् व्योमासुर हाथियोंके शुण्डदण्ड पकड़कर उन्हें
चब्बल घंटाओंसहित उछालकर सामने फेंक देता था । हुए
दैत्य बलवान् वृषासुर घोड़ोंसहित रथोंको अपने सींगोंपर
उठाकर बारंबार शुमाता हुआ चारों दिशाओंमें फेंकने लगा ।
राजेन्द्र ! बलवान् दैत्यराज केशीने बलपूर्वक अपने पिछले
पैरोंसे बहुत-से बांरों और अश्वोंको इधर-उधर धराशायी
कर दिया । ऐसा भयंकर युद्ध देखकर कौरव-सेनाके शेष बीर
भयसे व्याकुल हो दरों दिशाओंमें भाग गये । दैत्यराज बीर
कंस विजयके उड़ासमें नगर बजवाता हुआ ऊँटमासहित
रंगोजि गोपको अपने साथ ही मथुरा ले गया ॥ १८-११ ॥

अपनी सेनाकी पराजयका समाचार सुनकर कौरव
को भूमि-छत हो उठे । पृथु वर्णमान समयको देत्योंके
अनुकूल देखकर वे सभ के सब नुप रह गये । बजमण्डलकी
सीमापर बहिष्ठ नामसे प्रसिद्ध एक मनोहर पुर था, जिसे

वल्लान् देत्यराज कंसने रंगोजिको दे दिया । गोपनायक ईरोजि वही निषास करने लगा । श्रीहरिके वरदानसे आलंधरके अन्तःपुरकी स्त्रियाँ उसी गोपकी पलियोंके गर्भसे उत्पन्न हुईं । रूप और यौवनसे विभूषित वे गोपकन्याएँ

दूसरे-दूसरे गोपजनोंको व्याह दी गयी, परंतु वे जारभावसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रति प्रगाढ़ प्रेम करने लगीं । वृन्दावनेश्वर इशामसुन्दरने चैत्र मासके महारासमे उन सबके साथ पुण्यमय रमणीय वृन्दावनके भीतर विहार किया ॥ ३२-३६ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें मातुर्कथापदे के अन्तर्गत नारद-बुद्धाश्व-संवादमें 'जाकंवरी गोपियोंका उपाख्यान' नामक चौथाँ अध्याय शुरू हुआ ॥ १४ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

वहिष्मतीपुरी आदिकी वनिताओंका गोपीरूपमें प्राकृत्य तथा भगवान्के साथ उनका रासविलास; मांधाता और सौभरिके संवादमें यमुना-पञ्चाङ्गकी प्रस्तावना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! वजमें शोणपुरके स्थानी नन्द वडे धनी थे । मिथिलेश्वर । उनके पाँच हजार पस्तियाँ थीं । उनके गर्भसे समुद्रसम्भवा लक्ष्मीजीकी वे सखियाँ उत्पन्न हुईं, जिन्हें मत्स्यावतारधारी भगवान्से बैसा वर प्राप्त हुआ था । नरेश्वर ! इनके दिवा और भी, विचित्र गोपियों, जो पृथ्वीके दोहनसे प्रकट हुई थीं, वहाँ गोपीरूपमें उत्पन्न हुईं । वहिष्मतीपुरीकी वे नारियाँ भी, जिन्हें महाराज पृथुका वर प्राप्त था, जातिसदा गोपियोंके रूपमें उत्पन्न हुई थीं तथा नर-नारायणके वरदानसे अप्सराएँ भी गोपीरूपमें प्रकट हुई थीं । भुतल्लासिनी देव्यानायों वामनके वरसे तथा नागराजोंकी कन्याएँ भगवान् शेषके उत्तम वरसे व्रजमें उत्पन्न हुईं । दुर्बासा मुनिने उन सबको अद्वृत 'कृष्ण-पञ्चाङ्ग' दिया था, जिससे यमुनाजीकी पूजा करके उन्होंने श्रीपतिका वररूपमें वरण किया ॥ १-५ ॥

एक दिनकी बात है—मनोहर वृन्दावनमें दिव्य यमुना-तटपर, जहाँ नर-कोकिलोंसे मुशोभित हरे-भरे वृक्ष-समुदाय धोभा दे रहे थे, भर्मरोंके गुजारवके साथ कोकिलों और लारसोंकी मीठी गोली गूँज रही थी, वासन्ती लताओंसे आकृत तथा शीतल-मन्द-सुगन्ध वायुसे परिसेवित मधुमासमें, उन गोपाल्लानाओंके साथ, मदनगोहन इशामसुन्दर श्रीहरिने कल्पवृक्षोंकी श्रेणीसे मनोरम प्रतीत होनेवाले कल्पवृक्षके नीचे एकान्तस्थानमें इहाँ झूलनेका उत्सव आरम्भ किया । वहाँ यमुना-जलकी उच्चाल तरङ्गोंका छोलाहल फैला हुआ था । वे द्येवतिहास गोपाल्लानायें श्रीहरिके साथ रहा

हल्मेकी कीदा कर रही थीं । जैसे रूतके साथ रति-पति कामदेव शोभा पाते हैं, उसी प्रकार करोड़ी चन्द्रोंमें भी अधिक कान्तिमती कीर्तिकुमारी श्रीराधाके साथ वृन्दावनमें इशामसुन्दर श्रीकृष्ण सुशोभित हो रहे थे । इस प्रकार जो साक्षात् परिषूर्पतम नन्दनन्दन श्रीकृष्णको प्राप्त हुई थीं, उन समस्त गोपाल्लानाओंके तपका क्या वर्णन हो सकता है । नागराजोंकी समस्त सुन्दरी कन्याएँ, जो गोपीरूपमें उत्पन्न हुई थीं, मनोहर चैत्र मासमें यमुनाके तटपर श्रीबलभद्र श्रीहरिकी सेवामें उपस्थित थीं । राजन् ! इस प्रकार मैंने दुमसे गोपियोंके शुभ चरित्रका वर्णन किया, जो परम पवित्र तथा समस्त पापोंको हर लेनेवाला है । अब पुनः क्या मुनना चाहते हो ? ॥ ६-१३ ॥

यमुनाभ्य बोले—मुने ! प्रभो ! दुर्बासाका दिया हुआ यमुनाजीका पञ्चाङ्ग क्या है, जिससे गोपियोंको गोचिन्दकी प्राप्ति हो गयी ? उसका मुक्ति वर्णन कीजियं ॥ १४ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! इस विषयमें विशज्जन एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण देते हैं, जिसके अवरुपात्रसे पापोंकी पूर्णतया निवृत्ति हो जाती है । अयोध्यामें मांधाता नामसे प्रसिद्ध एक तेजस्वी राजशिरोमणि उस पुरीके अधिपति थे । एक दिन वे शिकार खेलनेके लिये बनमें गये और विचरते हुए, सौभरि मुनिके सुन्दर आश्रमपर जा पहुँचे । उनका वह आश्रम साक्षात् वृन्दावनमें यमुनाजीके मनोहर तटपर स्थित था । वहाँ अपने जामाता सौभरि मुनिको प्रणाम करके मानदासा मांधाताने कहा ॥ १५-१७ ॥

मांथाता बोले—भगवन् ! आप साक्षात् सर्वं हैं,
परावरवेदाओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं और असानान्धकारसे अधे
हुए लोगोंके लिये दूसरे दिव्य सूर्यके समान हैं। मुझे शीघ्र ही
ऐसा कोई उत्तम साधन नवाहये, जिससे इस लोकमें सम्मान
शिद्धियोंसे सम्पन्न राज्य बना रहे और परलोकमें भगवान्
श्रीकृष्णका सारूप्य प्राप्त हो ॥ १८-१९ ॥

सौभरि बोले—राजन् ! मैं तुम्हारे सामने यमुनाजीके

इस प्रकार श्रीगर्गसहितामें मधुर्यज्ञपदके अन्तर्गत नारद-बहुताश्शंसादमें ‘सौभरि और मांथाता’का संबाद तथा
वर्हिष्ठतीपुरीकी नरियों, अपसराओं, सुतलवासिनी असुर-कन्याओं तथा नामराज-कन्याओंके गोपीकण्ठमें
उत्पन्न होनेका उपाख्यानः’ नामक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

सोलहवाँ अध्याय

श्रीयमुना-कवच

मांथाता बोले—महाभाग ! आप मुझे श्रीकृष्णकी
पटरानी यमुनाके सर्वथा निर्मल कवचका उपदेश दीजिये,
मैं उसे सदा धारण करूँगा ॥ १ ॥

सौभरि बोले—महामते नरेश ! यमुनाजीका कवच
मनुष्योंकी सब प्रकारसे रक्षा करनेवाला तथा साक्षात् चारों
पदार्थोंको देनेवाला है, तुम इसे दुनो—यमुनाजीके चार
भुजाएँ हैं। वे इयामा (इयामवर्णां एवं बोडश वर्षकी
अवस्थासे युक्त) हैं। उनके नेत्र प्रकुण्ड कमलदलसे समान
मुन्दर एवं विशाल हैं। वे परम मुन्दरी हैं और दिव्य
रथपर बैठी हुई हैं। इस प्रकार उनका ध्यान करके कवच
धारण करे ॥ २-३ ॥

स्नान करके पूर्वाभिमुख हो मौनभावसे कुशासनपर बैठे
और कुशोद्वारा शिखा बॉधकर संध्या-बन्धन करनेके
अनन्तर ब्राह्मण (अथवा द्विजमात्र) स्वस्तिकासनसे शित
हो कवचका पाठ करें। ‘यमुना’ मेरे मस्तककी रक्षा करें
और ‘कृष्णा’ सदा दोनों नेत्रोंकी। ‘इयामा’ भूमंग-देशकी
और ‘नामकवासिनी’ नासिकाकी रक्षा करें। ‘साक्षात् परमानन्द-
रूपिणी’ मेरे दोनों कपोलोंकी रक्षा करें। ‘श्रीकृष्णामार्मां-
सभूता’ (श्रीकृष्णके चारों कंधेसे प्रकट हुई वे देवी) मेरे
दोनों कानोंका संरक्षण करें। ‘कालिन्दी’ अधरोंकी और
‘सूर्यकन्या’ चिकुक (ठोड़ी) की रक्षा करें। ‘यमस्तका’
(यमराजकी बहिन) मेरी श्रीकाकी और ‘महानदी’ मेरे
हृदयकी रक्षा करें। ‘कृष्णप्रिया’ पृष्ठभागका और ‘स्त्रिनी’

पश्चात्का बर्णन करूँगा, जो सदा समरा शिद्धियोंको देनेवाला
तथा श्रीकृष्णके सारूप्यकी प्राप्ति करनेवाला है। यह साधन
बहाँसे सूर्यका उदय होता है और जहाँ वह अस्तभावको
प्राप्त होता है, वहाँतके राज्यकी प्राप्ति करनेवाला तथा
यहाँ श्रीकृष्णको भी बशीभूत करनेवाला है। सूर्यवंशेन्द्र ।
किसी भी देवताके कवच, स्तोत्र, सहस्रनाम, पटल तथा

पद्धति—ये पाँच अङ्ग विद्वानोंने बताये हैं ॥ २०-२२ ॥

मेरी दोनों भुजाओंका रक्षण करें। ‘मुश्रोणी’ श्रोणीतट
(नितम्) की और ‘चारुदर्शना’ मेरे कटिप्रदेशकी रक्षा
करें। ‘रम्भोरु’ दोनों ऊरुओं (जाँचों) की और ‘अङ्ग-
मेदिनी’ मेरे दोनों शुटुनोंकी रक्षा करें। ‘रातेश्वरी’ गुल्फों
(शुद्धियों) का और ‘पापापहारिणी’ पादयुगलका त्राण
करें। ‘परिपूर्णतमप्रिया’ भीतर-बाहरु नीचे-ऊपर तथा
दिशाओं और विदिशाओंमें सब ओरसे मेरी रक्षा
करें ॥ ४-१० ॥

यह श्रीयमुना का परम अनुत्तर कवच है। जो भक्तिभावसे

* यमुनायाश कवचं सर्वरक्षाकरं वृणाम् ।
चतुर्षदर्थं साक्षात्कृष्णु राजन् महामते ॥
कृष्णा चतुरुजा इयामा पुण्डरीकलेश्वणाम् ।
स्नाता चतुर्दशी च्यासा धारयेद् कवचं ततः ॥
स्नातः पूर्वसुखो मौली कृतसंघः कुशासने ।
कुशेष्वदशिक्षो विप्रः पठेद् वै स्वस्तिकासनः ॥
यमुना मे शिः पातु कृष्णा नेत्राद्यं सदा ।
इयामा भूमंगदेवं च नासिका नामवासिनी ॥
कपोली पातु मे साक्षात् परमानन्दरूपिणी ।
कृष्णामार्मांसभूता पातु कर्णद्वयं मम ॥
वर्षी पातु कलिन्दी चिकुक सूर्यकन्यका ।
यमस्तका कल्परा च हृदयं मे महानदी ॥
कृष्णप्रिया पातु पृष्ठं तदिनी मे चुच्छायम् ।
श्रोणीतटं च दुष्टोणी छर्टं मे काशश्चाना ॥

दस बार इसका पाठ करता है, वह निर्धन भी धनवान् हो जाता है। जो बुद्धिमान् मनुष्य ब्रह्मचर्यके पालनपूर्वक परिमित आहारका सेवन करते हुए तीन मासतक इसका पाठ करेगा, वह सम्पूर्ण राज्योंका आधिपत्य प्राप्त कर लेगा, इसमें संशय नहीं है। जो तीन महीनेकी अवधितक

प्रतिदिन भक्तिभावसे शुद्धचित्त हो इसका एक सौ दस बार पाठ करेगा, उसको क्या-क्या नहीं मिल जायगा! जो प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करेगा, उने सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नानका फल मिल जायगा तथा अन्तमें वह योगिकुरुलभ परमधाम गोलोकमें चला जायगा॥ ११-१४ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें मातुर्दद्वचन्द्रके अन्तर्गत श्रीसौरी-मांवत्ताके संबंधमें 'यमुनाकवच'

नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

श्रीयमुनाका स्तोत्र

मांधारा बोले—मुनिशेष सौभरे ! सम्पूर्ण सिद्धि-प्रदान करनेवाला जो यमुनाजीका दिव्य उत्तम स्तोत्र है, उसका कृपापूर्वक मुक्तसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

श्रीसौरीभर मुनिने कहा—महामते ! अब तुम सूर्य-कन्या यमुनाका स्तोत्र सुनो, जो इस भूतलपर समस्त सिद्धियोंको देनेवाला तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थोंका फल देनेवाला है। श्रीकृष्णके वार्ये कथेसे प्रकट हुई कृष्णकी सदा मेरा नमस्कार है। कृष्ण ! तुम श्रीकृष्णस्वरूपिणी हो; तुम्हें वारंवार नमस्कार है। जो पापरूपी पङ्कजलके कलहुसे कुस्तित कामी कुबुद्धि मनुष्य सत्पुरुषोंके साथ कलह करता है, उसे भी गैंगजे हुए भग्नर और जलपक्षियोंसे युक्त कलिन्दननिदी यमुना बृन्दावनधाम प्रदान करती हैं। कृष्ण ! तुम्हीं साक्षात् श्रीकृष्णस्वरूपा हो; तुम्हीं प्रलयसिन्धुके वंगयुक्त भँवरमें महामत्यरूप धारण करके विराजती हो। तुम्हारी ऊर्मि ऊर्मिमें भगवान् कूर्मरूपसे वास करते हैं तथा तुम्हारे विन्दु-विन्दु-में श्रीगोविन्ददेवकी आभाका दर्शन होता है। तटिनि ! तुम लीलाकृती हो, मैं तुम्हारी बन्दना करता हूँ। तुम घनी-

भूत मेघके समान इयाम कान्ति धारण करती हो। श्रीकृष्णके वार्ये कथेसे तुम्हारा प्राकृत्य हुआ है। सम्पूर्ण जलोंकी राशिरूप जो विरजा नदीका वेग है, उसको भी अपने बलसे खण्डित करती हुई, ब्रह्माण्डको छेदकर देवनगर, पर्वत, गण्डशैल आदि दुर्गम वस्तुओंका भेदन करके तुम इस भूमिखण्डके मध्यभागमें अपनी तरङ्गमालाओंको खापित करके प्रवाहित होती हो। यमुने ! पृथ्वीपर तुम्हारा नाम दिव्य है। वह श्रवणपथमें आकर पर्वताकार पापसमूहको भी दण्डित एवं खण्डित कर देता है। तुम्हारा वह अखण्ड नाम मेरे वाह्मण्डल—वचनसमूहमें क्षणभर भी स्थित हो जाय। यदि वह एक बार भी वाणीद्वारा शृंहीत हो जाय तो समस्त पार्योंका खण्डन हो जाता है। उसके स्वरणसे दण्डनीय पारी भी अदण्डनीय हो जाते हैं। तुम्हारे भाई सूर्यपुत्र यमराजके नगरमें तुम्हारा 'प्रचण्डा' यह नाम सुदृढ़ अतिदण्ड बनकर विचरता है। तुम विद्यरूपी अन्धकूपसे पार जाने-के लिये रसीदी हो; अथवा पापरूपी चूहोंके निगल जाने-वाली काली नागिन हो; अथवा विराट् पुरुषकी मूर्तिकी वेणीको अलंकृत करनेवाला नीले पुष्पोंका गजरा हो या उनके महसकपर सुशोभित होनेवाली सुन्दर नीलमणिकी

कल्यां तु रमोर्कर्तुनी त्वद्विमेदिनी । गुरफौ रसेवकी पातु पादौ पापायहारिणी ॥
अन्तर्वहिरवच्चोर्ध्वं दिशासु विदिशासु च । समस्तात् पतु जातः परिपूर्णतमधिवा ॥

(गां०, मातुर्दद्वचन्द्र १६ । २-१०)

* इह श्रीयमुनायाश्च कवच परमाहृतम् । दश्वार पठेद् मक्त्या निर्धने धनवान् भवेत् ॥
श्रिमिर्माते: पठेद् शीमान् मद्यवारी भिताश्वनः । सर्वराज्याधिपत्यसं प्राप्यते वात्र संक्षेपः ॥
दशोऽरशतं नित्यं विमासावधि भित्तिः । यः पठेद् मक्तो भूत्या तस्य किं किं न आपत्ते ॥
४: पठेत् प्रातःस्थाय सर्वतीर्थकं लभेत् । अन्दे ब्रजेत् परं वाम गोलोकं योगिकुरुम् ॥

(गां०, मातुर्दद्वचन्द्र १६ । ११-१४)

को रखकर उसके थाद कामवीज (ही) का विधिवत् प्रयोग करे । इसके अनन्तर 'कालिन्दी' शब्दका चतुर्थ्यन्तर स्वप (कालिन्दी) रखवे । फिर 'देवी' शब्दके चतुर्थ्यन्तर स्वप (देवी) का प्रयोग करके अन्तमें 'नमः' पद जोड़ दे । (इस प्रकार 'ॐ हीं ओ हीं कालिन्दी देवी नमः' । यह मन्त्र बनेगा ।) इस मन्त्रका मनुष्य विधिवत् जप करे । इस ग्यारह अक्षरवाले मन्त्रका ग्यारह लाख जप करनेसे इस पृथ्वीपर लिंग प्रार्थना की जाती है, वे सभ स्वतः दुर्लभ हो जाते हैं ॥ २-४ ॥

दुर्द्वंद्र सिंहासनपर शोषशादल कमल अङ्कित करके उसकी कर्णीगांमे श्रीकृष्णसहित कालिन्दीका न्यास (स्थापन) करे । कमलके सोलह दलोंमें अलग-अलग विधिशूर्वक नाम लें-लेकर मानवश्रेष्ठ साधक कमशः गङ्गा, विरजा, कृष्णा, चन्द्रभारा, सरस्वती, गोमती, कौशिकी, वेणी, सिंधु, गोदावरी, वेदस्मृति, वेश्वरी, शतद्रू, सरयू, ऋषिकुल्या तथा कुशिनीका पूजन करे । प्रांदि चार दिशाओंमें कमशः वृन्दावन, गोवर्धन, वृन्दा तथा तुलसीका उनके नामोद्वारारणपूर्वक कमशः पूजन करे । तत्पश्चात् 'ॐ नमो भगवत्यै कलिन्दननिन्द्यै सर्वैकन्यकार्यं यमभगिन्यै श्रीकृष्ण'

इस प्रकार श्रीगर्भसंहितामें मारुर्यसहके अन्तर्गत मांधाता और सौभरिक संवादमें पहल और पद्मिका वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

यमुना-सहस्रनाम

मांधाता बोले—मनुष्यश्रेष्ठ ! यमुनाजीका सहस्रनाम समस्त लिंगियोंकी प्राप्ति करनेवाला उत्तम माधव है, आप मुझे उसका उपदेश कीजिये; क्योंकि आप मरवश और निरामय (रोग-शोकसे रहित) है ॥ १ ॥

सौभरिने कहा—मांधाता नरेश ! मैं तुमसे 'कालिन्दी-सहस्रनाम'का वर्णन करता हूँ । वह समस्त लिंगियोंकी प्राप्ति करनेवाला, दिव्य तथा श्रीकृष्णको बड़ीभूत करनेवाला है ॥ २ ॥

विनियोग

अस्त श्रीकालिन्दीसहस्रनामसोमन्त्रस्त सौभरि-

प्रियांते शूषीभूतावै स्वाहा ।' इस मन्त्रसे आवाहन आदि सोलह उपचारोंको एकाग्रचित्त हो अर्पित करे ॥ ५-१० ॥

इस प्रकार यमुनाका पटल जानो । अब पद्मति बताऊँगा । जबतक पुरश्चरण पूरा न हो जाय, तबतक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए मौनावलभ्यनपूर्वक द्विजको जप करना चाहिये । पुरश्चरणकालमें जौका आटा खाय, पृथ्वीपर शयन करे, पत्तलपर भोजन करे और मनको बशमें रखवे । राजन ! आचार्यको चाहिये कि काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा देषको त्यागकर परम भक्तिभावसे जपमें प्रवृत्त रहे । ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर कालिन्दी देवीका ध्यान करे और असणोदयकी वेलामें नदीमें स्नान करे । मध्याह्नकालमें और दोनों संध्याओंके समय संध्या-बन्दन अवश्य किया करे । गजन ! जब अनुष्ठान भमाम हो, तब यमुनाके तटपर जाकर पुत्रोंसहित दस लाख महात्मा ब्राह्मणोंका गन्ध-पृष्ठसे पूजन करके उन्हे उत्तम भोजन दे । तदनन्तर बन्ध, आभूषण और सुवर्णमय चमकीले पात्र तथा उत्तम दशिणाएँ दे । इसमें निश्चय ही लिंग होती है ॥ ११-१७ ॥

महामते नरेश ! इस प्रकार मैंने तुमसे यमुनाजीके जप और औजनकी पद्मति बतायी है । तुम सारा नियम पूर्ण करो । बताओ ! अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १८ ॥

शंखः, श्रीयमुना देवता, अनुष्टुप्-छन्दः, मायाबीजमिति कीलकम्, रमाबीजमिति शक्तिः, श्रीकलिन्दननिन्दीप्रसाद-सिद्धयर्थं जपे विनियोगः ।

—उक्त वाक्य पढ़कर सहस्रनाम-पाठके लिये विनियोग-का जल छोड़े ।

ध्यान

स्यामाभन्दोजनेत्रां सघनघनहर्षं रक्षस्त्वीरकूजात्-
काञ्जीकेष्टुपुकां कनकमणिमये विद्वतीं कुण्डले हैं ।
शाजच्छीवीकवस्त्रस्त्रूरद्यभजचलद्वारभारां मनोऽन्तां
ज्ञाये मातृण्डपुरीं तत्त्वुकिरणचयोहीस्त्रीपापिरामाम् ॥ ३ ॥

जो इयामा (इयामवर्णा एवं शोडश वर्षकी अवस्थावाली) हैं, जिनके नेत्र प्रकृष्ट कमल-दलकी शोभाको छीने लेते हैं, पनीभूत मेघके समान जिनकी नील कान्ति है, जो रस्तोद्धारा निर्मित बजते हुए नूयूर और शक्तकारती हुई करधनी एवं नैयूर आदि आभूषणोंसे युक्त हैं तथा कानोंमें सुवर्ण एवं मणिनिर्मित दो कुण्डल धारण करती हैं, दीपिमती नीली साढ़ीपर चमकते हुए गजमौलिकके चक्रल हारका भार बहन करनेसे अत्यन्त मनोहर जान पड़ती हैं, शरीरसे छिटकती हुई किरणोंकी राशिसे उद्धीस होनेके कारण जिनकी प्रज्वलित दीपमालाके समान शोभा हो रही है, उन सूर्यनन्दिनी यमुनाजीका मैं ध्यान करता हूँ ॥ ३ ॥

सहस्रनाम

१. ४० कालिष्ठी=सच्चिदानन्दस्वरूपा कलिन्दगिरि-नन्दिनी, २. यमुना=यमकी वहिन, ३. कुण्डा=कृष्णवर्णा, ४. कृष्णस्वरूपा=कृष्णस्वरूपा अथवा कृष्णरूपवाली, ५. सनातनी=नित्या, ६. कृष्णवामांससम्भूता=श्री-कृष्णके वायें कंधेसे प्रकट हुई, ७. परमानन्दरूपिणी=परमानन्दमयी ॥ ४ ॥

८. गोलोकधासिनी=गोलोकधाममें निवास करनेवाली, ९. इयामा=इयामवर्णा अथवा शोडश वर्षकी अवस्थावाली, १०. वृन्दावनविनोदिनी=वृन्दावनमें मनोरक्षन करनेवाली, ११. राधास्त्रही=श्रीराधाकी सहचरी, १२. रासलीला=रासमण्डलमें लीलापरायणा अथवा रासलीलास्वरूपा, १३. रासमण्डलमण्डिनी=रासमण्डल को अलंकृत करनेवाली ॥ ५ ॥

१४. निकुञ्जधासिनी=निकुञ्जमें निवास करनेवाली, १५. वली=लतास्वरूपा, १६. रङ्गवली=रासरङ्गस्त्रीमें बहीके समान शोभा पानेवाली अथवा रङ्गवली नामकी राधा-सती गोपीने अभिष्टस्वरूपा, १७. मनोहरा=मनको हर लेनेवाली, १८. श्री=लक्ष्मीस्वरूपा, १९. रासमण्डली-भूता=रासमण्डलस्वरूपा अथवा मण्डलाकार हीकर रासमण्डल-को अलंकृत करनेवाली, २०. शूरीभूता=अपनी सहचरियोंके यूथमें संयुक्त, २१. हरिप्रिया=श्रीकृष्णकी प्यारी ॥ ६ ॥

२२. गोलोकतिनी=गोलोकधामकी नदी, २३. दिव्या=दिव्यस्वरूपा, २४. निकुञ्जनलधासिनी=निकुञ्जके भीतर निवास करनेवाली, २५. शीर्षा=वहुत लंबे परिमाणकी, २६. ऊर्मिवेगमधीरा=सारंगोंके वेगसे युक्त एवं गहरी,

२७. पुष्पपलुबधाहिनी=फूलों और पलड़ीको बहावे-वाली ॥ ७ ॥

२८. धनधयामा=मेघके समान इयाम कान्तिवाली, २९. मेघमाला=धनमालास्वरूपा, ३०. बलात्मा=बलपूर्कि-स्वरूपा, ३१. पश्चमालिनी=कमलोंकी मालासे अलंकृता, ३२. परिपूर्णतमा=परिपूर्णतम भगवत्स्वरूपा, ३३. पूर्णा=पूर्णस्वरूपा, ३४. पूर्णज्ञाप्रिया=पूर्णज्ञाता श्रीकृष्णकी प्रेयसी, ३५. परा=पराशक्तिस्वरूपा ॥ ८ ॥

३६. महावेगवती=वहे वेगवाली, ३७. सासा-श्रीकृष्णाकारनिर्गता=श्रीकाशात् निकुञ्जके द्वारसे निकली हुई, ३८. महामधी=विशाल सरिता, ३९. मध्यगति=मन्द-गतिसे बहनेवाली, ४०. विरजावेगमेदिनी=गोलोकधामकी विरजा नदीके वेगका भेदन करनेवाली ॥ ९ ॥

४१. अनेकज्ञापूर्णगता=अनेकानेक ब्रह्माण्डोंमें व्यास, ४२. ब्रह्मद्रवसमाकुला=ब्रह्मद्रवस्वरूपा गङ्गाजीसे मिली हुई, ४३. गङ्गामिथा=गङ्गाके जलसे मिथित जलवाली, ४४. निर्मलाभा=निर्मल आभावाली, ४५. निर्मला=सब प्रकारके मलोंसे रहित, ४६. सरितांघरा=नदियोंमें श्रेष्ठ ॥ १० ॥

४७. रत्नबञ्जीभयतटी=दोनों किनारोंकी तटभूमिये रस्ते आवद, ४८. हंसपश्चादिसंकुला=हंसादि पक्षियों और कमल आदि पुष्टोंसे व्यास, ४९. नदी=अध्यक्ष शब्द, कलकल नाद करनेवाली, ५०. निर्मलपालीया=स्वच्छ जलवाली, ५१. सर्वज्ञापूर्णपावनी=समस्त ब्रह्माण्डोंको पवित्र करनेवाली ॥ ११ ॥

५२. वैकुण्ठपरिखीभूता=वैकुण्ठधामको चारों ओरसे बेरकर परिका (साई) के समान शुशोभित, ५३. परिखा=वाईस्वरूपा, ५४. पापहारिणी=पापोंका नाश करनेवाली, ५५. ब्रह्मलोकगता=ब्रह्मलोकमें पहुँची हुई, ५६. श्रावी=ब्रह्मशक्तिस्वरूपा, ५७. स्वर्गा=स्वर्गलोकस्वरूपा, ५८. सर्वनिवासिनी=स्वर्गलोकमें वास करनेवाली ॥ १२ ॥

५९. उहुसन्ती=तरङ्गोद्धारा ऊपरकी ओर उठनेवाली, ६०. प्रोत्पत्ती=जोर-जोरसे उछलनेवाली, ६१. मेलमाला=मेषपतंकको मालाकी भाँति अलंकृत करनेवाली, ६२. महोजवला=अत्यन्त प्रकाशमाना, ६३. श्रीगङ्गामधी-शिवारिणी=गङ्गाजीके जलको शिवरका रूप देनेवाली,

६५. वाष्णवौलविभेदिनी=गण्डवोंका भेदन करनेवाली ॥ १३ ॥

६६. वेशाद् तुलस्ती=देशोंका पवित्र करनेवाली, ६७. अच्छास्ती=प्रतिशीला, ६८. वाहस्ती=प्रवहमाना, ६९. भूमिमव्यग्या=भृतीके भीतर प्रवेश करनेवाली, ७०. पुण्या=पुण्यप्रदा, ७१. कलिन्दगिरिजननिधिनी=कलिन्द पर्वतसे निकली हुई ॥ १४ ॥

७२. यमस्वसा=यमराजकी बहन, ७३. मन्दहास्ता=मन्द-मन्द मुसकरानेवाली, ७४. सुद्धिजा=सुन्दर दाँतोवाली, ७५. इच्छामधरा=धरतीके लिये आच्छादन-बद्धके स्वरमें निर्मित, ७६. नीलामधरा=नील बद्ध धारण करनेवाली, ७७. पद्ममुखी=कमलधरना, ७८. वरस्ती=विचरनेवाली, ७९. चारुदर्शना=मनोहर हृषिवाली अथवा देखनेमें मनोहर ॥ १५ ॥

८०. रम्भोरः=कहलीके लंबे-जैसे ऊरुद्वय धारण करनेवाली, ८१. पश्चानयना=कमलोचना, ८२. माधवी=माधवप्रिया, ८३. प्रमदा=यौवनशालिनी, ८४. उत्तमा=उत्तम, ८५. तपश्चरस्ती=श्रीकृष्ण-प्राप्तिके लिये तपस्या करनेवाली, ८६. सुधोर्णी=सुन्दर नितम्बको धारण करनेवाली, ८७. कृजान्तुपुरेष्वला=वज्रे हुए नूपुरों और करघनीमें सुशोभित ॥ १६ ॥

८८. जलस्थिता=गर्नामें निवास करनेवाली, ८९. ह्यामलाङ्गी=ह्यामल अङ्गवाली, ९०. खाण्डवाभा=खाण्डववनकी शोभा, ९१. विहारिणी=विहारशील, ९२. गाण्डीविभाषिणी=अपनी तपस्याका उहेद्य बतानेके लिये गाण्डीवधारी अर्जुनसे वार्तालाप करनेवाली, ९३. वन्या=वहे हुए प्रवाहवाली, ९४. श्रीकृष्णं वरमिळद्वानी=श्रीकृष्ण-को पति बनानेकी इच्छावाली ॥ १७ ॥

९५. द्वारकागमना=द्वारकमें आगमन करनेवाली, ९६. राणी=राणी, ९७. पटूराणी=पटराणी, ९८. परंगता=परमात्माको प्राप्त, ९९. महाराणी=महाराणी, १००. रत्नभूषा=रत्ननिर्मित आभूषणोंसे विभूषित, १०१. गोमती=गौओंके समूद्रद्वयसे युक्त अथवा गोमती नदीस्वरूपा, १०२. तीरकारिणी=तीरपर विचरनेवाली ॥ १८ ॥

१०३. स्वर्णीया=श्रीहृष्णकी अपनी विवाहिता पत्नी, १०४. सुखा=सुखस्वस्या, १०५. स्वार्था=अपने अभीष्ट

अर्थको प्राप्त, १०६. स्वभक्तकार्यसाधिनी=अपने भक्तोंका कार्य सिद्ध करनेवाली, १०७. नवलाङ्गा=रुतन अङ्गवाली, १०८. अबला=खीरपा, १०९. मुग्धा=भोली-माली अथवा मुग्धा नायिका, ११०. वराङ्गा=सुन्दर अङ्गवाली, १११. वामलोचना=जाँके नयनोंवाली ॥ १९ ॥

११२. अजातयौवना=अग्रास-यौवना, ११३. अशीना=दीनतारहित एवं उदास्वरूपा, ११४. प्रभा=प्रभास्वरूपा, ११५. कान्ति=कान्तिस्वरूपा, ११६. द्युतिः=द्युतिस्वरूपा, ११७. छविः=छविस्वरूपा, ११८. सुशोभा=सुन्दर शोभा-वाली, ११९. परमा=उत्कृष्टस्वरूपा, १२०. कीर्तिः=कीर्तिस्वरूपा, १२१. कुशला=चतुरा, १२२. अशात्-यौवना=अपने यौवनके आरम्भको न जाननेवाली ॥ २० ॥

१२३. नवोढा=नवविवाहिता नायिका, १२४. मध्यगा=मुग्धा और प्रगल्भाके बीचकी अवस्थावाली, १२५. मध्या=मध्या-नायिका, १२६. प्रौढिः=प्रौढतासे युक्त, १२७. प्रौढा=प्रौढस्वरूपा, १२८. प्रगल्भा=प्रगल्भा-नायिका, १२९. धीरा=धीरस्वभावा, १३०. अधीरा=भगवहर्षनके लिये अधीर रहनेवाली, १३१. धैर्यधरा=धैर्यधारिणी, १३२. ज्येष्ठा=ज्येष्ठ अवस्थावाली, १३३. श्रेष्ठा=गुणोंसे श्रेष्ठ, १३४. कुलाङ्गना=कुलवधू ॥ २१ ॥

१३५. क्षणप्रभा=विद्युतके समान कान्तिमर्ती, १३६. चञ्चला=वेगशालिनी, १३७. अच्छ्या=प्रजनीया, १३८. विद्युत=विद्योतमाना, १३९. सौदामनी=विद्युतस्वरूपा, १४०. तडित्=वनश्यामके अङ्गमें विद्युलेखा-सी शोभमाना, १४१. स्वाधीनपतिका=स्नेह और सदव्यवहारसे पतिको वशमें रखनेवाली, १४२. लक्ष्मी=लक्ष्मीस्वरूपा, १४३. पुष्टा=पुष्ट अङ्गोंवाली अथवा अनुग्रहमयी, १४४. स्वाधीन-भर्तुका=स्वाधीनपतिका ॥ २२ ॥

१४५. कलहान्तरिता=प्रेम-कलहके कारण कभी-कभी प्रियतमके विषेगका कष सहन करनेवाली नायिका, १४६. भीहः=भीह स्वभाववाली, १४७. इच्छा=प्रियतमकी कामना-का विषय अथवा अभिलाषाहूपिणी, १४८. प्रोत्कञ्चिता=प्रियके दर्शन या मिलनके लिये उत्सुक रहनेवाली, १४९. आङ्गुष्ठा=प्रेम-परिष्णी अथवा प्रियतमकी सेवाके कार्यमें व्यस्त, १५०. कविष्पुस्ता=शब्दापर विराजित रहनेवाली, १५१. दिव्यशक्त्या=श्यामसुन्दरके लिये दिव्य शम्भा प्रस्तुत

करनेवाली, १५२. गोविन्दहतमानसा=गोविन्दने जिनके मनको हर लिया है, ऐसी ॥ २३ ॥

१५३. खण्डिता=खण्डिता-नायिकास्वरूपा, १५४. अखण्डशोभात्मा=अविकल शोभासे सम्बन्ध, १५५. विप्रलब्धा=विप्रलब्धा-नायिकास्वरूपा, १५६. अभिसारिका=प्रियतम श्रीकृष्णसे मिलने के लिये संकेत-सानपर जानेवाली, १५७. विरहात्मी=प्रियतमके विरहकी अनुभूति से पीड़ित, १५८. विरहिणी=वियोगिनी, १५९. नारी=नरावतार श्रीकृष्णकी भार्या, १६० प्रोवितभर्तुका=जिसका पति परदेशमें गया हो, ऐसी नायिकास्वरूपा ॥ २४ ॥

१६१. मानिनी=मानवती, १६२. मानदा=मान देनेवाली, १६३. प्राङ्गा=विदुषी, १६४. मन्दावनवासिनी=कल्पवृक्षके काननमें निवास करनेवाली, १६५. इंकारिणी=नलते-फिते या नृत्य करते समय आभूषणोंकी झंकार फैलानेवाली, १६६. शणत्कारी=शणत्कार या सिखन-ध्वनि करनेवाली, १६७. रणनम्भारिन्द्रपुरा=यजते हुए नूपुर और मङ्गीर धारण करनेवाली ॥ २५ ॥

१६८. मेखला=वृन्दावनकी नीलमणिमयी करधनीके समान चुदोभित, १६९. ओमेखला=साधारण अवस्थामें मेखलासे रहित, १७०. काञ्जी=‘काञ्जी’ नामक आभूषण-स्वरूपा, १७१. अकाञ्जनी=काञ्जनरहित, १७२. काञ्जनामयी=सुवर्णस्वरूपा, १७३. कञ्जुकी=कञ्जुकधारिणी, १७४. कञ्जुकमणि=कञ्जुकमणिस्वरूपा, १७५. श्रीकण्ठा=शोभायुक्त कण्ठवाली, १७६. आत्मा=(श्रीकृष्ण-रूप) सम्पत्तिशालिनी, १७७. महामणि=महामणिस्वरूपा अथवा बहुमूल्य मणि धारण करनेवाली ॥ २६ ॥

१७८. श्रीहारिणी=श्रीहारधारिणी, १७९. पश्चात्तरा=कमलोंकी मालासे अलंकृत, १८०. मुक्ता=नित्यमुक्त, १८१. मुक्तफलार्चिता=मुक्तफलोंसे पूजित, १८२. रत्नकङ्कण-केयूरा=रत्ननिर्मित कंगन और केयूर (भुजवंद) धारण करनेवाली, १८३. स्फुरद्धुलिभूषणा=जिनकी अङ्गुलियोंके भूषण उद्भासित हो रहे हैं, ऐसी ॥ २७ ॥

१८४. दर्पणा=दर्पणस्वरूपा, १८५. दर्पणीभूता=अपने जलकी निर्मलताके कारण दर्पणका काम देनेवाली, १८६. तुष्टिपौष्टिनार्चिता=तुष्टोंके बंडोंको चूर करनेवाली, १८७. कम्बुचीवा=शङ्के समान कम्बुचर कण्ठवाली, १८८.

कम्बुधरा=शङ्कनिर्मित आशूष्म धारण करनेवाली, १८९. बैवेयविराजिता=वैष्णवते चुदोभित ॥ २८ ॥

१९०. ताटिकी=‘ताटिकी’ नामक आभूषण-विशेषों धारण करनेवाली, १९१. वृत्तधरा=दन्तधारिणी, १९२. हेमकुण्डलमण्डिता=काञ्जन-निर्मित कुण्डलोंसे अलंकृत, १९३. शिखाभूषा=अपनी चोटीको विभूषित करनेवाली, १९४. भालपुष्पा=ललाट-वेशमें पुष्पमय शृङ्गार धारण करनेवाली, १९५. नासामौकिकरोभिता=नाकमें मोतीकी बुलाकरे शोभित ॥ २९ ॥

१९६. मणिभूमिगता=मणिमयी भूमिपर विचरनेवाली, १९७. देवी=दिव्यस्वरूपा, १९८. रैवताद्विविहारिणी=श्रीकृष्णकी पटरानीके रूपमें रैवतक पर्वतपर विहार करनेवाली, १९९. वृन्दावनगता=वृन्दावनमें विद्यमाना, २००. वृन्दा=वृन्दावनकी अधिष्ठात्रदेवी-स्वरूपा, २०१. वृन्दारण्यनिवासिनी=वृन्दावनमें निवास करनेवाली ॥ २० ॥

२०२. वृन्दावनलता=वृन्दावनकी लताओंके साथ तादात्म्यको प्राप्त हुई, २०३. माघी=मकरन्दस्वरूपा, २०४. वृन्दारण्यविभूषणा=वृन्दावनको विभूषित करनेवाली, २०५. सौन्दर्येलहरी लक्ष्मी=सुन्दरताकी तरङ्गोंसे युक्त लक्ष्मीस्वरूपा, २०६. मथुरातीर्थवासिनी=मथुरापुरीरूप तीर्थमें निवास करनेवाली ॥ ३१ ॥

२०७. विश्राम्भासिनी=‘विश्रान्त’ तीर्थ (विश्राम्भाट)में वास करनेवाली, २०८. काम्या=कमनीया, २०९. रम्या=रमणीया, २१०. गोकुलवासिनी=गोकुलमें निवास करनेवाली, २११. रमणस्थलशोभात्मा=रमणस्थलीकी शोभा बढ़ानेवाली, २१२. महाधनमहानदी=‘महाबन’ नामक बनमें प्रवाहित होनेवाली महती नदी ॥ ३२ ॥

२१३. प्रणता=भक्तजनोंद्वारा बन्दिता, २१४. ग्रोष्टता=अत्यन्त उत्कृष्ट गोलोकधाममें स्थित, अथवा ऊँची लहरोंके कारण उत्त्रत, २१५. पुष्टा=प्रेमानुग्रहसे परिपूष्ट, २१६. भारती=भारतवर्षकी नदी, २१७. भरतार्चिता=भरतके द्वारा पूजित, २१८. तीर्थराजगति=तीर्थराज प्रयागकी आश्रयभूता, २१९. गोक्षा=गौओंका त्राण करनेवाली अथवा गिरिस्वरूपा, २२०. गङ्गालागरसंसामा=गङ्गा तथा सागरसे संगम ॥ ३३ ॥

२२१. सप्तांधेमेविनी=सप्त समुद्रोंका भेदन करनेवाली, २२२. लोला=छोल लहरोंवाली, २२३. बलात्-

स्वर्णदीपवत्ता=गल्पूर्वक सातो द्वीपोंमें जानेवाली, २२४. **शुद्धलती**=धरतीपर लोटनेवाली, २२५. **शैलभिषमन्ती**=पर्वतोंका भेदन करनेवाली, २२६. **स्फुरलती**=स्फुरणशील अथवा अपनी दिव्य प्रभा विवेरनेवाली, २२७. **वेगवत्तरा**=अतिव्याय वेगशालिनी ॥ ३४ ॥

२२८. **काञ्चनी**=स्वर्णमयी, २२९. **काञ्चनी-भूमि**=गोलोककी स्वर्णमयी भूमिपर प्रवाहित होनेवाली, २३०. **काञ्चनीभूमिभाविता**=स्वर्णमयी भूमिपर प्रकट, २३१. **लोकद्विः**=जगत्को दिव्यद्विप्रदान करनेवाली, २३२. **लोकलीला**=लोकमें लीला करनेवाली, २३३. **लोकालोकालीर्षिता**=लोकालोकपर्वतपर पूजित होनेवाली ॥ ३५ ॥

२३४. **शैलोद्धता**=किन्द्रपर्वतसे निकली हुई, २३५. **स्वर्णगता**=गलदाकिनीरूपसे स्वर्णमें गयी हुई, २३६. **स्वर्णचार्चा**=स्वर्णमें अचित होनेवाली, २३७. **स्वर्ण-पूजिता**=स्वर्णलोकमें पूजित, २३८. **बृन्दावनी**=बृन्दावनकी अविद्यातुस्वरूपा देवी, २३९. **वनाभ्यक्ता**=वनकी स्वामिनी, २४०. **कक्षा**=कक्षिता या कक्षारूपा, २४१. **कक्षा**=बृन्दावनके लिये भेषलारूपा, २४२. **तटीपटी**=तटभूमिकी बछकी भाँति ढकनेवाली ॥ ३६ ॥

२४३. **असिक्खुण्डगता**=असिक्खुण्डमें प्रास, २४४. **कछडा**=कछड़की भूमिस्वरूपा, २४५. **स्वच्छन्दना**=सच्छन्दगामिनी, २४६. **उच्छ्वलिता**=(वेगसे) उछलनेवाली, २४७. **आदिजा**=आदिभूत श्रीकृष्णके बामांससे उद्भूत (अथवा 'अद्रिजा' पाठ माना जाय तो पर्वतसे उत्पन्न हुई), २४८. **कुहरसा**=सरस्वतीरूपसे भूलिद्रेमें अथवा भोगवती-हपसे पाताल-विवरमें स्थित, २४९. **रथप्रस्था**=श्रीकृष्णकी पटरानीके रूपमें रथपर यात्रा करनेवाली, २५०. **प्रस्था**=प्रसानशीला, २५१. **शान्ततरा**=परम शान्तिमयी, २५२. **आतुरा**=श्रीकृष्णदर्शनके लिये आतुर रहनेवाली ॥ ३७ ॥

२५३. **अमुच्छुदा**=जलकी छटासे शोभित, २५४. **दीपकारात्मा**=कुहरोंसे मुशोभित होनेवाली, २५५. **बृहुरा**=मेहकोंका आभय, अथवा बालुके समान इयाम कान्तिवाली, २५६. **बारुरीधरा**=अपने बालके कलंकल नारसे दाढ़ुरोंकी-सी ज्वालि धरण करनेवाली, २५७. **पापाकृशा**=पाणोंको नह करनेके लिये अकृशास्वरूपा, २५८. **पापसिंही**=पापसी गजराजको नह करनेके लिये सिंहीके तुम्ब, २५९.

पापत्रुमकुडारिणी=पापरूपी बृक्षका उच्छेद करनेके लिये कुठाररूपा ॥ ३८ ॥

२६०. **पुण्यसंघा**=पुण्यसमुदायस्या, २६१. **पुण्य-कीर्तिः**=पवित्र कीर्तिवाली अथवा जिनका कीर्तन पुण्य प्रदान करनेवाला है, ऐसी, २६२. **पुण्यदा**=पुण्यदायिनी, २६३. **पुण्यबद्धिनी**=अपने दर्शनसे पुण्यकी बृद्धि करनेवाली, २६४. **मधुवननदी**=मधुवनमें वहनेवाली नदी, २६५. **मुख्या**=एक प्रधान नदी, २६६. **अतुला**=तुलनारहित, २६७. **तालवनसिता**=तालवनमें स्थित रहनेवाली ॥ ३९ ॥

२६८. **कुमुदवननदी**=कुमुदवनका नदी, २६९. **कुञ्जा**=कुञ्जी-मेही, २७०. **कुमुदा**=भगवती दुर्गास्वरूपा, २७१. **अम्बोजवर्द्धिनी**=अपने जलमें कमलोंको वढ़ानेवाली, २७२. **प्लवरूपा**=संसार सागरसे पार होनेके लिये नौजास्वरूपा, २७३. **वेगवनी**=वेगशालिनी, २७४. **सिंहसर्पदिवाहिनी**=अपने जलकी धारामें सिंहों तथा सर्पोंदि जलतुओंको बढ़ा दे जानेवाली ॥ ४० ॥

२७५. **बहुली**=बहुलप्रवाली, २७६. **बहुता**=बहुत देनेवाली, २७७. **बही**=गृण (व्रद्ध) स्वरूपा, २७८. **बहुला**=गोम्बा, २७९. **वनवन्दिना**=वनोंदारा वन्दित, २८०. **राधाकुण्डकाना**=अपनी कलामे राधाकुण्डमें स्थित, २८१. **आराध्या**=आराधनारोगीय, २८२. **कृष्णकुण्ड-जलाश्रिता**=कृष्णकुण्डके जलमें निवास करनेवाली ॥ ४१ ॥

२८३. **ललिताकुण्डग्रामा**=ललिताकुण्डमें व्याप, २८४. **घटा**=घटा-ध्वनिके सदा अनुरागनात्मक शब्द करनेवाली, २८५. **शिशाखा**=विशाखा सलीस्वरूपा, २८६. **कुण्ड-मण्डिता**=कुण्डों (हंडों) से सुगोभित, २८७. **गोविन्द-कुण्डनिलया**=गोविन्दकुण्डमें निवास करनेवाली, २८८. **गोपकुण्डतरंगिणी**=गोपकुण्डमें तरंगित होनेवाली ॥ ४२ ॥

२८९. **श्रीगङ्गा**=श्रीगङ्गास्वरूपा, २९०. **मानसी-गङ्गा**=मानसी-गङ्गास्वरूपा, २९१. **कुसुमाम्बरभाविनी**=पुण्यमय वज्रसे मुशोभित अथवा कुसुम-सरोवरके अवकाशमें प्रकट होनेवाली, २९२. **गोवर्धिनी**=गोवर्धननाथकी शक्ति अथवा गौओंकी बृद्धि करनेवाली, २९३. **गोवनाकृशा**=गोधनसे सम्बन्ध, २९४. **मयूरबरवर्णिणी**=मेरोंके समान मुन्दर वर्णवाली ॥ ४३ ॥

२९५. स्वरसी=सरोबरोंकी जल-तमसि अथवा पारम पक्षियोंकी आश्रयभूता, २९६. नीलकण्ठभासा=नील कण्ठ या मध्यरक्की-सी आभावाली, २९७. कृजट्कोकिल पेतकी=जहाँ कोकिल-कुमारियोंके कल-कृजन होते रहते हैं, ऐसी, २९८. गिरिराजप्रसू=गिरिराज हिमालयके कल्पन्दर्पवर्तमें प्रकट, २९९. भूरि=नहुवैभवशालिनी, ३००. आतपत्रा=तटपर रहनेवाले लोगोंकी धूपके कष्टसे रक्षा करनेवाली, ३०१. आतपत्रिणी=पटरानीके रूपमें छत्र धारण करनेवाली ॥ ४४ ॥

३०२. गोवर्धनाङ्कगा=गोवर्धनगिरिका गोदमं मोदमाना, ३०३. गोदसी=हरतालके समान रंगवाले केसर अदिसे आमोदित, ३०४. दिव्यौषधिनिधि=दिव्य ओषधियोंकी निधि, ३०५. सूतिः=मद्रतिकी राह, ३०६. पारदी=भवनागरसे पार कर देनेवाली दिव्य शक्ति, ३०७. पारदमयी=पारदस्वरूपा, ३०८. नारदी=नार अर्थात् जल प्रदान करनेवाली, ३०९. दारदी=शरत्कालीन शोभालया, ३१०. भूति=भगण-पोषणका साधन बनी हुई ॥ ४५ ॥

३११. श्रीकृष्णचरणाङ्कस्था=भगवान् श्रीकृष्णके नरणोंके अङ्कमें विराजित, ३१२. अकामा=लौकिक कामनाओंमें रहित (अथवा 'कामा' कामस्वरूप), ३१३. कामवनाञ्जिता=कामवनमें पूजित, ३१४. कामाट्की=कामवनरूपा, ३१५. नम्बिनी=सबको आनन्दित करनेवाली, ३१६. नन्दग्राममही=नन्दग्रामस्थित भूमिरूपा, ३१७. धरा=प्रथ्यीरूपा ॥ ४६ ॥

३१८. बृहस्पतिनुच्छित्प्रेता='बृहस्पतु' पर्वतके शिखरकी शोभासे संयुक्त, ३१९. नन्दीस्वरसमन्विता=नन्दगाँवके नन्दीश्वरगिरिमें समन्विता, ३२०. काकली=कोयलोंकी उद्ध-विनिरूपमें स्थित, ३२१. कोकिलमयी=कोयलसे व्याप्त, ३२२. भाष्टीरकृशकौशला=भाष्टीर-वनमें कुशोत्पाटनके कौशलमें युक्त ॥ ४७ ॥

३२३. लोहार्गलप्रदा=श्रीकृष्णके लिये अपने प्रेमके द्वारा लोहार्घी अर्गला लगा देनेवाली, ३२४. कारा=(श्रीकृष्णको अपने प्रेमके द्वारा रोके रखनेके लिये) कारारूपा, ३२५. कामाचारवस्त्रा=केसरके रंगमें रंगे हुए वस्त्र धारण करनेवाली, ३२६. शृता=श्रीकृष्णके द्वारा स्त्रीकृता, ३२७. वर्हिषदी=वर्हिषदीपुरीरूपा, ३२८. शोणपुरी=शोणपुरीरूपा,

ग० सं० अ० १९—

३२९. शूरक्षेशपुराजिका=शूरक्षेशपुरसे भी अधिक माहात्म्यवाली ॥ ४८ ॥

३३०. नानाभरणशोभारूपा=विविध प्रकारके आभूषणोंकी शोभासे भयज्ज, ३३१. नानावर्ण-समन्विता=नाना प्रकारके रंगोंसे युक्त, ३३२. नानानारी-कलम्बारूपा=नाना प्रकारकी लियोंके समुदायसे युक्त, ३३३. नानारक्षमहीरुहा=तटवर्ती विविध रंगके वृक्षोंसे सुशोभित ॥ ४९ ॥

३३४. नानालोकगता=नाना लोकोंमें पहुँची हुई, ३३५. अस्त्रर्चिन्हः=जिनकी तेजोराशि सब और फैली हुई है, ऐसी, ३३६. नानाजलसमन्विता=नाना नदियोंके मिले हुए जलसे युक्त, ३३७. लीरतलम्=लियोंमें रस्तवरूपा, ३३८. रत्ननिलया=रत्ननिर्मित गृहमें निवास करनेवाली, ३३९. ललगा=श्रीकृष्णकामिनी, ३४०. रत्नरजिनी=रत्नोंके द्वारा विविध रंगोंका प्रकाश फैलनेवाली ॥ ५० ॥

३४१. रक्षिणी=रक्षस्तर्लमें रासके रंगमें रँगी रहनेवाली, ३४२. रक्षभूमारूपा=रंगके बाहुल्यसे युक्त, ३४३. रक्षा=हथयुक्ता अथवा रक्षानामी नदीस्वरूपा, ३४४. रक्षमहीरुहा=रंगान वृक्षोंसे युक्त, ३४५. राजविद्या=विद्याओंकी स्वामिनी, ३४६. राजशुद्धा=गुण वस्तुओंमें सबसे श्रेष्ठ, ३४७. जगत्कीर्ति=जगत्के लिये कीर्तिमयी अथवा कीर्तनीया, ३४८. घना=समन प्रेमयुक्ता अथवा श्रीकृष्णके वंशवादनके समय हिमवत् धनीभूत हो जानेवाली, ३४९. अधाना=प्रवहणशीला ॥ ५१ ॥

३५०. विलोलघण्टा=चञ्चल घटाके भमान नाद करनेवाली, ३५१. कृष्णाङ्का=कृष्णके समान अङ्कवाली अथवा श्यामाङ्का, ३५२. कृष्णदेहसमुद्धवा=श्रीकृष्णके शरीरसे उत्पन्न, ३५३. नीलपङ्कजवर्णभा=नील कमलके समान वर्ण एवं आभासे युक्त, ३५४. नीलपङ्कजहारिणी=नील कमलकी माला धारण करनेवाली ॥ ५२ ॥

३५५. नीलाभा=नील कान्तिमती, ३५६. नील-पश्चात्ता=नील कमलोंकी सम्पदसे भरा-पूरी, ३५७. नीलाम्बोदहवालिनी=नील कमलमें निवास करनेवाली, ३५८. नागशङ्की=ताम्बूलसास्वरूपा, ३५९. नागपुरी=नागोंकी नगरी (अर्थात् कालिय आदि नागोंकी निवासभूमि), ३६०. नागवाह्नीवर्णिता=ताम्बूलपद्मसे पूजित ॥ ५३ ॥

३६२. ताम्बूलचर्चिता=ताम्बूलसे रंगित, ३६२.

वर्षा=कस्तुरी-नम्दनादि आलेपमयी, ३६३. मकरस्त्व-
मनोहरा=अग्निदिके मकरन्दसे मनको हर लेनेवाली, ३६४.
सकेशारा=केसरवर्णा, ३६५. केशरिणी=केसर धारण
करनेवाली, ३६६. केशपाशाभिशोभिना=केशपाशद्वारा
मय ओरमे मुशोभिन ॥ ५४ ॥

३६७. कज्जलभा=काजलकी नीं काली आभावाली,
३६८. कज्जलाका=नेत्रोंमें काजलकी शोभामे युक्त अथवा
काजलकी रङ्गी हुई, ३६९. कल्जली=कजलीके समान
काली, ३७०. कलिनाखना=नेत्रोंमें अङ्गन धारण करने-
वाली, ३७१. अलकचरणा=चरणोंमें महावरक रग
लगानेवाली, ३७२. ताम्रा=ताम्रवर्ण, ३७३. लाला=
लालनीया, ३७४. ताम्रीकुताम्बरा=तांबे के समान लाल
रगके बख धारण करनेवाली ॥ ५५ ॥

३७५. सिन्दूरिता=सीमन्तमें सिन्दूर धारण करने-
वाली, ३७६. अलिसवार्णी=जिसकी वाणी किसी दोषमें
लित नहीं होती, ऐसी, ३७७. सुश्री=उसम शोभासे युक्त,
३७८. श्रीखण्डमण्डिता=चन्दनमें अलक्ष्ण, ३७९.
पाटीरपङ्कजसना=चन्दन-पङ्कजमय बख धारण करनेवाली,
३८०. जटामांसी=जटामांसके रूपमें स्थित, ३८१.
झगम्बरा=पुष्पमालाओंको बन्नन्त्यमें धारण करनेवाली ॥ ५६ ॥

३८२. आगरी=आगर (अमावास्या) के समान
(कुण्डा) वर्णवाली, ३८३. अगुरुगन्धाका=अगुरुकी
गन्धमें अभिषिक्त, ३८४. नगराश्चितमारुता=जिसकी इच्छामें
तगरका सुगन्ध समायी हुई है, ऐसा, ३८५. सुगन्धितैल-
चिरा=सुगन्धित तैल (इच्छादि) ५ मनोहर, ३८६.
कुन्तलालिः=जिनकी अल्कोहर (सुगन्धमें आकृष्ट) भ्रम
मँडराने रहते हैं, ऐसी, ३८७. सकुन्तला=कुन्तल शशिम
युक्त ॥ ५७ ॥

३८८. शकुन्तला=शकुन्ता--पाक्षयोका स्वागत करने-
वाली, ३८९. अपांसुला=पतिव्रता, ३९०. पातिव्रत्य
परायणा=पतिव्रताभर्तके पालनमें तस्य, ३९१. सूर्यग्रभा=
सूर्यके समान उद्धारित होनेवाली, ३९२. सूर्यकम्बा=
सूर्यकी पुत्री, ३९३. सूर्यदेहसमुद्रवा=सूर्यके शरीरसं
उत्तमा ॥ ५८ ॥

३९४. कोटिसूर्यभतीकशशा=करोड़ों सूर्योंके समान
तेजस्सिनी, ३९५. सूर्यजा=सूर्यपुत्री, ३९६. सूर्यनन्दिनी=
सूर्योंको आनन्द प्रदान करनेवाली, ३९७. संशा=मध्य-

सानस्त्वा, ३९८. संशासुना-संशाकी पुत्री, ३९९.
स्वेच्छा=स्वाधीना, ४००. असंज्ञा=(प्रियतमके प्रेममें)
वेसुध हो जानेवाली, ४०१. संशा=चेतनास्त्वा, ४०२.
मोदगदायिनी=आनन्द प्रदान करनेवाली ॥ ५९ ॥

४०३. संशापुत्री=संशाकी पुत्री, ४०४. स्फुरच्छाया=
उद्घासित कान्तिवाली, ४०५. तपतीनापकारिणी=
(सौतेली गहिन) तपतीको ताप देनेवाली, ४०६. सावर्ण्या-
नुभवा=श्रीकृष्णके साथ वर्ण-माहृत्यका अनुभव करनेवाली,
४०७. देवी=देवतन्या, ४०८. वडवा=वडवास्त्वा, ४०९.
सौख्यदायिनी=सौख्य प्रदान करनेवाली ॥ ६० ॥

४१०. शनैश्चरानुजा=शनैश्चरका। छोटी गहिन,
४११. कीला=ज्वलामयी, ४१२. चन्द्रवंशविद्वर्दिनी=
चन्द्रवंशकी वृद्धि वर्गनेवाली, ४१३. चन्द्रवंशवधूः=
चन्द्रवंशकी वधू, ४१४. चन्द्रा=आहाद प्रदान करनेवाली,
४१५. चन्द्रावलिसहायिनी=चन्द्रावली सखीकी सहायता
करनेवाली ॥ ६१ ॥

४१६. चन्द्रावती=चन्द्रावतीस्वरूप, ४१७.
चन्द्रलेखा=चन्द्रलेखास्वरूपा, ४१८. चन्द्रकान्ता=
चन्द्रमाके समान कानिनमती, ४१९. अनुगा=(सदा)
प्रियतमका अनुगमन करनेवाली, ४२०. अशुका=
उज्ज्वल-बखधारिणी, ४२१. भैरवी=भैरवप्रिया, ४२२.
पिङ्गलाशङ्की=सूर्यके पारिपाशव, पिङ्गलसे आशङ्कित
होनेवाली, ४२३. लीलावती=भैति भौतन। लीला
करनेवाली, ४२४. आगरीमयी=आगरकी सुगन्धसे
व्यास ॥ ६२ ॥

४२५. धनश्री=धनलक्ष्मी या गणिनाविशेष, ४२६.
देवगान्धारी=गणिनीविशेष, ४२७. स्वर्मणि=स्वर्गलोककी
मणि, ४२८. गुणवर्दिनी=गुणोंकी वृद्धि करनेवाली, ४२९.
व्रजमल्ला=व्रजमण्डलमें मल्लस्त्वा, ४३०. वन्धकारी=
विरोधियोंको वन्धनमें डालनेवाली, ४३१. विचित्र
रूप और गानेमें सम्मन, ४३२. जयकारिणी=विजय
प्राप्त होनेवाली ॥ ६३ ॥

४३३. गान्धारी, ४३४. मञ्जरी, ४३५. ढोडी,
४३६. गुर्जरी, ४३७. आशावरी, ४३८. जया,
४३९. कर्णाटी=गान्धारीसे लेकर कर्णाटीतक विशेष
गणिनियोंके नाम हैं। ये समस्त गणिनियाँ यमुनाजीसे
अभिन्न हैं, ४४०. रागिणी=रागिनीस्वरूपा, ४४१.

गौरी=गौरी नामकी रागिनी, ४४२. वैदादी=रागिनी विशेष अथवा गौरतेजः स्वरूपा श्रीराधाके लिये उद्यानरूपिणी ॥ ६४ ॥

४४४. चतुश्चन्द्रा, ४४५. कलाहेरी, ४४६. नैलझी, ४४७. विजयावती, ४४८. ताली=चतुश्चन्द्रासे लेकर तालीतक राग-रागिनियाँ और तालके नाम हैं, ४४९. तलस्त्वरा=ताली बजाकर स्वर्गकी सूचना देनेवाली, ४५०. गाना=गानस्वरूपा, ४५१. क्रियामात्रप्रकाशिनी=ताल के क्रियामात्रों प्रकाशित करनेवाली ॥ ६५ ॥

४५२. वैशाखी, ४५३. वञ्चला, ४५४. चारु, ४५५. माचारी, ४५६. घूघटी, ४५७. घटा, ४५८. वैरागरी, ४५९. सोरटी, ४६०. इशा, ४६१. कैदारी, ४६२. जलधारिका—वैशाखीसे लेकर जलधारिकापर्यन्त सभी नामविशेष रागिनी आदिके सूचक हैं ॥ ६६ ॥

४६३. कामाकरणी, ४६४. कल्याणी, ४६५. गौड-कल्याणमिथिता, ४६६. रामसंजीविनी, ४६७. हेला, ४६८. मन्दारी, ४६९. कामरूपिणी—ये सब भी विशेष प्रकाशकी रागिनियाँ हैं ॥ ६७ ॥

४७०. सारझी, ४७१. मारुती, ४७२. होडा, ४७३. सागरी, ४७४. कामदादिनी, ४७५. वैभासी, ४७६. मङ्गला—ये भी रागिनियोंके ही नाम हैं । ४७७. चान्द्री=रामपूर्णिमाकी चान्दनीस्वरूपा, ४७८. रास-मण्डलमण्डना=राममण्डलको मण्डित करनेवाली ॥ ६८ ॥

४७९. कामघेनुः=कामघेनुकी भाँति व्यक्तिकी मनो-वाञ्छित कामनाको पूर्ण करनेवाली, ४८०. कामलता=कामना पूर्ण करनेवाली कल्पकास्वरूपा, ४८१. कामदा=अभीष्ट मनोरथ देनेवाली, ४८२. कमलीयका=कमलीया, ४८३. कल्पकृष्णस्थली=कल्पकृष्णकी स्थानभूता, ४८४. स्थूला=स्थूलरूपी, ४८५. कुषा=उसुकास्वरूपिणी, ४८६. सौधनिवासिनी=महलमें रहनेवाली ॥ ६९ ॥

४८७. गोलोकवासिनी=गोलोकधोरमें निवास करनेवाली, ४८८. सुञ्जा=सुन्दर भौंहोवाली, ४८९. यहि-भूत=छड़ी आरण करनेवाली, ४९०. द्वारपालिका=द्वार-रक्षिका, ४९१. शुक्रारथकरी=शुक्रार-साधन-सामग्री सम्बद्धरूपा, ४९२. शुक्रा=मन्मथोद्देश्वरूपा, ४९३.

स्वच्छा=विमलस्वरूपा, ४९४. शश्वेषकारिका=प्रिया विशेषमनके लिये शब्दा सुमित्र उपकारिणी ॥ ७० ॥

४९५. पार्षदा=श्रीराधा-हृषणकी पार्षदस्वरूपा, ४९६. सुसखीसेव्या=सुन्दर सखियोंद्वारा भेवनीया, ४९७. श्री-बृद्धावनपालिका=श्रीबृद्धावनकी रक्षा करनेवाली, ४९८. निकुञ्जनृता=निकुञ्जका पोषण करनेवाली, ४९९. कुञ्जपुआ=कुञ्जसमुदायस्वरूपा, ५००. गुञ्जाभरणभूषिता=गुञ्जाके आभूगांगोंसे विभूषित ॥ ७१ ॥

५०१. निकुञ्जवासिनी=निकुञ्जमें निवास करनेवाली, ५०२. प्रोल्या=प्रवासिनी, ५०३. गोवर्जनतटीभवा=गोवर्जनकी उपत्यकामें मानसी गङ्गाके रूपमें प्रकट, ५०४. विशाखा=विशाखा नन्दीस्वरूपा, ५०५. ललिता=ललिता-सखीस्वरूपा अथवा लालियशालिनी, ५०६. रामा=श्रीकृष्णरमणी, ५०७. नीरुजा=रोगरहित, ५०८. मधु-माधवी=मधुमासकी माधवी लतारूपिणी ॥ ७२ ॥

५०९. एका=अद्वितीया, ५१०. नैकसखी=अनेक तस्वियोवाली, ५११. शुक्ळा=शुद्धस्वरूपा, ५१२. सखी-मध्या=तस्वियोंके मध्यमें विराजमान, ५१३. महामना=विशालहृदया, ५१४. श्रुतिरूपा=गोपीरूपमें श्रुतिस्वरूपा, ५१५. शृष्टिरूपा=शृष्टिस्वरूपा गोपी, ५१६. मैथिला=गोपीरूपमें उत्तम विथिलावासिनी लियो, ५१७. कौशला: लियः=गोपीरूपमें उत्तम कौशलवासिनी लियो ॥ ७३ ॥

५१८. अयोध्यापुरवासिन्यः=गोपीरूपमें उत्तम अयोध्या नगरको लियो, ५१९. यज्ञसीता:=यज्ञसीता स्वरूपा गोपियो, ५२०. पुलिन्धका=गोपीभावको प्राप्त पुलिन्द-कन्याएँ, ५२१. रमाधैकुण्ठवासिन्यः=लक्ष्मीजीके वैकुण्ठमें निवास करनेवाली लियो (जो गोपीरूपको प्राप्त हुई थी), ५२२. इवेतदीपसखीजना:=इवेतदीप-निवासिनी सखियाँ ॥ ७४ ॥

५२३. ऊर्जवैकुण्ठवासिन्यः=ऊर्जवैकुण्ठमें वास करनेवाली सखियो, ५२४. दिव्याजिनपदाभिता=दिव्य अजित पदके आश्रित सखियो, ५२५. श्रीलोकाचल-वासिन्यः=श्रीलोकाचलमें निवास करनेवाली सखियाँ, ५२६. सत्तारोद्धवा: श्रीसख्यः=समृद्धस उत्तम श्री-लक्ष्मीजीकी सखियाँ ॥ ७५ ॥

५२७. विद्या=दिव्यरूपा गोपियाँ, ५२८. अद्विद्या=मानवरूपिणी गोपियाँ, ५२९. विद्याज्ञा=दिव्य अज्ञोवाली,

५३०. द्यामाः=मवन्धापिनी, ५३१. विगुणवृत्तयः=विगुणास्त्रक वृत्तस्वरूपा, ५३२. भूमि-गोप्यः=भूतल्पर उत्तर गोपियो, ५३३. देवतार्याः=देवाङ्गनास्त्रस्वरूपा गोपियो, ५३४. लताः=लतास्पिणी गोपियो, ५३५. ओषधिवीर्यस्थः=ओषधि एवं लता शार्डा आदिस्वरूपा गोपाङ्गनार्देण ॥ ७६ ॥

५३६. जालधर्यः=गोपीभावको प्राप्त जालधर्या स्त्रियो, ५३७. सिंधुसुताः=समुद्रकन्याएँ, ५३८. पृथु-वर्षीष्मनीभवाः=राजा पुरुषकी वर्षीष्मनीपुरीमें होनेवाली स्त्रियों, जो गोपीभावको प्राप्त हुई थीं, ५३९. दिव्याम्बराः=दिव्यवस्थधारिणी गोपियो, ५४०. अप्सररसः=गोपीभाव को प्राप्त अप्सराएँ, ५४१. सौतलाः=सुतललोकवासिनी अमुराङ्गनार्देण, जिन्हें गोपीभावकी प्राप्ति हुई थी, ५४२. नागकन्यकाः=नागकन्यास्त्रस्वरूपा गोपियो ॥ ७७ ॥

५४३. परं धाम=परमधामस्वरूपा, ५४४. परं ब्रह्म=परब्रह्मस्वरूपा, ५४५. पौरुषः=पुरुषार्थस्वरूपा, ५४६. प्रकृतिः=परा=पराप्रकृतिस्वरूपा, ५४७. तटस्थाः=तटस्थाशक्तिस्वरूपा, ५४८. गुणभूः=गुणोंकी जन्मभूमि, ५४९. गीता=गीतके द्वारा जितका यशोगान होता हो, वह, अथवा भगवद्गीतास्त्रस्वरूपा, ५५०. गुणगुणमयी=गुणगुणास्त्रस्वरूपा, ५५१. गुणा-दिव्यगुणात्मका ॥ ८८ ॥

५५२. चिद्घना=चिदानन्दवनस्वरूपा, ५५३. सद-सन्माला=सदगत-समृद्धात्मिका। ५५४. हृषिः=शान स्वरूपा अथवा दशनस्वरूपा ॥ ५५५. दृश्या=दृश्यस्वरूपा, ५५६. गुणाकरी=गुणोंकी निधिस्वरूपा, ५५७. मह-सत्त्वम्=समष्टि बुद्धिस्वरूपा, ५५८. अहकाराः=अहकारस्वरूपा, ५५९. मनः=मनःस्वरूपा, ५६०. बुद्धिः=बुद्धिस्वरूपा, ५६१. प्रचेतना=प्रकृष्ट चेतनास्त्रस्वरूपा ॥ ७९ ॥

५६२. वेतोः=चित्तस्वरूपा, ५६३. बृतिः=व्यवहार-स्वरूपा, ५६४. स्वान्तरात्मा=निजान्तरात्मस्वरूपा, ५६५. चतुर्थी=जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिसे अतीत त्रुटीयास्त्रस्वरूपा, ५६६. चतुरसरा=प्रणवके चार अक्षर—अकार, उकार, मकार और अर्धमात्रा—ये जिसके स्वरूप हैं, वह, ५६७. चतुर्भूषा=बाहुदेव, गवर्णण, प्रशुभूष और अनिष्ट—ये चार व्यूह जिसके स्वरूप हैं, वह, ५६८. चतुर्मुखी=एकपदी, द्विपदी, त्रिपदी और चतुर्पदी—इन चार मूर्तियोंवाली गायत्री अथवा चतुर्भूषस्वरूपा,

५६९. व्योमः=आकाशस्वरूपा, ५७०. वायुः=वायुस्वरूपा, ५७१. अहः=दृश्य प्रपञ्चके स्वप्नम् स्थित, ५७२. जलम्=जलस्वरूपा ॥ ८० ॥

५७३. मही=पृथ्वीस्वरूपा, ५७४. शान्तः=शान्तस्वरूपा, ५७५. रसः=रसस्वरूपा, ५७६. गन्धः=रान्धस्वरूपा, ५७७. स्पृशः=स्पृशस्वरूपा, ५७८. रूपम्=रूपस्वरूपा, ५७९. अनेकधा=नाना स्पृशार्ला, ५८०. कर्मनिद्रयम्=कर्मनिद्रयस्वरूपा, ५८१. कर्ममयी=कर्मस्वरूपा, ५८२. शानम्=शानमयी, ५८३. शानेन्द्रियम्=शानेन्द्रियस्वरूपा, ५८४. द्विधा-प्रकृति-पुरुषस्वरूप दो शरीरवाली अथवा शानेन्द्रिय कर्मनिद्रय-भेदमें द्विविध हन्दियस्वरूपा ॥ ८१ ॥

५८५. विधा=क्षम, अप्तर और पुरुषोत्तम—त्रिविध हृपवाली अथवा अथात्म, अधिभूत, अधिदैव भेदमें विधिस्वरूपाली, ५८६. अधिभूतम्=भौतिक सुष्ठिमे व्याप, ५८७. अध्यात्मम्=अध्यात्मस्वरूपा, ५८८. अधिदैवम्=अधिदैविकस्वरूपाली, ५८९. अधिष्ठितम्=सर्वरूपोंमें अधिष्ठित, ५९०. शानशक्तिः=शानशक्ति, ५९१. क्रियाशक्तिः=क्रियाशक्ति, ५९२. सर्वदेवाधि-देवता=समस्त देवताओंकी अधिदेवी ॥ ८२ ॥

५९३. तत्त्वसंधा=तत्त्वमृहस्त्रूपा, ५९४. विराण-मूर्तिः=विराट्स्वरूपा, ५९५. धारणा=धारणाशक्ति, ५९६. धारणामयी=धारणाशक्तिस्वरूपा, ५९७. अतिः=वेदस्वरूपा, ५९८. स्मृतिः=धर्मशास्त्रस्वरूपा, ५९९. वेदस्मृतिः=वेदस्मिन्न, ६००. संहिता=संहितास्त्रस्वरूपा, ६०१. गर्गसंहिता=गर्गसंहितास्वरूपा ॥ ८३ ॥

६०२. पाराशारी=पाराशारसंहिता (विष्णुपुराण)-स्वरूपा, ६०३. स्तुष्टिः=स्तुष्टिस्वरूपा अथवा पाराशारी-स्वरूपा, ६०४. पारहंसी=परमहंस-विद्यास्वरूपा अथवा परमहंससंहिता, ६०५. विधातृकः=विधातृस्वरूपा अथवा ब्रह्मसंहिता, ६०६. यात्रवद्वकी=यात्रवद्वक्यस्मृतिस्वरूपा, ६०७. भगवान्ती=भगवान्तीकी शक्ति अथवा वैष्णवागमस्वरूपा, ६०८. श्रीमद्भागवतार्चिता=श्रीमद्भागवतके द्वारा पूजित—प्रशस्ति ॥ ८४ ॥

६०९. रसायणमयी=वात्सीकि-रसायण अथवा प्राचेतन-संहिता अथवा रामनवितस्वरूपा, ६१०. रम्या=रम्याशी,

६११. पुराणपुद्दलप्रिया=पुराणपुरुष श्रीकृष्णकी प्रिया,
६१२. पुराणमूर्ति=पुराणस्वरूपा, ६१३. पुण्यहारा=पुण्यहारीवाली, ६१४. शास्त्रमूर्ति=शास्त्रस्वरूपा, ६१५. महोदाहता=परम उद्गत ॥ ८५ ॥

६१६. भगवता=बुद्धिरूपा, ६१७. धिषणा=प्रशास्त्रपा,
६१८. बुद्धि=मेधारूपा, ६१९. वाणी=वाग्देवता, ६२०. धी=बुद्धिरूपा, ६२१. शोभुषी=बुद्धिरूपा, ६२२. मनि=निष्ठयरूपा, ६२३. गायत्री=गायत्रीमन्त्रस्वरूपा, ६२४. वेदसाधिकी=वेदोक्त गायत्री, ६२५. ब्रह्माणी=ब्रह्मशक्ति,
६२६. ब्रह्मलक्षणा=वेद-मन्त्रोदारा लक्षित होनेवाली ॥ ८६ ॥

६२७. तुर्गा=हुर्गम्या अथवा हुर्गादेवी, ६२८. अर्यणी=नगस्त्री पार्वती, ६२९. सती=दक्षकन्या सती, ६३०. सत्या=नत्यस्त्ररूपा अथवा सत्यभामा, ६३१. पार्वती=गिरिराज हिमालयकी पुत्री, ६३२. चण्डिका=असुरसंहारिणी शक्ति,
६३३. अस्त्रिका=जगन्माता, ६३४. आर्या=त्रेषुद्वरूपा, ६३५. दाक्षायणी=दक्षप्रजापतिकी कन्या, ६३६. दाक्षी=दक्षपुत्री, ६३७. दक्षयज्ञविधातिनी=दक्ष-यज्ञविवर्वसमें करणभूता ॥ ८७ ॥

६३८. पुलोमजा=पुलोम दानवकी पुत्री शर्चास्त्ररूपा,
६३९. शक्ती=इन्द्रपत्नी, ६४०. इन्द्राणी=जनी, ६४१. देवी=प्रकाशमाना, ६४२. देवधरार्पिता=देवेश्वर इन्द्रको अर्पित, ६४३. वायुना धारिणी=वायुके डारा धारण करनेवाली अथवा वयुना-कानस्वरूपा और धारिणी=वारणशक्ति, ६४४. धन्या=धन्यवादके योग्य, ६४५. वायवी=वायुशक्ति, ६४६. वायुवेगना=वायुवेगमें नलनेवाली ॥ ८८ ॥

६४७. यमानुजा=यमकी छोटी बहिन, ६४८. संयमनी=संयमनशक्ति अथवा संयमनीपुरी, ६४९. संशा=सूर्यप्रिया संशास्त्ररूपा, ६५०. छाया=संक्षकी छायाभूता सर्वाणी,
६५१. स्तुत्रस्तुति=उद्दीप कान्तिवाली, ६५२. रत्नवेदी=रत्नवेदिकारूपा, ६५३. रत्नसुन्दा=रत्नसमूहरूपा, ६५४. तारा=तारामण्डलरूपा, ६५५. तरणिमण्डला=सूर्यमण्डल स्वरूपा ॥ ८९ ॥

६५६. दक्षि=प्रभा, ६५७. शास्त्रिः=शास्त्रिरूपा,
६५८. शमा=तिलिङ्गामयी अथवा पृथ्वी, ६५९. शोभा=छविमयी, ६६०. शया=कशणामयी, ६६१. शक्षा=कुशल या चतुरा, ६६२. शुष्टि=कान्तिमयी, ६६३. त्रया=कृष्णा,

६६४. तत्त्वादिः=ताली बजानेसे तुष्ट होनेवाली, ६६५. विभा=प्रभा, ६६६. पुष्टि=पुष्टिरूपा, ६६७. संतुष्टिः=संतोषमयी, ६६८. तुष्टभावना=तुष्ट भावनावाली ॥ ९० ॥

६६९. वत्तुमुजा=चार भुजाएँ धारण करनेवाली (लक्ष्मी), ६७०. चाहनेजा=सुन्दर नेत्रवाली, ६७१. शिभुजा=दो बाहुवाली (कालिन्दी या श्रीराधा), ६७२. अच्छभुजा=आठ भुजावाली (भरतवती), ६७३. अबला=बलका प्रदर्शन न करनेवाली, ६७४. शास्त्रहस्ता=हाथमें शङ्ख धारण करनेवाली (वैष्णवी मूर्ति), ६७५. पश्चहस्ता=हाथमें कमल धारण करनेवाली (लक्ष्मी), ६७६. चक्रहस्ता=हाथमें चक्र धारण करनेवाली वैष्णवी मूर्ति, ६७७. गदाधरा=गदा धारण करनेवाली ॥ ९१ ॥

६७८. निष्ठाधारिणी=तरक्ष स धारण करनेवाली, ६७९. वर्मलखणाणी=हाथमें ढाल-तलवार लेनेवाली, ६८०. धनुर्धरा=धनुष धारण करनेवाली, ६८१. धनुष्टकारिणी=(दुर्गाके रूपमें) धनुषका टंकार करनेवाली, ६८२. योद्धी=युद्ध करनेवाली, ६८३. वैत्योद्धृद-विनाशिनी=है त्यसेनात्रे उद्धर्य योद्धा ओंका विनाश करनेवाली ॥ ९२ ॥

६८४. रथस्था=रथपर बैठनेवाली, ६८५. गरुडा-रुदा=गरुडपर आरुद होनेवाली, ६८६. श्रीकृष्ण-हृदयस्थिता=श्रीकृष्णके हृदयरूपी मिहाभनपर आसीन, ६८७. वंदीधरा=हृषीरूपसे वंशा धारण करनेवाली, ६८८. कृष्णवेषा=श्रीकृष्णका वेष धारण करनेवाली, ६८९. स्त्रिविणी=पुर्णोंके हारोंमें अलकृत, ६९०. वनमालिनी=वनमाला धारण करनेवाली ॥ ९३ ॥

६९१. किरीटधारिणी=महाकपर किरीट धारण करनेवाली, ६९२. यामा=यानस्वरूपा, ६९३. मन्दमन्द-गतिः=भीरे-भीरे चलनेवाली, ६९४. गतिः=सद्रतिस्वरूपा अथवा गमनशक्तिरूपा, ६९५. चन्द्रकेतिपतीकाशा=केटि-चन्द्रतुल्या, ६९६. तन्धी=कृदाङ्गी, ६९७. कोमल-विग्रहा=मदुल शरीरवाली ॥ ९४ ॥

६९८. भैम्यी=भीमपुत्री रकिमणीरूपा, ६९९. भीमसुता=राजा भीमककी पुत्री रकिमणी, ७००. अभीमा=अभयंकर लौम्यरूपवाली, ७०१. रुकिमणी=श्रीकृष्णकी प्रसुत पठरानी, ७०२. रुकमणिणी=सुनहुले रूपवाली, ७०३. सत्यभामा=सत्रजितकी पुत्री, श्रीकृष्ण

प्रिया, ७०४. आम्बवती=आम्बवानद्वारा पोक्षित एवं उन्हींसे श्रास दिव्यरूपा पटरानी, ७०५. सत्या=‘सत्या’ मामवाली श्रीकृष्णकी पटरानी, ७०६. भद्रा=‘भद्रा’ नाम वाली पटरानी, ७०७. सुखसिंगा=परम उदारस्वरूपा श्रीकृष्णकी पटरानी ॥ ९५ ॥

७०८. मिश्रविन्दा=‘मिश्रविन्दा’ नोमवाली पटरानी, ७०९. सत्त्वी=राधारानीकी सत्ती, ७१०. वृन्दा=वृन्दावनकी अभिदेवी, ७११. वृन्दारथ्यध्वजोर्ध्वंगा=वृन्दावनका ध्वजस्त्रूपा—ऊर्ध्वंगमिनी, ७१२. शृङ्खारकारिणी=शृङ्खार करनेवाली, ७१३. शृङ्खा=शृङ्खस्वरूपा, ७१४. शृङ्खभू=शिखरभूमि, ७१५. शृङ्खदा=शिखरपर स्थान देनेवाली, ७१६. लगा=आकाशाचारिणी ॥ ९६ ॥

७१७. नितिका=क्षमा, ७१८. ईशा=ईक्षणस्वरूपा, ७१९. स्मृति=स्मरण-शक्ति, ७२०. स्पर्धा=स्पर्धास्वरूपा, ७२१. स्पृहा=अभिलाषा, ७२२. श्रद्धा=आस्तिक्य-बुद्धि स्वरूपा, ७२३. स्वनिर्वृत्ति=निजानन्दस्वरूपा, ७२४. ईशा=ईशनकथा, ७२५. लृणा=कामना, ७२६. भिका=भेदस्वरूपा, ७२७. प्रतिः=प्रेम या प्रसन्नता, ७२८. हिंसा=हिंसावृत्तिस्वरूपा, ७२९. याच्छा=याचनास्वरूपा, ७३०. क्षमा=कलनित्यस्वरूपा अथवा अक्लमा—कलमहिता, ७३१. कृषि=कृषि (वातीका एक गेद) ॥ ९७ ॥

७३२. आशा=आशास्त्रिणी, ७३३. निद्रा=निद्राकी अधिष्ठात्री या निद्रास्वरूपा, ७३४. योगनिद्रा=योगनिद्रा, जिसका आश्रय लेकर भगवान् विष्णु नार मामतक शयन करते हैं, ७३५. योगिनी=योगिनीस्त्री, ७३६. योगदा=योगदायिनी, ७३७. युगा=युगस्वरूपा, ७३८. निष्ठा=परमगति, आश्रय-शक्ति अथवा आधारस्वरूपा, ७३९. प्रनिष्ठा=प्रतिष्ठास्वरूपा, आश्रय अथवा अवलम्ब, ७४०. शमिति=शमनस्वरूपा, ७४१. सत्त्वप्रकृति=सत्त्वगुणमयी प्रकृतिवाली, ७४२. उत्तमा=उत्तमस्वरूपा ॥ ९८ ॥

७४३. तमःप्रकृतिपुर्मर्णी=तमोगुणमय स्वभावको दुःखसे सहन करनेवाली, ७४४. रजःप्रकृतिः=रजोगुण प्रधान प्रकृतिस्वरूपा, ७४५. आनन्दि=स्व ओरेसे नयन शीला, ७४६. किया=कियाशक्ति, ७४७. अक्षिया=निष्किय, ७४८. कृति=प्रथलस्वरूपा, ७४९. ग्लानि=ग्लानिरूपिणी, ७५०. साप्त्विकी=सत्त्वग्राहना शक्ति, ७५१. आप्यास्त्रिमिती=आप्यास्त्रिमि शक्ति, ७५२. वृषा=वृषस्वरूपा ॥ ९९ ॥

७५३. सेवा=सेवास्त्रिणी, ७५४. शिखा=नदियोंकी शिखाभूता, ७५५. मणि=मणि-स्वरूपा, ७५६. वृद्धि=अभ्युदयकी हेतुभूता, ७५७. आहूति=आहूत-स्वरूपा, ७५८. पिङ्गलोद्धवा=पिङ्गल नाड़ीसे उत्पन्न, ७५९. नागभाषा=नागोंका भाषणको जाननेवाली अथवा नागोंमें भाषण करनेवाली, ७६०. नागभूषा=नागोंसे भाषित, ७६१. नागरी=नागरी अर्थात् चतुरा, ७६२. नगरी=नगरस्वरूपा, ७६३. नगा=वृक्ष अथवा गिरिस्त्रूपा ॥ १०० ॥

७६४. नौः=नाव, ७६५. नौका=नाव, ७६६. भव-नौः=संसारसागरमें पार उत्तरनेवाली नौका, ७६७. भाव्या=मनमें भावना (व्यान) करनेयोग्य, ७६८. भवसागर-सेतुका=भवमागरगे यार जानेके लिये भतुरूपा, ७६९. मनोमयी=मनःस्वरूपा, ७७०. द्वारमयी=काष्ठकी बनी, ७७१. सैकती=सिकतासं पूँग, ७७२. मिक्कनामयी=नालुकासे परिपूर्ण या बालुकामयी ॥ १०१ ॥

७७३. लेख्या=चित्रमया, ७७४. लेप्या=मिट्टीकी प्रतिमा, ७७५. मणिमर्या=मणिनिर्मित प्रतिमा, ७७६. प्रनिमा हंमनिर्मिना-सोनेकी बर्ना प्रतिमा, ७७७. शौली=शिलागार्भी प्रतिमा, ७७८. शैलभवा=पर्वतमें प्रकट प्रतिमा, ७७९. शीला=शीलयुक्ता अथवा शीलस्वरूपा, ७८०. शीकराभा=जलकणों अथवा जलकी कुहारोंमें शोभित, ७८१. चला=चलस्वरूपा, ७८२. अचला=अचलस्वरूपा ॥ १०२ ॥

७८३. अस्थिना=अस्थिर, ७८४. सुस्थिना=सुस्थिर, ७८५. तूली=तूलिका, ७८६. वैदिकी=वैदोक पद्धति, ७८७. तान्त्रिकी=तन्त्रोत्त पद्धति, ७८८. विधि=विधि वाक्यस्वरूपा, ७८९. संध्या=रात और दिनकी संधिवेला, ७९०. संध्यावसना=सध्याकालिक वादल या आकाश-की भाति लाल वस्त्रवाला, ७९१. वेदसंधि=वेदमन्त्रोंमें संधि (संहिता) स्वरूपा, ७९२. सुधामयी=अमृत मयी ॥ १०३ ॥

७९३. सायंतनी=सायकालिकी शोभा, ७९४. शिखा=वालामयी, ७९५. अवेध्या=अभेदनीया, ७९६. सूक्ष्मा=सूक्ष्मस्वरूपा, ७९७. जीवकला=जीवस्वरूप भगवत्-कला, ७९८. कृति=कृतिस्त्री, ७९९. आत्मभूता=सर्वकी आत्मस्वरूपा, ८००. भाविना=व्यान या भावनाकी विषयभूता, ८०१. अण्वी=सूक्ष्मस्त्री, ८०२. प्रह्ली=

विनयशीला, ८०३. कमलकर्णिका=हृदय-कमलका
कर्णिका में खेया ॥ १०४ ॥

८०४. नीराजनी=आरती, ८०५. महाविद्या=तत्त्व-
साक्षात्कार करनेवाली महावाक्यबोधास्तिका महाविद्या, अथवा
महाविद्यास्तमा महाविद्या, ८०६. कंदली=सुखकी अकुरस्वरूपा,
८०७. कार्यसाधनी=भक्तजनोंके अभीष्ट कार्यको सिद्ध
करनेवाली, ८०८. पूजा=अर्चना, ८०९. प्रतिष्ठा=स्थापना,
८१०. विपुला=विपुलस्वरूपा, ८११. पुनस्ती=पवित्र
करनेवाला, ८१२. पारलौकिकी=परलोकके लिये हित-
कारिणी ॥ १०५ ॥

८१३. शुक्लशुक्लि=वंत सार्पा या सिंहुहीकी
उपलब्धिका स्थान, ८१४. मैतिका=मुक्तास्वरूपा,
८१५. प्रतीति=प्रतीतिस्वरूपा, ८१६. परमेश्वरी=
परमेश्वरप्रिया, ८१७. विरजा=निर्मला, ८१८. उर्जिक=
वैदिक छन्द-विशेष, ८१९. विराहू=विराटस्त्वा, ८२०.
वेणी=त्रिवेणीरूपा, ८२१. वेणुका=वंशीरूपिणी,
८२२. वेणुनादिनी=वेणुनाद करनेवाली—वॉसुरीकी तान
लेनेवाली ॥ १०६ ॥

८२३. आवर्तिनी=भेदभावसे युक्ता, ८२४. वार्तिकदा=
वार्तिकदायिनी, ८२५. वाती=कृषि, गोरक्षा और
वाणिज्यके भेदसे त्रिविध वाती, ८२६. वृत्ति=जीविकारूपा,
८२७. विमानगा=विमानपर यात्रा करनेवाली, ८२८.
रासाञ्चया=राजनित मुख्यसे सम्बन्ध, ८२९. रासिनी=
रासपरायणा, ८३०. रासा=रासस्वरूपा, ८३१=रास-
मण्डलवर्तिनी=रासमण्डलमें वर्तमान ॥ १०७ ॥

८३२. गोपगोपीश्वरी=गोपों तथा गोपाङ्गनाओंकी
आराध्या ईश्वरी, ८३३. गोपी=गोपीरूपा, ८३४. गोपी-
गोपालविन्दिता=गोपियों और ग्वालोंसे बन्दित, ८३५.
गोचारिणी=अपने तटपर गांओंको चरनेके लिये स्थान
और सुविधा देनेवाली, ८३६. गोपकम्भी=गोपोंकी नदी,
८३७. गोपानन्दप्रदायिनी=गोपोंको आनन्द प्रदान
करनेवाली ॥ १०८ ॥

८३८. पश्चात्या=पशुओंके लिये हितकर भाव प्रदान
करनेवाली, ८३९. गोपसेव्या=गोपोंके द्वारा सेवनीया,
८४०. कोटिशो गोगण्यावृता=कठोरोंके गौओंके समुदायसे
पिरी हुई, ८४१. गोपानुगा=गोपगण जिनका अनुगमन
करते हैं या गोप जिनके लेकक हैं, ऐसी, ८४२. गोपकर्ती=

गोपोंसे युक्त, ८४३. गोविष्ट्यपात्रुका=गोविन्द-करणोंकी
पात्रुकाम्बल्पा ॥ १०९ ॥

८४४. वृषभानुसुता=वृषभानुनन्दिनी राधा
अभिज्ञ, ८४५. राधा=श्रीकृष्णकी आराध्या राधास्वरूपा,
८४६. श्रीकृष्णवशकारिणी=श्रीकृष्णको वशमें कर लेनेवाली,
८४७. कृष्णग्राणाधिका=श्रीकृष्णको ग्राणोंसे भी बदूर
प्रिय, ८४८. शार्वद्वात्सिका=निश्चरसिका, ८४९. रसिके-
शरीरी=रसिकोंकी ईश्वरी ॥ ११० ॥

८५०. अवटोदा=अवटोदा नामकी नदी, ८५१.
ताज्जपर्णी=ताज्जपर्णी नामकी नदी, ८५२. कृतमाला=
इसी नामवाली नदी, ८५३. विहायसी=विहायसी नदी,
८५४. कृष्णा=कृष्णा नदी, ८५५. वेणा=वेणा नामकी
नदी, ८५६. भीमरथी=भीमा नामकी नदी, ८५७. तापी=तापी नामकी नदी, ८५८. रेवा=नर्मदा, ८५९.
महापगा=विशालूनदी, अथवा महानदी नामकी नदी ॥ १११ ॥

८६०. वैयासकी=वैयासकी (व्यास) नदी, ८६१.
कावेरी=कावेरी नदी, ८६२. तुङ्गभद्रा=तुङ्गभद्रा
नामकी नदी, ८६३. सरस्वती=सरस्वती नदी, ८६४.
चन्द्रभागा=चिनाव नदी, ८६५. वेत्रवती=वेत्रवा
नदी, ८६६. शृणुकुल्या=इसी नामकी नदी, ८६७.
ककुदमिनी=ककुदमिनी नदी ॥ ११२ ॥

८६८. गौतमी=गोदावरी, ८६९. कौशिकी=
कोसी नदी, ८७०. सिन्धु=सिन्धु नदी, ८७१. बाणगङ्गा=
अर्जुनके बाणसे प्रकट हुई पातालगङ्गा, ८७२. अति-
सिद्धिद्वा=अत्यन्त मिदि प्रदान करनेवाली, ८७३.
गोदावरी=गोतमी, ८७४. रस्तमाला=रस्तमाला नदी,
८७५. गङ्गा=गङ्गा नदी, ८७६. मन्दाकिनी=आकाश-
गङ्गा, ८७७. बला=बला नामकी नदी ॥ ११३ ॥

८७८. स्वर्णदी=स्वर्णलोककी नदी गङ्गा, ८७९.
जाह्नवी=जह्नुनन्दिनी गङ्गा, ८८०. वेला=वेला नदी,
८८१. वैष्णवी=विष्णुकुल्या, ८८२. मङ्गलालया=
मङ्गलका आवास, ८८३. बाला=बाला नदी, ८८४.
विष्णुपदी=गङ्गा, ८८५. सिन्धुसागरसंगता=
गङ्गासागर-संगम-स्वरूपा ॥ ११४ ॥

८८६. गङ्गासागरद्वौभाग्या=गङ्गा और सागरके
संगमकी द्वौधासे सम्पन्न, ८८७. सामुद्री=समुद्रप्रिया, ८८८.
रस्तदा=रस्त प्रदान करनेवाली, ८८९. तुमी=नदीरूपा,

८९०. भासीरशी=राजा भगवन्थके हारा लायी गयी गङ्गा,
८९१. सत्तुलीमूः=गङ्गाके प्राकटकी भूमि, ८९२. अनीमनमनस्तुलामूः=अनीमनके चरणोंमें च्युत हुई ॥ ११५ ॥

८९३. लक्ष्मी=८९३मीस्वरूपा, ८९४. रमा=पशा,
८९५. रामधीया=रमणीयतामें युक्त, ८९६. भासीबी=भूषुली, ८९७. विष्णुवस्तुभा=भगवान् विष्णुकी प्रिया,
८९८. सीता=नीतास्वरूपा, ८९९. अर्चि=अग्रिज्जाल
विधिं, ९००. जानकी=जनकनन्दिनी, ९०१. माता=
जगजननी, ९०२. कलहरहिता=निकलहा, ९०३.
कहा=भगवत्कलास्वरूपा ॥ ११६ ॥

९०४. कृष्णपादाद्वजसम्भूता=भीकृष्णके चरणार
विन्दोंमें प्रकट हुई, ९०५. सर्वी=सर्वस्वरूपा,
९०६. त्रिएवगामिनी=त्रिपथगा गङ्गा, ९०७. धरा=धरणीस्वरूपा, ९०८. विश्वस्मरा=विश्वका भरण-पोषण
करनेवाली, ९०९. अनम्ता=अनतरहिता, ९१०. भूमि=आधारभूमिस्वरूपा, ९११. धात्री=धाय, ९१२.
क्षमामयी=क्षमास्वरूपा ॥ ११७ ॥

९१३. स्थिरा=स्थिरस्वरूपा, ९१४. धरिजी=धारण
करनेवाली, ९१५. धरणी=स्त्रीकधारणी पृथ्वी,
९१६. उर्ध्वी=भूमि, ९१७. दोषकणास्थिता=दोषनामके
फलोंपर रहनेवाली, ९१८. अयोध्या=जिल्हे के साथ
युद्ध किया जासके, ऐसी अजेय पुरी, ९१९. राधापुरी=राधेन्द्रकी नगरी, ९२०. कौशिकी=कौशिकवशजा,
९२१. रघुवंशजा=रघुकुलमें उत्पन्न होनेवाली ॥ ११८ ॥

९२२. मधुरा=मधुरा नगरी, ९२३. मायुरी=मधुरा
मण्डलमें प्रकट, ९२४. पश्चा=मांसस्वरूपा, ९२५. यात्री=यकुबंदियोंकी नगरी, ९२६. ध्रुवपूजिना=ध्रुवसे प्रशंसित,
९२७. मयात्मा=मयासुरको आयु प्रदान करनेवाली,
९२८. विश्वस्त्रिलोका=विश्वके भमान नील रंगके
जलवाली, ९२९. गङ्गाधारचिनिर्गता=हरहारसं निकली
हुई ॥ ११९ ॥

९३०. कुशावर्तमयी=कुशावर्तनामक तीर्थस्वरूपा,
९३१. भौत्या=भौत्यसे मुक्त, ९३२. ध्रुवमण्डलमध्यगा=ध्रुवमण्डलके धीमते निकली हुई, ९३३. कवाही=वाराणसी,
९३४. हितमुरी=हितमी नगरी, ९३५. दोषा=दोषस्वरूपा,
९३६. लिङ्गामा=लिङ्गस्वरूपा, ९३७. वाराणसी=कवाही,
९३८. विष्णा=विष्णुस्वरूपा ॥ १२० ॥

९३९. अवनिका=मालय प्रदेशकी राजधानी और
महाकालकी नगरी, ९४०. देवपुरी=देवनगरी, ९४१.
प्रोज्ज्वला=प्रकृष्ट शोभामें सम्बन्ध, ९४२. उज्जयिनी=उज्जैन, ९४३. जिला=जिलस्वरूपा, ९४४. द्वारावती=द्वारकापुरी, ९४५. द्वारकामा=द्वारकी कामनावाली,
९४६. कुशामूता=कुशके प्रकट होनेका स्थान, ९४७.
कुशास्थली=कुशांकी उत्पत्ति-स्थली द्वारका ॥ १२१ ॥

९४८. महापुरी=महानगरी, ९४९. सप्तपुरी=सप्तपुरीस्वरूपा, ९५०. नन्दिग्रामस्थलस्थिता=नन्दिग्राम
के स्थलमें स्थित सरयु अथवा यमुना, ९५१. शालग्राम
शिलादित्या=शालग्रामशिलाकी उत्पत्तिका स्थान गण्डकी
नदी, ९५२. सम्भलप्राममध्यगा=सम्भल ग्रामके
मध्यमें गयी हुई ॥ १२२ ॥

९५३. वंशगोपालिनी=वंशगोपाल-मन्त्रसे युन,
९५४. क्षिप्ता=क्षिप्तस्वरूपा, ९५५. हरिमन्दिरवर्तिनी=भगवान्के
मन्दिरमें विश्वमान, ९५६. वर्ष्णिमती=वर्ष्णिमती नामकी नगरी, ९५७. हस्तिपुरी=हस्तिनापुर
नगरी, ९५८. शकप्रस्थनिधासिनी=इन्द्रप्रस्थ (देहली)
में निवास करनेवाली ॥ १२३ ॥

९५९. दाढ़िमी=दाढ़िमफलस्वरूपा, ९६०.
सैन्धवी=सैन्धुप्रिया, ९६१. जमूः=जम्बूनदीस्वरूपा,
९६२. पौष्करी=पौष्करदीपमें सम्बन्ध रखनेवाली,
९६३. पुष्करप्रस्तुः=पुष्करकी उत्पत्तिका स्थान, ९६४.
उत्पलावर्तगमना=उत्पलावर्त तीर्थमें जानेवाली, ९६५.
नैमिती=नैमितारण्यवानिनी ॥ १२४ ॥

९६६. अनिमियादत्ता=देवपूजिता, ९६७. कुरुजाङ्गल-
भूः=कुरुजाङ्गलदेशमें प्रकट, ९६८. काली=कृष्णवार्णी अथवा
काली गङ्गा, ९६९. हैमवती=हिमालयसे उत्पन्न, ९७०.
आर्द्री=आर्द्रमें प्रकट, ९७१. कुधा=विदुषी, ९७२.
शूकरक्षेत्रिविदिता=शूकरक्षेत्रमें प्रसिद्ध, ९७३. इयेन
वाराहधारिता=इयेनवाराहके द्वारा धारित ॥ १२५ ॥

९७४. सर्वतीर्थमयी=सर्वतीर्थस्वरूपा, ९७५. तीर्था=
तीर्थभूता, ९७६. तीर्थानां तीर्थकारिणी=तीर्थोंको तीर्थ
यानेवाली, ९७७. हारिणी सर्वदोषाणाम्=सब दोषोंको हर
लेनेवाली, ९७८. दायिनी सर्वसम्पदाम्=सब सम्पत्तियोंको
देनेवाली ॥ १२६ ॥

९७९. वर्षिनी तेजसाम्=देखने वाली, ९८०.
साक्षात् प्रत्यक्ष प्रकट, ९८१. भर्त्यात्मिकृतनी=माता के

गर्भमें बाल करनेके कष्टका उच्छेद करनेवाली, ९८६. गोलोक-धार्म=गोलोककी प्रकाशस्त्रा, ९८३. धनिजी=धनसे सम्पत्ति, ९८४. निकुञ्जनिजमञ्जरी=निकुञ्जमें अपनी मञ्जरियोंके साथ रहनेवाली ॥ १२७ ॥

९८५. सर्वोत्तमा=सबसे उत्तम, ९८६. सर्वपुण्या=सर्वाधिक पुण्यजालिनी, ९८७. सर्वसौन्दर्यशृङ्खला=सर्वसौन्दरताको बाँध रखनेवाली, ९८८. सर्वतीर्थोपरिगता=सब तीर्थोंके ऊपर पहुँची हुई, ९८९. सर्वतीर्थाधिदेवता=सर्वांगी तीर्थोंकी अधिदेवी ॥ १२८ ॥

कालिन्दीके सहस्रनामका वर्णन कीर्ति देनेवाला तथा उत्तम कामपूरक है। यह बड़े-बड़े पापोंको इह लेता, पुण्य देता और आयुको बढ़ानेवाला श्रेष्ठ साधन है। रातमें एक बार इसका पाठ कर ले तो चोरोंमें भय नहीं होता। रास्तेमें दो बार पढ़ ले तो डाकू और लुटेरोंसे कहीं भय नहीं होता। द्विजको न्याहिये कि वह द्वितीयसे पूर्णिमातक प्रतिदिन कालिन्दी देवीका ध्यान करके भक्ति-भावसे दस बार इस सहस्रनामका पाठ करें; ऐसा करनेसे यदि रोगी हो तो रोगसे छूट जाता है, कैदमें पढ़ा हो तो बहाँके बन्धनसे मुक्त हो जाता है, गर्भिणी नारी हो तो वह पुत्र पैदा करती है और विद्यार्थी हो तो वह परिष्ठित होता है। मोहन, सम्भन, वशीकरण, उच्चाटन, मारण, शोषण,

हृष्ण, उमाहन, तापन, निषिद्धर्ण आदि जौ-जौ वस्तु मनुष्य मनमें चाहता है, उस-उसको वह ब्रात कर लेता है ॥ १२९—१३४ ॥

इसके पाठसे ब्राह्मण ब्रह्मतेजसे सम्पत्ति होता है, क्षत्रिय पृथ्वीका आधिपत्य प्राप्त करता है, वैश्य खजानेका मालिक होता है और शूद्र इसको सुनकर निर्मल—शुद्ध हो जाता है ॥ १३५ ॥

जो पूजाकालमें प्रतिदिन भक्तिभावसे इसका पाठ करता है, वह जल्दे अलिंग रहनेवाले कमलपत्रकी भाँति पापोंसे कभी लिप नहीं होता ॥ १३६ ॥

जो लोग एक वर्षतक पटल और पद्धतिकी विधिका पालन करके प्रतिदिन इस सहस्रनामका सौ बार पाठ करते हैं और उसके बाद सोत्र और कवच पढ़ते हैं, वे सातों द्वीपोंसे युक्त पृथिवीका राज्य प्राप्त कर लेंगे, इसमें संशय नहीं है। जो यमुनाजीमें भक्तिभाव रखकर निष्कामभावसे इसका पाठ करता है, वह पुण्यात्मा धर्म-अर्थ-काम—इस श्रिवर्गको पाकर इस जीवनमें ही जीवनमुक्त हो जाता है। जो इस प्रसङ्गका पाठ करता है, वह निकुञ्जलीलामें ललित, मनोहर तथा कालिन्दीतटके लता-समुदयोंसे विलसित हृन्दालनके मतवाले भ्रमरोंसे अनुजादित गोलोकधारमें पहुँच जाता है ॥ १३७—१४० ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें मायुर्बंशप्दके अन्तर्गत श्रीसौमरि और मांवाताके संवादमें 'यमुना-सहस्रनामका

वर्णन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

बीसवाँ अध्याय

बलदेवजीके हाथसे प्रलम्बासुरका वध तथा उसके पूर्वजन्मका परिचय

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार यमुनाजीका सहस्रनामस्तोत्र सुनकर वीरभूप-शिरोमणि मांधाता सौभरि मुनिको नमस्कार करके अयोध्यापुरीको चले गये। यह मैंने दूसरे गोपियोंके शुभ चरित्रका वर्णन किया, जो महान् पापोंको इह छेनेवाला और पुण्यप्रद है। बताओ, और क्या सुनना चाहते हो? ॥ १-२ ॥

बहुलाश्व बोले—ब्रह्मन्! मैंने आपके मुखसे गोपियोंके चरित्रका उत्तम वर्णन सुना। साथ ही यमुनाके पञ्चाङ्गका भी वर्णन किया, जो बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। बाक्षात् गोलोकके अधिपति भगवान् श्रीकृष्णने बलदेवजीके

साथ ब्रह्मण्डलमें आगे कौन-कौन-सी मनोहर लीलाएँ कीं, वह बताइये ॥ ३-४ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! एक दिन श्रीबलराम और व्याघ्र-शालोंके साथ अपनी गौएँ चराते हुए श्रीकृष्ण भाष्टीर-बनमें यमुनाजीके तटपर बालोचित खेल खेलने लगे। बालकोंसे बाल-बालनका खेल करवाते हुए श्रीकृष्ण मनोहर गौओंकी देख-भाल करते हुए बनमें विहार करते थे। (इस खेलमें कुछ लड़के बाल—शोडा आदि बनते और कुछ उनकी पीठपर सचारी करते थे।) उस समय वहाँ कंसका भेजा हुआ असुर प्रलम्ब गोपस्त्र धारण करके आया।

दूसरे ग्वाल-बाल तो उसे न पहचान सके, किंतु भगवान् श्रीकृष्णसे उसकी माया छिपी न रही। स्वेलमें हारनेवाला बालक जीतनेवालेको पीठपर चढ़ाता था; किंतु जब बलरामजी जीत गये, तब उन्हें कोई भी पीठपर चढ़ानेको तैयार नहीं हुआ। उस समय प्रलभ्मासुर ही उन्हें भाण्डीर-बनसे यमुनातटतक अपनी पीठपर चढ़ाकर ले जाने लगा। एक निश्चित स्थान था, जहाँ ढोकर ले जानेवाला बालक अपनी पीठपर चढ़े हुए बालको उतार देता था; परंतु प्रलभ्मासुर उतारनेके स्थानपर पहुँचकर भी उन्हें उतारे गिना ही मथुरातक ले जानेको उद्यत हो गया। उसने बादलोंकी धोर घटाकी भौति भयानक रूप धारण कर लिया और विशाल पर्वतके समान दुर्गम हो गया। उस दैत्यकी पीठपर बैठे हुए सुन्दर बलरामजीके कानोंमें कान्तिमान् कुण्डल हिल रहे थे। ऐसा जान पड़ता था, मानो आकाशमें पूर्ण चन्द्रमा उड़ित हुए हो अथवा मेघोंकी घटामें विजली चमक रही हो। उस भयानक दैत्यको देखकर महाबली बलदेवजीको वहाँ क्रोध हुआ। उन्होंने उसके मस्तकपर कमके पक्ष मुक्ता मारा, मानो इन्द्रने किसी पर्वतपर वज्रका प्रहार किया हो। उस दैत्यका मस्तक वज्रसे आहत पहाड़की तरह फट गया और वह सहसा पृथ्वीको कम्पित करता हुआ धरायार्थी हो गया। उसके द्वारारसे एक विशाल ज्योति निकली और बलरामजीमें विलान हो गया। उस समय देवता बलरामजीके ऊपर नन्दन बनके फूलोंकी वर्षा करने लगे। दृपेश्वर! पृथ्वीपर और आकाशमें भी जय-जयकार होने लगी। राजन्। इस प्रकार श्रीबलदेवजीके परम अद्भुत चरित्रका मैने तुम्हारे समक्ष वर्णन किया, अब और क्या सुनना चाहते हो? || ५-१४३॥

बहुलाश्वने पूछा—मुने । वह रण-दुर्मद दैत्य प्रलभ्म

इस प्रकार श्रीगर्गसहितामें मारुपर्यवाचके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संबादमें (प्रलभ्म-वच)

नामक बीसदाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

दावानलसे गौओं और ग्वालोंका हृष्टकारा तथा विप्रपत्नियोंको श्रीकृष्णका दर्शन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्। तदनन्तर श्रीबलराम-सहित समस्त ग्वाल-बाल स्वेलमें आसक्त हो गये। उधर गारी गौष्ठ धासके लोभसे विशाल बनमें प्रवेश कर

पूर्वजन्ममें कौन था! और बलदेवजीके हाथसे उसकी मुक्ति क्यों हुई? || १५ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्। यक्षराज कुबेरने अपने सुन्दर बनमें भगवान् शिवकी पूजाके लिये कुलवारी ल्या रक्षकी थी और इधर-उधर यक्षोंको तैनात करके उन फूलों-की रक्षाका प्रबन्ध करवाया था; तथापि उस पुष्पवाटिकाके सुन्दर प्रवं चमकीले फूल लेग तोड़ लिया करते थे। इससे कुपित हो बलवान् यक्षराज कुबेरने यह शाप दिया—‘जो यक्ष इस कुलवारीके फूल लेंगे अथवा दूसरे भी जो देवता और मनुष्य आदि फूल तोड़नेका अपराध करेंगे, वे सब सहसा मेरे शापसे भूतलपर असुर हो जायेंगे।’ एक दिन इह नामक गन्धर्वका बेटा ‘विजय’ तीर्थभूमियोंमें विचरता तथा मार्गमें भगवान् विष्णुके गुणोंको गाता हुआ चैत्रऋ बनमें आया। उसके हाथमें बीणा थी। बैचारा गन्धर्व शापकी बातको नहीं जानता था, अतः उसने बहाँसे कुछ फूल ले लिये। फूल लेने ही वह गन्धर्वरूपको त्यागकर असुर हो गया। फिर तो वह तत्काल महात्मा कुबेरकी शरणमें गया और नमस्कार करके दोनों हाथ जोड़कर धीरे-धीरे शापसे छूटनेके लिये प्रार्थना करने लगा। राजेन्द्र। तब उसपर प्रसन्न होकर कुबेरने भी वर दिया—‘मानद! तुम भगवान् विष्णुके भक्त तथा शान्त चित्त महात्मा हो, इस-लिये शोक न करो। द्वापरके अन्तमें भाण्डीर-बनमें यमुनाके तटपर बलदेवजीके हाथसे तुम्हारी मुक्ति होगी, इसमें संदेह नहीं है’ || १६-२३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्। इहका पुत्र वह विजयनामक गन्धर्व ही महान् असुर प्रलभ्म हुआ और कुबेरके धरसे उसको परम मोक्षकी प्राप्ति हुई ॥ २४ ॥

गयी। उनको लैटा लानेके लिये ग्वाल-बाल बहुत बड़े मूँजके बनमें जा पहुँचे। वहाँ प्रलभ्मानिके समान महान् दावानल उपकट हो गया। उस समय गौओंसहित

समस्त ग्वाल-बाल एकत्र हो बलरामसहित श्रीकृष्णके पुकारने स्त्रों और भयसे आर्त हो, उनको शरण ग्रहणकर 'बचाओ, बचाओ !' यों कहने लगे । अपने सखाओंके ऊपर अग्निका महान् भय देखकर योगेश्वरेश्वर श्रीकृष्णने कहा—“ ते अतः अपनी अँखें बंद कर लो । नरेश्वर ! जब मैंने ऐसा कर लिया, तब देवताओंके देखते देखते भगवान् गोविन्ददेव उस भयकारक अग्निको पी गये । इस प्रकार उस महान् अग्निको पीकर ग्वालों और गौओंको साथ ले श्रीहरि यमुनाके उस पार अशोकबनमें जा पहुँचे । वहाँ भूखसे पीड़ित ग्वाल-बाल बलरामसहित श्रीकृष्णने हाथ जोड़कर बोले—‘प्रभो ! हमें बहुत भूख सता रही है ।’ तब भगवान् ने उनको आङ्गिरस-यज्ञमें मैजा । वे उस श्रेष्ठ यज्ञमें जाकर नमस्कार करके निर्यत बचन बोले ॥ १—८ ॥

गोपोंने कहा—ब्राह्मणो ! ग्वाल-बालों और बलरामजी-के साथ व्रजराजनन्दन श्रीकृष्ण गौएं चराते हुए इधर आ निकले हैं, उन सवको भूख लगी है । अतः आप सखाओंसहित उन मदनमोहन श्रीकृष्णके लिये शीघ्र ही अब प्रदान करें ॥ ९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर ! ग्वाल-बालोंकी वह बात सुनकर वे ब्राह्मण कुछ नहीं बोले । तब ग्वाल-बाल निराश लौट गये और आकर बलरामसहित श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले ॥ १० ॥

गोपोंने कहा—मत्वे ! तुम ब्रजमण्डलमें ही अधीश बने हुए हो । गोकुलमें ही तुम्हारा यह चलता है और नन्दवालाके आगे ही तुम कठोर दण्डधारी बने हुए हो । प्रचण्ड सूर्यके समान तेजस्वी तुम्हारा प्रकाशमान दण्ड निश्चय ही मथुरापुरीमें अपना प्रभाव नहीं प्रकट करता ॥ ११ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तब श्रीहरिने उन ग्वाल-बालोंको पुनः यहकर्ता ब्राह्मणोंकी पत्नियोंके पास

इस प्रकार श्रीगर्भ-संहितामें मानुर्बस्तुके अत्तर्गत नारद-बहुकाश-संबादमें ‘दावनलसे गौओं और ग्वालोंका छुटकारा तथा

विप्रपद्मियोंको श्रीकृष्णका दर्शन’ नामक इक्षीसदौ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

मैजा । तब वे पुनः यहशालमें गये और उन ब्राह्मण-पत्नियोंको नमस्कार करके वे श्रीकृष्णके मैजे हुए ग्वाल हाथ जोड़कर बोले ॥ १२ ॥

गोपोंने कहा—ब्राह्मणी देवियो ! ग्वाल-बालों और बलरामजीके साथ गाय चराते हुए श्रीब्रजराजनन्दन कृष्ण इधर आ गये हैं, उन्हें भूख लगी है । सखाओंसहित उन मदनमोहनके लिये आपलोग शीघ्र ही अब प्रदान करें ॥ १३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! श्रीकृष्णका शुभगमन सुनकर उन समस्त विप्रपत्नियोंके मनमें उनके दर्शनकी लालसा जाग उठी । उन्होंने विभिन्न पात्रोंमें भोजनकी सामग्री रख लीं और तत्काल लोक-लाज छोड़कर वे श्रीकृष्णके पास चली गयीं । रमणीय अशोकबनमें यमुनाके मनोरम तटपर विप्रपत्नियोंने श्रीहरिका अद्भुत रूप जैसा मुना था, वैसा ही देखा । दर्शन पाकर वे सब परमानन्दमें उम्मी प्रकार निमन हो गयीं, जैसे योगीजन तुरीय ब्रह्मका साक्षात्कार करके आनन्दित हो उठते हैं ॥ १४—१६ ॥

श्रीभगवान् बोले—विप्रपत्नियो ! तुमलोग धन्य हो, जो मेरे दर्शनके लिये यहाँतक चली आयीं; अब शीघ्र ही घर लौट जाओ । ब्राह्मणलोग तुमपर कोई संदेह नहीं करेंगे । तुम्हारे ही प्रभावसे तुम्हारे पति देवता ब्राह्मणलोग तत्काल यज्ञका फल पाकर निमंल हो, तुम्हारे साथ प्रकृतिसे परे विद्यमान परमज्ञान गोलोकको चले जायेंगे ॥ १७—१८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—तब श्रीहरिको नमस्कार करके वे सब लियाँ यहशालमें चली आयीं, उन्हें देखकर सब ब्राह्मणोंने अपने-आपको धिक्कारा । वे कंसके दरसे स्वयं श्रीकृष्णको देखनेके लिये नहीं जा सके थे ॥ १९—२० ॥

मैथिल ! ग्वाल-बालों और बलरामजीके साथ वह अब खाकर श्रीकृष्ण गौओंको चराते हुए मनोहर हृन्दावनमें चले गये ॥ २१ ॥

बाईसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका नन्दराजके वरुणलोकसे ले आना और गोप-गोपियोंको वैकुण्ठधामका दर्शन कराना

थीनारदजी कहते हैं—एक दिनकी बात है, नन्दराज एकादशीका व्रत करके द्वादशीको निशीथ-कालमें ही व्वालोंके साथ यमुना-स्नानके लिये गये और जलमें उतरे। वहाँ वरुणका एक सेवक उन्हें पकड़कर वरुणलोकमें ले गया। मैथिलेश्वर! उस समय व्वालोंमें कुहराम भन्न गया; तब उन सबको आश्वासन दे भगवान् श्रीहरि वरुणपुरामें पधारे और उन्होंने सहस्रा' उस पुरीके दुर्गांको भस्स कर दिया। करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी श्रीहरिको अत्यन्त कुपित हुआ देख वरुणने तिरस्कृत होकर उन्हें नमस्कार किया और उनकी परिक्रमा करके हाथ जोड़कर कहा ॥ १—४ ॥

वरुण बोले—श्रीकृष्णनन्दको नमस्कार है। परिपूर्णतम परमात्मा तथा असंख्य ब्रह्मांडोंका भरण-पोषण करनेवाले गोलोकपतिको नमस्कार है। चतुर्व्यूहके रूपमें प्रकट तेजोमय श्रीहरिको नमस्कार है। सर्वतेज-स्वरूप आप परमेश्वरनों नमस्कार है। सर्वस्वरूप आप परब्रह्म परमात्माको नमस्कार है। मेरे किसी मूर्ख भेदकने यह पहली बार आपकी अवहेलना की है; उसके लिये आप मुझे क्षमा करें। परेश! भूमन्! मैं आपकी शरणमें आया हूँ; आप मेरी रक्षा कीजिये।

नारदजी कहते हैं—राजन्! यह मुनकर प्रसन्न हुए भगवान् श्रीकृष्ण नन्दजीको जीवित लेकर अपने बन्धुजनोंको सुख प्रदान करते हुए ब्रजमण्डलमें लौट आये। नन्दराजके मुखसे श्रीहरिके उस प्रभावको सुनकर गोपी और गोप-समुदाय नन्दनन्दन श्रीकृष्णमें बोले—‘प्रभो! यदि आप लोकपालोंसे पूजित साक्षात् भगवान् हैं तो हमें शीघ्र ही उत्तम वैकुण्ठलोकका दर्शन कराइये।’ तब उन

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें मातुर्पंचमीके अन्तर्गत नारद-बहुलाभ-संवादमें ‘नन्द आदिका वैकुण्ठदर्शन’ नामक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

* नमः श्रीकृष्णनन्दाय परिपूर्णतमाय च । असर्वद्वाष्टम्याणवृत्ते गोलोकपनये नमः ॥
बहुर्भूत्य भृत्य नमस्ते सर्वतेजसे । नमस्ते सर्वभावाय परस्मै भृषणे नमः ॥
कैलापि मूढेन समानुगेन कृतं परं हेत्वमात्ममेव ।
तत् क्षम्यतां मोः भरणं गतं मा परेश भूमन् परिपादि पाहि ॥

(गण०, मातुर्पंचमी २२ । ५-७)

तैईसवाँ अध्याय

अभिकावनमें अजगरसे नन्दराजकी रक्षा तथा सुदर्शननामक विद्याधरका उद्धार

नारदजी कहते हैं—नरेश्वर ! एक समय बृषभानु गैर उपनन्द आदि गोपण रत्नोंसे भरे हुए छकड़ोंपर सवार होकर अभिकावनमें आये । वहाँ भगवती भद्रकाली और भगवान् पशुपतिका विधिपूर्वक पूजन करके उन्होंने ब्राह्मणोंको दान दिया और रातको वहीं नदीके तटपर सो गये । वहाँ रातमें एक सर्प निकला और उसने नन्दका पैर पकड़ लिया । नन्द अत्यन्त भयसे चिह्नल हो ‘कृष्ण-कृष्ण’ पुकारने लगे । नरेश्वर ! उस समय ग्वाल-बालोंने जलती हुई लकड़ियाँ लेकर उसीसे उस अजगरको मारना शुरू किया, तो भी उसने नन्दका पाँव उसी तरह नहीं छोड़ा, जैसे मणिधर साप अपनी मणिको नहीं छोड़ता । तब लोकपावन भगवान्नने उस सर्पको तत्काल पैरसे मारा । पैरसे मारते ही वह सर्पका शरीर त्यागकर कृतकृत्य विद्याधर हो गया । उसने श्रीकृष्णको नमस्कार करके उनकी परिक्रमा की और हाथ जोड़कर कहा ॥ १-५३ ॥

सुदर्शन खोला—ग्रन्थो ! मेरा नाम सुदर्शन है, मैं विद्याधरोंका मुखिया हूँ । मुझे अपने बलका बड़ा धमंड था और मैंने अष्टावक्र मुनिको देखकर उनकी हँसी उदायी थी । तब उन्होंने मुझे शाप दे दिया—‘दुर्भते ! तू सर्प

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें मात्र्यर्थवण्डके अन्तर्गत ‘सुदर्शनोपाल्यान’ नामक तैईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

हो जा ।’ माधव ! उस शापसे आज मैं आपकी कृपासे मुक्त हुआ हूँ । आपके चरण-कमलोंके मकरन्द एवं परागके कणोंका स्पर्श पाकर मैं सहसा दिव्य पदबीको प्राप्त हो गया । जो भूतलका भूरि-भार-हरण करनेके लिये यहाँ अवतीर्ण हुए हैं, उन भगवान् भुवनेश्वरको बारंबार नमस्कार है ॥ ६-८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करके वह विद्याधर सब प्रकारके उपद्रवोंसे रहित वैश्वालोकको चला गया । उस समय श्रीकृष्णको परमेश्वर जानकर नन्द आदि गोप बड़े विसित हुए । फिर वे शीघ्र ही अभिकावनसे वज्रमण्डलको चले गये । इस प्रकार मैंने तुमसे श्रीकृष्णके शुभ चरित्रका बण्ठन किया, जो पुण्यप्रद तथा सर्वपापहारी है । अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ९-११ ॥

बहुलाभ्य खोले—अहो ! श्रीकृष्णचन्द्रका चरित्र अत्यन्त अद्भुत है, उसे सुनकर मेरा मन पुनः उसे सुनना चाहता है । देवर्षिसत्त्वम् ! ब्रजेश्वर परमात्मा श्राविने वज्रमण्डलमें आगे चलकर कौन-सी लीला की ? ॥ १२-१३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

अरिष्टासुर और व्योमासुरका वध तथा मात्र्यर्थवण्डका उपसंहार

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! एक दिन गोवर्धनके आस-पास बलरामसहित भगवान् श्रीकृष्ण औंखमिचौनीका खेल खेलने ले—जिसमें कोई चोर बनता है और कोई रक्षक । वहाँ व्योमासुर नामक दैत्य आया । उस खेलमें कुछ लड़के मेड़ बनते थे और कोई चौर बनकर उन मेड़ोंको ले जाकर कहीं छिपाता था । व्योमासुरने मेड़ बने हुए बहुतसे गोप-बालकोंको बारी-बारीसे ले जाकर पर्वतकी कन्दरामें रक्षा और एक शिलांसे उसका ढार बंद कर

दिया । वह मयासुरका महान् बलवान् पुत्र था । यह तो सचमुच चोर निकला, यह जानकर भगवान् मधुसूदनने उसे दोनों भुजाओंद्वारा पकड़ लिया और पृथ्वीपर दे भारा । उस समय दैत्य मृत्युको प्राप्त हो गया और उसके शरीरसे निकला हुआ प्रकाशमान तेज दसों दिवाओंमें घूमकर श्रीकृष्णमें झीन हो गया । उस समय स्वर्गमें और पृथ्वीपर जय-जयकारकी व्याप्ति होने लगी । देवता ल्लेग परम आनन्दमें मग्न होकर फूल बरसाने लगे ॥ १-६ ॥

बहुलाक्ष्यने पूछा—मुने ! यह व्योम नामक असुर पूर्वजन्ममें कौन-सा पुण्यात्मा मनुष्य था, जिसने इसाम घनमें विजयीकी भाँति श्रीकृष्णमें विलय प्राप्त किया ॥ ७ ॥

नारदजी बोले—राजन् ! काशीमें भीमरथ नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे, जो सदा दान पुण्यमें लगे रहते थे । वे यशकर्ता, दूसरोंको मान देनेवाले, धनुधर तथा विष्णुभक्ति-परायण थे । वे राज्यपर अपने पुत्रको विठाकर स्वयं मल्याचलपर चले गये और वहाँ तपस्या आगम्य करके एक लाल वर्षतक उभामें लगे रहे । उनके आश्रममें एक समय महर्षि पुलस्त्य शिखोंके साथ आये । उनको देखकर भी वे मानी गजर्षि न तो उठाकर पट्टे हुए और न उनके सामने प्रणत ही हुए । तब पुलस्त्यने उन्हें शाप दे दिया - 'ओ महादुष्ट शुपाल ! तू दैन्य हो जा ।' तदनन्तर राजा जब उनके चरणोंपे पड़कर शरणागत हो गये, तब दीनवत्तल मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यने उनसे कहा - 'द्वापरके अन्तमें मथुरा जनपदके पवित्र ब्रजमण्डलमें मालात् यदुवंशराज श्रीकृष्णके बाहुवलमें तुम्हें ऐसा मुनि प्राप्त होगी, जिसकी योगीलोग अभिलाषा रखते हैं—इसमें संशय नहीं है' ॥ ८-१३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—विदेशराज ! वहाँ यह राजा भीमरथ मय दैत्यका पुत्र हुआ और श्रीकृष्णके बाहुवलमें मोक्षको प्राप्त हुआ । १४, दिन गोप यात्राओंसे बाचमें महावली देत्य अंगष्ट आया । वह अपने गिनजादमें पूर्णी और आकाशको गुँजा रहा था और सींगीन पक्षीतय तटोंपे विदीर्घ कर रहा था । उसे देखते ही गोपना, गोप तथा गोओंके समुदाय मयने इधर-उधर भागने ल... । दैत्योंके नाशक भगवान् श्रीकृष्णने उन लवको अभय देते हुए कहा—'डरो मत !' माधवने उसके सींग पाढ़ लिये और उसे पीछे ढकेल दिया । उस गङ्गासे भी श्रीकृष्णको ढकेलकर दो योजन पांचे कर दिया । तब श्रीकृष्णने उसकी पूँछ पकड़ ली और बाहुवलमें धुमाते हुए उसे उसी प्रकार पृथ्वीपर पटक दिया, जैसा छोटा बालक कमण्डलको फेंक दे । अरिष्ठ फिर उठा । क्रोधसं

इस प्रकार श्रीगर्वसंहितामें भाष्येवाप्तके अन्तर्भृत नारद-बहुलादव-संवादमें 'व्योमसुर और अरिष्ठसुरका वश' नामक जीवीहस्तों आप्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

माधुर्यकण्ठ सम्पूर्ण ।

उसके नेश लाल हो रहे थे । उस महादुष्ट वीरने सींगोंसे लाल पत्थर उत्त्वाइन्हा मेवको भाँति गजना करते हुए श्रीकृष्णके ऊपर फैका । श्रीकृष्णने उस प्रस्तरको पकड़कर उल्टे उमीपर दे मारा । उस शिलाखण्डके प्रहार-में वह नम-ही मन बुल व्याकुल हो उठा । उसने अपने सींगोंके अग्रभागको पृथ्वीपर पीटना आरम्भ किया, इससे गृथाके भीतरसे पानी निकल आया । तब श्रीकृष्णने उसके सींग पकड़कर बार-बार धुमाते हुए उसे पृथ्वीपर उसी प्रकार दे मारा; जैसे हवा कमलको उठाकर फेंक देती है । उसी समय वह बृशमका रूप त्यागकर ब्राह्मणशरीरधारी हो गया और श्रीकृष्णके चरणारविन्दों-में प्रणाम गरके गदगद वार्गीने थोला ॥ १४-२३ ॥

ब्राह्मणने कहा—भगवन् ! मैं बृहस्पतिका शिष्य द्विजश्रेष्ठ वरतन्तु हूँ । मैं बृहस्पतिजीके समीप पढ़ने गया था । उस समय उनकी ओर पाव फैलाकर उनके सामने बैठ गया था । इगमें मूनि गोशपूर्वक थोले—'तू मेरे आगे बैलकी भाँति बैठा है, इसमें गुरुकी अवहेलना है इ है; अतः दुर्बुद्ध ! तू बैठ हो जा ।' माधव ! उस शापमें मैं बङ्गदेशमें बैल हो गया । असुरोंके भङ्गमें रहनेमें मक्षमें असुरभाव आ गया था । अब आपके प्रभावानें मैं शाप और असुरभावमें मुक्त हो गया । आप श्रीकृष्णकी नमस्कार है । आप भगवान् बासुदेवका प्रणाम है । प्रानजनानें कलेशना नाश करनेवाले आप गोवन्ददेवको बारंबार नमस्कार है ॥ २४-२८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! यो कहकर श्रीहरिका नमस्कार करके बृहस्पतिके साक्षात् शिष्य वरतन्तु धुनको प्रकाशित करते हुए विमानमें दिव्यलोक-को चले गये । इस प्रकार मैंने अद्भुत माधुर्य-खण्डना तुम्हें कर्णन किया, जो सब पापोंको हर क्लेशवाला, पुण्यदायक तथा श्रीकृष्णकी प्राप्ति करनेवाला उच्चम साधन है । जो सदा इसका पाठ करते हैं, उनकी सुमस्त कामनाओंको यह देनेवाला है । और क्या सुनना चाहते हो ! ॥ २९-३१ ॥

श्रीमथुराखण्ड

पहला अध्याय

कंसका नारदजीके कथनानुसार बलराम और श्रीकृष्णको अपना शत्रु समझकर वसुदेव-देवकीको कैद करना, उन दोनों भाइयोंको मारनेकी व्यवस्थामें लगना तथा उन्हें मथुरा ले आनेके लिये अकूरजीको नन्दके ब्रजमें जानेकी आज्ञा देना

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमदंतम् ।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं बन्दे जगद्गुरम् ॥

जो वसुदेवजीके यहाँ पुत्र-रूपमें प्रकट हुए हैं, जिन्होंने कंस एवं चाणूरका मर्दन किया है तथा जो देवकीको परमानन्द प्रदान करनेवाले हैं, उन जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णकी मैं बन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

राजा बहुलाभ्यन्ते पूछा—मुगे ! भगवान् श्रीकृष्णने मथुरगमे कौन कौन सी लोलाएँ कीं ? उन्होंने कंसको क्यों और कैसे मारा ? यह सब मुहसें ठीक-ठीक बताइये ॥ २ ॥

नारदजीने कहा—तृपेश्वर ! एक दिन साक्षात् परमात्मा श्रीहरि के मनसे प्रेरित होकर मैं दैत्यवध-सम्बन्धा उद्यमको आगे बढ़ानेके लिये उत्सुक पुरी मथुराके दर्शनार्थ वहाँ आया । आकर राजा कंसके दरवारमें गया । वहाँ कंस इन्द्रसे छीनकर लाये हुए सिंहासनके ऊपर, जहाँ श्वेत-छत तना हुआ था और सुन्दर चौबर हुलाये जा रहे थे, विराजमान था । वह बल, पराक्रम और कूरताके कारण नागराजके समान दुर्सह प्रतीत होता था । वहाँ पहुँचनेपर उसने मेरा पूजन—स्वागत-सल्कार किया । उस समय मैंने उससे जो कुछ कहा, वह तुनो—‘मथुरानरेश । जो कन्या तुम्हारे हाथसे छूटकर आकाशमें उड़ गयी थी, वह देवकीकी नहीं, यशोदाकी पुत्री थी । देवकीसे तो श्रीकृष्ण ही उत्पन्न हुए और रोहिणीके पुत्र बलराम हैं । दैत्यराज । वसुदेवने तुम्हारे शत्रुभूत अपने दोनों पुत्र बलराम और श्रीकृष्णको अपने मित्र नन्दराजके यहाँ धरोहरके रूपमें रख दिया है—इसलिये कि तुम्हारे भयसे उनकी रक्षा हो सके । पूतनासे लेकर अरिष्टासुरतक जो-जो उत्कट बलशाली दैत्य नह दुए हैं, वे सब बनमें उन्हीं दोनोंके

द्वारा मारे गये हैं । कहा जाता है कि वे ही दोनों तुम्हारी मृत्यु हैं’ ॥ ३-७ ॥

मेरे यों कहनेपर भोजराज कंस क्रोधमें कॉपने लगा । उसने शूरनन्दन वसुदेवको सभामें ही मार डालनेके लिये तीखी तल्बार हाथमें ली, परंतु मैंने उसे रोक दिया; तथापि उसने सुट्ट और विशाल वैदियोंमें पक्षीसहित उन्हें बॉधर कारागारमें थंद कर दिया । कंससे उक्त बात कहकर जब मैं चला गया, तब उम दैत्यराजने श्रीकृष्ण और बलरामका वध करनेके लिये दैत्यग्रावर केशीको भेजा । तदनन्तर बलवान् भोजराज कंसां चाणूर आदि मल्लों तथा कुबल्यार्पीड नामक हाथीके महावतको बुलवाया और अपना कार्यभार सँभालेवाले अन्य लोगोंको भी बुलवाकर उससे इस प्रकार कहा ॥ ८-११ ॥

कंस बोला—हे कुट ! हे तोशल ! हे महाबली चाणूर ! बलराम और कृष्ण—दोनों मेरी मृत्यु ह, यह बात नारदजीने मुझे भलीभौति रामका दी है । अतः वे दोनों जब यहाँ आ जायें, तब तुम सब लोग मल्लोंके खेल (कुम्हीके दाव पेच) दिखाते हुए उन्हें मार डालना । अब जीव ही मल्लभूमि (अखाडे) को सुन्दर ढंगसे सुसज्जित कर दो । महावत ! रक्षशालके द्वारपर मदमत्त हाथी कुबल्यार्पीडको खड़ा रखो और मेरे शत्रु जब आ जायें, तो उन्हें मरवा डालो । कार्यकर्ता जनो । आगामी चतुर्दशीको शान्तिके लिये धनुर्यज्ञ करना है और अग्रामास्याके दिन यहाँ मल्लयुद्ध होगा ॥ १२-१५ ॥

नारदजी कहते हैं—राजेन्द्र ! आस्माय जनोंसे इस प्रकार कहकर कंसने अकूरको तुग्त अपने पास बुलवाया और एकान्त स्थानमें मन्त्रजनोंको प्रिय लग्नेवार्ता मन्त्रणा की बात कही ॥ १६ ॥

कंस बोला—दानपते ! तुम मेरे माननीय मन्त्री होः अतः मेरी यह उत्तम बात सुनो । महामते ! कल आदेशकाल होते ही तुम नन्दके ब्रजमें जाओ और मेरा यह कार्य करो । लोग कहते हैं कि वसुदेवके दोनों बेटे यहाँ रहते हैं । वे दोनों मेरे दानु हैं, यह वात देवर्षि नारदजीने मुझे अच्छी तरह समझा दी है । गोपाण नन्दराज आदिके साथ भैट लेकर यहाँ आये और उन्हींके साथ मधुरा नगरी दिलानेके बहाने उन दोनोंको रथपर विठाकर दीप यहाँ के आओ । यहाँ अनेकर हाथीसे अथवा बड़े-बड़े पहलवानोंके द्वारा उन दोनों बालकोंको मरवा डालेंगा । उसके बाद वसुदेवकी सहायता करनेवाले नन्दराज, वृषभानुवर, नौ नन्दों और उपनन्दोंकी भौतिक धाट उतार देंगा । तदनन्तर वसुदेव, उनके सहायक देवक तथा अपने बूढ़े पिता उप्रेसनको भी, जो राज्य लेनेके लिये उत्सुक रहता है, मार डालेंगा । यह सब हो जानेके बाद समस्त यादवोंका संहार कर डालेंगा, इसमें संशय नहीं है । मन्त्रिन् ! ये सब-के-सब देवता हैं, जो मनुष्यके रूपमें प्रकट हुए हैं । चन्द्रावतीपांत बलवान्, शकुनि मेरा बहुत बड़ा मित्र है । भूतसंतापन, हृष्ण, वृक्ष, संकर, कालन्नाम, महानाम तथा इरिश्मशु—ये सब मेरे मित्र हैं और बल्पूर्वक मेरे लिये अपने प्राण-तक दे सकते हैं । ज्ञातं ध तो मेरा शशुर ही है और

इस प्रकार श्रीगर्ज-सहितमें श्रीमधुराक्षणके अन्तर्गत नारद बहुलाभ-संवादमें 'कंसकी मन्त्रणा' नामक
पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

केशीका वध

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! उधर बलवान् एवं मदोन्मत्त महादेव्य केशी घोड़ेका रूप धारणकर रमणीय इन्द्रावनमें गया और मेघकी भाँति गर्जना करने लगा । उसके पैरोंके आधातसे सुहृद तृष्ण भी दूटकर भराशायी हो जाते थे । पूँछकी चोट खाकर आकाशमें धने बादल भी छिप-भिप हो जाते थे, मैथिलेन्द्र ! उसका वेग दुस्तह था । उसे देखकर गोप-गोपियोंके समुदाय अस्यन्त भयसे व्याकुल हो भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें गये ॥ २-३ ॥

पाप और वापियोंको पीड़ा देनेवाके भगवान्हने 'धरो मत'

द्विविद मेरा सत्ता । बाणासुर और नरकासुर भी मेरे प्रति ही मौहार्द रखते हैं । ये सब लोग इस पृथ्वीको जीतकर, इन्द्रसहित देवताओंको दाँधकर और द्रव्य-राशिके स्वामी बने हुए कुत्रेरको मेषपतंकी दुर्गम कन्दरामें कैंक-कर सदा तीनों लोकोंका राज्य करेंगे, इसमें संशय नहीं है । दानपते ! तुम कवियों (नीतिश विद्वानों) में शुक्रानार्थके समान हो और वातचीत करनेमें इस भूतल-पर बृहस्पतिके तुल्य हो; अतः इस कार्यको तुरंत सम्पन्न करो ॥ २७-२८ ॥

अकूर बोले—यदुपते ! तुमने मनोरथका महासागर ही रच डाला है । यदि दैवकी इच्छा होगी तो यह सागर गोप्यद (गायकी खुरी) के समान हो जायगा और यदि दैव अनुकूल न हुआ, तब तो यह अपार महासागर है ही ॥ २९ ॥

कंस बोला—बलवान् पुष्प दैवका भरोसा छोड़कर काय करने हैं और निवल देवका सहारा पकड़े बैठे रहते हैं । कम्योगी पुष्प काल्पवरूप श्रीहरिके प्रभावसे सदा निराकुल (शान्त) रहता है ॥ ३० ॥

नारदजी कहते हैं—मन्त्रिप्रबर अकूरसे ये कहकर कम भ्राम्यस्यलसे उठ गया और कुछ कुपित हो धीरंगे अनाःपुरमें चला गया ॥ ३१ ॥

—यह कहकर उन सबको अभयदान दिया और कमरमें पीताम्बर कसकर वे उस दैत्यको मार डालनेकी चेष्टामें लग गये । राजन् ! उस महान् असुरने अपने पिछले पैरोंसे श्रीहरिके ऊपर आधात किया और पृथ्वीको कँपाता हुआ वह आकाशमण्डलको अपनी गर्जनासे गुँजाने लगा । तब, जैसे इवा कमलको उखाइकर फेंक देती है, उसी प्रकार श्रीकृष्णने उस दैत्यके दोनों पैर पकड़कर बाहुबलसे शुमारे हुए उसे एक योजन दूर फेंक दिया । उसने भी क्षोधसे भरे हुए वहाँ आकर ब्रजके प्राङ्गणमें भगवान् श्रीहरिके ऊपर अपनी पूँछसे प्रहार किया । राजन् ! तब

श्रीकृष्णने उठकी पूँछ पकड़ ली और बाहुबेगसे धतपूर्वक दुमाते हुए उसे आकाशमें लौ योजन दूर फेंक दिया। आकाशसे नीचे गिरनेपर उसे मन-ही-मन कुछ व्याकुलताका अनुभव हुआ; किंतु पुनः उठकर वह भगवान् दैत्य मेषके द्वारा गर्जना करने लगा। अपनी गर्दनके अयालोंको छोपाता और पूँछके वालोंको आकाशमें बार-बार हिलाता हुआ वह दैत्य अपने पैरोंसे पृथ्वीको विदीर्ण करता हुआ श्रीहरिके सामने उछलकर आया। तब भगवान् मधुसूदनने केशीको एक मुक्का पारा। उनके मुक्केकी मारसे वह दो घड़ीतक बेहोश पढ़ा रहा। तब उस अश्वरूपधारी असुरने श्रीहरिके गलेको अपने मुँहसे पकड़ लिया और उन्हें उठाकर वह भूमण्डलसे लाल योजन दूर आकाशमें उठ गया। वहाँ आकाशमें उन दोनोंके बीच दो पहरतक बोर युद्ध हुआ। राजन्! वह अपने पैरोंसे, दौतोंसे, गर्दनके अयालोंसे, पूँछ और तीखी खुरोंसे बार-बार श्रीहरिपर आघात करने लगा। तब श्रीहरिने उसे दोनों हाथोंसे पकड़कर इधर-उधर द्युमाना आरम्भ किया और जैसे बालक कमण्डल फेंक दे, उसी प्रकार उन्होंने आकाशसे उस दैत्यको नीचे गिरा दिया। फिर भगवान् श्रीहरिने उसके मुँहमें अपनी बोंह डाल दी। वह बोंह उसके उदरतक जा पहुँची और असाध्य रोगकी भाँति बड़े जोरसे बढ़ने लगी। इससे उस महान् असुरकी प्राणवायु अवरुद्ध हो गयी और वह चूटक्से लेंड कंकने लगा। उसका पेट फट गया और वह अश्वरूपधारी असुर तत्काल प्राणोंसे हाथ धो बैठा।

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुरासप्तके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'केशीका वध' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

अक्षरका नन्दग्राम-गमन, मार्गमें उनकी बलराम-श्रीकृष्णसे भेंट तथा उन्हींके साथ नन्दभवनमें प्रवेश;

श्रीकृष्णसे बातचीत और उनका मथुरा-गमनके लिये निश्चय, मथुरा-यात्राकी चर्चा सब

और फैल जानेपर गोपियोंका विरहकी आशङ्कासे उद्धिष्ठ हो उठना

श्रीनारदजी कहते हैं—मैथिलेन्द्र! अनूरजी रथपर आरूढ़ हो राजा कंसका कार्य करनेके लिये बड़ी प्रसन्नताके साथ नन्दगाँवको गये। पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके प्रति उनकी पराभक्ति थी। परम बुद्धिमान् अकूर यात्रा करते हुए भासमें अपनी बुद्धिसे इस प्रकार विचार करने लगे ॥ १-२ ॥

अक्षर बोले—मैंने भारतवर्षमें कौन-सा पुण्य किया, निस्स्वार्थभावसे कौन-सा दान दिया, कौन-सा उत्तम यज्ञ, तीर्थयात्रा अथवा ब्राह्मणोंकी शुभ देवा की है, जिससे आज

शरीरसे पृथक् होनेपर उसने तत्काल दिव्य रस धारण कर लिया और मुकुट तथा कुण्डलोंसे मणित हो भगवान् श्रीकृष्णको दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥ ४—१७ ॥

कुमुद बोला—माधव! मैं इन्द्रका अनुचर हूँ। मेरा नाम कुमुद है। मैं वहा तेजस्वी, स्पष्टान् और बीर था तथा देवराज इन्द्रपर छत्र लगाया करता था। पूर्णकालमें वृत्तासुरका वध हो जानेपर प्राप्त हुई ब्रह्महत्याकी शान्तिके लिये स्वर्गलोकके स्वामीने अश्वमेध नामक उत्तम यज्ञका अनुष्ठान किया। अश्वमेधका घोड़ा इथत वर्णका था। उसके कान श्याम रंगके थे और वह मनके समान तीव्र वेगसे चलनेवाला था। मेरे मनमें उसपर चढ़नेकी इच्छा हुई। इस कामनासे मैं प्रसन्न हो उठा और उस घोड़ोंको चुराकर अतल-लोकमें चला गया। तब मरुद्धणोंने मुझ महादुष्टको पाशमें बॉधकर देवराज इन्द्रके पास पहुँचाया। देवेन्द्रने मुझे शाप देते हुए कहा—‘दुर्बुद्धे! तु राक्षस हो जा। भूतल्पर दो मन्त्रन्तरोत्तम तेरी घोड़ोंकी-सी आकृति रहे।’ प्रभो! आज आपका स्वर्ण पाकर मैं उस शापसे तत्काल मुक्त हो गया हूँ। देव! अब मुझे अपना किंकर बना लीजिये। मेरा मन आपके चरणकमलमें लग गया है। आप समस्त लोकोंके एकमात्र साक्षी हैं, आप भगवान् श्रीहरिको नमस्कार है ॥ १८-२३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! मिथिलेन्द्र! यौं कहकर, परमेश्वर श्रीकृष्णकी परिक्रमा करके, कुमुद अत्यन्त प्रकाशमान उत्तम विमानपर आरूढ़ हो, दिशामण्डलको उद्दीप करता हुआ बैकुण्ठलोकको चला गया ॥ २४ ॥

मैं भगवान् परमेश्वर श्रीहरिका दर्शन करूँगा? मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा उत्तम तप किया और भक्तिभावसे कब किस संत पुरुषका सेवन किया था, जिससे आज मुझे अपने सामने भगवान् श्रीकृष्णका दुर्लभ दर्शन होगा। भगवान् सुरेश्वर श्रीकृष्ण जिनके नेत्रोंके गोचर होते हैं, भूतल्पर उन्हींका जन्म सफल है। आज उन भगवान्का दुर्लभ दर्शन करके मैं सर्वतोमावेन कृतार्थ हो जाऊँगा ॥ ३-५ ॥

नारदजी कहते हैं—इस प्रकार श्रीकृष्णका चिन्तन और उत्तम शकुनका दर्शन करने हुए गान्दिनीनन्दन अकूर मध्याकालमें रथपर बैठे-बैठे नन्द-गोकुलमें जा पहुँचे। यह और अकूर आदिसे युक्त श्रीकृष्ण-चरणारविन्दोंके विह तथा उनकी ललाईमें युक्त धूलिकण उहें पृथ्वीपर दिखायी दिये। उनके दर्शनकी उत्कण्ठा एवं भक्तिभावके आनन्दसे विहल हो अकूरजी रथमें कुद पड़े और उन धूलिकणमें लोटते हुए नेत्रोंमें ओम् वहाने लगे। मिथिलेश्वर ! जिनके हृदयमें भगवान् श्रीकृष्णर्वा भक्ति प्रकट हो जाती है, उनके लिये ब्रह्मलोकपयन्त जगत् के सारे सुख तिनकेसे समान तुङ्छ हो जाते हैं ॥ ६-९ ॥

तदगन्तर रथपर आरुद हो अकूर ध्यानभरमें नन्दगोव जा पहुँचे। उन्होंने गोष्ठीमें पहुँचकर देखा—बलरामजीके साथ श्रीकृष्ण उधर हो आ रहे हैं। वे दोनों पुराणपुरुष इश्यामल-गौरवर्ण परमेश्वर प्रफुल्ल कमलके समान नेत्रवाले थे। रास्तेमें बलराम और श्रीकृष्ण देसे जान पड़ते थे, मानो हन्दनील और हीरकमणिके दो पवत एक-दूसरेके सम्पर्कमें आ गये हों। उन दोनोंके मुकुट बालसूर्यके समान और बक्ष विद्युतके सदृश थे। उनकी अङ्गकान्ति वर्षाकालके मेघकी भाँति इश्याम तथा शारदश्त्रतुके बादलकी भाँति गौर थी। उन दोनोंको देखकर अकूर तुरंत ही रथसे नीचे उत्तर गये और भक्तिभावसे सम्पन्न हो उन दोनोंके चरणोंमें गिर पड़े। उनका सुख नेत्रोंमें सरते हुए ओऽसुओंकी धारामें व्यास तथा दीर्घ रोमाञ्चित था। उन्हें देख परमेश्वर श्रीहरिने दोनों हाथोंसे उठा लिया और वे माधव दयासे द्रवित हो भक्तको हृदयसे लगाकर अशुद्धोंकी वर्जी करने लगे। इस प्रकार बलरामसहित श्रीहरि उनसे मिलकर ईश्वरी ही उहें शर ले आये और वहों उन्होंने उनके लिये श्रेष्ठ असन दिया। अतिथिस्तकारमें एक गाय देकर प्रेममूर्खक सरस भोजन प्रस्तुत किया। नन्दने अकूरको दोनों हाथोंद्वारा हृदयसे लगाकर पूछी—‘अहो ! तुम कंसके राज्यमें कैसे जी रहे हो ? जिस निर्लज्जने अपनी बहिनके नन्हेसे शिशुओंको मार डाला, वह दूसरे लोगोंके प्रति दयालु कैसे होगा ?’ नन्दजी जब घरमें चले गये, तब श्रीहरिने उनसे माता-पिताकी सारी कुशल पूछी। इसी प्रकार अपने वन्धु-वान्धव यादवोंका समाचार पूछकर कंसकी सारी विपरीत मुद्दिके विषयमें भी जिजासा की ॥ १०-१६ ॥

अकूर बोले—देव ! परसोंकी वात है, मोजराज कस

हाथमें तल्वार ले बमुदेवको मार डालनेके लिये उधरत हो गया था; किन्तु नारदजीने उसे रोक दिया था। समस्त यादव-वन्धु वान्धव भगवे विहल और दुखी हैं। भूमन् ! कितने ही कंसके भयमें कुदुम्बसहित दूसरे देशोंमें चले गये हैं। वह आज ही यादवोंको मार डालने और देवताओंको जीत लेनेके लिये उद्योगशील है। इस पृथ्वीपर बलवान् दैत्यराज कंग कुछ और भी करना चाहता है। अतः आप दोनोंको जगत्का अक्षय कल्याण करनेके लिये वहां अवश्य चलना चाहिये। आप दोनों प्रभुओंके विना सत्पुरुषोंका कोई भी कार्य सिद्ध नहीं हो सकता ॥ १७-२० ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! अकूरजीकी बात सुनकर बलरामसहित भगवान् श्रीकृष्णने नन्दराजजी सलाह लेकर कार्यकर्ता गोपोंमें इस प्रकार कहा ॥ २१ ॥

श्रीभगवान् बोले—वन्धुओ ! वंड-बूढ़े गोपोंके साथ बलरामसहित मैं तथा नन्दराज भी मथुरा जायेंगे। नवों नन्द और उपनन्द तथा छहों वृषभानु सब लोग प्रातःकाल उठकर मथुराकी यात्रा करेंगे; अतः तुम सब लोग दही, दूध और भी आदि गोरस एकत्र करो। उसके साथ राजाजों देनेके लिये अन्यान्य उपायन भी होंगे। छकड़ोंके साथ रथोंको भी ठीक-ठाक करके शीघ्र तैयार कर लो ॥ २२-२४ ॥

नारदजी कहते हैं—यह सुनकर कार्य करनेवाले सब गोपोंने धर-धरमें जाकर गोपियोंके सुनते हुए वह सारा कथन ज्यो-का-न्द्रों दोहरा दिया। यह सुनकर गोपियोंका हृदय उद्धृत हो उठा। वे भावी विरहकी आशाङ्कामें विहल हो गयीं और धर-धरमें एकत्र हो, वे सबकी सब परस्पर इसी विषयकी वातें करने लगीं। नृपेश्वर ! महात्मा श्रीकृष्णके प्रस्थानकी यह वात वृषभानुवरके भी धरमें पहुँच गयी। ‘प्रियतम चले जायेंग—’ यह समाचार भरी सभामें अकस्मात् सुनकर वृषभानुनिदिनों अत्यन्त दुःखित हो गयीं। वे हवाकी मारी हुई कदलीकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ीं और सूर्यित हो गयीं। किन्हीं गोपियोंकी मुखश्री अत्यन्त मलिन हो गयी। हाथकी अङ्गूठियाँ कलहियोंके कंगन बन गयीं। उनके केदोंके बन्धन ढीले हो गये और उनमें गुँथे हुए पूल शीघ्र हाशियेल होकर गिर पड़े। वे गोपियाँ चिन्न-लिंगी-नी लड़ा रह गयीं। नृपेश्वर ! कुछ गोपियों अपने धरमे ‘श्रीकृष्ण गोविन्द हरे सुरों—’ यों कहती हुई अत्यन्त विहल हो गयीं और धरके सारे काम-काज छोड़कर योगीकी

माँति ध्यानानन्दमें मन हो गया । राजन् ! कुछ गोपियाँ समर्थ रहीं, वे एकत्र हो, एक साथ आपसमें इस प्रकार बातें करने लगीं । बात करते समय उनके कण्ठ गद्दद हो गये थे और वाणी लङ्खलङ्ख रही थी । उनके नेत्रोंसे स्वतः अशुभारा प्रवाहित होने लगी ॥ २५-३१ ॥

गोपियाँ बोलीं—अहो ! अत्यन्त निर्मांही जनका चरित्र बड़ा विचित्र होता है । वह कहनेयोग्य नहीं है ।

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुरासप्तके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें ‘अकृतका आगमन’ नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

श्रीकृष्णका गोपियोंके घरोंमें जाकर उन्हें सान्त्वना देना तथा मार्गमें रथ रोककर खड़ी हुई गोपाङ्गनाओंको समझाकर उनका मथुरापुरीकी ओर प्रस्थित होना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार कहती हुई गोपाङ्गनाओंके अत्यन्त विरह-क्षेत्राको जानकर भगवान् श्रीकृष्ण उन सबके घरोंमें गये । मिथिलेश्वर ! जितनी ब्रजाङ्गनाएँ थीं, उतने ही रूप धारण करके भगवान् श्रीहरिने स्वयं सबको पृथक्-पृथक् समझाया । श्रीराधाके भवनमें जाकर देखा कि वे सखियोंसे धिरी हुई एकान्त स्थानमें मूर्छित पड़ी हैं; तब उन्होंने मधुर स्वरमें मुरली बजायी । बंशीकी ध्वनि सुनकर श्रीराधा सहसा आतुर होकर उठी । उन्होंने आँख खोलकर देखा तो श्रीगोविन्द सामने उपस्थित दिखायी दिये । जैस पद्मिनी कमलिनी-कुल-बहूदभ सूर्यका दर्शन करके प्रसन्न हो जाती है, उसी प्रकार पद्मिनी नायिका श्रीराधा अपने प्राणबलन् तो सामने देखकर आनन्दमें मग्न हो गयी और उन्होंने उठकर वहाँ पधारे हुए इयाम-सुन्दरके लिये सादर आसन दिया । कमलनयनी श्रीराधाके मुखपर अँसुओंकी धारा वह रही थी । ये अत्यन्त दोन होकर शोक कर रही थीं, अतः भगवान्ने मेषके समान गम्भीर वाणीयं उनसे कहा ॥ १-६ ॥

श्रीभगवान् बोले—भद्रे ! राधिके ! तुम्हारा मन उदास क्यों है ? तुम इस तरह शोक न करो । अथवा मेरी मथुरा जानेकी हँडा सुनकर तुम विरहसे व्याकुल हो उठी हो ! देखो, ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे मैं इस पृथ्वीका भार उतारने और कंसादि असुरोंका संहार करनेके लिये तुम्हारे साथ इस भूतल्यर अवतीर्ण हुआ हूँ । अतः अपने अवतार-

निर्मांही मनुष्य मुँहसे तो कुछ और कहता है, परंतु हृदयमें कुछ और ही भाव रखता है । उसके मनकी बात तो देवता भी नहीं जानता, फिर मनुष्य कैसे जान सकता है ? रासमें इन्होंने जो-जो बात कही थी, उस सबको अधूरी ही छोड़कर वे चले जानेको उच्छत हो गये हैं । अहो ! हमारे इन प्राणवल्लभके मथुरापुरी चले जानेपर इस सबको कौन-कौन-सा कष्ट नहीं होगा ॥ ३२-३३ ॥

के उद्देश्यकी सिद्धिके लिये मैं मथुरा अवश्य जाऊँगा और भूमिका भार उतारूँगा । तत्पश्चात् शीघ्र यहाँ आऊँगा और तुम्हारा मङ्गल करूँगा ॥ ७-९ ॥

नारदजी कहते हैं—जगदीश्वर श्रीहरिके यों कहनेपर वियोगाविहँला श्रीराधा दावानलसे दध लताकी माँति मूर्छित हो गयी और उनमें कम, रोमाञ्च आदि सात्त्विक भाव प्रकट हो गये । उस अवस्थामें वे अपने प्राणवल्लभसे बोलीं ॥ १० ॥

श्रीराधाने कहा—प्राणनाथ ! तुम पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवश्य मथुरापुरीको जाओ, परंतु मेरी इस निश्चित प्रतिज्ञाको भी सुन लो । यहाँसे तुम्हारे चले जानेपर मैं श्रीराधको कदापि धारण नहीं करूँगी । यदि तुम मेरी इस प्रतिज्ञा या शपथपर ध्यान नहीं देते हो तो दूसरी बार पुनः अपने जानेकी बात कहकर देख लो । मैं तुरंत कथाशेष हो जाऊँगी । मेरे प्राण अधरोंकी राहसे निकल जानेको अत्यन्त आकुल है, ये कपूरकी धूलि-कणोंके समान शीघ्र ही उड़ जायेंगे ॥ ११-१२ ॥

श्रीभगवान् बोले—राधिके ! मैं वेदस्वरूपा अपनी वाणीको तो टाल देनेमें समर्थ हूँ, किंतु अपने भक्तोंके बचनकी अवहेलना करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है । पूर्णकालमें गोलोकमें जो कलह हुआ था, उस समय दिये गये श्रीदामा-के शापसे मेरे साथ तुम्हारा दौ बर्षोंतक विषेग अवश्य

हीया—इसमें संशय नहीं है। कस्याणि ! राधिके ! शोक न करो। मैंने तुम्हें जो बरदान दिया है, उसको स्मरण करो। प्रत्येक भास्त्रमें वियोग-दुःखकी शान्तिके लिये एक दिन मेरा दर्शन तुम्हें प्राप्त होगा ॥ १३—१५ ॥

श्रीराधाने कहा—हरे ! प्रत्येक मासमें एक दिन मेरी वियोग-व्यथाको शान्त करनेके लिये यदि तुम दर्शन देने नहीं आओगे तो मै असद्ग दुःखके कारण अपने प्राणोंको अवश्य स्थाग दूँगी। लोकाभिराम ! जनभूषण ! विद्वदीप ! मदनमोहन ! जगत्के पाप-तापको हर लेनेवाले ! आनन्दकंद ! यदुकुलनन्दन ! नन्दकिशोर ! आज मेरे सामने अपने आगमनके विषयमें शापथ खाओ ॥ १६—१७ ॥

श्रीभगवान् बोले—रम्भोरु राधे ! यदि तुम्हारे वियोग-कालमें प्रतिमाम एक दिन मै तुम्हें दर्शन देनेके लिये न आऊं तो मेरे लिये गौअंको शपथ है। मैंने यहाँ जो कुछ कहा है, मेरे उस वचनको तुम संशयरहित और निष्कपट समझो। जो चिना किसी हेतुके निष्कल भावसे मैत्रीको निभाता है, वही पुरुष धन्यतम है। जो मैत्री स्थापित करके कपट करता है, वह स्वार्थस्त्वी पटमें आच्छादित लम्पट नटमात्र है, उस खिकार है। जैसे यहाँ कर्मनिद्रियों रस, रूप, गन्ध, स्पर्श एवं शब्दको नहीं जान पाती, उसी प्रकार जो सकाम भाव रखनेवाले मुनि हैं, वे उस निरपेक्षस्वरूप एवं निर्गुण गूढ़ परम सुखको किञ्चिन्मात्र भी नहीं जानते। जो लोग समदर्शी, जितेन्द्रिय, अपेक्षारहित एवं महान् संत हैं, वे ही उस कामनारहित भेरे परम सुखका अनुभव करते हैं—ठीक उसी तरह, जैसे ज्ञानेन्द्रियों ही रस आदि विषयोंको जान पाती हैं। भामिनि ! मनके सारे भाव पारस्पारिक हैं—एक-दूसरेकी अपेक्षा रखते हैं। इसलिये किंगों एक ही तरफसे ग्रीति नहीं होती; दोनों ही ओरसे हुआ करती है। अतः सबको अपनी ओरसे भेरे प्रति प्रेम ही करना चाहिये। इस भूतल्पर प्रेमके समान दूसरी कोई वस्तु नहीं है। राधे ! जैसे भाण्डीर-चनमें तुम्हारा मनोरथ सफल हुआ था, उसी प्रकार फिर होगा। सत्पुरुषोदारा जिस हेतुरहित प्रेमका आभ्य लिया जाता है, उसे भी संत-महात्मा निर्गुण ही मानते हैं। जो लोग तुम राधिका और मुक्त केशवमें दृष्टी प्रकार भेदकी कल्पना नहीं करते, जिस प्रकार दुर्घ

और उसकी धबलतामें भेद सम्भव नहीं है, वे निष्काम भावके कारण उद्दीप हुई भक्तिसे युक्त महात्मा पुरुष ही मेरे उस ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं। रम्भोरु ! जो कुछुदि मनुष्य इस भूतल्पर तुम्हारा राधिका और मुक्त केशवमें भेद-द्विष्ट रखते हैं, वे जगत्क चन्द्रमा और सूर्यकी सत्ता है, तबतक कालमूत्र नरकमें पड़कर दुःख भोगते हैं ॥ १८—२५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार श्रीराधा तथा समस्त गोपीगणोंको आऽवासन दे नीतिकुशल भगवान्, गोविन्द नन्दभवनमें लैट आये। तदनन्तर सूर्योदय होनेपर नन्द आदि गोप छकड़ोदारा भेट-सामग्री भेजकर, स्वयं रथारुद्ध हो, वे सबके सब श्रीमथुरापुरीको गये। राजन् ! बलराम और श्रीकृष्णके साथ अपने रथपर आरुद्ध हो, गान्दिनीपुत्र अकूरने मधुरापुरीके दर्शनके लिये उद्यत हो वहाँम प्रस्थान किया। मार्गमें कोटि-कोटि गोपाङ्गनाएँ खड़ा हो, कोध और मोहसे विछल होकर श्रीकृष्णका ब्रजसे प्रस्थान देख रही थीं। वे अकूरको 'कूर कूर' कहकर पुकारती हुई कठु वचन सुनाने लगीं और जैसे बादल सूर्यको आच्छादित कर देते हैं, उसी प्रकार गोपियोंके समुदायने अकूरके रथको चारों ओरसे धेर लिया। राजन् ! भगवान्के विरहसे व्याकुल हुई गोपियोंने अकूरके रथको, उनके घोड़ोंको और मारथियोंकी भी लाठियोदारा जोर-जोरमें पीटना आरम्भ किया। लाठियोंके प्रहरमें घोड़े वहाँ इधर उधर उछलने लगे। गोपियोंकी दो अंगुलियोंकी चोटसे सारथि उस रथसे नीचे जा गिरा। लोक-लज्जाको तिलाङ्जलि दे, गोपियोंने बलराम और श्रीकृष्णके देवते-देवते अकूरको बल्गुर्वक रथमें नीचे स्थान लिया और अपने कंगनांसे उनके ऊपर चोट करना आरम्भ किया। गोपी-समुदायकी वह सेना देवतकर बल्यामहित भगवान् श्रीकृष्णने गान्दिनीनन्दन अकूरकी रक्षा करके गोपाङ्गनाओंको समझाया—‘ब्रजाङ्गनाओ ! चिन्ता न करो। मैं आज संभ्याको ही लैट आऊँगा। इन अकूरजीके सामने त्रजवासी हमारी हँसी न उड़ावें, ऐसा प्रथल तुम्हें करना चाहिये’ ॥ २६—३५ ॥

यों कहकर बलदेवजी तथा अकूरके साथ श्रीकृष्ण सुन्दर वेगशाली अदबोंकी सहायतासे रथसहित उस मधुरापुरीकी ओर चल दिये, जो यादबोंके समुदायसे मुश्यमित थी। जबतक उन्हें रथ, उसकी ज्वला अथवा

घोड़ोंकी दापसे उड़ायी गयी धूल दिखायी देती रही, जहाँ रही। श्रीहरिको कही हुई बातको बाद कहके उनके तबतक अत्यन्त मोहब्बत गोपियाँ पथपर ही चिन्ह-विलित-सी मनमें पुनर्मिलनकी आशा बँध गयी थी ॥ ३६-३७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्भसंहितामें श्रीमथुराशङ्कके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाद्य-संबद्धमें श्रीकृष्णका
मथुरापुरीको प्रयाण^१ नमक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

अक्षरको भगवान् श्रीकृष्णके परब्रह्मस्वरूपका साक्षात्कार तथा उनकी स्तुति; श्रीकृष्णका

ग्वालबालोंके साथ पुरी-दर्शनके लिये जाना, नागरी स्त्रियोंका उनपर भोगित होना

तथा भगवान्‌के हाथसे एक रजकका उद्धार

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! अक्षर और बलराम-जीके साथ मथुराके उपवनके पास पहुँचकर यमुनाके निकट रथ रोककर भगवान् श्रीकृष्ण उत्तर गये और यमुनाका जल पीकर पुनः रथपर आ गये। तब उन दोनों भाइयोंकी आशा ले अक्षरजी यमुनाजीमें नहानेके लिये गये और नित्य-नैमित्तिक कर्म करनेके लिये यमुनाके निर्मल जलमें उतरे। यमुनाजीका जल अगाध था, उसमें बड़ी-बड़ी भूंखरें उठ रही थीं। अक्षरजीने देखा, उसी जलमें बलराम और श्रीकृष्ण—दोनों भाई खड़े-खड़े परस्पर बातें कर रहे हैं। नरेश्वर ! यह देख अक्षरजी चकित हो उठे और रथपर जाकर देखा तो वहाँ भी वे दोनों बैठे दिखायी दिये। फिर जलमें आकर देखा तो वहाँ भी उनके दर्शन हुए। बलरामजी नागराज शोपके रूपमें कुण्डली मारकर बैठे थे और उनकी गोदमें लोकवन्दित परम प्रकाशमय गोलोक, गोवर्धन पर्वत, यमुना नदी, मनोहर बृन्दावन तथा असंख्य कोटि सूर्योंकी ज्योतियोंका प्रभावशाली मण्डल—ये क्रमशः परिलक्षित हुए। उसी व्योतिर्मण्डलमें रासमण्डलके भीतर कोटि-कोटि कामदेवोंके सौन्दर्य-माधुर्यको तिरस्कृत करनेवाले साक्षात् परिपूर्णतम पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण श्रीराधारानीके साथ वहाँ अक्षरके हृषिपथमें आये। तब श्रीकृष्णको परब्रह्म परमात्मा समझकर अक्षरने बारंबार उन्हें नमस्कार किया और दोनों हाथ जोड़कर अत्यन्त हर्षके साथ उनकी स्तुति आरम्भ की ॥ १-८ ॥

अक्षर बोले—असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधीश्वर तथा गोलोकधामके स्वामी परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार है। प्रभो ! आप श्रीराधाके प्राणबहूम तथा

क्रजके अधीश्वर हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। श्रीनन्द-नन्दन तथा माता यशोदाको आमोद प्रदान करनेवाले श्रीहरिको नमस्कार है। देवकीपुत्र ! गोविन्द ! बालुदेव ! जगदीश्वर ! यदुकुल-तिलक ! जगब्राय ! पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है। मेरी बाणी सदा आपके गुणोंके वर्णनमें लगी रहे। मेरे कान आपकी कथा सुनते रहे। मेरी भुजाएँ आपकी प्रसन्नताके लिये कर्म करनेमें तहसीन रहे। मन सदा आपके चरणारविन्दीका चिन्तन करे तथा दोनों नेत्र आपके प्रकाशमान एवं भव्य धामविशेषके दर्शनमें संलग्न हों॥ ९-१२ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! जब इस प्रकार चकित होकर भगवान्‌का वैभव देखते हुए अक्षरजी इस प्रकार स्तुति कर रहे थे, उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण अपने लोकसहित वहाँ अन्तर्धान हो गये। तब उन्हें नमस्कार करके नैयितिक कर्म पूर्ण करनेके पश्चात् अक्षर श्रीकृष्णको परब्रह्मस्वरूप जानकर विस्मयपूर्वक रथपर आये।

* नमः श्रीकृष्णचन्द्राय परिपूर्णतमाय च ।

असंख्याण्डाधिष्ठनये गोलोकपनये नमः ॥

श्रीराधारानये तुम्यं ब्रजाधीशाय ते नमः ।

नमः श्रीबद्धपुत्राय यशोदानन्दनाय च ॥

देवकीसुन गोविन्द बालुदेव जगत्पते ।

यदूतम जगब्राय पाहि मां पुरुषोत्तम ॥

बाणी सदा ते गुणवर्णने स्याद् ।

कृणी कृष्णी समदोष कर्मणि ।

मनः सदा त्वचरणारविन्दीम् ॥

ईश्वरी सुरक्षामविशेषहने ॥

(गण०, मधुरा० ५। ९-१२)

बनवत् गम्भीर नाद करनेवाले उस बायुवेगशाली रथके
द्वारा अकूरने बल्लाम और श्रीकृष्णको दिन छबते-छबते मधुरा
पहुँचा दिया । वहाँ नगरके उपवनमें नन्दराजको देखकर
बहुतम भगवान् श्रीकृष्ण हँसते हुए मेघके समान गम्भीर
वालीमें अकूरजीने चोले ॥ १३-१६ ॥

श्रीभगवान्स्तु कहा—मानद ! अब आप अपने
रथके द्वारा मधुरापुरीमें पधारें । मैं पीछे ग्वाल-बालोंके
साथ आऊँगा ॥ १७ ॥

अकूरने कहा—देवदेव ! जगन्नाथ ! गोविन्द !
पुरुषोत्तम ! प्रभो ! आप अपने बड़े भाई तथा ग्वालों-
सहित मेरे घरपर चलें । जगत्पते ! अपने चरणारविन्दोंकी
धूलसे आज मेरा घर पवित्र कीजिये । मैं आपको साथ
लिये बिना अपने वर नहीं जाऊँगा ॥ १८-१९ ॥

श्रीभगवान्स्तु कहा—अकूरजी ! मैं यदुवंशीयोंके वैरी
कंसको मारकर बल्लामजी तथा गोप-वन्धुओंके साथ आपके
भवनमें अवश्य आऊँगा और आपका प्रिय करूँगा ॥ २० ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण वहीं
ठहर गये और अकूरने मधुरापुरीमें प्रवेश किया । वहाँ
कंसको श्रीकृष्णके आगमनका समाचार देकर वे अपने घर
चले गये । दूसरे दिन बल्लाम और गोप-बालोंके साथ
मधुरापुरीको देखनेके लिये उद्यत हुए गोविन्दकी ओर
देखकर नन्दने वह चात कही ॥ २१-२२ ॥

वत्स ! सीधी नगहने मधुरापुरीको देखकर तुम सब
लोग लौट आना । इमेरे गोकुल न समझोः यहाँ कंसका
महाभयंकर राज्य है । 'बहुत अच्छा'—कहकर भगवान्
श्रीकृष्ण नन्दद्वारा प्रेरित वडे बूढ़े ग्वालों और ग्वालबालोंके
साथ पुरीमें गये । बल्लामजी भी उनके साथ थे । दुग्धमें
दुक वह पुरी स्वर्ग एवं रक्षजटित सुन्दर गहों तथा
गरनस्तुती महलोंमें देखताओंकी राजधानी अमरावतीके
समान शोभा पाती थी । यमुनाके तटपर रक्षोंकी सीढियों
बनी थी । वहाँ चब्बल लहरोंका कौदूहल देखते ही बनता
था । उन सबसे तथा हित्य नर नारियोंसे युक्त वह नगरी
अलकापुरीके समान शोभा पा रही थी । मधुरापुरीकी
शोभा निहारते और धनियोंके भवनोंको देखते हुए
श्रीकृष्ण ग्वाल-बालोंके साथ राजमार्ग (मुख्य सड़क) पर
आ गये ॥ २३—२७ ॥

बसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके आगमनका समाचार सुनकर

मधुरापुरीकी लियाँ, जो उनके विषयमें बहुत कुछ सुन
तुकी थीं, मारे काम-काज और शिशुओंको भी छोड़कर उन्हें
देखनेके लिये इस प्रकार दौड़ीं, मानो नदियाँ समुद्रकी ओर
भागी जा रहा हो । कुछ लियाँ महलोंकी छतसे, कुछ
जालीदार झरोल्वोंके छेदमें, कोई ओह दीवारोंकी ओटसे,
कोई लिंगियोंपर लो हुए पर्दे हटाकर और कुछ नारियाँ
दरवाजेके किवाहोंमें बाहर निकलकर घरके चबूतरोंपरसे
उन्हें देखने लगीं । भगवान् श्रीकृष्णका एक चब्बल कुन्तल-
भाग उनके मुखपर लटक रहा था, मानो उन्होंने अपने
सामनेवाले मनुष्योंके मनको हर लेनेके लिये उसे धारण
किया था तथा दूसरा कुन्तल भाग उन्होंने मुकुटके नीचे
दबाकर पीछेकी ओर लटका दिया था, मानो पंछेमें आनेवाले
लोगोंके मनको मोहनके लिये उसे उन्होंने पृष्ठभागकी ओर
धारण किया था । उनका आशा पाताम्बर रूपरं बँधा हुआ
चमक, रहा था और आधा कंधपर पड़ा नील भेघमें
विद्युतका नीं ओभा धारण कर रहा था । राजन् ! उन्होंने
अपने एक हाथमें कमल और वशःस्थलमें बैजयन्ती माला
धारण कर रखवी था । कानोंमें नर्वान मकराकार कुण्डल
पहने तथा बालसूर्यके समान कान्तिमान् सोनेके बाजूबंद-
सं विभूषित बाहुमण्डलवाले, असंख्य ब्रह्माण्डाधिपति
परात्पर भगवान् बसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको देखकर समस्त
पुरावासिनी लियों मोहित हो गयीं ॥ २८—३२ ॥

नारदी लियाँ बोलीं—अहो ! वह बृन्दावन कैसा
रमणीय है, जहाँ त्रे नन्दनन्दन स्वयं निवास करते हैं ।
वे समस्त गोपगण भी धन्य हैं, जो प्रतिदिन इनके मनोहर
रूपका दर्शन करते रहते हैं । वे गोपाङ्गनाएँ भी धन्य हैं—न
जाने उन्होंने कौन-सा पुण्य किया है, जो राम-रङ्गमें वे बारंबार
उनके अधरामृतका पान किया करता है ॥ ३३-३४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! उस राजमार्गपर
एक कपड़ा रँगनेवाला रजक जा रहा था । वह वडा घमंडी
और उन्मत्त जान पड़ता था । ग्वालबालोंकी अनुमतिसे
मधुसूदनने उसमे कहा—मेरे महाकुद्धिमान् मित्र ! हमारे
लिये सुन्दर वस्त्र दो; यदि दे दोगे तो तुम्हारा परम
कल्याण होगा, इसमें संशय नहीं है । वह रजक कंसका
मेवक और वडा भारी दुष्ट था । श्रीकृष्णकी बात सुनकर
घृतसे अभिषिक्त अभिका भाँति वह अस्वत्त रोपसे प्रज्वलित
हो उठा और उस राजमार्गपर माधवसे इस प्रकार
बोल ॥ ३५—३७ ॥

रजकले कहा—ओर ! तुम्हरे बाप-दादोंने
ऐसे ही बड़ धारण किये हैं क्या ? उद्गुण ग्वाल-बालो !
व्या तुम्हारे पूर्वज कौपीनधारी नहीं ने ? जंगलमें रहनेवाले
गोपो ! यदि जीवन चाहते हो तो तुम सब के-सब नगरमें
निकल जाओ ; अन्यथा वस्त्रकी चोरी करनेवाले तुम
इस लोगोंमें मैं जेलमें बंद करा दूँगा ॥ ३८ ३९ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस तरहकी वातें
करनेवाले उस रजकके मस्तकको यदुकुल-तिलक श्रीकृष्णाने
खेल-खेलमें हाथके अग्रभागमें ही भरोड़ दिया । विदेहराज !
उसके शरीरकी ज्योति घनश्याम श्रीकृष्णमें लीन हो गयी ।
राजन् ! फिर तो उसके समस्त अनुगामी संघक बलोंके
गहर वहीं छोड़कर उसी तरह सब ओर भाग गये, जैसे
शरक्तालमें हवाके वेगमें बादल छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ।

इस प्रकार श्रीगर्भसंहितामें श्रीमथुरात्मणके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्श-संवादमें श्रीकृष्णका
मथुरामें प्रवेश नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

—४७—

छठा अध्याय

**सुदामा माली और कुब्जापर कृपा; धनुर्भज्ञ तथा मथुराकी स्त्रियोंपर
श्रीकृष्णके मथुर-मोहन सूपका प्रभाव**

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर ग्वाल-
बालोंसहित नन्दनन्दन श्रीकृष्ण और बलराम सुदामा
नामवाले एक मालीके घर गये, जो पूलोंके गजरे बनाया
करता था । उन दोनों भाइयोंको देखने ही माली उठकर
खड़ा हो गया । उसने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और
फूलके सिंहासनपर विठाकर गद्दद बाणीमें कहा ॥ १-२ ॥

सुदामा बोला—देव ! यहाँ आपके शुभागमनमें
मेरा कुछ तथा धर दोनों धन्य हो गये । मैं ऐसा समझता
हूँ कि मेरी माताके कुलकी सात पीढ़ियाँ, पिताके कुलकी
सात पीढ़ियाँ तथा पलीके कुलकी भी सात पीढ़ियाँ वैकुण्ठ-
लोकमें चली गयीं । आप दोनों परिपूर्णतम परमेश्वर हैं
और भूतलका भार उतारनेके लिये इस यदुकुलमें अवतीर्ण
हुए हैं । मुझ दीनातिदीनके घर आये हुए आप दोनों
भाइयोंको नमस्कार है । आप परात्पर जगदीश्वर हैं ॥ ३-४ ॥

* धन्यं कुलं मे भवनं च अम्ब

त्वयाते देव कुलानि सप्त ।

उन बलोंमेंसे बलराम और श्रीकृष्ण अपनी पसंदके
कपड़े लेकर जब खड़े हो गये, तब शोष बलोंको ग्वाल-
बालों तथा अन्य राहगीरोंने ले लिया । उन बलोंको कैसे
पहनना चाहिये, यह बात ग्वालबाल नहीं चानते थे । असः
बलराम और श्रीकृष्णके देसते-देसते वे उन सुन्दर बलोंको
अस्त-न्यस्त ढंगसे पहनने लगे । इसी समय एक बालकने
उन दोनों भाइयोंको देखकर विचित्र बण्डाले बलोंको धारण
कराकर श्रीकृष्ण और बलदेवके दिव्य वेष बना दिये ।
राजन् ! इसी तरह अन्य गोप-बालोंको भी यथोचित बल
पहनाकर उसने बड़ी भक्तिसे श्रीकृष्णका पुनः दर्शन किया ।
उस बालकपर प्रसन्न हो भगवान् ने उसे अपना साल्प्य
प्रदान किया तथा बलदेवजीने भी पुनः उसे बल, लक्ष्मी
और ऐश्वर्य दिये ॥ ४०-४६ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! यो कहकर मालीने
पुष्पनिर्मित सुन्दर हार और भ्रमरोंकी गुंजारसे निनादित
मकरन्द (इत्र, फुलेल आदि) निवेदन करके प्रणाम
किया । बलरामसहित भगवान् श्रीहरिने उस पुष्पराशिको
धारण करके निकटवर्ती गोपोंको भी दिया और हँसते हुए
मुखसे उस मालीसे बोले—‘सुदामन् ! मेरे चरणारविन्दीमें
सदा तुम्हारी गुरुतर भक्ति बनी रहे, मेरे भक्तोंका सङ्ग
प्राप्त हो और इसी जन्ममें तुम्हें मेरे स्वरूपकी प्राप्ति हो जाय ।’
तदनन्तर बलदेवजीने भी इसे उसके कुलमें निरन्तर बढ़ने-
वाली लक्ष्मी प्रदान की । राजन् ! फिर वे दोनों भाई-

मातुः पितुः सह तथा प्रियाया

बैकुण्ठलोकं गतवन्ति मन्ये ॥

भूमरामाद्युम्भं यदोः कुले

जाती सुधा पूर्णतमी परेश्वरै ।

नमो शुक्लम्बा मम शीलदीनं

गृहं गताम्बा जादीश्वरै परौ ॥

(गण०, मथुरा० ६ । ३-४)

वह कठोर अनुष्ठ एक अस भारके समान भारी था और चतुर्दशी तिथिको पुरवासियोदारा पूजित हो यह मण्डपमें स्थापित किया गया था। पूर्वकालमें भगुकुलनन्दन परशुरामजीने राजा यदुको वह अनुष्ठ दिखा था। मात्र भीकृष्णने उसे देखा; वह कुंडली मारकर बैठे हुए शोषनागके समान प्रतीत होता था। लोग मना करते रह गये, किंतु श्रीकृष्णने हठपूर्वक उस अनुष्ठको उठा लिया और पुरवासियोंके देखते-देखते खेल-खेलमें उसके ऊपर प्रत्यक्षा चढ़ा दी॥ २६—३०॥

राजन् ! फिर श्रीहरिने अपने भुजदण्डोंसे उस अनुष्ठको कानतक खाँचा और जैसे हाथों ईखके ढंडेको तोड़ डालता है, उसी प्रकार उसको बीचसे खण्डित कर दिया। दूटते हुए उस अनुष्ठकी टंकार विजलीकी गड़-गड़ाइटके समान प्रतीत हुई। इससे 'भू'आदि सात लोकों द्वारा सातों पातालोंसहित सारा ब्रह्माण्ड गूंज उठा, दिग्गज विचलित हो गये, तारे दूटने लों, भूखण्ड-मण्डल कौप उठा, शृंगीर रहनेवाले लोगोंके कान तत्काल बहरे से हो गये। वह शब्द दो धड़ीतक कंसके हृदयको विदीर्ण करता रहा। उस अनुष्ठकी रक्षा करनेवाले आततायी असुर अत्यन्त कुपित होकर उठे और श्रीकृष्णको पकड़ लेनेकी इच्छाएं परस्पर कहने लो—'वाँध लो इसे।' उन्हे सशक्त आकर्षण करते देख बल्याम और श्रीकृष्णने अनुष्ठके दोनों हुकड़े छेकर उन दुर्मद दैत्योंको बड़े बेगसे पीटना आरम्भ किया। अनुष्ठ-खण्डोंके अत्यन्त प्रबल प्रहारसे कितने ही बीर तत्काल मूर्छित हो गये, किन्हींके पॉव टूटे, किन्हींके नख फूटे और कितनोंहीके कंधे एवं बाहुदण्ड खण्डित हो गये। इस प्रकार पॉच इजार दैत्यवीर भूमिपर प्राणशूद्य होकर सो गये। समस्त मथुरावासियोंमें हलचल मच गयी। बहुत-से लोग उस घटनाको देखनेके लिये दौड़े आये। नगरीमें सब ओर कोलाहल होने लगा और वहाँके लोगोंके मनमें बड़ा भारी भय समा गया। भोजराज कंसके अभासणपका छव अकस्मात् दूटकर गिर पड़ा॥ ३१—३८॥

इस प्रकार श्रीगर्ज-सहितमें श्रीमथुरावासियोंके अन्तर्गत नारद-चहुलाश्व-संवादमें 'मथुरादर्शन'

नामक उठा अस्याय पूरा हुआ॥ ६॥

मनुष्य ! म्याल-बालों तथा कर्मामलोंके साथ श्रीकृष्ण संघर्षके समय अनुष्ठानमें अन्दराजाके निकट आ गये, मानो वे अत्यन्त डर गये हैं। गोविन्दको वह अद्भुत सुन्दर रूप देखकर मथुरापुरीकी वाविताएँ विशेषज्ञसे मोहित हो गयीं। उनके बब्ल खिसक गये, गूँथी हुई चोटियाँ ढीली पह गयीं, हृदयमें प्रेमजनित पीड़ा आग उठी और वे अपनी तखियोंसे परस्पर इस प्रकार कहने लगीं॥ ३९-४०॥

पुरलियाँ बोलीं—तखियो ! करोड़ों कामदेवोंकी कान्ति धारण किये श्रीहरि बड़ी उतावलीके साथ मथुरापुरीमें सच्छन्द विचरने लो हैं और जिन-किन्हीं युवतियोंने उन्हें देखा है, उन हम-जैसी सभी लियोंके समस्त अङ्गोंमें वे अनङ्ग बनकर समाविष्ट हो गये हैं॥ ४१॥

कुछ चतुरा लियोंने कहा—इस पुरीमें ऐसी कूर लियाँ नहीं हैं, जो अनङ्गमोहन श्रीकृष्णके सारे अङ्गोंको घूर-घूरकर देखती हैं ? हम सब उन परमानन्दसब सर्वाङ्गसुन्दर श्रीकृष्णको भर आँख नहीं निहारतीं ! सखी ! किसीके किसी एक ही अङ्गमें सौन्दर्य-माधुर्य दिलायी देता है और वहों हमारे नेत्र पतंगके समान दृट पड़ते हैं; परंतु जो सर्वाङ्गसुन्दर एवं मनोहर हैं, उन्हें केवल नेत्रसे पूर्णतया कैसे देखा जा सकता है ? नन्दनन्दनका अङ्ग-अङ्ग सुन्दर है; उसमें जहाँ-जहाँ भी हाथि पड़ती है, वहीं-वहीं परम सुख पाकर बहाँ-बहाँसे लौटनेका नाम नहीं लेती। वे लावण्यके महासागर हैं। उनमें हमारा चित्र किस तरह लगा है, मानो उसीमें हूब गया हो॥ ४२-४४॥

मिथिलेश्वर ! नगरकी जिन लियोंने दिनमें ब्रजराज-नन्दनको देखा, उन्होंने स्वप्नमें भी उन्हींका दर्शन किया। फिर जिन्होंने रात्रमण्डलमें उनके साथ रासलीला की, वे गोपाङ्गनाएँ उनके मधुर मनोहर रूपका कैसे निरन्तर सारण न करें॥ ४५॥

२६ फलेर भयुप इक चाल मारके उमान भरी था और
चाहियों त्रिधियों पुरवासियोंद्वाय पूजित हो यहमध्यस्मै
सापित किया गया था । पूर्वकालमें भयुपाशनस्वयं
भयुपाशनीने राजा यदुको वह भयुप दिया था । मात्र
भीकृष्णने उसे देखा; वह कुँडली मारकर बैठे हुए
शीकायके समान प्रतीत होता था । लोग मना करते रहे
गये, किंतु श्रीकृष्णने हठपूर्वक उस भयुषको उठा लिया
और पुरवासियोंके देखते-देखते सेल-सेलमें उसके ऊपर
प्रत्यक्षा चढ़ा दी ॥ २६—३० ॥

राजन् ! फिर श्रीहरिने अपने भुजदण्डोंसे उस
भयुषको कानतक खाँचा और जैसे हाथी इसके डंडेको
तोड़ डाल्ता है उसी प्रकार उसको बीचसे खण्डित कर
दिया । टूटे हुए उस भयुषकी टंकार किल्लीकी गङ्गा-
गङ्गाहटके समान प्रतीत हुई । इससे 'मूः'आदि सात लोकों
हथा सातों पातालोंसहित सारा ब्रह्माण्ड गैंग उठा, दिग्गज
विचलित हो गये, तार टूटने लगे, भूस्पृण्ड-मण्डल काँप
उठा, पृथ्वीपर रहनेवाले लोगोंके कान तत्काल छहरे से हो
गये । वह शब्द दो घड़ीतक कंसके हृदयको बिदीर्ण करता
रहा । उस भयुषकी रक्षा करनेवाले आतातार्थी असुर अत्यन्त
कुपित होकर उठे और श्रीकृष्णको पकड़ लेनेकी इच्छासे
परस्पर कहने लगे—'बाँध लो इसे' । उन्हें सशब्द आकर्षण
करते देख बलराम और श्रीकृष्णने भयुषके हाँगों दुक्कहे
केकर उन दुर्भद देखोंको बढ़े बेगसे पीटना आरम्भ किया ।
भयुष-खण्डोंके अत्यन्त प्रबल प्रहारसे कितने ही धीर
तत्काल मूर्छित हो गये, किन्तुके पाँव टूटे, किन्तुके
नख पूटे और कितनोंहीके कंधे एवं बाहुदण्ड स्पष्ट हो
गये । इस प्रकार पाँच इजार दैत्यवीर भूमिपर ग्राणत्यू
होकर सो गये । समस्त मयुरावासियोंमें हलचल मच गयी ।
बहुत से लोग उस घटनाको देखनेके लिये दौड़े आये ।
जगतीमें सब और कोवाहल होने लगा और बहुँके
लोगोंके मनमें बहु भारी भय समझ गया । भोजराज कुंतके
समाप्तपक्ष कुश अक्षयाद् दृटकर गिर पड़ा ॥३१—३८॥

इस प्रकार श्रीगंगासहितमें श्रीमयुपाशणके अन्तमें नगद-नुलाश-संदादमें 'मयुरादर्शन'

नामक उठा अवसर पूरा हुआ ॥ ३ ॥

होता है । श्रीकृष्णने उपर विचारके बारे में श्रीकृष्ण
संघर्षके उपर भयुपाशनी अवृत्तप्रकार लिखा है यही वास्तव
के अवस्था वह नहीं है । जैसितरह वह श्रीकृष्ण दूष्पर वृ
देखकर मयुरपूरीकी वस्तिवार्द्ध विशेषतासे असहित हो गयी ।
उनके बाजा लिखकर गये, गौंथी हुई जैसीही लोकी वास्तव
गयी, हृदयमें श्रेमजानित प्रीढ़ा जाग उठी और वे अपनी
सखियोंसे परस्पर इस प्रकार कहने लगी ॥ ३९-४० ॥

पुरलियाँ बोल्हीं—सखियों । करोको कामदेवोंकी
कान्ति धारण किये श्रीहरि वही उतावलीके साथ मयुरपूरीमें
सच्छन्द विचरने लगे हैं और जिन-किन्हीं युवतियोंने उन्हें
देखा है उन इम-जैसी सभी लियोंके समस्त अङ्गोंमें
अनङ्ग बनकर समाविष्ट हो गये हैं ॥ ४१ ॥

कुछ चतुरा लियोंने कहा—कथा इस पुरीमें ऐसी
कूर लियों नहीं हैं, जो अनङ्गमोहन श्रीकृष्णके सारे अङ्गोंको
धूर-धूरकर देखती हैं ! हम उब उन परमानन्दस्व
रवाङ्गमसुन्दर श्रीकृष्णको भर आँख नहीं निहारतीं । सखी ।
किसीके लिये एक ही अङ्गमें सौन्दर्य-माधुर्य दिखायी देता
है और वहीं हमारे नेत्र पतंगके समान ढृट पड़ते हैं ।
परंतु जो सर्वाङ्गमसुन्दर एवं मनोहर हैं, उन्हें केवल नेत्रमें
पूर्णतया कैसे देखा जा सकता है ! नन्दननन्दनका अङ्ग-अङ्ग
सुन्दर है ; उसमें जहाँ-जहाँ भी हाथि पड़ती है, वहीं-वहाँ
परम सुख पाकर बहाँ-बहाँसे लौटनेका नाम नहीं लेती ।
वे लालण्डके महासागर हैं । उनमें हमारा चित्र किस तरह
लग्या है, मानो उसीमें छूब गया हो ॥ ४२-४४ ॥

मिथिलेभर ! नगरकी जिन लियोंने दिनमें ब्रह्मा-
नन्दनको देखा, उन्होंने स्वप्नमें भी उन्हींका दर्शन किया ।
फिर जिन्होंने रात्रमण्डलमें उनके साथ रासलीला की, वे
गोपाङ्गनायें उनके मधुर मनोहर रूपका कैसे निरन्तर संरक्ष
न करें ॥ ४५ ॥

सातवाँ अध्याय

शारदी-नीढ़ा-महोत्सवकी तैयारी; रङ्गदास्पर कुबल्यापीड़का वध तथा श्रीकृष्ण और बलरामका चाणूर और मुष्टिकके साथ मल्लयुद्धमें प्रवृत्त होना

शारदी कहते हैं—राजन! रजके मस्तकके छेदन, कम्बुचके भजन तथा रक्षकोंके वधका समाचार सुनकर कंसको बड़ा भय हुआ। तत्काल उसके सामने अपशकुन प्रकट हुए। उसके बायें अङ्ग फड़कने लो, उसे स्वप्नमें अपना अङ्ग-भङ्ग दिखायी देने लगा। इससे दैत्योंके राजा कंसको रातभर नींद नहीं आयी। उसने स्वप्नमें यह भी देखा था कि वह ब्रेतोंमें विरा हुआ है। उसके सारे शरीरमें तेल मला गया है तथा वह नंग-बहुंग जपाकुसुमकी माला पहने भैरोपर चढ़कर दक्षिण दिशाकी ओर जा रहा है॥ १-३॥

प्रातःकाल उठकर उसने कार्यकर्ताओंको बुलवाया और दृढ़-मङ्गलीड़ा-महोत्सव प्रारम्भ करनेकी आशा दी। सभा-मण्डपके सामने ही विशाल प्राङ्गणमें युक्त स्थानपर रङ्गभूमिकी रक्षना की गयी। बहाँ सोनेके खंभे लगाये गये, सुनहरे चौंदोवेताने गये और उनमें मोतियोंकी लड़ियाँ लटका दी गयीं। नरेश्वर! सुन्दर सोणांशु और सुवर्णमय मञ्जोंसे वह रङ्ग-भूमि बड़ी शोभा पाने लगी। राजाके लिये रसमय झुन्दर मञ्ज स्थापित किया गया। उसपर इन्हें लगाया गया। उस मञ्जपर इन्द्रका सिंहासन लगा दिया गया। उसके ऊपर सुन्दर विश्वावन और तकिये सुसज्जित कर दिये गये। चन्द्रमण्डलके समान मनोहर दिव्य छत्र तथा हीरेकी बनी हुई मूर्त्वाले हंसकी-सी आभासे युक्त अङ्गन और चामरोंसे सुरोमित विश्वकर्माद्वारा रचित वह दउ हाथ ऊँचा सिंहासन बड़ा ही चिंताकर्षक था। उसपर आखड़ हो राजा कंस पर्वत-शिखरपर बैठे हुए सिंहके समान शोभा पा रहा था। वहाँ गायकोद्वारा गीत गये जाने लो, बाराहनाएँ नृत्य करने लगीं और बदह, पटह, ताल, भैरी तथा आलक आदि वज्र बजने लगे॥ ४-१०॥

राजन! छोटे-छोटे मण्डलोंके शासक नरेश तथा नगर और जनपदके निवासी वहे लोग पृथक्-पृथक् मञ्जपर बैठकर मङ्गयुद्ध रेख रहे थे। चाणूर, मुष्टिक, कूट, शक और शैवक आदि परम्परान व्यायामोपयोगी मुद्राओं

युक्त हो परस्पर युद्धका अभ्यास कर रहे थे। कंसके द्वारा बुलाये गये नन्दराज आदि गोप मस्तक छुकावै राजाओं उत्तम भेट अर्पित करके एक-एक मञ्जना आश्रय ले बैठ गये। नरेश्वर! वहाँ युद्धराज कंसके लिये बाणासुर, जरासंध और नरकासुरके नगरसे भी उपहार आये। अन्य जो शम्भर आदि भूपाल थे, उनके पाससे भी यहुत-सी भेट-सामग्री आर्थी॥ ११-१४॥

तदनन्तर मायामें बालकरूप धारण किये बलराम और श्रीकृष्ण दोनों भाई मल्लोंके खेल देखनेके लिये उत्तर रङ्गगालमें आये। रङ्गमण्डपके द्वारपर कुबल्यापीड़ नामक हाथी बड़ा था, जिसके कुम्भखल्लर गोमूत्रमें उने हुए सिन्दूर और कस्तुरीसे पत्र-रचना की गयी थी। रसमय कुण्डलोंसे मणिहृत उम महामत गजराजके गणकालसे मद झर रहा था। द्वारपर हाथीको खड़ा देख श्रीकृष्णने महावतसे गम्भीर बाणीमें कहा—अरे! इस गजराजको दूर हट्या ले और मेरी इच्छाके अनुसार मार्ग देदे। नहीं तो तुक्को और तेरे हाथीको अभी भूतल्पर मार गिराऊंगा॥ १५-१८॥

तब कुपित हुए महावतने सम्पूर्ण दिशाओंमें जोर-जोरसे निशाङ्गते हुए उस मतवाले हाथीको नन्दननन्दन-पर आक्रमण करनेके लिये आगे बढ़ाया। गजराजने तत्काल ही श्रीहरिको सूँझसे पकड़कर उठा लिया। परंतु अपना भार अधिक बढ़ाकर श्रीहरि उसकी पकड़से बाहर निकल गये। जैसे बुन्दावनके निकुञ्जोंमें श्रीहरि इधर-उधर लुकते छिपते थे, उसी प्रकार इधर-उधर घूमकर वे कुबल्यापीड़के पैरोंके बीचमें छिप गये। हाथीने अपनी दैँह बढ़ाकर उन्हें पकड़ लिया, किंतु उसकी सूँझको दोनों हाथोंसे दबाकर श्रीहरि पीछेकी ओरसे निकल गये। तब हाथीने बरालकी दिशामें बूसकर उन्हें पकड़नेकी चेष्टा की, किंतु मार्गव उसके मस्तकपर मुक़फेसे महार करके आगेकी ओर भागे। बिदेहराज! उस गजराजने भागते हुए श्रीहरिका पीछा किया। उस समय मधुरामुखीमें बौद्धम प्रव गया। फिर श्रीहरि बहर, बैठक इधर

पीछेकी ओर निकल आये। उधर महावली बलदेवने जैव गुरु भर्तों पकड़ते हैं, उसी प्रकार अपने बाहुदण्डों से उसकी पूँछ पकड़कर उसे पीछेकी ओर खींचा। तब हँसते हुए भगवान् श्रीकृष्णने अपने दोनों हाथों से बलदेवके उसकी सूँझ पकड़कर उसी तरह आगे की ओर भीकृष्ण आवश्यक किया, जैसे मनुष्य कूर्से रस्सीको लीचता है। दृपेश्वर! उन दोनों भाइयोंके आकर्षणसे वह हाथी व्यकुल हो उठा। तब सात महावत बलपूर्वक उस हाथीपर चढ़ गये। साथ ही दूसरे महावत भी श्रीकृष्णका बध करनेके लिये तीन सौ हाथी वहाँ ले आये। महावतोंके अकुशकी चोट करनेसे कुपित हुआ वह मतवाला हाथी पुनः श्रीकृष्णकी ओर सपटा। तब बलदेवजीके देखते-देखते साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने उसकी सूँझ पकड़ ली और इधर-उधर धुमाकर उसे उसी प्रकार पृथ्वीपर दे मारा, जैसे कोई बालक कमण्डल छाप दे। उसपर चढ़े हुए सातों महावत इधर-उधर दूर आ गिरे और वहाँ जुटे हुए साधुपुरुषोंके देखते देखते वह हाथी प्राणशून्य हो गया। विदेहराज! उसके शरीरमें एक ज्योति निकली और श्रीघनश्याममें बिलीन हो गयी॥१९—३१३॥

महावली बलराम और श्रीकृष्णने उस हाथीके दोनों दॉत उताड़ लिये और जैसे दो सिंहके बच्चे बहुत-से मृगोंका संहार कर डालें, उसी प्रकार समस्त महावतोंको मौतके घाट उतार दिया। हाथीके मारे जानेपर जो अन्य महावत बचे थे, वे सब इधर-उधर भागकर उसी प्रकार छिप गये, जैसे वर्षाकाल व्यासीत हो जानेपर बादल जहाँ-के-तहाँ बिलीन हो जाते हैं। इच्छा कुबल्यारीइका बध करके पसीनेकी छँदों और हाथीके महारे अक्षित हुए बलराम और श्रीकृष्ण, दोनों बल्जु गोपों तथा शेष दर्शनार्थियोंके मुखसे अपनी अवश्यकार सुनते हुए बड़ी उतावलीके साथ रक्षालालमें भविष्य हुए। उस समय उन दोनोंके मुख अधिक परिअम्बके कारण लाल हो गये थे, उनके हाथोंमें हाथीके दॉत थे। वे दोनों दिव्याओंमें एक साथ चल्लेवाले अनिल और अनलकी भाँति बड़े बेगसे रक्षाभूमिमें पहुँचे। उस समय सल्लोंने उन्हें महामरुल समझा और नरोंने नरेन्द्र। नारियोंने उन्हें कामदेव माना और गोपीयोंमें बलका स्वामी। पिताकी हँसिये के पुण्य वन-

पे और दुष्टोंके एकत्रितीयसमाजके लमान असीत हुए। कलमे उनको अपनी शूलु उपस्था और जाती पुरुषोंने उन्हें विराट् भास्कर कर्मसे रूपमें देखा। उस उपर्युक्त बलराममें साथ रक्षालालमें गये हुए श्रीकृष्णकी वेदियशिरोभूमि महामा पुरुषोंने परमतत्त्वके रूपमें अनुभव किया। सभी तरहके लोगोंने अपनी पृथक्-पृथक् भावनाके अनुकार उन परिषूणदेव श्रीहरिको विभिन्न रूपोंमें देखा और समझा॥३२—३३॥

हाथीको आरा' गया दुनकर और उन महावली बन्धुओंको देखकर मनस्ती कंत मन-ही-मन भयभीत हो उठा तथा मझोपर बैठे हुए दूसरे-दूसरे लोग मन-ही-मन हस्ते उल्लसित हो उठे और जैसे चन्द्रमाको देखकर चकोर सुली होते हैं, उसी प्रकार वे उन्हें देखकर परमानन्दमें निमग्न हो गये। नगरके लोग अल्पत उत्सुक हो एक-दूसरेके कान-से-कान सटाकर परस्पर जाह्ने लो—ये दोनों बसुदेवनन्दन साक्षात् परमपुरुष परमेश्वर हैं। अहो! ब्रजमण्डल अस्थन्त रमणीय एवं भेष ऐ जहाँ ये साक्षात् माधव विचरते रहे हैं और विनाश आज दुर्लभ दर्शन पाकर इम सर्वतोभावसे झूलार्ह हो रहे हैं॥३४—४०॥

नारदजी कहते हैं—मैथिल! जब पुरवासी लोग इस प्रकार बात कर रहे थे और भाँति-भाँतिके बाजे बज रहे थे, उस समय चाणूरने बलराम और श्रीकृष्ण—दोनोंके पास आकर कहा॥४१॥

चाणूर बोला—हे राम! हे कृष्ण! आप दोनों वहे बलवान् हैं, अतः महाराजके सामने अपने बलका प्रदर्शन करते हुए युद्ध कीजिये। यहुकुल-तिलक महाराज कंप यदि इच्छा सुखसे प्रसन्न हो गये तो आपखेंगोंकी और हमारी कौन-कौन-सी भलाई नहीं होगी! (अर्थात् सब होगी)॥४२॥

श्रीभगवान्ने कहा—राजाके कृपा-प्रसादसे तो हमारी पहलेसे ही बहुत भलाई हो रही है। किंतु इतना ध्यान रखलो कि इसलोग बालक हैं; अतः उमान बलवाले बालकोंके साथ ही हमारा युद्ध होगा, किसी बलवालके साथ नहीं। इसकी यथोचित अवस्था होनी चाहिये, यहाँ अधर्म-युद्ध करापि न होने पाये॥४३॥

चाणूरके कहा—न तो आप बालक हैं और न

बलरामजी ही किशोर हैं। आप साक्षात् बलवानोंमें भी बलिष्ठ हैं; क्योंकि सहल मतवाले हाथियोंका बल धारण करनेवाले कुवलयापीड़को आप दोनोंने लिल्लाइमें ही भासू छाला है ॥ ४४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! चाणूरकी ऐसी बात मुनकर अधर्मदन भगवान् श्रीकृष्ण नाणूरके माथ और बलवान् बलरामजी मुष्टिकके माथ मल्लसुख करने लो । वे एक दूसरेके भुजदण्डोंको दोनों भुजाओंमें एकड़कर अपनी ओर धीनते और पीछे ढकेलते थे । लोगोंके देखते-देखते वे दोनों भाई विजयकी इच्छामें लड़नेवाले दो हाथियोंकी भौति अपने शत्रुओंमें भिज गये । साक्षात् श्रीहरिने चाणूरके शरीरको दोनों हाथोंसे उठाकर उपके देहभाग पर उम्र प्रकार नौला, जैसे ब्रह्माजी पुण्यस्तामाओंके पुण्यभारको तौला करने हैं । फिर महावीर नाणूरने भगवान् श्रीहरिको एक ही हाथसे उसी प्रकार लीलापूर्वक उठा लिया, जैसे नागराज शेष भूमण्डलको अपने एक ही फलपर धारण करते हैं । माधवने अपनी भुजाओंके नेत्रमें चाणूरकी गर्दन और कमरमें हाथ लगाकर उसे उठा लिया और महारा पृथ्वीपर दे मारा । एक ओर श्रीकृष्ण और

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमथुराकाशके अन्तर्गत नागद-बहुलभ-संवादमें 'महायुद्धका वर्णन' नामक ग्रातवौ भाष्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय

चाणूर-मुष्टिक आदि मालोंका तथा कंस और उमके भाइयोंका वध

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! नन्दराजवा नित कहनासे द्रवित हो रहा था । उनकी ओर ध्यान देकर तथा बनिताओंके मनोरथको याद करके श्रीहरिने शत्रुओंको मार छालेका संकल्प भनमें लेकर बलपूर्तक युद्ध आरम्भ किया ॥ १ ॥

चाणूरको भुजदण्डोंसे उठाकर श्रीकृष्णने बलपूर्वक अकस्मात् आकाशमें उम्र प्रकार फेंक दिया, जैसे हवाने उसके हुए कमलको तहसा उड़ा दिया हो । आकाशसे नीचे मुँह किये वह पृथ्वीपर इतने देगामें गिरा, मानो कोई ताग दूट पड़ा हो । फिर उठकर चाणूरने श्रीकृष्णको जोरसे एक मुक्का मारा । उसके मुक्केकी मारमें परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण विचलित नहीं हुए । उन्होंने तल्काल चाणूरको उठाकर पृथ्वीपर पटक दिया । चाणूरके दाँत दूट गये । वह मदोन्मत्त मल्ल कोधसे तमतमा उठा । मैथिल ! उसने श्रीकृष्णकी छातीपर

चाणूर तथा दूसरी ओर वल्लाम और मुष्टिक एक दूसरे-को हाथों, तुटनों, पंरों, भुजाओं, छानियों, अङ्गुलियों और मुक्कोंमें मारने लो । बलराम और श्रीकृष्णके मुखोंपर परिश्रमजनित परीनंकी घूँदें देखकर दयामें द्रवित हो उस समय महलकी चिङ्गियोंके पास बैठी हुई राजरानियाँ आपसमें कहने लगी ॥ ४५-५१ ॥

स्त्रियाँ बोलीं—अहो ! राजाके मौजूद रहते उनके सामने समां मह वहूत बड़ा अधर्म हो रहा है । कहाँ तो वज्रके समान मुढ़ पगरवाले वे दोनों पहलवान और कहाँ फूलके सटश मुकुमार बलराम और कृष्ण । अहो ! हम मथुरापुरवासियोंगा कैसा अभाग्य है कि हमें आज इन्हे दिनों बाद इनमा दर्शन भी हुआ तो युद्धके अवसरपर । बनवासी गोपका भगवान् गौभाग्य अल्पन्त धन्यवादके योग्य है, जिन्हे गास रसके माथ श्रीकृष्ण-बलरामका इशन होता आ रहा है । मनियो ! आश्र्वकी बात तो यह है कि इस दुष्ट चिन्त गजाके गहते हुए कोई भी कुछ नहेंदो समर्थ नहीं हो सकता । इसलेये हमारे पुण्यके चलमें दो दोनों मन्त्रु शांख ही अपने शत्रुओंपर विजय प्राप्त करे ॥ ५२-५४ ॥

दोनों हाथोंमें मुक्के मारे । नरेश्वर ! तब दोनों हाथोंसे उसके दोनों हाथ पकड़कर साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने कंसके आगे उने बुमाना आरम्भ किया और सबके देखते-देखते पृथ्वीपर उसी प्रकार दे मारा, जैसे किसी बालकने कमण्डल पटक दिया हो । श्रीकृष्णके इस प्रहरसे चाणूर मल्लका मस्तक फट गया । राजन् ! वह रक्त बमन करता हुआ तल्काल मर गया ॥ २-७३ ॥

इसी प्रकार महायली बलदेवने शणदुर्गम मल्ल मुष्टिकके पैरको मुड़ाकर पकड़कर आकाशमें धुमाया और जैसे गरुड़ सर्पको पटक दे, उसी प्रकार उसे पृथ्वीपर दे मारा । फिर तो मुष्टिक मुँहमें खून उगलता हुआ कालके गालमें बल गया । तत्पश्चात् कूटको सामने आया देख महायली बलदेवने एक ही मुक्केमें उसी प्रकार मार गिराया, जैसे

देवराज इन्हने बज्रसे किसी पर्वतको धराशाली कर दिया हो। राजन्। जैसे गरुड़ अपनी तोली चौंचसे नागको धावल कर देता है, उसी प्रकार सामने आये हुए शल्को नन्द-नन्दनने लातसे मार गिराया। फिर तोशाल्को पकड़कर श्रीकृष्णने उसे बीचसे ही चीर ढाला और जैसे हाथी किसी पेड़की डालीको तोड़ फेंके, उसी प्रकार उसे कंसके मञ्जके मामने फेंक दिया। ये सब मह अस्ताइमें गिराये जाते ही मौतके मुखमें चले गये और उनके शरीरमें निकली हुई ज्योतियों सत्पुरुषोंके देखते-देखते भगवान् वैकुण्ठ (श्रीकृष्ण) मे समा गयी॥ ८-१३॥

इस प्रकार वल्लाम और श्रीकृष्णके द्वारा अनेक मल्लोंके मारे जानेपर शेष मल्ल भयसे व्याकुल हो प्राण बचानेकी इच्छामें भगव खड़े हुए। तदनन्तर श्रीदामा आदि अपने मिथ्र गोपोंको बीचकर माधवने उनके साथ समस्त सजनोंके मामने मल्लयुद्धका न्यैल आरम्भ किया। किरीट और कृष्णलभारी वल्लाम तथा श्रीकृष्णको ग्वाल-बालोंके साथ गङ्गभूमिमें विहार करते देख ममस्त पुरवासी विस्यसे चकित हो उठे। कंसके सिवा अन्य सब लंगोंके मुँहसे जय हो! जय हो! की योली निकलने लगी। सब ओरसे साधुवाद मुनायी देने लगा और नगरे बज उठे। अपनी पराजय देख कंस अत्यन्त क्रोधमें भर गया और बाजे बंद करनेकी आशा देकर फड़कते हुए अभरोंस बोला॥ १४-१८॥

कंसने कहा—वसुदेवके दोनों पुत्र लोटी बुद्धि और लोटे विचारवाले हैं। इन दोनोंको हठात् और शीघ्र मेरे नगरसे निकाल दो। व्रजवासियोंका सारा धन हर लो और दुर्बुद्धि नन्दको सहसा कैद कर लो। आज मेरे दुर्बुद्धि पिता शशपुत्र उद्यमेनका भी मस्तक तुरंत काट लो, काट लो। पृथ्वीपर जहाँ-कहाँ भी और यहाँ भी जो-जो वृष्णिवंशी यादव मिल जायें, उन सबको देवताओंके अंशसे उसका समझकर मार डालो॥ १९-२०॥

नारदजी कहते हैं—जब कंस इस प्रकार बढ़-बढ़कर बातें बना रहा था, उस समय यदुनन्दन श्रीकृष्ण सहसा कोधसे भर गये और उछलकर उसके मञ्जके ऊपर लड़ गये। अपनी मूर्तिमान् मृत्युको आता देख कंस तुरंत उठकर खड़ा हो गया और उस मदमत्त नरेशने श्रीकृष्णको छाँट बलाते हुए ढाल-तल्लार हाथमें ले ली। श्रीकृष्णने ढाल-तल्लार लिये हुए कंसको सहसा दोनों हाथोंसे उसी

प्रकार पकड़ लिया, जैसे पक्षिराज गरुडने अपनी चौंचके दो भागोंद्वारा किसी विश्वधर सर्पको दबा लिया हो। कंसके हाथसे तल्लार छूटकर गिर गयी। ढाल भी दूर जा पड़ी। वह बलवान् वीर कल लगाकर श्रीकृष्णकी भुजाओंके वर्षनमें उसी प्रकार निकल गया, जैसे पुण्डरीक नाग गरुडकी चौंचमें छूट निकला हो॥ २१-२४॥

वे दोनों बलवान् वीर उस मञ्जपर वेगसे एक-दूसरे को रींदते हुए उसी प्रकार सुशोभित हुए, जैसे पर्वतके शिखरपर दो लिंग परस्पर जूझते हुए शोभा पा रहे हैं। कंस बलपूर्वक उछलकर सौ दाथ ऊपर आकाशमें चला गया। फिर श्रीकृष्णने भी उछलकर उसे इस प्रकार पकड़ लिया, मानो एक बाज पक्षीने दूसरे बाज पक्षीको आकाशमें धर दबोचा हो। उस प्रचण्ड देव्यपुंगव कंसको भुजदण्डोंसे पकड़कर तानों लोकोंका बल धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने चारों ओर धुमाना आरम्भ किया। फिर रोषमें भरकर उन्होंने कंसको आकाशसे उस मञ्जपर ही दे मारा। मञ्जके स्तम्भ-दण्ड उसी प्रकार दूट गये, जैसे विजली गिरनेसे बृक्ष दूट जाना है। आकाशसे नीचे गिरनेपर भी वज्रतुल्य अङ्गोंवाला कंस मन-ही-मन किंचित् व्याकुल होकर सहसा उठ गया और महात्मा श्रीकृष्णके साथ युद्ध करने लगा। भगवान् गोविन्दने पूनः उसे बाहुदण्डोंद्वारा उठाकर मञ्जपर फेंक दिया और उसकी छातीपर चढ़कर माधवने उसका सुकुट उतार लिया। फिर दुरंत उसके केश पकड़कर स्वयं श्रीहरिने उसे मञ्जसे रङ्गभूमिमें उसी प्रकार पटक दिया, जैसे किमीने शैल-शिखरमें किसी भारी शिलाखण्डको नीचे गिरा दिया हो। फिर सबके आधारभूत, अनन्त-पराक्रमी, आदि-अन्तरहित, सनातन भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं भी उसके ऊपर वेगसे कूद पड़े॥ २५-३२॥

राजन्। इस प्रकार उन दोनोंके गिरनेसे बटाँका भूमण्डल सहसा यालीकी भौति गहरा हो गया और दो घड़ीतक भरती काँपती रही। नरेश्वर! श्रीकृष्णने उस मरे हुए भोजराजके शवको सबके देखते देखते बहाँका भूमेपर उसी प्रकार घसीटा, जैसे मिहने मरे हुए गजराजकी बींचा हो। नरेश्वर! उस समय इधर-उधर दौड़ने हुए भूपालोंका हाहाकार मुनायी देने लगा। महावर्ण वंमने तैर-भावसे देवेश्वर श्रीकृष्णका भजन करके उनी प्रकार उनका साल्प्य प्राप्त कर लिया, जैसे कीड़ा भूर्जाके चिन्तनमें उसीका रूप ग्रहण कर लेता है॥ ३३-३५॥

केलको धराशायी हुआ देव उसके आठ महावली
याई सुहुत, सुषि, न्यप्रोध, तुषिमान, राष्ट्रपालक, सुनामा,
काङ्ग और शङ्ख—क्रोधने ओष्ठ फडफडाते हुए ढाल और
तल्लार ले युद्ध करनेके लिये श्रीकृष्णपर दृट पढ़े । उन्हें
आते देख रोहिणीनन्दन बल्लामने सुदूर हाथमें लेकर
उसी प्रकार उनके निकट हुंकार किया, जैसे सिह मृगोंको
देखकर दहाइता है । मिथिलेश्वर ! उस हुंकारसे ही उनपर^{४४}
इतना भय छा गया कि उनके हाथोंमें शख उसी प्रकार
गिर पड़े, जैसे ढंडा मारनेमें आपके फल गिरते हैं । निःशब्द
होनेपर भी उन महावीरोंने बल्लामको चारों ओरमें मुक्कोद्दारा
मारना आरम्भ निया—ठीक उसी तरह जैसे हाथी
किसी पर्वतको अपनी सूँझमें हधर-उधरमें पीटते हों ।
बल्लामजीने सुषि और सुनामाको मुद्रसे मार डाला,
न्यप्रोधको भुजाओंके नेंगसे धराशायी कर दिया और कङ्कको
बायें हाथसे मार गिराया । माधवने शङ्ख, सुहुत और
हुमिमानको बायें देखने कुचल दिया तथा राष्ट्रपालको दाहिने
देखके आपातसे कालके गालमें मेज दिया । इस प्रकार
आंधीके उखाड़े हुए ब्रूक्षोंकी भाँति ने आठों बीर महसा
धराशायी हो गये । विदेहराज । उन सबकी ज्योति
भगवान्में लीन हो गयी ॥ ३८-४३ ॥

देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं । उस समय
बायें और जय-जयकार होने लगीं । देवतालोग उसी

इस प्रकार श्रीगर्भ-संहितामें श्रीभगवान्पद्मके अन्तर्गत नास्त-बहुलादव-संवादमें ज्ञानात्मक
नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

नवाँ अध्याय

**श्रीकृष्णद्वारा 'बहुदेव-देवकीकी बन्धनसे मुक्ति; श्रीकृष्ण और बलरामका गुरुद्वालमें विद्याप्रयत्न
तथा गुरुद्विषिणाके स्वप्नमें गुरुके मरे हुए पुत्रको यमलोकसे लाकर लौटाना;
श्रीअकूरको हस्तिनापुर मेजना तथा कुञ्जाका मनोरथ पूर्ण करना**

थीनारदजी कहते हैं—राजन ! तदनन्तर भगवान्
श्रीकृष्ण और बलराम शाक्षात् वृष्णिवंशियोंमें भिं दृए देवकी
और बहुदेवके समीप गये । नरेश्वर ! अपने दोनों पुत्रोंको
देखकर उन दोनोंके बन्धन उसी प्रकार स्वरः दर्ढः पड़ गये,
जैसे गफड़को आया देख नागपाशके बन्धन स्वरः खुल
गाते हैं ॥ १-२ ॥

क्षण नन्दनवनके फूलोंकी बर्फ करने लगे । विद्याधरियाँ
और गन्धर्वाङ्गनाएँ हप्ते चिह्न हो दृत्य करने लगीं ।
विद्याधर, गन्धर्व और किंवर भगवान्का यश गाने
लगे । ब्रह्मा आदि देवता, मुनि और मिद्र विमानों
द्वारा भगवान्का दर्शन करनेके लिये आये । वे वैदिक-
मन्त्रोंका पाठ करते हुए दिव्य बाणीद्वारा बल्लाम और
श्रीकृष्ण—दोनों भाइयोंका स्तुति करने लगे ॥ ४४-४६ ॥

तदनन्तर कंसकी अस्ति-प्राप्ति आदि गनियाँ हाथोंसे
छाती दीटी हुई महल्ले बाहर निकलीं और प्राप्त हुए
वैधव्यके दुःखमें दुखी हो विलाप करने लगीं ॥ ४७ ॥

स्त्रियाँ बोलीं—हा नाश ! हे युडगन ! हे महावली
बीर ! तुम कहाँ चले गये ? तुम तो त्रिभुतनविजयी तथा
साक्षात् देवताओंके लिये भी दुर्जय बंर थे । तुमने निर्दय
होकर अपनी बहिनके नवजात बच्चोंकी दृत्य की थी और
दस दिनसे कम और अधिक उम्राले दूसरे-दूसरे बालकोंका
भी बल्लर्वक बध कर डाला; उभी शेर पापके फरज दुख
ऐसी दशाको ग्राप हुए हो ॥ ४८-५० ॥

नारदजी कहते हैं—राजन ! इस प्रणाल अपने जीने
मुखवाला दोन दुर्योगजनियोंको धूम न देया । ये लोगभावम
भगवान्ने यमनारे तटपर श्रीवृण्ड नन्दनन तुल त्रितायै
यनवारी और मारे गये यमाओं ॥ ५१-५२ ॥

श्रीहरिने उन दोनोंको आव्वासन दे अपने नाना उम्मेनको मधुरका राजा बना दिया । कंसके भयले दूसरे देवोंमें भी हुए यादबोंको बुलाकर भगवानने प्रेमपूर्वक उद्दे यदुपुरामें कुदुम्बसहित रहनेके लिये स्थान दिया । गोपणांके साथ अपने भरको जानेके लिये उद्यत नन्दराजकी प्रणाम

बलरामसहित श्रीकृष्णने उन्हें अपनी मायासे मोहित-
१ सा करते हुए कहा- 'तात ! अब आप इसी मधुरापुरीमें निवास कर्जिये । यदि आपके मनमें यहांसे जानेकी इच्छा उठ रही हुई हो, तो जाइये । मैं भी यदुवंशियोंके व्यवस्था करके मैया बलरामके साथ आपके पास आ जाऊगा' ॥ ३-८ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् । इस प्रवार बलराम और श्रीकृष्णके द्वारा पूर्जन एवं भमानित नन्दराज वसुदेवजीको हृदयस लगाकर प्रेमातुर हो ब्रजको चले गये । वसुदेवजीने श्रावणके जन्म नक्षत्रपर जो पहले दस लाख गोदान करनेका सकल्प निया था, उसे पूरा करनेके लिये उन्नी गौओंको भल्ल और भालाओंसे अलकृत करके ब्राह्मणोंको दे दिया । फिर धनंत्र वसुदेवने गर्गाचार्यको बुलाकर श्रीकृष्ण और नक्षत्रज्ञाविधिवत् यशोपवीत-संस्कार करवाया । तदनन्तर उससे विद्याओंका अध्ययन करनेके लिये उद्यत हो परमेश्वर बलराम और श्रीकृष्ण साधारण जनोंकी भाँति गुह तांदीनिके पास आये । गुहकी उत्तम सेवा करके दोनों माधवोंने थाई ही समयमें सारी विद्याएँ पढ़ लीं और वे दोनों समस्त विद्यानांके द्विरोमणि हो गये । तत्पश्चात् वे दोनों भाई हाथ जोड़कर गुरुजीको दक्षिणा देनेके लिये उद्यत हुए । उस समय उन ब्राह्मण गुरुने उन दोनोंसे दक्षिणमें अपने मरे हुए पुत्रको मौगा । तब वे दोनों भाई सुनहरे लाज सामानोंसे युक्त रथपर आरुद्ध हो, भन इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए प्रभासतीर्थमें समुद्रके निकट गये । दोनों ही भयानक पराकर्मी थे । उन्हें आया जान समुद्र तत्काल कौप उठा और रस्तोंकी उत्तम भैंट ले आकर, दोनों हाथ जोड़ उनके चरणप्रान्तमें पढ़ गया । उससे भगवानने कहा—'तुम मेरे गुरुदेवके पुत्रको शीघ्र ही लैठा दो । तुमने अपनी प्रचण्ड लहरोंके घटाटोपसे उस ब्राह्मण-बालकका अपहरण कर लिया था' ॥ ९-१७ ॥

समुद्र बोला—भगवन् ! देवदेवेश्वर ! मैंने उस ब्राह्मण-बालकका अपहरण नहीं किया है । उसका हरण तो बहुदप्यधारी असुर पञ्चजनने किया है । वह बलिष्ठ दैत्यराज

उदा भेरे उद्धरमें निवास करता है । देव ! वह देवताओंके लिये भी भयकारक है, अतः आपको उसे जीत लेना चाहिये ॥ १८-१९ ॥

नारदजी कहते हैं—समुद्रके यौं कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने अपनी कमरमें हृदत्तापूर्वक वस्त्र बौध लिया और वे भयंकर शब्द करनेवाले उस समुद्रमें बड़े वेगसे कूद पड़े । विदेहराज ! श्रिलोकीका भार धारण करनेवाले श्रीकृष्णके कूदनेसे वह समुद्र इस प्रकार अस्थन्त कौपने लगा, मानो वश्वकृष्ण गिरिके द्वारा उसे मथ डाला गया हो । तब वीर पञ्चजन दैत्य युद्ध करनेके लिये सहसा श्रीकृष्णके सामने आया । उसने माधवपर अपना शुल चला दिया, किंतु उस शुलको हाथमें लेकर श्रीकृष्णने उसीके द्वारा उसपर आधात किया । उस आधातसे मूर्छित हो वह समुद्रमें गिर पड़ा । फिर उहसा उठकर कुछ व्याकुलचित हुए पञ्चजनने देवेश्वर श्रीहरिको दस प्रकार अपने मत्तकरे मारा, मानो किंतु सर्पने पक्षिराज गरुडपर अपने फलसे प्रहार किया हो । तब साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीहरिने कुपित होकर बड़े वेगसे उसके मस्तकपर मुक्का मारा । श्रीकृष्णके मुक्केकी मारतै तत्काल उनके प्राणवेल उड़ गये । विदेहराज ! उसके शरीरसे नित्यली हुई ज्योति धनश्याम श्रीकृष्णरों लान हो गयी । इस प्रकार पञ्चजनको मारकर और उसके शरीरसे उत्तम शश्वतोंसे साथ ले, वे श्रीकृष्ण सहसा महासागरसे निकले और रथपर आ बैठे ॥ २०-२७ ॥

तदनन्तर मनोहर बलराम और श्रीकृष्ण बायुके समान वेगशाली रथके द्वारा यमराजकी विद्याल पुरी संयमनीमें गये । वहाँ उन्होंने मेष-गर्जनाके समान भयंकर लोक-प्रचण्ड पाञ्चजन्यकी ध्वनि सब और फैल दी । उसे सुनकर सभासदोंसहित यमराज कौप उठे । यमपुराके चौरासी लाल नरकोंमें पड़े हुए पापियोंमेंसे जिन-जिनके कानोंमें वह ध्वनि पड़ी, वे सब-के सब मोक्ष पा गये । यमराज उसी क्षण पूजा और उपहारका सामग्री छेकर श्रीकृष्ण-बलरामके चरणप्रान्तमें आ गिरे । वे उनके तेजसे पराभूत हो गये थे, अतः हाथ जोड़कर बोले ॥ २८-३१ ॥

यमराजने कहा—हे हरे ! हे कृपालिन्दो ! हे महाबली बलराम ! आप दोनों असंख्य ब्रह्मण्डोंके अधिपति तथा परिपूर्णतम परमेश्वर हैं । आप दोनों देवता पुराण-पुरुष, सबसे महान्, लवेश्वर तथा सम्पूर्ण जगत्के लोगोंके अधीश्वर हैं । आज भी आप दोनों तबके ऊपर विराजमान

हे ! सर्वश्चरो ! आप अपनी बाणीदारा हमें आशा दें कि हमें नया सेवा करनी है॥ ३२-३३ ॥

श्रीभगवान् घोले—महामते लोकपाल यम ! मेरे शुद्धपुण्ड्रको ले आओ और मेरी बाणीका आदर करते हुए वहाँ भी न्यायोचित रीतिसे राज्य करो ॥ ३४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! उसी समय यमराजने शुद्धपुण्ड्रको ले आकर श्रीकृष्णके हाथमें सौप दिया । फिर खाक्षात् श्रीहरि उस लेकर अवन्तिकापुरीमें आये और उन्होंने श्रीगुरुको उनका वह दिशुपुण्ड्र समर्पित कर दिया । फिर गुरुके आदीबांदसे सम्मानित हो, उन दोनों भाइयोंने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और वे रथपर चढ़कर मथुरापुरीमें आ गये । वहाँ शुद्धवंशीयोंने उनका बड़ा सम्मान किया ॥ ३५-३६ ॥

एक दिन समस्त कारणोंके भी कारण श्रीकृष्ण अपने भक्त पाण्डवोंका समरण करते हुए यत्प्राम-बीके साथ अकूरके घर गये । नरेश्वर ! अकूर सहसा उठकर खड़े हो गये और वही प्रसन्नताके साथ उन्हें हृदयसे आकर, घोड़श उपचारोदारा उनका पूजन करके, हाथ जोड़ सामने खड़े हो गये । उनका मनोरथ पूर्ण हो चुका था । उन्होंने प्रेमानन्दके ओसू बहाते हुए उनसे कहा ॥ ३७-३९ ॥

अकूर घोले—प्रभुओ ! जिन्होंने मार्गमें मैंने जो कुछ कहा या सोचा था, वह सब पूर्ण कर दिया, उन्हीं आप दोनों—यत्प्राम और श्रीकृष्णको मेरा नित्य बारंबार नमस्कार है । आप दोनों समस्त लोकोंमें सर्वाधिक सुन्दर हैं । जन-भूषणोंमें भी उत्तम हैं । सम्पूर्ण जगत्को बाहर और भीतरसे भी प्रकाशित करनेवाले हैं । इस समय गौ, ब्राह्मण, सायु, वेद, धर्म तथा देवताओंकी रक्षाके लिये आप दोनों यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं । परिपूर्ण तेजस्वी आप दोनों परमेश्वर

* हे हे हे हे कृपासिद्धो राम राम ब्रह्मल ।
असंस्वलक्षणाङ्गती परिपूर्णतामौ युवाम् ॥
देवी युराणी पुण्ड्री महान्ती ।
सर्वेभरी सर्वजगत्तनेत्री ।
अर्जुन सर्वोपरिकर्त्तमानी ।
विदा विजया वरंतं परेषी ॥
(शं०, मधुरा० १ । ३७-३९)

कंसादि दैत्योंका विनाश करनेके लिये गोलोकधामसे भारतवर्षके भूमण्डलमें पधरे हैं । मैं नित्य-निरन्तर आप दोनोंको प्रणाम करता हूँ ॥ ४०-४२ ॥

श्रीभगवान् घोले—आप हमारे बड़े खूदे गुरुजन और धैर्यवान् हैं । मैं आपके आगे बालक हूँ । महामते ! संत पुरुष कभी अपनी बड़ाई नहीं करते । दानपते ! पाण्डवोंका कुशल-समाचार जाननेके लिये आप शीघ्र हस्तिनापुर जाइये और वहाँ उन सबसे मिल-जुलकर लौट आइये ॥ ४२-४४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! उस समय अकूरसे यों कहकर समस्त कार्योंका सम्पादन करनेवाले भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ बसुदेवजीके भवनमें लौट आये । उधर अकूर कौरवेन्द्रपुरी हस्तिनापुरमें जाकर पाण्डवोंसे मिले और, पुनः वहाँसे लौटकर उन्होंने श्रीकृष्णसे सारा समाचार कह सुनाया ॥ ४५-४६ ॥

अकूरने कहा—भगवन् ! पाण्डव लोग कौरवोंके दिये हुए हुँस भोग रहे हैं । आप दोनोंके सिवा दूसरा कोई भी उनकी सहायता करनेवाल नहीं है । पाण्डुके मर जानेपर पृथके सभी पुत्र आप दोनोंके चरणारबिन्दोंमें ही चित्त लगाये बैठे हैं ॥ ४७ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! अकूरजीके मुखसे यह समाचार सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने कौरवोंका आधा राज्य यत्प्रवर्क पाण्डवोंको दे दिया । तदनन्तर अपनी कही हुई बातको याद करके भगवान् श्रीकृष्ण उद्दलको साथ ले कुञ्जाके महामङ्गलसंयुक्त भवनमें गये । श्रीहरिको आया देख परम-रूपवती कुञ्जाने तुरंत ही भक्तिभावसे पाद आदि उपचार समर्पित करके अपने प्राणवल्लभका पूजन किया । कुञ्जाके उत्तम भवनकी दीवारोंमें सोने और रत्न जड़े गये थे । उस रूपवती रमणीके साथ श्रीहरि उसी प्रकार शोभित हुए,

* शुभान्यो रामकृष्णाम्भां तात्पर्यं नित्यं नमो नमः ।

शुभान्यो यदुकुं मे पूर्ण तद्व इतं प्रश्नम् ॥

लोकान्मिरान्मौ जनशुद्धणोत्तमी चान्तर्वादिः सर्वजगत्प्रदीपकौ ।

गोपिप्रसादुभूतिभर्देवतारक्षार्णमैष यदोः बुले गती ॥

कंसादि देवेन्द्रविनाशहेतवे गोलोकजोकात् परिपूर्ण तेजस्ती ।

समागतौ भारतभूमिमण्डले युवा परेषी सततं नतोऽस्त्वदम् ॥

(शं०, मधुरा० ६ । ४०-४२)

जैसे वेकुण्ठधाममें रथाके साथ रथापति विष्णु शोभा पाते हैं। राजन् ! साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं जिस मैरन्दीके पति हो गये, उसका महान् तप कैसा आश्रयजनक है। विदेहराज ! वहाँ लीलासे मानव-शरीर धारण करनेवाले भगवान् श्रीहरि आठ दिनोंतक टिके रहकर नवे दिन वधुन्नीके भवनमें लौट आये। विदेहनेश ! मथुरामें

इस प्रकार श्रीगर्भ-संहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'यदुसौख्य'

नामक नवाँ अध्याय पूरा दुआ ॥ ० ॥

इस प्रकार जो श्रीकृष्णका चरित्र है, वह तमसा पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदात्क तथा आयुकी वृद्धिका उत्तम लाभन है। वह मनुष्योंको चारों पदार्थ देनेवाला तथा श्रीकृष्णको भी वशमें कर लेनेवाला है। तुमने जो कुछ पूछा था, वह तब मैंने तुमसे कह सुनाया। अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ४८—५५ ॥

दसवाँ अध्याय

धोबी, दर्जी और सुदामा मालीके पूर्वजन्मका परिचय

बहुलाश्वने पूछा—देवर्षे ! आपके सुन्वने मैंने भगवान् श्रीकृष्णके पावन चरित्रका व्रवण किया, किन्तु पुनः अधिकाधिक सुननेकी इच्छा हो रही है। जैसे प्यासा प्राणी जलकी इच्छा करता है, उसी तरह मेरा गन आज श्रीकृष्ण-चरित्रको सुनना चाहता है। आपने कंसके जन्म-कर्मोंका वर्णन किया और मैंने सुना। केशी आदि वडे वडे देत्योंके पूर्वजन्मकी वातें भी मैंने सुनीं। अब यह जानना चाहता हूँ कि अहो ! जिसकी महती व्योति श्रीकृष्णमें लीन हुई, वह धोबी पूर्वजन्ममें कौन था ? और श्रीहरिने उसका वध क्यों किया ? ॥ १—३ ॥

नारदजीने कहा—विदेहराज ! श्रेतायुगकी बात है, अयोध्यापुरीमें श्रीरामचन्द्रजी राज्य करते थे। उनके राज्य-कालमें प्रजाकी मनोवृत्ति एवं दुःख-सुख जाननेके लिये गुप्तनरूपा करते थे। एक दिन उन गुप्तचरोंके सुनते हुए, किसी धोबीने अपनी भायसि कहा—'तू दुष्ट है और दूसरोंके घरमें रहकर आयी है; इसलिये अब तुझे मैं नहीं रखूँगा। स्त्रीके लोभी गजा राम भले ही सीताको रख लें, किंतु मैं तुझे नहीं स्वीकार करूँगा।' इस प्रकार बहुत मेरोंगोंके सुन्वने आकेपयुक्त बात सुनकर श्रीराघवेन्द्रने लोकापवादके भयमें सहसा भीताको बनमें त्याग दिया। रघु-कुल-तिलक श्रीरामने उस धोबीको दण्ड देनेकी इच्छा नहीं की। वही द्वापरके अन्तमें मथुरा-पुरमें फिर धोबी ही हुआ था। उसने सीताके प्रति जो कुछाच्य कहा था, उस दोषकी शान्तिके लिये श्रीहरिने स्वयं ही उसका वध किया, तथापि उन श्रीकृष्णानिधिने उस धोबीको मोक्ष प्रदान किया। राजन् ! दयालु श्रीकृष्णचन्द्रका यह परम

अद्भुत चरित्र मैंने तुमसे कहा। अब पुनः क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ४—९ ॥

बहुलाश्वने पूछा—मुनिश्रेष्ठ ! पूर्वजन्ममें वह दर्जी कौन था, जिसे भगवान् श्रीकृष्णने अपना सारूप्य प्रदान किया ? ॥ १० ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! पहले मिथिलापुरीमें एक दर्जी था, जो भगवान् श्रीहरिके प्रति भक्तिभाव रम्ता था। उसने श्रीरामके विवाहके समय राजा नीरध्वज जनककी आशामें श्रीराम और लक्ष्मणके दूल्ह वेशके लिये महीन ढोरोंसे कपड़े लाये थे। वह वस्त्र नीनेकी कलामें अत्यन्त कुशल था। राजन् ! कलोंडों कामदेवोंके समान लावण्यवाले सुन्दर श्रीराम और लक्ष्मणको देखकर वह महामनस्वी दर्जी मोहित हो गया था। उसने मन-ही-मन यह इच्छा की कि मैं कभी अपने हाथोंमें इनके अङ्गोंमें वस्त्र पहिनाऊँ। श्रीरघुनाथजी सर्वशः हैं। उन्होंने मन-ही-मन उसे वर दे दिया कि 'द्वापरके अन्तमें भारतीय ब्रजगण्डलमें तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा।' श्रीरामचन्द्रजीके ब्रदानमें नहीं यह दर्जी मथुरामें प्रकट हुआ था, जिसने उन दोनों बन्धुओंकी वेग-रचना करके उनका सारूप्य प्राप्त कर लिया। ॥ ११—१६ ॥

बहुलाश्वने पूछा—ब्रह्मन् ! सुदामा मालीनं, जिसके धरमें परम मनोहर बल्मीम और श्रीकृष्ण स्वयं पधारे थे, कौन-सा पुण्य किया था ? वताइये ॥ १७ ॥

नारदजीने कहा—राजन् ! राजगज कुवेरका एक परम रमणीय सुन्दर बन है, जो चैत्ररथ-वनके नामसे प्रसिद्ध है। उसमें फूल लगानेवाला एक माली था, जो हेम-

मालीके नामसे पुकारा जाता था। वह भगवान् विष्णुके भजनमें तत्पर, शान्त, दानशील तथा महान् सत्सङ्गी था। उसने भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिये देवताओंको पूछा की। पाँच हजार वर्षोंतक प्रतिदिन तीन सौ कमल पुष्प लेकर वह भगवान् शंकरके आगे रखता और उन्हें प्रणाम करता था। एक समय करुणानीधि विनेत्रधारी भगवान् शंकर उसके ऊपर अत्यन्त प्रभज्ञ हो चोरे—‘परम बुद्धिमान् मालाकार। तुम इच्छानुभाव वर मांगो।’ तब हेममालाने हाथ जोड़कर महादेवजीको नमस्कार किया और पाठकमा करके उनके सामने न्यूंझा हो मस्तक छुट्टकर कहा॥१८-२३॥

हेममाली बोला —भगवन् ! परिशृण्टम प्रभु श्रीकृष्ण

इस प्रकार श्रीर्गीर्जस्मितामें श्रीभगवान्पृष्ठके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्च-मंवादमें घोषी, दर्जी और मुद्रामा

मालीका उपस्थान नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१०॥

कभी मेरे धर पधारे और मैं इन नेत्रोंसे उनका प्रस्तु दर्शन करूँ—ऐसी मेरी इच्छा है। आपके वरदानसे मेरी यह अभिनवा पूर्ण हो॥२३॥

श्रीमहादेवजीने कहा—महामते ! द्वापरके अन्तमें भारतवर्षकी मधुरापुरीमें तुम्हारा यह मनोरथ सफल होगा, इसमें संशय नहीं है॥२४॥

नारदजी कहते हैं—गजन ! महादेवजीके वरदानमें वह मामना देमाली ही द्वापरके अन्तमें सुदामा माली हुआ था। इसालिये मायात् वल्लास और श्रीकृष्ण भगवान् शिवकी बाणी सत्य करनेके लिये उनके धर पधारे थे। अब और क्या सुनना चाहो हो ?॥२५-२६॥

ग्यारहवाँ अध्याय

कृष्ण और कुवलयापीडके पूर्वजन्मगत वृत्तान्तका वर्णन

श्रीबहुलाश्चने पूछा—देवरे ! सैरन्ध्रीने एवंकालमें कौन-सा परम दुष्कर तप किया था, जिसमें देवताओंके लिये भी। अत्यन्त दुर्लभ भगवान् श्रीकृष्ण उसपर रीझ गये !॥१॥

नारदजीने कहा—राजन् ! करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर श्रीरामनन्दजी जब पञ्चवटीमें रहते थे, उस समय शूर्पणका नामक राक्षसी उन्हें देखकर अत्यन्त मोहित हो गयी। श्रीरामनाथजी एकप्रकाशितके पालनमें तत्पर हैं, अतः इनके मनमें दूसरी किसी स्त्रीके प्रति मोह नहीं है—यह विचारकर रावणकी बहिन कोभगे सातांशो खा जानेके लिये दौड़ी। उस समय श्रीरामके छोटे भाई लक्ष्मणने इष्ट द्वेरकर तीक्ष्णी भारवाली तलवारसे तकाल उसकी नाक और कान काट लिये। नाक कट जानेपर उसने लहड़ामें जाकर रावणको यह सब समाचार बता दिया और स्वयं अत्यन्त लिङ्गचित् द्वेरकर वह पुष्कर-तीर्थमें चली गयी। वहाँ जलमें लड़ी हो भगवान् शंकरका ध्यान तथा श्रीरामको पतिरूपमें पानेकी कामना करती हुई शूर्पणखाने दस हजार वर्षोंतक तपस्या की। इससे प्रसन्न हो देवाधिदेव भगवान् उमापति पुष्कर-तीर्थमें आकर चोरे—‘तुम वर मँगो’॥२-७॥

शूर्पणखाने कहा—राक्षसी ! सुनो। यह वर तुम्हारे लिये अभी सफल नहीं होगा। द्वापरके अन्तमें मधुरापुरीमें तुम्हारी यह कामना पूरी होगी, इसमें संशय नहीं है॥९॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! महामते ! वही इच्छानुभाव रूप धारण करनेवाली शूर्पणखा नामक राक्षसी श्रीभगवान्पुरीमें ‘कृष्ण’ नामसे प्रसिद्ध हुई थी। महादेवजीके वरसे ही वह श्रीकृष्णकी प्रिया हुई। यह प्रसन्न मैंने तुम्हें बताया। अब और क्या सुनना चाहते हो ?॥१०-११॥

बहुलाश्च बोले—नारदजी ! यह कुवलयापीड पूर्वजन्ममें कौन था ? कैसे हाथीकी योनिको प्राप्त हुआ ? और किस पुण्यमें भगवान् श्रीकृष्णमें लीन हुआ ?॥१२॥

नारदजीने कहा—राजा बलिके एक विशालकाश एवं बलवान् पुत्र था, जिसका नाम था—मन्दगाति। वह समस्त शास्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ तथा एक लाख हाथियोंके समान वज्रशाली था। एक समय श्रीरामनाथकी जात्रके लिये वह वरसे निकला और अन-सुमुद्रायमें सम्मिलित हो

गया। मन्दगति मतवाले हाथीके समान वेगसे भुजाएँ हिल-हिलाकर लोगोंको कुचलता जा रहा था। उस्तमें उसकी भुजाओंके वेगसे बूढ़े वित भुनि गिर पड़े। उन्होंने कुपित होकर उस मतवाले बलिष्ठ अलिकुमारको शाप दे दिया॥ १३-१५॥

चित्तने कहा—‘दुमते। तू हाथीके समान मदोन्मत्त होकर रङ्ग-आनामें लोगोंको कुचलता जा रहा है, अतः हाथी हो जा।’ इस प्रकार शाप मिलनेपर वह बलवान् दैत्य मन्दगति तत्काल तेजोभ्रष्ट हो गया और उसका शरीर केंचुलीकी भौति छूटकर नीचे जा गिरा। मुनिके प्रभावको जाननेवाले उस दैत्यने तुरंत ही हाथ जोड़ प्रणाम और परिक्षा करके वित मुनिसे कहा॥ १६-१८॥

मन्दगति बोला—‘हे मुने ! कृपामिन्धो ! आप द्विजोंमें ऐष्ट योगीन्द्र हैं। इस गज-योनिसे मुझे कर कुटकारा पिलेगा, यह मुझे शोष बताइये। मुने ! आजमे आप जैसे महात्माओंकी अवहेलना मेरेद्वारा कभी नहीं होगी। बहन्। आप-जैसे मुनि वर और शाप—दोनोंको देनेमें समर्थ हैं॥ १९-२०॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमधुराहण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाभ-संवादमें ‘कुञ्जा और कुवलयापीढ़के पूर्वजन्मका वर्णन’ नामक व्याख्याता भूमा हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

चाणूर आदि मल्ल, कंसके छोटे भाइयों तथा पञ्चजन दैत्यके पूर्वजन्मगत वृत्तान्तका वर्णन

बहुलाभ बाले—चाणूर आदि जो मल्ल थे, वे पूर्वजन्ममें कौन थे, जो यहाँ मधुरायुरीमें आये थे। अहो ! उनका कैसा बीभाग है कि साक्षात् श्रीकृष्णकन्दके साथ उन्हें युद्धका अवसर मिला॥ १॥

नारदजीने कहा—राजन्। पूर्वकालमें अमराकलीयुरीमें उत्तर्य नामसे प्रसिद्ध महामुनि निवास करते थे। उनके पाँच पुत्र हुए, जो कामदेवके समान कान्तिमान् थे। उन लोगोंने विश्वा, स्वाध्याय और जग छोड़कर मदसं उन्मत्त हो राजा बलिके यहाँ जाकर प्रतिदिन मल्लयुद्धकी विश्वा केवी आरम्भ की। अपने पुत्रोंको ब्राह्मणोंवित करमें उर्बन्या भ्रष्ट, वैद्याव्यनसे रहित तथा मदमत्त हुआ देख मुनिश्रेष्ठ उत्तर्यने रोषपूर्वक उनसे कहा॥ २-४॥

उत्तर्य बोले—शम, दम, तप, शौच, श्वस, सरक्षा,

नारदजी कहते हैं—राजन्। उस दैत्याया इस प्रकार प्रसन्न किये जानेपर महामुनि चितका कोष दूर हो गया। फिर उन कृपालु ब्राह्मण-शिरोमणिने उस दैत्यवे कहा॥ २१॥

चित बोले—दैत्यराज ! मेरी बात शुटी नहीं हो सकती, तथापि तुम्हारी भक्तिसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। इस-लिये तुम्हें ऐसा दिव्य वर प्रदान करूँगा, जो देखताओंके लिये भी दुर्लभ है। दैत्येन्द्र ! शोक न करो। श्रीहरिकी नगरी मधुरामें श्रीकृष्णके हाथसे तुम्हारी मुक्ति होगी, इसमें संशय नहीं है॥ २२-२३॥

नारदजी कहते हैं—राजन्। वही यह मन्दगति दैत्य विन्द्यपर्वतपर कुवलयापीढ़ नामसे विख्यात हाथी हुआ, जो बलमें अवेळा ही दम हजार हाथीयोंके समान था। उसे मगधराज जरामंधने लाव हाथीयोंके द्वारा बनमें पकड़ा। विदेहराज ! फिर उसने कंसको दैत्यमें वह हाथी दे दिया। चित मुनिके कथनानुसार उसका तेज श्रीकृष्णमें लीन हुआ। यह प्रसङ्ग मैंने तुमसे कहा, अब और क्या सुनना चाहते हो !॥ २४-२६॥

कान, विश्वान तथा आस्तिकता—ये ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म हैं। शौर्य, तेज, वैर्य, दक्षता, युद्धभूमिमें पीठ न दिखाना, दान तथा पैशवर्व—ये शशिवके स्वाभाविक कर्म हैं। कृष्णि, गोरक्षा और वाणिज्य—ये वैद्यके स्वाभाविक कर्म हैं तथा लेशास्त्रके कर्म शूद्रके लिये भी स्वाभाविक है। दुर्जनो ! तुमलोग ब्राह्मणके पुत्र होकर भी ब्राह्मणोंचित कर्मसे दूर रहकर क्षत्रियोंचित मल्लयुद्धका कार्य करें करते हो। अतः तुमलोग भारतभूमिपर मल्ल हो जाओ और असुरोंके सङ्गसे शीघ्र ही दुर्जन बन जाओ॥ ५-९॥

नारदजी कहते हैं—राजन्। वे उत्तर्यके पुत्र ही पृथ्वीपर मल्लोंके रूपमें उत्पन्न हुए। नरेश्वर ! उन्होंने श्रीकृष्णके शरीरका स्वर्ण करनेमात्रसे परम मोक्ष प्राप्त कर लिया। इस प्रकार मैंने चाणूर, मुहिक, कृष्ट, शक और

क्षेत्र—इन मल्कोंके पूर्वनरित्रका वर्णन किया, अब और क्या सुनना चाहते हो ? || १०-११ ||

बहुलाभ्वने पूछा—मुने ! कंसके छोटे भाई जो कह, न्यग्रोध आदि आठ योद्धा थे, वे सब पूर्वजन्ममें कौन थे ? जो कि परममोक्षको प्राप्त हुए, वह बताइये ! || १२ ||

शारदजीने कहा—राजन् । पूर्वकालकी थात है, कुवेरकी राजधानी अल्कामें ‘देवयक्ष’ नामसे प्रसिद्ध एक वक्ष इहता था । वह डार्नी, शानपरायण, शिवभक्तिसे सम्मानित तथा महातेजस्वी था । उसके आठ पुत्र हुए, जिनके नाम इष्ट प्रकार हैं—देवकृष्ण, महागिरि, गण्ड, दण्ड, प्रचण्ड, वण्ड, अचण्ड और पृथु । एक दिन शिवपूजाके नियमित अस्तोदयकी वेलामें एक सहस्र पुण्डरीक पुष्प लानेवे, लिये देवयक्षकी आशा पाकर वे सब गये । उन्होने भ्रमरोके गुजारवसे युक्त सहस्र कमल-पुष्प मानारोदयमें लाकर, उनकी गन्धोंलोमध्ये ढँककर पिताको अर्पित किये । फूलोंको उच्छिष्ठ करनेके दोषमें शिवपूजासे तिरस्कृत हुए वे मूढ़ यथा तीन जन्मोके लिये असुरवेणिको प्राप्त हुए । मिथिलेश्वर ! विदेहराज ! बलदेवजीके कल्याणकारी हाथोंसे भारे जाकर वे दोषमें मुक्त हो गये और परममोक्षको प्राप्त हुए । नरेश्वर ! कंसके छोटे भाईयोंके पूर्वजन्मका यह बृत्तान्त मैंने कहा, तुम और क्या सुनना चाहते हो ? || १३-१४ ||

बहुलाभ्वने पूछा—ब्रह्मन् । यह शशुद्धस्पर्धारी दैत्य

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमधुराशास्त्रके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें ‘ब्राजूर आदि मल्कों, कंसके माल्यों तथा पश्चान दैत्यके पूर्वजन्मका उपाह्यान’ नामक नात्मकां अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

श्रीकृष्णकी जाहाजे उद्धवका वज्रमें जाना और श्रीदामा आदि सत्ताओंका उनसे श्रीकृष्ण-विरहके दुःखका निवेदन

बहुलाभ्वने पूछा—मुनिश्चेष्ठ ! अपने कुड़मीजनों तथा जाति-भाइयोंको मधुराशुरीमें निवास देकर यदु-कुल-तिलक श्रीकृष्णने आगे चलकर कौन-कौन-सा कार्य किया ? || १ ||

शारदजीने कहा—राजन् । लाक्षात् परिषूर्णतम भगवान् भक्तवत्सल श्रीकृष्णने गोपी और गोपगणोंसे भरे हुए बीन दुखी गोकुलका सरण किया । अतः एक दिन

पश्चजन पूर्वजन्ममें कौन था, जिसकी अस्तियोका शङ्ख भगवान् श्रीकृष्णके करकमलमें सुशोभित हुआ ? || २० ||

नारदजी कहते हैं—विदेहराज ! पूर्वकालसे ही वे चक्र आदि त्रिलोकीनाथ श्रीहरिके उपाङ्ग रहे हैं । वे सब-के-सब उनके तेजमें संरहीत हुए थे । राजन् । उनमेंसे पाञ्चजन्य शङ्खको बड़ी ऊँची पदवी प्राप्त हुई । वह श्रीकृष्णके मुँहसे लगाकर उनके अधरामृतका पान किया करता था ॥ २१-२२ ॥

एक दिन शङ्खराजने मन-ही-मन मानका अनुभव किया और इस प्रकार कहा—‘मेरी कान्ति राजहसके समान रहत है । मुझे साक्षात् श्रीहरिने अपने हाथोंसे यहोत किया है । मैं दक्षिणावर्त शङ्ख हूँ और युद्धमें विजय प्राप्त होनेपर श्रीकृष्ण मुझे बजाया करते हैं । भगवान् श्रीकृष्णका जो अधरामृत श्रीरसगर-कन्या लक्ष्मीके लिये भी दुर्लभ है, उसे मैं दिन रात पीता रहता हूँ । अतः मैं सबसे श्रष्ट हूँ ।’ विदेहराज ! इग प्रकार मान प्रकट करते हुए पाञ्चजन्य शङ्खको लक्ष्मीने क्रोधपूर्वक शाप दिया—‘नुर्भते ! तू दैत्य हो जा ।’ वही शङ्खराज समुद्रमें यह पश्चजन नामक दैत्य हुआ था, जो वैरभावसे भजनके कारण पुनः देवेश्वर श्रीहरिको प्राप्त हुआ । उसकी ज्योति देवेश्वर श्रीकृष्णमें लीन हो गयी और अब वह उन्हींके हाथमें शोभा पाता है । उस शङ्खराजका सौभाग्य अद्भुत है, अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ? || २३-२७ ||

एकान्तमें अपने सखा भक्त उद्धवको बुलाकर भगवान् ने प्रेमगद्वाद व्यापीमें कहा ॥ २-३ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे सखे ! लता-कुड़ोंके समुदाय आदिसे अलंकृत सुन्दर वज्रमण्डलमें शीघ्र ही जाओ । गोवर्धन और यमुनाकी शोभासे मनोहर वृन्दावनमें तथा गोप-गोपियोंसे भरे हुए गोकुलमें भी पशारो । मित्र ! मेरा

एक पत्र तो नम्दवानाको देना और दूसरा यशोदा मैथिके हाथमें देना । सबे । तीसरा पत्र श्रीराधिकाको उनके सुन्दर मन्दिरमें जाकर देना और चौथा भेरे सखा ग्वालालोंको मेरा शुभ कुशल-समाचार निवेदन करते हुए देना । इसी प्रकार अत्यन्त मोहित हुई गोपाङ्गनाओंके सैकड़ों यूथोंको पृथक्-पृथक् पत्र देने हैं । मेरे पिता नन्दराज बड़े दबाल हैं । उनका मन मुझमें ही लगा रहता है और मेरी मैथा यशोदा शीघ्र ही अपने पास बुलानेके लिये मेरा सरण करती है । तुम तो नीतियांचके विद्वान् हो; सुन्दर-सुन्दर बातें सुनाकर उन दोनोंके हृदयमें मेरी परम प्रीति भारण करना । मेरी प्राणबल्लभा राधिका मेरे वियोगसे आदुर है और मेरे बिना मोहब्बत सारे जगतको सूना समझती है । उन भवको मेरे वियोगके कारण जो मानसिक व्यथा हो रही है, उसे मेरे संदेश-बचनोदारा शान्त करो; क्योंकि तुम बातचीत करनेमें बड़े कुशल हो । सुदामा आदि गवाल बाल मेरे प्रिय सखा हैं । मुझ अपने मित्रके बिना वे भी मोहसे आतुर हैं, तुम उन्हें भी मित्रकी तरह सुख देना । मैं थोड़े ही समयमें श्रीब्रजधाममें आजँगा । गोपाङ्गनाएँ मेरे वियोगकी व्यथाके बेगसे ब्यादुल हैं । उनका मन मुझमें ही लगा हुआ है । उनके शरीर और प्राण भी मुझमें ही स्थित हैं । मन्त्रिप्रबर ! जिन्होंने मेरे लिये अपने लोक-परलोक सब इथाग दिये हैं, उन अवलोक्तोंका भरण-पोषण मैं स्वतः कैसे नहीं करूँगा । उद्दव ! वे मेरे आते समय प्राण ल्याग देनेको उचित थीं । वे आज भी बही कठिनाईसे प्राण भारण करती हैं । मेरे वियोगसे उत्पन्न उनकी मानसिक व्यथाको तुम मेरे संदेश-बचनोंके द्वारा शान्त करो; क्योंकि बातालपकी कलामें तुम परम कुशल हो । सबे । मैं पहले गिर इथपर आस्त होकर बजाए आवा वा, डुर्ली इथको, उन्हीं बोहीं, चारिथ और बजती हुई घण्टिकाओंसे दुर्घटित करके अपने लाथ के आओ । मेरे समान ही हर बना लो । अभी पीताम्बर, वैजयन्ती माला, लहसुदल कमल, दिव्य रत्नोंकी प्रभामे मणिन दुष्प्रल तथा कोटि बाल्वियोंके समान उद्दीप्त कौसुभमणि भी भारण कर लो । मेरी उच्चत्वरसे बजनेवाली मनोहर बाँसुरी तथा फूलोंसे सजी हुई जगन्मोहिनी शहि (छही) भी के लो । उद्दव ! मेरे ही समान दिव्य कुरुन्वते आहृत सुन्दर चन्दन, मोरपंख और बजते हुए दूपुरोंसे युक्त नटबर-बेष भारण कर लो । इसी तरह मेरा ही मोरपंखका सुकुट तथा दोनों बाजूबंद भारण करके मेरे

आदेशसे अभी यथासम्भव शीघ्र जाओ, जाओ ॥ ४-१८ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! श्रीकृष्णके यो कहनेपर उद्दवने शीघ्र ही हाथ जोड़कर उनको नमस्कार किया और उनकी परिक्रमा करके इथपर आस्त हो वे ब्रजकी और बल दिये, जहाँ कोटि-कोटि मनोहर गौरें दिव्य भूषणोंसे विभूषित हो इवेत पर्वतके समान दिखायी देती थीं । वे सब-की-सब दूध देनेवाली तरणी (कलोर), सुषीला, सुख्या और सुदुग्धती थीं । उनके साथ बछड़े भी थे । उनकी पूँछके नाल पीछे थे । चलते समय उनकी मूर्तियाँ बही भव्य दिखायी देती थीं । गलेके घंटों और पैरोंके मञ्जीरोंका झंकार होता रहता था । वे किञ्चित्तिवों (सुद-घण्टिकाओं) के जालसे मणित थे । चित्तनी ही गौरें सुवर्णके समान रंगवाली थीं । उनके सौंगोंमें सोना मढ़ा गया था तथा नाना प्रकारके हारों और मालाओंसे अलंकृत हुई उन गौओंकी प्रभास तथा ओर छिटक रही थी । कोई लाल, कोई हरी, कोई तांचेके रंगवाली, कोई पीली, कोई इयामा और कोई चितकनवी थी । उस ब्रजमें धूम्रवर्ण और बोयलके-से काले रंगकी भी गौरें दृष्टिगोचर होती थीं । तात्पर्य यह कि उस ब्रजभूमिमें अनेकानेक रंगवाली गौरें परिलक्षित होती थीं । वे समुद्रकी तरह अथाह दूध देनेवाली थीं । उनके अङ्गोंपर तरणी छियोंके हाथोंके छापे लो हुए थे । हिरनकी भाँति चौकड़ी भरनेवाले बछड़े उन सुन्दर गौओंकी शोभा बढ़ा रहे थे । उन गौओंके छुंडमें बड़े-बड़े लाँड़ इधर-उधर चलते दिखायी देते थे, उनके कंचे और सींग बड़े-बड़े थे । वे सब-की-सब धर्मधुरंधर थे । गोपगण हाथोंमें बैतकी छही और बाँसुरी लिये हुए थे । उनकी अङ्गाकृति दयाम दिखायी देती थी । वे कामदेवोंको भी मोहित करनेवाली रागोंमें श्रीकृष्ण-सीखओंका उत्तरसरणे गाय कर रहे थे । उद्दवकी दूरते आते देख, उन्हें कृष्ण उमड़कर ब्रजके बालक श्रीकृष्णदर्शनकी अङ्गताति परतपर इस प्रकार कहने लगे ॥ १५-१९ ॥

गोप बोले—मित्र ! ये नन्दनस्त्रू आ रहे हैं, जो हमारे प्रिय सखा हैं; निसंदेह वे ही हैं । मेषके समान श्वामकान्ति, शरीरपर पीताम्बर, गलेमें वैजयन्ती माला तथा कानोंमें रत्नमय कुण्डल इनकी शोभा बढ़ाते हैं । बक्षःस्पङ्गर कौसुभमणि, हाथोंमें गोल-गोल कहे शोभा दे रहे हैं । हाथमें सहस्रदल कमल भारण करके माथेपर वही सुकुट पहने हुए हैं, जो करोड़ों मार्त्तियोंके तेजको तिरस्कृत कर देता है । वे ही भोगे

वौर वही किञ्चिणीजाले मध्वित रथ है । इस रथपर बलवेदजी नहीं है, अकेले नन्दनन्दन ही दिखायी देते हैं ॥ २४-२६ ॥

नारदजी कहते हैं - विदेहराज ! इस प्रकार बातें करते हुए श्रीदामा आदि गो पाल कृष्ण की ही आड्डते भारण करनेवाले कृष्ण सत्सा उद्घवके पास रथके चारों ओरसे आ गये । निकट आनंदपर बै जोगे - श्रीकृष्ण तो नहीं हैं; किंतु साक्षात् उनके ही समान आर्जुतवान् यह पुरुष कौन है ? इस तरह नोको हुए उन गो पालोंको नमस्कार करके उद्घवने उन सबको हृदयां स्वाया और अपने स्वामी कृष्णमुन्दरकी चर्चा आरम्भ की ॥ २७-२८ ॥

उद्घव बोले—श्रीदामन् । यह तुम्हारे सत्सा श्रीकृष्णका दिया हुआ पत्र है, इसमें संशय नहीं है; तुम इसे ग्रहण करो । न्याल बालोनाहित तुम शोक न करो । साक्षात् श्रीहरि संकुशल हैं । वे भगवान् शादवोंका महान् कार्य सिद्ध करके बलरामजीके साथ चोड़े ही दिनोंमें पहाँ आयेंगे ॥ २९-३० ॥

इस प्रकार श्रीराम-संहितामें श्रीमयुराक्षषङ्क अन्तर्गत नारद-बहुलाश-संवादमें : उद्घवका आगमनः नामक तेहवाँ अस्याम पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

उद्घवका श्रीकृष्ण-भगवांओंको आश्वासन; नन्द और यशोदासे बातचीत तथा उनकी प्रेम-लक्षणा-भवित्वे से चकित होकर उद्घवका उन्हें श्रीकृष्णके चरित्र सुनाना

श्रीनारदजी कहते हैं - राजन् ! इम प्राप्त प्रेम भरे गोपोंसं, जो श्रीकृष्णके विरहसे व्याकुल थे, प्रेमी भक्त उद्घवने विस्पर्यहित होकर कहा ॥ १ ॥

कृष्ण बोले—बलवासियो ! मैं श्रीकृष्णका शास्त्र हूँ— उनका प्रेमपात्र तथा एकान्त सेवक हूँ । श्रीहरिने बही उत्तरवलीके साथ आपलोगोंका कुरुक्षेत्रमुख्य जाननेके लिये मुझे यहाँ भेजा है । यहाँसे मधुरापुरीको छोड़कर श्रीहरिसे आपलोगोंकी चिरह-वेदना गिवित करके अपने नेत्रोंके अल्पे उनको भरण पसारकर उन्हें प्रसन्न कर्त्ता और उन्हें साथ लेकर शीघ्र ही आपलोगोंके उमीप आँखें— यह मेरी प्रतिका है, यह कभी छूटी नहीं होगी । गोपाळाण ! आपलोग प्रसन्न हों, शोक न करें । आप इस वर्षमें शीघ्र ही शोवलभ श्रीहरिना दर्शन करेंगे ॥ २-५ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार बालोंको

नारदजी कहते हैं—राजन् ! उनके हाथके दिये हुए पत्रको पढ़कर श्रीदामा आदि ब्रजके बालक बहुत आँख बहाने हुए गदगद वाणीमें बोले ॥ ३१ ॥

गोपोंने कहा—हे पश्चिम ! निर्मोही नन्दनन्दनमें ही हमारा तन, बै भव, धन, बल और समस्त अन्तःकरण ल्या हुआ है । श्रीकृष्णके विना हमारा ब्रज ही नहीं शून्य हुआ है, हमारे लिये सारा संमार सूना हो गया है । महामते ! श्रीहरिके विना उनके वियोगके दुःखमें हम ब्रजवासियोंके लिये एक-एक क्षण युक्ते समान, एक-एक घड़ी मन्वन्तरके तुल्य, एक-एक प्रहर कल्पके नमान तथा एक-एक दिन द्विपरावंके भद्रश्च हो गया है । उद्घव ! हम दिन-रात उसे भुला नहीं पाते । हमारे जीवनमें वह कैसी हुष्ट घड़ी आयी थी, जिसमें क्षमामुन्दर गहरे चले गये । यद्यपि हम मित्रताके नाते उदा उनका अपराध करते रहे हैं, तथापि हम बनवासियोंके मनको उन्होंने भद्रके लिये हर लिया ॥ ३२-३४ ॥

अन्तर्गत नारद-बहुलाश-संवादमें : उद्घवका

आश्वासन दे, रथपर बैठे हुए यदुनन्दन उद्घव श्रीदामा आदि गोपोंके साथ हृष्टसे भरकर नन्दगांवमें प्रविष्ट हुए । उष समय सूर्य उमुदमें छूट चुके थे । उद्घवका आगमन झुनकर परम दुष्टिमान् नन्दराजने शीघ्र आकर उन्हें प्रसन्नता-पूर्वक हृदयसे कागाया और वहे हृष्टसे उनका पूजन—स्वागत-रक्षकर किया । जब उद्घवजी भोजन करके शान्तमावसे शश्यापर आशीन हुए, तब नन्दराजने भी शश्यापर स्थित हो गदगद वाणीमें कहा ॥ ६-८ ॥

नन्द बोले—महामते उद्घव ! क्या मेरे शिव वसुदेव भशुरापुरामें अपने पुत्रोंके साथ संकुशल हैं ? सबे ! कंसके भर आनेपर यादव-शिरोमणियोंको इस भूतज्वर परम सुख मुचिभाली प्राप्ति हुई है । क्या कभी बल्लामसाहित माधव अपनी माता यशोदाको भी याद करते हैं ? यहाँके बाल, गोवर्धन पर्वत, गौओंके अमुदाय और ब्रज, कृष्णमन,

ममुना-पुणिज अथवा यमुना नदीका भी कभी सरण करते हैं। हा देव ! अब मैं किस समय विष्वफलके समान लाल ओडवाले अपने पुत्र कमल-नयन श्यामसुन्दरको बलाम और श्वाल-बालोंके साथ बार-बार घरके आँगन और चबूतरोपर लोटते देखूँगा ? कुछ, निकुञ्ज, महानदी यमुना, गिरिराज गोवर्धन, यह बृन्दावन तथा दूसरे-दूसरे बन, इह, लता, हृषि और गौओंके समुदाय तथा इनके साथ ही यह सारा ५८ र मुकुन्दके बिना विष्वतुल्य प्रतीत हो रहा है। कमल-दलके समान विशाल नेत्रबाले श्रीकृष्णके बिना मेरे जीवन, शयन और भोजनको भी धिक्कार है। इस भूतलगर चन्द्रमासे बिछुड़े हुए चकोरकी भाँति मैं उनके आगमनकी बहुत अधिक आशासे ही जीवन धारण कर रहा हूँ। महामते ! मैं श्रीकृष्ण और बलामको परात्पर परमेश्वर ही मानता हूँ। देवताओंके अत्यन्त प्रार्थना करनेपर वे पूर्णतम भगवान् भूमिका भार उतारनेके लिये स्वेच्छासे अवतीर्ण हुए हैं और अब संतोंकी रक्षामें तत्पर हैं॥ ११-१४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! परमेश्वर श्रीहरिका बार-बार सरण करके नवनन्दराज तकियेपर सिर रखकर जुप हो गये। उनका अङ्ग-अङ्ग उत्कण्ठाके कारण रोमाङ्ग-युक्त और विहृल हो रहा था। राजन् ! उस समय श्रीकृष्ण-सखा उद्धवके देखते-देखते श्रीनन्दराजके नेत्र कमलोंसे निकलती हुई अशुधारा विसर और तकियेसहित श्यायाको भिगोकर आँगनमें वह चली॥ १५-१६ ॥

मधुरापुरीसे उद्धवजीका आना सुनकर सती यशोदा तुरंत दूरबाजेके किंवाङ्गोंके पास चली आयी और अपने पुत्रकी सर्वो सुनने लगीं। उस समय स्नेहवश उनके स्तनोंसे दूध झरने लगा और नेत्र-कमलोंसे आँसुओंकी धारा वह चली। फिर वे आज छोड़कर पुत्रलहसे उद्धवके पास चली आयीं और सारा कुशल-मङ्गल स्वयं पूछने लगीं। नेत्रोंसे बहती हुई अशुधाराको आँचलसे पौष्टकर, हरिकी भावनासे विहृल नन्द-जीकी उपस्थितिमें वे बोलीं॥ १७-१८ ॥

यशोदाने कहा—उद्धव ! क्या कन्हैया कभी मुहळको अथवा अपने बाबा नन्दराजको याद करता है ? इनके भाई सज्जन उसे देखनेके लिये बहुत उत्सुक रहते हैं, क्या वह इनका भी सरण करता है ? इस बजामें नौ नन्द, नौ उपनन्द और छः बृषभानु रहते हैं। क्या कन्हैया इन सबको याद करता है ? जिनकी गोदीमें थैठकर उसने बन-

बनमें बालकेलि की थी, जिनके साथ नन्दनन्दन सन्नन्द गेंद खेल करता था, उन अपने स्नेही भोपौंका यह कभी खत्ता सरण करता है ! मुझे मेरे जीवनमें एक ही यह बेटा मिल गया, मेरे बहुतसे पुत्र नहीं हैं, फिर भी वह एक ही पुत्र मुझ दीन-दुखी माँको छोड़कर दूसरी दिशाको चला गया। महामते ! स्नेह करनेवालोंके लिये कह होना अनिवार्य है, यह कैसी आश्वस्त्रकी बात है ! मनद ! बसाओ—मैं पुत्रके बिना क्या करूँ, ऐसे जीवन रहूँ ? मैया मुझे दूरी दें, या मुझे ताजा माननं दें—इस प्रकार मधुर वाणीमें शोल्कर वह घरमें सदा हठ किया करता था। वही कन्हैया अब दोपहरमें कैसे भोजन करता होगा ! यह मेरा लाल ७ नैया वज्रवासियोंका जीवन है, ब्रजका धन है, इस कुलका दापक है तथा अपनी बाल-लीलासे सबने भनको मोह करनेवाला है। उसके लालन-पालनमें मेरे इतने बचोंके दिन एक ज्ञानकी भाँति बीत गये। अहो ! आज नन्दनन्दनके बिना वही शिन एक कस्पके समान भारी हो गया है। जिस कन्हैयाको श्वाल-बालोंके साथ बछड़े चरानेके लिये मैं गाँवकी भीमापर और नदीके किनारे भी नहीं जाने देती थी, हाय ! वही अब मधुरा चल गया ! ‘ओ मोहन !’—यों पूरसे पुकारकर जो उसे गोदमें केते और लाल-प्यार करते थे, वे ही नन्दराज उसके बिना खेद और विशावमें झूमे रहते हैं। अहो ! एक दिन दूरीका भाँड़ फोड़ देनेपर मुझ निर्मोहिनीने उस बच्चे-को रससीसे बाँध दिया था। आज वह करतूत याद करके मैं शोकमें झूम रही हूँ। यह आँगन, सारा सभामण्डप, मकान, सरोवर, गली, बज, गहलोंकी छाँतें सब सूनी हो गयी हैं। मुकुन्दके बिना यह सारा जगत् विष्वके तुल्य प्रतीत होता है। कन्हैयाके बिना मेरे इस जीवनको धिकार है॥ १९-२० ॥

श्रीनारदजी कहने हैं—राजन् ! यशोदा और नन्दमें उद्धवकोटिके प्रेमका लक्षण प्रकट हुआ देख उद्धव अत्यन्त आश्वस्त्रकित हो गये। उनका अपना सारा ज्ञानाभिमान गल गया॥ २१ ॥

उद्धव बोले—अहो ! महाप्रभु नन्द और यशोदाजी ! मेरे शरीरमें जितने रोम हैं, वे सब यदि जिहाएँ हो जायें तो उन जिहाओंद्वारा भी मैं आप दोनोंकी महस्ताका बर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूँ। आप दोनोंने साक्षात् परिपूर्णतम पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके प्रति ऐसी प्रेमलक्षण भक्ति की है, जिसकी कहीं द्रुलग्ना नहीं है। आप दोनोंको जो सनातन प्रेमलक्षण-

यहि शात् तु है; वह तीर्थादन, तपस्या, दान, संक्षय और योगले भी बुल्लम् नहीं है। हे नन्द और हे श्रीहरियो यशोदे! अपने दोनों शोक न करें। ये दो पत्र आपलोग शीघ्र ही अपने हाथर्में लें। इन पत्रोंको निस्तरेह श्रीकृष्णने ही दिया है। अपने वहे भाई बलरामजीके साथ नन्दनन्दन श्रीकृष्ण यत्कुपुरीमें कुशलपूर्वक हैं। यादवोंका महात् कार्य सिद्ध करके बलरामसहित श्रीभगवान् यहाँ भी योड़े ही समयमें आयेंगे॥ ३२—३३॥

तुम नन्दनन्दन श्रीकृष्णको परिपूर्णतम परमात्मा समझो। वे कंस आदि देवोंका वध और भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये बलशालीकी प्रार्थनासे आपके घरमें अवतीर्ण हुए हैं। बलराम-सहित श्रीहरिने जन्मदानसे ही अद्गुत लीला आरम्भ कर दी थी। पूजनाके प्राणोंका अपहरण, शकटका भजन, तुणवर्तको मार गिराना, यमलर्जुन वृक्षोंको तोड़ गिराना और अपने मुखमें यशोदाजीको विश्वरूपका दर्शन कराना आदि उनकी अलौकिक लीलाएँ हैं। बृन्दावनमें बछड़े चराते हुए उन प्रभावशाली भगवान्ने गोपोंके देखते देखते बलसुर और वत्सासुरका वध किया, अघासुरको मारा, बेनुकासुरको कुचल डाला, कालियनागको रींद डाला, दावानलको पी लिया तथा तत्पश्चात् बलदेवजीने प्रलम्बासुरका वध किया। आप सब लोगोंके देखते हुए जैसे गजराज अपनी सुङ्गमें कमल भारण करता है, उसी प्रकार श्रीहरिने एक ही हाथसे लीलापूर्वक गोवर्धन पर्वतको उखालकर उठा लिया। उन अगदीश्वरने शङ्खचूड़से उसकी चूड़ामणि ले ली और

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमयुगस्त्रायके अन्तर्गत नारद-ब्रह्मलदव-संवादमें 'नन्दराज और उद्धवका मिलन'

नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४॥

पंद्रहवाँ अध्याय

गोपालनांशोंके साथ उद्धवका कदली-बनमें जाना और वहाँ उनकी स्तुति करके श्रीकृष्णद्वारा मेजे गये पत्र अर्पित करना

नारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार श्रीहरिकी वर्चा करते हुए नन्द और उद्धवकी वह रात एक दृश्यके सम्मान व्यतीत हो गयी। उनके हर्षको बढ़ानेवाली होनेके कारण उसका 'क्षणदा' (आनन्ददायिनी) नाम वरितार्थ ही गया। वह मात्रमुहूर्त आया, तब सती गोपालनांशोंने उठकर अपने इनकी देहली एवं आँखें

अरिष्ठासुरका वध करके केशीको भी काढके गङ्गामें भेज दिया। व्योमासुर बड़ा भारी दैत्य था, किंतु भगवान्ने उसे मुक्तेसे ही मसल डाला॥ ३७—४४॥

महामते! इनी प्रकार मधुरामें भी उन्होंने विनिश्च पराक्रम प्रकट किया। कंसका रजक वडा डौंग हाँकता था, किंतु श्रीहरिने एक ही हाथकी चोटसे उसका काम तमाम कर दिया। सब लोगोंके देखते-देखते कंसके प्रचण्ड धनुदण्डको बीचसे ही खण्डित कर दिया—ठीक उसी तरह, जैसे हाथी ईखके छंडेको तोड़ डालता है। कुवल्यापीड नामक हाथी बलमें इस हजार हाथियोंकी समानता करता था, किंतु भगवान्ने उसकी दृङ्घ पकड़कर उसे भूतलपर दे मारा। चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशलकी माधवने मलयुद्ध करके भृष्णपर मार गिराया। मदमत्त दैत्य कंस एक लाख हाथियोंके समान बलशाली था; परंतु उसे श्रीकृष्णने मञ्चसे उठाकर भुजाओंपे बेगसे धुमाते हुए पृथ्वीपर उसी तरह पटक दिया, जैसे कोई बालक कमण्डल्को गिरा दे। फिर जैसे हाथीपर तिह कूदे, उसी प्रकार वे कंसपर कूद पड़े। कंसके कङ्क आदि छोटे भाइयोंका महाशयली बलदेवने मुद्ररसे ही तुरंत उसी प्रकार कच्चुमर निकाल दिया, जैसे किसी सिंहने बहुत मेरुगोंको मौतके शाट उतार दिया हो। अपने गुरुको दक्षिणा देनेके लिये महासागरमें कूदकर स्वयं श्रीहरिने शङ्खरूपधारी पञ्चजन नामक असुरका संहार कर डाला। महानन्द! ये अद्भुत चरित्र भगवान् श्रीकृष्णके बिना कौन कर सकता है? उन श्रीहरिको नमस्कार है॥ ४५—५३॥

लीपकर वहाँ प्रज्वलित दीप रख दिये। फिर हाथ-पैर धोकर मथानीमें रस्ती लगावर वे स्नेहयुक्त दहीको सब ओरसे मथने लगीं। मथानीकी रस्ती खींचनेसे चक्षुल हुए हार और हाथोंके कंगन बज रहे थे। उनकी वेणियोंमें पूर्ण झर-झरकर गिर रहे थे और चमकते हुए कुण्डल उनके कानोंकी धोधा बदा रहे थे। वे सब-की सब चन्द्रमुखी, कमलनयनी

तथा विचित्र प्रणाले के बहु भागण करनेके कारण अस्थन्त मनोहर थीं। श्रीकृष्ण और बलदेवके महालभय नारिश्रीका प्र-वर्तमें यहाँ-यहाँ प्रेमपूर्वक मान कर रही थीं। प्रथेक लोक्ये सुन्दर गौरें इधर-उधर रैंगा रही थीं। गच्छ-गलीमें सर्वथा दही मथनेके शब्दसे मिथित गोपालनार्थोंका गीत सुनकर विसित हुए उद्बव इस प्रकार बोल उठे—‘अहो ! इस नन्दनगरमें तो भक्तिदेवी मन्त्र-तत्त्व दृश्य कर रही हैं।’ यों कहते हुए वे गाँवसे उहरे यमुना-नदीमें जान करनेके लिये गये ॥ १८-१९ ॥

उस समय उद्बवके रथको देखकर गोपियाँ बोलीं—सलियो ! आज यहाँ किसका रथ आ पहुँचा है ! अथवा वह कूर अकूर ही तो फिर नहीं आया है, जो दूतन-कमल-दल-लोचन श्रीनन्दननन्दनको महापुरी मधुरामें लिवा ले गया था ! जैसे कद्रुने जगतके लोगोंको मारने या डँसवानेके लिये ही इधर-उधर विश्वधर नागोंको उत्पन्न किया है, उसी प्रकार स्नेही सत्पुरुषोंको तीव्र ताप देनेके लिये ही न जाने उसकी माताने उसे किस कुसमयमें जन्म दिया था ! जो कंकका स्वार्थसाधक तथा कंकका ही अस्थन्त मिर्द्य सका है, वह इस ब्रजमण्डलमें फिर कहीं आया है ? अपने मेरे हुए स्वामीकी पारलैफिक किया क्या आज वह हमलोगोंके प्राणोंसे ही सम्पन्न करेगा ! ॥ १९-२१ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् । इस प्रकार बातचीत करती हुई ब्रजकी गोपालनार्थे सारथिके मुखको दो अङ्गुलियोंसे ठोककर निकटसे पूछने लाईं—‘जल्दी बताओ, यह किसका रथ है ?’ बेकारा सारथि आतंभासके हका-बक्षा-सा होकर देखने लगा। हल्लेमें उन्हें उद्बवजी आते दिखायी दिये। उनकी कानिति मेथके समान ज्ञान थी। नेत्र प्रकृत्य कमलदलके समन विशाल थे। आकार भी श्रीकृष्ण-से मिलता-जुलता था। वे करोड़ों कामदेवोंको भोह छेनेवाले जान पढ़ते थे। उनके शरीरपर पीताम्बर मुशोभित था। उन्होंने गलेमें नूतन वैजयन्ती भाषा धारण कर रखी थी, जितार हृष्ट-के-हृष्ट भ्रमर हृष्टे पढ़ते थे। उनके हाथमें सहस्रदल कमल तुशीभित था। उन्होंने हाथोंमें बाँसुरी और बैतकी छड़ी ले रखी थी। जनका वेद वहा मनोहर था। करोड़ों बालरवियोंकी कानितिसे उक्त मुकुट उनके महाकाळों मणित कर रहा था। बहालहारी कौसुभ नामक महामणि प्रकाशकाल भी और एसमय तुष्णि उनके करोड़मण्डली कानित करा-

यी है। नरेश ! चाल-हाथ शाकुलिं शोभा, शोभा, हाथ और मधुस्त्रव—यहीं हविर्वेति श्रीकृष्णका दासने धारण करनेवाले उन उद्बवजों देखकर समस्त गोपियों चकित हो गयी और उन्हें गोपियोंका सहाय जामन उनके साथने आयी ॥ १२-१५ ॥

यह जानकर किये भगवान् श्रीहरिका सदेश लेकर आये हैं वैनालियुक्त सुन्दर बचन बोलकर उनके प्रति आदर दिखाने लगीं तथा उन्हेंके स्वामी गोपिनाथी शूद्र कुशल पूछनेके लिये उन उद्बवजीको साथ लेकर वे कदलीकनमें गयीं, जहाँ बृषभानुनन्दिनी श्रीराधा यमुनाके तटपर मनोहर शिरुङ्ग-मन्दिरमें भगवान्के विरहसे अकुर होकर बैठी थीं और उन श्रीहरिके बिना सरे जगत्को सर्वथा सूना मानती थीं। जो पहले केलोंके पत्तोंसे और विसे हुए चन्दनके पहुँचे शीतल मैथमन्दिर-सा प्रतीत होता था तथा यमुनाकी चञ्चल चार तरंगोंकी झुहर पहन्ने से जहाँ ऐसा प्रतीत होता था कि साक्षात् दुष्टप्रिय चन्द्रमाकी मुधारादि स्वतः गल रही है, ऐसा कदली-बन सारा-का-सारा श्रीराधाकी वियोगाभ्यन्ति लेजासे अस्थन्त छुल्ल गया था। केवल श्रीकृष्णके शुभामानकी आशाएं श्रीराधा अपने शरीरकी रक्षा कर रही थीं। श्रीकृष्णके स्वाम उद्बवका आगमन सुनकर श्रीराधाने अपनी सखियोंके द्वाया अन्न, पान और मधुरपक्ष आदि माहालिक बल्लपैं अपितकर उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। उस समय वे बारंबार ‘श्रीकृष्ण-कृष्ण’का उच्चारण करती थीं। गोविन्द-के वियोगसे लिम्न हुई राधा अमावास्यामें प्रविष्ट चन्द्र-कलाकी भाँति धीरण हो रही थीं। उस समय उद्बवने नताही एवं कृशाही राधाको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनकी परिकमा करके वे हर्षपूर्वक बोले ॥ १६-२१ ॥

उद्बवने कहा—श्रीराधे ! श्रीकृष्ण सदा परिपूर्णतम भगवान् हैं और आप सदा परिपूर्ण तमा भगवती हैं। श्रीकृष्णकव्य नित्यलीलापरायण हैं और आप नित्य-लीलाका सम्पादन करनेवाली नित्यलीलावती हैं। श्रीकृष्ण भूमा हैं और आप इन्दिरा हैं। श्रीकृष्ण नित्य उनाहन बहा हैं और आप सदा उनकी शक्ति सरस्वती हैं। श्रीकृष्ण शिव हैं और आप कल्याणस्वरूपा शिव हैं। भगवान् श्रीकृष्ण विष्णु हैं और आप नित्य ही उनकी पराशक्ति वैष्णवी हैं। आदिवेष्टा श्रीहरि कौशलहरी—कौशल, कौशल, उनाहन और उनकुमार हैं तथा

आप शमनवर्णी श्रभा स्मृति है। श्रीहरि प्रलयकालके लगभग कीदा करनेवाले यज्ञवराह हैं और आप ही शमुखा हैं। श्रीहरि मनसे जब देवर्थिनवं भूरद्ग बनते हैं, तब साक्षात् आप ही उनके हाथकी चीणा होती हैं। श्रीहरि जब धर्मनन्दन मर और नारायण होते हैं, तब आप ही जगत्में शान्ति खापित करनेवाली साक्षात् शान्तिरूपिणी होती हैं। श्रीकृष्ण ही साक्षात् महाप्रभु कपिल हैं और आप ही सिद्धसेविता लिदि। राष्ट्रे ! श्रीकृष्ण महामुनीश्वर दत्तात्रेय हैं और आप ही नित्यशानमयी लिदि। श्रीहरि यज्ञ हैं और आप दक्षिणा। वे उक्तम वामन हैं तो आप सदा उनकी शक्ति जगन्ती हैं। श्रीहरि जब समस्त राजाओंके अधिराज पृथु होते हैं, तब आप उन महाराजकी पटरानी अर्चिदेवी-के रूपमें प्रकट होती हैं। शङ्कासुरका वध करनेके लिये जब श्रीहरिने मस्त्यावतार महण किया, तब आप शुतिरूपा हुईं। मन्दराचलद्वारा समुद्रमन्थके समय श्रीहरि कच्छपरूपमें प्रकट हुए, तब आप बासुकिनागमें शुभदायिणी नेती शक्तिरूपसे प्रकट हुईं। शुभे ! परमेश्वर श्रीहरि जब पीड़ाहारी धन्वन्तरिके रूपमें आविभूत हुए, तब आप दिव्य सुधामयी ओषधिके रूपमें हृषिगोचर हुईं। श्रीकृष्णचन्द्र जब मोहिनीरूपमें सामने आये, तब आप उनके भीतर विश्व-विमोहिनी मोहिनीके रूपमें अभिव्यक्त हुईं। श्रीहरि जब दुर्लिङ्गरूप धारण करके दुर्लिंग करने लगे, तब आप निजभक्तवत्सला लीलाके रूपमें सामने आयीं। जब श्रीकृष्णने बामनरूप धारण किया, तब आप अपने भक्तज्ञोद्वारा कीर्तिं कीर्तिरूपिणी हुईं। जब श्रीहरि भूगुनन्दन परशुरामका रूप धारण करके सामने आये, तब आप ही उनके कुठारकी धारा बनीं। श्रीकृष्णचन्द्र जब रघुकुलचन्द्र श्रीराम हुए, तब आप ही उनकी धर्मपत्नी जनकनन्दिनी सीता थीं। जब शार्दूलवन्ना श्रीहरि बादरायणमुनि व्यासके रूपमें प्रकट होते हैं, तब आप वेदान्ततत्त्वको प्रकट करनेवाली देवताणीके रूपमें आविभूत होती हैं। दृष्टिं-कुल-तिलक माधव ही जब संकरणरूप होते हैं, तब आप ही ब्रह्मभवा ऐवतीके रूपमें उनकी सेवामें विराजमान होती हैं। श्रीहरि

जब असुरोंको मोहित करनेवाले बुद्धके रूपमें प्रकट होते हैं, तब आप विश्वजनमोहिनी बुद्धि होती हैं। जब श्रीहरि धर्मालक कल्पिके रूपमें प्रकट होंगे, तब आप कृतिलिपिणी होंगी ॥ २२-३३ ॥

चन्द्रमण्डलमें श्रीकृष्ण ही चन्द्ररूप हैं और आप ही सदा चन्द्रिकारूपिणी हैं। आकाशगत सूर्यमण्डलमें श्रीकृष्ण ही सूर्य हैं और आप ही उनकी प्रभामयी परिधिके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। राष्ट्रे ! निश्चय ही यादवेन्द्र श्रीहरि सदा देवराज इन्द्रके रूपमें विराजते हैं और आप वहीं शचीश्वरी शचीके रूपमें निवास करती हैं। परमेश्वर श्रीहरि ही हिरण्यरेता अग्नि हैं और आप ही सदा हिरण्मयी परायोति हैं। श्रीकृष्ण ही राजराज कुबेरके रूपमें विराजते हैं और आप ही उनकी निधिमें निधीश्वरी होकर शोभा पाती हैं। साक्षात् श्रीहरि ही क्षीरसागर हैं और आप ही तरंगित होनेवाली देवत रेशमके समान शुक्लवर्णा तरङ्गमाला हैं। सर्वेश्वर श्रीहरि जब-जब कोई शरीर धारण करते हैं, तब-तब आप उनके अनुरूप शक्तिके रूपमें प्रसिद्ध होती हैं। स्वयं श्रीहरि जगत्-स्वरूप तथा ब्रह्मरूप हैं और आप ही जगन्मयी एवं ब्रह्ममयी चैतन्यशक्ति हैं। राष्ट्रे ! आज भी वे ही ये श्रीहरि ब्रजराजनन्दन हैं और आप उनकी प्रिया दृष्टभानुनन्दिनी हैं। आप दोनोंने जगत्में सुख-शान्तिकी स्थापनाके लिये नाना प्रकारके क्रीडामय चरित्रोद्घारा लिलित आदि लीलाओंके रूपमें सच्चमयी लीला प्रकट की है। पुराणपुरुष श्रीकृष्ण स्वयं परब्रह्म हैं और आप ही उनकी इच्छारूपिणी लीलाशक्ति हैं। आप दोनोंके श्रीविग्रह सदा परस्पर संयुक्त हैं। ऐसे आप दोनों श्रीराध-कृष्णको मेरा नमस्कार है। राष्ट्रिके ! आप शोक न करें और अपने ग्राणनाथका दिया हुआ यह पत्र लें। उन्होंने यह सदैश दिया है कि मैं कुछ ही दिनोंमें यहाँके कार्योंका सम्पादन करके वहाँ आऊँगा। गोपाङ्गनाओ ! आज ही भगवान् श्रीकृष्णके दिये हुए ये परम मङ्गल-मय सैकड़ों पत्र आपलोग ग्रहण करें। श्रीकृष्णकी प्रियतमा ब्रजसुन्दरियोंके शत-शत यूथोंके लिये ये पत्र अर्पित किये गये हैं ॥ ३४-३५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ज-संहितामें श्रीमद्भुताराण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्र-संवदमें उद्घवद्वारा श्रीराजका दर्शन नामक संस्कृत अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

सोलहवाँ अध्याय

उद्घवद्वारा श्रीराधा तथा गोपीजनोंके आवासन

श्रीराधजी कहते हैं—राजन् । श्रीराधाने पश्च लेकर उसे अपने मस्तकपर रखला, फिर नेत्रों और छातीसे लगाया। तदनन्तर उसे पढ़कर श्रीकृष्णके स्वरगारविन्दोका स्वरण करके, अत्यन्त प्रेमातुर हो नेत्रोंसे अश्रुधारा बहाती हुई वे उद्घवके सामने ही मूर्ढाकी पराक्रान्तोंपे पहुँच गयी। तब सखियोंने उनके ऊपर केसर, अगुरु और चन्दनसे मिथित जलंतथापुष्परस छिड़कर चौंबर हुलाना आरम्भ किया। इससे पुनः उनकी चेतना लौटी। कपललेचना श्रीराधाको वियोग-दुःखके सामरणे हुयी हुई देख उद्घव तथा गोपियाँ नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहाने लगीं। राजन्! उन सबके आँसुओंके प्रवाहसे तत्काल बृन्दावनमें कहार-पुष्पोंसे सुशोभित लीला-सरोवर प्रकट हो गया। नरेश्वर! जो मनुष्य उस सरोवरका दर्शन, उसके जलका पान तथा उसमें भलीभांति स्वान करके इस कथाको सुनता है, वह कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हो श्रीकृष्णको प्राप्त कर लेता है। तदनन्तर उद्घवके मुन्हसे श्रीकृष्णके पुनरागमनका समाचार सुनकर वे सब गोपाङ्गनाएँ महात्मा गोविन्दका सम्पूर्ण कुशल-मङ्गल पूछने लगीं॥ १-७ ॥

श्रीराधा बोलीं—उद्घव! वह समय कब आयेगा, जब मैं धनके समान इयामकान्तिवाले आनन्दप्रद श्रीकृष्णराज-नन्दनका दर्शन करूँगी? जैसे मर्यादी मेघमालाके और चकोरी चन्द्रमाके दर्शनके लिये अत्यन्त उत्कृष्ट रहती है, उसी प्रकार मैं भी उनका दर्शन पानेके लिये उत्सुक हूँ। किस कुसमयमें मेरा उनसे वियोग हुआ, जिससे इस पृथ्वीपर एक-एक क्षण मेरे लिये एक कल्पके समान हो गया है। गोविन्दके मुगलचरणोंके बिना वह विरहकी रात हतनी बड़ी हो गयी है कि ब्रह्माजीकी आयुके द्विपर्वर्ष कालको भी तिरस्कृत कर रही है। उद्घव! क्या कभी इयामसुन्दर इस व्रजके मार्गपर भी पदार्पण करेंगे? आप मुझे शीतल बताइये, वे वहाँ कौन-सा कार्य कर रहे हैं? आजतक वहे प्रयातले मैंने इन प्राणोंको धारण किया है। उनके छाटे बावेसे आत्मुर हुए ये प्राण इठात् निकले जा रहे हैं। आज तुम्हें देखकर क्षणमरके लिये मेरा हृदय शीतल हुआ है। तुम्हारे आनेवे आज मैं उसी तरह प्रसन्न हुई हूँ, जैसे पूर्वकलमें पवनपुष्प

इनुमानके लहुओंमें आनेसे जनकमनिदीनी शीता प्रसन्न हुई थी। मनियोंमें श्रेष्ठ उद्घव! जो आशा देकर अपने छोह-मोहर्ली धनको त्यागकर और अपनी ही कही हुई बातको भुलकर मधुरा लेले गये, उनके लिये हुए इस पञ्चके बाक्यांशको भी मैं सत्य नहीं मानती। तुम स्वयं उनको यहाँ ले आओ॥ ८-१२ ॥

उद्घव बोले—श्रीराधे! मैं मधुरापुरी लैटकर आपके इस महान् विरहजनित दुःखको उन्हें सुनाऊँगा और अपने आँसुओंके जलसे उनके चरण पवारहँगा। जैसे भी होगा, श्रीहरिको मधुरापुरीसे लेकर पुनः यहाँ आऊँगा—यह बात मैं आपके चरणोंकी शपथ खाकर कहता हूँ। अतः अब आप शोक न करें॥ १३ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर प्रसन्न हुई श्रीराधाने रात-ऋग्यलम्बे चन्द्रमाद्वारा दी गयी दो सुन्दर चन्द्रकान्त मणियाँ श्यामसुन्दरको देनेके लिये उद्घवके हाथमें दी। पूर्वकालमें चन्द्रमाने जो दो सहस्रदल कमल भेट किये थे, उन्हें भी प्रसन्न हुई भक्तवत्सल श्रीराधाने उद्घवको अर्पित किया। हरिप्रिया श्रीराधाने प्राणवल्लभके लिये छत्र, दिव्य रिंहासन तथा दो भनोहर चौंबर, जो श्रीकृष्णके संकल्पसे प्रकट हुए थे, उद्घवके हाथमें दिये। साथ ही वह वरदान भी दिया कि उद्घव! तुम ऐश्वर्यशानसे सम्भव, समस्त उपदेशक गुरुओंके भी उपदेशक तथा श्रीकृष्णके साथ रहनेवाले होओगे। श्रीराधाने उन्हें निर्गुण-भावसे सम्भव प्रेम-लक्षणा भक्ति तथा ज्ञान-विज्ञान-सहित वैराग्य भी प्रदान किया। विदेहराज! श्रीहरि शङ्खचूड यक्षसे जो उसकी चूडामणि छीन लाये थे, वह सुन्दर चूडामणि चन्द्रावना गोरीने उद्घवके हाथमें दी। राजन्! इसी प्रकार अन्य गोपाङ्गनाओंने भी महात्मा उद्घवके हाथमें सुन्दर आभूषणोंकी राशि समर्पित की॥ १४-२० ॥

नारदजी कहते हैं—उद्घवजीकी शुभार्थक धारी सुनकर जब श्रीराधिकाजी अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं, तब सभामण्डपमें लियत हुए श्रीकृष्ण-सखा उद्घवके पास बैठकर ग्रन्थोप-बधूटियोंने पूर्वकू-पृथकू उनसे पूछा॥ २१ ॥

शोपाहनाएँ बोलीं—उद्दमी ! हमें शीघ्र बताइये, जिन किनके लिये श्रीहरिने पत्र लिखा है, उनके लिये कोई अद्भुत संदेश भी कहा है क्या ? आप परावरवेत्ताओंमें उत्तम, साक्षात् श्रीकृष्णके सखा, उनके ही समान आकृति-बाले और महान् हैं (अतः उनकी कहीं हुई बात हमसे अवश्य कहिये) ॥ २२ ॥

उद्धवमे कहा—गोपाहनाओ ! जैसे तुमलोग देवेश्वर श्रीकृष्णका निरन्तर स्मरण करती रहती हो, उसी प्रकार वे श्री प्रतिशंख तुम्हारा स्मरण करते हैं । निसंदेह मेरे सामने ही वे तुम्हें याद करते रहते हैं । मैं श्रीहरिका एकान्त संदेश हूँ । एक दिन तुमलोगोंही स्मरण करके नन्दनन्दन श्रीहरिने सुझे बुलाया और तुमसे कहनेके लिये अपने मनका संदेश इस प्रकार कहा ॥ २३-२४ ॥

श्रीभगवान् बोले—विश्वोंमें आखत हुआ मन बन्धनकारक होता है; वही यदि मुझ परमपुरुषमें आखत हो जाय तो मोक्षकी प्राप्ति करनेवाला होता है । अतः शानीजन

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीभगवत्सङ्कलन-नारद-बहुलाङ्गव-संवादमें । उद्वद्वारा श्रीराधा तथा गोपियोंको आश्रासन नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

श्रीकृष्णको स्मरण करके श्रीराधा तथा गोपियोंके करुण उद्धार

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! श्रीकृष्णका यह संदेश सुनकर प्रसन्न हुई गोपाहनाएँ आँसू बहातो हुई गङ्गाद कण्ठसे उद्धवसे बोलीं ॥ १ ॥

गोलोकवासिनी गोपियोंने कहा—उद्धव ! पहलेके प्रियजनोंको त्यागकर श्रीकृष्ण परदेश चले गये, उसपर भी बहासे उन्होंने योग लिख भेजा है । अहो ! निर्मोहीपन का वल तो देलो ॥ २ ॥

द्वारपालिका गोपिकाएँ बोलीं—सलियो ! देलो, चन्द्रमाकी चकोरपर, सूर्यकी कमलार, कमलकी भ्रमरपर तथा मेघकी चातकपर जैसे कभी प्रीति नहीं होती, उसी प्रकार व्यामसुन्दरका हमलोगोंपर प्रेम नहीं है ॥ ३ ॥

शुद्धार धारण करनेवाली गोपियोंने कहा—सलियो ! चकोर चन्द्रमाका भिन्न है, परंतु उसके माध्यमें सदा आगकी चिनगारियाँ चलाना ही चला है । विधाताने

मनको बन्धन और मोक्ष—दोनोंका कारण बताते हैं । अतः मनुष्यको चाहिये कि वह मनको जीतकर इस पृथ्वीपर असङ्ग (आसक्तिशून्य) होकर बिनरे । जब विदेशी पुरुष निर्मल अध्यात्मग्रोगके द्वारा मुझ साक्षात् परात्पर ब्रह्मको सर्वत्र ध्यापक जान लेता है, तब वह मनके क्षण (राग या आसक्ति) को त्याग देता है । यद्यपि मेरे सूर्यसे ही उत्पन्न हुआ उसका कार्यरूप है, तथापि जयतक वह सूर्य और दर्शककी दृष्टिके बीचमें स्थित है, तयतक दृष्टि सूर्यको नहीं देता पाती । (उसी प्रकार जयतक अन्तःकरण-आत्मके बीचमें कपायरूप आवरण है, तयतक मुझ परमात्मा-का दर्शन नहीं हो पाता ।) ब्रजाङ्गनाओ ! मैं स्थूल भावसे दूर हूँ, परंतु तत्त्वदृष्टिमें तुमसे और मुझमें बोई दूरी नहीं है । अतः यहाँके विशेषग्रोगको तुम मेरी प्राप्तिका माध्यन बना लो । सांख्यभावसे जिस पदकी प्राप्ति होती है, अवश्य ही वह योगभाव (योग-भाधना या वियोगकी अनुभूति) से भी स्वतः प्राप्त हो जाता है ॥ २५-२७ ॥

जिसके भाष्यमें जो कुछ लिख दिया है, वह कभी कम नहीं होता ॥ ४ ॥

शास्त्रोपकारिक गोपियाँ बोलीं—विधिक भी मृगोंको बाण मारकर तुरंत आतुर हो उनकी सुध लेता है; किन्तु कटाक्षोंसे अपने प्रियजनोंको धायल करके कोई निर्मोही उनका समरातक न करे—यह कैसा धार्षय है ! ॥ ५ ॥

पार्वता गोपियोंने कहा—विरहजनित दुःखको कोई विरही ही जानता है, दूसरा कोई कभी उस दुःखको नहीं समझ सकता—जैसे जिसके अङ्गोंमें काँटा गड़ा है, उसकी पीढ़ीको वही जानता है; जिसके पहले कभी काँटा गड़ चुका है; जिसके शरीरमें कभी काँटा गड़ ही नहीं, वह उसके दर्दको क्या जानेगा ॥ ६ ॥

शुद्धारण-पालिका गोपियाँ बोलीं—निष्काम प्रेमके दुखको निष्काम प्रेमी ही जानता है । जो किसी कारण या कामनाको लेकर प्रेम करता है वह निष्काम प्रेमके दुखको क्या

आनेशा ६ कथा कभी कर्मनिर्दिष्टमें रखका अनुभव कर सकती है ॥ ७ ॥

गोधर्घन-वासिनी गोपियोंने कहा—पुरुषनिःशब्दोंसे प्रेम करनेवाला अब सैरन्ध्री (कुञ्ज) का नायक बन चैठा है। उसे पर्वत एवं बनमें रहनेवाली खियोंसे कथा लेना है। इस विषयमें अधिक कहना व्यर्थ है ॥ ८ ॥

कुञ्जविधायिका गोपियाँ बोलीं—हाय ! मतवाले भ्रमरोंके गुजारावसे व्याप्त माधवी कुञ्ज-पुजामें जिनको हम सदा अपनी आँखोंमें बसाये रखती थीं, उनकी आज यह कथा सुनी जाती है ! ॥ ९ ॥

निकुञ्जवासिनी गोपियोंने कहा—वृन्दावनमें मतवाले भ्रमरोंके समुदायमें युक्त यमुना-तटवर्ती कदम्ब-कुञ्जमें धीर-धीर बलराम, ग्वाल-बाल और गोधनके साथ चिचरते हुए नन्दनन्दनका हम भजन करती हैं ॥ १० ॥

यमुनाजीके यूथमें सम्प्रिलित गोपियाँ बोलीं—कब हमारा भी वैसा ही समय होगा, जैसा आज मयुरापुर-वासिनी खियोंका देखा जाता है ? व्रजाकानाओ । शोक न करो। किसीकी कभी सदा जय या पराजय नहीं होती। विधाताके हृदयमें तनिक भी दद्या नहीं है; जैसे बालक खिलौनोंको अलग करता और मिलाता है, उसी प्रकार वह विधाता समस्त भूतोंको संयुक्त और वियुक्त करता रहता है। जो पहले कुबड़ी थी, वह आज सीधी और समान अङ्गवाली हो गयी; जो दासी थी, वह कुलीन हो गयी तथा जो कुरुपा थी, वह रुपवती होकर चमक उठी है। अहो ! चार ही दिनोंमें वह अपनी विजयके नगर पीटने लगी है ॥ ११-१३ ॥

विरजा-यूथकी गोपियोंने कहा—किसीकी भी बाँह सदा ग्रियके कंधेयर नहीं रहती, किसी भी बनमें सदा बसन्त नहीं होता, कोई भी सदा जवान नहीं रहता, ये देवराज इन्द्र भी सदा राज्य नहीं करते हैं। कोई चार दिनोंके लिये भले ही खूब मान कर ले ॥ १४ ॥

ललिता-यूथकी गोपियाँ बोलीं—मन्थरा भी कुबड़ी थी, जिसने अशोष्यापुरीमें श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकको रोकवाकर उसमें विघ्न उपस्थित कर दिया। वह कुञ्ज दी यह मयुरापुरीमें आ गयी है। गोपिकाओ ! जो कुञ्ज है, वह कथा कथा नहीं कर सकती ! ॥ १५ ॥

विशाखा-यूथकी गोपियोंने कहा—जो गौँ

धरनेके लिये अनुगामी व्याह-वालोंके साथ बढ़ते जाते हैं और लौटते समय बंसीनाइके द्वारा नगर-बैंकोंके लोगोंमें अपने आगमनका बोध करा देते हैं तथा जो अपनी गतिसे मतवाले हाथीकी चालका अनुकरण करते हैं, उन नन्दनन्दन-की हम मुला नहीं सकती ॥ १६ ॥

माया-यूथकी गोपियाँ बोलीं—सौकरी गलियोंमें हमारा आँचल पकड़कर हडात् हमें अपनी भुजाओंमें भकर और हृदयसे ल्याकर परस्परकी सौन्दर्यातानीसे हर्ष और भयका अनुभव करनेवाले उन श्रीहरिको हम क्य अपने घरोंमें ले जायेंगी ? ॥ १७ ॥

अष्टसंखियोंने कहा—उद्धव ! उन तर्बाङ्गसुन्दर नन्दनन्दनकी निहारकर हमारे नेत्र अब संसारकी ओर नहीं देखते—नहीं देखना चाहते। वे ही नन्दराजकुमार मयुरापुरीमें विराज रहे हैं। शीघ्र बताओ, अब हमारा क्या होगा ? ॥ १८ ॥

बोडश सखियों बोलीं—इनमें प्रेमपीडाको बढ़ाने-वाली बाँसुरीकी मधुर तान छुनकर हमारे दोनों कान अब संसारी गीत नहीं सुनना चाहते, वे तो कौओंकी 'कौँव-कौँव' के समान कहते लगते हैं ॥ १९ ॥

बर्तीस सखियोंने कहा—अपने मिछको प्रीतिसे, शकुनों नीतिसे, लोभीको खनने, ब्राह्मणको आदरसे, गुरुको बारंबार प्रणामसे तथा रसिकको रससे वशमें किया जाता है; परंतु निमोंहिंडोंकोई कैसे वशमें कर सकता है ? ॥ २० ॥

श्रनिधरपा गोपियाँ बोलीं—जो जाग्रत् आदि अवस्थाओंमें व्याप्त होकर भी उनमें परे हैं तथा हस जगत्के हेतु होते हुए भी बासतवर्में अहेतु हैं, ये भमस्त गुण जिनमें ही प्रेरित होकर अपने-अपने विषयोंकी ओर प्रवाहित होते हैं; तथा जैसे आगमे निकली हुई चिनगारियाँ पुनः उसमें प्रविष्ट नहीं होतीं, उसी प्रकार महस्तच, इन्द्रिय-समुदाय तथा इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देव-ब्रह्मदाता जिनमें प्रवेश नहीं पाते, उन परमात्माको नमस्कार है ॥ २१ ॥

श्रूषिधरपा गोपियोंने कहा—बनवानोंमें भी अर्थन्त बलिष्ठ यह काल जिनपर अपना शामन चलानेमें समर्थ नहीं है, माया भी जिनके बशीभूत नहीं कर पाती तथा वह भी जिन्हें अपने विधिवाक्योंका विषय नहीं बना पाता, उस अमृतदर्शप, परम प्रशान्त, तुद, वरात्मर पूर्णव्रजकी इम शरण लेती हैं ॥ २२ ॥

देवतानास्त्रका गोपियाँ बोलीं—जिन परमेश्वरके अंशांश, अंश, कला, आवेश तथा पूर्ण आदि अवतार होते हैं, और जिनसे ही इस जगतकी सृष्टि, पालन एवं संहार होते हैं उन पूर्णसे भी परे परिणामतम श्रीकृष्णको हम प्रणाम करती हैं ॥ २३ ॥

यज्ञस्तीतारुपा गोपियोंने कहा—ये श्यामसुन्दर निकुञ्ज-लतिकाओंके लिये कुसुमाकर (वसन्त) हैं, श्रीराधाके दृद्य तथा कण्ठको विभूषित करनेवाले हार हैं, श्रीराम-मण्डलके अधिपति हैं, ब्रजमण्डलके ईश्वर हैं तथा समस्त ब्रह्माण्डोंके महीमण्डलका परिपालन करनेवाले हैं ॥ २४ ॥

रमावैकुण्ठवासिनी गोपियाँ बोलीं—जिन्होंने समस्त गोपीयूथको अलंकृत किया, अपनी चरण-रजसे छून्दावन तथा गिरिराज गोवर्धनको विभूषित किया तथा जो सम्पूर्ण ज्ञानोंके अन्युदयके लिये इस भूमण्डलपर आविर्भूत हुए, उन नागराजके समान परिपुष्ट भुजावाले अनन्त लीला-विलास-शाली श्रीश्यामसुन्दरका हम भजन करती हैं ॥ २५ ॥

देवताद्वयीकी स्त्रियोंने कहा—जैसे बालक कुकुरमुखे को बिना थ्रमके उठा लेता है और जैसे गजराज अपनी सूँडसे अनायास ही कमल्को उठा लेता है, उसी प्रकार जिन्होंने खिलवाहमें ही पर्वतको एक हाथने उठाकर अनुरुत शोभा प्राप्त की, वे कुपानिधान श्रीब्रजराजनन्दन हमें कभी विस्मृत नहीं होते ॥ २६ ॥

ऊर्जवैकुण्ठवासिनी गोपियाँ बोलीं—हमारी श्यामबर्णमयी आँखें सारे जगत्को श्याममय ही देखती हैं, इन्हें दैत तो दीखता ही नहीं; फिर ये योगका सेवन क्या करेंगी ? ॥ २७ ॥

लोकान्नलघुवासिनी गोपियोंने कहा—स्नेहका पाश ढढ होता है। वह कभी टूटने-करनेवाला नहीं है। हम उसे नहीं काट सकतीं। श्रीहरिके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं कर सकता। एकमात्र वे ही ऐसे हैं, जो नागपाशको काटनेवाले गद्दकी भाँति इस स्नेहपाशको काटकर मधुरा चले गये ॥ २८ ॥

अजितपदाश्रिता गोपियाँ बोलीं—हमरे दोनों नेत्र श्रीकृष्णमें लग गये हैं, वे दसों दिशाओंमें दौड़ लगानेपर भी अन्यत्र कहीं उसी प्रकार नहीं टिक पाते, जैसे कमलते जिसकी लगान लगी है, वह भ्रमर अन्य फूलोंपर कदायि नहीं जाता ॥ २९ ॥

श्रीसत्तियोंने कहा—लोग अपनी कृपणतासे यशको, क्रोधसे गुणसमूहके उदयको, दुर्व्यसनोंसे धनको तथा कपट-पूर्ण वर्तावसे मैत्रीको नष्ट कर देते हैं ॥ ३० ॥

मिथिलावासिनी स्त्रियाँ बोलीं—धन देकर तनकी रक्षा करे, तन देकर लाज बचाये तथा मित्रका कार्य सिद्ध करनेके लिये आवश्यकता पड़ जाय तो धन, तन और लाज—तीनोंका उत्सर्ग कर दे ॥ ३१ ॥

कोसलप्रान्तवासिनी गोपियोंने कहा—वियोग-जनित दुःखकी दशामो जीवात्माके बिना दूसरा कोई नहीं जानता है, पंतु वह उमे बतानेमें असमर्थ है। (बताती है, बाणी, किंतु उमे उस दुःखका अनुभव नहीं है ।) भले ही बाणोंके आशात्मे दृद्य विदीर्ण हो जाय, किंतु कभी किसीको प्रिय-वियोगका कष्ट न प्राप्त हो ॥ ३२ ॥

अयोध्यापुरवासिनी गोपियाँ बोलीं—पहले निराश करके फिर आशा देदी और अपने मथुराकी आशा (दिशा) में चले गये ? उसके ऊपर हमारे लिये योग लिवा है। अहो ! निर्मोही जनोंका चित्र (या नित) विचित्र होता है ॥ ३३ ॥

पुलिम्बी गोपियोंने कहा—पूर्वकालकी बात है, दण्डकवनमें शूरपंशु अत्यन्त विद्वाल होकर इन्हें अपना पति बनानेके लिये इनके पास आयी; किंतु इन्होंने सुमित्राकुमार-को प्रेरणा देकर बलपूर्वक उसे कुरुप बना दिया। ऐसे पुरुषसे आप सबको कृपाकी आशा कैसे हो रही है ? ॥ ३४ ॥

सुतालघुवासिनी गोपियाँ बोलीं—राजा बलि भगवद्गुरु, सत्यपरायण और बहुत अधिक दान करनेवाले थे, परंतु उनसे भैरव-पूजा लेकर जिन्होंने कुपित हो उन्हें बन्धनमें डाल दिया था, उस वामनरूपधारी कपट ब्रह्मनारी बने हुए श्रीहरिकी न जाने लक्ष्मीजी या अन्य मन्त्रजन कैसे भेवा करते हैं ? ॥ ३५ ॥

आङ्गधरी गोपियोंने कहा—पूर्वकालमें असुरश्रेष्ठ भक्तप्रबर कथाधुकुमार प्रह्लादको बहुत अधिक कष्ट सहन करना पड़ा, तब कहीं त्रिसिंहरूप धारण करके इन्होंने उनकी सहायता की। अहो ! इनमें निर्दुरताकी पराकाष्ठा प्रत्यक्ष देखी जाती है ॥ ३६ ॥

भूमिगोपियाँ बोलीं—अहो ! अत्यन्त निर्मोही जनका

चरित्र अस्थन्त विचिन्त होता है, वह कहने योग्य नहीं है। विचार रहेगा। ऐसे लोगोंको देवता भी नहीं समझ पाते, मुखसे और ही बात निकलेगी, किंतु दृढ़यमें कोई और ही फिर मनुष्य कैसे जान सकता है ? || ३७ ||

इस प्रकार श्रीगर्भ-सहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलादव-संवादमें श्रीकृष्णकी यादमें
गोपियोंके बचन' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अठारहवाँ अध्याय

गोपियोंके उद्गार तथा उनसे विदा लेकर उद्धवका मथुराको लौटना

बहिर्पमतीपुरीकी गोपियोंने कहा—अहो ! प्रलयके समुद्रमें वाराहस्पधारी महात्मा श्रीहरिने कृपापूर्वक जिसका उद्धार किया था, उसी पूर्वांको मारनेके लिये आदिराज पुश्चके रूपमें वे उसके पीछे दैड़े। दयालु होकर भी वे निर्दयताके लिये उद्धत हो गये [अतः कभी कठोर होना और कभी कृपा करना इन श्रीहरिका स्वभाव ही है] ? || १ ||

लतारूपा गोपियाँ बोलीं—विश्वके वैद्य महात्मा धन्वन्तरि पूर्वकालमें अमृत-कलशके साथ समुद्रसे प्रकट हुए, किंतु उन्होंने वह अमृत अपने हाथसे नहीं बोटा; परंतु जब उसके लिये देवता और असुर आपसमें वैर वाँधकर युद्धके लिये उद्धत हो गये, तब कलहप्रिय श्रीहरिने स्वयं मोहिनी नारीका रूप धारण करके वह सुधा केवल देवताओंको पिला दी ॥ २ ॥

नागेन्द्रकम्ब्यारूपा गोपियोंने कहा—दण्डक नामक महाघनमें इन श्रीहरिको श्रीरामरूपमें देखकर शृणगसा हवें अपना पति बनानेकी इच्छासे इनके पास आयी थी, 'किंतु लक्षणसहित इन्होंने उस बेचारीके नाक-कान काटकर कुरुप बना दिया। यह कैसी निष्ठुरता है; उसने इनका क्या विगाढ़ा था ? || ३ ||

समुद्रकम्ब्यारूपा गोपियाँ बोलीं—जो प्रतिदिन सैकड़ों घरोंमें जाती और लोगोंको सुख-दुःख दिया करती है, वह चक्रला लक्ष्मी इन श्रीहरिके पास न जाने स्वकीया और सुशीला बनकर कैसे टिकी हुई है ? || ४ ||

अप्सरारूपा गोपियोंने कहा—सखियो ! इनके प्रति श्रीति करनेसे रावणकी बहिनको अपनी नाक और कानोंसे हाथ धोना पड़ा था, अतः उनकी बात छोड़ो। इन्होंने दुग्धरे ऊपर उससे भी अधिक कृपा की है [कि नाक-कान छोड़ दिये] || ५ ||

दिव्यरूपा गोपियाँ बोलीं—ये राजा बलिसे बलि लेकर सर्वेश्वर हैं और उन्हे वाँधकर भी दयालु हैं; मुक्तिके नाश होकर भी इन्होंने अपने भक्त बलिको नीचे सुतल्लोकमें फेंक दिया। इनकी कथासे आश्चर्य होता है || ६ ||

अदिव्या गोपियोंने कहा—पूर्वकालमें शतरूपाके साथ मनु शान्तभावसे तपस्या करते थे। उस समय दैत्योंने उन्हें बहुत वाधा पहुँचायी। तत्पश्चात् उन दयानिधि श्रीहरिने आकर उनकी रक्षा की [पहले दुःख देना और पीछे आँख पौछना इनका स्वभाव है] । || ७ ||

सत्त्ववृत्तिरूपा गोपियाँ बोलीं—भक्त ध्रुव और प्रह्लादने पहले बहुत कष्ट पाया, तदनन्तर उन्होंने कृपा-पूर्वक उनकी रक्षा की; हमारे ये दानवत्सल प्रभु पहले किसी-की रक्षा नहीं करते, कष्ट भुगतानेके बाद ही करते हैं || ८ ||

रजोगुणवृत्तिरूपा गोपियोंने कहा—रक्षाङ्गद, हरिश्चन्द्र और अम्बरोष—इन साधु शिरोमणि नरेशोंके सत्यकी परीक्षा करके ही श्रीहरिने उन्हें पुनः भागवती समृद्धि प्रदान की [सम्भव है, हमारे भी प्रेमका परीक्षा ली जाती हो] । || ९ ||

तमोगुणवृत्तिरूपा गोपियाँ बोलीं—जिन छली-बली श्रीहरिने पूर्वकालमें बृन्दाको छला था, इन्हींको आज छलमयी और बलवती कुञ्जाने छल लिया। [जैसेको तैसा मिला ।] कटार या कृपाणिका एक ही ओरने टेढ़ी होती है, तथापि बहुतसे लोगोंका धात करती है; इधर कुञ्जा तो तीन जगहसे टेढ़ी है; उसे तीन जगहसे टेढ़े श्रीकृष्ण मिळ गये, फिर वह कितांका धात करेगी, कुछ कहा नहीं जा सकता। श्रीकृष्णकी राह देखते-देखते हमारी आँखें बहुत दुखने लगी हैं और उनके आनेकी अवधि बामनके पाद-विषेषकी तरह बढ़ती ही जाती है। इस माधवमालमें माधवके

विना हमारे शरीरका चमड़ा पीला पड़ गया, हमारी गतिमें दिशिलता आ गयी -पॉव थक गये और मन अत्यन्त उद्भ्रान्त हो गया है। हा दैव ! किस समय हम सब उषःकालमें सौतके हारके चिह्नमें चिह्नित होकर आये हुए नन्दनन्दनको देखेंगी ॥ १०-१४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार श्रीकृष्णका चिन्तन करती हुई प्रेमविहळा गोपियों उत्कृष्टित हो रहे लाईं और मूर्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ीं । तब पृथक्-पृथक् सदग्रों आश्वासन दे, नीतिनिषुण बच्चोंदारा सब गोपियोंको समझा-बुझाकर उद्भवने कहा ॥ १५-१६ ॥

**उद्भव बोले—परिष्पूर्णतमे । कृष्णस्वर्णे । द्वृपमानु-
बरनन्दिनि !** मुझे जानेकी आशा दाजिये । मंजस्त्ररि ! आपको नमस्कार है । शुभे ! महात्मा श्रीकृष्णको उनके पत्रका उत्तर दाजिये । उसके द्वारा शाश्वती उनके चरणोंमें प्रणाम करके मैं उहाँ आपके पास ले आऊँगा ॥ १७-१८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर राधा तुरंत ही लेखनी और भसीपात्र लेकर समाचारका चिन्तन करने लगीं, तबतक उनके नेत्रोंमें अशुकर्पा होने लगीं। श्रीराधान जो-जो दत्र हाथमें लेकर उसे लेखनीमें संयुक्त किया, वह-वह उनके नेत्र-कमङ्गोंके नीरमं भंग गया। श्रीकृष्ण-दशानकी लाकृतिः अशुधारा वहाँती हुई कमलनयर्णा राधासे विक्षित हुए उद्भवने कहा ॥ १९-२१ ॥

उद्भव योंठे—थाराधे ! आप केमें लिलती हैं और कैसे हुःत्व प्रकट करती हैं, यह सब कथा मैं आपके लिखे लिना ही मैं उनसे निर्भित करूँगा ॥ २२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! उद्भवकी वार्णी सुन-

इस प्रकार श्रीगर्भ संहारमें श्रीमथुराक्षषके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें गोपियोंके बचन तथा उद्भवका मधुरा लौट जाना' नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका उद्भवके साथ ब्रजमें प्रस्त्रापाम्बन और यशोन-तटपर गौयोंका उनके स्थको चारों ओरसे

घेर लेना; गोपियोंके साथ उनकी भेट; नन्दशाँवसे नन्दरायजी एवं यशोदाका गोपों

एवं गोपियोंको लेकर गाजे-बाजेके साथ उनकी अगवानीके लिये निकलना

तथा तबके साथ श्रीकृष्णका नन्दनगरमें प्रवेश

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार भक्तका कल्पन बुनकर भक्तवत्तु अनुसने अपने को हुए बचनको

कर राधाने वाधारहित हो समस्त गोपियोंके साथ उस समय उद्भवभा पूजन किया । तत्पश्चात् परादेवी रासेश्वरी श्रीराधाको प्रणाम और उनकी परिक्रमा करके, गोपीगणोंसे विदा ले, सबको बार-बार मस्तक छुकाकर उद्भव रत्नभूग्णभूषित उस दिव्याकार रथपर आरूढ़ हुए । उनको अपनों बुद्धि और ज्ञानपर जो बड़ा अभिमान था, वह दूर हो गया । वे संध्याके भूम्य नन्दजीके पास लौट आये । सबसे शुद्धोदय होनेपर गोपीं यशोदाको नमस्कार करके, उद्भव नन्दराजकी आशा ले त्रिमत्रः नौ नन्दों, वृषभानुओं, उपनन्दों, अन्य लोगों तथा कृष्णके मम्पूर्ण सत्त्वाओंसे अल्पा-अल्पा भिले और उनसे बिदा ले, रथपर आरूढ़ हो वहाँमें चल दिये । समस्त गोप और गोपियोंके समुदाय उनके पांछे पांछे दूरतक पहुँचानेके लिये गये । उद्भव सबको स्नेहपूर्वक लैटाकर मधुराको चले गये । श्रीकृष्ण यमुनाके मनोहर तटपर अक्षयवर्णके नीचे एकान्त स्थानमें बैठे हुए थे । वहाँ उनको प्रणाम और उनकी परिक्रमा करके बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ उद्भव नेत्र-कमलोंसे औंसू बहाते हुए प्रेमगद्वाग वार्णोंमें बोले ॥ २३-२९ ॥

उद्भवने कहा- देव ! आप तो सबके साक्षी हैं, आपको मुझ क्या बताना है । आप राधिका और गोपियोंका कल्पयाण कीजिये, कल्पयाण कीजिये; उहं दद्वान दीजिये । मैं देवदेवेशर श्रीकृष्णको तुम्हारे पास ले आऊँगा ।' ऐसी-बात मैंने उनसे कही है । कृपानिये ! मेरे इस बचनकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । भक्तोंके परमेश्वर ! जैसे आपने प्रह्लाद और रुक्मिणीकी, बलि और लट्टवाङ्की तथा अम्बरीष और श्रुत्वकी प्रतिक्षा रक्षी है, उसी प्रकार मेरी की हुई प्रतिक्षा-की भी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ २०-३२ ॥

यद करके बजमें जानेका विचार किया । समस्त कार्यभारोपर हष्टि रसनेके लिये बलदेवजोंको मधुरमें ही

छोड़कर, चत्तेल घोड़ोंमें जुते हुए किंकिणीजल्मणिष्ठत सुवर्ण-जटित सूर्यनुत्त्व नेत्रस्वी रथपर उद्धवके साथ आरूढ़ हो भगवान् श्रीकृष्ण भक्तोंको दर्शन देनेके लिये नन्दगांवको गये । गोवर्हन, गोकुल और वृन्दावनको देखते हुए श्रीकृष्ण यमुनाके मनोहर तटपर पहुचे । ब्रजेश्वर श्रीकृष्णको देखते हो कोटि-कोटि गौएँ चारों ओरसे दौड़ी रुह उनके पास आ गयीं । उन सबके सानोंमें स्नेहके कारण दूध शर रहा था । वे कान और पैर उठाकर रँभा गई थीं । उनके साथ वज्रें भी थे । मुखमें धामदेव ग्राम लिये लड़ी हुई गौएँ नेत्रोंसे आनन्दके ओसू बहा रही थी । उनकी व्यथा वेदना दूर हो गयी थी । राजन् ! जैन वादल रथ, अरुण और अश्वोसहित शरकालके सूर्योंको ढक लेने हें, उनी प्रकार उद्धवके देवत-देवतन नीचेने उस रथों सव ओरमें वेर लिया । गोपाल श्रीहि उन नव गौओंके भला-अला नाम बोलकर अपना श्रीहस्तसे उनके अङ्गोंको गहलते हुए गड़े हर्षको प्राप्त हुए । गौओंके समदायको उनके सम्मान गया देख श्रीदामा आदि ब्रज-बालक विस्मित हो परस्पर कहने लाएं ॥ १०-११ ॥

गोप बोले—सखाओ ! उस वायुके समान वेगद्याली नथा काल्पपत्र (काँक्ष) की ज्वनिके समान शब्द करनेबाले, बल्ला और व्यजसहित रथको, जिसमें सैकड़ों अश्व जुते हैं तथा जो शत सूर्योंके समान शोभाशाली है, गौओंने कैसे वेर लिया है ? गौओंके इस हर्षम यह सुन्दरित होता है कि इस स्थ-पर दूसरा कोई नहीं, साक्षात् ब्रजराजनन्दन ही आ रहे हैं; क्योंकि हमरे दाहिने अङ्ग भी फड़क रहे हैं और नीलकण्ठ पक्षी हमरे ऊपर उठकर बंदनवारका-सा विस्तार करते हैं ॥ १०-११ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! मन हो-मग ऐसा विचारकरके वे सब गोप वहाँ आ गये । आनेपर उन लोगोंने अपने मित्र माधवको उर्सा प्रकार देखा, जैसे साधारण जन अपनी चोरी हुई बस्तुके मिल जानेपर उसे देखते हैं । उनपर दृष्टि पद्धते ही साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण रथसे कुद पड़ और उन सवको आगे करके, प्रेम-विहृल हो अपनी दोनों मुजाओंसे भेटने लगे । नन्द-कमलोंसे अशुद्धारा वहाँते हुए उम्हाने पृथक् पृथक् सबको हृदयसे लगाया । अहो ! इस भूतलपर भक्तिके साहास्यका वर्णन कौन कर सकता है । मिथिलेश्वर ।

वे सब गोप नेत्रोंसे ऑसू बहाते हुए फूट-फूटकर रोने लगे ।

श्रीकृष्णके विशेषसे वे इतने विहृल हो गये थे कि मिल जानेपर भी भहना उनमें कुछ कहनेमें समर्थ न हो सके । तब साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीहरिने उन प्रेमानन्दमें विहृल सन्मांसोंमें मधुर वार्णसे भ्रश्वासन दिया । श्रीकृष्णने खाल वालोंके साथ उद्धवको अपने आनेका समाचार देनेके लिये भेजा । उद्धवने नन्द-नगरमें जाकर वताया कि ‘श्रीकृष्ण पधारे हैं’ ॥ १२-१३ ॥

गोपवन्नलम नन्दनन्दन श्रीकृष्णवा आगमन सुनकर ममस गोप परिपूर्णमनोरथ होकर उन्हें लिवा लानेके लिये निकले । भेरी, मृदङ्ग, पटह आदि वाजे मधुरस्वरमें वजने लगे । भेर हुए कलड़ा लिये ब्राह्मणलोग वेदमन्त्रोंका उच्चारण करने लगे । लाजा (चौल) आदि माझ्ञालिक वस्तुओंमें मित्रित गम्भ अंत वशत भाथ अंत प्रयोदाके भाथ श्रीनन्दराज अगवानीके लिये गये । तत्पश्चात् मिन्दूर रक्षित सूँडमें भोजेका लोकल धारण किये मदोन्मत्त हार्थीको आगे गम्भकर भानुतुल्य तेजस्वा श्रीदृष्टभानुकर अपनी रानी बलावतीके साथ वहाँ आये । नन्द, उपनन्द, बृषभानु, बृहे, जवान और बालक गोप पूर्णमनोरथ हो, फूलोंके हार, बाँसुरी, गुजा और मोरपंख लिये नगरसे बाहर निकले । नरेश्वर ! गोप-बालक श्रीकृष्णके दशानकी वही भारी लालसा लिये, हाथोंमें बंधी, बेत और विशाण (सींग) धारण किये, बड़े हर्षके साथ नन्दनन्दनके गुण गाते और पूले बख्त हिल-हिलाकर नाचते थे ॥ १८-२२ ॥

सखियोंके मुखसे श्रीहरिके शुभागमनका शुभ संवाद सुनकर श्रीगाधा शथनसे उठ नहीं हुईं और महान् हर्षसे युक्त हो उन्होंने उन सवको अपने भूषण उसी प्रकार छुटा दिये, जैसे प्रसन्न हुई नृन पश्चिमा अपनी सुगन्ध छुटाया करती है । मिथिलेश्वर ! गोपाङ्गनाओंके आठ, नौलह, चत्तीस पौर दो यूथोंके साथ श्रीगाधा मनोहर शिविकापर आरूढ़ हो श्रीधरके दशानके लिये आयीं । वृपेश्वर ! इनी प्रकार करोड़ों गोपियों अपन धरका नारा काम काज छोड़कर, उल्लें साधे बख्त और आधुपण धारण किये वहाँ आयीं । प्रेमके कारण वे मनेक लम्फन लाल चन्देल चल, रही थीं । ऐसा लगता था कि बृद्ध, गौ, मृग प्रीय पर्वतयोन्नहन सारा ब्रज मण्डल श्रीकृष्णको आया हुआ देख प्रमेण आतुर हो उठा है ॥ २३-२५ ॥

श्रीकृष्णने मस्तकपर ब्राह्माल धाये पिता श्रीनन्दराजको

और मैथा यशोदाको प्रणाम किया । बहुत दिनोंके बाद आये हुए अपने पुत्रको दोनों भुजाओंमें भरकर और हृदयसे लगाकर श्रीनन्दगजने अपने नेत्र-जलसे उनको नहला दिया । यशोदामहित श्रीनन्दका मनोरथ आज चिरकालके बाद पूर्ण हुआ था । नन्द, उपनन्द और वृषभानु आदि मम्पूर्ण दुःखों गोपोंको प्रणाम करके, उनके आशीर्वाद ले श्रीकृष्ण समवयस्क मित्रोंमें परस्पर गोपनियों और अपनेमें छोटे सन्नाथोंका हाथ पकड़कर उनके साथ बैठे ॥ २६-२८ ॥

तदनन्तर श्रीहरि यशोदामहित नन्दको हार्थापर चढ़ाकर स्वयं रथपर बैठे और नन्द उपनन्द तथा गो-समुदायके साथ श्रीनन्दराजके नगरमें प्रविष्ट हुए । उन्होंने नमय देवताओंने उनपर

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीभग्नुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलादव-संवादमें 'श्रीकृष्णका ब्रजमें आगमनोत्सव' नामक उक्तीसबाँ अव्याप्त पूरा हुआ ॥ १० ॥

बीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका कदली-वनमें श्रीराधा और गोपियोंके साथ मिलन; रासोत्सव तथा उसी प्रसङ्गमें रोहिताचलपर महामूर्ति श्रमुको मोक्ष

बहुलाभने पूछा—मुने ! साक्षात् भगवानने ब्रज मण्डलमें पथारकर आगे कौन सा कार्य किया ? श्रीराधा तथा गोपाङ्कनाओंको किस प्रकार दर्शन दिया ? गोपियोंके मनोरथ पूर्ण करके वे पुनः मधुरामें कैसे आये ? विग्रेन्द ! आप परापर-वेत्ताओंमें मरवंशेष हैं, अतः ये सब वातें मुझे भत्ताइये ॥ १-२ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! सध्याकालमें श्रीराधाका बुलावा पाकर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण सदा-शीतल कदली-वनके एकान्त प्रदेशमें गये । वहाँ, जिसमें कुहरे चलते थे, ऐसा मेघमहल था, रम्भाद्वारा नन्दन छिड़का जाता था, यमुनाजीको छूकर प्रवाहित होनेवाली मन्द वायु ठंडे जलके कण विघ्नेतां थी और सुधाकर चन्द्रमाकी रसियोंमें निरन्तर अमृत अस्रता रहता था । ऐसा गीतल कदली वन भी श्रीराधाके विरहानलकी आँखोंमें मसांभूत हो गया था । श्रीकृष्णमें मिलनकी आशा ही श्रीराधाकी निरन्तर रक्षा कर रही थी । वहीं गोपियोंके भाग के सारे यूथ आ जुटे, जो सैकड़ोंकी संख्यामें थे । उन्होंने श्रीराधासे निवेदन किया कि 'माधव पधरे हैं ।' वह सुनकर साक्षात् वृषभानुवरकी युद्धी श्रीराधा महसा उठी और मणियोंमें धिर्गी हुर्वे श्रीकृष्णको लिवा लानेके लिये आई । उन्होंने श्रीहरिको आसन दिया ।

फूलोंका वर्ण की ओर पुरावासिनी गोपाङ्कनाओंने आचार-प्राप्त लावा (वर्णाल) बिल्लेरे । श्रीहरिके पर पधारनेपर गोपोंने वहाँ 'जय हो, जय हो' ऐसे माझलिक शब्दका वारंवार उच्चारण किया । उम भमय आर्त हुए गोपगण गद्गद वाणीमें कहने लगे— 'लाला ! तुम्हारा यह सवा उद्धव परम धन्य है; क्योंकि इन्होंने गोपजनोंके जीवनभूत साक्षात् तुम्हारा दर्शन करा दिया' ॥ २९-३१ ॥

नुप्रेश्वर ! इस प्रकार मैंने श्रीहरिके ब्रजमें पुनरागमनका वृत्तान्त तुमसे कह सुनाया, अब और क्या सुनना चाहते हो ? श्रीहरिका यह विचित्र चरित्र देवताओं और असुरोंके लिये भी परम कल्याणप्रद है ॥ ३२ ॥

पाद, अर्थ और आचमन आदि मनोहर उपचार प्रस्तुत किये । साथ ही कुशल पूछनेमें अत्यन्त चतुर श्रीराधा श्रीहरिसे आदरपूर्वक कुशल भी पूछती जा रही थी । कोटि-कोटि तरुण कंदपोंके माधुर्यको हर क्लेनेवाले श्रीहरिका दर्शन करके राधाने मम्पूर्ण दुःखको उसी प्रकार स्वयं दिया, जैसे ब्रह्मका बोध प्राप्त होनेपर शानी गुणोंके प्रति तादात्म्यका भाव छोड़ देता है । कीर्तिकुमारीने प्रसङ्ग होकर शृङ्खार धारण किया । श्रीकृष्ण जब परदेशके पथिक होकर गये थे, तबसे उन्होंने अपने शरीरपर शृङ्खार धारण नहीं किया था । न कभी नन्दन लगाया, न पान लाया, न सुधासदृश स्वादिष्ट भोजन ही ग्रहण किया । न दिव्य मंजकी रचना की और न कभी किसीके साथ हास-परिहास ही किया । परिपूर्णतम भगवानकी प्रियतमा आनन्दके आँसू बहाती हुई अपने परिपूर्णतम प्रियतम श्रीकृष्णसे गद्गद वाणीमें भोलीं ॥ ३-१२ ॥

श्रीराधाने कहा—प्यारे ! यादवपुरी मधुरा कितनी दूर है, जो अवधि करते हो ? वहाँ तुम क्या करते रहे ? मैं अपने एकान्त दुःखको कैसे बताऊँ ? तुम तो सबके साक्षी हो, अतः सब जानते हो । राजा सौदासकी रानी मदयन्ती,

नलकी प्यारी रानी दमयन्ती तथा मिथिलेशनन्दिनी सीता—
इन तीनोंमेंसे कोई यहाँ नहीं है। फिर किसको सामने रखना
इस वैरी बिरहके दुःखका मैं कर्णन करूँ? ये गोपाङ्गनाएँ भी
मेरी-जैसी परिस्थितिमें ही हैं, अतः वे भी कभी इस दुःखका
प्रियलय करनेमें समर्थ नहीं हैं। जैसे चकोरी शरकालके
चन्द्रमाको और मधुरी नूतन मेघको देखना चाहती है, उसी
प्रकार मैं तुम श्रीबृन्दावनचन्द्र तथा घनश्यामको देखनेके
लिये उक्कण्ठित रहती हूँ। तुम्हारे सखा उद्धव धन्य हैं,
जिन्होंने शीघ्र ही तुम्हारा दर्शन करा दिया। इस वज्रमें
दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जिसके प्रेमसे तुम यहाँ
आते ॥ १४—१६ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार कहती और
निरन्तर रोती हुई श्रेष्ठ लक्ष्मीस्त्वा श्रीराधाको देखकर
श्यामसुन्दरका अङ्ग-अङ्ग करणसे विछल हो गया। उनके
नेंद्रोंसे भी अशु झरने लगे। उन्होंने तत्काल दोनों हाथोंसे
खींचकर प्रियतमाको हृदयसे लगा लिया और नीतियुक्त बचनोंसे
उन्हें धीरज बँधाया ॥ १७ ॥

श्रीभगवान् बोले—राधे! शोक न करो, मैं तुम्हारे
प्रेमसे ही यहाँ आया हूँ। हम दोनोंका तेज भेदरहित एवं
एक है। लोगोंने इसे दो मान रखा है। शुभे! जैसे दूध
और उसकी ध्वनिता एक है, उसी प्रकार सदा हम दोनों
एक हैं। जहाँ मैं हूँ, वहाँ तुम सदा विराजमान हो। हम
दोनोंका वियोग कभी होता ही नहीं। मैं पूर्ण परब्रह्म हूँ
और तुम जगन्माता तटस्था दक्षि हो। हम दोनोंके बीचमें
वियोगकी कल्पना मिथ्या शानके कारण है, तुम हीसे समझो।
वरानने! जैसे आकाशमें नित्य विराजमान महान् वायु सर्वत्र
व्यापक है, जैसे जल सूक्ष्मरूपसे सर्वत्र व्याप है, जैसे काष्ठमें
अग्नि व्याप हरहती है और जैसे भीतर और बाहर स्थित यह
पृथग्भूता पृथ्वी परमाणुरूपसे सर्वत्र व्याप है, उसी प्रकार मैं
निर्विकारभावसे सर्वत्र विद्यमान हूँ। जैसे जल विविध रंगोंसे
युक्त होनेपर भी उनमें पृथक् है, उसी प्रकार मैं श्रिगुणात्मक
भावोंके समर्पकमें रहकर भी उनमें सर्वथा असमृक्त हूँ।
इसी प्रकार तुम मेरे स्वरूपको देखो और समझो; इसमें सदा
आनन्द थना रहेगा। सुमुखि! ‘मैं’ और ‘मेरा’—इन दो
भावोंके कारण द्वैतकी कल्पना होती है। जयतक सूर्यमें ही उत्पन्न
हुआ मेष सूर्य और दृष्टिके वीचमें विद्यमान है, तयतक दृष्टि
अपने ही स्वरूपभूत सूर्यका दर्शन नहीं कर पाती। इसी

प्रकार जयतक प्राकृत गुण व्यवधान बनकर लड़े हैं, तयतक
जीवात्मा अपने ही स्वरूपभूत परमात्माको नहीं देख पाता।
इन तीनों गुणोंका आवरण दूर होनेपर ही वह परमात्माका
साक्षात्कार कर पाता है। यदि मन गुणों (विषयों) में आसक्त
है तो वह बन्धनकारक होता है, और यदि परम पुरुष
परमात्मामें सलग्भ है तो मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला हो जाता
है। इस प्रकार मनको बन्धन और मोक्ष—दोनोंका कारण
बताया गया है। उस मनको जीतकर पृथ्वीपर असङ्ग होकर
विचरे। भामिनि! लोकमें मनका सम्पूर्णभाव (सम्बन्ध)
दोनों ओरसे परस्परकी अपेक्षा रखकर होता है, एक ओरसे
नहीं होता। किंतु प्रेम स्वयं ही किया जाता है, अतः मुझमें
अपनी ओरसे ही प्रेम करना चाहिये। प्रेमके समान
इस भूतलयर दूसरा कोई भी मेरी प्राप्तिका साधन नहीं
है ॥ १८—२६ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीहरिका यह बचन
सुनकर कीर्तिनन्दिनी श्रीराधाने गोपियोंके साथ उन माधव
श्रीकृष्णका पूजन किया। तदनन्तर कीर्तिक पूर्णिमाकी रातमें
गोपियों और श्रीराधिकाके साथ रासमण्डलमें उपस्थित हो
साक्षात् श्रीहरिने मुरली बजायी। राजन्! यमुनाके निकट
रासकी रङ्गभूमिमें श्रीराधा तथा अन्य सुन्दरी व्रजरमणियोंके
साथ राधावल्लभ श्रीकृष्ण शोभा पाने लगे। रासमें जितनी
गोपाङ्गनाएँ थीं, उतने ही रूप धारण करके बृन्दावनाधीश
श्रीहरि दिव्य बृन्दावनमें विहार करने लगे। उनके
नरणोंके नपुर और मझोर बज रहे थे। बनमाला उनकी
शोभा बढ़ा रही थी। पीताम्बर पहिने, एक हाथमें कमल
लिये, प्रातःकालिक सूर्यके समान कान्तिमान, मुकुट धारण
किये, विद्युताके तुल्य जगमगाते हुए, मुवर्णमय कुण्डलोंसे
मणित हो, बेंतकी छड़ी लिये, वर्णी बजाते हुए, मेवकी-
सी कान्तिवाले श्रीहरि नटवर-वेषमें सुशोभित हुए।
अत्यन्त प्रकाशमान कौस्तुभरत उनके बशःस्थलयर दिव्य
प्रभा विनाश रहा था। कानोंमें चिकने और चमकीले कुण्डल
हिल रहे थे। रासमण्डलमें श्रीराधाके साथ वे उसी प्रकार
सुशोभित हुए, जैसे रतिके साथ रतियांति। जैसे भगवंमें
शनीके साथ इन्द्र तथा आकाशमें चंगलके साथ मेव
शोभा पाते हैं, बृन्दावनमें बृन्दाके साथ बृन्दावनेधनकी वैमी
ही शोभा हो रही थी। वे बृन्दावन, यमुना पुलिन, यन
और उपवनकी शोभा निहारते हुए गोपी-ममुदायके साथ

गोवर्धनं पर्वतपरं गये । भगवान् व्रजेश्वरने देखा ही यूथवालों गोपाहनाओंको अपने सौभाग्यपर अभिभान हो उठा है, तब वे श्रीराधाके साथ वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ २७-३६ ॥

अब वे गोवर्धनमें तीन योजन दूर चन्दनसी गन्धमें सुखागित सुन्दर रोहिताचलको चले गये । श्रीराधाके साथ वहाँके लता कुञ्जों और निरुद्धोंको देखते तथा वार्तालाप करते हुए सुनहरी लताओंके आश्रयभूत उग पर्वतपर बिचरने लगे । वहाँ बदरीनाथके द्वाग निर्मित रमणीय देवमरोबर हैं, जो बड़े-बड़े मस्तों, कदुओं और मगर आदि जल-जन्तुओं तथा हंस-मारस आदि पक्षियोंसे व्याप्त था । महालदल कमल उसकी शोभा बढ़ा रहे थे । इधर-उधर बँझराते हुए भ्रामरोंकी मधुर ध्वनिसे युक्त नर-कोकिलोंकी काकली वहाँ सब और व्याप्त थी । उसके तटपर मन्द-मन्द वायु चल रही थी और प्रफुल्ल कमलोंकी सुगन्ध छायी हुई थी । रमास्वरुपा राधाके साथ माधव उस सरोबरके किनारे बैठ गये । उसी सरोबरके कूलपर महामुनि शृङ्खु एक पैरसे खड़े होकर तपस्या कर रहे थे और निरन्तर श्रीकृष्णके विन्दनमें तपतर थे । साठ इजार, साठ मौ बर्षोंसे वे निराहार और निर्जल रहकर शान्तभावसे तपस्यामें लगे थे । श्रीकृष्णने उन्हें देखा । राधाने उन्हें देवकर मुस्कराते हुए पूछा—‘ये कौन हैं?’ माधव जोले—‘प्रिये! इनका माहात्म्य बढ़ाओ । ये भक्त हैं । इन महामुनिकी भक्ति देखो ।’—कहकर श्रीकृष्णने है श्रूभो! ‘यह नाम लेकर उभस्वरमें पुनरा । किंतु उन्होंने उनका वह शुभ बनन नहीं सुना; बर्योनि, वे भ्यानकों चरमावस्था (समाधि) में पहुँच गये थे । तब श्रीहरि उस समय मुनिके हृदयसं तत्काल तिरोहित हो गये । श्रीहरिको ल्यानसे निर्गत होनेके कारण न देवकर मुनीन्द्र शृङ्खु अत्यन्त विसित हो गये । फिर तो उन्होंने आख खोल दी और अपने सामने चपलके साथ मेघमी भाँति राधाके साथ श्रीकृष्णको देखा, जो अपनी प्रभामें दसों दिशाओंको अनुग्रहित प्रभाशित कर रहे थे । यह देख वे हरिमक्षिप्रायण महात्मा श्रीघु उठे और राधासहित श्रीहरिकी परिक्रमा करके, मक्षक शुकावर प्रणाम करते हुए उनके चरणोंमें गिर पड़े । फिर अत्यन्त गद्गद वाणीमें श्रीकृष्णमें बोले ॥ ३७-४८ ॥

श्रीशृङ्खुसुने कहा—श्रीकृष्ण और कृष्णांको नमस्कार । श्रीराधा और माधवको नमस्कार । परिपूर्णतमा और

परिपूर्णतमको नमस्कार । देव श्रनश्याम और श्यामाको सदा नमस्कार है । रामेश्वरीको नित्य-निरन्तर चारंवार नमस्कार है । गोलोकातीत लीलावाले श्रीकृष्णको तथा लीलावती श्रीराधाको चारंवार नमस्कार है । असंख्य ब्रह्माण्डोंकी अधिदेवी तथा असंख्य ब्रह्माण्डोंकी निधिको नमस्कार है । आप दोनों भूमार हरण करनेके लिये हस्त भूतलपर अवतीर्ण हुए हैं और मुझे शान्ति प्रदान करनेके लिये यहाँ पधारे हैं । परस्पर संयुक्त विग्रहवाले आप दोनों श्रीराधा और श्रीहरिको मेरा नमस्कार है ॥ ४९-५२ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! यों कहकर श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंमें नेत्रोंसे प्रेमाश्रुकी वर्षा करते हुए प्रेमानन्द-निमग्न महामुनि शृङ्खु अपने ग्राण त्याग दिये । उसी समय उनके शरीरमें दस सूर्योंके समान दीक्षिमती ज्योति निकली और दसों दिशाओंमें धूमस्ती हुई श्रीकृष्णमें लीन हो गयी । अपने भक्तकी यह प्रेमलक्षणा-भक्ति देखकर श्रीकृष्णने अपने नेत्रोंमें आनन्दके अभु बहाते हुए बड़े प्रेमसे उनका नाम लेकर पुकारा । तब श्रीकृष्णका-सा रूप धारण किये वे मुनि श्रीकृष्णके चरण-कमलमें पुनः प्रकट हुए । उस समय उनका सौन्दर्य कोटि कोटि कंदपौकों तिरस्कृत कर रहा था और वे विनयमें सिर छुकाये हुए खड़े थे । करणानिधि श्रीकृष्णने उन्हें भुजाओंमें भरकर हृदयमें लगा लिया और आक्षानन दे, अपना दिव्य कल्याणकारी हाथ उनके मस्तकपर रखना । मिथिलेश्वर ! तत्पश्चात् श्रीकृष्ण और श्रीराधाकी परिक्रमा करके, उन्हें प्रणाम कर, मुनिश्वर शृङ्खु एक मनोहर विमानपर आरूढ़ हो, अपने तेजसे सम्पूर्ण दिवाओंको प्रकाशित करते हुए, गोलोकधामको चले

* नमः कृष्णाय रुद्धायै राधायै माधवाय च ।

परिपूर्णतमायै च परिपूर्णतमायै च ॥

बनश्यामाय देवाय द्यामायै सततं नमः ।

रासेश्वराय सततं रासेश्वरै नमो नमः ॥

गोलोकातीतलीलाय लीलावत्यै नमो नमः ।

असंख्याण्डाधिवेष्यै चासंख्याण्डनिधये नमः ॥

भूमारहाय भुवंगताम्बरै

मक्षुपत्न्यै चात्र समग्रताम्बरै ।

परस्पर संविविधाम्बरै

नमो युवाम्बरै हरिराख्याम्बरै ॥

(गण०, मधुरा० २० । ४९-५२)

गये । महामुनि ऋभुकी यह परा मुक्ति देवकर वृग्मभानु- देवतक आनन्दके आंगू वहाती रही । फिर श्रीकृष्णमें
नन्दिनी श्रीगण्डिकाको बड़ा विस्मय हुआ । वे बहुत बोलीं ॥ ५३-५४ ॥

इस प्रकार श्रीगण्ड-संहितामें श्रीमथुरालक्ष्मदेव के अन्तर्गत नारद-बहुलाश्वसंवादमें रासोत्सवके प्रसङ्गमें 'ऋभुका
मोक्ष' नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णकी द्रवरूपताके प्रसङ्गमें नारदजीका उपाख्यान

राधाने कहा— माधव ! ये मुनिश्रेष्ठ धन्य हैं, जो तुम्हारे इतने बड़े भक्त और महान् प्रेमी थे । इन्होंने तुम्हारा सारूप्य प्राप्त कर लिया और तुम भी इनके लिये आँख वहाते रहे । पापनाशन ! अब तुम्हें इनके शरीरका दाह-संस्कार भी करना चाहिये । इनका यह शरीर तपत्याके प्रभावसे अभीतक निर्मल आकारमें प्रकाशित हो रहा है ॥ १-२ ॥

नारदजी कहते हैं— राजन् ! वहाँ श्रीराधा इस प्रकार कह ही रही थीं कि मुनिका शरीर एक नदीके रूपमें परिणत हो गया । रोहिताचलपर वहाँ हुई वह पापनाशिनी नदी आज भी देखी जाती है । उनके शरीरको नदीके रूपमें परिणत देव राधाको और भी अधिक विस्मय हुआ । तब वे वृग्मभानुवरनन्दिनी नन्दराजकुमारसे इस प्रकार बोलीं ॥ ३४ ॥

राधाने कहा— श्यामसुन्दर ! इन महामुनिका यह शरीर जलरूपमें कैसं परिणत हो गया ? देव ! मेरे इस संशयको तुम पृणल्पमें मिटा दो ॥ ५ ॥

श्रीभगवान्ने कहा— रमोरु ! ये मुनीश्वर प्रेमलक्षण-भक्तिसे संयुक्त थे, इसीलिये इनका यह शरीर द्रवभावको प्राप्त हुआ है । तुम्हारे साथ मुझे वर देनेके लिये आया देव महामुनि ऋभु अत्यन्त इर्षित हुए थे, इसीलिये इनका कलेक्षण उसी प्रकार जलरूपमें परिणत हो गया, जैसे मैं पहले द्रवभावको प्राप्त हुआ था ॥ ६-७ ॥

श्रीराधाने पूछा— देवदेव ! दयानिधे ! तुम कैसे द्रवभावको प्राप्त हुए थे ? यह वात मुझे नहीं विचित्र लग रही है । तुम विस्तारसे सब वात बताओ ॥ ८ ॥

श्रीभगवान्ने कहा— इस विषयमें जानकार लेग इस प्राचीन इतिहासको सुनाया करते हैं, जिसके भवणमात्रसे पापोंका पूर्णतया नाश हो जाता है ॥ ९ ॥

पूर्वकालमें प्रजापति ब्रह्मा मेरे नमिन्मलसे प्रकट हो प्राकृत जगत्की सुष्ठि करने लगे । वे अपनी तपत्या और मेरे वरदानमें शक्तिशाली रहे । एक समय सुष्ठिकर्ता ब्रह्माकी गोदसे सुन्दर पुत्र नारदजीका जन्म हुआ । वे मेरी भक्तिसे उन्मत्त होकर भूमण्डलपर भ्रमण करते हुए मेरे नाम-पदोंका कीर्तन करने लगे । एक दिन प्रजापति ब्रह्मदेवने नारद-जीसे कहा—‘महामते ! यह व्यर्थ धूमना छोड़ो और प्रजाकी सुष्ठि करो ।’ उनकी बात सुनकर ज्ञानमार्ग-परायण नारदने इस प्रकार कहा—‘पिताजी ! मैं सुष्ठि नहीं करूँगा; क्योंकि वह शोक-मोह पैदा करनेवाली है । मैं तो श्रीहरिके नामोंका कीर्तन और उनकी भक्ति करूँगा । आप भी इस सुष्ठि-व्यापारमें लगकर तुःखसे अल्पन्त आतुर रहते हैं, अतः आप भी सुष्ठि-रचना छोड़ दीजियं ॥ १०-१४ ॥

यह सुनकर ब्रह्माजीके अधर क्रोधसे फड़कने लगे । उन्होंने कुपित हो गया देते हुए कहा—‘तुमते ! तुम एक कल्पतक सदा गाने-वजानेमें ही लगे रहनेवाले गन्धर्व हो जाओ ।’ श्रीराधे ! इन प्रकार ब्रह्माके शापसे नारदजी उपवर्ण नामक गन्धर्व हो गये । वे एक कल्पनक देवलोकमें गन्धर्वराजके पदपर प्रतिष्ठित हरे । एक दिन निवासें विरह हुए वे ब्रह्माजीके लोकमें गये । वहाँ सुन्दरियोंमें मन ल्या रहनेके कारण उन्होंने बेताला गीत गाया । तब ब्रह्माने पुनः शाप दे दिया—‘तुमते ! तू शूद्र हो जा ।’ इस प्रकार ब्रह्माजीके ज्ञापसे वे दातीपुत्र हो गये । राधे ! फिर सलमङ्गके प्रभावसे नारदजी ब्रह्मपुत्रताको प्राप्त हुए । तदनन्तर पुनः भक्तिभावमें उन्मत्त हो भूतलग्न विचरते हुए वे मेरे पदोंका गान एवं कीर्तन करने लगे । मुनीन्द्र नारद वैष्णवोंमें श्रेष्ठ, मेरे प्रिय तथा ज्ञानके सूर्य हैं । वे परम भागवत हैं और भदा मुक्षमें ही मन ल्याये रहते हैं ॥ १५-२० ॥

एक दिन विभिन्न लोकोंका दर्शन करते हुए गान-तत्पर

नारद, जिनकी सर्वत्र गति है, इलाकृतवाङ्मये में गये, जहाँ, प्रिये ! अम्बूपल्लके रसमें प्रकट हुई श्यामवर्णी जम्बूनदी प्रवाहित होती है तथा जाम्बूनद नामक सुवर्णं उत्तनं होता है । उस देशमें रत्नमय प्रासादोंसे युक्त तथा दिव्य नर-नारियोंसे भरा हुआ एक 'वेदनगर'—नामक नगर है, जिसे योगी नारदने देखा । वहाँ कितने ही लोगोंके पैर नहीं थे, गुरुक नहीं थे और बुद्धने भी नहीं थे । जहाँ अथवा जघन-भागका भी कितने ही लोगोंके पास अभाव था । वे विकलाङ्ग और कृदोषादर थे और कितनोंके पीठके मध्यभागमें कूबर निकल आयी थी, दाँत गिर गये थे या ढीले हो गये थे, फंडे ऊँचे थे, मुख छुका हुआ था और कितनोंके गर्दन ही नहीं थी । इस प्रकार नारदजीने बहाँकी छियों और पुरुषोंकी अङ्ग-भङ्ग देखा । उन सबको देखकर मुनिने कहा—‘अहो ! पह क्या बात है ? यह सब तो विचित्र ही दिवायी देता है । आप सब लोगोंके मुँह कमलके समान हैं, शरीर दिव्य हैं और बल भी अच्छे हैं । आपलोग देवता हैं या उपदेवता अथवा कोई श्रुतिश्रेष्ठ हैं । आप सब लोग बाजोंके साथ हैं तथा रमणीय गीत गानेमें संलग्न हैं । आप अङ्ग-भङ्ग कैसे हो गये, यह बात शीघ्र मुझे बताइये ।’ उनके इस प्रकार पूछनेपर वे सब दीनचित्त होकर बोले ॥ २१-२८ ॥

रामोंने कहा—मुने ! हमारे शरीरमें स्वतः वडा भारी दुःख पैदा हो गया है । परंतु यह सब उसके आगे कहना चाहिये, जो उसे दूर कर सके । महर्षे ! हमलोग राग हैं और वेदपुरमें निवास करते हैं । मानद ! हम अङ्ग भङ्ग कैसे हो गये, इसका कारण बताते हैं, सुनिये; हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीके एक पुत्र पैदा हुआ है, जिसका नाम है, नारद । वह महामुनि प्रेमसे उन्मत्त होकर वेदमय ध्रुवपद गाता हुआ इस पृथ्वीपर विचरा करता है । उनके ताल स्वरंते रहित असामयिक गानों-विगानोंसे हम सब अङ्ग भङ्ग हो गये हैं ॥ २९-३२ ॥

उनकी यह बात सुनकर नारदजीको वडा विस्मय हुआ । उनका गर्व गल गया और वे रागोंसे हँसते हुए से बोले ॥ ३३ ॥

मुनिने कहा—रागगण ! मुझे शीघ्र बताओ । नारद-मुनिको किस प्रकारसे काल और तालका शान हो सकता है, जिसमें वे स्वरयुक्त गीत गा सकें ॥ ३४ ॥

रागोंने कहा—साक्षात् वैकुण्ठनाथकी प्रिय भावांशोंमें मुख्य सरस्वती देवी यदि नारदको संगीतकी शिक्षा दे सकें

तो वे मुनि कौन सा राग किम समय, किम तालवरसे गाना चाहिये, इसे जान सकते हैं ॥ ३५ ॥

उनकी यह बात सुनकर दीनवत्सल नारद सरस्वतीका कृपा-प्रसाद प्राप्त करनेके लिये तुरंत ही शुभगिरिपर चले गये । वहाँ उन्होंने रौद्रिव्यवर्णोंका निरन्तर अत्यन्त दुष्कर तपस्या की । ब्रजेश्वर ! उन्होंने अन्न जल छोड़कर केवल सरस्वतीके ध्यानमें मन लगा लिया था । नारदजीकी तपस्यासे वह पर्वत अपना 'शुभ्र' नाम छोड़कर 'नारदगिरि'के नामसे प्रस्तुत हो गया । वह सारा पर्वत उनकी तपस्यासे पवित्र हो गया । तपस्याका पर्यवर्तन होनेपर माश्रात् वाग्देवता विष्णुप्रिया श्रीसरस्वती वहाँ आयी । नारदजीने उन दिव्यवर्णा देवीको देखा । देखकर वे सहस्रा उठ सड़े हुए और उन्हें नमस्कार करके परिकमा-पूर्वक नतमस्तक हो, वे मुनीश्वर सरस्वती देवीके रूप, गुण और माधुर्यको स्तुति करने लगे ॥ ३६-४० ॥

नारदजी बोले—नवीन सूर्यके विम्बकी शुतिको उगलने और हिलेवाले रत्नमय कर्णफूल, केलूर, किरीट और कङ्कण जिनकी शोभा बढ़ाते हैं तथा जो चमकते और ज्ञानकारते हुए नूपुरोंके द्युक्षिण रथसे रञ्जित होती हैं, उन कोटि चन्द्रमाओंसे अधिक उज्ज्वल मुखवाली सरस्वती देवी-को मैं नमस्कार करता हूँ । जो चञ्चल चरण और चञ्चुपुट-वाले उढ़ते हुए कलहंगपर विराजमान होती तथा निर्मलमुखा-फलोंके अनेह हार धारण करती हैं, उन सौभाग्यशालिनी सरस्वती देवीको मैं प्रणाम करता हूँ । जो अपने दोनों पादव्यके दो दो निर्मल हाथोंमें क्रमशः वर, अभय, पुत्तक और उत्तम वीणा धारण करती हैं, उन जगन्मयी, ब्रह्ममयी, शृगदा एवं मनोहरा सरस्वती देवीको मैं नमस्कार करता हूँ । इन्द्रवर्णमी लहरदार रेशमी साझी पहननेवाली अतीव मङ्गलमवल्लपे सरस्वति ! मुझे स्वर तालका शान प्रदान कीजिये, जिसमें मैं अविनाशी एवं सर्वोत्कृष्ट रासमण्डलमें सर्वोपरि और अद्वितीय संगीतश हो जाऊँ ॥ ४१-४४ ॥

* नवकंविष्णवुभिरुपुरावरजिता नमामि कोटीन्दुयुसी सरस्वतीम् ।

कर्दे गराह कलहंसउडृते चलपदे चञ्चल चञ्चुसमुटे ।

निर्भौत्युताकलशसंचयं संधारयनी सुभगं सरस्वतीम् ॥

वराभयं पुत्तकवलकोयुं परं दधाना विमले करदये ।

न गाम्यह त्वा शुभदा सरस्वती जगन्मयी ब्रह्ममयी मनोहरम् ॥

तरङ्गिनीमितिगम्ये एव देहि त्वाशाननीवमङ्गके ।

येनाद्विरोधो वि भेदेमक्षरे रावोपरि स्त्वा पररासमण्डले ॥

(गां०, मधुरा० २१ । ४१-४४)

श्रीभगवान् कहते हैं—श्रीराधे ! सरस्वतीका यह नारदोक दिव्य स्तोत्र जडताका नाश करनेवाला है । जो प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करेगा, वह इस लोकोंमें विद्यावान् होगा । तब प्रसन्न हुई वाग्देवताने महात्मा नारदको भगवत्प्रदन्त स्वरबद्धसे विभूषित एक बीणा प्रदान की । साथ ही राग-रागिनी, उनके पुत्र, देश-कालादिकृत भेद तथा नाल, लय और स्वरोंका शान भी दिया । ग्रामोंके छपन कोटि भेर और असंख्य अवान्तरभेद, वृत्त, वादिन तथा सुन्दर मूर्छाना—इन सबका शान नारदजीको प्राप्त हुआ । वैकृष्णपतिसी प्रियाओंमें सुख्य सरस्वती देवीने स्वरगम्य सिद्धपदांदागा नारदजीको संगीत ही दिक्षा दी । राधे ! नारदको रासमण्डलके उपयुक्त अद्वितीय रागोद्भावक बनाकर विष्णुबल्लभा वाग्देवा वैकृष्णधामको चली गयी ॥ ४५-५० ॥

इस प्रकार श्रीगर्भ-संहारमें श्री-मधुरस्वरणके अन्तर्गत नारद-बहुलाद्व-संवादमें 'नारदोपालगान' नामक इक्षीसर्वाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

वाईमवाँ अध्याय

नारदका अनेक लोकोंमें होते हुए गोलोकमें पहुँचकर भगवान् श्रीकृष्णके समक्ष अपनी कलाका प्रदर्शन करना तथा श्रीकृष्णका द्रवरूप होना

श्रीभगवान् कहते हैं—श्रीराधे ! इस रागरूप मनोहर एवं गुण्य शानका उपदेश विसको देना चाहिये, इसका बुद्धिगूर्वक विचार करके नारदजी गन्धर्व-नगरमें गये । वहे तुम्हुर नामक गन्धर्वको अपना शिष्य बनाकर नारदजी मधुरस्वरसे बीणा बजाते हुए भेर गुणोंका गान करने लगे । तदनन्तर उनके हृदयमें यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि 'किन लोगोंके सामने इस मनोहर रागरूप गीतका गान करना चाहिये ? इसको सुननेका पात्र कौन है ?' इसकी खोज करते हुए नारद हन्द्रके पास आये । उनको इस विषयका आनन्द लेने न देख मुनिश्रेष्ठ नारद सखा तुम्हुरके साथ राग-रागिनियोंके निरूपण करनेके लिये सूर्यलोकमें गये । वहाँ सर्वदेव हो रथके द्वारा भागे जाते देख देवविषिणिरोमणि महामुनि नारद वहाँसे तस्काल शिवजीके पास चले गये । राधे ! शानतरश्च भूतनाथ शिव-के नेत्र ध्यानमें निश्चल हैं, यह देख नारदजी ब्रह्मलोकमें गये । सुष्टुकर्ता ब्रह्माको सुष्टु-रचनामें व्यग्र देख, वे वहाँ भी न ठहर सके; उस श्यानमें विष्णुके सर्वलोकवन्दित वैकृष्णधाममें चले गये । भक्तोंके स्वार्मा भक्तवत्सल भगवान् विष्णुको किसी भक्तपर कृपा करनेके लिये कहीं जाते देख योगीन्द्र नारद तुम्हुरके साथ अन्यत्र चल दिये ॥ १-८ ॥

वृषभानुनन्दिनि ! योगीश्वर संतोकी गति त्रिलोकोंके भीतर और बाहर भी बतायी गयी है । जो केवल कर्मी हैं, उन्हें बैसी गति नहीं प्राप्त होती । मुनीश्वर नारद करोड़ों

ब्रह्माण्ड-समूहोंको लाँघकर प्रकृतिसे परे गोलोकधाममें जा पहुँचे । उत्ताल तरंगोंमें सुशोभित विरजा नर्दको पार करके वे शीघ्र ही भ्रमरोंकी ज्वनिसे निनादित रमणीय बृन्दावनमें गये, जो सदा बसन्त श्रुतुमे युक्त है और जहाँके लोकाभवन मन्द माहूके झोंकेसे कम्मायमान रहते हैं । बृन्दावनसे गोवर्धन पर्वतका दर्शन करते हुए नारदजी भेर निकुञ्जमें आये । निकुञ्जादारपर सखियोंने पूछा—'आप होनो कौन हैं ? कहाँसे आये हैं और यहाँ क्या कार्य है ?' ऐसा प्रश्न होनेपर मुनि और तुम्हुर दोनों बोले—'सुन्दरियो ! इम दोनों गान-विद्यामें कुशल गायक हैं और अपनी बीणाकी मधुर ज्वनि साक्षात् परिषर्णतम भगवान् राधाबल्लभ श्रीकृष्णको सुनानेके लिये आये हैं । इम बन्दीजनोंमें उत्तम हैं । हमारी यह बात महात्मा श्रीकृष्णसे निवेदित कर देनी चाहिये' ॥ ९-१५ ॥

यह सुनकर सखियोंने उनका संदेश भेर पास पहुँचाया और भेरी आशामे लौटकर मधुरवाणीमें उन वन्दियोंको भीतर जलेका आदेश दिया । करोड़ों सूर्योंकी ज्योतिसे व्याप्त भेर निकुञ्जके ओगनमें, जहाँ सब ओर कौस्तुभमणि जड़ी थी, मनोहर चेवर हुलाये जा रहे थे, हिलते हुए मोतियोंकी झालरोंसे युक्त छत्र तने थे और करोड़ों सखियों विराजमान थीं, आकर महापद्ममय आमनपर तुम्हारे साथ बैठे हुए सुक्षम श्रीकृष्णका उन दोनोंने दर्शन किया । ऐसा प्रणाम और परिक्रमा करके वे भेरी आशासे वहाँ बैठे और

मेरी सुनि करके मेरे गुणोंवा गान करनेके लिये उच्चत हुए। आतोद्य (वाच विशेष) को दिवाने और देवदन म्ब्रामुतमयी वीणाको इंकृत करते हुए तुम्हुसहित नारदने वीणावादनकी अद्वितीय कलाको प्रभुत किया। मैं उगसे बहुत संतुष्ट हुआ और भिर हिलाना हुआ उस वीणाकी प्रशंसनीय ब्रह्म-लहरीकी सगाहना करने लगा। अन्तोगत्वा प्रेमके वशीभूत हो अपने-आपको देकर मैं जल्लूप हो गया। मेरे दिव्य शरीरमें जो जल प्रकट हुआ, उसे 'ब्रह्मदत्त'के नामसे लोग जानते हैं। उसके भीनर कोटि वोटि ब्रह्माण्ड-राशियों लुढ़कती रहती है। उस उच्चत एवं शुभ जलराशियमें लुढ़कते हुए, वे ब्रह्माण्ड इन्द्रायणके फलके समान प्रतीत होते हैं ॥ १६-२२ ॥

राधे! शह ब्रह्माण्ड 'प्रश्निगमं' नामा प्रभिद्ध है, जो मेरे त्रिविक्रम रूपके पदाधात्मा पूर्ण गया था। उसका भेदन करके जो साक्षात् ब्रह्मदत्तका जनयर्हा आया, उस शुभ मन्दन्तर में पूर्ववर्ती लेगाने पापाहारिणी स्वर्धुनी 'गङ्गा'के नामसे जाना था। उस गङ्गाको शुल्कमें 'मन्दाकिनी', पृथ्वीपर 'मातीरथी' और अधोलेक—पातालमें 'भोगवर्ती' कहा गया है। इस प्रकार एक ही गङ्गा त्रिपथगमिना होकर तांग नाममें विख्यात हुई। इनमें ज्ञान करनेके लिये प्रणतभावमें जाने हुए मनुष्यके लिये परम-परमपर राजसूय और अश्वमेष यज्ञोंका फल दुल्लभ नहीं रह जाता। जो सैकड़ों योजन दूरने भी 'गङ्गा गङ्गा'का उच्चारण करता है, वह सब पापेभूत जाता और विष्णुलोकमें जाता है। कलियुगमें गङ्गा दशान करनेमें नौ जन्मोक्ता, जल पीनेमें दो साजन्मोक्ता और ज्ञान करनेसे एक गहम्य जन्मोक्ता पाप नष्ट कर देती है। जो ज्ञाहवी गङ्गाका दशान करते हैं, उनमें जन्म नफल है। जो उनके दर्शनमें वक्षित रह जाते हैं, उनका जन्म व्यर्थ चला गया ॥ २३-२९ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-मन्त्रात्मां श्रीमद्युराखण्डके अन्तर्गत नारद-ब्रह्मलक्ष्म-संवादमें 'नपदोपाल्यान'

नामक बाठमर्ता ब्रह्माय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

ममोद राधे ! जैसे विरजा उम्हारे भयमे द्रवहपताको प्राप्त हो गयी, जैसे विरजाके भातो पुत्र सात समुद्रोंके रूपमें द्रवमावको प्राप्त हो गये, जैसे विष्णु 'कृष्णा' नदी हुए, जैसे शिवदेव 'वीरा' नदी हुए, जैसे ब्रह्म 'ककुचिनी गङ्गा' हुए और जैसे अप्सरा 'गण्डकी' नदी हो गयी, उसी प्रकार ये श्रमुकी प्रमलक्षणा भक्तिमे नम्भव हुआ है, इसमें संशय नहीं है। जो इस पापहारणी पवित्र कथाका श्रवण करता है, वह मनुष्य गव लोकोंसे लाशकर भेरे गोलोकधाममें चला जाता है ॥ ३०-३२ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन ! इन प्रकार अपनी प्रिया श्रीगाधामे वहकर धीरि श्रमुके आश्रममें श्रीराधाके साथ ही मालनी नग्ने चले आये। फिर गोपियोंकी विहद्यथाको जान भक्त-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण श्रागधाके साथ यमुनाके मङ्गलवर्ष पुलिनपर चले आये। उस समय नमस्त गोपीगणोंका मान और व्यया-भाग दूर हो गया। उन्होंने, जैसे चालाएं मेघका आलिङ्गन रखता है, उसी प्रकार यमश्यामको अपनी भुजाओंमें भर लिया। तब श्रीहरि बृन्दावनमें यमुनाके मनोहर तटपर गोपाङ्गनाओंके साथ मधुरस्वरमें बंशी बजाने लगे। भगवानके उस मधुर रागमें गोपकन्याएँ मूर्छित हो गयीं, नदियोंना वैग रुक गया, पक्षी अचल हो गयं। समस्त देवताओंने मौन धारण कर लिया, देवनायक स्तब्ध हो गये, बृद्धोंने जल वहने लगा तथा सारा जगत् मानो निद्रामें निमग्न हो गया। रात्रिकालमें रास रचाकर श्रीराधिका और गोपियोंने मनोरथ पूर्ण करके ब्राह्महृतमें भगवान् श्रीकृष्ण नन्दभवनको लौट आये। गोपिकाओंके साथ श्रीराधिका भी अपना अनन्दमय मनोरथ प्राप्त करके ब्रह्मानुवरके सुन्दर मन्दिरमें चला गयी ॥ ३४-४१ ॥

* गङ्गा गङ्गानी थो मृत्युज्ञाना शर्मणि । मुन्दते मर्यादेष्यो विष्णुलकं ॥ गच्छा ॥

हुक्का नन्म रा पां त्वा जन्मराद्यरा । ज्ञात्वा जन्मसंसारं इति गङ्गा कलौ तुरे ॥

मात्र गहम दे नेता ये पश्यन्ति हि नाश्वीन् । वृथा जन्मगत नेता ये न पश्यन्ति जाह्वीन् ॥

तेहसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका वजसे लौटकर मधुरामे आवास

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण वजसे कई दिनोंतक रहकर सबको अपना दर्शन दे मधुरा जानेको उचित हुए । नौ नन्दों, नौ उपनन्दों, छः

तुम्हों तथा वृषभानुवर और ब्रजेश्वर नन्दराजसे मिलकर, कलावती, यशोदा, अन्यान्य गोपियों तथा गौओंके गणोंसे भी भैंट करके, आश्रासन और शान दे, सबसे विद्या लेकर माघव चक्रल अर्थोंसे जुते हुए अपने दिव्य रथपर आरूढ़ हो मधुरा जानेकी इच्छासे नन्दगांवसे बाहर निकले । उनके पीछे-पीछे एसमस्त मोहित ब्रजवासी बहुत दूरतक गये । वे माघवके अस्थन्त कष्टमय विरहको नहीं कह सके । जिन्हें भूमण्डलपर कभी एक बार भी श्रीविष्णुका दर्शन हुआ हो, उन्हें भी उनका विरह दुर्सह हो जाना है; फिर जिन्हें प्रतिदिन उनका दर्शन होता रहा हो, उनको उनके विरहसे कितना हुँख होता होगा, इसका वर्णन कैसे किया जा सकता है । नरेश्वर ! अपलक्ष नैश्रोंसे श्रीधरके मुँहकी ओर देखते हुए समस्त ब्रजवासी गोप स्नेह-सम्बन्धके कारण प्रेमविहङ्ग हो उनसे बोले ॥ १-७ ॥

गोपोंने कहा—श्रीकृष्ण ! तुम फिर जल्दी आना और हम समस्त ब्रजवासियोंकी रक्षा करना । जैसे पूर्वकालमें तुमने देवताओंको अमृत प्रदान किया था, उसी प्रकार अब हमें अपने दर्शनकी सुधाका पान कराते रहना । देव ! केवल तुम्हीं सदा यशोदाके आनन्ददायक हो, तुम्हीं श्रीनन्दराजको आनन्द प्रदान करनेवाले हो और तुम्हीं ब्रजवासियोंके जीवन हो । प्रभो ! तुम्हीं इस ब्रजके थन हो, गोप-कुलके दीपक हो और महापुरुषोंके भी मनको मोहनेवाले हो । जैसे निदाष्टसे जले हुए प्राणीको शीतल जल प्राप्त हो जाय, सर्दिसे पीड़ित मनुष्यको जैसे आग मिल जाय, ज्वरसे आतं पुरुषको उपयुक्त औषध प्राप्त हो जाय और मरे हुए मानवको भी जैसे मङ्गल-मय अमृत मिल जाय, तो वे जी उठते हैं, उसी प्रकार समस्त ब्रजके लिये तुम्हारा दर्शन ही जीवन है; इसलिये तुम वहीं निवास करो । इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ । हमारे हस जन्म अथवा पूर्वजन्ममें जो कुछ भी मुष्य हुआ हो, उसके फलस्वरूप हमार वित्त सदा तुम्हारे चरण-कमलमें लगा रहे । जिनका वित्त तुम्हारे चरण-कमलमें लगा हुआ है, वे भक्त-ज्ञ तुम्हें सदा ही प्रिय हैं । तुम प्रकृतिसे परे निर्युक्त हो, तथापि अपने भक्तोंके लिये रुग्ण हो जाते हो । तुम्हें अपने

भक्तसे अधिक प्रिय विद, व्रजा और लक्ष्मी भी नहीं हैं । जो व्रजापद आदिकी अभिलाषाको लौटकर तुम भगवान्का निष्कामभावसे भजन करते हैं, वे त्रुतिविष मुख्य ही शान्त एवं निरपेक्ष तुलका अनुभव करते हैं ॥ ८-१५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! मैं कहकर वे सब गोप प्रेमसे विहङ्ग हो श्रीकृष्णके देखते-देखते आनन्दके औंसू बहाते हुए रोने लगे । भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णके मुखपर भी अशुकी धारा बह चली । वे प्रसुत्तचेता परमेश्वर उन विष-विहङ्ग गोपोंने बोले ॥ १६-१७ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—ब्रजवासियो ! तुम सब मेरे प्राण हो और मेरे परम प्रिय हो । मेरा हृदय तुमलोगोंमें ही स्थित है, केवल शरीर अन्यत्र दिल्लायी देता है । मैं प्रतिमास तुम सबको देखने और दर्शन देनेके लिये आजेंगा, यह बच्चन देता हूँ । मनसे मैं दूर नहीं हूँ । मन ही सबका कारण है । हे गोपगण ! यादवोंसे युद्ध करनेके लिये

* श्रीघणगङ्ग है कृष्ण सदीयो ब्रजवासिनः ।
पाहि संदर्शनं देहि देवेन्द्रो शम्भूतं थथा ।
त्वमेव सर्वदा देव यशोदानन्ददायकः ।
श्रीनन्दनन्दनरत्नं वै वीवनं ब्रजवासिनाम् ॥
प्रजे चनं कुले दीपो मोहने महातमपि ।
यथा निदाष्टदर्थस्व प्राप्तं वै शीतलं बलम् ॥
शीतात्मस्य यथा बहिर्वरात्मस्य यजौषधम् ।
शृण्य मानवत्यापि तीर्णं महातं यथा ॥
तथा ब्रजस्य सर्वत्य जीवनं तत्र दर्शनम् ॥
तस्मादत्र स्तिं कुर्याद् वहुता कथितेन किम् ॥
यजोऽस्ति विवितसुकृतमसिन् वा पूर्वजन्मनि ।
तस्मादेन सदा चेतो भूयात् त्वत्पदमहजे ॥
येवा वैतत्स्वत्वदाच्छ्री ते भक्तवत्सलविदाः सदा ।
मत्तात्म संगुणोऽस्ति त्वं निर्युणः प्रकृतेः परः ॥
तत्र भक्तवत्सलविदो नास्ति दिव्यो ब्रजा न चेन्दिरा ।
विद्युत्य पारमेष्ठादि निष्कामासर्वा भजन्ति वे ।
नैररेत्वं शुद्धं शान्तं ते विद्युत्तत्त्वेन्द्रिः ॥

(गण०, मधुरा० २३ । ८-१५)

† मत्तात्मा मत्तिया शूँ सर्वे वै ब्रजवासिनः ।
हृदयं नेऽस्ति तुम्हातु देहोऽन्यत्र विलक्षते ॥
मासं ग्रस्यामिष्यामि तुम्हान् दृहं चतो मम ।
मनसा नहि दूरोऽस्मि मनः सर्वत्य कारणम् ॥

(गण०, मधुरा० २३ । १८-१९)

असांख आया है, अतः यदुविशिष्योंकी सहायता के लिये मैं जाता हूँ, तुम्हें शोक नहीं होना चाहिये ॥ १८-२० ॥

श्रीमारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार उन गोपोंको बार-बार आश्रामन दे, फिर लौटकर यजोदायाहित नन्दराजको दूसरे रथपर चिठाया और श्रीदामा आदि कल्याञ्जोंको साथ ले, उद्धवसहित रथपर आरूढ़ हो, वे सर्वकारण-कारण भगवान् मधुराको गये । वीर ! जयतक

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीभगवत्पुराणके अन्तर्गत नारद-बहुलाइन-संवादमें ब्रजयात्राके प्रसङ्गमें श्रीकृष्णका अगमन^१ नामक तेर्तस्वां अव्याप पूरा हुआ ॥ २३ ॥

रथ, उसमें जुते हुए सौ वेगशाली घोड़े और कहराती पताकाएँ सुक तिरंगा व्यज तथा उड़ती हुई धूल दिखायी देती रहीं, तथतक अन्य ब्रजवासी वहीं लड़े रहे । फिर वे अपने घरको लैट आये ॥ २१ — २३ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रका यह परम उत्तम विचित्र चरित्र मनुष्योंके महान् पापोंको हर लेनेवाला है । जो भक्तप्रबर गुणोपर इह चरित्रको सुनता है, वह उत्तमोत्तम गोलोकधाममें जाता है ॥ २४ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

बलदेवजीके द्वारा कोल देत्यका वध; उनकी गङ्गातटवर्ती तीर्थोंमें यात्रा; माष्टूकदेवको वरदान और भावी बृत्तान्तकी सूचना देना; फिर गङ्गाके अन्यान्य तीर्थोंमें ल्लान-दान करके मधुरामें लौट जाना

बहुलाइने पूछा—मुने ! गोपाङ्गनाओं और गोपोंको उत्तम दर्शन देकर मधुरामें लौटनेके पश्चात् श्रीकृष्ण तथा बलदेवजीने क्या किया ? श्रीकृष्ण और बलदेवका चरित्र बड़ा मधुर है । यह समस्त पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यप्रद तथा चतुर्बर्गस्प फल प्रदान करनेवाला है ॥ १-२ ॥

श्रीमारदजीने कहा—राजन् ! अब श्रीकृष्ण और बलदेवजीका दूसरा चरित्र सुनो, जो सर्वपापहारी, पुण्यदायक तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको देनेवाला है । नरेन्द्र ! कोलनामक दैत्यसे पीड़ित हुए बहुतसे लोग दीनचित्त हो ग्राहणोंके साथ कौशारचिपुसे मधुरामें आये । उस समय योहिणीनन्दन बलराम श्रीग्रामी अदवपर आरूढ़ हो योद्धेसे अग्रगामी लोगोंके साथ शिकार खेलनेके लिये मधुरामें निकले थे । सार्वं ही उन्हें प्रणाम करके उनकी विभिन्न पूजा करनेके पश्चात् सब लोग उनके चरणोंमें प्रणत हो गये और हाथ जोड़ हर्ष-गद्गद वाणीमें बोले ॥ ३-६ ॥

प्रजाजानोने कहा—राम ! महाशाहु राम ! महाबली देवदेव ! इम सब लोग कोलनामक दैत्यसे पीड़ित हो आपकी शरणमें आये हैं । कोल देत्य कंसका सत्ता है । वह महाबली देत्य राजा कौशारचिको जीतकर उन्हींके नगरमें राज्य करता है । राजा कौशारचि उसके भयसे गङ्गातटपर चले गये हैं और वहाँ पुनः अपने राज्यकी प्राप्तिके लिये अव्यन्त जितेन्द्रिय हो आपके चरण-कमलोंका भजन कर रहे हैं । विभो ! आप

उनकी सहायता कीजिये । इम उन्हींकी शुभ प्रजा हैं, जिनका उन्होंने उप्रकी भाँति पालन किया है । उनके संरक्षणमें हम-लोग वहे सुखी थे । प्रभो ! अब हुष्ट कोल हमें निरन्तर पीड़ा दे रहा है । यथापि आपने श्रिभुवनविजयी वीर कंसको मार डाला है, तथापि देवेन्द्र ! जयतक कोल जीवित है, तथतक कंसको भी मरा हुआ नहीं मानना चाहिये । आप प्रकृतिसे परे होकर भी भक्तोंकी रक्षाके लिये ही संगुणरूपसे अवतीर्ण हुए हैं ॥ ७-१२ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! उनका वचन सुनकर भक्तवत्सल श्रीबलराम गङ्गायमुनाके बीचमें बसी हुई कौशाम्बी-नगरीको गये । बलरामजीको युद्धके लिये आया हुआ सुनकर प्रचण्ड-पराक्रमी कोल भी दस अक्षौहिणी सेनासे सुरक्षित हो कौशाम्बीसे बाहर निकला । प्रलय-कालके समुद्रकी भाँति गर्जना करनेवाली वह सेना एक नदीके समान आयी । चञ्चल घोड़े उसकी उठती हुई तरङ्गमाला थे । यथ और हाथी आदि उसमें तिमिङ्गिल (मगर-मत्स्य) के समान प्रतीत होते थे । वीर योद्धारूपी मँवर उठ रहे थे । उसे देखकर बलरामजीने इलका सेतु बाँध दिया और हलाय-भागसे उस सेनाको लीच-लीचकर मुसलके सुट्ट ग्रहारसे मारना आरम्भ किया । उनके ग्रहारसे एक साथ ही यैदल वीर, घोड़े, यथ और हाथी रणशूलियमें फलोंकी भाँति पिल उठे और करोड़ोंकी संख्यामें तथ और भराक्षायी ही मरे । शेष

योद्धा भक्षे पीड़ित हो युद्ध-मण्डलसे भाग निकले। शख्स भारी दैत्य कोल बलरामजीके साथ अकेला ही युद्ध करने लगा। १३-१८ ॥

उस दैत्यराजने बलदेवजीका ओर अपना हाथी बढ़ाया। उस हाथीके कुम्मस्थलपर गोमूर्खमें घोले हुए सिन्दूर और कस्तीरीके द्वारा पत्र-रचना की गयी थी। सोनेकी साँकलसे बुक्ट कटिबन्ध रखन्वचित था। उसके गण्डस्थलसे मद झर रहा था। उसके चार दौँत थे। घंटेकी छ्वनिसे वह और भीषण प्रतीत होता था। उसका कद ऊँचा था और वह दिग्गजके समान चिघ्नाहता था। उसके शरीरका रंग प्रलयकालके मेघके समान काला था। कोल तीव्रा अङ्कुश लेकर उसके कानकी ओरसे उस हाथीपर चढ़ गया था। कोलके द्वारा प्रेरित उस भवधाले हाथीको अपनी ओर आता देख बलदेवजीने उसके ऊपर मुसलसे उसी प्रकार प्रहार किया, जैसे इन्द्रने बज्रसे किसी पर्वतपर आघात किया हो। मिथिलेश्वर। मुसलकी मारसे उस महान् गजराजका मस्तक उसी प्रकार छिन्न-भिन्न हो गया, जैसे छड़ेकी मारसे कोई यिद्धीका घडा टूक-टूक हो गया हो। १९-२३ ॥

कोलका भुँह सूखरके समान था। लाल नेत्रोंवाला वह दैत्य हाथीसे गिर पड़ा। उसने महास्मा माधव—बलदेवके ऊपर तीव्रा शूल चलाया। विदेहराज! तब बलरामने मुसलसे मारकर उसके शूलके उसी प्रकार सैकड़ों टुकड़े कर दिये, जैसे किसी बालकने लाठीके प्रहारसे कौँचके बतनं तोड़ डाले हों। तब उस दुष्टने सहज भार (ल्याभग ३००० मन) लोहेकी बनी हुई एक भारी गदा हाथमें लेकर बलरामजीकी छातीपर चोट की और वह मेघके समान गर्ज उठा। उस गदाके प्रहारको सहकर महावली बलदेवने काजलके समान काले शरीरवाले कोलके मस्तकपर मुसलसे प्रहार किया। मुसलके प्रहारसे उसका सिर फट गया और वह रणभूमिमें गिर पड़ा; तो भी उठकर बलदेवजीको मुक्तेसे भारी चोट पहुँचाकर वह वही अन्तर्धान हो गया। फिर उस मायावी दैत्यने अस्यन्त भयंकर दैत्य-सम्बन्धिनी माया प्रकट की। तुरंत ही वही भारी औंधीसे प्रेरित प्रलय-कालके मेघोंसे, जो अन्धकार फैला रहे थे, आकाश आच्छादित हो गया। जपाके पुष्पोंके समान रक्तके बिन्दुओंकी निरन्तर वर्षा होने स्थानी। उसके बाद घनीभूत काले मेघोंने बृणित वस्तुओंकी वर्षा प्रारम्भ की। पीव, मेद, विषा, मूत्र, मदिरा और मांसमें युक्त अमेघ जलकी वर्षा होने लगी। उस वृष्णिसे

सब ओर हाहाकार होने लगा। दैत्यहारा रसी गडी मासाको जानकर महाप्रभु बलदेवने शङ्कुसेनाको विदीर्ण करनेवाले विशाल मुसलको चलाया। वह समस्त अङ्गोंका शातक, स्वच्छ और सुहृद् अङ्ग अष्टधातुओंका बना हुआ था। उसकी लंबाई सौ योजनकी थी तथा वह प्रलयाग्निके समान प्रज्वलित हो रहा था। बलदेवजीका अङ्ग मुसल दसों दिशाओंमें धूमता हुआ बड़ी शोभा पा रहा था। उसने आकाशके बादलोंको उसी प्रकार विदीर्ण कर दिया, जैसे सूर्य कुहरेको भिटा देता है। उस मुसलको आकाशमें गया हुआ देख भगवान् बलभद्रने स्वतः 'हह्ल' नामक अङ्ग उठाया और अपने बैमधसे सबको सर्वांच-सर्वांचकर बलपूर्वक भीन्में ही विदीर्ण कर दिया ॥ २४-३६ ॥

उस दैत्यकी मायाका नाश हो जानेपर महावली बलदेवने अपने बाहुदण्डोंसे उसके मदोत्कट भुजदण्ड पकड़ लिये और जैसे बालक रुहीकी राशिको छुमाये, उसी प्रकार इधर-उधर छुमाने हुए उसे पृथ्वीपर इन प्रकार दे भारा, भानो किसी बालकने कमण्डल पटक दिया हो। उस दैत्यके पतनसे पर्वत, समुद्र और बनके साथ सारा भूमण्डल एक नाई(घडी)तक काँपता रहा। दैत्यके दौत टूट गये, नेत्र बाहर निकल आये और वह मूर्च्छित होकर मृत्युका ग्रास बन गया। इस प्रकार महादैत्य कोल बज्रके भारे हुए वृत्रासुरकी भोति प्राणशूल्य हो गया। उस समय स्वर्णमें और धरतीपर जय-जयकार होने लगा। देवताओंका दुन्दुभियों बज उठी और वे घूर्णेकी वर्षा करने लगे। इस प्रकार कोलका वध करके श्रीकृष्णके चडे भाई बलदेवने कौशाम्बीपुरी राजा कौशारविको दे दी और स्वर्ण गर्गाचार्य आदिके साथ वे भागीरथीमें स्नान करनेके लिये गये। उनका यह कार्य समस्त दोषोंके निवारण एवं लोकसंग्रहके लिये था ॥ ३७-४३ ॥

गर्ग आदि ब्राह्मण-आचार्योंने मङ्गलमय वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हुए माधव—बलरामको गङ्गामें स्नान करवाया। विदेहराज! बलरामजी ब्राह्मणोंको एक लाख हाथी, दो लाख रथ, एक करोड़ घोड़े, दस अरब दुधारू गायें, सौ अरब रल और जामूनद सुवर्णके भार दानमें देकर मधुरापुरीको चले गये। यिथिलेश्वर। बलरामने गङ्गाजीमें जहाँ स्नान किया, उस महापुण्यमय तीर्थको विद्वान्लेग 'रामतीर्थ'के नामसे जानते हैं। जो मनुष्य कार्तिकी पूर्णिमा एवं कार्तिक मासमें रामतीर्थकी गङ्गामें स्नान करता है, वह इरिदारकी अपेक्षा सौगुने पुण्यका भागी होता है ॥ ४४-४८ ॥

बहुलास्थने पूछा — महामुने ! कौशार्मीसं कितना दूर और किस स्थानपर महापुण्यमय 'ग्रामतीर्थ' विद्यमान है, यह मुझे बतानेका कृपा करें ॥ ४९ ॥

नारदजीने कहा — राजेन्द्र ! कौशार्मीसं इंद्रानकोणमें चार योजनकी दूरीपर और वायव्यकोणमें शुक्रक्षेत्रसे चार योजनकी दूरीपर, कर्णक्षेत्रमें छः कोस और नल्कुंत्रसे पाँच कोस आग्नेय दिशामें रामतीर्थकी स्थिति बताते हैं । बृद्धकेदी सिद्धपीठसे और विल्यमेदा-वनसे पूब दिशामें तीन कोसकी दूरीपर विद्वानोंने ग्रामतीर्थकी स्थिति मानी है ॥ ५०—५२ ॥

बलदेवमें हृषीकेश नामक एक राजा थे । वे लोमदा मुनिको कुरुप देखकर सदा उनकी हँसी उड़ाया करते थे । इससे उन महामुनिने उन्हें शाप दे दिया — 'ओ महादुष ! तू विकराल शूकरगुरु असुर हो जा ।' इस प्रकार मुनिकंशपसं राजा कोलनामक कोडमुख असुर हो गया । फिर बलदेवजीके प्रहारमें आसुर-शरीरओं छोड़कर महादैत्य कोल्ने परम मोति प्राप्त कर लिया । तब वल्लभ उद्धव आदि तीन मन्त्रियोंके साथ वहाँसे तत्काल 'जहार्तीर्थ'को चले गये, जहाँ जहुके दाहेने कानसे गङ्गाजीका प्रादुर्भाव हुआ था । उस ब्राह्मण-शिरोमणि जहुके नामपर ही गङ्गाजी 'जाह्नवी' कहा जाता है । वहा ब्राह्मणोंको दान दे रातभर सब लोग वहाँ रहे । तदनन्तर वहाँ पर्वतम भागमें पाण्डवोंका अत्यन्त प्रिय 'आहारस्थान' नामक स्थान है, जहाँ पहुँचकर उन लोगोंने रात्रिमें निवास किया । वहा ब्राह्मणोंको दान तथा उत्तम गुणकारण भोजन देकर वे वहाँसे एक योजन दूर माण्डूकदेवके पास गये ॥ ५३—५५ ॥

माण्डूकदेवने अनन्तदेवकी कृपा प्राप्त करनेके लिये वही भारी तपस्या की थी । उसीके लिये अपने समाजके साथ बलदेवजीवहाँ गये । वह हृषीकेश एक पैरके बलपर खड़ा था । उसके नेत्र घ्यानमें निश्चल थे । वह हृषीकेश बलदेव जीके स्वरूपका दर्शन करते हुए उन्होंके साक्षात् दर्शनके लिये लोलुप था । बलदेवजीने उसके हृषीकेशमें अपने उस स्वरूप-को हटा लिया, तब उसने नेत्र लोलकर अपने आराध्यदेवको बाहर देखा । अनन्तदेवके उस परम सुन्दर रूपको उसने देखा । वे बनमालासे सुशोभित थे और एक कानमें कुण्डल धारण किये हुए थे । उनसी अङ्ग धनि गौर था तथा वे ताल-चिह्नसे अङ्कुर ध्वजावाले रथपर बैठे थे । अनन्तदेवके उस परम सुन्दर रूपको देखकर उसने वही भक्तिसे उनकी सुन्ति की । फिर वह अपने आराध्यके चरणोंमें गिर पड़ा ।

बलदेवजीने उसके मस्तकपर हाथ रखकर और कहा — 'वर मांगो ।' तब वह बोला — 'स्वामिन् । यदि आप साक्षात् भगवान् मुक्षपर प्रसन्न हैं, अथवा यदि मैं आपके अनुग्रहका पात्र हूँ, तो शुक्रदेवजीके मुखसे निकली हुई उस सर्वोत्तम भगवतसंहिताको मुझे दीजिये, जो समस्त कलिदोषोंका विनाश करनेवाला एवं श्रेष्ठ है ॥ ६०—६५ ॥

बलदेवजीने कहा — अनश्च ! तुम्हें उद्धवजीके द्वारा श्रीमद्भागवतसंहिताकी प्राप्ति होगी, जिसका कीर्तन कलियुगमें सर्वाधिक महत्व रखनेवाला है ॥ ६६ ॥

माण्डूकजीने पूछा — स्वामिन् ! भगवान्ने उद्धवजीको भगवतसंहिता मुनानेका सुख्य अधिकार क्यों दिया है ? और उनके साथ मेरा संयोग क्या होगा ? आप इस मेरे मंदेहका निवारण कीजियें ॥ ६७ ॥

बलदेवजी बोले — मै परम गोपनीय एवं परम अद्भुत रहस्यका चात बताता हूँ । आज भी मेरे निकट ये उद्धवजी विराजते हैं । तुम इनका दर्शन कर लो । यह उत्तम दर्शन तुम्हें परमार्थ प्रदान करनेवाला है; परंतु आज तीर्थयात्राके अवसरपर तुम्हे इनका उपदेश नहीं प्राप्त हो सकता । जिस प्रकार ये भगवतके उपदेशक होंगे, वह मैं तुम्हे बता रहा हूँ । मैंने उद्धवको श्रीमान् आचार्यके पदपर इसलिये स्थापित किया है कि ये संहिताशानस्वरूप हैं । नन्द आदि ब्रजवासियों तथा गोपाङ्गनाओंकी प्रतिक्रिये भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवको अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा था । अपना स्वरूप, परिकरका पद और जो कुछ भी पूर्ण भगवत्ता है, वह सब, अपने स्वभाव और गुणके साथ परमात्मा श्रीकृष्णने उद्धवको अर्पित की है । उन्होंने उद्धवको और अपनेको एक ही मानकर आचरण किया है । श्रीकृष्णने अपना आन्तरिक रहस्य पहिले उद्धवके सिवा और किसीपर नहीं प्रकट किया था । उन्होंने इममें अपनी अभिज्ञताका साक्षात्कार किया है । ब्रजवासियोंने इन्हें साक्षात् श्रीकृष्ण ही जानकर वह आदरसे इनका पूजन किया था । बलन्त और योध्य, दोनों शृणुओंमें इन्होंने ब्रजभूमिमें विचरण किया और श्रीगंगा तथा राधाकुण्डके आस-पासके लोगोंका शोक शान्त किया । उद्धव ब्रजवासी अनुगामियोंके साथ वहाँकी भूमिमें यत्न-तत्त्व सर्वंत्र विचरे हैं । इन्हें गौओं तथा नन्द आदि गोपों और गोपाङ्गनाओंका 'वियोगार्तिहारी' कहा गया है । ये मन्त्रीके अधिकारमें कृष्णल तथा समस्त पार्षदों

के अप्रगामी हैं। जब भगवान्‌के अन्तर्धानकी बेला आयेगी, उस समय धर्मपालक-देहधारी भगवान् उद्धवको अपना परम अद्भुत तेज भी दे देंगे। इनका मुद्राधिकार (भगवान्‌की ओरसे कुछ भी कहने और उनकी मुद्रिका या मोहरकी छाप लगाकर कोई आदेश जारी करनेका अधिकार) तो सर्वत्र और सदा ही विराजता है। अन्तर्धानकालमें इन्हें भगवान्‌की ओरसे विशेष अधिकार दिया जायगा। ये बदरिकाश्रम-तीर्थमें विराजमान परिकरोंसहित धर्मनन्दनको भगवद्रहस्यका बोध करायेंगे। अजुने आदिको भगवान्‌के विशेषमें जो बड़ी भारी पीढ़ी होगी, उसका निवारण उद्धव ही करेंगे। मधुरामें यादवोंका उत्तराधिकारी बज्रनाभ होगा। श्रीकृष्णके पौत्रों तथा महारानियोंके समुदायमें जो भगवद् विशेषकी वेदना होगी, उसे दूर करनेके लिये साक्षात् श्रीहरिके द्वारा उद्धव हा नियुक्त किये जायेंगे॥ ६८-८०॥

कौरवोंके कुलमें परीक्षित् नामसे विश्वात् राजा होगा। उनका अत्यन्त तंज्वर्णा पुत्र जनमेजय नामसे प्रसिद्ध होगा। वह अपने पिताके शत्रु तक्षक नामके कुलका नाशक मर्यज्ञ करेगा; इसमें संशय नहीं है। उसको भी सारी यह-नामधी उद्धवके द्वारा ही प्राप्त होगी। उस समय दिव्य श्रीमद्भागवतपुराणकी कथा होगी, जिसमें उज्ज्वल (सास्त्रिक) प्रकृतिने लोग समवेत होंगे, इसमें संशय नहीं है। महान् भगवद्गुरुकोंमें उत्तम ब्रह्मर्षि (आसीक) के प्रसादसे जनमेजयद्वारा होनेवाले सर्पदशकी समाप्ति हो जायगी। महाराज जनमेजय यज्ञ-संस्कार करानेवाले ब्राह्मणोंका पूजन करके उहैं सौ ग्राम अग्रहारके रूपमें होंगे॥ ८१-८५॥

तदनन्तर आचार्यप्रबर श्रीप्रसादजीकी आशासे राजा जनमेजय शूक्रक्षेत्र (सोरों) में जायेंगे और वहाँ एक मास ठहरेंगे। उस तीर्थमें अनेक प्रकारके दान—गौ, बड़े-बड़े हार्या, घोड़े, रत्न, वस्त्र तथा इच्छानुसार भोजन—ब्राह्मणोंको देकर वे अपने आचार्यके साथ उत्तरास्थानमें लौटकर गङ्गातटके तीरथस्थानोंका दर्शन करते हुए सत्पुरुषोंसे विरे शायाननगरमें आकर सेवकोंसहित डेरा डालेंगे। वहाँ श्रीगुरुकी आशासे सामधी और साधन बुट्टकर अश्वमेष यज्ञ करेंगे और सर्वजेता (दिग्विजयी) होंगे। इह प्रकार एकञ्चन राज्यके स्वामी होकर श्रीगुरुदेवकी धारण ले शायाननगरसे पूर्व दिशामें रमणीय गङ्गाके तटपर अस्यन्त एकान्तवासीके रूपमें तीर्थ-सेवन करेंगे। वहाँ धर्मिकोंके समाजमें वहे आनन्दके साथ भवरोगविनाशिनी

भागवत-कथा होगी। उस पूर्व समाजमें एक तुम भी रहेंगे और भागवतकी कथा सुनेंगे। उसे सुनकर तुम्हें निर्मल-पदकी प्राप्ति होगी। तुमने मेरे लिये तपस्या की है, इसलिये तुम्हारे सामने मैंने इस रहस्यको प्रकाशित किया है। इस प्रकार माण्डूकदेवको वर देशर सेवकोंसहित बलरामजी वहाँसे चले गये॥ ८६-९४॥

शुद्ध शायाननगरमें गङ्गातटपर स्थित एक रमणीय स्थान है, जो कण्टकतीर्थसे उत्तर है और पुष्पवती नदीसे दक्षिण दिशामें विश्वमान है। उसका विस्तार एक कोसमें है। वहीं ठहरकर संकर्षणदेव दान-पुष्पमें लग गये। बलरामजीने बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ दस हजार घोड़ों, सौ रथों, एक हजार हाथियों और दस हजार गौओंका दान किया। वहाँ समस्त देवता तथा तपस्याके भनी ऋषि-मुनि आये। उन सबने बड़े आदरसे संकर्षणदेवका पूजन किया। फिर इस प्रकार स्तुति की—‘प्रभो ! आप कोलेश दैत्यके हन्ता तथा गर्दभासुर (धेनुक) का विनाश करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। हलायुध ! आपको प्रणाम है। मुगलाख धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। सौन्दर्यस्वरूप आपको प्रणाम है। तालचिह्नित ध्वजा धारण करनेवाले आपको बारंबार नमस्कार है।’ उन सबके द्वारा की गयी इस स्तुतिको सुनकर संकर्षण बोले—‘आप सब लोगोंको जो अभीष्ट हो, वह वर मुझसे माँगिये’॥ ९५-१००॥

ब्रह्मर्षि और देवता थोले—भगवन् ! जब-जब आपत्तिमें पहकर हम आपके चरणोंका चिन्तन करें, तब-तब आपकी आशासे समस्त बाधाओंमें मुक्त हो जायें॥ १०१॥

बलरामने कहा—जब-जब आपलेग मेरी शरणमें आकर मेरा स्वरण करेंगे, तब-तब कल्पितुगमें निश्चय ही मैं आपलोगोंकी रक्षा करूँगा; यह मेरा सत्य बच्चन है। इस स्थानपर मुनिपुण्डिवानें मेरा पूजन करके वर प्राप्त किया, इसलिये कल्पितुगमें वह तीर्थ ‘मंकर्षणस्थान’के नामसे विश्वात होगा। जो लोग इस तीर्थमें गङ्गा-स्नान और

* नमः कोलेशवाताय खरासुरविवानिने।
हलायुध नमस्तेऽस्तु मुसलाखाय ने नमः॥
नमः सौन्दर्यस्वरूपाय तालचिह्नाय नमो नमः॥
(गण०, मधुरा० २४। ९९)

देवताओंका पूजन करेंगे, ब्राह्मणोंको दान देंगे, उन्हें भोजन करायेंगे और विष्णुभगवान्की पूजा करेंगे, इस भूतलपर छनका जीवन सफल होगा । वे देवताओंके लोकमें जायेंगे । अथवा यदि उनके मनमें कोई अभीष्ट होगा तो उस अभीष्टको ही प्राप्त कर सकेंगे ॥ १०२-१०५ ॥

इस प्रकार श्रीगण्ठ-सहितामें श्रीमद्भुद्धारामण्डके अन्तर्गत नारद-बहुवाद-संबादमें 'कोलदैत्यका वध'

नामक चौचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पचीसवाँ अध्याय

मथुरापुरीका माहात्म्य एवं मथुराखण्डका उपसंहार

बहुलाभ्यने पूछा—मूने ! जहाँ बल्लामजी अकस्मात् पहुँच गये, वहाँ ऐसा उत्तम सीर्थ सुना गया । अहो ! मथुरापुरी अन्य है, जहाँ वे नित्य निवास करते हैं । मथुराका देवता कौन है ? क्षत्र (द्वारपाल) कौन है ? उसकी रक्षा कौन करता है ? चार कौन है ? मन्त्रिप्रवर कौन है ? और किन-किन लोगोंके द्वारा वहाँकी भूमिका संबन किया गया है ? ॥ १-२ ॥

नारदजीने कहा—राजन् । साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण हरि स्वयं ही मथुराके स्वामी या देवता है । भगवान् केशवदेव वहाँके क्षेत्रनाशक हैं । साक्षात् भगवान् ने कपिल नामक ब्राह्मणको अपनी बाराहमूर्ति प्रदान की थी । कपिलने प्रठन होकर वह मूर्ति देवराज इन्द्रको दे दी । फिर समस्त लोकोंको रुलानेवाला राक्षसराज रावण देवताओंको जीतकर उस मूर्तिका स्वामन करके उसे पुष्टकविमानपर रखकर लहूमें ले आया और उसकी पूजा करने लगा । मिथिलेश्वर ! लद्धनन्तर राघवेन्द्र श्रीराम लहूपर विजय प्राप्त करके भगवान् बाराहको प्रथल्पूर्वक अयोध्यापुरीमें ले आये और वहाँ उनकी अवधान करने रहे । तत्प्रथात् शत्रुघ्न श्रीरामकी स्तुति करके उनकी आशामें उस बाराह-विग्रहको प्रथल्पूर्वक मथुरापुरी मथुरामें ले आये और वहाँ बाराह भगवान्की स्वापना करके उनको प्रणाम किया । फिर समस्त मथुरावालियोंने उन वरदायक भगवान्की मेवा-पूजा प्रारम्भ की । वे ही ये साक्षात् कपिल-बाराह मथुरापुरीमें श्रेष्ठ मन्त्रा माने गये हैं । 'भूतेश्वर' नामसे प्रसिद्ध भगवान् शिव मथुराके द्वारपाल या क्षेत्रपाल हैं । वे पवित्रियोंको दण्ड देकर भक्तिके लिये उन्हें मन्त्रोपदेश करते हैं । महाविद्यास्वरूपा दुर्गम कह दूर करनेवाली चण्डिकादेवी दुर्गा सिंहपर आङ्कड हो सदा मथुरापुरीकी रक्षा करती है । मैं (नारद) ही मथुराका चार (शुभचर) हूँ और इश्वर-उत्थर लोगोंपर हाहि रखकर सबकी

तदनन्तर बल्लाम सबके साथ अपनी पुरी मथुराको चले गये । कोल राक्षसका वध और गङ्गाके जलमें स्नान करके उन्होंने लोकसंग्रहके लिये प्रायश्चित्त किया था । जो मनुष्य बलके देवता बल्लामकी इस कथाको सुनेंगे, वे सब पापोंसे सुक्त होकर परमगतिको प्राप्त होंगे ॥ १०६-१०७ ॥

४

वात महात्मा श्रीकृष्णको बताता हूँ । विदेहराज ! नगरके मध्यभागमें स्थित शुभदायिनी कक्षणामयी मथुरादेवी समस्त भूत्वे लोगोंको अब प्रदान करती हैं । मथुरामें मरे हुए लोगोंको विमानोद्धारा ले जानेके लिये इयाम अङ्गवाले चार भुजाधारी श्रीकृष्णार्थद आते-जाते रहते हैं ॥ ३-१३ ॥

महापुरी मथुरा, जिसके दर्शनमात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है, श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट हुई है । पूर्वकालमें ब्रह्माजीने मथुरामें आकर निराहार रहते हुए तौ दिव्य वर्णोंतक तपस्या की । उस समय वे परब्रह्म श्रीहरिके नामका जप करते थे, इससे उन्हे स्वायम्भुवमनु-जैसे प्रवीण पुत्रकी प्राप्ति हुई । नृपराज ! सतीपति देववर भूतेश मधुवनमें एक तौ दिव्य वर्षतक तप करके श्रीकृष्णकी कृपासे तत्काल मथुरापुरी और माशुर-मण्डलके क्षेत्रपाल हो गये । श्रीकृष्णके कृपा-प्रसादसे ही मैं मथुरा-मण्डलका चार बना हूँ और सदा भ्रमण करता रहता हूँ । इसी प्रकार 'दुर्गा' मथुरामें जाती हैं और निश्चय ही श्रीकृष्णकी सेवा करती हैं । इन्द्रने मथुरामें तप करके इन्द्रपद, सूर्यने तप करके वैवस्त मनु-जैसा पुत्र, कुवेरने अक्षयनिधि, वर्षणने पाश और शुद्धने मधुवनमें तप करके लम्बक-मधुवपद प्राप्त किया था । यही तपस्या करके अम्बरीजने मोक्ष पाया, रामने अक्षय शक्ति एव लक्षणासुरसे विजय प्राप्त की । राजा रघुने लिद्धि पायी तथा इसी मधुवनमें तप करके चित्रकेतुने भी अभीष्ट फल प्राप्त किया । यहींके मुन्दर मधुवनमें तप करके अत्यन्त बलिष्ठ हुए महादुर मधुने माधवमालमें मधुसूदन माधवके साथ युद्धभूमिमें जाकर युद्ध किया । सहस्रियोंने मथुरामें आकर यही तपस्या करके योगसिद्धि प्राप्त की । पूर्वकालमें अन्य श्रृंघियोंने भी यहाँ तप करके सर्वतोमुखी सफलता पायी थी और गोकर्ण नामक वैष्णव भी यहाँ तप करके महानिधि उपलब्ध की थी । इसी शृंग मधुवनमें लोकरावण राजने

तपस्या करके स्वर्गके देवताओंपर विजय पायी तथा रक्षासोंको अधिकारी बनाकर मन्दिर-निर्माण करके लक्ष्मीमें प्रतिष्ठित हो वही शोभा प्राप्त की । विश्वेश्वर ! वही सुन्दर मधुवनमें तपस्या करके इस्तिनापुरके राजा शंतनुने अस्त्वंत साधुशिरोमणि तथा तत्त्वार्थसाकारके कर्णधार भीष्मको पुत्रस्वप्नमें प्राप्त किया ॥ १४-२३ ॥

मधुलाल्घवने पूछा—देवर्षि-शिरोमणे ! मधुराका चौहान्य बताइये । वहाँ निवास करनेवाले सज्जनोंको किस फलकी प्राप्ति बतायी गयी है ? ॥ २४ ॥

नारदजीने कहा—राजन् ! आदियुगमें भगवान् वराहने महालाल्घवके जलमें, जहाँ वही ऊँची लहरें उठ रही थीं, इवी हुई पृथ्वीको, जैसे हाथी देंडसे कमलको उठा ले, उसी प्रकार स्वयं अपनी दाढ़ते उठाकर जब जलके ऊपर स्थापित किया, तब मधुराके माहात्म्यका इस प्रकार वर्णन किया था । यदि मनुष्य ‘मधुराका’ नाम ले ले तो उसे भगवन्नामोवारणका फल मिलता है । यदि वह मधुराका नाम छुन ले तो श्रीकृष्णके कथा-अवणका फल पाता है । मधुराका स्पर्श प्राप्त करके मनुष्य साधु-संतोंके स्पर्शका फल पाता है । मधुरामें रहकर किसी भी गन्धको ग्रहण करनेवाला मानव भगवान्नामोपर चढ़ी हुई तुलसीके पत्रकी सुगन्ध लेनेका फल प्राप्त करता है । मधुराका दर्शन करनेवाला मानव श्रीहरिके दर्शनका फल पाता है । स्वतः किया हुआ आहार भी वहाँ भगवान् लक्ष्मीपतिके नैवेद्य—प्रसाद-भक्षणका फल देता है । दोनो बैंहोंसे वहाँ कोई भी कार्य करके श्रीहरिकी सेवा करनेका फल पाता है और वहाँ धूमने-फिरनेवाला भी पग-पगपर तीर्थयात्राके फलका भागी होता है ॥ २५-२७ ॥

राजन् ! सुनो । जो राजाधिराजोंका इनन करनेवाला, अपने संगोष्ठका धातक तथा तीनों लोकोंको नष्ट करनेके लिये प्रयत्नशील होता है, ऐसा महाराजी भी मधुरामें निवास करनेसे योगीश्वरोंकी गतिको प्राप्त होता है । उन वैरोंको विकार है, जो कभी मधुवनमें नहीं गये । उन नेत्रोंको विकार है, जो कभी मधुराका दर्शन नहीं कर सके । विश्वेश्वर ! उन कानोंको विकार है, जो मधुराका नाम नहीं सुन पाते और उस वाणीको भी विकार है, जो कभी शोषण-सा भी मधुराका नाम नहीं ले सकी । विदेहराज ।

इस प्रकार श्रीगंत-संहितामें श्रीमधुरालण्डके अन्तर्भूत नारद-मधुलाल्घव-संवादमें श्रीमधुर-

माहात्म्य-नामक एवीश्वरों अव्याप्त पूजा दुष्ट ॥ २५ ॥

श्रीमधुरालण्ड सम्पूर्ण

मधुरामें चौहान्य करोड़ बन हैं, वहाँ सीधोंका निवास है । इन तीर्थोंमेंसे प्रत्येक मोक्षदात्यक है । यैं मधुराका नामोवारण करता हूँ और साक्षात् मधुराको प्रणाम करता हूँ । जिसमें असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति परिष्वर्तनम देवता गोलेकनाथ साक्षात् श्रीकृष्णनन्दने स्वयं अवतार किया, उस मधुरापुरीको नमस्कार है । दूसरी पुरियोंमें वह रक्षा है । जिस मधुराका नाम तत्काल पापोंका नाश कर देता है, जिसके नामोवारण करनेवालेको सब प्रकारकी भुक्तियाँ सुलभ हैं तथा जिसकी गले-नालीमें मुक्ति मिलती है, उस मधुराको इन्हीं विशेषताओंके कारण विद्वान् पुरुष भेदभाव मानते हैं । यद्यपि संसारमें काशी आदि पुरियों भी मोक्षदायिनी हैं, तथापि उन सभ्यमें मधुरा ही खन्न है, जो जन्म, मौजूदीत्र, मृत्यु और दाह-संस्कारोंहारा मनुष्योंको चार प्रकारकी मुक्ति प्रदान करती है । जो सब पुरियोंकी इंद्रवरी, वैदेहवरी, तीर्थेवरी, यह तथा तपकी निधीवरी, मोक्षदायिनी तथा परम धर्म-धुरधरा है, मधुवनमें उस श्रीकृष्ण-पुरी मधुराको मैं नमस्कार करता हूँ । वैदेहराजेन्द्र ! जो लोग एकमात्र भगवान् श्रीकृष्णमें विद्व लगाकर संयम और नियमपूर्वक जहाँ-कहीं भी रहते हुए, मधुपुरीके इस माहात्म्यको सुनते हैं, वे मधुराकी परिक्रमाके फलको प्राप्त करते हैं—इसमें संशय नहीं है ॥ २८-३५ ॥

विदेहराज ! जो लोग इस मधुरालण्डको सब ओर सुनते, गते और पढ़ते हैं, उनको वहाँ सब प्रकारकी उमुदि और सिद्धियाँ सदा स्वभावसे ही प्राप्त होती रहती हैं । जो बहुत वैभवकी इच्छा करनेवाले लोग नियमपूर्वक रहकर इस मधुरालण्डका इक्कीस वार अवण करते हैं, उनके धर और द्वारको हाथीके कर्णतालोंने प्रताङ्गित भ्रमरावली अलंकृत करती है । इसको पढ़ने और सुननेवाला ब्रह्मण विद्वान् होता है, राजकुमार मुद्रमें विजयी होता है, वैद्य निधियोंका स्वामी होता है तथा शूद्र भी शूद्र—नियमल हो जाता है । क्षियाँ हैं या पुरुष—इसे निकटसे सुननेवालोंके अस्त्वंत दुर्लभ मनोरथ भी पूर्ण हो जाते हैं । जो विना किसी कायनके भगवान्में मन लगाकर इस भूतलभर भक्ति-भावसे इस मधुरा-माहात्म्य अथवा मधुरालण्डको सुनता है, वह विज्ञोपर विजय पाकर, स्वर्गलोकके अधिपतियोंको लोंबकर सीधे गोलेकष्मामें चला जाता है ॥ ३६-३९ ॥

भीगजेशाय नमः

द्वारकाखण्ड

पहला अध्याय

जरासंधका विशाल सेनाके साथ मथुरापर आक्रमण; श्रीकृष्ण और बलरामद्वारा उसकी सेनाका संहार; मगधराजकी पराजय तथा श्रीकृष्ण-बलरामका मथुरामें विजयी होकर लौटना

कृष्णाय वासुदेवाय देववीनन्दनाय च ।
तत्परोपकृताराय गोविन्दाय नमो नमः ॥ १ ॥

जो वसुदेवके पुत्र और देवकीनन्दन होनेके साथ ही नन्दगोपके भी कुमार हैं, उन सम्बिदानन्दस्वरूप गोविन्दको वारंबार नमस्कार है ॥ १ ॥

बहुलाश्वने पृष्ठा—ब्रह्मन् ! मैंने आपके मुखसे अद्भुत मथुराखण्डकी कथा सुनी । अब मुझे श्रीकृष्ण-चरितामृतसे पूर्ण द्वारकाखण्ड सुनाइये । श्रीरामलभ श्रीकृष्णके कितने विचाह, कितने पुत्र और कितने पौत्र हुए ? महामते ! उनके मथुराको छोड़कर द्वारकामें निवास करनेका क्या कारण है ? ये सब बातें बताइये ॥ २-२ ॥

श्रीनारदजीने कहा—मैथिलेश्वर ! महाबली कंसके मारे जानेपर उसकी दो राणियों—भृति और प्राति वहे दुःखसे जरासंधके पर गयीं । उनके मृत्युसे कंसके मरणका वृत्तान्त सुनवर जरापुत्र महाबली जरासंध अत्यन्त कुपित हो इस भूतलको यदुविशिष्योंसे दूर्घट कर देनेके लिये उच्चत हो गया । राजन् ! उस बलवान् नरेशने नेहेस अक्षौहिणी सेना साथ लेकर मथुरापुरीपर धावा बोल दिया । महासागरके क्षमान गर्जना करनेवाली उसकी सेना और भयमें व्याकुल हुई अपनी नगरीको देखकर साक्षात् भगवान् ने उभामें वल्देव-जीसे कहा ॥ ४ ३ ॥

‘भैया बलवान् ! इस मगधराज जरासंधकी सारी सेनाको तो निस्संदेह नष्ट कर देना चाहिये, किंतु इस मगधनरेशको तो नहीं मरना चाहिये, जिससे वह पुनः सेना जुटाकर ले आनेका उद्दोग करे । जरासंधको ही निमित्त बनाकर पृथ्वीके राजाओंके रूपमें स्थित पृथ्वीके सारे भारको यहीं रहकर हर लौंगा और साथु पुरुषोंका प्रिय करौंगा’ ॥ ८-९ ॥

राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार बात कर ही रहे

ये कि बैकुण्ठसे सबके देखते-देखते दो सुन्दर रथ उत्तर आये । उन रथोंपर तत्काल आस्ट हो महाबली बलराम और श्रीकृष्ण यदुविशिष्योंकी भोड़ी-सी सेना साथ लेकर दुरंत ही नगरसे बाहर निकले । आकाशमें देवताओंके देखते-देखते भूतलपर यादवों और मागधोंमें अद्भुत रोमाञ्चकारी एवं त्रुमुल युद्ध होने लगा । पहले महाबली मगधराज रथपर आस्ट हो दस अक्षौहिणी सेनाके साथ भगवान् श्रीकृष्ण-के सामने आकर लड़ने लगा । धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन जरासंध-की सहायताके लिये पाँच अक्षौहिणी सेनाके साथ आकर यादवोंके साथ युद्ध करने लगा । राजन् ! विन्द्यदेशका बलवान् राजा पाँच अक्षौहिणी सेनाके साथ तथा बङ्गदेश-का महाबली नरेश तीन अक्षौहिणी सेनाके साथ उस महायुद्धमें जरासंधकी ओरमें सम्मिलित हुआ । मिथिलेश्वर ! इसी तरह दूसरे राजा भी जो जरासंधके बड़वर्ती थे, प्राण-पनमें उसकी सहायता कर रहे थे ॥ १०—१६ ॥

शत्रुसेनामें व्यास आकाशमें बाणोंका अन्धकार फैल जाने-पर शार्ङ्गधन्वा श्रीकृष्णने अपने शार्ङ्गधनुषकी टंकार-ध्वनि प्रारम्भ की । उस टंकारमें सात लोकों और सात पातालों-सहित सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा, दिग्गज विनालित हो उठे, तारे ढूटने लगे और सारा भूस्तमण्डल कोपने लगा । शत्रुओंका सारा सैन्यमण्डल उसी क्षण बहरा-सा हो गया, थोड़े युद्धमण्डलसे उछलकर भागने लगे तथा हाथियोंने भी अपना मुँह फेर लिया । जरासंधकी सारी सेना उस टंकारसे भयविहृत हो भाग चली और उल्टी दिशामें दो क्रोस जाकर किर बहौं आयी । इस प्रकार विनुत्तमी पीली प्रभासे त्रुक्त एवं कान्तिमान् शार्ङ्गधनुषकी टंकार फैलाकर श्रीहरिने अपने बाणसमूहोंकी बषासे जरासंधकी सारी सेनाको आच्छादित कर दिया ॥ १७ - २१ ॥

राजन् ! शार्ङ्गधन्वाके बाणोंसे शत्रुसेनाके रथ चूर-चूर

हो गये, पहिये दूक-दूक होकर गिर पड़े तथा रथी और सारथि भी मारे जाकर भूमिपर सदाके लिये सो गये। गजारोहियोंके साथ चलनेवाले हाथी उनके बाणोंसे दो दूक हो गये। सवारोंसहित घोड़े बाणोंद्वारा गर्दन कट जानेसे धराशायी हो गये। इसी प्रकार उस महायुद्धमें बद्रस्थल और मस्तक छिप हो जानेसे पैदल योद्धा धराशायी हो गये। उनके कबचोंकी बजियों उड़ गयी थीं। वे निस्संदेह कालके गालमें चले गये। राजन्! जैसे फूटे हुए चर्तन कोई अघोमुख और कोई ऊर्ध्वमुख होकर पड़े दिखायी देते हैं, उसी प्रकार जिनके शरीर कट गये थे, वे राजकुमार उस समराङ्गणमें कोई ऊर्ध्वमुख और कोई अघोमुख होकर पड़े हुए थे। एक ही क्षणमें उस युद्धभूमिमें सौ कोस लंबी सूनकी नदी बह चली, जो अत्यन्त दुर्गम थी। हाथी उसमें ग्राहके समान जान पड़ते थे। ऊँटों और गदहोंके बड़े आदि कच्छपके समान प्रतीत होते थे। रथ शिशुमारों (खुंतों)का, केश सेवारोंका तथा कटी हुई भुजाएँ सपोका भ्रम उत्पन्न करती थीं। हाथ मछलियाँ तथा मुकुटोंके रस्त, हार एवं कुण्डल कंकड़-पत्थर जान पड़ते थे। अख-शश्व तीप, छन शङ्ख तथा चामर और ध्वजा बालू प्रतीत होते थे। रथके पहिये भैंवरका भ्रम उत्पन्न कर रहे थे और दोनों ओरकी सेनाएँ उस दधिर-सरिताके दोनों तट थीं। इस तरह वह शतवोजन-विस्तृत नदी बैतरणीके समान भयंकर जान पड़ने लगी। प्रमथ, भैंव, भूत, वेताल और योगिनियाँ अद्वाहस करती हुई रणभूमिमें नाचने लगीं। नृपेश्वर! वे भूत-वेताल आदि खापर-में लें-लेकर निरन्तर रक्त पी रहे थे और भगवान् शंकरकी मुण्डमाला बनानेके लिये कटे हुए सिरोंका लंग्रह कर रहे थे। सैकड़ों डाकिनियोंसे धिरी हुई भद्रकाली बहाँका गरम-गरम रक्त पीती हुई अद्वाहस करने लगी। विद्याधरियाँ, स्वर्गवासिनी गन्धर्वकन्याएँ तथा अप्सराएँ क्षत्रियधर्ममें स्थित होकर वीरगति पानेवाले देवस्तपधारी वीरोंको अपने पति के रूपमें बरण कर रही थीं। आकाशमें उन वीरोंको पकड़कर पति बनानेके नियम वे आपसमें कलह करने लगीं। वे कहतीं—थे तो मेरे अनुरूप हैं, अतः मैं ही इनका बरण करूँगी। इस प्रकार उनमें आसक्त-चित्त हुई मुखालाएँ परस्पर विवादपर उत्तर आयी थीं। कुछ धर्मपरायण वीर समराङ्गणसे तनिक भी विचलित न होनेके कारण मार्त्तण्ड-मण्डलका भेदन करके सीधे भगवान् विष्णुके दिव्य-शास्त्रमें चले गये। शेष सेनाको त्रिलोकीका बल धारण करने-

बाले बलदेवजी कुपित हो इस्ते खींचकर मुसल्ले मारने लगे। इस प्रकार जरासंधकी सेनाका सब ओरसे संहार हो जानेपर युग्माधन, विन्ध्यराज तथा बङ्गनरेश—सब भयभीत हो रणभूमिसे इधर-उधर भाग गये॥ २२—३७॥

राजन्! तब दस इजार हाथियोंके समान बलशाली महापराक्रमी जरासंध रथपर आरूढ़ हो बलदेवजीके सामने आया। यदुश्रेष्ठ बलरामने जरासंधके सुन्दर रथको हल्लग्रभागसे खींचकर मुसल्ले चोटसे चूर्ण कर डाल। घोड़े और सारथिके सारे जानेपर रथीन हुए जरासंधने सारे शङ्ख-समूहको त्यागकर बलदेवको दोनों हाथोंसे पकड़ लिया। फिर उन दोनोंमें रणभूमिके भीतर घोर युद्ध होने लगा। मैथिल! आकाशमें खड़े देवताओं तथा भूतल्लर विश्वमान मनुष्योंके देखते-देखते वे दोनों महाबली दोर मस्तकमें दो सिंहोंके समान जूझने लगे। वे छातीसे, मस्तकसे, भुजाओंसे चोट करते हुए पृथक्-पृथक् पैरोंको पकड़कर एक-दूसरेको गिरानेकी चेष्टा करते थे। उन दोनोंके युद्धसे बहाँका सारा भूखण्डमण्डल खुदकर गड्ढेके समान हो गया। राजन्! उस समय भूमि सहसा बटखेईकी तरह दो घड़ीतक कॉपती रही। तब यदुश्रेष्ठ बलरामने अपने बाहुदण्डोंसे जरासंधको पकड़कर इस प्रकार पृथ्वीपर दे मारा, मानो किसी बालकने कमण्डल पटक दिया हो। बलरामने जरासंधके ऊपर चढ़कर उस शशुको मार डालनेके लिये क्रोधसे भरकर घोर मुसल हाथमें लिया। यह देख परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णने उन्हें तत्काल रोक दिया। तब यदु-कुल-तिलक बलरामने उसे छोड़ दिया। जरासंधने लजित होकर तपस्याके लिये जानेका विचार किया, परंतु अपने मुख्य मन्त्रियोंके मना करनेपर मगधराज तपस्याके लिये न जाकर मगधदेशको ही लौट गया। इस प्रकार मधुसूदन माधवने जरासंधपर विजय पायी॥ ३८-४८॥

युद्धमें जो कुछ भी धन-वित्त हाथ लगा, वह सब सुखावह वैभव साथ लेकर, यादवोंको आगे करके, बलदेवसहित परिपूर्णतम साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण सूतों, मागधीं और बन्दीजनोंके मुखसे विजय-गान सुनते हुए, शङ्खचनि, दुन्दुभिनाद तथा वेद-मन्त्रोंके भारी धोषके साथ मधुरापुरीमें प्रविष्ट हुए। मार्गमें माझलिक वस्तुओं, खोलों और फूलोंसे उनकी पूजा होती थी। प्रत्येक द्वारपर मङ्गल-कलशसे मुशोभित पुरीका शोभा देखते हुए पीताम्बरधारी, द्याम-सुन्दर-विग्रह, शुभाङ्ग-द्योभित, चमकीले किरीट, अङ्गद और

कुण्ठलोंसे उद्धासित, शार्ङ्ग आदि अङ्ग-शङ्कोंसे अस्त्रण करनेवाले भगवान् गद्धब्ज, तालब्ज बलरामके साथ, मुखसे भन्दहासकी छटा विस्वेरते हुए राजा उप्रसेनके

पास जा, उन्हें सारी धन-सामग्री भेट की। उस समय चम्पल शोड़ोंसे जुता हुआ उनका रथ उरीस हो रहा था तथा देवगण उनकी पूजा-प्रशंसा कर रहे थे ॥ ४९-५३ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ण-संहितामें द्वारकालयके अन्तर्गत नारद-बहुलाद्व-संवादमें 'जरासंध-पराजय'

नामक घटा अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

मथुरापर जरासंध और कालयवनका आक्रमण; भगवान्‌का युद्ध छोड़कर एक गुफामें जाना और वहाँ गये हुए कालयवनको मुचुकुन्दके दृष्टिपातसे दग्ध कराना; मुचुकुन्दको वर देकर बदरिकाश्रमकी ओर भेजना और स्वयं म्लेच्छ-सेनाका संहार करके जरासंधके सामनेसे भागकर श्रीकृष्ण-बलरामका प्रवर्षणगिरि होते हुए द्वारका पहुँचना और जरासंधका उस पर्वतको जलाकर मगधको लौट जाना

जारदारी कहते हैं—राजन् ! जरासंध पुनः उतनी ही अझौहिणी सेना लेकर शीघ्र ही यादवोंके साथ युद्धके लिये आ गया, किन्तु श्रीकृष्णसे वह फिर पराजित हो गया । श्रीकृष्णके प्रभावसे समस्त यादव अभ्यदयको प्राप्त हुए । उन्हें धनुष और हाथी आदिके बलसे मदा शत्रुओंको लूटनेका साहस हो गया ॥ १-२ ॥

राजन् ! जब साहस प्राप्त हो गया, तब बालक और पनिहारिनें भी बिना युद्धके ही शत्रुओंकी सम्पत्तिका अपहरण करने लगीं । शत्रुओंके डब्बके अपहरणका अवसर देखते हुए मथुराके बलकोत्ते समस्त नागरिक वह इष्टको प्राप्त हुए । इस प्रकार सब्रह बार अपनी सेनाका संहार कराकर जरासंध परास्त हुआ । तदनन्तर अठारहवीं बार भी उसने संग्राममें आनेका विचार किया । हस्ती समय मेरी प्रेरणासे महाबली कालयवनने एक करोड़ म्लेच्छोंकी सेनाको साथ लेकर कोधपूर्वक मथुरापर चेरा ढाल दिया । म्लेच्छोंकी सेना देखकर, अपने नगरको भयचिह्न जान, दोनों ओरसे आनेवाले भवका विचार करके श्रीकृष्ण बलरामके साथ विनिष्ट हो गये ॥ ३-७ ॥

अपने सजातीय बन्धुओंकी रक्षाके लिये माधवने भयकर गर्जना करनेवाले समुद्रके भीतर एक ही रातमें द्वारका-मुर्गका निर्माण कराया, जहाँ विश्वकर्मने आठों दिव्यलोकीसिद्धियाँ निर्मित कीं तथा मोक्षकी इच्छा रखनेवाले साथकोंको जहाँ बैकृष्णकी तारी सम्पत्तिका दर्शन होता

है । भिश्मेश्वर ! श्रीहरि 'योगदाक्षिण्यसे समस्त आत्मीयजनोंको द्वारकाद्वारमें पहुँचाकर, बलरामजीकी आशा ले मथुरा नगरसे बिना अङ्ग-शङ्कोंके ही निकले । मैंने जो पहचान बतायी थी, उसके अनुसार उस दृष्ट कालयवनने श्रीहरिको पहचान लिया और उद्दे बिना अङ्ग-शङ्कोंके देखकर स्वयं भी आशुभ त्यागकर उसने युद्ध करनेके लिये पैदल ही आया । वे युद्धसे विमुख होकर भागने लगे । जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है, उन्हों श्रीहरिको पकड़नेके लिये वह अपने सैनिकोंके देखते-देखते उनका पीछा करने लगा ॥ ८-१२ ॥

माधव अपने शरीरको एक ही हाथ आगे दिखाते हुए भागते भागते दूर चले गये और शीघ्र ही स्थामलाचलकी कन्दरामें धुस गये । मांधाताके बड़े पुत्र मुचुकुन्द उस गुहामें शवम चरते थे । उन्होंने पूर्वकालमें असुरामें देवताओंकी रक्षा की थी । नरेश्वर ! उस समय देवतामें तस्य रहनेके कारण वे दिन-रात सो नहीं पा रहे थे । कार्य सिद्ध हो जानेपर सब देवताओंने प्रसन्न होकर उन दृष्टेषुमें कहा ॥ १३-१५ ॥

'राजन् ! तुम्हारे मनमें जो कुछ हो, उसको बरदानके रूपमें मौग लो ।' तब राजेन्द्र मुचुकुन्दने देवताओंको प्रणाम करके उसने कहा—'मैं अच्छी तरह सोना चाहता हूँ । बोकर उठनेपर मुझे साक्षात् श्रीहरिका दर्शन हो । जो हत-चेतन पुरुष बीचमें मुझे जगा दे, वह मेरी हाथि पहुते ही तस्काल भज हो जाय ।' देवताओंने 'तथातु' कहकर

उन्हें उनका अभिलिखित वर दे दिया । तब राजा मुचुकुन्दने पूर्वकालके सत्ययुगमें शश्यन किया ॥ १६—१८ ॥

भगवान्‌के पीछे-पीछे कालयत्यवनने भी उस गुफामें प्रवेश किया और मुचुकुन्दको पीताम्बर ओढ़कर सोया हुआ श्रीकृष्ण ही समझकर क्रोधसे भरे हुए उस महादुष्ट यवनने तुरंत ही उनके ऊपर लातसे प्रहार किया । मुचुकुन्द सहसा उठ बैठे और उन्होंने धीरे-धीरे औंखें लोलकर चारों ओर दृष्टिपात किया । उस समय कालयत्यवन उन्हें पास ही लड़ा दिखायी दिया । मैथिल । रोषसे भरे हुए नरेशकी दृष्टि पङ्कते ही कालयत्यवन अपने ही देहसे उत्पन्न आगकी ज्वालासे उसी क्षण जलकर भस्त हो गया ॥ १९—२१ ॥

यवनके भस्तीभूत हो जानेपर साक्षात् परिपूर्णतम भगवान्‌ने बुद्धिमान् मुचुकुन्दको अपने स्वरूपका दर्शन कराया । करोड़ों सूर्योंके समान जाज्वल्यमान ज्योतिर्भण्डलमय भगवान् घड़े थे । उनके मस्तकपर किरीट, कानोंमें कुण्डल, बाँहोंमें अङ्गूष्ठ और पैरोंमें नूपुर उद्दीप हो रहे थे । उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित था । वे चार भुजाओंसे सम्पन्न थे । उनके नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान विशाल थे और उनकी श्रीबामें बनमाला लटक रही थी । वे अपने लावण्यसे करोड़ों काम-देवोंको लञ्जित कर रहे थे । उनकी कान्ति काले मेवके समान श्याम थी । उन्हें देखकर राजा हर्षसे उत्सुकित हो उठकर खड़े हो गये और हाथ जोड़कर उन्हें परिपूर्णतम भगवान् जानकर भक्तिभावसे प्रणाम किया ॥ २२—२५ ॥

मुचुकुन्दने कहा—जो बसुदेवपुत्र और देवकी-नन्दन होते हुए भी श्रीनन्दगोपके कुमार हैं, उन सचिदानन्द-स्वरूप गोविन्दको बारंबार नमस्कार है । जिनकी नाभिसे ब्रह्माण्ड-कमलकी उत्पत्ति हुई है, जो कमलकी भालासे अलंकृत हैं, जिनके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल हैं तथा चरण भी अपनी शोभासे कमलोंको तिरस्कृत करते हैं, उन भगवान्को बारंबार नमस्कार है । शुद्ध-शुद्ध परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णको नमस्कार है । प्रणतजनोंके कलेशका नाश करनेवाले गोविन्दको बारंबार नमस्कार है । जिनकी सहस्रों मूर्तियाँ हैं, जो सहस्रों चरण, नेत्र, मल्लक, ऊरु और भुजा धारण करनेवाले हैं, जिनके सहस्रों नाम हैं तथा जो सहस्र कोटि युगोंको धारण करते हैं, उन सनातन पुरुष भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है । हरे ! इस भूतव्यपर भेरे समान कोई पातकी नहीं है और आपके समान पापहारी

भी दूसरा कोई नहीं है—यह जानकर जगाज्ञाय देव ! आपकी बैसी हृच्छा हो, बैसी ही कृपा मेरे ऊपर कीजिये ॥ २६—३० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! मुचुकुन्दके इस प्रकार सुति करनेपर साक्षात् परमानन्दस्वरूप श्रीहरिने उन्हें निरुण भक्त जानकर गम्भीर बाणीमें कहा ॥ ३१ ॥

श्रीभगवान् बोले—राजसिंह ! तुम धन्य हो तथा निरपेक्ष दिव्य भक्तिभावसे भरी हुई तुम्हारी विमल बुद्धि भी धन्य है । तुम आज ही मेरे धाम बदरिकाश्रमको चले जाओ । वहीं तपस्या करके दूसरे जन्ममें श्रेष्ठ ब्राह्मण होओगे । महाराज ! ब्राह्मण-शारीरसे प्रेमलक्षणा-भक्ति करके तुम प्रकृतिसे परे मेरे दिव्य धाममें पहुँच जाओगे, जहाँसे फिर यहाँ लौटना नहीं होता है ॥ ३२—३४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार श्रीहरिकी आज्ञा पाकर, पुनः उनकी स्तुति, बन्दना और परिक्रमा करके, नतमस्तक पबं श्रीकृष्णप्रेमसे विहळ हुए मुचुकुन्द उस गुहादुर्गसे बाहर निकले । द्वापरमें छोटी आकृतिवाले मनुष्य कई ताढ़ ऊँचे राजा मुचुकुन्दको देखकर मार्गमें भयभीत हो इधर-उधर भागने लगते थे । ‘मत डरो ! मत डरो !’— इस प्रकार अभयदान देते हुए मुचुकुन्द उत्तर दिशाको चले गये । इस तरह उन बुद्धिमान् मुचुकुन्दको बरदान देकर भगवान् पुनः म्लेच्छोंसे धिरी हुई मथुरामें आये और सारी म्लेच्छसेनाका संहार करके बलपूर्वक उसका धन छीन लिया ॥ ३५—३८ ॥

* मुचुकुन्द उत्तात्र

कृष्णाय बसुदेवाय देवकीनन्दनाय च ।

नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ॥

नमः पक्षजनेत्राय नमस्ते पक्षजमालिने ।

नमः पक्षजनेत्राय नमस्ते पक्षजाङ्ग्रेये ॥

नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने ।

प्रणतलेशनाशय गोविन्दाय नमो नमः ॥

नमोऽस्त्रनन्दाय सहस्रान्ते सहस्रपावाक्षिरोलवाहवे ।

सहस्रनान्ते पुरुषाय शाश्वते सहस्रक्षेत्रीयुगधारिणे नमः ॥

हरे ग्रस्तमः पानकी नास्ति भूमौ तथा त्वस्मो नास्ति पापापहारी ।

श्वेते त्वं च मत्वा जगाज्ञाय देव यवेच्छा भवेत्से तथा मां कुरु त्वम् ॥

(गण्ठ०, द्वारका० २ । २६—३०)

तदनन्तर राजा जरासंघने पुनः शुद्ध करनेका विचार
मनमें लेकर मुहूर्तं बतानेवाले मागध ब्राह्मणोंको बुलवाया
और कहा—‘यदि मैं बासुदेवको जीतकर लौटूँगा तो हुम्हरे
भवीत रहकर सदा तुमलोगोंकी पूजा करूँगा । तबतक
है ब्राह्मणों । तुमलोग मेरे कारागारमें ठहरो । यदि मैं पराजित
हुआ तो तुम सबको मार डाकूँगा, इसमें संशय नहीं
है’ ॥ ४१-४२ ॥

ब्राह्मणोंसे यों कहकर महाबली राजा जरासंघ तेहस
अक्षोहिणी सेना साथ लेकर क्षीर्ण मथुरगमें आया । मागध
ब्राह्मणोंको बात सत्य करनेके लिये भगवान्ने अपनी टेक
छोड़ दी और मनुष्यकी सी नेष्टाको अपनाकर अपने नगरने
भयभीतकी भाँति परमदेव अल्पाम और श्रीकृष्ण पैदल ही
बढ़े जोरमें भागे । उन्हें भागते देख मगधराज अट्टहास

इस प्रकार श्रीगण-सीहितमें द्वारकालष्टके अन्तर्गत नाद-बुलाइ-संवादमें ‘द्वारकावास-कथन’
नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

बलदेवजीका रेवतीके भाथ विवाह

श्रीनारदजी कहते हैं—गजन् ! इस प्रकार मैंने
तुमसे भगवान्के द्वारकामें निवासना निराण बताया । अब
उन परमदेव-बन्धुओंके बिवाह आदिके भारे वृत्तान्त
सुनाऊँगा । मिथिलेश्वर ! तुम पहले बलदेवजीके विवाहका
वृत्तान्त सुनो, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाला तथा आयुकी
शुद्धि करनेवाला उत्तम साधन है ॥ १-२ ॥

सूर्यवंशमें महामनस्वी राजा आनंद हुए, जिनके नामसे
भयंकर गर्जना करनेवाले तमुद्रके तटपर आनंदेश बसा
हुआ था । राजा आनंदके एक रैवत नामका पुत्र हुआ,
जो गुणोंकी खान तथा चक्रवर्ती राजके लक्षणोंसे लगपन्न
था । उसने कुशस्थलीपुरीका निर्माण करके वहीं रहकर
राज्यशासन किया । रैवतके सौ पुत्र थे और रेवती नामवाली
एक कन्या । वह सदोत्तम चिरंजीवी तथा सुन्दर वर पानेकी
इच्छा रखती थी । एक दिन स्वर्णरत्नविभूगित रथपर
आस्त हो अपनी पुत्रीको भी उसीपर विठाकर राजा रैवत
भूमङ्गलकी परिकल्पा करने लगे । (इस यात्राका उद्देश्य था—
पुत्राके लिये योग्य वरकी खोज ।) अन्ततोगत्वा राजा ने
अपनी पुत्रीके लिये वरकी जिक्षाग्राके निमित्त योगबलमें भक्त-

करने लगा । वह ब्राह्मणोंके वचनोंका अनुसरण करके
रथसेनाके साथ उनका पीछा करने लगा । वे दोनों भाई
श्रीहरि दक्षिण दिशाकी ओर जाते हुए प्रवर्षणगिरिपर पहुँच
गये । उन दोनोंको उस पर्वतपर ही छिपे जान जरासंघने
लकड़ी जलाकर बहाँके जंगलमें आग लगा दी । प्रवर्षण-
गिरिके समस्त बनके भस्मीभूत हो जानेपर उस जलते हुए
पर्वतके ग्यारह योजन ऊचे विलगसे कृदकर वे दोनों देवेश्वर
शब्दुओंमें अलक्षित रहकर द्वारकामे जा पहुँचे । महाबली
बीर मगधराज उन दोनोंको दध हुआ जान अपनी विजयके
नगरे बजावाता हुआ मगधदेशको लौट गया ॥ ४२-४८ ॥

नरेश्वर ! उसने बड़ी भक्तिसे ब्राह्मणोंका पूजन किया
और कहा—‘ब्राह्मण जिसका सहायक है, उसकी पराजय
कैसे हो सकती है’ ॥ ४९ ॥

कारी ब्राह्मणोंमें पदार्पण किया और वहों ब्रह्माजीके चरणोंमें
शीशा स्फुकाया । उस समय ब्रह्माजीकी सभामें पूर्वचित्ति
नामकी अप्सराका गान हो रहा था, इसलिये वे एक क्षणतक
चुपचाप बैठे रहे । तदनन्तर ब्रह्माजीको एक चत्त हुआ
जानकर उनसे अपना अभिप्राय निवेदित किया ॥ ३-८ ॥

रैवत बोले—प्रभो ! आप परम पुराणपुरुष हैं ।
आपसे ही इन विश्वरूपी वृक्षका अङ्कुर उत्पन्न हुआ है ।
आप पूर्ण परमात्मा परमेश्वर हैं और अनेक पारमेष्ठ धार्ममें
मदा स्थित रहकर इस जगत्की सुष्ठि, पालन और संहर
किया करते हैं । देव ! वंद आपके मुख हैं, धर्म हृदय है
अधर्म वृक्षभाग है, मनु बुद्धि है, देवता अङ्ग हैं, असुर
पैर हैं और नारा संसार आपका शरीर है । आप सम्पूर्ण
विश्वको अपने हाथपर रखते हुए आँखेलकी भाँति प्रत्यक्ष
देखते हैं और जैसे सारथि रथको अमीष मार्गमें ले जाता
है, उसी प्रकार आप संसाररूपी रथकी तीनों गुणों अथवा
चिर्णात्मक विषयोंकी ओर ले जानेमें समर्थ हैं । आप
एकमात्र अद्वितीय हैं तथा जैसे मकड़ी अपने स्वरूपसे ही
एक जाल उत्पन्न करती और फिर उसे ग्रस लेती है, उसी

प्रकार आप जगतरूपी एक जाल छुन रहे हैं और समय आनेपर फिर इसे अपने-आपमें विलीन कर लेंगे। महेन्द्रका निवासस्थान—स्वर्गलोक आपके बशमें है; फिर सार्वभौम राज्य और योगसिद्धि आपके अधीन हैं, इसके लिये तो कहना ही क्या है। आप सदा पारमेष्ट्र वर्ष—ब्रह्मधाममें स्थित हैं। ऐसे अनन्तगुणशाली आप भूमा (महान् एवं सर्वव्यापी) पुरुषको नमस्कार है। विधे ! आप स्वयम्भू (स्वयं प्रकट हुए) हैं, तीनों लोकोंके पितामह (पिता के भाई पिता) हैं। अपने इसी प्रभावके कारण आपको 'सुरज्येष्ठ' कहा जाता है। आप सर्वदर्शी हैं, अतः मेरी इस पुत्रीके लिये आप शीघ्र ही मुझे कोई दिव्य, सर्वगुण-सम्पन्न तथा चिरञ्जीवी वर बताइये ॥ ९-१३ ॥

नारदजी कहते हैं—मैथिल ! यह सुनकर सर्वदर्शी भगवान् स्वयम्भू ब्रह्माने राजा रैवतसे हँसते हुए-से कहा ॥ १४ ॥

श्रीब्रह्माजी बोले—राजन् ! इस क्षणतक पृथ्वीपर महावली काल वही तेजीके साथ वीत चुका है। सत्ताईस चतुर्युंगियों समाप्त हो चुकी हैं। मर्यालेकमें तुम्हारे पुत्र, पौत्र और उनके भाई चन्द्रु नहीं रह गये हैं। उनके पुत्रोंके भी

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकास्पष्टके अन्तर्गत नारद-बहुलाद्व-संवादमें 'बलदेव-विवाहोत्सव'

नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

श्रीकृष्णको रुक्मिणीका संदेश; ब्राह्मणसहित श्रीकृष्णका कुण्डनपुरमें आगमन; कन्या और वरके अपने-अपने धरोंमें मङ्गलाचार; शिशुपालके साथ आयी हुई बारातको विदर्भराजका ठहरनेके लिये स्थान देना

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! अब श्रीकृष्ण-देवके विवाहका वृत्तान्त सुनो, जो सब पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यजनक तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चतुर्वर्ग-मय फल प्रदान करनेवाला है ॥ १ ॥

विदर्भदेशमें भीष्मक नामसे प्रसिद्ध एक प्रतापी राजा राज्य करते थे, जो कुण्डनपुरके स्थानी, श्रीसम्पन्न तथा सम्पूर्ण घर्मवेत्ताओंमें सबसे श्रेष्ठ थे। उनके रुक्मिणी नामक एक पुत्री हुई, जो लक्ष्मीजीका अंश थी। वह इतनी अधिक सुन्दरी थी कि उसके सामने करोड़ों चन्द्रमा फीके ल्याँ। वह सद्गुणरूपी आभूषणोंसे विभूषित थी। पहलेकी बात है,

पोते-नातियोंके गोत्रतक अब नहीं तुनायी देते हैं। अतः राजन् ! शीघ्र जाओ और सर्वश्रेष्ठ नररत्न सनातन पुरुष बलदेवजीको यह कन्यारत्न समर्पित करो। साक्षात् गोलोकके अधिष्ठित परिपूर्णतम प्रभु बलराम और केशव भूमिका भार उत्तारनेके लिये अवतीर्ण हुए हैं। असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिष्ठित होते हुए भी वे दोनों भक्तवत्सल हरि बसुदेवनन्दन होकर द्वारकामें यदुवंशियोंके साथ विराज रहे हैं ॥ १५-१९ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! यह सुनकर नृपश्रेष्ठ रैवत ब्रह्माजीको नमस्कार करके पुनः समृद्धिशाळिनी द्वारकापुरामें आये। बलदेवजीसे कन्याका विवाह करके दृष्टिमें विश्वकर्माका बनाया हुआ एक दिव्य रथ प्रदान किया, जो एक योजन विस्तृत था। उस रथमें एक सहस्र अश्व जुते हुए थे। मिथिलेश्वर ! ब्रह्माजीके दिये हुए दिव्य वस्त्र तथा रत्न देकर राजा रैवत मङ्गलमय बदरिकाश्रम-तीर्थमें तपस्या करनेके लिये चले गये। उस समय यदुपुरीके घर-घरमें महान् उत्सव मनाया गया। तदनन्तर भगवान् संकर्षण रानी रेवतीके साथ बड़ी शोभा पाने ल्ये। जो मनुष्य बलदेवजीके विवाहकी इस कथाको सुनेगा, वह सब पापोंसे मुक्त हो परमसिद्धिको प्राप्त होगा ॥ २०-२४ ॥

एक दिन मेरे मुँहसे श्रीहरिके अलौकिक गुणोंका वर्णन सुनकर वह राजकुमारी परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णको अपने अनुरूप पति मानने लगी। इसी तरह मेरे मुखसे रुक्मिणीके रूप और गुणोंका प्रीतिवर्धक वर्णन सुनकर श्रीहरिने उसे अपने योग्य पत्नी समझा और उसके साथ विवाह करनेका मनही-मन संकल्प किया। श्रीकृष्णके भावको जाननेवाले सर्वधर्मज्ञ राजा भीष्मकने भी अपनी उस कन्याको उन्हींके हाथमें देनेका निश्चय किया था; किंतु युवराज रुक्मीने यत्नपूर्वक पिताको रोका और श्रीकृष्णके शत्रु महाबीर शिशुपालको रुक्मिणीके योग्य वर माना ॥ २-७ ॥

मिथिलेश्वर ! इससे भीष्मकुमारी रुक्मिणीके चित्तमें वहा सेव हुआ और उसने एक ब्राह्मणको अपना दूत बनाकर महात्मा श्रीकृष्णके पास भेजा । ब्राह्मणदेवता जब दिव्य द्वारकापुरीमें पहुँचे, तब श्रीकृष्णने उनकी आवश्यकता की । उन्होंने वहाँ भोजन किया और श्रीकृष्णके मन्दिरमें ही आसन लगाकर विश्राम किया । फिर महात्मा श्रीकृष्णने उनसे खारा कुशलसमाचार पूछा । उनकी आशा पाकर ब्राह्मणने उन्हें उब बातें बतायी ॥ ८-१० ॥

[वे रुक्मिणीका पत्र सुनाते हुए बोले—] “स्वस्ति श्री ५ नित्यानन्द-महासागर श्रीमद्विष्णुपालरिपूर्ण वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण ! जोग लिली कुण्डिनपुरसे रुक्मिणीका कोटिशः प्रणाम स्वीकृत हो । यहाँ कुशल है, वहाँ भी कुशल चाहिये । आपे आपका पत्र आया और श्रीनारदजीकी बाणीसे भी यह शात हुआ कि आप प्रकृतिसे पैरे परमेश्वर हैं । यथापि सर्वशं होनेके नाते आप सब कुछ जानते हैं, तथापि मैं गुप्त बात आपको बता रही हूँ । महामते ! आप मुझे बीका भाग (अपना अंडा) जानें और स्वीकार करें । यदि चेदिराज शिशुपालने मेरा हाथ पकड़ लिया तो यह समझना चाहिये कि शिंहके लिये नियत बलिका भाग कोई मुग (कुत्ता, बिल्ली आदि) उठा ले गया । यदि आप ऐसा सोचते हों कि ‘तुम तो कुण्डिनपुरके दुर्गमें निवास करती हो, तुम्हें मैं किस प्रकार ब्याहकर लाऊँगा’, तो इसके विषयमें भी मुझ लंजिये । हरे ! यहोंकी कुल-प्रथाके अनुसार विवाहके एक दिन पूर्व राजकुमारा कुलदेवीके मन्दिरको जाता है । यह यात्रा बड़ी धूम-धामसे की जाती है । अतः मैं जहाँ कुलदेवीका मन्दिर है, वहाँपर आऊँगी । प्रभो ! वही आप मुझे अपने साथ ले लें ॥ ११-१५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! ब्राह्मणके मुखसे रुक्मिणीके उस अभिप्रायकी सुनकर सबको मान देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने अपने सारांथ दाशको बुलाकर कहा—“मेरा रथ शीघ्र ही जोतकर तैयार करो ।” पिछली रातमें वैकुण्ठसे प्राप्त हुए उस रथको, जो किंडिणी-जालसे युक्त और सुवर्ण एवं रसोंसे जटित था, शैव्य, सुग्रीव, मेषपुष्य और बलाहक नामके श्रेष्ठ अश्वोंसे जोतकर दाशकने सुसज्जित किया । घोड़े चक्षुल तथा चार चामरोंसे विभूषित थे । उससे युक्त, सहस्रों सूर्योंके समान् तेजस्वी उस दिव्य विशाल रथपर लक्ष्मीपति श्रीकृष्णने पहले सो अपने हाथसे उस ब्राह्मणदेवताको बैठाया और स्वयं सारथिकी

पीठपर अपने श्रीचरण-कमल रखकर वे रथपर आस्ट द्द हुए । राजन् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण विद्यमेशको चले । श्रीकृष्ण अकेले ही समस्त राजमण्डलके वीचसे राजकन्याको हर लाने गये हैं, इस समाचारसे बलरामजीको युद्धकी आशङ्का हुई, अतः वे भाईकी सहायता करनेके लिये समर्थ बलवाहनसे युक्त सम्मूर्य यादव-सेनाको लेकर विपक्षी राजाओंको जीतनेके लिये पीछेसे शीघ्रतापूर्वक गये ॥ १६-२२ ॥

प्रातःकाल होते-होते ब्राह्मण और रथके साथ भगवान् श्रीकृष्ण कुण्डिनपुरके उपवनमें जा पहुँचे । वहाँ एक इमलीके बृक्षके नीचे धोड़ीकी शूल विलाकर वे बैठ गये । उस स्थानसे ऊँठ दूधपर उत्तम कुण्डिनपुर दिव्यायी देता था । वह नगर बहुत बड़े दुर्गसे धिरा हुआ सात योजन गोलाकार भूमिपर बसा था । वहाँ जल्मे भगी हुई तीन परिखाएँ थीं, जो दुर्लक्ष्य और दुर्गम थीं । उनकी चौड़ाई सौ धनुष थीं । वे परिखाएँ (खाइयाँ) चौमासेनी नदीके समान जलसे भरी हुई थीं । दुर्गकी दीवार पचास हाथ ऊँची थी । नगरमें रमणीय अट्टालिकाएँ शोभा पाती थीं, जिनके सुनहरे शिखरपर सोनेके कलश उद्धारित होते थे । न्वजके कूपर चमकती हुई पताकाएँ, फहरा रही थीं । कबूतर और मोर आदि पक्षी जहाँ-तहाँ उड़ रहे थे ॥ २३-२५ ॥

शिशुपालको अपनी कन्या देनेके लिये उथत हो राजा भीष्मकने रत्नमण्डपमें वैवाहिक सामग्रीका सचग कराया । राजन् ! नारियोंद्वारा गाये जानेवाले गीत और मङ्गलाचारमें युक्त सुन्दर भवनमें रुक्मिणी उसी प्रकार शोभा पा रही थी, जैसे सिद्धियोंसे नुभिकी दोभा होती है । अर्थवेदके विद्वानोंने रुक्मिणीको भलीभांत नहलाकर रत्नमय आभूषण तथा वस्त्र धारण करवाये और वेदमन्त्रोद्वारा शान्तिकर्म करके वधुकी रक्षा की । महामनस्त्री राजा भीष्मकने ब्राह्मणोंको लाल भार सोना, दो लाल भार मोतां, सहस्र भार बस्त्र और छः अरब गायें दानमें दी ॥ २८-३३ ॥

उसी प्रकार दम्भोषपुत्र शिशुपालके लिये भी ब्राह्मणोंने पहले पस्मशान्तिका विधान करके रक्षाबन्धन करवाया । द्राघणोंद्वारा जब शिशुपालका माङ्गलिक स्नानकर्म सम्पन्न हो गया, तब उसे पीले रंगका रेशमी जामा पहनाकर सुदोभित किया गया । सिरपर सुकुट और सुकुटके ऊपर पूलोंका सुन्दर सेहरा सजाया गया । हार, कंगन, सुजवंद और चूड़ागणित विभूषित हुए शिशुपालकी माङ्गलिक गाजों-बाजोंके साथ गन्ध और अशतद्वारा विशिष्ट पूजा की

गयी। आचारलालों (स्त्रीलों) से शिशुपालको सुन्दर वर सजाकर ऊँचे हाथीपर चढ़ाया गया। उसके साथ बारात लिये दमघोष निकले। मिथिलेश्वर! जरासंध, शास्व, दुष्किमान, दन्तवक्ष, विद्वरथ और पौष्ट्रक पीछे और अगल-बगलसे उसके रक्षक होकर चले। महाबली दमघोष विशाल सेना साथ लेकर उच्चस्वरसे नगरे बजावाते हुए कुण्डिनपुरको गये। सामनेए यदुरेव श्रीकृष्णका कन्या-अपहरण-विषयक उद्योग सुनकर दूसरे हजारों राजा-शिशुपालके सहायक बनकर आये॥ ३४-४०॥

इस प्रकार श्रीगर्भ-संहितामें द्वारकास्थानके अन्तर्गत नारद-बहुलादव-संवादमें 'कुण्डिनपुरकी यात्रा' नामक चौथा वध्याय पूरा हुआ॥ ४॥

भीष्मकने आगे जाकर राजा दमघोषका विशिष्टरूप पूजन किया। कस्तीरी कम्बलों तथा उमुदसे उत्तम दिव्य अरुणवर्णके रस्लोसे सबको मणित किया। सबके कठोरोंमें मोतियोंकी मालाएँ पहनायी। सुराम्बुद्ध पुष्परत (इष्ट-कुलेल आदि) से सबका स्वागत किया। उस राज्यमें राजाओंके शिविरोंमें बाराङ्गनाओंके नुस्खे हो रहे थे। मृदङ्ग बजाये जा रहे थे। उस समय विद्भरके महाराजने समागत राजाओंतहित वरके लिये अल्पा-अल्पा बासस्थान प्रदान किये॥ ४१-४२॥

पाँचवाँ अध्याय

लक्ष्मणीकी चिन्ता; ब्राह्मणद्वारा श्रीहरिके शुभागमनका समाचार पाकर प्रसन्नता; भीष्मकद्वारा बलराम और श्रीकृष्णका सत्कार; पुरवासियोंकी कामना; लक्ष्मणीकी कुलदेवीके पूजनके लिये यात्रा, देवीसे प्रार्थना तथा सौभाग्यवती लियोंसे आशीर्वादकी प्राप्ति

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दका चिन्तन करती हुई कमललोचना भीष्मकुमारी लक्ष्मणी उनके बिना जीवनकी व्यर्थ मानने लगी। वह निरन्तर धनश्यामका ही ध्यान करती थी। इसी अवस्थामें वह मन-ही-मन कहने लगी॥ १॥

लक्ष्मणी बोली—अहो! मेरे विवाहका मुहूर्त आनेमें अब एक ही रात बाकी रह गयी है, किंतु मेरे प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र नहीं आये। मैं नहीं जानती कि इसमें क्या कारण है? जो ब्राह्मणदेवता उनके पास गये थे, वे भी अवतक लौटकर नहीं आये। हे विधाता! इसमें क्या हेतु है? ये यदु-कुल-तिलक देवेश्वर श्रीकृष्ण निश्चय ही मुझमें कोई दोष देखकर मेरा पाणिग्रहण करनेके निमित्त अधिक उद्योगशील होकर नहीं आ रहे हैं। हाय विधाता! अब मैं क्या करूँ? हाय! मुझ अभागिनीके लिये विवाहाता अनुकूल नहीं हैं। चन्द्रशेखर भगवान् शिव तथा गणेशजी भी प्रतिकूल हो गये हैं। भगवती गौरीने भी मुझसे मुँह फेर लिया है और गौ तथा ब्राह्मण भी मेरे अनुकूल नहीं हैं॥ २-४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस तरह चिन्तामें पड़ी हुई वह भीष्म-राजकुमारी महलकी अहालिकाओंमें

चकर लगाती हुई ऊँचे शिखरमें श्रीकृष्णचन्द्रकी बाट देखने लगी। इतनेमें ही लक्ष्मणीका बायों अङ्ग फङ्क उठा, मानो वही उनकी शङ्काका उत्तर या समाधान या। कालको जानेवाली सर्वमङ्गला श्रीभीष्मनन्दिनी उस अङ्ग-स्फुरणसे बहुत प्रसन्न हुई॥ ५-६॥

उसी समय श्रीकृष्णका भेजा हुआ ब्राह्मण तलाल वहाँ आ पहुँचा। श्रीकृष्णका आगमन-सम्बन्धी सारा हृत्तान्त उसने धीरेसे लक्ष्मणीको बता दिया। इसमें श्रीभीष्म-राज-कुमारीको बड़ा हर्ष हुआ और वह ब्राह्मणदेवताके चरणोंमें प्रणत होकर बोली—पवित्र! मैं दुम्हारे बंशसे कभी दूर नहीं जाऊँगी (अर्थात् दुम्हारी कुल-परम्परामें धन-सम्पत्तिका कभी अभाव नहीं होगा), यह मेरा प्रतिशार्पूर्ण वचन है॥ ७-८॥

विद्भराज भीष्मकने जब सुना कि मेरी कन्याका विवाह देखनेके लिये उत्सुक हो बलराम और श्रीकृष्ण—दोनों भाई पधारे हैं, तब वे ब्राह्मणोंके साथ उहें लिया लानेके लिये निकले; क्योंकि उन्हें उनके प्रभावका पूर्ण परिशान था। मङ्गल-पात्रोंमें गन्ध और अक्षत भरकर बल्ल तथा रल्लराशि रखकर माङ्गलिक गाजे-बाजेके साथ वे आये। मधुपकोंके कोटियः कल्पसमूह सजाकर राजाने बलराम और श्रीकृष्ण—

दोनों परमेश्वर-वन्धुओंका विभिन्नक पूजन किया । पूजन करके वे मन-ही-मन यह सोचकर अस्त्वत विज्ञ हो गये कि ‘अहो । मैंने इहाँको अपनी कन्या क्यों नहीं दी?’ उनको सेनासहित आनन्दधनमें ठहराया और उन्हें प्रणाम करके वे अपने महलमें लौट आये ॥ ११२ ॥

तीनों लोकोंके लावण्यकी निधि परमेश्वर श्रीवसुदेव-नन्दनका आगमन सुनकर कुण्डनपुरके निवासी वहाँ आये और अपने नेत्रपुटोंसे उनके मुखारबिन्दकी मकरन्द-सुधाका पान करने लगे । वे पुरवासी परस्पर इस प्रकार बात करने लगे—‘वन्धुओ! रुक्मिणी तो इन भगवान् श्रीकृष्णकी ही पत्नी होने योग्य है, दूसरे रुक्मिणीकी नहीं।’ उन नगर-निवासियोंने श्रीकृष्ण और रुक्मिणीका विचाह हो, इसके लिये विचालासे प्रार्थना करते हुए अपने सारे पुण्य समर्पित कर दिये । वे श्रीकृष्णके लावण्यके वन्धनमें बैठ गये थे । उहोंने पुनः आपसमें इस प्रकार कहा—‘अदि यहाँ इनका विचाह हो जाय तो ये कभी-कभी स्वयं क्षम्भुरके पर अवश्य आया करेंगे? उस समय हम भव लोग निकटसे इनका दर्शन करेंगे और कृतकृत्य हो जायेंगे । लोकमें इनके दर्शनसे विजित होकर दार्ढकाल्यक जीनेमें क्या लाभ?’ ॥ १३-१५ ॥

नरेश्वर! जब लोग इस प्रकार बातें कर रहे थे, उसी समय भीष्म राजकुमारी रुक्मिणी गिरिराजनन्दिनी उमाका पूजन करनेके लिये अपनी सम्पूर्ण सखियोंके साथ अन्तः-पुरसे बाहर निकली । श्रीकृष्णने उसके हृदयको हर लिया था । उस समय भैरो, मुदङ्ग और दुन्तुभिकी जोर जोरसे घ्यनि होने लगी । अच्छे गायक गीत गाने लगे, वन्दीजन और मागध शशीगान करने लगे और वाराहान्नाओंका मनोहर वृत्त्य होने लगा । इन सबके साथ जय-जयकारका मङ्गल-वोष उच्चस्वरसे गूँजने लगा ॥ १६-१७ ॥

छम्भीस्वरूपा रुक्मिणी वोटि चन्द्रमण्डलकी कान्ति धारण कर रही थी । वाल्यविके समान दीमिमान् कुण्डल उसके कानोंकी शोभा बढ़ा रहे थे और पाश्ववर्ती परिचारिकाओंका समुदाय इवेत छँड लगाये व्यजन और चमकीले चामर हुलाते हुए उसकी सेवामें संलग्न था । स्थानसे

इस प्रकार श्रीगर्ज-सहितार्थं द्वारकालषणके अन्तर्गत नारद-बहुलश्व-संवादमें रुक्मिणीका निर्गमन

नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

खीचकर लालों इवेत रगकी नंगी तलवारें हाथमें लिये पैदल वीर योद्धा इधर-उधरसे उसकी रक्षा कर रहे थे । इनसे योद्धा ही दूरपर शुद्धस्वार, रथी और हाथीस्वार योद्धा भी अल्ल उठाये राजकुमारीकी रक्षामें लो थे ॥ १८-१९ ॥

देवीके मनिदरमें पहुँचकर आँगनमें शान्त और शुद्धभावसे लही हो राजकुमारीने अपने कमलोपम हाथ और पैर धोये । फिर मौनभावसे देवीके समीप आकर उसने दोनों हाथ जोड़, भवभीतिहारिणी भवानीकी सेवामें इस प्रकार प्रार्थना की—‘हुर्गे! गणेश-कार्तिकेय आदि गतानोंहाते शोभा पानेवाला दुर्भकारिणी भवानी शिवे! मैं तुम्हें सदा प्रणाम करती हूँ और यह वर मांशती हूँ कि प्रहृतिमें परे विराजमान साक्षात् परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र मेरे पति हों’ ॥ २०-२१ ॥

उस समय भवियाँ कहने लगी—‘शुभे! इस तरह श्रीकृष्णका नाम न ले । चेदिंगज शिशुपालके उद्देश्यसे वर मांगो ।’ इस तरह बोलती हुई भवियोंके बीच खड़ी भीष्मनन्दिनी पुनः भवानीके भवनमें दृग्रोक्त प्रार्थनाको ही दुहराने लगी । ‘अग्न! यह चालिका है, कुल जानती नहीं; अतः पाप इसकी बातपर ध्यान न दे ।’—यो कहती हुई सभियोंके बाचमें स्थित हो रुक्मिणीने गन्ध, अक्षर, धूप, आमूल्य, पुण्यहार, पुण्य दांपमाला, पूजा आदि भोग, वस्त्रः फल, गन्ने तथा ताम्बूल आदि अपण करके वडी भक्तिमें भवानीकी मेवा-पूजा की । तदनन्तर देवीको प्रणाम करके, बहुत से आभ्यण आदिद्वारा सौभाग्य-वत्ता लियो—‘पूजन करके राजकुमारीने उन सबको प्रणाम किया ॥ २२-२४ ॥

उन सम्पूर्ण भौमाग्यवती लियोने रुक्मिणीको वर दिये और परम मङ्गलमय आशीर्वाद प्रदान किये—‘राजकुमारी! तुम्हारा रूप-सौन्दर्य सदा महारानी शतरूपाके समान अश्वय बना रहे, शील-स्वभाव गिरिराजनन्दिनी उमाके समान शोभित हो । तुममें पतिमेवाका भाव अरुन्धतीके समान हो और क्षमा जनकनन्दिनी सीताके समान । भीष्मनन्दिनि! तुम्हारा सौभाग्य (शशपली) दक्षिणाके समान और उत्तम वैभव शर्वके तुल्य हो । तुम्हारी वाणी सरस्वतीके सदृश और पतिभक्ति संतोकी हरिभक्तिके समान हो’ ॥ २५-२६ ॥

छठा अध्याय

श्रीकृष्णदाता इकिमणीका अपहरण तथा बादचनीरोंके साथ युद्धमें विष्णु राजाओंकी वराजय

धीमारदृजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार ब्राह्मण-पलियोंके शुभाशीर्वादसे अभिनन्दित हो इकिमणीने पुनः दर-नार देखी तथा विष्णुओंको प्रणाम किया ॥ १ ॥

तत्प्रवात् मौनब्रतका ल्याग करके भीष्म-राजकुमारी पर्सी-सहेलियोंके साथ धीरे-धीरे गिरिजाएहसे बाहर निकली । उस समय करोड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्तिमती कमल-लेचना इकिमणीको बीर योद्धाओंने अकस्मात् इस प्रकार देखा, मानो निर्धनोंको सहसा कोई उत्तम निधि मिल गयी हो । शुइसवार, रथी, हाथीसवार और पैदल—जो-जो रक्षक वहाँ आये थे, वे सब इकिमणीपर हड्डि पड़ते ही मोहित हो गये । उसके गुस्कान्युक्त कटाक्ष कामदेवके भनुषसे छूटे हुए तीखे बाणोंके समान थे । उनसे आहत एवं पीड़ित हो उमस्त सैनिक अपने अच्छ स्थानकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २-५ ॥

इसी समय वंटियों और मंजीरोंके नादसे मुखरित तथा वेकुण्ठस्थित नैःश्वेत नामक बनमें उद्गृह अश्वोंसे जुते हुए, फहराती हुई ऊँची पताकासे अलंकृत तथा बायुके समान वेगशाली रथद्वारा दाढ़क सारथिसहित श्रीहरि अपनी सेनाकी टक्करसे उस रक्ष-सेनामें दरार उत्तरकर करके तल्काल वहाँ उसी प्रकार पुष्ट आये, जैसे बायु कमलबनमें बेरोक-टोक प्रविष्ट हो जाती है । शत्रुओंके देखते-देखते शीत ही जी-समुदायके पास पहुँचकर भगवान् श्रीकृष्णने भीष्मनन्दिनी इकिमणीको अपने रथपर चढ़ाकर, जैसे गड़ह देवताओंके सामनेसे दुष्काका कलश उठा के गये थे, उसी प्रकार उस राजकन्याका अपहरण कर लिया । राजन् ! उस समय वे शस्त्रोंमें उत्तम दिव्य शार्ष-धनुषको बारंबार ठंकार रहे थे । तदनन्तर वहे वेगसे अपनी सेनाके भीतर श्रीहरिके लैट आनेपर देवताओंकी तुन्हुभियाँ और यादवोंके नगरे एक साथ ही बज उठे । तिद्द और तिद्दोंकी कम्याएँ तथा देवतालेश हरसे भरकर श्रीकृष्णके रथपर नन्दनबनके फूलोंकी बर्ना करने को । तब अस्य-जपकारकी अनिके साथ बहराम-लहित श्रीकृष्ण धीरे-धीरे वहाँसे जाने लगे—ठीक उसी प्रकार जैसे विष्णु लिङ्गारोंके दीनसे अपना भाग छेकर मौजसे बदल जाता है ॥ ६-१२ ॥

इकिमणीका हरण हो जानेपर उस समय बहा भारी कोलाहल मचा । रक्षक सैनिक आपसमें ही शस्त्रोंके प्रहर-पूर्वक युद्ध करने लगे । जरासंधके बदमें रहनेवाले समस्त मानी दृष्टियेह इस घटनासे प्राप्त हुए अपने पराभव और शुद्धाके नाशको नहीं सह सके । वे परस्पर कहने लगे—‘अहो ! हमलेगोंको धिकार है । इस धनुर्धर राजाओंके यशको गोपोंने उसी प्रकार हर लिया, जैसे सियारोंने सिंहोंके यशका अपहरण किया हो । इसमें बढ़कर हमारी पराजय और क्या हो सकती है ?’ यो कहकर सब-के-सब कोरबे भर उठे और जलतीहुआ एवं चौपह आदि खेलोंको छोड़कर, कबच और सेनासे मुसजित हो उन्होंने युद्धके लिये शाखा उठा लिये । कोरबे भरा हुआ पौष्ट्रक ही अक्षौहिणी सेनाके साथ, महावीर विवूर्ध तीन अक्षौहिणी सेनाके साथ, अत्यन्त दाढ़ण दन्तवक पाँच अक्षौहिणी सेनाके साथ, राजपुरका स्वामी राजा शास्त्र तीन अक्षौहिणी सेनाके साथ तथा महाबली जरासंध दस अक्षौहिणी सेनाके साथ महामनस्ती यादवोंके समझ युद्धके लिये आ पहुँचे । चेदिराज शिशुपालके पक्षवाले अन्य सहस्रों योद्धा भी श्रीकृष्णके सामने धनुशको ठंकारते हुए युद्धके लिये आ धमके ॥ १३-२० ॥

प्रलयकालके महासागरकी भौति उस विशाल सेनाको देखकर युद्धभेष्ट योद्धा उसे पार करनेके लिये श्रीकृष्णके पास आ गये । श्रीकृष्ण ही उनके केवट और जहाज थे । देवता और दानवोंकी भाँति उन स्वकीय एवं परकीय सैनिकोंमें अत्यन्त अद्भुत तथा रोमाञ्चकारी तुमुल युद्ध होने लगा । उस संग्राममें रथी रथियोंके साथ और पैदलोंके साथ, हाथीसवार हाथीसवारोंके साथ और शुइसवार शुइसवारोंके साथ जूझने लगे । शस्त्रोंकी बरसी अन्धकार-सा छा गया । उस समय इकिमणीको भयसे बिहूल हुई देख भगवान् श्रीकृष्णने अभय-दान देते हुए कहा—‘हरो मत ! ॥ २१-२४ ॥

वह देवतीके छोटे भाई वीरवर गद अपने महान् धनुषको कम्पित करते हुए शत्रुओंकी सेनामें उसी प्रकार मुस गये, जैसे बनमें बालानक । गदके बाणोंसे अस्त्रोंके विद्धीर्ण

हो जानेके कारण किसने ही रथी योद्धाओंके कब्जे कटकर किञ्च-सिंह हो गये, जोडे और सारथी मारे गये तथा वे स्थाय भी प्राप्तशृङ्खल होकर पृथ्वीपर गिर पड़े । पैदल योद्धाओं के पैर कट गये । राजव् ! गदके बाणोंसे व्यथित हो शशु योद्धा आँखीके उखाड़े हुए छुलोंकी भाँति भरादारी हो गये । नरेश्वर ! जोड़ोंपर न्यौं हुए कितने ही बीर गदके भाण में विदीर्ण हो समराङ्गमें बृहतोफलकी भाँति घोड़ोंसहित गिर पड़े । इसी प्रकार गदके बाणोंसे कुम्भस्थल फट जानेके कारण बीच-बीचसे विदीर्ण हुए हाथी कुम्भाष्टके टुकड़ोंकी भाँति पृथ्वीपर पड़े शोभा पा रहे थे ॥ २५-२९ ॥

तदनन्तर शशुओंकी सारी सेना भाग चली । यह देल गदा-युद्ध-विशारद महाबली शास्त्रने गदके ऊपर अपनी गदासे आघात किया । गदाकी चोट खाकर गदा-युद्धके प्रभावके जानेवाले धनुर्घर गद धनुषद्वारा युद्ध करना छोड़कर तस्काल मनसे अत्यन्त व्यथाका अनुभव करने हुए युद्धभूमिमें गिर पड़े । यिरकर भी वे सहसा उठ न्यौं हुए और तस्काल बलदेवजीकी दी हुई गदाको गदने अपने हाथमें ले लिया । लाल्क भार लाहिंकी बनी हुई वह भारी गदा कीमोहकीके नमान सुहृद थी । उसके द्वारा गदने राजा शास्त्रपर उसी प्रकार चोट की, जैसे इन्द्रने वज्रद्वारा किसी पवंतपर आघात किया हो । गदाके प्रहारसे व्यथित हो गजा शास्त्र जब पृथ्वीपर गिर 'गङ्गा' तब पौष्ट्रक, जगासध, दन्तवक और विदूरथ —ये चारों बीर गदके प्रति रोषसे भरे हुए वहाँ आ एहुँचे । महाबीर पौष्ट्रकने भी जैसे कोई कटु बच्चनोंसे मित्रताके सम्बन्धको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार दस तीसे बाण मारकर गदके रथपर फहराती हुई गताको काट डाला ॥ ३०-३५५ ॥

राजेन्द्र ! तत्पक्षात् दन्तवकने गदाकी चोटसे गदके सुन्दर रथको भी इस तरह चूर-चूर कर डाला, मानो किसीने

इस प्रकार श्रीगर्म-सहितामें द्वारकाश्च के अन्तर्गत नरद-नहुलाइन-सवाइमें 'सकिमणी-हरण और यदुवंशियोंकी विजय' नामक लठा अव्याप पूरा हुआ ॥ ६ ॥

डंडेकी मारसे मिट्टीका सुन्दर बड़ा फोड डाला हो । विदेशराज । इसी प्रकार जरासंधने उस रथके बोडे मार डाले और विदूरथने सारथियोंको तीव्रे बाणोंमें पृथ्वीपर मार गिराया । तब भस्त्र हाथमें ले बलदान बलदेवजो बड़ी तीव्रगतिसे बहाँ आ पहुँचे और उन्होंने दन्तवकके विकराल एवं भयानक मुखपर बड़े जोरसे प्रहार किया । समराङ्गमें युद्ध करते हुए दन्तवकके मुखमें मुसलकी चोट पड़नेपर उसके मुखमें जो एक टेढ़ा दाँत बच रहा था, वह भी भूमिपर गिर पड़ा । फिर तो रुकिमणीसहित दैत्यनाशन श्रीहरि हँसने लो । इसी समय रोषसे भरे हुए बलदेवजीने अपने मुसलसे शीघ्रतापूर्वक पौष्ट्रक, जरासंध तथा हुए विदूरथको भी चोट पहुँचायी । ये तीनों ही बीर खूनमें लथपथ हो युद्ध-भूमिमें सूर्चित होकर गिर पड़े ॥ ३६-४१ ॥

इसके बाद वहाँ आर्या हुई सारी सेनाको कुपित हुए महाबली बलदेवने हल्ले खाँचकर मुसलकी मासे मौतके घाट उतार दिया । उस भमराङ्गमें दस योजन दूरतक हाथी, घोड़े और पैदल-संनिक पिस उठे, चूर-चूर हो गये और धरतीपर नदाके लिये सो गये । तब मरनेसे बचे हुए जरासंध आदि समस्त नरेश मैदान छोड़कर भाग गये और जिसकी उमंग नष्ट हो गयी थी तथा जो अत्यन्त हतोत्साह हो चला था, उस शिशुपालके पास जाकर बोले—‘पुरुष-सिंह ! तुम अपने मनकी इस गँडानिको त्याग दो । एक विवाह तो क्या, इस भूतलपर तुम्हारे सी विवाह हो जायेगे । हमलोग आज ही द्वारकामें चलकर बलराम और श्रीकृष्णको बाँध लेंगे तथा समुद्रकी काञ्ची धारण करनेवाली इस पृथ्वीको यादवोंसे सूनी कर डालेंगे’ ॥ ४२-४६ ॥

इस प्रकार भित्रोंके प्रबोध देनेपर चेदिराज शिशुपाल चन्द्रिकापुरको चला गया और मरनेसे बचे हुए दूसरे समस्त नरेश भी अपने-अपने नगरको पधारे ॥ ४७ ॥

—४५७—

सातवाँ अध्याय

श्रीकृष्णके हाथोंसे रुक्मीकी पराजय तथा द्वारकामें रुक्मिणी और श्रीकृष्णका विवाह

श्रीनारदजी कहते हैं—रुक्मिणीके हरण और मित्रोंकी पराजयका वृत्तान्त सुनकर भीध्यपुत्र रुक्मीने समस्त भूगलोंके सुनते हुए यह प्रतिशा की—‘माजाओ! मैं आप-लोगोंके सामने यह सच्ची प्रतिशा करता हूँ कि युद्धमें श्रीकृष्णको मारकर रुक्मिणीको लौटाये बिना मैं कुण्ठिनपुरमें प्रवेश नहीं करूँगा’ ॥ १-२ ॥

यों कहकर उस महा उद्भट वीरने दिघ्य कवच धारण किया, जो टोस एवं श्यामवर्णका था । उसे देखकर पेसा प्रतीत होता था, मानो वह नील मेघमें निर्मित हुआ हो । फिर उसने भिरपर भिन्नुदेशीय शिरस्थाण (टोप) रक्षा; मौरीय देशका बना हुआ सुन्दर धनुष, लाट देशके दो तरकम, म्लेच्छ देशकी तलवार, कुट्ट देशकी ढाल, येठरकी महावाक्ति, गुजरातकी गदा, बंगालका परिष और कोङ्कण देशका इस्तप्राण (दस्ताना) धारण करके अङ्गुष्ठियोंमें गोधाके चर्ममें निर्मित अङ्गुष्ठिलिंग शाँघ लिया और किरीट, रक्षमय कुण्डल तथा सोनेके बाजूबंदमें विभूषित हो रुक्मीने युद्ध करनेका निश्चय किया । फिर नश्चल घोड़ोंसे युक्त जैत्ररथपर आरूढ हो, दो अक्षोहिणी मेना साथ लिये उसने श्रीकृष्णका पीठा किया । शत्रुओंकी मेनाको पुनः आती देख महाबल्य बलरामने यादबोकी सेना साथ ले ममराङ्गणमें उसका सामना किया । रुक्मी वार-वार धनुष टंकारता और कठोर बच्चन बोलता हुआ अतिरिक्त देवेश्वर श्रीकृष्णके पास जा पहुँचा और बोला—‘अरे! खड़ा रह, खड़ा रह । यदि जीवित रहना चाहता है तो तुरंत मेरी बहिनको छोड़ दे । नहीं तो मैं मेनासहित तुम्हे इसी समय यमलोकको भेज दूँगा । तेरे कुल्यपर राजा यथातिका शाप लगा हुआ है और तू ग्वालोंकी जहन ल्वानेशाला है । जरासंधके भयसे भीत रहता है और काल्यतनके आगेसे पीठ दिखाकर भाग चुका है’ ॥ ३-११ ॥

यों कहकर उसने अपने तरकससे एक बाण निकालकर धनुषपर चढ़ा लिया और उसे कानतक सीन्चकर श्रीकृष्णकी छातीको लक्ष्य करके चला दिया । उस बाणसे आहत होनेपर भी भगवान् श्रीकृष्णने एक साथकसे उसके धनुषकी टंकार करने-वाली प्रत्यक्षा इस प्रकार काट दी, मानो गड्ढने किसी सर्पिणीको

छिक्ष-भिज कर ढाला हो । फिर रुक्मीने जीव ही अपने धनुष-पर टंकार-ज्वनि करनेवाली दूसरी स्वर्णभूषित प्रत्यक्षा चढ़ा ली और दस बाणोंद्वारा रणभूमिमें श्रीहरिको धायल कर दिया । तब श्रीकृष्णने एक बाण मारकर रुक्मीके प्रत्यक्षासहित धनुष-को उसी क्षण बैसे ही काट दिया, जैसे शानके द्वारा त्रिगुणात्मक संसार-वन्धनको कट दिया जाता है । श्रीकृष्णने अपने अमोघ बाणद्वारा बीचमें ही उसके धनुषके दो टुकड़े कर दिये । फिर उन्होंने रुक्मीको भी बाण मारकर युद्धमें धत्त-विक्षत कर दिया । धनुष कट जानेपर विद्मराज-कुमारने श्रीहरिके ऊपर चमचमाती द्वाई महावाक्ति उसी प्रकार चलायी, जैसे किसी मुनिने विश्वानके लिये महाशन्तिका प्रयोग किया हो । गदाधारी भगवान् गदाश्रजने अपनी गदासे उस महावालिपर प्रहार किया, जिससे उसके दो टुकड़े हो गये । उस खण्डित शक्तिने रुक्मीके ही सारथिको मार ढाला । भगवान्की वेग-शालिनी कौमोदकी नामवाली भारी गदाने रुक्मीके रथके ऊपर पहकर उसे खोड़ोसहित उसी प्रकार चूर्ण कर दिया, जैसे वज्रके प्रहारसे कोई पर्वत चकनाचूर हो गया हो । तब भीध-कुमार रुक्मीने भी श्रीहरिपर गदा चलायी, किन्तु भगवान्ने उसे पुनः चक्र चलाकर चूर्ण कर दिया । सोनेके बाजूबंदसे विभूषित बलवान् रुक्मीने बंगालका परिष हाथमें लेकर उसके द्वारा श्रीहरिके कंचेपर प्रहार किया और उस युद्ध-भूमिमें मेघके समान गर्जना करने लगा । परिषसे ताढ़ित होनेपर भी पुष्पमालाके आधातको कुछ भी न गिननेवाले हाथीकी भाँति भगवान् अविचल रहे । उन्होंने उसी परिषसे समराङ्गणमें रुक्मीपर आषात किया । परिषकी छोट खाकर रुक्मी मन-ही-मन कुछ व्याकुल हो उठा । फिर उसने युद्धभूमिमें माधवकी भर्तसना करते हुए ढाक और तलवार हाथमें के ली । भगवान्ने भी अपने खड़गका प्रहार करके उसकी ढाल और तलवार काट दी । उस खड़गके अग्रभागसे रुक्मीका शिरस्थाण और विशाल कवच कटकर गिर पड़े । लो-हाथ उसके दस्ताने भी काट दिये गये । अब उस युद्धमें रुक्मीके हाथमें केवल तलवारकी मुँही रह गयी थी । उस दशामें अपने पास आये हुए रुक्मीको श्रीहरिने भुजदण्डोंसे पकड़कर पृथ्वीपर दे मारा और जैसे मुगके

उत्तर लिह लालर ही जाय, उसी प्रकार वे उसके उत्तर बढ़ गये तथा रोपलूंक तीखी धारवाले अपने नन्दन नामके खद्गको हाथमें ले लिया। श्रीकृष्णको अपने भाईके वधके लिये उद्यत देख इकिमणी भयसे विहूल हो उठी और पतिके वरणोंमें गिरकर उस भट्टी-माड्डी राजकुमारीने कहपत्तरमें कहा ॥ १२-२७ ॥

श्रीकृष्णी बोली—अनन्त ! देवेशर ! जगन्निवास ! योगेश्वर ! आपकी शक्ति अचिन्त्य है । आप इस जगत्के पालक हैं । अतः कहणासागर ! आपके द्वारा शालके समान विशाल भुजायाले मेरे भाईका वध होना उचित नहीं है ॥ २८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् । छरके मारे विलाप करती हुई इकिमणीका मुँह दुःखके कारण सूख गया था । उसका कष्ठ ढूँध गया । अपनी प्रिया सती इकिमणीकी ऐसी अवस्था देखकर श्रीहरि रुक्मीके वधसे विरत हो गये । फिर उसीके कमरबन्धसे बाँधकर तीखी धारवाले खद्गसे श्रीहरिने रुक्मीके आधे मुखकी दाढ़ी-मूँछके बाल साफ कर दिये ॥ २९-३० ॥

इतनेमें ही दो अक्षेहिणी सेनाओं परापर करके तेनिकोसहित बल्लामजी वहाँ आ पहुँचे । उन्होंने देखा कि रुक्मी झुरुप और हीन अवस्थामें दंधा पड़ा है । फिर तो उनके हृदयमें दया आ गयी और उसका बन्धन खोल-कर बल्लामजीने श्रीहरिको टक्कारते हुए कहा—“कृष्ण ! तुमने यह अच्छा नहीं किया, यद लेकिनिदित कर्म है । अपनी पत्नीके भाइयोंके साथ इस प्रकार परिहास नहीं किया जाता । जिसके बड़े भाईको तुमने विरुप कर दिया, वह इकिमणी भाईकी इस दुर्दशामें विनित होकर तुम्हें क्या कहेगी ?” श्रीकृष्णसे यो कहकर वे इकिमणीसे कहे—“कस्याणि । तुम शोक न करो । शुचितिते । स्वर्ग हो जाओ । आर्यकुमारी । यहामते । तुम शोक विस्तृत छोड़ हो, मनमें दुःख मत मानो । प्रिय

अथवा अप्रिय जो भी प्राप्त होता है, वह सब मैं जालका किया हुआ मानता हूँ । जैसे घनमाला बायुके अधीन होती है, उभी प्रकार यह सारा जगत् कालके बशीभूत है । उस कालको त्रुम कल्पा करनेवालोंका स्वामी परमेश्वर एवं विष्णु समझो । ‘मैं और ‘मेरा’ यह भाव ही जगत्के लिये बन्धनका कारण होता है । अहंता और ममतासे रहित भाव ही प्रोक्षण है, इसमें संशय नहीं है; सुख और दुःख देनेवाला दूसरा कोई नहीं है । यह सब लोगोंका अपना भ्रम ही है । शत्रु, मिथ्र और उदासीनकी कल्पना संसारी लोगोंद्वारा अशानके कारण की गयी है” ॥ ३१-३८ ॥

इस प्रकार भगवान् बल्लामके समझानेपर भीष्मकपुत्र रुक्मी वैमनस्य छोड़कर चला गया और इकिमणीको भी प्रगतता हुई । रुक्मीका मनोरथ व्यर्थ हो चुका था, बल्लाम और श्रीकृष्णके द्वारा जागित छोड़ दियं जानेपर अपने विरुपकरणकी घटनाको याद करके उसने तपस्यामें लगा जानेका विचार किया । किंतु मुख्य-मुख्य मन्त्रियोंके मना करनेपर उसने तपका विचार छोड़ दिया; तथापि कुण्डनपुरमें फिर पैर नहीं रखता । रुक्मीने अपने निवासके लिये भोजकट नामक एक उत्तम नगरका निर्माण कराया ॥ ३९-४१ ॥

राजन् । बल्लाम और यदुवंशी योद्धाओंसे घिरे हुए इकिमणीसहित भगवान् गंगविन्द अपनी विजय-दुन्दुभि बजवाते हुए द्वारकाको चले गये । वहाँ बड़ा भारी उत्सव मनाया गया । मार्यादीर्घ मासमें साक्षात् श्रीहरिने वैदिक-विधिके अनुसार इच्छिर मुखबाली इकिमणीके माथ विवाह किया । इकिमणीपति श्रीहरिका विवाह सम्पन्न हो जानेपर श्रीइकिमणी देवी उनके रुक्म-मन्त्रिद्वय (सुवर्णमय भवन) की शोभा बढ़ाने लगी । पुण्यवती द्वारकापुरी उस समय देवराज इनकी अमरावतीके समान दुष्कोमित हो रही थी । श्रीभगवन्निनी इकिमणीके विवाहकी इस विचित्र कथाको जो भक्तिमात्रसे सुनता और सुनाता है, वह भक्त इष्ट लोकमें भी वैभवसे सम्पन्न रहता है और देहावसानके पश्चात् वही प्रोक्षका भागी होता है ॥ ४२-४५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्भ-सहितमें द्वारकाश्चन्द्रके अन्तर्गत नारद-महुकाश्व-संवादमें श्रीइकिमणीका विवाह-

नामक सत्त्वां अव्याप्त पूरा हुआ ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंके साथ विवाह और उनकी संततिका वर्णन; प्रधुमनका प्राकृत्य तथा रति और रुद्र-पुत्रीके साथ उनका विवाह

श्रीनारायणी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! अब श्रीकृष्णका पत्नियोंके मञ्जलमय विवाहका इच्छान्त मुनो, जो भगवान् पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदायक तथा आशुकी ब्रह्मेन्द्रका सर्वोत्तम साधन है ॥ १ ॥

सत्राजित नामसे प्रसिद्ध यादवको साक्षात् भगवान् भूयंने स्थान्तक मणि दे रखी थी । भगवान् श्रीकृष्णने राजा उत्त्रसेनके लिये वह मणि माँगी । मिथिलेश्वर ! सत्राजितने द्रव्यके लोभसे वह मणि नहीं दी; क्योंकि उस मणिसे प्रतिदिन आठ भार सुवर्ण स्वतः प्राप्त होता रहता था । एक दिन सत्राजितका भाई प्रसेन उस मणिको अपने कण्ठमें चाँधकर सिन्धुदेशीय अश्वपर आरुद्ध हो शिकार खेलनेके लिये बनमें विचरने लगा । वहाँ एक सिंहने प्रसेनको भार डाला । फिर उस सिंहको भी जाम्बवान्नने मारा और तत्काल उस मणिको लेकर जाम्बवान् अपनी गुफामें चला गया । सत्राजित लोगोंमें वह प्रचार करने लगा कि ‘मेरा भाई प्रसेन मणिको कण्ठमें धारण करके बनमें गया था, किंतु श्रीकृष्णने वहाँ उसका वध कर दिया; इनीलिये आज सबेरे वह मध्यभवनमें नहीं आया’ ॥ २-६ ॥

भगवान्पर कल्पका टीका लग गया । वे कुछ नागरिकोंको साथ ले बनमें गये । महामते । वहाँ उन्होंने पहले घोड़ेसहित मेरे दुए प्रसेनके और किसी दूसरेके द्वारा मारे गये लिङ्हके शवको पढ़ा देखा । यह देखकर पद्धिल्लसे पता लगाते दुए वे शूक्रराज जाम्बवान्की गुफातक पहुँच गये । फिर वहाँसे मणि लानेके लिये साक्षात् श्रीहरिने गुफाके भीतर प्रवेश करके अङ्गार्इस दिनोंतक युद्ध किया तथा शूक्रराज जाम्बवान्पर विजय पायी । राजेन्द्र ! जाम्बवान्नने अपनी कुन्दरी कम्मा जाम्बवतीको उस मणिके साथ श्रीहरिके हाथमें दे दिया । उसे लेकर भगवान् द्वारकामें लैटे । उन्होंने सत्राजितको मणि दे दी और स्वयं कल्पके मुक्त दुए । सत्राजितको अपने कृत्यपर बड़ी लगा आयी और वे मुँह नीचे किये भयभीत-से रहने लगे । मिथिलेश्वर ! उन्होंने यादव-परिवारमें शान्ति रखनेके लिये अपनी पुत्री सत्यभामा तथा उस मणिको भी भगवान्के चरणोंमें अर्पित-पूर्कर दिया ॥ ७-११ ॥

तदनन्तर बन्धुवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी सहायताके लिये इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) गये । उन्होंने वधके चार महीने वहाँ व्यतीत किये । एक दिन गाढ़ीवधारी अर्जुनके साथ रथपर आरुद्ध हो श्रीहरि निर्मल नीरसे मरी दुई यमुनाके तीरंपर शिकार खेलनेके लिये विचरने लगे । वहाँ साक्षात् कालिन्दी देवी भगवान् श्रीकृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छासे तपस्या कर रही थीं । पाण्डव अर्जुनने उन्हें श्रीकृष्णको दिखाया । फिर वे भगवान् उन्हें साथ लेकर इन्द्रप्रस्थ आये । वहाँसे द्वारकमें पहुँचकर उन्होंने मनोहराजी सूर्यकन्या कालिन्दीके साथ विविष्टक विवाह किया । उस समय परम मञ्जलमय उत्सवका विस्तारके साथ आयोजन किया गया था ॥ १२-१५ ॥

अवन्तीके नरेशकी एक पुत्री थी, जो रूप-स्त्रावप्यसे मनको हर लेनेवाली थी । उसका नाम या मित्रविन्दा । भगवान् श्रीकृष्ण इक्षिणीकी ही भाँति मित्रविन्दाको भी स्वयंवरसे हर लाये ॥ १६ ॥

राजा नगनितके एक पुत्री थी, जो लोगोंमें सत्याके नामसे विख्यात थी । उसके विवाहके लिये राजाने वह प्रतिशा की थी कि ‘सात साँझोंको जो एक साथ ही नाथ देगा, उसी दीरको मैं अपनी पुत्री दूँगा ।’ भगवान् श्रीकृष्णने सब लोगोंके देखते-देखते उन सातों साँझोंको नाथकर सत्याके साथ विवाह किया ॥ १७ ॥

केकचराज-कुमारी भद्राको भी भगवान् श्रीहरि उसकी इच्छाके अनुसार अपने व्यक्ति के आये । वहाँ कालिन्दीकी ही भाँति भद्राके साथ उन्होंने विविष्टक विवाह किया ॥ १८ ॥

राजन् । राजा वृहस्पतेनके एक पुत्री नी, जिसे छोड़ा गया था कहते थे । वह सम्राट् शुभ लक्षणोंमें वृग्यता थी । उसके यहाँ स्वयंवरमें मत्स्यवेषकी शर्त रक्षी गर्वा थी । भगवान्नने उस मत्स्यका भेदन किया और अपने कृपर आकर्षण करनेवाले शशुओंको परास्त करके लक्षणाका हाथ पकड़ा ॥ १९ ॥

सोलह हजार एक सौ राजकुमारियाँ भौमासुरके कारा गारमें बंद थीं । भगवान्नने भौमासुरका वध करके उसकी

कैदे उनको मुक्तया । उन चाकदर्शना युवतियोंकी इच्छा दैवकर वे उन्हें अपने साथ ले आये ॥ २० ॥

एक ही मुहूर्तमें विभिन्न भवनोंमें रहती हुई उन युवतियोंके साथ अपनी माथासे उन्हें ही रूप धारण करके भगवान्ने उन सबका विषिणुर्बक पाणेग्रहण किया । इस प्रकार लोलह इजार एक सौ आठ रानियोंमेंसे प्रत्येकने श्रीकृष्णके दस-दस पुत्र उत्पन्न किये । वे भगीरुणोंमें पिताके समान थे ॥ २१-२२ ॥

भीष्मकन्या इकिमणीके गर्भसे सबसे पहले प्रशुभ्न प्रकट हुए । वे कामदेवके अवतार थे और पिताकी ही भाँति समस्त शूभ्रलक्षणोंसे विभूषित थे । निर्दीय शम्भरामुरुने इत्य दिनोंके भीतर ही उन्हें सूतिकागारसे उठाकर समुद्रमें फेंक दिया । वहाँ उन्हें एक मस्त्य निगल गया, तथापि वे श्रीकृष्णकुमार मस्त्यके उदरमें मरे नहीं । वह मस्त्य शम्भरामुरुके पाकाल्यमें चीरा गया तो उसमेंसे प्रशुभ्न निकले । वहाँ उनकी पूर्वपक्षी रतिने उनका पालन किया । जब वे बड़े हुए और युवावस्था प्रारम्भ हुई, तब

इस प्रकार श्रीगर्म-संहितामें द्वारकालष्टके अन्तर्गत नारद-बहुतरव-संवादमें श्रीकृष्णकी समस्त शनियोंके विवाहका वर्णन 'नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवाँ अध्याय

द्वारकापुरीके पृथ्वीपर आनेका कारण; राजा आनन्दकी तपस्या और उनपर भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा

वहुलाल्प बोले—मुने ! तीनों लोकोंमें विरुद्धात द्वारकापुरी धन्य है, जहाँ साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण निवास करते हैं । आपके मुखमें सुना है कि द्वारकापुरी साक्षात् श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट हुई है; प्रभो ! बहान ! किस कालमें वह पूरी यहाँ आयी, यह मुझे बताइये ॥ १-२ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! तुम्हें साधुवाद है । मुझने वहुत अच्छा किया, जो द्वारकाके यहाँ आगमनका कारण पूछा, जिसे सुनकर लोकधाती पातकी भी शुद्ध हो जाता है ॥ ३ ॥

मनुके पुत्र शर्याति नामक एक राजा हुए, जो चक्रवर्ती राजा थे । उन्होंने दस इजार वर्षोंतक इस भूतल्पर धर्म-पूर्वक राज्य किया । उनके तीन पुत्र हुए, जो समस्त

उन्हें अपने शकुर्का करतूतका पता चला । राजन् ! मिल अपने शकुर्का शम्भरामुरुका वध करके वे दिव्य भार्या रतिके साथ द्वारकामें आये । उनका वह कर्म वहाँ ही विनिश्च एवं अद्भुत था ॥ २३-२६ ॥

राजन् ! महारथी श्रीकृष्णपुत्र प्रशुभ्न रक्षीका बेटीको भोजकट नगरके स्वयंवरस्थलमें हर लाये और द्वारकामें उसके साथ उनका विवाह हुआ । प्रशुभ्नसे अनिष्टद नामक पुत्रका जन्म हुआ, जिसमें दस इजार हाथियोंका वल था । वे बहाजीके अवतार समझे जाते थे । उनकी कान्ति शरकालके प्रफुल्ल नील कमलके समान रथ्यम थी ॥ २७-२८ ॥

इस प्रकार मैंने परिपूर्णतम भगवान्के चतुर्वृद्धावतारका तथा उनके विवाह-भवन्धी परम मङ्गलमय विचित्र चरित्र का तुम्हें वर्णन किया है, जो समस्त यापोंसे हर लेनेवाला, पुष्पदायक तथा आयुकी वृद्धिका उत्तम वाधन है । राजन् ! अब तुम पुनः क्या सुनना चाहते हो ? ॥ २९-३० ॥

नारद-बहुतरव-संवादमें श्रीकृष्णकी समस्त शनियोंके

धर्मसे पुरुषोंमें श्रेष्ठ थे । उनके नाम थे - उत्तानवर्हिं, आनन्द और भूरिषेण । राजा शर्यातिने उत्तानवर्हिंको पूर्व दिशा, भूरिषेणको दक्षिण दिशा और आनन्दको सारी पश्चिम दिशाका राज्य दिशा । फिर वे पुत्रोंमें बोले - 'यह मारी पृथ्वी मेरी है । मैंने धर्मपूर्वक इसका पालन किया है तथा शङ्ख द्वारा बलपूर्वक इसका अर्जन किया है; अतः तुमलोग इसका पालन करो ।' पिताकी यह बात सुनकर माले पुत्र शानो आनन्देन मानो हँसते हुए यह शानमय बच्चन कहा ॥ ४-८ ॥

आनन्द बोले—राजन् ! यह सारी पृथ्वी आपकी नहीं है । न आपने कभी इसका पालन किया है और न आपके दलसे इसका अर्जन हुआ है । राजन् ! बलिष्ठ तो भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं, अतः वह पृथ्वी श्रीकृष्णदेवकी है । उन्होंने इसका पालन किया और उन्होंके तेजसे इस सम्पूर्ण

बहुंशरका अजन दुआ है। भगवान् श्रीहरिके समान बलिष्ठ दूसरा कोई नहीं है। वे ही भगवान् अपने दारा प्रकट किये गये हैं ज्ञातकी सुषिं, पालन और संहार करते हैं। वे ही परजाह परमात्मा हैं और वे ही भगवान् कलना त्रिलोके सामी 'काल' हैं। जो सम्पूर्ण भूमोंके भीतर प्रवेश करके सबका आभय है, वह विश्वसंहायक अधिष्ठित शक्तात् परिपूर्णतम श्रीहरि ही है। जिनके भयसे इबा चलती है, जिनके भयसे सर्व तपते हैं, जिनके भयसे पर्जन्यदेव वर्षां करते हैं और जिनके भयसे मृत्यु ब्रह्मतो रहती है, राजन्। उन सक्षात् परिपूर्णतम परमेश्वर श्रीकृष्णका सम्पूर्ण हृदयसे अहंकारशत्र्य होकर भजन कीजिये॥१३—१४॥

नारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! राजा शर्यांति शानको प्राप्त होकर भी पुत्रके बाब्बाणोंसे आहत हो, रोषसे फङ्कते हुए अधरोद्धारा अपने मध्यम पुत्र आनंदसे बोले॥१५॥

शर्यांतिने कहा—ओ स्तोटी बुद्धिवाले बालक ! हूर हट जाओ। गुरुकी भाँति उपदेश कैसे कर रहे हो ? वहाँ तक मेरा राज्य है, वहाँतकी भूमिपर तुम निवास मत करो। तुमने जिन सर्वसंहायक श्रीकृष्णकी आराधना की है, वे भगवान् भी क्या दुम्हारे लिये कोई नयी पृथ्वी दे देंगे ?॥१६—१७॥

नारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! उनके यो कहनेपर दूसरोंको मान देनेवाले आनंदने राजा से कहा—‘जहाँतक पृथ्वीपर आपका राज्य है, वहाँतक मेरा निवास नहीं होगा !’॥१८॥

पिता राजा शर्यांतिद्वारा निकाले गये आनंद उनसे विदा ले समुद्रके तटपर चढ़े गये और समुद्रकी बेलमें पहुँचकर दस हजार वर्षोंतक तपस्या करते रहे। आनंदकी प्रेमलक्षणा-भक्तिसे प्रसन्न हो भगवान् श्रीहरिने उन्हें अपने स्वरूपका दर्शन कराया और वर मांगनेके लिये कहा। आनंद हनों हाथ जोड़कर शीक्षापूर्षक उठे और रोमाञ्चशुक्त तथा प्रेमसे बिछल हो उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंमें प्रणाम किया॥१९—२१॥

आनंद बोले—सबके हृदयमें बाल करनेवाले आप बासुदेवको नमस्कार है। आकर्षण-शक्तिके अधिष्ठात्-देवता आप संकरणको नमस्कार है।

कामावतार प्रशुम्न और ब्रह्मावतार अनिष्टद्वारा भी नमस्कार है। भगवन् ! आप साधु संतोंके प्रतिपालक हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। देव ! मेरे पिताने मुझे दायरे वाहर निकाल दिया है, अतः मैं आपकी शरणमें आया हूँ। मुझे दूसरी कोई भूमि दीजिये, वहाँ मेरा निवास हो सके। मृत्यु भी जिनके कृपा-प्रसादसे लंबोंतम पदको प्राप्त हुए, प्रणतजनोंका कलेश दूर करनेवाके उन भगवान् (आप) को मेरा नमस्कार है॥ २२—२४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! आनंदको आनंद एवं दीन जानकर दीनवस्तुल भगवान्ते प्रसन्न हो मेरवके समान गम्भीर बाणीमें श्रीमुखसे कहा॥२५॥

श्रीभगवान् बोले—नरेश्वर ! इस लोकमें दूसरी कोई पृथ्वी तो है नहीं, फिर मैं क्या करूँ ? परंतप ! दुम्हारी भक्तिसे मैं संतुष्ट हूँ, अतः अपनी बात सत्य करनेके लिये तुम्हें अपने दिव्यलोक वैकुण्ठधामका सौ योजन लंबा-चौड़ा भूखण्ड लाकर देता हूँ। वह अत्यन्त निर्मल तथा शुभद है॥ २६—२७॥

श्रीनारदजी कहते हैं—विदेशराज ! आनंदनरेश्वरसे यो कहकर भक्त-वस्तुल भगवान् श्रीकृष्णने वैकुण्ठसे सौ योजन विशाल भूखण्ड उखाइ मङ्गाया और भयंकर शब्द करनेवाले समुद्रमें सुदर्शन चक्रकी नींव बनाकर उसीके ऊपर उस भूखण्डको शापित किया। राजा आनंदने एक लाल वर्षोंतक पुत्र-मौत्रोंसे सम्पन्न हो वहाँ राज्य किया। उस राज्यमें वैकुण्ठका वैभव भरा हुआ था। आनंदके पिता शर्यांतिने जब यह समाचार सुना, तब उन्हें वहा विस्तय हुआ। आनंदके प्रसादसे ही ‘आनंद’ नामक देश प्रकट हुआ। आनंदके रेवत नामका पुत्र हुआ। पूर्वकालमें श्रीशैव नामक पर्वतका एक पुत्र था। आनंदने उसे अपने हाथोंसे उखाइकर आनंद देशमें स्थापित किया। रेवतके द्वारा लाये जानेसे उन्होंके नामपर वह पर्वत ‘रेवतक’

* आनंद व्याख्य—

नमस्ते बासुदेवाय नमः संकरणाय च ।

प्रशुम्नायानिष्टद्वय सात्वतो पतेऽनमः ॥

× × ×

हुमोऽपि चत्प्रादैन वयो सर्वोत्तमं पदम् ।

तस्मै नमो मात्रते प्रसादकेशवारिणे ॥

(गर्व०, द्वारक० ९ । २२, २४)

नायते विष्णुत दुआ । राजा रेवत कुद्दासलीपुरीका निभाण कराके वहाँ दीर्घकालक राज्य करनेके पश्चात् अपनी कन्या देवतीको साथ ले ब्रह्मलोकमें गये, वह सब कथा मेरे द्वारा

इस प्रकार श्रीगर्व-संहितामें द्वारकाश्वरके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'द्वारकापुरीके पुरुषीपर आनंदा कारण' नामक नर्वा अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

बलदेव-विवाहके प्रसङ्गमें कही जा चुकी है । इसी कारण पुष्पमयी द्वारकापुरीको देवताओंने 'मोक्षका द्वार' माना है ॥ २८-३५ ॥

दसवाँ अध्याय

द्वारकापुरी, गोमती और चक्रतीर्थका माहात्म्य; कुबेरके वैष्णवयज्ञमें दुर्वासामूनिद्वारा घट्टानाद और पार्श्वमौलिको शाप

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार मैंने तुमसे द्वारकाके आगमनका कारण बताया, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाला और पुण्यदायक है; अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १ ॥

बहुलाश्वने पूछा—मुनिश्चेष्ट ! कस्याणस्वरूपा द्वारका नगरीकी शूभ्रि सर्वतीर्थमयी है, अतः वहाँके मुख्य-मुख्य तीर्थोंको मुझे बताइये ॥ २ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! द्वारकासे प्रभासतक-की लीमा बनाकर जो तीर्थमयी यशभूमि है, वही मोक्षदायिनी 'द्वारका' है । उसका विस्तार सौ योजन है । द्वारका नगरीका दर्शन करके नर नारायण हो जाता है । द्वारकामें कोई गधा भी मर जाय तो वह चतुर्मुख होकर बैकुण्ठलोकमें जाता है । जो द्वारकाका दर्शन करता है, उसकी कथा सुनता है तथा कभी 'द्वारका' इस नामका उच्चारण करता है, अथवा वहाँ दर्शन-स्नान करके तिनकेका भी दान करता है, वह मूर्खुके पश्चात् परमगतिको प्राप्त होता है ॥ ३-५ ॥

एक समय भक्त रेवतको प्रेमानन्दमें आकुल देख श्रीहरिने उसे अपने स्वरूपका दर्शन कराया । उस समय उनके मृङ्गपर अशुशारा वह चली थी । भगवान्के नेत्र-विन्दुओंसे महानदी गोमती प्रकट हुई, जिसके दर्शनमात्रसे ब्रह्माश्व-जैसे पापोंसे बुटकारा मिल जाता है । जो मनुष्य गोमती-तटकी पवित्र रक्षकेर अपने सिरपर धारण करता है, वह सौ अन्मोंके किये हुए पापसे तकाल मुक्त हो जाता है—इसमें संशय नहीं है । मनुष्य कहीं भी स्नान करते समय यदि 'गोमती'—इस नामका उच्चारण कर लेता है तो उसे निस्सदैह गोमतीमें स्नान करनेका पुण्यफल प्राप्त हो

जाता है । विदेहराज ! जो भक्त-राशिमें सूर्यके स्थित रहते समय माघ मासमें प्रयागकी त्रिवेणीमें स्नान करता है, वह सौ अश्वमेध-यज्ञोंका पुण्यफल पा लेता है; परंतु यदि वह सूर्यांके मकररात होनेपर गोमतीमें स्नान कर ले तो उसे प्रयाग-स्नानकी अपेक्षा सहस्रगुना अधिक पुण्य प्राप्त होता है । गोमतीका माहात्म्य बतानेमें चार मुख्योंवाले ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हैं । गोमतीके 'चक्रतीर्थमें जो-जो पाषाण हैं, वे सब-के-सब चक्रभावको प्राप्त होते हैं; अतः उनकी यलपूर्वक पूजा करनी चाहिये । जो चक्रके चिह्नसे युक्त चक्रतीर्थमें द्वादशीको स्नान करता है, वह पाप-भाजन होनेपर भी चक्रपाणिके पदको प्राप्त होता है । करोड़ों जन्मोंके संचित पापोंसे परित दुआ पातकी मनुष्य भी चक्रतीर्थकी सीदियोंतक पहुँचकर मोक्ष-पदपर आस्त हो जाता है ॥ ६—१४ ॥

बहुलाश्वने पूछा—महामते ! महानदी गोमतीमें जो चक्रतीर्थ है, वह शुभ अर्थको देनेवाला तथा लोगोंके लिये अधिक माननीय कैसे हो गया ? यह मुझे बताइये ॥ १५ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! इसी विषयमें विश्वजन इस प्राचीन इतिहासका वर्णनकिया करते हैं, जिसके अवग-मात्रसे सर्वथा पापोंकी हानि हो जाती है ॥ १६ ॥

एक समयकी बात है, अलकापुरीके स्वामी राजाधिराज धर्माश्वा निधिपति भगवान् कुबेरने कैलासके उच्चर तटकी भूमिपर वैष्णवयज्ञ आरम्भ किया । उनके उष यज्ञमें स्वयं भगवान् विष्णु अपने धारसे उत्तर आये थे । ब्रह्मा, शिव, जग्मधेशी इन्द्र, जल-जन्मदुर्योंके अधिपति वृषभ, वायु, यम, सूर्य, सौम, सर्वजनेवरी पृथ्वी, गर्भवती, अप्सरा और सिद्ध—सभी उष यज्ञमें वहाँ पश्चारे थे ॥ १७-१९ ॥

नरेश्वर ! समस्त देवर्षि और ब्रह्मर्षि भी वहाँ आये । उस समय कुबेरका पुत्र नल्कूबर धनाध्यक्ष था । यजकी रक्षामें वीरभद्रको नियुक्त किया गया था । सत्पुरुषोंकी सेवाका भार जानन गणपतिके ऊपर था । समस्त मरुदण रसोई परासनेका कार्य करते थे । म्वामिकार्तिकेय धर्मपरायण रहकर सभामण्डपमें समागत अतिथिजनोंकी पूजा सत्कार करते थे तथा धण्टानाद और पाश्वर्मौलि—ये दोनों कुबेरके मन्त्री, जो मण्यूर्ण शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ थे, दानाध्यक्ष बनाये गये थे । इस प्रकार महान् उत्तममें परिपूर्ण उस यजका विधिपूर्वक अनुष्ठान सम्पन्न हुआ ॥ २०—२३ ॥

यज्ञान्तका अवधृथ-स्नान करके महामनस्वी राजराज कुबेरने देवताओंको उनका उत्तम भाग दिया और ब्राह्मणोंको पर्याप्त दक्षिणा दी । इस प्रकार उम श्रेष्ठ यजके परिपूर्ण होनेपर यज यजस्त देवर्षिगण संतुष्ट हो गयं, तब दण्ड, छत्र और जटा धारण किये महर्षि दुर्वासा वहाँ आ प चे । वे स्वभावगे ही कोधी और कृतकाय थे । उनके चरणोंमें खड़ाऊँ शोभा पाती थी । दाढ़ी-मूँछके बाल बढ़े हुए थे । पेट सूखकर मट गया था । कुशासन, समिधा, जलपात्र और मुग्नचमं धारण किये वे श्रेष्ठ मुनि वहाँ पधारे । वहाँ पधारे हुए उन महर्षिके पास जाकर उनकी विधिपूर्वक पूजा करके भयभीत हुए कुबेरने परिक्रमापूर्वक उनके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—‘ब्रह्मन् ! आपके पदार्पण करनेमें आज मेरा जन्म सफल हो गया, भवन मार्थक हो गया और यह मेरा यज्ञ भी सफल हो गया’ ॥ २४—२८ ॥

इस तरह उनके संतोष देनेपर भगवान् दुर्वासा मुनि जोर जोरसे हँसते हुए उन मनुष्यभर्मा देवता कुबेरसंबंधे—‘तुम राजराज, धर्मात्मा, दानी और ब्राह्मणभक्त हो । तुमने भगवान् विष्णुको संतुष्ट करनेवाले वैष्णव-यशका अनुष्ठान किया है । प्रभो ! वंशव्रण ! मैंने कहीं कभी भी तुमसे कुछ नहीं मांगा है, परंतु आज तुम्हे दानिशिरोमणि समझकर मै याचना करूँगा । यदि तुमने मेरी याचना सफल कर दी तो मैं तुम्हे उत्तम वर दूँगा; नहीं तो अत्यन्त भयंकर शाय देकर तुम्हें भस्म कर डाँड़ूँगा । त्रिलोकीकी सारी ...नवों

इस प्रकार श्रीगर्ण-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश-संवादमें गोमताके उपाख्यानके प्रसङ्गमें ‘चक्रतीर्थका माहात्म्य’ नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

निधियाँ तुम्हारे घरमें मौजूद हैं, उन सबको मुझे दे दो; तुम्हारा भला हो । मैं उन निधियोंके लिये ही यहाँ आया हूँ ॥ २९—३३ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! यह सुनकर दान-गाल, उदारचेता, गुह्यकोंके स्वामी राजराजने उनमें कहा—‘बहुत अच्छा, आप मंगा प्रतिग्रह स्वीकार करे ।’ इस प्रकार निधियोंको दे डालनेकी जेष्ठा करते हुए निधिपति कुबेरमें उनके दानाध्यक्ष मन्त्री धण्टानाद और पाश्वर्मौलि लोभमें मोहित होकर बोले ॥ ३४-३५ ॥

उन दोनोंने कहा—यह लोभी ब्राह्मण अकेला ही तो है, सारी निधियों लेकर क्या करंगा ? इसे एक लाख दिव्य दीनार दे दीजिये, वाकी अपने पास रखिये । अपनी वृत्तिकी तथा इस उत्तर दिशाकी ग़ज़ा कीजिये ॥ ३६ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! उन मन्त्रियोंका वह कठोर बच्चन सुनकर दुर्वासा रोषमें आग-बबूल हो उठे । उनकी भौंहें टेढ़ी हो गईं तथा उनके नेत्र लाल हो गये । भारा ब्रह्मण्ड बटलोईकी तरह दो निमेपतक हिलता रहा । कुबेरको अपने चरणोंमें पड़ा देव गुनिने उन दोनों मन्त्रियोंको शाप दे दिया ॥ ३७-३८ ॥

मुनिने कहा—महादुष्ट धण्टानाद ! तेरी बुद्धि पापमें ही लगी रहनेवाली है । तू अत्यन्त लोभी है, ग्राहकी भाँति धनग्राही है; अतः हे महाग्वल ! तू ग्राह हो जा । पापपूर्ण विचार रखनेवाले पाश्वर्मौले ! तू भी धनके लोभ और मदसे भरा हुआ है और हाथीकी भाँति प्रेरणा दे रहा है; अतः दुर्बुद्धे ! तू हाथी हो जा ॥ ३९-४० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! उन दोनोंको शाप दे कुबेरसे निधि लेफर मुनिवर दुर्वासाने पुनः कुबेरको अत्यन्त दुर्लभ वर प्रदान किया—‘कुबेर ! इस दानमें तुम्हारे पास नौ निधियाँ दिग्गुणित होकर आ जायें ।’ यों कहकर वे निधियोंके भाय वहाँसे चल दिये । अहा ! परम तंजस्वी महर्षियोंका बल कैसा अद्भुत है ! ॥ ४१-४२ ॥

उयारहवाँ अध्याय

गज और ग्राह बने हुए मन्त्रियोंका युद्ध और भगवान् विष्णुके द्वारा उनका उद्धार

नारदजी कहते हैं—राजन् ! कुबेरके दोनों मन्त्री ब्राह्मणके शापसे मोहित होकर अत्यन्त दीन दुखी हो गये । उस यश्ममें साधात् भगवान् विष्णु पधारे थे । वे अपनी शरणमें आये हुए उन दोनों मन्त्रियोंसे बोले ॥ १ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—मेरी अचंनामे युक्त इस यश्ममें तुम दोनोंको दुःख उठाना पड़ा है । ब्राह्मणोंकी कही हुई बातको टाल देने या अन्यथा करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है । तुम दोनों ग्राह और हाथी हो जाओ । जब कभी तुम दोनोंमें युद्ध छिड़ जायगा, तब मेरी कृपामें तुम दोनों अपने पूर्ववर्ती स्वरूपको प्राप्त हो जाओगे ॥ २-३ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! भगवान् विष्णुके यो कहनेपर राजाधिराज कुबेरके वे दोनों मन्त्री ग्राह और हाथी हो गये, परंतु उन्हें अपने पूर्वजन्मकी बातोंका समरण बना रहा । घट्टानाद ग्राह हो गया और सेकड़ों बर्षोंतक गोमतीमें रहा । वह बड़ा विकराल, अत्यन्त भयंकर तथा भद्रा गोद्रलूप धारण किये रहता था । पाइर्वमौलि रैवतक वर्षतक जंगलमें चार दाँतोंवाला हाथी हुआ । उसके शरीरक । रंग काजलके समान काला था । उसके पृष्ठ भागकी ऊँचाई सौ धनुषके बाबर थी । बज्जुल, कुरब, कुन्द, बदर, वेत, वॉस, केला, भोजपत्रका पेड़, कच्चार, चिंगार, अर्जुन, मन्दार, बकायन, अशोक, बरगद, आम, चम्पा, चन्दन, कटहल, गूलर, पीपल, खजूर, चिंजौरा नींबू, चिरींजी, आमदाढ़ा, आम्रपत्र तथा कमुक (पूर्णाफल) वे शृङ्खोमें परिसिण्डित रैवतकके विशाल बनमें वह महागजराज विचरा करता था ॥ ४-९ ॥

एक समय वैशाख मासमें वह गजराज पर्वतीय कन्दरामें निकलकर अपने गणोंके साथ चिंगाड़ता हुआ गोभीनी गङ्गामें स्नानके लिये आया । वहुत देरतक जलमें स्नान करके इधर-उधर सूँड़ धूमाते हुए उस गजराजने अपनी सूँड़के जलमें हाथियोंके सभी छोटे-छोटे खड़ोंको नहलाया । वह महाबलिष्ठ महान् ग्राह भी दैवकी प्रेरणामें उसी जलमें विद्यमान था । उसने दैवकी प्रेरणासे रोषसे भरकर उस गजराजका एक पैर पकड़ लिया । वह बलोन्मत्त गजराजको अपने धरमें खोन्च के गया । फिर हाथी भी उसे खोन्चकर जलके बाहर के आया । तस्वचात् उसने पुनः हाथीको खोन्चा । हथिनियाँ

और उसके बच्चे उस गजराजको संस्टंस उबारनेमें असमर्थ थे । इस प्रकार युद्ध करते और परस्पर एक-दूसरेको खोन्चते हुए उन दोनोंके पचपन वर्ष व्यतीत हो गये । सत्पुरुषोंके नेत्रोंके समक्ष यह बटन घटित हो रही थी । इस प्रकार कष्टमें पङ्किर कालपाशके वर्णभूत हो पूर्वजन्मकी बातोंको समरण करनेवाल वह महान् गजराज प्रेमलक्षणा-भक्तिसे श्रीहरिके चरणोंका आश्रय ले उन्हींना चिन्तन करने लगा ॥ १०-१६ ॥

गजेन्द्र बोला—दे श्रीकृष्ण ! हे कृष्ण (अर्जुन) के सामा तथा हे श्याम शरीर धारण करनेवाले देवेश्वर विष्णु-देव ! आप श्रीकृष्णको मेरा माणाम प्राप्त हो । हे पूर्ण प्रभो ! हे परमपावन पुण्यकार्त्ते ! हे परमेश्वर ! पापके पाशमें मेरी रक्षा करो, रक्षा करो * ॥ १७ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार ग्राहने जिसका पैर पकड़ लिया था, उस हाथीको अपना स्मरण नरता जान, दीनवल्स्तल श्रीहरि गहडपर आलूद हो बड़े वेगमें दौड़ आये । उन्होंने स्वयं ही गहडसं उत्तरकर दौड़िते हुए उस ग्राहपर चक्र चलाया । चक्रके बहाँ पर्हुचनेके पहले ही ग्राहका वह अद्भुत मस्तक उसके धड़सं कटकर अलग हो गया, जैसे दीनताके प्राप्त होते ही धन चला जाता है । इसके बाद वह चक्र गोमतीके कुण्डमें महान् शब्द करता हुआ गिरा । उसने वहाँके समस्त प्रस्तर-समूहोंको चक्रसे चिह्नित कर दिया । उसकी नेमिकी रगड़में वहाँ कल्याणकारी ‘चक्रतीर्थ’ प्रकट हो गया । राजन् ! उस चक्रतीर्थके दर्शनमें ब्रह्महत्या छूट जाती है । मस्तक कट जानेसे ग्राहने अपना पूर्वलूप धारण कर लिया और श्रीकृष्णके अनुग्रहसे उस हाथीका दिव्य रूप हो गया ॥ १८-२२ ॥

फिर श्रीहरिकी परिकमा, नमस्कार और लुति करके हाथ जोड़े हुए वे दोनों कुबेर-मन्त्री पुनः अपने स्थानको

* श्रीकृष्ण कृष्णसत्त्वं कृष्णमुद्भवन

कृष्णय ते प्रणतिरस्तु सुरेण विष्णो ।

पूर्णप्रभो परमपावन पुण्यकार्त्ते

मी पापि पापि परमेश्वर पापपाशात् ॥

(गं०, द्वारका० ११ । १०)

चले गये । देवतालोग फूल बरसाते हुए जय-जयकार करने लगे । भगवान् प्रङ्गतिसे परे विद्यमान अपने साक्षात् धाममें चले गये । जो नरशेष चक्रतीर्थकी इस कथाको सुनता है, वह चक्रतीर्थमें स्नान करनेका फल पाता है—

इस प्रकार श्रीगर्ग-सहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलादव-संवादमें चक्रतीर्थकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें गज और श्राहका शापसे उद्धार नामक ग्रन्थहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

बारहवाँ अध्याय .

महामुनि त्रितके शापसे कक्षीवानका शङ्करूप होकर सरोबरमें रहना और श्रीकृष्णके द्वारा उसका उद्धार होना; शङ्कोद्धार-तीर्थकी महिमा

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! द्वारकामें जो 'शङ्कोद्धार' नामक तीर्थ है, वह सब तीर्थोंमें प्रधान है । जो मनुष्य उस तीर्थमें स्नान करके सुवर्णांक दान देता है, वह समूर्ण उपद्रवोंमें रहित विष्णुलोकमें जाता है ॥ १ ॥

एक समय श्रीकृष्णभक्त शान्तचित्त महामुनि त्रितीर्थयात्राके प्रसङ्गते आनन्ददेशमें आये । वहाँ एक सुन्दर सरोबर देवकर मुनिने उसमें स्नान करके श्रीहरिकी पूजा की । उस पूजामें सुन्दर लक्षणोंमें युक्त जो महाशङ्क वे बजाया करते थे, उमे उन्हींकी शिष्य कक्षीवानने अत्यन्त लोभके कारण चुरा लिया । पूजाका शङ्क चुराया गया देख मुनिवर त्रित कुपित होकर बोले—‘जो मेरा शङ्क ले गया है, वह अवश्य ही शङ्क ही जाय ।’ कक्षीवान् तत्काल शापसे पीड़ित हो शङ्क ही गया और गुरुके चरणोंमें गिरकर बोला—‘भगवन् ! मेरी रक्षा कीजिये ।’ त्रितमुनि शीघ्र ही शान्त हो गये और बोले—‘दुर्बुद्धे ! यह तुमने क्या किया ? चोरीके दोषसे जो पाप हुआ है, उसका फल भोग । मेरी बात छठी नहीं हो सकती । तू यहाँ श्रीकृष्णके चरण-कमलोंका चिन्तन करता रह; वे ही तेरा उद्धार करेंगे’ ॥ २-५६ ॥

राजन् ! यों कहकर जब महामुनि त्रितदेव वहाँसे चले गये, तब शङ्करूपधारी कक्षीवान् उस सरोबरमें कूद पड़ा और ‘कृष्ण ! कृष्ण !’ पुकारता हुआ सौ वर्षोंतक वहाँ रहा ॥ ७-८ ॥

तदनन्तर भक्तवस्तु परिपूर्तम साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण उस सरोबरके तटपर आये और उसे अभय-दान देते हुए बोले—‘हरो मत ।’ मेष-गर्जनाके समान

इसमें संचाय नहीं है । जो एकाग्रचित्त हो गेज और श्राहकी इस पुण्यमयी कथाको सुनता है, उसके हुरे स्वन नष्ट हो जाते हैं तथा निश्चय ही उसे अच्छे स्वन दिखायी देते हैं ॥ २३-२६ ॥

भगवान् त्रित वह गम्भीर वाणी सुनकर वह जलचर शङ्क चीख उठा—‘देवदेव ! जगत्पते !! मेरा रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ।’ तब सबैसामर्यादाली शुपापरायण भगवानने नागराजके शरीरकी भाँति अपनी हृष्ट पुष्ट भुजाके द्वारा उस भक्त शङ्कका उसी प्रकार जलम उद्धार किया, जैसे किसी समय उन्होंने गजका उद्धार किया था । कक्षीवान् उसी क्षण शङ्कका रूप छोड़कर दिव्यरूप-धारी हो गया और हाथ जोड़ श्रीहरिको नमस्कार करके उनकी स्तुति करने लगा ॥ ९-१२ ॥

कक्षीवानने कहा—वासुदेव ! आपको नमस्कार है । गोकिन्द ! पुरुषोत्तम ! दीनवस्तुल ! दीनानाथ ! द्वारा-नाथ ! परमेश्वर ! आपको मेरा बारंबार प्रणाम है । आपने ही ध्रुवको ध्रुवपद प्रदान किया, प्रह्लादकी पीड़ा हर ला, गजराजका उद्धार किया तथा राजा वल्लीका भेट स्वीकार की; आपको बारंबार नमस्कार है । द्रौपदीका चीर बढ़ाकर उसकी लाज बचानेवाले आप श्रीहरिकी नमस्कार है । विष, अग्नि और बनवासमें पाण्डवोंकी रक्षा करनेवाले पाण्डव-सहायक आपको नमस्कार है । यदुकुलके रक्षक तथा इन्द्रके कोपसे ब्रजके गोपोंकी रक्षा करनेवाले आपको नमस्कार है । गुरुको, माता देवकीको और ब्राह्मणको उनके मरे हुए पुत्रोंको ल्यकर देनेवाले श्रीकृष्ण ! आपको बारंबार नमस्कार है । जरासंधकी कैदमें पड़े हुए नरशोंको वहाँसे छुटकारा दिलानेवाले, राजा नृगका उद्धार करनेवाले तथा सुदामाको दोनता हर लेनेवाले आप साक्षात् परमेश्वरको नमस्कार है । आप वासुदेव श्रीकृष्णको नमस्कार है । संकरण, प्रद्युम्न और अनिश्चको भी

नमस्कार है। इस प्रकार चतुर्भूहस्तपद्मार्हा आप परमेश्वरको मेरा प्रणाम है। देवदेव! आप ही मेरी माता, आप ही पिता, आप ही बन्धु, आप ही भवा, आप ही विद्या, आप ही धन और आप ही मेरे सब कुछ हैं॥ १३—१९॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार श्रीहरिकी स्तुति के प्रेम पूरित कर्त्तवान् एक श्रेष्ठ विभानपर आरुद्ध हो यादवोंके देखते-देखते, से मङ्गो सूर्योंके स्मान तंजस्वी होकर,

इसे दिशाओंको उद्धासित करता हुआ समस्त उपद्रवोंसे रहित विष्णुधाममें चला गया। मैथिलेश्वर ! श्रीहरिने जिस सरोवरके तटपर शङ्काका उद्धार किया था, वह उस घटनाके कारण ही परम पुण्यमय 'शङ्कोद्धार-तीर्थ'के नामसे प्रसिद्ध हो गया। जो श्रेष्ठ मानव शङ्कोद्धारकी इस कथाको सुनता है, वह शङ्कोद्धार तीर्थमें स्नान करनेका फल पा जाता है—इसमें संशय नहीं है॥ २०—२३॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकालषणके अन्तर्गत नारद-बहुनाश्व-संवादमें 'शङ्कोद्धार-तीर्थका साहात्म्य'

नामक बाबहवो अध्याय पूरा हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

प्रभास, सरस्वती, वोधपिपल और गोमती-सिन्धु-संगमका माहात्म्य

श्रीनारदजी कहते हैं—महामन ! विदेशराज ! प्रभास तीर्थन्। भी माहात्म्य सुनो, जो नवंगामपद्मार्ही, पुण्यदायक तथा तेजकी वृद्धि करनेवाला है। राजन् ! सिंहराशिमें बृहस्पतिके रहन गोदावरीमें, कुम्भगत बृहस्पतिके होनेपर हरक्षेत्र (हरद्वार) में, सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें और चन्द्रग्रहणके अवसरपर काशोंमें स्नान और दान करके मनुष्य जिस पुण्यको पाता है, उसमें सौमुना पुण्य प्रभास-क्षेत्रमें प्रतिदिन स्नान करनेपर प्राप्त होता रहता है। दक्षके द्वापमें राजयक्षमा नामक रोग हो जानेपर नक्षत्रोंके स्वार्मा चन्द्रमा जहा स्नान करके तत्काल शाप दोपम् मुक्त हो गये और पुनः उनकी कलाओंका उदय हुआ, वही 'प्रभासतीर्थ' है॥ ४—४॥

राजन् ! उस तीर्थमें परम पुण्यमर्थी पश्चिमवाहिनी सरस्वती प्रवाहित होती है। उनके जलमें स्नान करके पापी मनुष्य भी साक्षात् ब्रह्ममय हो जाता है। नरेश्वर ! सरस्वतीके

तटपर 'वोधपिपल' नामसे प्रसिद्ध तीर्थ है, जहाँ भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवों परम कल्याणमय भागवत-धर्मका उपदेश दिया था। राजन् ! उस वोधपिपलकी विधिवत् पूजा करके, मिर नवानं जो उसका स्वर्ण फरता है और ब्रह्मसम्मित भागवतपुराणको सुनता है—मनको संयममें रखते हुए मौन-भावन भागवतका आशा इलोक या नोथाई इलोक भी सुन लेता है—उसके हाथमें भगवान् विष्णुका परमपद आ जाता है, प्रथात् उसके लिये परमपदका प्राप्ति निश्चित हो जाता है। जो प्रभासमें भाद्रपद मासकी पूर्णिमा तिथिको सोनेके सिंहामनसे युक्त श्रीमद्भागवतपुराणका दान करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। जिन्होंने कहीं या कभी श्रीमद्भागवतपुराण नहीं सुना, उन भूमियासी मनुष्योंका जन्म व्यर्थ चला गया। जिन्होंने भागवतपुराण नहीं सुना, जिनके द्वारा पुण्य पुरुष परमात्मार्की आराधना नहीं की गयी तथा जिन लोगोंने भूमिदेवों-ब्राह्मणोंके मुखरूपी अग्निमें उत्तम

* वासुदेव नमस्तेऽन्तु गोविन्द पुरुषोत्तम । दीनवस्तुल दीनेश द्वारकेश परेश्वर ॥

धृष्णे धृष्णपदं रात्रे प्रहादस्तीर्थारिणे । गजसोद्धारिणे तुम्यं बलेवलिविदे नमः ॥

द्रौपदीचौरसंत्राणकारिणे हरये नमः । गराम्बिनवनवासेन्यः पाण्डवाना सहायिने ॥

यादवत्राणकत्रे च शकादाभाररक्षिणे । शुरुमानृद्धिजाना च पुत्रदत्रे नमो नमः ॥

जरातंथनिरोशननृपाणां भेषकारिणे । नृगसोद्धारिणे साक्षात् सुदामो दैव्यहारिणे ॥

कासुदेवाय कृष्णाय नमः संकरणाय च । प्रशुभ्यायानिरुद्धाय चतुर्भूष्माय ते नमः ॥

त्वमेव भाना च पिता त्वमेव त्वमेव वश्वश सखा त्वमेव । त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

(गर्ग०, द्वारका० १२ । १३—१९)

भोजनकी आहुति नहीं दी, उन मनुष्योंका जन्म व्यथं चला गया॥ ५—११ ॥

द्वारकामें गोमती और समुद्रका संगम सब तीर्थोंका राजा है, जिसमें स्नान करके मनुष्य निर्मल बैकुण्ठधामको प्राप्त होता है। गङ्गासागर-संगम-तीर्थमें स्नान करनेसे सौ अश्व-मेषधर्योंका पुण्यफल प्राप्त होता है। उससे भी सहस्रगुना पुण्य गोमती सागर-संगममें स्नान करनेसे सुलभ होता है। इसी विश्वमें पुराणवेत्ता पुरुष इस पुरातन इतिहासका कथन किया करते हैं, जिसके श्रवणमात्रसे मनुष्य पाप-तापसे मुक्त हो जाता है॥ १२—१४ ॥

पूर्वकालमें हस्तिनापुरमें राजमार्गपति नामक एक श्रेष्ठ वैश्य निवास करता था। वह महान् गौरवशाली तथा कुबेरके समान निधिपति था। अगे नल्कर वह वैश्य वेश्याओंके प्रमङ्गमें रहने लगा। वह विटों (धूतों और लम्पटों) की गोष्ठीमें वडा चतुर समझा जाता था। जुआ न्वेष्में उसकी बड़ों आनंदिती थीं। वह लोभ, मोह और मदमें उन्मत्त रहता था। वह महादुष्ट वैश्य सदा शृणु बोलता और कुकर्ममें लगा रहता था। उसने ब्राह्मणों, पितरों और देवताओंके निमित्त कभी धनका दान नहीं किया। वह यदि कहीं दूरसे भगवान् र्ण कथा-वार्ता होता देख लेता तो कतराकर जलदी ही और दूर निकल जाता था। उसने माँ बापकी कभी सेवा नहीं की और अपने पुत्रोंको भी धन नहीं दिया। वह ऐसा दुर्बुद्धि और खल था कि धनाद्य होनेपर भी अपनी पत्नीको ल्याग-कर उससे अलग रहने लगा। वेश्याओंके सङ्गमें रहनेसे उसका आधा धन नष्ट हो गया, आधा चौर चुरा ले गये और जो कुछ थोड़ा-सा पृथ्वीमें गङ्गा हुआ था, वह स्वतः वहीं विलीन हो गया; क्योंकि पुण्यसे लक्ष्मी बढ़ती है और पापसे निश्चय ही नष्ट हो जाती है॥ १५—२० ॥

इस प्रकार श्रीर्गी-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'प्रभास, सरस्वती, बोधपिण्डल तथा गोमती-सिंचु-संगमका माहात्म्य' नामक तेहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

इस प्रकार वेश्याओंमें आसक्त हुआ वह महादुष्ट वैश्य निर्धन हो गया और उसी रमणीय नगर हस्तिनापुरमें चोरीका काम करने लगा। उन दिनों वहाँ राजा शतनु राज्य करते थे। उन्होंने चोरीके कर्ममें लो हुए उस वैश्यको रसियोंमें बाँधकर अपने देशसे बाहर निकलवा दिया। बनमें रहकर वह जीवोंकी हिसा करने लगा। उन्हीं दिनों वहाँ बहुत वर्षोंतक वर्षा नहीं हुई। तब दुर्भिक्षसे पीड़ित हुआ वह वैश्य पश्चिम दिशाकी ओर चल गया। वहाँ एक बनमें किसी सिंहने अपने दंजेमें उसको मार डाला। उसी समय यमदूत आये और उसे पाशोंमें बाँधकर नीचे मुख करके लटकाये तथा कोडोंमें पीटते हुए यमलोकके मार्गाशर ले चले। तदनन्तर कोई महान् ग्रह उसकी बॉहका भांस लेकर आकाशमें उड़ गया और अपनी चोंचमें तुरंत ही उसको खाने लगा। अन्य पक्षी जिन्द मास नहीं मिला था, वे सब आतुर हो उसांसमें अपने लिये भी भांस ग्रहण करने लगे। इस प्रकार चील आदि पक्षियोंका वहाँ महान् कोलाहल होने लगा; तथापि उस गृष्णने अपने मुखसे उस मासको नहीं छोड़ा। वह उड़ते-उड़ते पश्चिम दिशाकी ओर चला गया। वहाँ उसीके समान शक्तिशाली एक दूसरे गृष्णने उसके मुखपर अपनी तीव्री चोंचसे ग्रहार किया। तब उसके मुँहमें वह मास गोमती सागर-संगममें गिर गया। उस तीर्थमें उसके मांसके छूटने ही यह महापातकी वैश्य यमदूतोंके पाशोंको स्वयं तोड़कर नार भुजाओंसे युक्त देवता हो गया और उन दूतोंके देखते-देखते दिव्य विमानपर आसूढ़ हो सम्पूर्ण दिग्गाओंको प्रकाशित करता हुआ वह श्रीहरिके परमधाममें चला गया॥ २१—३१ ॥

जो मनुष्य गोमती-समुद्र-संगमके इस माहात्म्यको सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है॥ ३२ ॥

* पुराणं न श्रुतं येत्पु श्रीमद्भागवतं कन्चिद् । तेषां वृषा जन्म गतं नराणा भूमिष्वासिनाम् ॥
यैनं श्रुतं भागवतं पुराणं नारायणो ये: पुरुषः पुराणः । इतं मुखे नैव भरामराणा तेषां वृषा जन्म गतं नराणाम् ॥

चौदहवाँ अध्याय

द्वारका क्षेत्रके समुद्र तथा रैवतक पर्वतका माहात्म्य

श्रीनारदजी कहने हैं—सबको सम्मान देनेवाले नरेश ! अब द्वारावती और समुद्रके भाहात्म्यका वर्णन सुनो, जो सब पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदायक तथा उन तीर्थोंमें स्नानका फल देनेवाला है ॥ १ ॥

महीपते ! जो वैद्याख मासकी पूर्णमासीको व्रत रहकर, स्नानपूर्वक नदीपतिमयद्वाका विचित्रत् पूजन और उसे नगस्कर करके रत्नोंका दान करता है, उसके शरीरमें तीनों देवता (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) निवास करते हैं तथा उसके दशन मात्रमें मनुष्य वृत्तार्थ हो जाता है । इतना ही नहीं—उसके शरीरके स्पर्शसे नल्काल ब्रह्माद्वया छूट जाती हैं तथा वह जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ-वहाँकी भूमि मङ्गलमयी हो जाती है । जगत्का वध नरेनेवाला पार्णा मनुष्य भी उस ग्रामदशन करके मरनेपर अपने पाप-समूहका उच्छेद कर ढालता और परम भोक्षको प्राप्त होता है ॥ २-५ ॥

मानद ! अब रैवत पर्वतका माहात्म्य सुनो, जो समस्त पापोंको दूर करनेवाला, पुण्यदायक तथा भोग और भोक्ष प्रदान करनेवाला है । गौतमका पुञ्च मंधावी बड़ा बुद्धिमान् और विष्णुभक्त था । उसने भी अयुत (दस लाख) वर्षोंतक विन्याचल पर्वतपर तपस्या की । एक दिन साधात् अपान्तरतमा नाभक मुनि उसमें मिळानेके लिये आये, परंतु उल्कट तपस्वी मेधावी अपने आसनमें नहीं उठा । तब अपान्तरतमा रोपमें भर गये और उसे शाप देते हुए थोले—संतोंके प्रति भक्ति न रखनेवाले पापात्मन् ! तुम्हें अपने तपोबलमर बड़ा गर्व हो गया है । तेरा स्थिति पर्वतके समान है । अतः दुर्मते ! तू यहीं पर्वत हो जा ।' यों कहकर साधात् अपान्तरतमा मुनि चले गये । मेधावी शैलभावको पा । हो श्रीशैलका पुत्र हुआ । परंतु वह महाबुद्धिमान्, तपस्वी तथा विष्णुभक्तिके प्रभाव-से पूर्वजन्मकी बातोंका स्वरण करनेवाला हुआ ॥ ६-११ ॥

एक दिन मेरे मुखसे द्वारकापुरीका माहात्म्य सुनकर श्रीशैलके पुत्रने कहा—‘मूने ! आप शीघ्र राजा रैवतके पास जाइये और उनसे मेरी कही हुई प्रार्थना सुना दीजिये। क्योंकि आप वहे दीनवत्सल हैं । ये महाबली राजा रैवत यदि प्रसन्न हो जायें और मुझे यहाँसे उठा ले चलें, तब मेरा द्वारकापुरीके क्षेत्रमें निवास सम्भव होगा ।’ विष्णु-

भक्तोंको शान्ति प्रदान करना तो मेरा काम ही ठहरा । मैंने उस पर्वतकुमारकी बात सुनकर शीघ्र ही राजा रैवतके पास जा उसकी कही हुई बात सुना दी । राजन् ! मेरी बात सुनकर राजा रैवत वह प्रसन्न हुए और बोले—‘यहाँ कोई पर्वत नहीं है; अतः उस शैलपुत्रको दोनों भुजाओंसे उखाड़ कर वहा लाऊँगा और द्वारकामें उसकी स्थापना करूँगा ।’—ऐसी प्रातशा उन्होंने की ॥ १२-१६ ॥

राजा रैवत उस पर्वतहो चुग लानेके लिये ज्यों ही प्रसित हुए, उनसे भी पहले मैं श्रीशैलको नगरमें जा पहुँचा । मुझे कलह प्रिय लगता है, इमालिये मैंने महात्मा श्रीशैलको राजाका उसके पुत्रकी ज्ञोरीं; समन्ध रखनेवाला भार वृत्तान्त कह सुनाया । श्रीशैलन पुत्रके मोहवडा उसको डॉट-कर कहा—‘नू कहा जा रहा है ?’ इसके बाद श्रीशैल गिरिराज सुमेर और नगधर हिमवान्में पास गया । वह धर्मात्मा पर्वत पुत्र स्नेहम वहुत व्याकुल था । उसने उन पर्वतराजोंसे कहा—‘मुझे दैवने यहाँ एक पुत्र दिया है, मेरे बहुत मेरे पुत्र नहीं हैं; उस एकनो भी यहाँसे हर ले जानेके लिये महावर्ली राजा रैवत आये हैं । इन महात्मा राजाके कारण मेरा पुत्र विदेश चला जा गहा है । मैं पुत्र स्नेहरे विकल होकर आप दोनोंकी शरणमें आया हूँ । आपलोग राजा रैवतको जातकर शीघ्र ही मुझे मेरा पुत्र दिल दें ॥ १७-२२ ॥

जातिके प्रति पक्षपात होनेके कारण वे दोनों पर्वत, सुमेर और हिमालय; लाको दूसरे पर्वतोंसे धिरे हुए तुरंत ही युद्धके लिये आये । उधर हनुमान्-जीने जैम द्रोणगिरिको उखाड़ लिया था, उसी प्रकार रेवतने अपनी दोनों भुजाओं-से उस पर्वतको उखाड़कर बलपूर्वक ऊपर उठा लिया और ज्यों ही वहाँसे चलनेका विचार किया, ज्यों ही अख-शख धारण किये बहुत-से पर्वतोंको वहाँ उपस्थित देखा । उन्हें देखकर राजाने उखाड़कर अद्वैतास किया, मानो विद्युत्यात्-का गढ़गढ़ाहट हुई हो । उनके उस सिंहनादसे सातों लोकों और सातों पातालोंके साथ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड गूँज उठा । उसी समय उन समस्त योद्धाओंके हाथोंसे सरे अख-शख स्वतः गिर गये । जब वे पर्वत निःशर्क्ष हो गये, तब बास-बार

कोलाहल करते हुए मार्यमें पर्वतसहित जाते हुए रैवतको मुक्तों
और बुटनोंसे उसी प्रकार मारने लो, जैसे पूर्वकालमें द्वोणाचलके
रक्षक महावली हनुमानजीके पीछे उन्हें भार गिरानेके लिये ये
कुछ दूरतक गये थे । उन पर्वतोंके चोट करनेपर भी राजा
रैवतने अपने हाथमें उक्त पर्वतको नहीं छोड़ा ॥ २३-२८ ॥

“ इपर मेरे ही मुखमें राजा रैवतके ऊपर पर्वतोंका
आक्रमण सुनकर भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्त-
की सहायताके लिये तत्काल आकाशमार्गमें आ गये और
राजाको अपना उत्कृष्ट तेज देकर ‘इरो मत’—यों कहकर
अभयदान दे, तुरंत वहीं अन्तर्धान हो गये । भगवान्के
चले जानेपर उन्हींके तेजसे सम्पन्न हो राजा रैवतने एक
हाथपर उस पर्वतको रख लिया और बज्रको भी चूर कर देनेवाले
अपने मुक्केसे सुमेह पर्वतको इस प्रकार मारा, मानो महावली
ब्रजधारी इन्द्रने किनी पवर्तपर बज्रमें प्रहार किया हो । उनके
मुक्केकी मारसे मेरु पर्वत व्याकुल होकर गिर पड़ा । फिर
हिमवान्को भी अपने वाहुवंगसे धराशायी करके उस रण

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाद्व-संवादमें ‘समुद्र और रैवतकाचलका

माहात्म्य’ नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

यज्ञतीर्थ, कपिटङ्कतीर्थ, नृग्रूप, गोपीभूमि तथा गोपीचन्दनकी महिमा;
द्वारकाकी मिठ्ठीके स्पर्शसे एक महान् पापीका उद्धार

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! उस पर्वतपर पूर्व-
कोलमें राजा रैवनने यज्ञतीर्थका निर्माण किया, जहाँ एक
यज्ञ करके मनुष्य कोटियश्चोंका फल पाता है । वहाँ ‘कपिटङ्क’
नामक तीर्थ है, जो एक कपिके मार गिराये जानेम प्रकट
हुआ था । राजन् ! रैवतक गिरिपर वह तीर्थ बब पापोंका
नाश करनेवाला है ॥ १-२ ॥

भौमासुरका सखा एक द्विविद नामक वानर था, जो
बहाँ ही दुष्ट था । उसे बल्यामजीने बज्रके समान चोट
करनेवाले मुक्केसे जहाँ मारा था, वही स्थान ‘कपिटङ्कतीर्थ’
है । वह वानर सत्पुरुषोंकी अबहेलना करनेवाला था, तो
भी वहाँ मारे जानेम तत्काल मुक्त हो गया । नरेश्वर !
उस तीर्थमें स्थान करनेके लिये सदा देवतालोग आया
करते हैं । ‘कलविहृतीर्थ’की यात्रा करनेपर कोटि गोदानका
फल प्राप्त होता है । इससे दूना पुण्य शुभ दण्डकारण्यकी

दुर्भद नरेशने विन्ध्य आदि अन्य पर्वतोंको अपने पैरोंसे
रौंद डाला ॥ २९-३३ ॥

विन्ध्य आदि सभी पर्वत उनके पैरोंके आशातसे कुचले
जानेके कारण भयभीत हो युद्धका मैदान छोड़कर इसों
दिशाओंमें भाग चले । इस प्रकार पर्वतोंके समुदायपर विजय
पाकर पर्वतके समान सुहृद शरीरवाले राजा रैवतने उस
पर्वतको विजय-गर्जनाके साथ ले जाकर आनंददेशमें
स्थापित कर दिया ॥ ३४-३५ ॥

राजन् ! वह पर्वत राजा रैवतके ही नामपर ‘रैवतका-
चल’के स्पर्शमें विल्यात हुआ । भगवान्के प्रति भक्तिभावसे
युक्त वह श्रेष्ठ पर्वत आज भी द्वारका क्षेत्रमें विराजमान है ।
उसके दर्शनमात्रसे ब्रह्महत्याका पाप कूट जाता है । उसके
स्पर्शमात्रसे मनुष्य सौ यज्ञोंका फल प्राप्त कर लेता है । उस
पर्वतकी यात्रा और परिक्रमा करके नतमस्तक हो जो मनुष्य
ब्राह्मणको भोजन देता है, वह भगवान् विष्णुके परमपदको
प्राप्त कर लेता है ॥ ३६-३८ ॥

यात्रा करनेपर मिलता है । उसमें भी चौगुना पुण्य सैन्धव-
नामक विशाल वनकी यात्रा करनेपर सुलभ होता है ।
उसकी अपेक्षा भी पाँचगुना अधिक पुण्य जम्बूमार्गकी
यात्रा करनेसे मनुष्यको मिल जाता है । पुष्करतीर्थके वनमें
उससे भी दसगुना पुण्य प्राप्त होता है । उससे दसगुना
पुण्य ‘उत्तमलावर्ततीर्थ’की यात्रासे सुलभ होता है । उसकी
अपेक्षा भी दसगुना पुण्य ‘नैमित्तिरथतीर्थ’में बताया गया है ।
विदेशराज ! नैमित्तिरथमें भी सोगुना पुण्य ‘कपिटङ्कतीर्थ’में
स्थान करनेमें प्राप्त होता है ॥ ३-८ ॥

द्वारकामें एक ‘नृग्रूप’ है, जो तीर्थोंमें सर्वोत्तम तीर्थ
है । उसके दर्शनमात्रसे ब्रह्महत्याका पाप कूट जाता है । राजा
नृगने अनजानमें एक ब्राह्मणकी गायको दूसरे ब्राह्मणके
हाथमें दे दिया था । उसी पापमें उन्हें गिरगिटका शरीर
धारण करके कूपमें रहना पड़ा । दानियोंमें उपर्युक्त राजा

दृग भी एक छोटे-से पापके कारण अन्धकूपमें गिरे और नार युगोतक उसीमें रहे । फिर सत्पुरुषोंके देखते-देखते भगवान् श्रीकृष्णने उनका उद्धार किया । महीपते ! उसी दिनसे 'ब्रुग्वूप' तीर्थस्तरूप हो गया । कार्णिककी पूर्णिमाको उस कूपके जलसे स्नान करना चाहिये । ऐमा करनेवाला मनुष्य कोटिजन्मोंके किये हुए पापसे छुटकारा पा 'जाता है, इसमें संशय नहीं है । वहाँ विधिपूर्वक जो एक भी गोदान करता है, वह निसंदेह कोटि गोदानके पुण्यफलका भागी होता है ॥ १-१३३ ॥

राजन् ! अब 'गोपीभूमि'का माहात्म्य सुनो, जो पापहारी उत्तम तीर्थ है । उसके श्रवणमात्रमें कर्मबन्धनसे छुटकारा मिल जाता है । जहाँ गोपियोंने निवास किया था, उस निवासके कारण ही वह स्थान 'गोपीभूमि'के नामसे प्रसिद्ध हुआ । वहाँ गोपियोंके अङ्गरागसे उनपर उत्तम गोपीचन्दन उपलब्ध होता है । जो अपने अङ्गोंमें गोपीचन्दन लगाता है, उसे गड्ढास्नानका फल मिलता है । जो भद्रा गोपीचन्दन-का मुद्राओंसे मुक्ति होता है, अर्थात् गोपीचन्दनका छापातिलक लगाता है, उसे प्रतिदिन महानदेशोंमें स्नान करनेका पुण्यफल प्राप्त होता है । उसने सहस्र अश्वेष और सौ राजसूय यज्ञ वर लिये । सब तीर्थोंका भवन, दान और व्रतोंका अनुष्ठान भी कर लिया । निसंदेह वह नित्य गोपीचन्दन लगानेमात्रमें कृतार्थ हो जाता है । गड्ढकी मिट्टीमें दुगुना पुण्य चित्रकूटकी रजका भाना गया है, उससे भी दुगुना पुण्य पञ्चवटीकी रजका है, उसका अपेक्षा भी सौगुना पुण्य गोपीचन्दनस्त्रूप रजका है । गोपीचन्दनको दुम बृन्दावनकी रजके समान समझो । जिसके शारीरमें गोपीचन्दन लगा हो, वह सैकड़ों पापोंसे युक्त हो तो भी उसे यमराज भी अपने साथ नहीं ले जा सकते, फिर यमदूतोंकी तो बात ही क्या है । पार्ण होनेपर भाँ जो पुरुष प्रतिदिन गोपीचन्दन-का तिलक धारण करता है, वह श्राविकें गोलोकधाममें जाता है, जहाँ प्राकृत गुणोंका प्रवेश नहीं है ॥ १४-२२ ॥

सिन्धुदेशका एक राजा था, जिसका नाम दीर्घवाहु था । वह अन्यायपूर्ण जीवन वितानेवाला, दुष्टात्मा और सदा वेश्यालङ्घमें रत रहनेवाला था । उसने भारतवर्षमें सैकड़ों ब्रह्माहत्याएँ की थीं । उस दुरात्माने दस गर्भवती छियोंका वध किया था । उसने शिकार खेलते समय अपने बाण-समूहोंसे कपिला गौओंकी हत्या की थीं । एक दिन वह सिंधी घोड़ेपर चढ़कर मूरगयाके लिये बनमे गया । वहाँ

उसके कुपित मन्त्रीने राज्यके लोभसे उस महालल नरेशको तीर्थी धारवाली तल्वारसे उस बनमें ही मार डाला । उसको पृथ्वीपर पड़ा और मृत्युको प्राप्त हुआ देख यमके सेवक वांधकर परस्पर हर्ष प्रकट करते हुए उसे यमपुरी ले गये । उस पारीको सामने ले डाला देख बलवान् यमराजने तुरंत ही चित्रगुप्तमें पूछा 'इसके योग्य कौन-सी यातना है ?' ॥ २३-२८ ॥

चित्रगुप्तने कहा—गहाराज ! निसंदेह इसे चौरासी लाय नरकमें बारी बारीमें गिराया जाय और जबतक चन्द्रमा और सूर्य विद्यमान है, तबतक यह नरकका कष्ट भोगता रहे । इसने भारतवर्षमें जन्म लेकर एक क्षण भी कभी पुण्य कर्म नहीं किया है । इसने दस गर्भवती छियोंकी और असख्य कपिला गौओंकी हत्या की है । इसके सिवा बन्य पशुओंकी हत्या तो इसने हजारोंकी संख्यामें की है । इसलिये देवता और 'ब्राह्मणोंकी निन्दा' करनेवाला यह महान् पारी है ॥ २९-३१ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! उम भमय यमकी आज्ञामें यमदूत उस पापात्मको लेता कुर्मीपाक नरकमें ले गये, जिसका दीर्घ विस्तार एक सहस्र योजनका था । वहाँ विद्याल कड़ाहमें तपाया हुआ तंल भरा था । उस खौल्ते हुए तंलमें फेन उठ रहे थे । यमदूतोंने उस पारीको उसी कुर्मीपाकमें गिरा दिया । उसके गिरते ही वहाँकी प्रलश्यनिके नमान प्रचलित अग्नि तत्काल शीतल हो गयी । विदेहराज ! जैसे प्रह्लादको खौलते हुए तंलमें फेननेपर वह शीतल हो गया था, उसी प्रकार उस पारीको नरकमें वहाँकी व्याल शान्त हो गया । यमदूतोंने उसी समय यह विचित्र घटना महात्मा यमको बतायी । चित्रगुप्तके साथ धर्मराज वही चिन्नामें पड़े और सोचने ले—'इसने तो भूतलभर कभी कोई पुण्य नहीं किया है !' नरदवर । इसी समय धर्मराजकी सभामें व्यासजी पधारे । उनकी विचिपूर्वक पूजा करके परम बुद्धिमान् धर्मात्मा धर्मराजने उन्हें प्रणाम करके पूछा ॥ ३२-३६ ॥

यम बोले—भगवन् ! इस पारीने पहले कभी कहीं कोई युक्त नहीं किया है । इसलिये जिसमें फेन उठ रहा था, ऐसे खौलते हुए तंलसे भरे कुर्मीपाकके महान् कड़ाहमें इसको फेंका गया था । इसके डालते ही वहाँकी आग तत्काल शीतल हो गयी । इस सबैहके कारण मेरे चिच्चमें निच्छय ही बहा खेद है ॥ ३७-३८ ॥

श्रीव्यासजीने कहा—महाराज ! पाप-पुण्यकी गति उसी प्रकार बड़ी सूख्म होती है, जैसे सम्पूर्ण शास्त्रोंके विद्वानोंमें श्रेष्ठ प्रकावान् पुरुषोंने व्रद्धकी गति सूख्म नवार्थी है। दैवयोगसे इसको स्वयं ही प्रत्यक्ष एवं सार्थक पुण्य प्राप्त हो गया है। महामते ! जिस पुण्यमें वह शुद्ध हुआ है, उसे बताता हूँ; । जहाँ किसीके हाथसे द्वारकाकी मिट्टी पड़ी हुई थी, वहाँ इस पापीकी मृत्यु हुई है। उस मृत्युके प्रभावमें ही यह पापी शुद्ध हो गया है। जिसके अङ्गमें गोपीचन्दनका लेप हो, वह 'नर'से 'नारायण' हो जाता है। उसके दर्शन-

इस प्रकार श्रीगर्भ-सहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-न्यास-संवादमें 'कपिट्टू, नृग-कृप तथा गोपीमूर्ती महिमाका वर्णन' नामक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥



सोलहवाँ अध्याय

सिद्धाश्रमकी महिमाके प्रसङ्गमें श्रीराधा और गोपाङ्गनाओंके साथ श्रीकृष्ण और उनकी सोलह हजार रानियोंका समाप्ति

श्रीनारदजी कहते हैं—महामते विदेहराज ! अब सिद्धाश्रमका माहात्म्य सुनो, जिसका स्मरण करनेमात्रसे समस्त पाप छूट जाते हैं। जिसके स्वर्णमात्रसे साक्षात् श्रीहरिसे कभी वियोग नहीं होता, उसी तीर्थको पुराणवेत्ता पुरुष 'सिद्धाश्रम' कहते हैं। जिसके दर्शनमें सालोक्य, स्पर्शमें सार्थक्य, जिसमें स्नान करनेमें सारूप्य और जहाँ निवास करनेमें सायुज्य मोक्षकी प्राप्ति होती है, उसे ही 'सिद्धाश्रम' जानो ॥ १-३ ॥

एक समय चन्द्रानना भवीके मुखमें भिद्धाश्रम तीर्थका माहात्म्य सुनकर श्रीकृष्णके वियोगमें व्याकुल हुई श्रीराधाने उसमें नहानेका विचार किया। वैद्यानन् मासमें सूर्यग्रहणके पर्वपर सिद्धाश्रम तीर्थकी यात्राके लिये कदली-ननसे उठकर श्रीराधाने गोपाङ्गनाओंके सौ यूथ और समस्त गोपगांगोंके नाथ वहाँ जानेका मन-ही-मन निश्चय किया। श्रीदामाके शापके कारण हेनेवाले श्रीकृष्णवियोगके सौ वर्ष बीत चुके थे। श्रीराधिका शिविकामें आलू हुईं। उनपर छन्न-चॱ्वर हुलाये जाने लगे। इस प्रकार वे सती श्रीराधा आनंददेशके महतीर्थ सिद्धाश्रमको गयीं ॥ ४-७ ॥

नरेश्वर ! वहीं साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण अपनी सोलह हजार रानियोंके साथ यादवगणोंसे विरे हुए तीर्थयात्राके लिये आये। करोड़ों बल्लिंग गोपाल हाथोंमें अल-जल-

मात्रसे तत्काल ब्रह्महत्या छूट जाती है ॥ ३९-४२ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन ! यह सुनकर धर्मराज उसे ले आये और इच्छानुसार चलनेवाले एक विशेष विमानपर उसे बैठाकर उन्होंने प्रकृतिसे परे वैकुण्ठधारमको भैज दिया। गोपीचन्दनके सुयश (प्रताप)का शान उनको अक्षात् उसी समय हुआ। राजन ! इस प्रकार मैंने तुम्हें गोपीचन्दनकी महिमा बतायी। जो श्रेष्ठ मनुष्य गोपीचन्दनके इस माहात्म्यको सुनता है, वह महात्मा श्रीकृष्णके परमधारमें जाता है ॥ ४३-४४ ॥



लिये श्रीराधिकारी आशाके अनुसार सिद्धाश्रमकी चारों ओरसे रक्षा कर रहे थे। गोपियोंके सौ यूथ भी वडे शक्ति-शाली थे। वे, तथा अन्य गोपाङ्गनाएँ हाथोंमें बैतकी छड़ी लिये सिद्धाश्रममें विधिरूपक स्नान करती हुई श्रीराधाकी सेवामें तत्पर थीं। द्वारकावासी स्नानकी इच्छामें वहाँ आकर खड़े थे। शख्त और बेत्र धारण करनेवाले गोपोंने उन्हें मार-मारकर दूर हटा दिया। इर्मा समय भगवान् श्रीकृष्ण-की रानियोंने सिद्धाश्रममें प्रवेश किया। उन रानियोंने भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—'देवकीनन्दन ! आप सर्वत्र हैं, अतः हमें बताइये, यह कौन स्थी स्नान कर रहा है, जिसका वैभव अद्भुत दिलायी देता है तथा जिसका गौरव मान-कर समस्त यादव-पुंगव यहाँ भयभात से खड़े हैं। अहो ! यह किसकी प्रिया है, इसका क्या नाम है और यह कहाँकी रहनेवाली है ?' ॥ ८-१३ ॥

श्रीभगवान् थोले—ये साक्षात् वृग्भानुकी पुत्री कीर्तिनन्दिनी श्रीराधा हैं, जो सम्पूर्ण व्रजकी अर्धाश्वरी, गोपाङ्गनाओंकी सामिनी तथा मेरी प्राणवल्लभा हैं। ये व्रजसे गोपीगांगोंके साथ सिद्धाश्रममें स्नान करनेके लिये आयी हैं। इन्हींका गौरवसे ये यादव त्रस्त होकर खड़े हैं। इन्हींका यह अद्भुत वैभव है ॥ १४-१५ ॥

श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर अपने अनुगम रूप और

शैवनपर गर्व करनेवाली भायिनी सत्यभामा अपनी सौतोंके शीच धीरे-धीरे बोली—‘क्या राधा ही रूपवती हैं, मैं रूप-कली नहीं हूँ ! पूर्वकालमें चहुत-से लोगोंने मेरी याचना की थी। मैं अपने रूप और औदार्य-गुणसे सदा ही पूजित रही हूँ। सवियो ! मेरे रूपहे ही कारण शतधन्वाकी मृत्यु हुई, अक्ल और कृतवामिको यत्पुरीमें पलायन करना पड़ा। जो स्यमन्तक मणि प्रतिदिन अपने-आप आठ भार सुवर्णकी दृष्टि करती है, जिसके रहनेसे हुर्भिक्ष, महामारी आदि कष्ट स्वतः भाग जाने हैं तथा जिसकी पूजाके स्थानमें सर्प, आषि-व्याधि, अमङ्गल और मायावी लोग नहीं रह पाते, मेरे पिताने वही स्यमन्तक मणि मेरे दहेजमें दी थी। उस मणिसे मेरे घरमें भी सम्पूर्ण अद्भुत वैभव प्रकट हो गया है। मैं अपने महान् प्रेमसे श्रीकृष्णको वशमें रखती हूँ, उनके साथ गुरुपर बैठकर यात्रा करती हूँ। प्राञ्ज्योतिष्पुरमें भौमासुरके साथ जो महान् युद्ध हुआ था, उमे मैंने अपनी आँखोंसे देखा है। मेरी ही कृपासे तुम भव प्राञ्ज्योतिष्पुरसे द्वारकापुरीमें आयी और सब-की-सब श्रीकृष्णकी पत्नी हुई, इसमें संशय नहीं है। मेरी ही बातका आदर करके इन श्रीकृष्णने इन्होंने देवमाता अदितिको उनके दोनों कुण्डल अर्पित किये। एरावतके वंशमें उत्पन्न बड़-बड़े गजराज, जो भौमासुरकी सम्पत्ति-ये, मेरी ही इन्होंने महात्मा श्रीकृष्णद्वारा द्वारकामें लाये गये। मेरे ही कारण श्रीहरिने देवराज इन्होंने भी महान् वैर टान लिया। मेरे द्वारपर वृक्षराज पारिजात सदा सुशोभित होता है। मैंने अपने पालिप्रतिष्ठानमें ही श्रीकृष्णको वशमें कर रखा है। मैंने समलूप सामग्रियोंके साथ नारदर्जाके हाथ श्रीकृष्णका दान कर दिया था। मेरे समान गोरव और वैभव किनी भी छोको नहीं प्राप्त हो सकता। रूप और उदासना भी मेरे तुल्य किसी भी छोको नहीं है। फिर राधाकी तो बात ही क्या है ? जिनके रूपपर नेदिराज विशुपाल आदिने रणभूमिमें श्रीकृष्णके साथ युद्ध देइ दिया था, उन दक्षिणीकांका रूप-सौन्दर्य क्या किसमें कम है ? सुन्दर भौद्वेषाली बहिन दक्षिणी ! तुम कोंकर रूपवती नहीं हो ! सलियो ! राधा एक गोपकी कन्या है और तुम सब राज-कुमारियाँ हो; सभी धन्य और मान्य हो तथा मानवती दक्षिणीमें भेष हो’ ॥ १६-२९ ॥

सिधिलेखवर ! सत्यभामाके इस प्रकार कहनेपर दक्षिणी आदि सभी श्रेष्ठ रानियाँ मानवती हो गयीं। उन सबको अपने कुल, कौशल, शील, धन, रूप और शैवनपर गर्व था। वे आठों पटरानियाँ सबको मान देनेवाले श्रीकृष्णसे बोलीं ॥ ३०-३१ ॥

रानियाँ बोलीं—प्रभो ! आपके मुँहसे पहले हमने राधाके रूपकी बड़ी बड़ाई सुनी है, जिनके प्रति तुम सदा अनुरक्त रहते हो और वे भी सदा तुम्हारे अनुरागके रंगमें रँगी रहती हैं। आज हम उन्हीं तुम्हारी ब्रजवासिनी प्रियतमा राधाको देखना चाहती हैं, जो सदा तुम्हारे वियोगसे विच्छ रहती हैं और वहाँ सामके लिये आयी हुई हैं ॥ ३२-३३ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! तब ‘तथास्तु’ कहकर पटरानियोंसे घिरे हुए श्रीकृष्ण सोलह हजार रानियोंके साथ श्रीराधाका दर्शन करनेके लिये गये। सोनेके रमणीय शिविरमें—जो ब्वजा-पताकाओंसे सुशोभित था और जिस सुन्दर शिविरमें चन्द्रमण्डलयाँ शोभाको तिरस्कृत करनेवाला चँदोवा तनाथा; मोतियोंकी झालांसे युक्त परदा ल्या था और जहाँ स्वच्छ वस्त्रोंका सुन्दर विलौना विला था; माल्तीके मकरन्द एवं इत्र आदिकी सुगन्ध जहाँ सब और ला रही थी और उसके कारण भ्रमरवलियाँ जहाँ मधुर गुङ्गन कर रही थीं—पटरानीं श्रीगंधा, जिनका चित्त श्रीकृष्णने चुग्य लिया था, विराजमान थीं और सलियाँ हंसके समान इवेत एवं दिव्य व्यजन हुलाकर उनकी भेषा करती थीं। कोई सबी उनके ऊपर छिन ताने हुए थीं, कुछ सलियाँ छुलेकी ढंगपकड़कर हुला रही थीं और कुछ इधर-उधर आती-जाती दिलायी देती थीं। श्रीराधाके कानोंमें वाल्पविके समान कानितमान कुण्डल झलकला रहे थे। विद्युत्के समान उद्दीप माला धारण करनेके कारण उनकी मनोहरता और भी बढ़ गयी थी। उनके श्रीअङ्गोंमें कोटि चन्द्रमाओंके समान प्रकाश फैल रहा था। वे तान्वकी तथा कोमलाङ्गी थीं। वे अपने पैरोंकी सुन्दर अङ्गुलियोंके अग्रभागसे पुष्पान्दादित मनोहर भूमिपर अत्यन्त कोमल चरणारविन्द धीरे-धीरे रख रही थीं ॥ ३४-४० ॥

महाराज ! उन श्रीराधाको दूरसे ही देखकर श्रीकृष्णकी वे सहस्र रानियाँ उनके रूपसे अत्यन्त मोहित होकर मूर्च्छित हो गयीं। उनके तेजसे इनकी कानित उसी तरह

चिक्षुस हो गयी, जैसे सूर्योदय होनेपर तारिकाएँ। इन्हे जो कल्पका अभिमान था, वह जाता रहा। वे सब रानियाँ परस्पर इस प्रकार कहने लगीं—‘अहो! ऐसा अद्भुत रूप तो तीनों लोकोंमें कहीं भी नहीं है। इसने इनके अद्वितीय भनोहर रूपको

इस प्रकार श्रीगर्म-संहितामें द्वारकास्तङ्कके अन्तर्गत नारद-बुद्धाश्रव-संबादमें सिद्धाश्रम-माहात्म्यके प्रसङ्गमें श्रीराधाके रूपका ‘दर्शन’ नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

सिद्धाश्रममें श्रीराधा और श्रीकृष्णका मिलन; श्रीकृष्णकी रानियोंका श्रीराधाको अपने शिविरमें तुलाकर उनका सत्कार करना तथा श्रीहरिके द्वारा उनकी उत्कृष्ट प्रीतिका प्रकाशन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! पठरानियोंसहित श्रीकृष्णको आया देख गोपाङ्गनाएँ अत्यन्त हर्षसे खिल उठीं और तक्काल जय-जयकार करने लगीं। श्रीराधा सहस्र उठीं और हाथ जोड़, श्रीहरिकी परिकिमा करके अपने कमलोपम नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाने लगीं। उन्होंने श्रीकृष्णके बैठनेके लिये एक सोनेका सिंहासन दिया, जिसके पायोंमें ल्यमल्तक मणि जड़ी हुई थी। पाश्वर्भागमें चिन्तामणि जगमगा रही थी, मध्यभागमें पश्चाराग मणि शोभा दे रही थी। वह सिंहासन चन्द्रमण्डलके समान गोलाकार था। उसकी पादपीठिकामें कौस्तुभ मणियों जड़ी गयी थीं। वह सिंहासन कुण्डमण्डलसे मणित था; पारिजातके पुष्पोंसे सजित और अमृतवर्षी छत्रसे अलंकृत था ॥ १-४ ॥

उन्हें सिंहासन देकर श्रीराधा हास्युक्त मुखसे बोलीं—‘आज मेरा जन्म सफल हो गया, आज मेरी तपस्याका फल मिल गया। श्रीहरे! तुम आ गये तो आज मेरा धर्म-कर्म सफल हो गया। श्रीसिद्धाश्रमका स्नान धन्य है, जिससे मेरा मनोरथ अद्भुत रीतिसे सफल हुआ। मैंने तो कभी तुम्हारी भक्ति भी नहीं की। तुम भक्तोंके सहायक हो। देव! तुमने मेरी सहायताके लिये इस भूतल्यपर बहुत-से असुरोंको मार भगाया। जिससे श्रिलोक-विजयी कंस भी डरता था, उस शङ्खचूड़को तुमने मेरे कहनेसे मार भिराया। हरे! मेरे प्रति प्रेम रखनेके कारण ही तुमने ब्रजमण्डलमें देवलोकका वैमव दिखाया। देव! तुमने बलगूर्वक इन्द्रका मान भङ्ग किया और मेरे ही कारण ब्रजकी रक्षा करते हुए गोवर्धन वर्वतको धारण किया। रासमण्डलमें गोपियोंने तुम्हारा यथेष्ठ आङ्गिकन किया और

जैसा सुना था, जैसा ही देखा।’ इस प्रकार आपसमें बात करती हुई वे रानियों श्रीकृष्णको आगे करके श्रीराधिकाके पास जा पहुँची। गोपाङ्गनाओं तथा राजकुमारियोंके नेत्र आपसमें मिले ॥ ४१—४४ ॥

तुम उनके वशमें हो गये। देव! तुम्हारा यह चरित्र नरलोककी विडम्बना मात्र है’ ॥ ५-१० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहती हुई श्रीराधाने चन्द्रनानाकी प्रेरणामें तुरंत श्रीकृष्णकी रानियोंपर दृष्टिपात किया और वडे आदरके साथ उन सबको सम्मान दिया। दक्षिणी, जाम्बवती, सत्यमामा, सत्या, भद्रा, लक्ष्मणा, कालिन्दी और मित्रविन्दसे परस्पर गले मिलकर, रोहिणी आदि सोलह हजार रानियोंको भी प्रेमानन्दमयी श्रीराधाने दोनों भुजाओंसे पकड़कर सानन्द हृदयसे ल्पाया ॥ ११-१३ ॥

श्रीराधा बोलीं—वहिनो! जैसे चन्द्रमा एक है, किंतु उससे स्नेह रखनेवाले चकोर बहुत है, जैसे सूर्य एक है, किंतु उन्हें देखनेवाली दृष्टियाँ बहुत हैं, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र एक है, किंतु इनमें भक्तिभाव रखनेवाली हम सब बहुत-सा लिखियों हैं। जैसे कमलके प्रभावको भ्रमर जानता है तथा रत्नके प्रभावको उसकी परख करनेवाला जौहरी जानता है, जैसे विद्याके प्रभावको विद्वान् और काव्यके प्रभावको कवीन्द्र जानता है, जैसे सहस्रो मनुष्योंके होनेपर भी रसके प्रभावको केवल रसिक जानता है, उसी प्रकार, हे राजकुमारियो! इस भूतल्यपर श्रीकृष्णके प्रभावको यथार्थस्थापसे इनका भक्त ही जानता है ॥ १४-१६ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीराधाकी बात सुनकर उस समय सपलियोंसहित भीमनन्दिनी उक्षिणीने कमलज्जेचना श्रीराधाले कहा ॥ १७ ॥

रुक्मिणी बोली— श्रीराधे ! हृषभानुनन्दिनि । तुम चन्द्र हो । तुम्हरे भक्ति-भावसे ये श्रीकृष्ण सदा तुम्हरे वशमें रहते हैं । तीनों लोकोंके लोग जिनकी कथा वार्ता निरन्तर कहते-सुनते हैं, वे ही भगवान् दिन-रात तुम्हारी कथा कहा करते हैं । श्रीहरिके प्रति तुम्हरे प्रेम-भावका स्वरूप जैसा हमने सुना था, वैसा ही देखा । तुम्हरे लिये कुछ भी आश्चर्यकी वात नहीं है । देव ! तुम हमारे शिविरमें शीघ्र चलो; हम सब तुम्हें ले चलनेके लिये ही यहाँ आयी हैं ॥ १८-१९ ॥

नारदजी कहते हैं— राजन् ! यो कहकर भीष्म नन्दिनी रुक्मिणी कीर्तिकुमारी श्रीराधाको बड़े आदरसे महात्मा श्रीकृष्णके साथ अपने शिविरमें ले आयी । सर्वतोभद्र नामक शिविरमें, जो कमलोंके केसरसं सुवासित था, योनेके पलंगपर, शिरीष पुष्पके समान कोमल विछावन विछाकर, तकिया लगाकर, वस्त्र, माला और शृङ्गार-सामग्रीसे सपत्नियोंसहित सती रुक्मिणीने रात्रिके समय विधिवृत् पूजा करके उन्हें सुखपूर्वक ठहराया । फिर गोपालनाओंके सौ यूथोंका भी पृथक्-पृथक् पूजन करके उन हृषणप्रियाओंने सबके साथ बहुविध वार्तालाप किया । किर श्रीराधाको वहाँ सुलाकर वे रानीयों प्रभन्नतापूर्वक अपने-अपने शिविरमें गयीं । श्रीकृष्णके पास पहुँचकर रुक्मिणीने देखा कि वे बैठे-बैठे जग रहे हैं । तब उन्होंने श्रीकृष्णांस पूजा—रक्षामिन् । आप सोते क्यों नहीं ? ॥ २०-२४ ॥

श्रीभगवान् बोले— सुभ्र ! तुमने अगवानी करके, विनयपूर्वक प्रेमभरी नांत्रं सुनाकर, आश्वासन देकर वज्रश्वरी श्रीराधाकी भलीभाँति पूजा की है और वे अत्यन्त प्रमद्ध हुई हैं; परंतु एक बातकी ओर तुमने ध्यान नहीं दिया । वे प्रतिदिन योनेसे पहले उत्तम दूध पिया करती हैं, किंतु सुन्दरि ! आज श्रीराधाने दुधपान नहीं किया । महामते ! इसीलिये अवश्यक उनके नेत्रोंमें नींद नहीं आयी है; और भीष्मनन्दिनि ! यही कारण है कि मैं भी नहीं सो सका हूँ ॥ २५-२७ ॥

इस प्रकार श्रीराम-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलश्व-संवादमें सिद्धाश्रममें श्रीराधाकृष्ण-समाप्तमें प्रसङ्गमें श्रीराधाके प्रेमका प्रकाश नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

नारदजी कहते हैं— राजन् ! पतिदेवताकी वह उत्तम वात सुनकर रुक्मिणी अपनी सौतोंके साथ दूध लेकर बड़े आदरसे श्रीराधाके समीप गयीं । सोनेके कटोरोंमें मिश्री मिलाया हुआ गरम दूध ढालकर भीष्मकनन्दिनीने बड़े प्रेमसे श्रीराधाको पिलाया । इस प्रकार विधिवृत् पूजा करके उनके द्वायमें पानका बांझा दिया और सत्यभाष्मा आदि सपत्नियोंके साथ अपने शिविरमें लौट आयी ॥ २८-३० ॥

श्रीकृष्णके समीप आकर शुभस्वरूपा श्रीरुक्मिणी अपने द्वारा की गयी दूध पहुँचाने और पिलानेकी सेवाका बण्णन करते हुए साक्षात् श्रीकृष्णके चरणारविन्दोकी सेवामें लग गयीं । अपने कोमल कर-पल्लवोंसे निरन्तर श्रीचरणोंका लालन करता हुई रुक्मिणी श्रीकृष्णके पाद-तलमें नये छाले देख आश्चर्यमें चकित हो उठी । उन्होंने पूछा—“प्रभो ! आपके चरण-तलोंमें छाले कैमे उभड़ आये हैं ? भगवन् ! ये आज ही उभडे हैं । मैं नहीं जानता कि इसका कारण क्या है ?” तब श्रीहरिने श्रीराधाकी भाक्तिको प्रकाशित करनेके लिये सोलह हजार रानीयोंके सामन भव्य रुक्मिणीसे कहा ॥ ३१-३४ ॥

श्रीभगवान् बोले श्रीराधिकांके हृदयारविन्दमें मेरा चरणारविन्द मदा विराजमान रहता है; उनके प्रेमपाशमें बैधकर वह निरन्तर नहीं रहता है, कभी निमेपमात्रके लिये भी अल्पा नहीं होता । आज तुमलोगोंने उन्हें कुछ अधिक गरम दूध पिला दिया है । वह दूध मेरे पैरोंपर पढ़ा और उनमें छाले पड़ गये । तुम सबने उन्हें थोड़ा गरम दूध नहीं दिया, अधिक गरम दूध दे दिया ॥ ३५-३६ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं— नरेश्वर ! श्रीकृष्णकी वात सुनकर रुक्मिणी अदि सुन्दरियों बड़े प्रेमसे उनके पैर सहाने लगीं और उन्हें सब ओरसे बड़ा विस्मय हुआ । वे परस्पर कहने लगीं—“मधुसदन माघवमें श्रीराधाकी प्रीति बहुत ही उच्च कोटिकी है । उनकी समानता करनेवाली कोई ली नहीं है । ये श्रीराधा इस भूतलम् अद्वितीय नारी है” ॥ ३७-३८ ॥



अठारहवाँ अध्याय

सिद्धाश्रममें व्रजाङ्गनाओं तथा सोलह सहस्र रानियोंके साथ श्यामसुन्दरकी रासकीड़ाका वर्णन तथा श्रीराधाके मुखसे वृन्दावनके रासकी उत्कृष्टताका प्रतिपादन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! श्रीराधा और गोपीणाओंका उत्कृष्ट प्रेम जानकर रुक्मिणी आदि राजकुमारियोंने रासकीड़ा देखनेके लिये उत्सुक हो श्रीहरिसे कहा ॥ १ ॥

पट्टरानियाँ बोलीं—श्यामसुन्दर ! तुममें प्रेम-लक्षण-भक्ति रखनेवाली गोपसुन्दरियाँ धन्य हैं, जो रास-रङ्गमें समिलित हुई थीं। इन सबके तपका कथा वर्णन हो सकता है। माधव ! प्रभो ! यदि तुम हमारी प्रार्थना स्वीकार करो तो, वृन्दावनमें तुमने जिस विधिने रास रन्धाया था, उस विधिको हम देखना चाहती हैं। तुम यहीं हो, श्रीराधा यहीं विगज रही हैं, सम्पूर्ण गोपसुन्दरियों एवं व्रजाङ्गनाएँ भी यहीं हैं और हम सब भी यहीं हैं; अतः देवेश्वर ! यहाँ रासका आयोजन भवंथा उन्नित होगा। जगन्नाथ ! तुम हमारे इस मनोरथको पूर्ण करो। मनोहर ! प्राणवल्लभ ! हमने दूधरा कोई मनोरथ नहीं प्रकट किया है, केवल रासकीड़ाका दर्जन कराओ। रानियोंकी यह बात सुनकर भगवान् हँसने लगे। उन्हाँने प्रेमपूरित होकर उन सबको अपने चचनोंद्वारा मोहित-सी करते हुए कहा ॥ २-६ ॥

श्रीभगवान् बोले—अङ्गनाओ ! रासेश्वरी श्रीराधाके मनमें भी रासकीड़ाकी इच्छा हो तो यहाँ रास हो सकता है। अतः तुम्हीं सब जाकर उनसे पूछो। श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर रुक्मिणी आदि राजकुमारियोंने श्रीराधाके पास जाकर हँसते हुए मुखसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक कहा ॥ ७-८ ॥

श्रीरानियाँ बोलीं—रमोह ! चन्द्रवदने ! व्रजसुन्दरियोंकी स्वामिनि ! रासक्षरि ! प्रियतमे ! सखि ! शीलस्त्रियि ! रासमें कीर्तिरानीके कुलकी कीर्ति बढ़ानेवाली शुभाङ्गि ! इम सब दुर्घारी सखियाँ तुमसे एक बात पूछने आयी हैं। रासमें रस-प्रदान करनेवाले रासेश्वर यहीं हैं तथा रासकी अधीश्वरी तुम भी यहीं हो और अन्य समस्त गोपसुन्दरियाँ भी यहीं हैं। इसी प्रकार हम सब भी यहीं हैं; अतः सब प्रकारसे रसका आस्वादन करनेके लिये तुम यहाँ रासका आयोजन करो। प्रियतमे ! ऐसा हो तो यह हमारे अस्पन्त प्रिय होगा ॥ ९-१० ॥

श्रीराधाने कहा—मत्पुरुषोपर कृपा करनेवाले परम रासेश्वर श्यामसुन्दरके मनमें यदि रासकीड़ाकी अभिलाषा हो तो यहाँ रास हो सकता है। अतः मेरी प्रियतमा सखियो ! तुम सब परम सेवा-शुश्रूषा और परार्भान्तसे उनकी पूजा कर के उन्हें बधामें करो ॥ ११ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! श्रीराधा ही बात सुनकर रानियोंने श्रीकृष्णकी कही हुई बात सतायी। तब महामना श्रीराधा ‘तथास्तु’ कहकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। फिर वैशाख मासकी पूर्णिमाको उस शुभ एवं पुण्यतीर्थ सिद्धाश्रममें जब रात्रिका प्रथम ग्रहर प्राप्त हुआ और चन्द्रमाकी नौदनी सब और फैल गयी, तब रासकीड़ाका आरम्भ हुआ। रासेश्वरके रासका आनन्द प्राप्त करनेके लिये रासेश्वरी श्रीराधा तैयार हो गयी और उनके साथ रसिक-शेष्वर श्यामसुन्दर रासस्थलीमें उसीं तरह सुशोभित हुए, जैसे रतिके साथ रतिपति मदन। जितनी सम्पूर्ण गोपसुन्दरियाँ और जितनी राजकन्याएँ वहों उपस्थित थीं, उतने ही रूप धारण करके दो-दो सुन्दरियोंके बीचमें एक-एक श्रीकृष्ण शोभा पाने लगे। ताल, बेण और मृदङ्गोंके ध्वनिके साथ मधुर कण्ठवाली सखियोंके गीत और उनके नूपुर-काञ्चनी आदि आभूषणोंकी मधुर झनकारका मिला हुआ महान् शब्द वहाँ सब और गूँज उठा ॥ १२-१६ ॥

राजन् ! करोड़ों कामदेवोंके लवण्यको लजित करनेवाले, बनमालाधारी, कुण्डलमण्डित एवं किराट, बल्य और भुजबंदोंसे अलंकृत पीताम्बरधारी श्यामसुन्दर रासेश्वर रासमें स्वयं रासेश्वरीके साथ गीत गाने लगे। विदेह-राज ! जैसे ताराणांसे विरा हुआ चन्द्रमा शोभा पाता है, उसी प्रकार रासेश्वर श्रीकृष्ण उन सुन्दरियोंके साथ सुशोभित हो रहे थे। मिथिलेश्वर ! इस प्रकार वह महानन्दमयी सम्पूर्ण शुभ निशा रासमण्डलमें एक क्षणके समान व्यतीत हो गयी। श्रीरासमण्डलकी शोभा देख रुक्मिणी आदि समस्त पटरानियों परमानन्दको प्राप्त हुई। उन सबका मनोरथ पूर्ण हो गया। रासकी समाप्ति होनेपर रुक्मिणी आदि यानियोंने प्रेमपरबद्ध होकर साक्षात् परिपूर्णतम् मुहुरोत्तम श्रीकृष्णसे कहा ॥ १७-१९ ॥

राजियाँ चोलीं—प्रभो ! मनोहर रास-रङ्गमें आपकी रूप-माधुरी देखकर हमारा मन उसी प्रकार आत्मानन्दमें निमग्न हो गया, जैसे शानी मुनि ब्रह्मानन्दमें शूच जाते हैं । ऐसा रास दूषया न हुआ होगा न होगा । माधव ! यहाँ गोपाल्कनाओंके सौ यूथ विद्यमान हैं । सखियोंसहित हम तोलह हजार आपकी पश्चियाँ भी इसमें सम्मिलित रही हैं । करोड़ों सखियोंके साथ आठों पटरानियाँ भी यहाँ उपस्थित हैं । माधवेश्वर ! ऐसा रास तो बृन्दावनमें भी नहीं हुआ होगा ॥ २३-२४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार अभिमान प्रकट करनेवाला राजियोंका बात सुनार श्यामसुन्दर श्रीहरि हँसने लगे और बोले—‘यहाँका रास सबोंकृष्ण है या बृन्दावनका, यह तुम श्रीराधासे ही पूछो’ ॥ २५ ॥

तब सत्यभामा आदि सब राजियोंने मनोहारिणी श्रीराधामें इसके विषयमें पूछा । श्रीराधा मन-ही-मन कुछ हँसती हुई यह उत्तम बात चोलीं ॥ २६ ॥

श्रीराधाने कहा—सखियो ! बहुत-सी सुन्दरियोंसे भरा हुआ यहाँका रास भी बहुत अच्छा रहा है; परंतु पहले-पहल बृन्दावनमें जो रास हुआ था, उसके समान यह कदापि नहीं था । यहाँ दिव्य धूक्षी और लताओंमें व्यास, प्रेमके भारमें छुकी हुई लता-बलरियोंसे विलसित और मधुमत्त मधुपोंमें सुशोभित बृन्दावन कहाँ है ? पुष्ट-समूहोंको बहाती हुई पूलोंके छापसे अलंकृत श्यामपटकी भौति शोभा पानेवाली हँसीं और पद्मवनोंसे व्यास यमुना नदी यहाँ कहाँ उपलब्ध है ? पूलोंके भारमें छुकी हुई भाभवी लताएँ यहाँ कहाँ दिखायी देती हैं ? प्रेमपरवश पक्षी कहाँ मधुरस्वरोंमें गान कर रहे हैं ? चञ्चल अमर-पुज्जाने युक्त कुञ्ज और दिव्य-मन्दिरोंमें मणिडित निकुञ्ज यहाँ कहाँ सुलभ हैं ? कमलोंके परागको लेकर शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु यहाँ कहाँ वह रही है ? ऊँचे-ऊँचे मनोहर शिखरोंसे सुशोभित, सर्वत्र फल पूलोंमें सम्भव तथा सुन्दर कन्दराओंसे अलंकृत महाकाय गजराजकी भौति शोभा पानेवाला शिरिराज गोवर्धन यहाँ कहाँ दृष्टिगोचर होता है ? जहाँ वायुने कोमल बाल्का संचय कर रखता है, यमुनाके उस रमणीय

इस प्रकार श्रीगं-संहितामें द्वारकालीनके अन्तर्गत नारद-बहुलत्व-संवादमें सिद्धाश्रम-माहस्यके प्रसङ्गमें ‘रासोत्सव’ नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

पुलिनपर बंशी और बेतकी छड़ी धारण किये, महः अथवा नटवरके वेशमें विराजित श्यामसुन्दरकी झाँकी यहाँ कहाँ मिल रही है ! इस स्थानपर श्रीकृष्णके लिये बनमालते विभूषित श्रङ्गार कहाँ उपलब्ध है ? श्यामसुन्दरकी काली, बुँधराली और सुगन्धयुक्त अलकावलियोंका दर्शन यहाँ कहाँ होता है ? श्रीकृष्णके स्त्रियोंमें मनोहर मुखपर दोनों ओर कुण्डलोंका हिलना हुलना कहाँ दीखता है ? उनके मुखपर पत्र-रचना कहाँ की गयी है ? कहाँ सुगन्धके लोभसे भ्रमरावलियों दूटी पहरती हैं ? कहाँ वह प्रेमपूर्ण निरीक्षण, स्पर्श और हर्षोल्लास यहाँ सुलभ हुआ है ? कामदेवके तीसे याणोंकी तिरस्कृत करनेवाले नेत्रकोणोंमें निहारनेपर जो कटाक्षपातजनित रस प्रकट होता है, वह यहाँ कहाँ प्राप्त हुआ है ? दोनों हाथोंमें एक दूसरेको पकड़कर सीचना, हाथों हाथ छुड़ना, निकुञ्जमें छिपना, सामने होनेपर भी दिखायी न देना आदि लीलाएँ यहाँ कहाँ दिखायी देती हैं ? यहाँ चीर उठा लेना अथवा बंशी और बेतको चुना लेना कहाँ सम्भव हुआ है ? प्रेमसे दोनों भुजाओंद्वारा परस्पर सीचकर हृदयमें लगाना, बार-बार एक-दूसरेको पकड़ना, श्यामसुन्दरकी बाँहोंपर चन्दनका लेप लगाना आदि बातें यहाँ वहाँ सम्भव हुई हैं ? जहाँ-जहाँकी जो लीला है, वहाँ वहाँ वह शोभा पाती है । जहाँ बृन्दावन नहीं है, वहाँ मेरे मनको सुख नहीं मिल सकता ॥ २७-४० ॥

नारदजी कहते हैं—श्रीराधाकी यह बात सुनकर सारी पटरानियोंने अपने रास-सम्बन्धी अभिमानको त्याग दिया । वे हर्षित और विस्मित हो गयीं । इस प्रकार राधिकावलम्ब श्रीकृष्ण सिद्धाश्रममें रासकीद्वा सम्पन्न करके, समस्त गोपियोंको साथ ले, श्रीराधा और अपनी राजियोंसहित द्वारकामें प्रविष्ट हुए । उन्होंने श्रीराधाके लिये बहुत-से सुन्दर मनिदर बनवाये । उन समस्त व्रजाङ्गनाओंके रहनेके लिये भी सुखपूर्वक व्यवस्था की ॥ ४१-४३३ ॥

नरेश्वर ! इस प्रकार मैंने मिद्दाश्रमकी कथा तुम्हें सुनायी है, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाली, पुण्यमयी तथा सबको मोक्ष देनेवाली है ॥ ४४-४५ ॥

उच्चीसवाँ अध्याय

**लीला-सरोवर, हरिमन्दिर, ज्ञानतीर्थ, कृष्ण-कुण्ड, बलभद्र-सरोवर, दानतीर्थ,
गणपतितीर्थ और मायातीर्थ आदिका वर्णन**

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! द्वारावती-मण्डल सौ योजन विस्तृत है । उसकी पूरी परिकमा चार सौ योजनोंकी है । उसके बीचमें श्रीकृष्णनिर्मित दुर्ग बाहर योजन विस्तृत है । दूसरा बाहरी दुर्ग नम्बे कोसोंमें महात्मा श्रीकृष्णद्वारा निर्मित हुआ है, जो शत्रुओंके लिये हुर्लक्ष्य है । राजन् ! तीसरा बाहरी दुर्ग दो कम दो सौ कोसोंमें संघटित हुआ है, जिसमें रत्नमय प्रालादोंका निर्माण हुआ था । इनके अन्तर्दुर्गमें भी महात्मा श्रीकृष्णके नौ लाख विचित्र मन्दिर हैं ॥ १-४ ॥

वहाँ राधा-मन्दिरके द्वारपर 'लीला-सरोवर' है, जो समस्त तीर्थोंमें उत्तम माना गया है । राजन् ! उसका गोलोकसे आगमन हुआ है । उसमें स्नान करके ब्रत-धारणपूर्वक एकाधिक्षित हो, अष्टमी तिथिको विधिवत् मुवर्णका दान दे तीर्थको नमस्कार करे तो पारी मनुष्य भी कोटिजन्मोंके किये हुए पापोंमें मुक्त हो जाता है । इसमें संशय नहीं है । प्राणान्त होनेपर उस मनुष्यको लंबेके लिये निश्चय ही गोलोकसे एक विशाल विमान आता है, जो सहस्रों सूर्योंके समान तंजस्वी होता है । वह मनुष्य दस कामदेवोंके समान लावण्यशाली, रनमय कुण्डलोंसं मण्डित, बनमालाधारी, पीताम्बरमें आच्छादित, इयामकान्तिमान, सहस्रों सूर्योंके समान दीमिमान्, सहस्रों पार्षदोंसे सेवित दिव्यरूप धारण कर लेता है । उसके दोनों ओर चौंबर हुलाये जाते हैं, जय-जयकार की जाती है, वेणुधनिके साथ दुन्दुभियोंका गम्भीर नाद होता रहता है । इस अवस्थामें वह उस श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ हो गोलोकधाममें जाता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ५-१० ॥

महामते राजन् ! अब अन्य तीर्थोंका वर्णन सुनो ! वहाँ सोलह हजार एक सौ आठ तीर्थ हैं और वहाँ श्रीकृष्णकी उतनी ही पत्नियोंके पृथक्-पृथक् भवन हैं । उन सबकी बारी-बारीसे परिकमा और बन्दना करके 'ज्ञानतीर्थमें गोता लगाकर जो पारिजातका स्पर्श करता है, उसे तत्काल शान, वैराग्य और भक्तिकी प्राप्ति हो जाती है । उसके हृदयमें भगवान् श्रीकृष्ण सदा प्रसन्नचित्त होकर बास करते हैं ।

समूची सिद्धियाँ और समुद्दिश्याँ स्वभावतः उसकी सेवामें उपस्थित रहती हैं । जो श्रीहरिके मन्दिरका दर्शन करता है, वह मुक्त और कृतार्थ हो जाता है । उसके समान दूसरा कोई वैष्णव नहीं है और उस तीर्थके समान दूसरा कोई तीर्थ नहीं है ॥ ११-१५ ॥

भगवान्के मन्दिरका विस्तार पाँच योजन है । वहाँसे सौ धनुषकीदूरीपर 'श्रीकृष्ण-कुण्ड' है, जो भगवान् श्रीकृष्णके तेजसे प्रकट हुआ है । उसी कुण्डमें स्नान करके जाम्बवती-नन्दन साम्र कुष्ठरोगसे मुक्त हुए थे । उस कुण्डके दर्शनमात्रसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छुटकारा पा जाता है ॥ १६-१७ ॥

मैथिल ! वहाँसे अठारह पदकी दूरीपर पूर्व दिशमें तब तीर्थोंमें उत्तम, पुण्यदायक और विशाल 'बलभद्र-सरोवर' है । महाबली बलदेवजीने पृथ्वीकी परिकमा करके जहाँ यह किया, वहाँ उस सरोवरका निर्माण कराकर वे रेवती रानीके साथ विराजमान हुए । उसमें स्नान करके मनुष्य तत्काल समस्त पापकोंसे मुक्त हो जाता है । पृथ्वीकी परिकमाका फल उसके लिये हुर्लभ नहीं रह जाता ॥ १८-२० ॥

राजन् ! भगवान्के मन्दिरसे सहस्र धनुष आगे दक्षिण दिशामें गणनाथका महान् तीर्थ है । राजन् ! अपने पुत्र प्रथमन्को जन्म देनेपर, जब वे दस दिन बीतनेके पहले ही अपहृत कर लिये गये, तब उक्तिमार्गने जहाँ गणेश-पूजाका अनुष्ठान किया था, वहाँ 'गणनाथ तीर्थ' है । नृपेश्वर ! वहाँ स्नान करके जो स्वर्णका दान देता है, उसे पुत्रकी प्राप्ति होती है और उसका वंश बढ़ता है ॥ २१-२३ ॥

राजन् ! भगवान्के मन्दिरसे पश्चिम दिशामें दो सौ धनुषकी दूरीपर परम मङ्गलमय 'दानतीर्थ' है । वहाँ श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रसन्नताके लिये जो प्रतिदिन दान करता है, वह उत्तम पुण्यका भागी होता है । विदेहराज ! उस तीर्थमें स्नान करके जो मनुष्य दो पल सोना, आठ पल चाँदी और सौ रेशमी पट्टाम्बर दान देता है तथा सहस्रों मोहर और

नवरत्नोंका दान करता है, उस श्रेष्ठ मानवको मिलनेवाले पुण्यफलका वर्णन मुनो । सहस्र अश्वमेध तथा सौ राजस्य यज्ञ भी दानतीर्थके पुण्यकी सोलहवीं कलाके वरावर भी नहीं हो सकते । बदरिकाश्रम तीर्थकी यात्रासे मनुष्य जिस फलको पाता है, सूर्यके मेषराशीपर रहो भयमय सैन्धवारप्यकी यात्रा करनेपर जिस फलकी प्राप्ति होती है, सूर्यके वृषभराशीमें रहते समय उत्तरलवत्तीर्थकी यात्रामें स्नान-दानका उन दोनों तीर्थोंकी अपेक्षा लाखगुना फल मिलता है—इसमें संशय नहीं है । परन्तु विदेहराज ! दानतीर्थमें उसमें भी कोटिगुना फल प्राप्त होता है । जो दानतीर्थमें एक मासतक स्नान करता है, उसको जिम अनन्त पुण्यकी प्राप्ति होती है, उसका शान चित्रगुप्तको भी नहीं है । उस तीर्थका माहात्म्य बतलानेमें चतुर्मुख ब्रह्माजी भी ममर्थ नहीं हैं । सब दानोंमें अश्वदान उत्तम माना गया है, अश्वदानमें श्रेष्ठ गजदान और गजदानमें श्रेष्ठ रथदान है । राजन् ! रथदानमें भी बढ़कर भूमिदान है, भूमिदानमें अधिक माहात्म्य अनन्दानका बताया जाता है । अनन्दानके समान दूसरा कोई दान न हुआ है न होगा; क्योंकि देवताओं, श्रृंगियों, पितरों और भूतोंकी भी अनन्दानमें ही तृप्ति होती है । जो महामनस्सी मनुष्य दानतीर्थमें

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-ब्रह्मलक्ष्म-संबादमें प्रथम दुर्गके भीतर भीला-सरोवर, होरेमन्दिर, ज्ञानतीर्थ, कृष्ण-कुण्ड, बलभद्र-सरोवर, दानतीर्थ, गणपतितीर्थ और मागानीर्थके माहात्म्यका वर्णन नामक उच्चासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

बीमवाँ अध्याय

इन्द्रतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, सूर्यकुण्ड, नीललोहित-नीर्थ और समसामुद्रक-नीर्थका माहात्म्य

श्रीनारदजी कहते हैं—विदेहराज ! द्वितीय दुर्गके भी पूर्वद्वारपर परम पुण्यमय 'इन्द्रतीर्थ' है, जो अभीष्ट भोगोंका देनेवाला तथा सिद्धिदायक है । राजन् ! उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य इन्द्रलोकको जाता है तथा इस लोकमें भी चन्द्रमाके समान उज्ज्वल वैभव प्राप्त कर लेता है ॥ १-२ ॥

इसी प्रकार दक्षिण द्वारपर 'सूर्यकुण्ड' नामक तीर्थ बताया जाता है, जहाँ सत्राजितने स्यमन्तककी पूजा की थी । नृपेश्वर ! वहाँ स्नान करके जो मनुष्य पश्चराग मणिका दान करता है, वह सूर्यके समान तेजस्वी विमानके द्वारा सूर्यलोकको जाता है ॥ ३-४ ॥

अन्मका दान करता है, वह तीनों ऋणोंमें मुक्त हो भगवान् विष्णुके परमधाममें जाता है । राजेन्द्र ! मातृकुलकी दस, पितृकुलकी दस तथा पवित्रके कुलकी दस पीढ़ियोंका वह मनुष्य उद्धार कर देता है । दानतीर्थमें दान करनेवाले मानव देहत्यागके पश्चात् चतुर्भुज दिव्य रूप धारण करके, गरुडध्वज पहराते हुए, बनमाला आंग पीताम्बरसे अलंकृत हो भगवान् विष्णुके धाममें जाने है ॥ २४-२८ ॥

राजन् ! भगवान् के मन्दिरमें उत्तर दिशमें आधे कोसकी दूरीपर मनोहर 'मायातीर्थ' है, जहाँ चण्ड-मुण्डका विनाश करनेवाली दुर्गतिनाशिनी भिंहवाहिनी भद्रकाली दुर्गा नित्य विराजता है । भगवान् श्रीकृष्ण स्यमन्तक मणि ले आनेके लिये जब श्रुक्षराज जाम्बवानकी गुफामें गये थे, तब देवर्कने अपने पुत्रांश मङ्गल-कामनाके लिये श्रेष्ठ फलोद्धारा इन्हीं दुर्गादीवीका पूजन किया था । इसी पृजाके प्रभावमें उस विल्म निष्कल्पकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्रिया जाम्बवती तथा मणिके साथ घर लौटे थे । वहाँ सुप्रसिद्ध 'मायातीर्थ' है, जो सेवकोंको उत्तम पल प्रदान करनेवाला है । जो मानव मायातीर्थमें स्नान करके मायादेवीका पूजन करता है, वह सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है । इसमें संशय नहीं है ॥ ३१-४२ ॥

इसी प्रकार पश्चिमद्वारपर 'ब्रह्मतीर्थ' नामक एक विशिष्ट तीर्थ है । राजन् ! जो बुद्धिमान् मानव वहाँ स्नान करके सोनेके पात्रमें खीरका दान करता है, उसके पुण्यफलका वर्णन मुनो । वह ब्रह्मघाती, पितृघाती, गोहत्यारा, मातृहत्यारा और आचार्यका वध करनेवाला पापी भी क्यों न हो, इन्द्रलोकमें पैर रखकर ब्रह्ममय शरीर धारण करके चन्द्रमाके समान उज्ज्वल विमानद्वारा ब्रह्मधामको जाता है ॥ ५-७ ॥

इसी प्रकार उत्तरद्वारपर भगवान् नीललोहितका क्षेत्र है, जहाँ साक्षात् नीललोहित महादेव विराजते हैं । विदेहराज ! उस तीर्थमें समत देवता, मुनि, सप्तर्षि तथा सम्पूर्ण मरुद्वाण

निवास करते हैं। उसी तीर्थमें प्रथनपूर्वक 'नीललोहित' नामक शिवलिङ्गकी पूजा करके लोकरावण रावणने अनुष्ठान ऐश्वर्य प्राप्त किया था। नरेश्वर! कैलासकी यात्रा करनेपर मनुष्य किंवा फलको पाता है, उससे सौगुना पुण्य भगवान् नीललोहितके दर्शनसे होता है। जो मनुष्य 'नीललोहित-कुण्ड'में तीन दिनोंतक स्नान करता है, वह सहस्रों पापोंसे युक्त होनेपर भी शिवलोकमें जाता है॥ ८-१२॥

जहाँ 'सप्त-सामुद्रक' अथवा 'सप्त-सागर' तीर्थसुशोभित है, वहाँ उस तीर्थमें स्नान करके पापी मनुष्य पाप समूहोंसे छुटकारा पा जाता है तथा सात समुद्रोंमें स्नान करनेका पुण्य

इस प्रकार श्रीगर्ण-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाद्व-संवादमें 'द्वितीय दुर्गके भीतर

इन्द्रतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, सूर्यकुण्ड, नीललोहिततीर्थ तथा सप्तसामुद्रक-तीर्थके माहात्म्यका

वर्णन नामक वीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०॥

वह तत्काल प्राप्त कर लेता है। मनुष्येश्वर! उस तीर्थके आस-पास भगवान् विष्णु, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, पर्वत्य, कुबेर, सौम, पृथ्वी, अग्नि और ऋत्के स्वामी वरण—सदा निवास करते हैं। नरेश्वर! ब्रह्माष्ठमें जो कोई सात करोड़ तीर्थ हैं, वे सब उस 'सप्तसामुद्रक-तीर्थ'में बात करते हैं। उसमें स्नान करनेके पश्चात् जो मनुष्य उस सम्पूर्ण तीर्थकी परिक्रमा करता है, वह द्वारका-यात्राका सारा फल पा लेता है। 'सप्तसामुद्रक-तीर्थ'की यात्रा किये बिना द्वारका-यात्रा फलवती नहीं होती। देवताओंने 'सप्तसामुद्रक-तीर्थ'को भगवान् विष्णुका स्वरूप माना है॥ १३-१८॥

इक्षीसवाँ अध्याय

दूर्गके द्वार-देवताओंके दर्शन और पूजनकी महिमा तथा पिण्डारक-तीर्थका माहात्म्य

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! दूर्गके पूर्वद्वार-पर अखनीनन्दन महावली हनुमान्जी अहर्निश पहरा देते हैं। जो मनुष्य वहाँ महावली भगवद्भक्त हनुमान्जीका दर्शन कर लेता है, वह हनुमान्जीकी ही भौति महान् भगवद्भक्त होता है॥ १-२॥

इसी प्रकार दक्षिणद्वारकी सुदर्शनचक दिन-रात रक्षा करता है। राजन्! उस सुदर्शनका चित्त सदा श्रीकृष्णमें ही ल्पा रहता है। उसके दर्शनमात्रसे मानव श्रीहरिका उत्तम भक्त होता है। सुदर्शनचक उस भक्तकी भी सदा रक्षा किया करता है॥ ३-४॥

इसी तरह पश्चिमद्वारकी बलवान् शृङ्खराज जाम्बवान् रक्षा करते हैं। राजन्! वे निरन्तर भगवद्भजनमें लो रहते हैं। उन महावली भगवद्भक्त जाम्बवानका दर्शन करके मनुष्य इस लोकमें चिरंजीवी तथा श्रीहरिका भक्त होता है। इसी प्रकार महावली विष्वकूमेन उत्तरद्वारकी अहर्निश रक्षा करते हैं। राजन्! वे श्रीकृष्णके विशाल

दृष्टि हैं। राजन्! उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है॥ ५-७२॥

दुर्गासे बाहर 'पिण्डारक-तीर्थ' है, उसकी महिमा सुनो। राजशिरोमणे! पिण्डारक तीर्थका माहात्म्य ध्यान देकर सुनो; जिसके स्वरणगाम्भीर्यमें मनुष्य बड़े बड़े पापोंसे छुटकारा पा जाता है। रैवतक पर्वत और समुद्रके बीचमें पिण्डारक क्षेत्र है, जो तीर्थमें उत्तम तीर्थ और अर्थ-सिद्धिका द्वाररूप है। विदेहराज! उसी तीर्थमें महावली यदुराजने परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णकी आशा लेकर यज्ञोंके राजा राजसूयका अनुष्ठान किया था। राजन्! राजा उप्रसेनके उस उत्तम यज्ञमें समस्त तीर्थोंका आवाहन किया गया था और वे तीर्थ सब ओरसे आकर उसमें निवास करने लगे। सम्पूर्ण तीर्थोंके पिण्डीभूत होनेसे उस तीर्थका नाम 'पिण्डारक' हुआ। उसमें स्नान करके मनुष्य तत्काल राजसूय यज्ञका फल पा लेता है। वहीं तीन दिनतक स्नान करके बतका पालन करते हुए एकाग्रचित्त हो जो ब्राह्मणोंको स्वर्णदान देकर उनके चरणोंमें प्रणत होता है, वह महात्मा यहीं नरदेव होता है—

इसमें संशय नहीं है। वह प्रतिदिन अन्दीजनोंके द्वारा अपना वशोगान सुनता है, स्वर्ण, रक्त और उत्तम वस्त्र आदिसे संभज्ज होता है। चन्द्रमुखी ललनाथोंके समदाय उसकी सेवामें रहते हैं। वह नित्य हृष्टपुष्ट और महावल्यान् हीता है। उसके दरबाजेपर दिन-रात घन गञ्जनके समान हुन्हुभियाँ चलती रहती हैं। वह देखता है कि उसके बाहरी एवं भीतरी ओरगनमें गजराज चिंचाइते और घोड़े हिन्दिनांत रहते हैं तथा नरेशीं भी भाइ लगी रहती है और उसके रक्षमय महलोंपर अनेक नेत्र न्वज कहराने रहते हैं। मतवाले हाथियोंके कानोंमें प्रताङ्गित भ्रमरमण्डली उसके सामन्त-नरेशों द्वारा मणिहत द्वारकी शोभा बढ़ाती है। पिण्डारक तीर्थमें स्नान किये विना इन लोकमें किर्भीको राज्य कैसे प्राप्त हो सकता है और पापात्मा सनुप्य भी उम तीर्थमें स्नान किये विना जीवनके अन्तमें मोक्ष कैसे पा सकता है? पिण्डारक तीर्थमें स्नान किये विना किर्भीको शर्म (कल्याण) की प्राप्ति नहीं होती। पिण्डारक तीर्थमें स्नान किये विना कर्म, धर्म और वर्ष (रक्षाक-वच) नहीं प्राप्त हो सकते। पिण्डारक तीर्थमें स्नान किये विना मनुष्य विशेषका दुःख क्षेलता है। उसमें स्नान करनेवाला मानव उम दुःखसे दूर रहता अथवा विचिष्ट योगी होता है। उन तीर्थमें स्नान करनेवाला पुण्यात्मा मनुष्य उत्तम भोगेंसे भण्डन होता है। योग उमे छू नहीं सकते ॥ ८-२२ ॥

विदेहगञ्ज! जो वेगान्य मासमें द्वारावतीकी परिक्रमा करके उसकी नमध्यार करता है, उसके हाथमें इमल्लोक और परम्परोक्ती सारी मिदियों आ जाती हैं। जो चैत्रकी पौर्णमासीं लेकर वैशाखीं की पौर्णमासीं द्वारकाकी यात्रा करता है और प्रतिदिन तीर्थ स्नान, गूमित्रायन, शौचाचार, मौनव्रत एवं नवाच-भोजनके नियममें रहता है, उसको मिलनेवाले पुण्यकी

संख्या बहानेमें वेदमय चतुर्मुख द्वारा भी समर्थ नहीं है। जो कदाचित् वर्षाकी धाराओंको शिन ले, वह भी श्रीकृष्णपुरीकी यात्रामें होनेवाले पुण्यकी परिगणना नहीं कर सकता। जैसे तिथियोंमें एकादशी, सार्वोंमें नागराज शेष, पञ्जियोंमें शशद, हतिहाम पुराणोंमें महाभारत और जैसे देवताओंमें देवाधिदेव यदुदेवदेव वासुदेव भव्यत्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सभूर्ण पुरियों और क्षेत्रोंमें पुण्यती द्वारावती प्रशास्त है। अहो! भूतलपर वैकुण्ठन्यालाकी अधिसारिणी मनोहरा कुआम्बली (द्वारा ॥) पुरा यदुमण्डलमें उसी प्रकार सुशोभित होती है, जैसे विद्युनमालाओंमें आकाशमें मेषमालाकी शोभा होती है। यह पुरा धन्य है, जिस पुरामें साक्षात् परम पुण्य परमश्वर नवर्यूद्धस्य धारण करके विगज रहे हैं। जिन्होंने उसमें राजाधिगजका पद दे रखा है, उन श्रीकृष्ण हरिको वारंवार नमग्कार है। विदेहगञ्ज! जब भगवान् अपने परमधामको पधारेंगे, उस समय उस दिव्य पुरीको समृद्ध हुया देगा। क्षेत्रल श्रीहरिका दिव्य मन्दिर अवशिष्ट रहेगा, उसमें भगवान् सदा निवास करेंगे। कलियुगमें वहें इहनेवाले लोग प्रतिदिन और निरन्तर सागरकी जलध्वनिमें श्रीकृष्णर्णा कही हुई यह बात सुना करते हैं—‘ब्राह्मण विदान् हो या अविदान्—वह मगा हा शरीर है।’ जो ब्राह्मण होकर नमृद्गके तटों अगाध जलमें जागर वहाँ परमश्वरकी प्रतिमा लायेगा और उसकी स्थापना करके विशाल मन्दिर बनायेगा, वह आगत् सर्वं है। नरदेव ! कलियुगमें जो भक्तजन श्रीद्वारकानाथके स्वरूपना दर्शन करते हैं, वे योगीश्वरोंके लिये भी कुर्लभ विष्णुपदनों प्राप्त कर लेते हैं। गजन ! यह मैंने श्रीकृष्णपुरीके माहात्म्यका तुगम करान किया है। जो भक्ति भावमें इसे सुनता और सुनाता है, वह द्वारका-पुरीमें निवासका फल पाता है ॥ २४—३४ ॥

इस प्रकार ग्रंथाम-सहितामें द्वारकारण्डके अन्तर्गत नारद-बुद्धाश्रव-संवादमें तृतीय दुर्गकं र्मतर
‘पिण्डारक-तीर्थका माहात्म्य’ नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९ ॥

बाईसवाँ अध्याय

सुदामा ब्राह्मणका उपारब्यान

नारदजी कहते हैं—सुदामा नामक श्रीकृष्णके एक ब्राह्मण संखा थे। वे अपनी पक्षी सत्त्वके साथ अपने नगरमें

रहते थे। सुदामा वेद-वेदाङ्कके पारंगत थे, परंतु बनहीन थे और थे बैराघ्यवान्। वे अपनी अनुकूल पत्नीके साथ

अथाचिस दूसिके द्वारा जीवन निर्वाह करते । सुदामाने एक दिन दरिद्रतामे उत्पीड़ित दुःखिनी अपनी पत्नीसे कहा— पतित्रते ! द्वारकाबीज श्रीकृष्ण मेरे मित्र हैं, मांदीपनि गुरुके धर्ममें मैंने उनके साथ विद्याध्ययन किया है; परंतु श्रीकृष्णके भोज, दृष्टि और अनधकोके अधीक्षर होनेके बाद मेरा उनसे मिलना नहीं हुआ । वे श्रिलोकके नाथ भगवान् दुःखहारी और दीनवस्तल हैं ॥ १—४३ ॥

पतिके बचन सुनकर पतित्रता सत्याने, जिसका कण्ठ सूख रहा था, जो फटे-पुराने कपड़े पहने हुए थी, भूखसे अत्यन्त पीड़ित थी, पतिदेवमे कहा—‘ब्रह्मन् । जब साक्षात् श्रीपति हरि आपके सक्ता हैं, तब हमलोग कठे चिथड़े पहने और भूखे क्यों रहे ? लोग द्वारका जाकर साक्षात् कमलापतिके दर्शन करते हैं और धनवान् होकर घर लौटते हैं; अतएव आप भी वहाँ जाइये ॥ ५—७ ॥

सुदामाने कहा—मैं भवको मिलाया करता हूँ और आज तुम मुझीको भिना रही हो ? प्रिये ! तुम एक विद्वान् ब्राह्मणको मांगकर धन प्राप्त करनेका उपदेश दे रही हो ? ॥ ८ ॥

सत्याने कहा—आपके सखा साक्षात् लक्ष्मीपति हैं और यहाँसे बहुत दूर भी नहीं हैं; अतएव आप उनके पास जाइये । वे आपके दुःख दरिद्रियका नाश कर देंगे । दुःख दरिद्रता भोगते भोगते हमरी उम्र बीत चली । स्वामिन् । ऐसे कृपानिधि दाताकी मित्रताका क्या यही फल है ? ॥ ९-१० ॥

सुदामाने कहा—विधाताने जो भाग्यमें किया दिया है, वह होगा ही । भद्रे ! जाने-आनेमे क्या होता है ? धर्मे रहकर श्रीहरिका ध्यान करना ठीक है । जिनके दरवाजेमें गजा, देवता, गन्धर्व और किनर भी विना आशाके प्रवेश नहीं कर सकते, वहाँ मुझ-सीखे दीनको कौन पूछेगा ? ॥ ११-१२ ॥

सत्या बोली—यह सत्य है कि उनकी आशाके बिना देवता, गन्धर्व और किनर अंदर नहीं जा सकते; परंतु साक्षात् हरि तो अन्तर्यामी हैं, वे अपना दूस भेजकर आपको अंदर बुला लेंगे ॥ १३ ॥

ब्राह्मणने कहा—भासिनि ! मेरी बात सुनो । श्रीकृष्ण अवश्य ही ऐसे दयाल हैं, परंतु विपत्तिके समय धनवान्

मित्रके घर जाना उचित नहीं है । विशेषतः बहुत दिनोंके बाद उन अन्तरङ्ग प्रेमास्पदको देखकर मैं उनसे क्या याचना करूँगा ? लोभमें रहित होनेपर ही प्रेम हुआ करता है; माँगनेपर प्रेम नहीं रहा करता * ॥ १४-१५ ॥

सत्या बोली—आप दुःख दरिद्रियका नाश करनेवाले श्रीकृष्णके दर्शन करें, माँगना नहीं होगा । वे अपने आप ही प्रचुर सम्पत्ति दे देंगे ॥ १५६ ॥

सुदामाने पत्नीके द्वारा बहुत तरहसे समझाये-बुझाये जानेपर यह विचार किया—‘इस निमित्तमें मित्रके दर्शनका परम लाभ तो हो ही जायगा, परन्तु मैं उनसे उपहार क्या देंगा ? दरिद्रताके कारण कुछ देनेको है नहीं, इसीसे लज्जित हो रहा हूँ’ ॥ १६-१७ ॥

पतिके भुखसे यह बात सुनकर मती ब्राह्मणी दूसरे धरमे चार मुँडी तन्दुल (चिउड़ा) मॉग लायी और एक पुराने चिथड़ेमें बॉधकर उन्हें पति को दे दिया । तदनन्तर सुदामाजी मैले कपड़ेसे अपने मैले-कुवैल शरीरको ढककर उन चिउड़ोंको लेकर मन-ही-मन ब्रह्मण्यदेवका सरण करते हुए धर्मर्थे श्रीकृष्णके नगरनी ओर चल दिये ॥ १८-२० ॥

ब्राह्मणने नौकासे समुद्र पार करके स्वर्णमय विचित्र द्वारकापुरीके दर्शन किये । उस पुरांमें पताकाएँ फहरा रही थीं । कत्तारनी कत्तार सभा-भवन और भौति-भौतिके दुर्ग सुशोभित थे । बलवान् यादव-र्वार उसकी रक्षा कर रहे थे । उसमें चार सङ्के थीं । ब्राह्मणने श्रीकृष्णाकी पुरीको देखकर लोगोंसे पूछा—‘श्रीकृष्णका भवन कौन सा है, यह बताइये ?’ इस बातको सुनकर माधवकी द्वारका-पुरीके रक्षकोंने कहा—‘मर्मा भवनोंमें श्रीकृष्ण हैं ।’ यह सुनकर ब्राह्मण किसी एक भवनमें छुस गये और अंदर जाकर देखा कि पलंगपर श्रीकृष्ण विराजमान हैं । उन्हें देखकर सुदामाको ब्रह्मनन्दकी प्राप्ति हुई । माधवने सखा सुदामाको आया देखकर सहसा उठकर उन्हें अपने

* विपत्तिकाले मित्रस्य न गच्छेद् गृहसुतमम् ॥
कर्तु य यच्चना कुर्वे चिराद् इश्वरं स्वं प्रियम् ।
निलोमात् भवेत् श्रीनिर्वाचनात् गमिष्यति ॥
(गण०, द्वारका० २२ । १४-१५)

बाहुपाशमें थाँधकर हृदयसे लगा लिया और वे आनन्दके अँसू बहाने लगे। तदनन्तर स्वर्ण पात्रोंमें भरे जलके द्वारा उनके दोनों चरणोंका प्रक्षालन किया और उस जलको अपने मस्तकपर धारण करके ब्राह्मणको अपने पलंगपर बैठा लिया। फिर गन्ध, चन्दन, अगुरु, कुकुम, धूप, दीप, मधुपर्क और पक्षाशके द्वारा उनकी पूजा की। पश्चात् पानका बीड़ा देकर गोदान किया और मलिन-बल्धारी दुबले-पतले, पके बालेंबाले ब्राह्मणसे पधारनेका कारण पूछा। मित्रविन्दजी मुस्कुराती हुई पंखेके द्वारा सुदामाजीकी सेवा करने लगी। श्रीकृष्णकी पठरानियों सब विस्मित होकर हँसने लगीं और ब्राह्मणको इस प्रकार पूजित देखकर परस्पर कहने लगीं—‘इन भिन्नरीने कौन-सी तपस्या की है, जिससे स्वयं बैलोक्यनाथ वह भाईकी तरह इनका सहकार कर रहे हैं।’ इभी बीच दोनों मित्र आपसमें हाथ पकड़े हुए पुरानी गुरुके धरकी बाते करने लगे॥ २१-३१॥

श्रीकृष्ण बोले—ब्रह्मन्! सुनो। हम दोनोंने वहाँ सारी विद्याओंका अध्ययन साथ-साथ किया है, परंतु गुरु-दक्षिणा देनेके बाद तुमसे मिलना नहीं हुआ। मैं जरा-संधके भयसे द्वारका चला आया। मर्दे! तुम कहो रहत हो, बताओ। तुम्हें याद होगा, एक दिन गुरु पल्लीकी आशामें हम विद्यार्थीगण लकड़ी लानेके लिये भयकर बनमे गये थे। वहाँ जानेपर वर्षा और दूफानके मरे भयानक विपत्तिमें पढ़ गये। सूर्य अस्त हो गया, रात्रिका घोर अन्धकार छा गया। सब जगह जल ही-जल हो रहा था, जमीन कहीं दिखायी नहीं देती थी। हम परस्पर हाथ पकड़े बिजलीके प्रकाशमें सब जगह इधर-उधर घूमते रहे। फिर सूर्योदय होनेपर महामना गुरु सांदीपनिजीने बनमें जाकर जलमें सहस्रे ठिकुरते हुए हम जांतोंको दर्शन दिया। गुरुजीकी अँसू और बहा रही थी। उन्होंने हम सबको जलसे निकालकर जमीनपर लाकर कहा—‘मेरे बच्चों! तुम मेरी आशाका पूरा पालन करनेवाले हो। प्राणियोंके लिये सबसे प्रिय आत्मा है। तुमने उसका भी अनादर करके मुझको प्रधानता दी। इसलिये मैं संतुष्ट होकर तुमलोगोंको हुल्हें बर दे रहा हूँ। तुमलोगोंकी सब अभिलाखाएँ पूर्ण हों। वेद और पुराणादि शास्त्र तुम्हारे कण्टक्ष्य हो जायें।’ मित्र! गुरुजीकी इसी कृपासे तभीसे हमलोग सुखोंसे परिपूर्ण हैं॥ ३२-४१॥

सुदामाजीने कहा—तुम देवदेव हो, सबके गुरु हो और कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके नायक हो। तुम श्रीपति हो। तुम्हारा गुश्कुलमें निवास करना अत्यन्त विडम्बना है॥ ४२॥

राजन्! ब्राह्मण सुदामाने परमात्मा श्रीकृष्णको बे चित्तदे नहीं दिये। वे मुँह नीचा किये बैठे रहे। सर्वात्मा भगवान् उनके आनेका कारण जान गये—ये ब्राह्मण धनके इच्छुक नहीं हैं, मुक्तिके लिये ही मेरा भजन करते हैं। इनकी दुःखिनी पतिक्रिता पत्नी ही धनकी अभिलाषा रखती है; पर इन अदाता दम्पतिको मैं धन दूँ कैंग!—यो सोन्ते-सोचते श्रीहरिने जान लिया कि ‘मेरे लिये ये कुछ चित्तदा चाये हैं, पर लज्जाके मारे दे नहीं पा रहे हैं; अतएव मैं ही मांग लूँगा।’ यो यिन्द्राकर श्रीकृष्णने कहा—‘मित्र! घरमें मेरे लिये क्या उपहार लाये हो? प्रेमका दान अण्मात्र होनेपर भी महान् होता है। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक मुझ पत्र पुष्प फल जल प्रदान करता है, भक्तके द्वारा दिये हुए उस पदार्थका मैं बड़े ही आदरके साथ भोग लगाता हूँ।’ भगवान्ने यह कहकर अदाता उस सुदामा ब्राह्मणके चित्तदेको पकड़कर ‘यह क्या है?’—यो कहते हुए स्वयं चित्तदेको ले लिया और बोले—‘सखे! यह तो तुम मेरे लिये परम प्रीतिगर वस्तु लाये हो। ब्रह्मन्! इन तन्दुलेन मुझ विश्रूत भगवान्स्की तृप्ति हो जायगी। मैं गोकुलमें ऐसे श्रेष्ठ चित्तदे खाया करता था, यद्योदा दिया करती थी; परंतु उसके बाद आजतक मुझे ये देखनेको भी नहीं मिले।’॥ ४३-५२॥

इतना कहकर श्रीहरिने एक मुझे चित्तदे चबाकर सारी पृथ्वीकी सम्पत्ति सुदामाको दे दी और दूसरी मुझे खाकर ज्यों ही पातालकी सम्पत्ति देनेको तैयार हुए, बक्षःस्थलनिवासिनी लक्ष्मीदेवीने उसी क्षण हाथ पकड़कर कहा—‘नाथ! बिना अपराध आप मेरा स्वाग क्यों कर रहे हैं? श्रीकृष्ण! आपने जो कुछ दिया है, वही पर्याप्त है। उसीने ये ब्राह्मण इन्द्रके समान हो जायेग।’॥ ५३-५४॥

इधर ब्राह्मणको इस दानका कुछ पता नहीं लगा।

* नत्वगोपनीतं मे सखे परमीणनम्।

विद्वं मा नर्पतिष्ठन्ति ब्रह्मन्नेते च तण्डुलाः॥

ईशा गोकुले मुक्ताः श्रेष्ठाः पशुकाण्डुलाः॥

भात्रा वशोदया दत्ताः पुनस्तान्नैव दृष्टवान्॥

(गण०, द्वारका० २२। ५१-५२)

भगवान्‌की माशने सारी सम्पत्तिको उनके घर पहुँचा दिया। सुदामाजीने एक रात वहाँ सुखपूर्वक रहकर, भोजन-पान आदि करके, दूसरे दिन श्रीकृष्णको नमस्कार करके घर जानेकी अनुमति माँगी। भगवान्‌ने अनुमति देकर बन्दन और आलिङ्गन किया। ब्राह्मण लज्जावश कुछ भी न माँगकर घर लैट चले और एक ब्राह्मणके प्रति श्रीकृष्णकी श्रद्धा देखकर मन-ही-मन सोचने लगे—‘दरिद्र होनेपर भी श्रीकृष्णने मुझे अपनी दोनों भुजाओंमें भरकर मेरा आलिङ्गन किया। मेरे-सरीखे दरिद्र ब्राह्मणको पर्यंतपर बैठाकर भाईके समान आदर दिया। हकिमणी-सत्यभासाने व्यजनके द्वारा मेरी सेवा की। मैं निर्धन धन पाकर रमागति भगवान्‌को भूल न जाऊँ—इसीसे करुणावश उन्होंने मुझे धन नहीं दिया’ ॥ ५५-५०३ ॥

वे इस प्रकार विचारते हुए पल्लीका स्मरण करते हुए सोचने लगे—‘मैं घर जाकर कह दूँगा—‘यह लो, कोटि-कोटि धनराशि ग्रहण करो। श्रीकृष्ण ब्रह्मण्डेव हैं, दाता हैं, पर तुम्हारे लिये तो कृपण ही रहे। दूसरेके घरको रल्लोंसे भरा देखकर कोई कामना नहीं करनी चाहिये। लल्लाटमें जो कुछ विधिने लिखा है, उसमें अन्यथा नहीं होता।’’ मन-ही मन यों कहते हुए सुदामाजी अपनी पुरीमें आ पहुँचे। पुरीको देखकर वे चकित हो गये। बड़े-बड़े दरवाजे, छवजाओंसे सुशोभित सोनेके फिले और महल खड़े हैं। विनिन्न तोरण और कलशोंमें वह सुशोभित है। नगरी लज्जाओंसे भरी और उसमें इतने रस्ते हैं कि दूसरी द्वारका-पुरीकी-सी ही शोभा हो रही है। ॥ ६१-६६ ॥

ब्राह्मणने कहा—‘यह क्या है? यह किसका स्थान है?’ वे रस्ते चलते रहे। नगरके नर-नारियोंने उन्हें साथ ले चलना चाहा; पर वे गये नहीं। यह देखकर दास-दासियोंने अपनी स्वामिनी (सुदामाकी पल्ली) के पास आकर सुदामाजीके आनेकी बात कही। उनको बहा आनन्द हुआ और वे साक्षात् लक्ष्मीरूपा ब्राह्मणी बड़े सम्मानके साथ पतिके स्वागतके लिये शिविकापर सवार होकर दास-दासियोंके साथ घरसे निकली। सुदामा इधर-उधर धूम रहे

इस प्रकार श्रीगंग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संबादमें ‘सुदामा ब्राह्मणके उपाख्यानका वर्णन’ नामक वार्षसर्वां अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

ये। पल्लीने अपना मुख दिखाकर उन्हें विश्वास कराया। सुदामाजी स्वर्ण-रल्लादिमें विभूषित, प्रभा और रूपसे सम्पन्न, विमानवासिनी दूसरी लक्ष्मीकी तरह अपनी तरणी भार्याको देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने समझा—‘यह सब श्रीकृष्णकी ही कृपा है।’ ॥ ६७—७१ ॥

भोजनकी सामग्री, रस्ते, ऐश्वर्य, पर्यंत, व्यजन, आसन, चैदेवे, स्वर्णपात्र और तोरण आदिसे सुसज्जित अपनी पुरीमें सुदामाजीने पल्लीके साथ प्रवेश किया। उनका घर तो श्रीकृष्णके भवनके समान हो गया था। श्रीकृष्णकी कृपासे सुदामा भी तरण हो गये, पर विश्वासे सर्वथा अनासक्त रहकर वे बिना किसी हेतुके—अनाथास प्राप्त कुई समृद्धिका उपभोग करने लगे। वे अपनी पल्लीके साथ शान, वैराग्य और भक्तिके द्वारा उस सम्पत्तिको ल्यागनेका विनार करके मन-ही-मन सोचने लगे—‘मेरे पास इतनी समृद्धि कहाँसे आयी? यह देव-दुर्लभ सम्पत्ति ब्रह्मण्डेव श्रीकृष्णकी ही दी हुई है।’ इतनी सम्पत्ति देकर भी उन्होंने स्वर्ण मुहमें कुछ कहा भी नहीं। मेरे चित्तोंके दानोंको मुढ़ीमें लेकर बड़ी प्रीतिसे उन्होंने भोग ल्याया। जन्म-जन्ममें मुझे उन्हींका सख्य और दास्य प्राप्त हो गये। मैं उनके चरण-कर्मोंका ध्यान करके संसार-सागरसे पार हो जाऊँगा।’ ॥ ७२-७७ ॥

सुदामने मन-ही-मन इस प्रकारका निष्ठय करके पल्लीके साथ श्रीकृष्णके चरणारविन्दमें अपना मन लगा दिया और सारा धन ब्राह्मणोंको बाँटकर भगवान्‌के घासमें चले गये। ॥ ७८ ॥

जो मनुष्य इस श्रीकृष्ण-चरितका अवण करता है, वह दरिद्रतासे मुक्त होकर उत्तम भगवद्भक्त हो जाता है। ॥ ७९ ॥

नरेश्वर! तुम्हारे सामने इस पुण्यमय द्वारकाखण्डका वर्णन किया गया। जो इस खण्डका सदा अवण करते हैं, उन्हें उत्तम कीर्ति, कुल, अतिशय मुक्ति-मुक्ति और राज्य प्राप्त होता है। ॥ ८० ॥

द्वारकाखण्ड सम्पूर्ण

श्रीराधाकृष्णाम्बादः नमः

विश्वजित् खण्ड

पहला अध्याय

राजा मरुतका उपास्यान

नमो भगवते तुम्यं वासुदेवाय साक्षिणे ।
प्रचुम्नावानिलद्वाय नमः संकर्णाय च ॥ १ ॥

सबके हृदयमें वास करनेवाले सर्वसाक्षी वासुदेव,
संकर्ण, प्रचुम्न तथा अनिष्ट—चतुर्व्यूहस्वरूप आप
भगवान्को नमस्कार है ॥ १ ॥

श्रीराधाकृष्णाम्बादः श्रानामशकाक्ष्या ।

चक्रुरुद्धीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २ ॥

मैं अशानस्तीर्तीर्थीके रोगमें अंधा हो रहा था ।
जिन्होंने श्रानामशकाक्ष्या शालकामें भेरा दिव्य दृष्टि नोल दी
है, उन श्रीगुरुदेवको भेरा नमस्कार है ॥ २ ॥

श्रीराधार्जीने कहा—मुने ! इस प्रकार भगवान्
श्रीकृष्णका चरित्र मैंने तुमसे कह सुनाया, जो मनुष्योंको
धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका देनेवाला
है । अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ३ ॥

शौनकने कहा—तपोधन ! श्रीकृष्णके प्रिय भक्त तथा
श्रीहरिमें प्रगाढ़ प्रीति रखनेवाले मंथिल्लाज वहुलाश्वने
फिर देवर्णि नारदसे क्या पूछा, वही प्रश्नङ्ग भुजे सुनाइये ॥ ४ ॥

श्रीराधार्जी थोले—मुने ! भगवान् श्रीकृष्णने (मरुत
के अवतार) उपसेनको यादवोंका राजा बनाया, यह
सुनकर मिथिलाननेश वहुलाश्वनो बड़ा विस्मय हुआ ।
उन्होंने नारदजीसे प्रश्न किया ॥ ५ ॥

वहुलाश्व थोले—देनवें ! ये मरुत कौन थे ? ये
किस पुण्यसे भूतलाश्व यहुवंशियोंके राजा उप्रसेन हो गये ?
जिनके स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी सहायक हुए,
उनकी महिमा अद्भुत है । देवर्णिशिरोमणे ! उनकी
महत्ता क्या थी ? यह मुझे चताइये ॥ ६-७ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! सत्ययुगमें सूर्यवंशी
राजा मरुत चक्रवर्ती समाद् थे । उन्होंने विधिपूर्वक
विश्वजित्-यशका अनुष्ठान किया था । वे हिमालयके उक्त
मारमें बहुत बड़ी सामग्री एकत्र करके, मुनिश्वेष संकर्तको

आचार्य बनाकर यज्ञके लिये दीक्षित हुए । उनके यज्ञमें
पाँच योजन विस्तृत कुण्ड थना था । एक योजनका
तो ब्रह्मकुण्ड था और दो दो कोमके पाँच कुण्ड और
बने थे । कुण्डके गर्तका जो विस्तार था, तदनुसार
वेदियोंसे दस मेवलाएं यनी थीं । उस यज्ञमण्डपमें
जो स्तम्भ बना था, उसका ऊचाई एक हजार हाथरी
थी । वह महान् यज्ञस्तम्भ बड़ी शोभा पाता था । उसमें
सोनेका यज्ञमण्डप बना था, जिसका चैत्यनार वीस योजन
था । चौदोवो, चैत्यननारो और कद्गांवण्डमें वह यज्ञमण्डप
मण्डित था । उस यज्ञमें ब्रह्मा रुद्र आदि देवता अपने
गणोंके साथ पधारे थे । समस्त ऋषियां मुनि स्वयं उस
यज्ञमें आये थे । उस यज्ञमें दस लाख होता, दस लाख
दीक्षित, पाँच लाख अध्यर्थी और उक्ताना अल्पा थे । वहों चारों
वेदोंके विदान् व्राह्मण बुलाये गये थे, जो गण्यांश शास्त्रोंके
अर्थतत्त्वके ज्ञाता थे । और भी करोड़ों व्राह्मण उसमें
पूजित हुए थे । उस यज्ञमें दीर्घाकी सूँड़के समान
घोड़ी मोर्दी घृत धाराओंकी आहुति दी गयी थी, जिसको
खाकर अनिदेवको अजीर्णता रोग हो गया । मिथिलेश्वर ।
उस यज्ञके विश्वयमें ऐसा होना नोई विचित्र बात न
जानो ॥ ८-९ ॥

उस यज्ञमें विश्वदेवगण भग्नभद्र थे । वे जिन-
जिनके लिये भाग देना आवश्यक बताते थे, उन-
उनके लिये भागका परिवर्णण (परासनंका कार्य) स्वयं
मरुदग्नण करते थे । उस यज्ञके समय त्रिलोकमें कोई
भी ऐसे जीव नहीं थे, जो भूखे रह गये हों । सम्पूर्ण
देवताओंको सोमरस पीतं पीते अजीर्ण हो गया था ।
यज्ञमान राजा मरुतने उस यज्ञमें आचार्य संकर्तको
जम्बूदीपका राष्ट्र दे दिया । इसके सिवा चौदह लाख
हाथी, चौदह लाख भार सुवर्ण, सौ अरबी थोड़े तथा
नौ करोड़ बहुमूल्य रसन भी यज्ञान्तमें महात्मा आचार्यको
दीक्षिणाके रूपमें दिये । प्रत्येक व्राह्मणको उन्होंने पाँच-

पाँच हजार घोड़े, सौ-सौ हथी और सौ-सौ भर सुवर्ण प्रदान किया । जलगात्र और भोजनपात्र सब सुवर्णके बने हुए थे, जो अत्यन्त उद्दीप दिवायी देते थे । उनमें भोजन करके सब ब्राह्मण संतुष्ट होकर विदा हुए । ब्राह्मणोंके फेंके हुए उच्छिष्ट स्वर्णगत्रोंसे हिमालयके झाड़ी, श्री योजनका सुवर्णमय पर्वत बन गया था, जो आज भी देखा जा सकता है ॥ १७-२३ ॥

राजा मरुत्तका जैसा यज्ञ हुआ, वैसा दूसरे किसी राजाका कभी नहीं हुआ । राजेन्द्र ! मुनो, त्रिलोकीमें वैमा यज्ञ न हुआ है न होगा । उस यज्ञकुण्डमें सक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णने प्रकट होकर महात्मा राजा मरुत्तको अपने स्वरूपका दर्शन कराया था । उन श्रीहरिका दर्शन करके, उनके चरणोंमें माथा नवाकर, राजा मरुत्त दोनों हाथ जोड़े खड़े रहे; कुछ बोल न सके । उनके शरीरमें रोमांश हो आया और वे प्रेममें विहळ हो गये । इस तरह उन प्रेमपूरित नरेशको अपने चरणोंमें प्रणत हुआ देख सक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण मेघके समान गम्भीर वाणीमें बोले ॥ २४-२७ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—राजन् ! तुमने अपने विनयसे मुझे संतुष्ट किया है । निष्कामभावसे सम्पादित उत्तम यज्ञोदारा मेरी पूजा की है । महामते ! तुम मुझसे कोई उत्तम वर माँग लो । मैं तुम्हें वह वरदान देंगा, जो स्वर्णके देवताओंके लिये भी दुर्लभ है ॥ २८ ॥

श्रीनारदजी कहने हैं—राजन् ! राजा मरुत्तने भगवान्का उपर्युक्त वचन मुनाकर, हाथ जोड़, परिक्रमा करके, उन परमेश्वर हरिका परम भक्तिभावसे विशद उपचारोदारा पूजन किया और प्रणाम करके अल्पन्त गद्गद वाणीमें कहा ॥ २९ ॥

मरुत्त बोले—श्रीपुरुषोत्तमोत्तम ! आपके चरणारविन्दोंसे बढ़कर दूसरा कोई उत्तम वर मैं नहीं जानता ।

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित् खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाद्व-संवादमें श्रीमरुत्तका

उपाख्यान नामक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

जैसे प्यास लगानेपर दुर्बुद्धि नरपशु गङ्गाजीके तटपर पहुँचकर भी प्यास बुझानेके लिये कुआँ खोदते हैं (उसी प्रकार आपके चरणारविन्दोंको पाकर दूसरे किसी वरकी इच्छा करना दुर्बुद्धिका ही परिचय देना है) तथापि हे व्रजेश्वर ! आपकी आशाका गौरव रखनेके लिये मैं यही वर माँगता हूँ कि मेरे हृदय-कमलमें आपका चरणारविन्द कदापि दूर न जाय; क्योंकि वही चारों पुरुषार्थों तथा अर्थ-सम्पदाओंका मूल कहा गया है ॥ ३०-३१ ॥

श्रीभगवान् बोले—राजन् ! तुम्हारी निर्मल मति धन्य है । तुम्हें वरदानका लोभ दिये जानेपर भी तुम्हारी बुद्धिमें किसी कामनाका उदय नहीं हुआ है । तथापि तुम मुझसे कोई अभीष्ट वर माँग लो; क्योंकि फल देकर भक्तको सुखी किये दिना मुझे सुख नहीं मिलता ॥ ३२ ॥

मरुत्तने कहा—प्रभो ! यदि मुझे अभीष्ट वर देना ही है तो इस भूतलय वैकुण्ठलोकको स्थापित कर दीजिये और भक्तवत्सल ! उसी पुरमें श्रेष्ठ भक्तजनोंके साथ मैं निवास करूँ और आप मेरी रक्षा करते रहें ॥ ३३ ॥

श्रीभगवान् बोले—राजन् ! जबतक इस मन्वन्तरके अद्वाईस युग बीतेंगे, तबतक तुम स्वर्णका सुख भोगकर अद्वाईसबंद्धापरमें मेरे साथ पृथ्वीपर आकर अपने मनोरथके समुद्रको गोवत्सकी खुरीके समान बना लोगे । अर्थात् उस समय तुम्हारा यह सारा मनोरथ अनायास ही पूर्ण हो जायगा ॥ ३४ ॥

श्रीनारदजी कहने हैं—मिथिलेश्वर ! यों कहकर सक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण वहीं अन्तर्धीन हो गये । वे ही ये राजा मरुत्त उग्रसेन हुए । श्रीहरिने स्वयं उनसे राजसूय-यज्ञ करवाया । मैथिलेश्वर ! त्रिलोकीमें कौन-सी ऐसी वस्तु है, जो भगवद्गत्तोंके लिये दुर्लभ हो ? वृपोत्तम ! जो मनुष्य मरुत्तके इस चरित्रको सुनता है, उसे भक्तियुक्त शन और वैराग्यकी प्राप्ति होती है ॥ ३५-३७ ॥

पादुकाएँ दी तथा वेगशालियों भद्रकालोंने प्रशुम्नको माला भैंट की । इन्हने महात्मा प्रशुम्नको सहस्रों व्यजोंसे सुशोभित महादिव्य रसमय विजय दिलानेवाला रथ प्रदान किया ॥ २१ - २८ ॥

‘व समय शङ्क और दुन्दुभियों बजने लगी । ताल

इस प्रकार श्रीगर्व-सहितामें विश्वविन्दुष्टके अन्तर्गत श्रीनारद-चतुरलक्ष्म-संवादमें प्रशुम्नका विजयाभिषेक नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

और वीणा आदिके शब्द होने लगे । जय-जयकारकी घटनिले युक्त मृदंग और वेणुओंके उत्तम नादसे तथा वेद-मन्त्रोंके शोषणे व्याहँका स्थान गूँज उठा । मोतियोंकी वर्षके साथ लील और फूलोंकी वृष्टि होने लगा । देवताओंने प्रशुम्नके ऊपर पुष्पोंकी शस्ती लगा दी ॥ २९-३० ॥

तीसरा अध्याय

प्रशुम्नके नेतृत्वमें दिविजयके लिये प्रसिद्ध हुई यादवोंकी गजसेना,
अश्वसेना तथा योद्धाओंका वर्णन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण, राजा उग्रसेन, व्यसमजी तथा गुरु गर्वाचार्यको नमस्कार करके, उनकी आङ्गा ले, प्रशुम्न रथपर आरूढ़ हो कुशस्थली पुरीसे बाहर निकले । फिर उनके पीछे समस्त उद्धव आदि यादव, मोजवंशी, वृष्णिवंशी, अन्धकवंशी, मधुवंशी, शूरवंशी और दशार्हवंशमें उत्पन्न वीर चले । फिर श्रीकृष्णके भाईं गद आदि सब वीर श्रीकृष्णकी अनुमति के पुत्रों और सेनाओंके साथ चल दिये । साम्भ आदि महारथी भी प्रशुम्नके साथ गये ॥ १-३ ॥

वे सभी यादव वीर किरीट, कुञ्जल तथा लोहेके बने हुए कच्छपे अलंकृत थे । उनके साथ करोड़ोंकी संख्यामें चतुरक्षणी सेना थी । वे सब द्वारकापुरीसे बाहर निकले । उनके रथ भोर, हंस, गश्छ, मीन और तालके विहँसे युक्त व्यजोंसे सुशोभित थे, सूर्यमण्डलके समान तेजोमय थे और चक्रल अश्व उनमें जोते गये थे । उन रथोंके कलाव और शिखर सोनेके बने थे, मोतियोंकी बन्दनबारे उनकी शोभा बढ़ाती थी । वे सभी रथ बायुवेगका अनुकरण करते थे । उनमें दिव्य चँवर हुँजाये जा रहे थे । वे वीरोंके समुदायसे सुशोभित तथा सुनहरे देव-विमानोंके समान प्रकाशमान थे, ऐसे रथोंद्वारा उन भनोहर वीरोंकी बड़ी शोभा हो रही थी । उस सेनामें अत्यन्त उद्भव झँचे-झँचे गजराज थे, जिनके गण्डस्थलसे मद शर रहे थे । उनके मुखमण्डलपर चित्र-विचित्र पश्च-रचना की गयी थी । वे सुनहरे कच्छसे सुशोभित थे । उनकी पीठपर छाल रंगकी छाल पही थी और उनके

उभय पालमें लटकाये गये धंटे बज रहे थे । नरेश्वर । उस राजसेनाके हाथी गिरिराजके शिखर-जैसे जान पहुँचते थे । वे भद्रजातीय गजेन्द्र विभिन्न दिशाओंमें विद्यमान गजराजों—दिग्गजोंकी नकल करते दिशाशी देते थे । कोई भद्रजातीय थे, जिनकी चर्चा की गयी है । दूसरे भद्रमूरा जातिके थे । कुछ हाथी विन्द्याचल पर्वतमें उत्पन्न हुए थे और कुछ कश्मीरी थे । कितने ही मल्याचलमें उत्पन्न थे । बहुत-से हिमालयमें पैदा हुए थे । कुछ मुरण्ड देशमें उत्पन्न हुए थे और कितने ही कैलस पर्वतके जंगलोंमें पैदा हुए थे । कितनोंके जन्म ऐराष्ट-कुलमें हुए थे, जिनके चार दाँत थे और उनकी गर्दनोंमें जंजीर (गरदनी या गिरौंव) सुशोभित थीं । उनके ऊर्जभागमें तीन-तीन लैंडे थीं और वे भूतलपर तथा आकाशमें भी चल सकते थे ॥ ४-१२ ॥

करोड़ों हाथी ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित थे । उनपर करोड़ों दुन्दुभियाँ रक्खी गयी थीं । उस सेनाके भीतर करोड़ोंकी संख्यामें विद्यमान वे हाथी रस-समूहमें मण्डित थे और महावतोंसे प्रेरित होकर चलते थे । गजना करते हुए, मेघोंकी घटाके समान काढे तथा नीले रंगकी शूलसे आन्धादित वे गजराज उस सेन्य-सागरमें इधर-उधर मगरमण्डोंके समान शोभा पाते थे । वे अपनी लैंडोंसे लता-शादियोंको उखाड़कर सूर्यमण्डलकी ओर फैकते, पैरोंके आधातसे धरतीको कमित करते और मदकी वधोंसे पर्वतोंको आर्द्ध किये देते थे । वे अपने कुम्मस्थलोंकी टक्करसे हुर्ग, शैल और शिखलप्पोंको भी निराने

प्राप्ति करने वाला विद्युतिकारी अवस्थामें प्रभुमनके समान
होते हैं । इनके विद्युत अवस्थामें उनकी आवृत्ति
विद्युतिकारी अवस्थामें रखनायक विद्युत विद्युतिकारी रथ प्रदर्शन
किए ॥ ११—१२ ॥

उसमें यह और दुन्दुभियों बताने की । ताकि
इस प्रकार श्रीगांगाधिकारी विद्युतिकारीके
विद्युतिकारी विद्युत दुसरा विषय है ॥ १२ ॥

जीवन विद्युत विद्युतिकारी विद्युत द्वितीय । विद्युतिकारी
दुक मनके और विद्युतिकारी विद्युत विद्युतिकारी विद्युतिकारी
विद्युतिकारी विद्युतिकारी विद्युतिकारी विद्युतिकारी विद्युतिकारी
विद्युतिकारी विद्युतिकारी विद्युतिकारी विद्युतिकारी विद्युतिकारी
विद्युतिकारी विद्युतिकारी विद्युतिकारी विद्युतिकारी ॥ १३—१४ ॥

विद्युतिकारी विद्युत विद्युतिकारी विद्युतिकारी
विद्युतिकारी विद्युतिकारी विद्युतिकारी ॥ १३—१४ ॥

तीसरा अध्याय

**प्रभुमनके नेतृत्वमें विद्युतिकारीके लिये प्रतिष्ठित हुई विद्युतिकारी विद्युतिकारी,
विद्युतिकारी विद्युतिकारी विद्युतिकारी**

श्रीगांगाधिकारी कहते हैं—राजन् । तदेवनन्दर भगवत्
भीकृष्ण, राजा उपरेन, वल्लभामी तथा शुक गांगाधिकारीको
नमस्कार करके, उनकी आकाशे, प्रभुमन रथस्त आस्त हो
कुशस्तकी पुरीते बाहर निकले । फिर उनके पीछे उपस्त उद्दर्श
आदि यादव, भोजवंशी, शृणिवंशी, अन्धकर्णवंशी, मधुवंशी,
शूरवंशी और दशार्हवंशमें उत्तम वीर चके । फिर श्रीकृष्णके
भारी गद आदि तथा वीर श्रीकृष्णकी अनुगति के पुरी और
सेनाओंके ताथ चढ़ दिये । ताथ आदि महारथी श्री प्रभुमनके
ताथ गये ॥ १—१ ॥

वे सभी यादव वीर किरीट, कुपल तथा खोड़के बने
हुए कल्पसे बलंहत थे । उनके ताथ करोड़ोंसी संकलनमें
“चतुरशिरी” देखा थी । वे तब द्वारकापुरीते बाहर निकले ।
उनके एवं सोरु हृषि, शश, भीम और दास्तके लिये शुक
स्त्रोंपरे दुश्योगित थे, सुर्यमण्डलके समान देवतोंमें थे और
विद्युत भवत उनमें जोते थे । उन रथोंके बलवा और
विद्युत लोकोंके बने थे, मेवियोंकी क्षमतावारे उनकी शोभा
वहाँ थी । वे सभी एवं वासुदेवका अनुकरण करते थे ।
उनमें विद्युत चंपर हुआये जा रहे थे । वे शीरोंके लड़ाकास्तरे
कुशोगित तथा मुग्धहरे देव-विद्युतिकारीके समान व्रकाशालके
सेषे दर्शकाणा उन अनेक शीरोंकी बड़ी शोभा ही रही थी ।
अतः उनमें विद्युत उद्योग उद्योग विद्युतिकारी विद्युतिकारी
विद्युतिकारी विद्युतिकारी विद्युतिकारी विद्युतिकारी विद्युतिकारी
विद्युतिकारी विद्युतिकारी विद्युतिकारी ॥ १—१ ॥

उम्म पालमें छटकाये गये घटे बल रहे थे । नरेशर । उम्म
राजघोनाके हाथी विद्युतिकारी विद्युत वीरे वान पहुंचे थे । वे
विद्युतिकारी विद्युत वीरे विद्युतिकारी विद्युतिकारी विद्युतिकारी
विद्युतिकारी विद्युतिकारी विद्युतिकारी विद्युतिकारी ॥ ४—१२ ॥

लोदी हाथी भवत-वताकार्योंते दुश्योगित थे । उन्नप्र
क्षोटों दुश्योगितों रक्षी गयी थी । उत्त सेनाके शीर
करोड़ोंसी संकलनमें विद्युतान वे हाथी रज-समूहसे विद्युत
थे और भवत-वताक्षोंपरे प्रेरित होकर चलते थे । महाना करते हुए,
मेवियोंके लगान काढे तथा नीले रंगकी छाकते आप्तासीत
वे विद्युत उत्त सेव्य-वताकार्यमें हृषि-उत्तर मगरमण्डलके उपर
शोभा पहुंचे थे । वे अपनी लोदी विद्युतिकारी विद्युतिकारी विद्युतिकारी
विद्युतिकारी विद्युतिकारी विद्युतिकारी विद्युतिकारी विद्युतिकारी
विद्युतिकारी विद्युतिकारी विद्युतिकारी विद्युतिकारी ॥ ४—१२ ॥

तथा शशुसेनाको खण्डित करनेकी शक्ति रखते थे । उस वादव-सेनामें ऐसे ऐसे हाथी विद्यमान थे ॥ १३-१६ ॥

राजन् ! गजसेनाके पांछे घोड़ोंका भना निकली । उन घोड़ोंमें कुछ मत्स्यदेशके, कुछ कलिन्दपवतके, कुछ उशीनर देशके, कुछ कोसल, विदर्भ और कुरुजाह्ल देशके थे । कोई काम्बोजाय (काबुल), कोई सुखयदेशाय, कोई केकय और कुनित देशोंके पैदा हुए थे । कोई दरद, केरल, अङ्ग, वज्र और विकट जनपदोंमें पैदा हुए थे । कितने ही कोङ्कण, कोटक, कर्णाटक तथा गुजरातमें पैदा हुए थे । कोई सौवीर देशके और कोई सिंधी थे । कितने ही पञ्चाल (पंजाब) और आबूमें उत्पन्न हुए थे । कितने ही कच्छी धोड़े थे । कुछ आनंद, गन्धार और मालव देशके अश्व थे । कुछ महाराष्ट्रमें उत्पन्न, कुछ तैलंग देशमें पैदा हुए और कुछ दरियाई धोड़े थे ॥ १७-२० ॥

परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णकी अश्वशालाओंमें जो धोड़े विद्यमान थे, वे भी सब-के-सब उस दिग्विजय-यात्रामें निकल पड़े । कुछ इंवंटदीपसं आये थे । कुछ जो वैकुण्ठ, अजितपद तथा रमावैकुण्ठ लोकसं प्राप्त हुए अश्व थे, वे भी उस सेनाके साथ निकल गये । वे भोजेके हारोंमें सुश्रामित और मोर्तियोकी मालाओंसे गनोहर दिखायी देते थे । उनकी शिखाये मणि पहिनायी गयी थी, जिसकी सुदूरतक फैली हुई किरणें उन अस्वार्थी शोभा बढ़ाती थीं और उनके साज-सामान भी बहुत सुन्दर थे । नामर (कलंगी) से अलंकृत हुए उन धोड़ोंकी पूँछ, मुख और पैरोंमें प्रभा-सी छिटक रही थीं । यादवोंकी उस विशाल सेनामें ऐस-ऐसे धोड़े हाइगोचर होते थे, जो वायु और मनके समान बेग शाली थे । वे अपने पैरोंसे धरतीका तो स्पर्श ही नहीं करते थे—उड़ते से चलते थे । मिथिलेश्वर ! उनकी गति ऐसी हल्की थी कि वे कच्चे सूतोंपर और बुद्धुदोंपर भी चल

इस प्रकार श्रीर्गी-संहितामें विद्वाज-भण्डके अन्तर्गत नारद-बहुदात-संवादमें 'गादवसेनाका प्रयाण'

नामक तीमरा वध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

सेनासहित यादव वीरोंकी दिग्विजयके लिये यात्रा

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार सेनासे विरुद्ध हुए धनुर्धारियोंमें भेड़ वीर प्रशुम्नसे श्रीकृष्ण-वल्लदेवसहित उग्रतेनने कहा ॥ १ ॥

सकते थे । पारे पर मकड़ीके जालोंपर और पानीके फुहारोंपर भी वे निगधार चलते दिखायी देते थे । वे चञ्चल अश्व पर्वतोंवाले श्राटियों, नदियों, दुर्गमस्थानों, गढ़ों और ऊँचे-ऊँचे प्रामादोंवाले भी निरन्तर लौंगने जा रहे थे । मैथिलेन्द्र ! वे इधर उभर मोर, नीतर, कौञ्ज (सारन), हंस और खद्गरीटकी गांती सा भगुक्षण करते हुए पृथ्वीपर नाचते चलते थे । कई अश्व पौखवाले थे । उनके शारीर दिव्य थे, कान इयाम-वर्णके थे, आकृति मनोहर थी । पूँछके बाल पीले रंगके थे और शरीरकी धान्ति चन्द्रमाके समान श्वेत थी । वे भी श्रीकृष्णकी अश्वशालामें निकले थे । कुछ धोड़े उच्चैःश्रवाके कुलमें उत्पन्न हुए थे, कुछ सूर्यदेवके धोड़ोंसे पैदा हुए थे । कितने ही अश्व अश्वनीकुमारोंकी पदायी हुई विद्या (चलनेवाली हड्डी) से सम्पन्न थे । कितनोंको वरुण देवताने अच्छी चाल दी शिखा दी थी । किन्होंकी कान्ति मन्दार-पुष्पके समान थी । कुछ मनोहर अश्व चितकवरे थे । कितनोंके रंग अद्विनी पुष्प (कनेर) के समान पीले थे । बहुत-से अश्व सुनहरी तथा हरे कान्तिसे उद्भासित थे । कितने ही अश्व पद्मराश मणिकी-मी कान्तिवाले थे । वे सभी समस्त शुभलक्षणोंमें युक्त दिखायी देते थे । राजन् ! इनके सिवा और भी कोटि कोटि अश्व कुशस्थली पुरामें बाहर निकले ॥ २१-२२ ॥

सेनाके धनुर्धर वीर एंभे थे, जिन्हे कई युद्धोंमें अपने शौर्यके लिये र्घाति प्राप्त हो चुकी थी । उन सबने शक्ति, विशूल, नज्जाम, गदा, कवच और पदा धारण कर रखते थे । नरेश्वर ! वे शास्त्र-धाराओंकी वर्षा करते हुए प्रलयकालके महासागरने समान प्रतीत होते थे । राणभूमिमें दिग्गजोंकी भौति शब्दोंको रीढ़ते आर कुचलते दिखायी देते थे । राजन् ! इस प्रकार यादवोंकी वह विशाल मेना निकली, जो अत्यन्त अद्भुत थी । उमे देववर देवता और अमुर—सभी विस्मित हो उठे ॥ २३-२५ ॥

उद्गसेन बोले—ऐ महाप्रात्र प्रशुम्न ! तुम श्रीकृष्णकी कृपासे समस्त यात्राओंपर विजय प्राप्त करके शीघ्र ही द्वारका-में लौट आओगे । इस बातको व्याप्तमें रखो कि अर्पण पुरुष

मतवाले, अलावधान, उन्मत्त (पागल), सोये हुए, बालक, जड़, नारी, शरणागत, रथर्हान और भयभीत दशुको नहीं मारते। संकटमें पड़े हुए प्राणियोंकी पीड़ाका निवारण तथा कुमारगमें चलनेवालोंका वध राजाके लिये परम धर्म है। इस प्रकार जो आततायी है (अर्थात् दूसरोंको विष देनेवाला, वधय घरोंमें आग लगानेवाला, क्षेत्र और नारीका अपहरण करनेवाला है), वह अवश्य वधके योग्य है। जी, पुरुष या नर्पुसक कोई भी क्यों न हो, जो अपने आपको ही महरब देनेवाले, अधम तथा समस्त प्राणियोंके प्रति निदय हैं, ऐसे लोगोंका वध करना राजाओंके लिये वध न करनेके ही बराबर है। अर्थात् दुष्टोंके वधमें गजाओंको दोप नहीं लगाता। धर्मयुद्धमें शत्रुओंका वध करना प्रजापाल, गजाके लिये पाप नहीं है। आदिराजा स्वायम्भुव मनुने पूर्णांगों राजाओंसे कहा था कि 'जो रणमें निर्भय होकर आगे पांच नदाने हुए प्राण ल्याग देता है, वह सूर्यमण्डलका भेदन करके परम शम्भवे जाता है। जो योद्धा क्षत्रिय होकर भी भयके कारण युद्धमें पीठ दिखाकर रणभूमिमें स्वामीको छोड़कर पलायन कर जाता है, वह महारौरव नरकमें पड़ता है। राजाका कर्तव्य है कि वह सेनाका रक्षा करे और नेनाका कर्तव्य है कि वह राजाकी ही रक्षा करे। मूलं नाहिये कि वह संकटमें पड़े हुए गृहीका प्राण वनाये और श्री सारथिकी रक्षा करे। तुम समस्त यादव सामर्थ्यशाली भेना और वाहनसे सम्पन्न हो; अतः तुम सब मिलकर प्रद्युम्नकी ही रक्षा करना और प्रद्युम्न तुमलोगोंकी रक्षा करें। गौ, ब्राह्मण, देवता, धर्म, वेद और साधुपुरुष—इस भूतल्यर मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले सभी मनुष्योंके लिये सदा पूजनीय हैं। वेद भगवान् विष्णुकी वाणी हैं, ब्राह्मण उनका सुख है, गौएँ श्रीहरिका शरीर हैं, देवता अङ्ग हैं और साधुपुरुष साक्षात् उनके प्राण माने गये हैं। ये साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण हरि भक्ति के बशीभूत हो जिनके विज्ञमें निवास करते हैं, उन वीरोंकी सदा विजय होती है॥ २-१३॥

* गावो विप्राः दुरा धर्मस्त्वादिः पुर्वि साधवः ।

पूजनीयाः सदा सर्वमनुष्यैर्मोक्षकाहिभिः ॥

वेदा विष्णुवचो विप्रा मुखं गावस्तानुहरेः ॥

ब्रह्मानि देवताः भाक्षात् साधवो शनवः रक्षाः ॥

श्रीकृष्णोऽयं हरिः साक्षात् परिपूर्णतम् प्रभुः ॥

येन विसे लितो भन्त्य तेऽस्तु तु विजयः मदः ॥

(गण०, विश० ४ । २२ २३ ।

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर ! समस्त यादवोंसे राजा उग्रसंनके इस आदेशको सिर छुकाकर स्वीकार किया और हाथ जोड़कर प्रणाम किया। तत्पश्चात् प्रद्युम्नने मरतक छुकाकर राजा उग्रसंन, शूर, वसुदेव, बलभद्र, श्रीकृष्ण तथा महामुनि गणांचार्यको प्रणाम किया। नृपेश्वर ! तदनन्तर श्रीकृष्ण और बलदेवके साथ राजा उग्रसंन यदुपुरीमें चले गये और दिग्बिजयकी इच्छावाले श्रीकृष्णपूज्य प्रद्युम्नने यादव-भेनाके साथ आगेके लिये प्रस्थान किया॥ १४-१५॥

मैथिलेश्वर ! उस भेनाके समस्त सुवर्णांमय शिविरोंमें नार गोजन लंबा राजमार्ग मीं आच्छादित एव सुदौभित होता था। भेनाके आगे विशाल बाहिनीमें युक्त महावली कूतवर्गी थे और उनके पीछे पतुधरोंमें श्रेष्ठ शूर अपने मैन्यदलके साथ नल रहे थे। तत्पश्चात् मन्त्री उद्धव पांच प्रतिगांओंके साथ जा रहे थे। राजन् ! उनके पीछे अठारह महारथी सौ अझौहिणा भेनाके साथ यात्रा कर रहे थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, दीमिमान्, भानु, भास्व, मधु, बृहद्भानु, चित्रभानु, ब्रुक, अरुण, पुष्कर, देववाहु, श्रुतदेव, सुमन्दन, चित्रभानु, विश्व, कवि और न्यग्रोष। तत्पश्चात् श्रीकृष्णप्रेरित गद आदि समस्त वीर चल रहे थे। भोज, बृष्णि, अन्धक, मधु, शूरभेन तथा दशाहके वंशज वीर उस भेनामें सम्मिलित थे। समस्त यादवोंकी संख्या छप्पन कोटि बनायी जानी है। नरेश्वर ! उस यादव भेनानी गणना भवति, इस भूतल्यर कौन करेगा॥ १७-२१॥

इस प्रकार विशाल भेनाको साथ लिये जाते हुए यादव नेत्रोंके धनुषके टकारके साथ पीटे जाते हुए नगरोंका महान् देव भूमण्डलमें व्याप हो रहा था। गजेन्द्रोंका चीलार, हयेन्द्रोंका हिनहिनाहट, दगती हुई भुशुष्डी (तोप) की आवाज, हृदता रम्यनेत्राले वीरोंमीं गर्जना और डंकोंकी गर्भीर ध्वनियोंसे भै यादव वीर विजयीकों गडगडाहटसे युक्त प्रब्लेमेशोका-सा दृश्य उपस्थित करते थे। भारा भूमण्डल ही उस भेनासे शोभित हो रहा था। पृष्ठीपर चलते हुए उन महात्मा वीरोंके तुमुल नादसे द्विग्गजोंके कान भी बहरे से हो गये थे तथा शत्रुगण साहस छोड़कर तस्काल अपने हुंस की ओर भागने लगे थे। पानीमें रहनेवाले कन्छप 'पृष्ठीपर यह क्या हो रहा है?'—यों कहते तथा 'हम कहांसे कहां जायें' यों बोलते हुए भागने लगे। नै मन-ही-मन सोचते गे 'हे विशाल ! यह ग्राहक रहा जा रहा है, जिनमें

परस्तः कुलसहित वह अचल पृथी भी विचलित हो गयी है ॥ २२-२७ ॥

विरेष्वाज ! यह से एक बहाना था । उसकी आइ

इस भक्ति श्रीगण्ड-सहितामें विश्वविद्यालयके अन्तर्गत नारद-बहुलादव-संबादमें ‘प्रद्युम्नकी विश्वविद्यार्थी यात्रा’ नामक औरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

यादव-सेनाकी कल्प और कलिङ्गदेशपर विजय

श्रीबहुलादवने पूछा—देविशिरोमणे ! श्रीहरिके पुत्र प्रद्युम्न क्रमशः किन-किन देशोंको जीतनेके लिये गये, उनके उदाहर कर्मोंका मेरे समक्ष वर्णन कीजिये । अहो ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी अपने भक्तोंपर ऐसी कृपा है, जो अवण और चिन्तन किये जानेपर पापीजनोंको उनके कुलसहित पवित्र कर देती है ॥ १-२ ॥

श्रीमारदद्दीने कहा—राजन् ! तुमने बहुत अच्छा बात पूछी है । तुम्हारी विमल बुद्धिको साधुवाद ! श्रीकृष्ण के भक्तोंका चरित्र तीनों लोकोंको पवित्र कर देता है । राजन् ! वर्षाकालमें बादलोंसे बरसती हुई जलधाराओंको सथा भूमिके समस्त धूलिकांगोंको कोई विदान् पुष्ट भले ही गिन डाले, किंतु महान् श्रीहरिके गुणोंको कोई नहीं गिन सकता । कविभागिनद्वन् प्रद्युम्न उस इवेत छत्रसे सुशोभित थे, जिसकी छाया चार योजनाक दिखाया देती थी । वे इन्द्रके दिये हुए रथपर आरूढ़ हो अपनी सेनाके साथ पहले कल्प देशोंको जीतनेके लिये उसी प्रकार गये, जैसे पूर्व कालमें भगवान् शंकरने विपुरोंको जीतनेके लिये रथसे यात्रा की थी । कल्प देशका राजा शुभ्र शिकार खेलनेके लिये निकला था । वह यादवोंकी सेनाको आयी हुई जान अपनी राजधानी हाल्यपुरीको लौट गया ॥ ३-७ ॥

प्रद्युम्नकी आयी हुई सेना हाथियोंके पदाघातस बृक्षोंको चूर-चूर करती और विभिन्न देशोंके भवनोंको गिराती हुई चल रही थी । उसने उठे हुए धूलिमूहोंसे आकाश अन्धकाराच्छन्न हो गया और कल्प देशके सभी निवासी भवधीत हो गये । उस समय राजा शुभ्र अत्यन्त हर्षित हो तकाल सेनेकी मालाओंसे अलंकृत पाँच सौ हाथी, वह इक्षाग खेड़े और दीस भाड़ सुवर्ण सेकर समने आया ।

लेकर परमेश्वर श्रीहरि भूतलका भार उतार रहे थे । जो यदुकुलमें चतुर्भूरस्त्रप घारण करके विराजमान हैं, उन अनन्त-गुणशाली पृथ्वीपालक भगवान्‌को नमस्कार है ॥ २८ ॥

उसने मैट देकर पुष्पहारमें अपने दोनों हाथ बाँधकर प्रद्युम्नको प्रणाम रिया । इससे प्रसन्न होकर शम्भरारि प्रद्युम्नने राजा शुभ्रसे रत्नोंकी बनी हुई एक माला पुरस्कारके रूपमें दी और उसके राज्यगर पुनः उसीको प्रतिष्ठित कर दिया । राजन् ! भाध्यपुरुषोंका ऐसा ही स्वभाव होता है ॥ ८-१२ ॥

तदनन्तर वल्लावान् रुक्मिणीनन्दन कलिङ्ग देशको जीतनेके लिये गये । उनके साथ कहराती पताकाओंसे सुशोभित उत्तम सेनाएँ थीं । उन्हें देखकर ऐसा लगता था, मानो मैत्रीकी मण्डलीके साथ देवराज इन्द्र यात्रा कर रहे हों । कलिङ्गराज अपनी सेना तथा शक्तिशाली हाथी-सवारोंके साथ महात्मा प्रद्युम्नके सामने युद्ध करनेके लिये निकला । कलिङ्गको आया देख धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिश्च एकमात्र रथ लेकर यादव-सेनाके आगे खड़े हो उसकी सेनाओंके साथ युद्ध करने लगे । अपने धनुषकी बार-बार टंकार करते हुए वीर अनिश्चने सौ बाणोंसे कलिङ्गराजको, दस-दस बाणोंसे उसके रथियों और हाथियोंको धायल कर दिया । यह देख उनके अपने और शशुपक्षके सभी योद्धाओंने ‘साधु-साधु’ कहकर उन्हें शान्ताशी दी । प्रद्युम्नके देखते हुए ही अनिश्च युद्ध करने लगे । नरेश्वर ! उनके बाण-समूहोंसे कितने ही बीरोंके दो ढुकड़े हो गये, हाथियोंके मस्तक विदीर्ण हो गये और जोड़ोंके पैर कट गये । रथोंके पहिये चूर-चूर हो गये, जोड़े और उनके साथ-साथ चलनेवाले कालके गालमें चले गये, रथी और सारणि आदीोंके उखोड़े हुए बृक्षोंके समान घराणायी हो गये । मैथिल ! दशकोंकी सेना भागने लगी । अपनी सेनाको भागती देख हाथीपर नैठा हुआ कलिङ्गराज बड़े रोपसे आगे बढ़ा । उसका कवच क्षिण गिर हो गया था । उसने तुरंत ही

वहसर भार लोहेकी दनी हुई भारी गदा चलायी और अपने हाथीके द्वारा बड़े-बड़े धीरोंको गिराता हुआ बल्बान् कलिङ्ग गदा मेघके समान गर्जता करने लगा। उस गदाके प्रहरसे किंचित् व्याकुलचित् होकर अनिश्चय युद्धस्थलमें ही रथपर रुपड़े। यह देस यादवोंके क्षेत्रकी सीमा न रही। उन्होंने तत्काल तीसे और चमकीले बाणोंद्वारा कलिङ्गराजको उसी प्रकार चोट पहुँचाना आरम्भ किया, जैसे मांसयुक्त बाजको कुरर पक्षी अपनी चौंचोंमें पीड़ा देते हैं। कलिङ्गराजने भी उस समय कुपित हो अपने घनुषपर प्रथम चढ़ायी और बार-बार उसकी टंकार करते हुए अपने बाणोंसे शकुञ्जोंके बाणोंको चूर चूर कर दिया ॥ १३-१४ ॥

मैथिलेश्वर ! तब बलदेवके छोटे भाई बल्बान् गदने गदा लेकर बायें हाथसे उसके हाथीपर प्रहर किया, फिर अर्धचन्द्राकार बाणसे उसको चोट पहुँचायी ।

इस प्रकार श्रीराम-संहितामें विजयजित्-संघटके अन्तर्गत 'विजय' नामक पांचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

छठा अध्याय

प्रशुभका मरुभन्न देश के राजा गयको हराकर मालवनरेश तथा माहिमती पुरीके राजासे बिना युद्ध किये ही भेट प्राप्त करना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्। इस प्रकार कलिङ्गराजपर विजय पाकर यादवेश्वर प्रशुभन्न मरुभन्न (मारवाह) देशमें इस प्रकार गये; मानो अप्रिने जलपर आक्रमण किया हो। धन्वदेशका राजा गय पर्वतीय दुर्गमें रहता था। उसकी स्थिति जानकर यादवेश्वरने उसके पास उद्धवको मेजा। दुष्क्रिमानोंमें भेष उद्धव गिरिधुर्गमें गये और राजसभामें प्रवेश करके गयसे थोले—महामते नरेश ! मेरी बात कुनिये। यादवोंके स्थानी महान् राज राजेश्वर उद्गतेन जम्बूदीयके राजाओंको जीतकर राजस्थयल करेंगे। साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण जो असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति हैं, उन महाराजके मन्त्री हुए हैं। उन्होंने ही भनुषरोंमें भेष लाक्षात् प्रशुभन्नको यहाँ भेजा है। आप यही अपने कुलका कुशल-सेन चाहें तो शीघ्र भेट लेकर उनके पास जालें ॥ १-६ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्। यह सुनकर शीर्ष और

नरेश्वर ! उस प्रहरसे वह हाथी किञ्चनभिन्न होकर इच्छप्रकार बिलर गया, मानो इन्हें बड़की बोटसे लोहे शैलस्थल बिलर गया हो। कलिङ्गराज हाथीसे गिर पड़ा और बिशाल गदा लेकर उसने गदको मारा और गदने भी लकड़ाल कलिङ्गराजपर गदासे आशात किया। कलिङ्गराज और गदमें वहाँ घेर युद्ध होने लगा। उनकी दोनों गदाएँ आगकी चिनगारियाँ बिसेसरती हुई चूर-चूर हो गयीं। तत्पराल गदने कलिङ्गराजको पकड़कर समरभूमिमें दे मारा। जैसे गदह किसी साँपको पटककर सीचता हो, उसी प्रकार गद तुरंत ही अपने हाथसे कलिङ्गराजको बलीटने लगे। गदाके प्रहरसे पीढ़ित कलिङ्गराजकी इच्छुक्षेत्र चूर-चूर हो रही थी। वह महात्मा प्रशुभन्नकी शरणमें आ गया। उसने भेट देकर कहा—‘आप देवताओंके भी देवता परमेश्वर हैं। कुपित हुए दण्डधर यमराजकी भाँति आपके आक्रमणको प्रुद्धीपर कौन सह सकता है ? आपको नमस्कार है’ ॥ २५-३१ ॥

नारद-बहुलासव-संबादमें ‘कल्प और कलिङ्गदेशपर

पराक्रमके महसे उन्मत्त रहनेवाले महाबली राजा गयने कुछ कुपित होकर उद्धवसे कहा ॥ ७ ॥

गय थोले—महामते ! मैं युद्ध किये बिना उनके लिये भेट नहीं दूँगा। आप-जैसे यादवलोग अभी थोड़े ही दिनोंसे दृष्टिको ग्राप्त हुए हैं—नये खनी हैं ॥ ८ ॥

राजन् । उसके थोड़े कहनेपर उद्धवजीने प्रशुभन्नके पास आकर समस्त यादवोंके सामने राजा गयकी कही हुई बात हुहरा ही। फिर तो उसी समय दक्षिणापुराने गिरिधुर्गर आक्रमण किया। गयके सैनिकोंका यादवोंके साथ घेर युद्ध हुआ। हाथियोंके दैरोंसे नागरियोंकी तथा भूमिपर चलनेवाले लोगोंको कुचलता और वृक्षोंको दौबवाता हुआ राजा गय द्वे अक्षीहिणी सेनाके साथ युद्धके लिये निकला। रथी रथियोंके साथ, बड़े-बड़े गज गजराजोंके साथ, मुहसिनाराजोंके साथ तथा धीरोंके साथ परस्पर युद्ध करने लगे। तीसे बाज-लम्हों, दाढ़, तक्कार, गदा, शूष्णि, पाठ, करने, डालनी

जौर शुशुष्की आदि अख-नालोंकी मारसे भयानुर हो गयके
सेनिक यादवोंसे परात्स हो अपना-अपना रथ छोड़कर
लद्धन-सव इन्हों दिशाओंमें भाग चले ॥ १-१४ ॥

अपनी मेनाके पश्चात्यन करनेपर महाबली गय बार-बार
भनुषकी टंकार करता हुआ अकेला हा युद्धके लियं आगे
चढ़ा । तेजस्वी श्रीकृष्णपुत्र दीसिमानने घनुषसे छोड़े हुए
वाणोंसे शत्रुके घोड़ोंको मार डाला । एक वाणसे सारथियो
नष्ट करके दो वाणोंसे उसकी ऊँची चंडा काट डाली । बाँध
वाणोंसे रथके तोड़-फोड़कर पॉच वाणोंमें उसके कवचनो
छिप-भिप कर दिया । फिर महाबली दीसिमानने लै वाण
मारकर गयके घनुषकी भी खण्डित कर दिया । गयने हूसरे
घनुषको लेकर बीस वाणोंद्वारा श्रीकृष्णपुत्र दीसिमानको
घायल कर दिया । फिर वह बलवान् वीर मेषके समान गर्जना
करने लगा । समराङ्गमें उसके प्रहारसे दीसिमानके हृदयमें
कुछ व्याकुलता हुई, तथापि उन्होंने एक ज्योतिर्मयी सुदृढ़
शक्ति इथमें ली और उसे बुमाकर महात्मा गयके ऊपर
चलाया । उस शक्तिने राजाके दृद्यको विदीर्ण करके उसका
बहुत रक्त पी लिया । राजन् । गय भी समराङ्गमें गिरकर
मूर्छित हो गया । दीसिमान् अपने घनुषकी कोटि शत्रुके
गलेमें डालकर उसे शसीटते हुए प्रद्युमनके सामने उसी प्रकार
ले आये, जैसे गहड़ किसी नागको लांच लाया हो । उस
समय मानवों तथा देवताओंकी हुन्दुभियाँ एक साथ ही बज
उठीं । देवता आकाशमें और पार्थिव नरेश भूतलसे फूलोंकी
बर्षा करने लगे । राजन् । तब गयने भी शम्वरारि श्रीकृष्ण-
पुत्र प्रद्युमनके चरणोंका पूजन किया ॥ १५-२२३ ॥

वहाँसे महात्मा प्रद्युमन अवन्निकापुरको गये, उसी प्रकार
जैसे भ्रमर सुनहरी कर्णिकापर टूट पड़े । उनका आगमन
सुनकर मालवनरेश जयमनने उनकी भलीभांति पूजा की ।
सियिलेक्ष्वर ! वे प्रद्युमनके प्रभावको जानते थे, अतः उनसे
अपनी पराजय स्वीकार करके उन्होंने बड़े बुद्धोंको बुलाया
और उनके द्वारा महात्मा प्रद्युमनको उत्तम मैट सामर्था
अर्पित की । वहाँ अपने पिताकी बुआ राजाधिदेवीको
श्रणाम करके महामनस्ती प्रद्युमनने अपने फुफेरे भाई विन्द
और अनुष्मिन्दको गलेसे ल्याया और मालवदेशके नोद्दाओंसे

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वविजितस्त्रुतके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाद्व-संवादमें 'माहिष्मतीपुरीपर
विजय' ज्ञामक लड़ा अध्यात्म पूरा हुआ ॥ ६ ॥

साहर चिरकर वे वर्डी शोभाको प्राप्त हुए ॥ २३-२५ ॥

वहाँसे घनुष्मारियोंमें भेष्ट प्रद्युमन माहिष्मती पुरीको
गय और यादवों तथा अपने सेनिकोंके साथ वहाँ
उन्होंने नर्मदा नदीका दर्शन किया । जलके कहाँलोंसे सुशोभित
नर्मदा मानो शूङ्गार-तिलक भारण किये हुए थी और छर्णा
हुई पगड़ीकी भाँति पुष्पसमूहोंको वहा रही थी । बैत, बाँस
तथा अन्य वृक्षोंसे पूले हुए माधव-तद्वारोंमें धिरी हुई
नर्मदा भूर्तिमान् तेजस्वी देवताओंमें धिरी हुई आकाश
गङ्गाकी-भी शोभा पाती थी । उसके तटपर छावनी डालकर
यादवेश्वर प्रद्युमन यादवोंके साथ इस प्रकार विराजमान हुए,
मानो देवताओंके साथ देवराज हन्द्र शोभा पा रहे हों ।
महाराज ! माहिष्मती पुरीके स्वामी इन्द्रनील बड़े जानी थे, उन्होंने
महात्मा प्रद्युमनके पाप अपना दूत भेजा । दूतने प्रद्युमनराज-
के द्विविरमें आकर हाथ जोड़ प्रणाम किया और सनके
सुनते हुए वहा यह बात कही ॥ २६-३१ ॥

दूत बोला—प्रभो ! हस्तिनापुरके राजा बुद्धिमान्
भृतराङ्गने हन अत्यन्त बलवान् वीर इन्द्रनीलको माहिष्मती
पुरीके राज्यपर स्थापित किया है, अतः ये किसीको बलि
या भेट नहीं देंगे । दुयोधनको स्वेच्छासे ही ये द्रव्यराशि
भेट करते हैं, बलवाकासे नहीं । आपलोग युद्ध कर सकते
हैं, परंतु वहाँ युद्धसे कोई लाभ नहीं होगा ॥ ३२-३३ ॥

श्रीप्रद्युमने कहा—दूत ! जैसे राजा गय और कलिङ्ग
राजने अपमानित होनेपर भेट दी, उसी तरह वहाँके राजा
भी पराजित होकर भेट देंगे । माहिष्मतीके राजा बड़े
राजाधिराज बने हैं; परंतु ये महाराज उपरेको नहीं
जानते ॥ ३४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् । यों कहनेपर दूतने
तत्काल जाकर राजसभामें माहिष्मतीपतिसे प्रद्युमनकी कही
हुई यात कह सुनायी । माहिष्मतीके राजाने देखा कि
यादवोंकी सेना बड़ी उड़ाठ है (अतः उससे युद्ध करना
ठीक न होगा); इसलिये ये पॉच हजार हाथी, एक लक्ष
घोड़े और दस हजार विजयशाल रथ लेकर निकले और
महात्मा प्रद्युमनसे मिलकर वह सब कुछ उन्हें भेट
कर दिया ॥ ३५-३७ ॥

सातवाँ अध्याय

गुजरात-नरेश अमृतपर विजय प्राप्त करके यादव-सेनाका चेदिदेशके खामी दमघोषके यहाँ जाना; राजाका यादवोंसे प्रेमपूर्ण बर्ताव करनेका निश्चय, किंतु शिशुपालका माता-पिताके विरुद्ध यादवोंसे युद्धका आग्रह

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्। महापराक्रमी प्रभुज्ञ मार्हिष्मतीके राजाको जीतकर अपनी विशाल सेना लिये गुजरातके राजाके यहाँ गये। जैसे पक्षिराज गदड अपनी चौचौसे सर्पको पकड़ करते हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णकुमार प्रभुमने गुर्जरदेशके अधिपति महावली वार अमृतपर विशाली सेनाद्वारा जा पकड़ा। उनसे तकाल भेट बसूल करके महावली यादवेन्द्र अपनी विशाल बाहिनी साथ लिये हुए चेदिदेशमें जा पहुँचे। चेदिराज दमघोष बसुदेवजीके बहनोई थे; किंतु उनका पुत्र शिशुपाल श्रीकृष्णका पक्षा शत्रु कहा गया है। शुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ महाबुद्धिमान् उद्धव महावली दमघोषके पास गये और उनको प्रणाम करके बोले ॥ १-५ ॥

उद्धवने कहा—राजन्। महाराज उग्रसेनको बलि (भेट) दीजिये। वे समस्त राजाओंको जीतकर राजसूय-यज्ञ करेंगे ॥ ६ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! उद्धवजीका यह बचन सुनकर दमघोषके हुष्ट पुत्र शिशुपालके ओष्ठ फड़कने लगे। वह अत्यन्त घृष्णित हो राजसभामें तुरंत इस प्रकार बोला ॥ ७ ॥

शिशुपालने कहा—अहो ! कालकी गति दुर्लक्षण्य है। यह भंसार कैसा विचित्र है। कालात्मा विधाताके प्राजापत्यपर भी कलह या विवाद लहा हो गया है (अर्थात् लोक-विधाता ब्रह्मा और घटनिमाता कुम्भकारमें झगड़ा हो रहा है कि प्रजापति कौन हैं)। कहाँ राजहंस और कहाँ कौआ। कहाँ पण्डित तथा कहाँ सूर्ख ! जो मंबक है, वे चक्रवर्ती राजाको—अपने स्वामीको जीतनेकी इच्छा रखते हैं। राजा यथातिके शापसे यहुवंशी राज्य-पदमें भ्रष्ट हो चुके हैं; किंतु वे छोटा-सा राज्य पाकर उसी तरह इतरा उठे हैं, जैसे छोटी नदियाँ थोड़ा-सा जल पाकर उभँडने लगती हैं—उच्छलित होने लगती हैं। जो हीनवंशका होकर राजा हो जाता है, जो मूर्खका बेटा होकर पण्डित हो जाता है, अथवा जो सदाका निर्धम कभी जन पा जाता है, वह घमंडसे भरकर तारे जगत्को लृणवत् मानने लगता है।

उग्रसेन कितने दिनोंसे राजपदवीको प्राप्त हुआ है ? बासुदेव मन्त्री बना है और उग्रसेन उसीके बल्ले और केकल उसीसे पूजित होकर राजा बन बैठा है। उसके मन्त्री बासुदेवने जरासंधके भयसे भागकर अपनी पुरी ग्रन्थारको छोड़कर समुद्रकी शरण ली है। वह पहले 'नन्द' नामक अहीनका भी बैठा कहा जाता था। उसीको बसुदेव लज्जाह्या छोड़कर अपना पुत्र मानने लगे हैं। बसुदेव तो गोरे रंगके हैं, उनसे उत्तर दुआ यह कृष्ण श्यामबर्णका कैसे हो गया ? केवल पिता ही नहीं, पितामह भी गोरे हैं। उसके कुलकी संतानिमें इस बासुदेवकी गणना हो, यह बड़े दुःख और हँसीकी बात है। मैं उसके पुत्र प्रभुज्ञको यादवों तथा सेनालहित जीतकर भूमण्डलको यादवोंमें शून्य कर देनेके लिये कुशशस्त्रपर चढ़ाई करूँगा ॥ ८-१६ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्। यो कहकर धनुष और अक्षय बाणोंसे भरे दो तरकस लेकर शिशुपालको युद्धके लिये जानेका उद्यत देख चेदिराजने उससे कहा ॥ १७ ॥

दमघोष बोले—बैठा ! मैं जो कहता हूँ, उसे सुनो। कोष न करो, न करो। जो सहस्रा कोई कार्य करता है, उसे सिद्धि नहीं प्राप्त होती। क्षमाके समान धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका साधन दूसरा कोई नहीं है। इसलिये सामनीतिसे काम लेना चाहिये। सामके द्रुत्य दूसरा कोई सुखद उपाय नहीं है। दानसे नामकी शोभा होती है और सामकी भक्तारने। सत्कारकी भी तभी शोभा होती है; जब वह यथायोग्य गुण देखकर किया जाय। यादव और चेदिप सो-सम्बन्धी माने गये हैं; अतः मैं वास्तवमें यही जाइता हूँ कि यादवों तथा चेदिपोंमें कलह न हो ॥ १८-२१ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—शुद्धिमान् दमघोषके समानने पर भी शिशुपाल अनमना हो गया, कुछ बोला नहीं। वह महाखल चुपचाप बैठा रहा। राजन्। चेदिराजकी रानी भुतिभया शून्यन्दन बसुदेवकी बहिन थीं। वे अपने पुत्र

शिशुपालके बाल आकर अच्छी तरह विनश्युन् होकर बोलीं ॥ २३-२४ ॥

शुशिखस्त्वे कहा—येदा । सेद न करो । यादवों
तथा चेतिपोमे कभी कलह नहीं होना चाहिये । शूरनन्दन
कमुदेष तुम्हारे मामा हैं और उनके पुत्र श्रीकृष्ण भी तुम्हारे
भाई ही हैं । उनके ज्ये प्रत्युम्न आदि सैकड़ों महावीर पुत्र
आये हैं, वे सब मेरे और तुम्हारे द्वारा लाड़-प्यार पानेके
योग्य तथा समादरीय हैं । उनके साथ युद्ध करना उचित
नहीं होगा । तात । मैं तुम्हारे साथ स्वयं स्नेहार्थचित्त होकर उन
कमाल यादवोंको लेनेके लिये चलूँगी । विरकालसे मेरे
मनमें उन सबको देखनेकी उत्सुक्ता है । मैं यहे उत्सव
एवं उत्तराहके साथ उनको घर लाऊँगी । ऐसा अवसर पिर
कभी नहीं आयेगा ॥ २४-२५ ॥

शिशुपाल बोला—बलराम, कृष्ण तथा समस्त यादव
मेरे शक्तु हैं । जिन्होंने मेरा तिरस्कार किया है, उन सबको मैं
भी अपने सेनिकोंद्वारा मरवा डालूँगा । पूर्वकालमें कुण्ठन-
पुरमें राम तथा कृष्ण, इन दोनों भाइयोंने मेरी अवधेल्ना
की, मेरा विवाह रोक दिया; अतः वे मेरे भाई नहीं, शक्तु
हैं । यदि तुम दोनों(मेरे माता-पिता होकर) यादवोंका समर्थन
करेंगे तो मैं तुम दोनों पिता-माताको मजबूत बेहियोंसे
त्रांघकर उसी तरह कारागारमें डाल दूँगा, जैसे कंसने अपने
माँ-बापको कैद कर लिया था । अन्यथा तुम दोनोंका वध भी
कर डालूँगा, मेरी शापथ या प्रतिका बड़ी कठोर होती है (इसे
टालना कठिन है) ॥ २७-२८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—शिशुपालकी कही बातें
कुनकर चेदिराज चुप हो गये । उद्वजी अपनी सेनामें लौट

आये और जो कुछ शिशुपालने कहा था, वह सब उन्होंने
वहाँ कह सुनाया । तदनन्तर बाहिनी, व्यजिनी, पृतना और
अक्षौहिणी—ये चार प्रकारकी शिशुपालकी सेनाएँ सुखायित
हुई ॥ ३१-३२ ॥

शुहुलाभ्यने पूछा—प्रभो ! बाहिनी आदि सेनाकी
मरणा मुझे बताइये; क्योंकि श्रुतिलोग भूत, वर्तमान और
भविष्य—तीनों कालोंकी बातें जानते हैं ॥ ३३ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! सौ हाथी, ग्यारह सौ रथी,
इस हजार घोड़े और एक लाख पैदल—यह 'सेना'का लक्षण
है । इससे दुरुग्नी सेनाको 'नतुराङ्गिणी' कहते हैं । चार सौ
हाथी, दस हजार रथ, चार लाख घोड़े तथा एक करोड़
पैदल—इतने सैनिक लोहेका कबच पहने और शक्तिशाली
बल-वाहनोंसे लघज्ज, अस्त्र-शस्त्रोंके शाता शूरवीर जिस
सेनामें विद्यमान हों, उसे विद्वानोंने 'बाहिनी' कहा है ।
बाहिनीमें दुरुग्नी सेनाको 'व्यजिनी' नाम दिया गया है ।
व्यजिनीसे दुरुग्नी सेनाको पूर्वकालके विद्वानोंने 'पृतना' माना
है । पृतनासे दुरुग्नी सेना 'अक्षौहिणी' कही गयी है । जो
साहसी बीर है, उसे 'शूर' कहा गया है । जो सौ शूरवीरोंकी
रक्षा करता है, उसे 'सामन्त' कहते हैं । जो युद्धमें सौ सामन्तोंकी
रक्षा करता है, उसे 'गजी' (या गजारोही) योद्धा कहते हैं ।
जो समराङ्गणमें सारथि और अश्वोसहित रथकी रक्षा कर
सकता है, उसे 'रथी' कहा गया है । जो अपने बाणोंमें सेनाकी
रक्षा करता है, उसे 'महारथी' कहते हैं । जो अपनी सेनाकी
रक्षा और शमुअंकोंका संहार करते हुए रणक्षेत्रमें अक्षौहिणी
सेनाके साथ युद्ध कर सके, उसे सदा 'अतिरथी' माना गया
है ॥ ३४-३५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित-खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-महुलाभ्य-संवादमें 'गुरुर औं'

चेदिदेशमें गमनं नामक सातवां अस्त्राय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय

शिशुपालके मित्र शुभान् तथा शक्तका वध

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् । शिशुपाल अपनी
सेनाओंके साथ के माता-पिताका सिरकार करके चन्द्रिकापुरसे
शाहर निकला । दुहोंका ऐसा स्वभाव ही होता है । उसके
साथ 'बाहिनी' और 'व्यजिनी' सेनाओंसे युक्त शुभान् और शक्त
निकले । शिशुपालके दो मन्त्रियोंके नाम थे, रङ्ग और पिङ्ग ।

वे दोनों क्रमशः 'पृतना' और 'अक्षौहिणी' सेना लिये युद्धके लिये
नगरसे बाहर आये ॥ १२ ॥

नरेश्वर ! शिशुपालकी महासेना प्रख्यकालके महायग्न-
के समान उमड़ती था रही थी । उसे देखकर यहुवंशी
बीर भगवान् श्रीकृष्णको ही जहाज बनाये, उस सेन्य-

सागरसे पार होनेके लिए सामने आये । महाबली शुमान् शिशुपालमे ग्रंथित हो 'वाहिनी' सेनामहित आये बढ़कर यादव योद्धाओंके सामने युद्ध करने लगा । समराङ्गामे उन्होंने सेनाओंकी बाण वधाई अन्धकार छा गया । शोड़ोंकी टापोंसे हतनी धूल उड़ी कि भ्राताओं आज्ञादित हो गया । नरेश्वर । दोषेते हुए थोड़े उठलकर हाथयोंके मस्तकपर पाँव रख देते थे और पाश्चल हुए हाथी युद्धभूमिमे पैरेमें शशुओंको गिराते और सूँझायी पुम्फरोंमें उधर उधर फेंकते कुचलते आये गढ़ रहे थे । उनके मस्तकपर वस्त्री और सिन्दूरमे पञ्च-रत्नमा वीर रथी थी और उठियर लाल रंगकी छूल उनकी शोभा बढ़ाती थी । पैदाठ सैनिक बाणी, गदाओं, पर्वणी, तल्लारों, इला प्रौर शक्तियोंकी मारसे अङ्ग अङ्ग उट जानेके कारण भराशयो हो रहे थे । उनके पेंग, बुटन और बाहुदण्ड देख भिज हो गये । राजन् । कोई अपनी तीना तल्लाने युद्धमें शोड़ोंके हो उड़ाके कर देता था । इतने ही निराशायोंके द्वात पकड़कर उनके मस्तकपर चढ़ जाते थे और सिद्धी कीर्ति महाबली तथा हार्या-नारोंको चार फाँह ढालते थे । उटने पर महाबली युद्धस्वार योद्धा हथियाके समुद्रको फोड़ ॥ २७ ॥ सैनिकोंपर खड़का प्रहार करते थे और उन्हें दिखाये कि डान डान थे । ऐसा दिखाया देता था कि गोदोंगी पोंछस उनका रक्षा ह नहीं होता है । वे नयोंका तरह विष्णुतंगसे घोड़ोपर चढ़ो-उत्तरते रहते थे ॥ २८-२९ ॥

शशुओंकी अनेका वेगपूर्वक अक्रमण होता देख अकूर खामने आये । उन्होंने बाणोंकी वर्तीसे युद्धिन (बरसात) का दृश्य उपस्थित कर दिया । शुभानने भी अपने भनुषसे छूटे हुए बाण अदृशोंका दीड़ारे अकूरको आज्ञादित कर दिया— हाँक उठा तरह, जैसे बादल वर्षाकालके सूर्यको ढक कर देता है । गर्विनी पुर अकूरने क्रोधसे मूर्छित हो शुमान्के बाण-समूदायर विजय पाकर उस बीरके ऊपर शक्तिसे प्रहार किया । उस प्रहारसे शुमान्का अङ्ग बिर्दाण हो गया । वह ही धर्दीके लिये अपनी चेतना खो बैठा । परंतु शिशुपालके उस बलवान् मिथने फिर शीघ्र ही उठकर युद्ध आगम्य कर दिया । शुमानने बाल भार लोहको बनी दुर्दे एक भारी गदा हाथमें ली और उसके द्वारा अकूरको छातीपर चोट

इस प्रकार शीघ्र-भृहितामे विद्वन्जितदण्डके

और शक्तका वध' बालक भाल्हां अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

करके मेघके समान गर्जना की । उसके प्रहारसे अकूर मन ही-मन किंचित् व्याकुल हो उठे । तब बार-बार अपने धनुषकी टंकार करते हुए युयुधान (सात्यकि) सामने आये । उन्होंने खेल खेलमें एक ही बाण मारकर तुरंत शुमानका मस्तक काट डाला । शुमानके गिर जानेवार उसके बीर सैनिक युद्धका मैदान छोड़कर भाग चले ॥ १२-१३ ॥

उर्मा समय अपनी सेनाओं भागती देख शक्त वहाँ आ पहुंचा । उसने बुद्धिमान् युयुधानपर सहमा शूल चलाया । युयुधानने अपने बाण-समूहोंमें उस शूलके सौ ढुकड़े कर दिये । तब शक्तने परिधि उठाकर युयुधानपर दे मारा । अजुनके मध्या युयुधान क्षणभरके लिये मूर्छित हो गये । इतनेमें ही महाबली बार कुतवर्मी बहाँ आ पहुंचा । उसने चाण मारकर अश्वहित शक्तके भी रथनों चूर-चूर कर दिया । तब शक्तने भी गदाकी चोटसे कुतवर्मीके उचम रथको चकनाचूर कर डाला । राजन् । कुतवर्मनि रथ छोड़कर शक्तको रोप्यूर्वक पकड़ लिया और उसे गिराकर दोनों भुजाओंसे उछालकर एक योजन दूर फेंक दिया । उस युद्धभूमिमें शक्तके गिर जानेपर शिशुपालकी आङ्गारे उसके दोनों मन्त्री रङ्ग और पिङ्ग कमणः 'पृतना' और 'अश्वौहिणी' सेनाओंके साथ बाण-वर्षा करते और युद्धमें शशुओंको कुचलने हुए आये । मैथिलेश्वर । पेशा जान पड़ता था, मानो अग्नि और वायु देवता एक लाय आ पहुंचे हैं । उन दोनोंकी उद्धट सेनाको देख पिताके समान पराक्रमी यादवेन्द्र प्रशुभ धनुष हाथमें ढेकर भरी सभामें इस प्रकार लोडे ॥ १४-१५ ॥

प्रथमने कहा—शोद्धाओ । रङ्ग और पिङ्गके लाल होनेवाले युद्धमें मैं अभयामी होकर जाऊँगा; क्योंकि रङ्ग और पिङ्ग मध्यान् बल पराक्रमसे सम्भन्न दिखायी देते हैं ॥ २६ ॥

थीनारदजी कहते हैं—प्रशुभकी यह बात सुनकर शोद्धाके बलवान् पुत्र नीतिवेचा महाबाहु भानु सबसे जागे होकर अपने बड़े भाईसे बोले ॥ २७ ॥

भानुने कहा—प्रभो । जब तीनों लोक एक लाल युद्धके लिये आपके सम्मुख उपस्थित दिखायी हैं, तब आपके धनुषकी टंकार होगी, इसमें सशय नहीं है । मैं कैवल तलवारसे ही रङ्ग और पिङ्गके मस्तक काटकर तरबूजके दो दुकड़ोंकी भाँति हाथमें लिये यहाँ प्रवेश करूँगा ॥ २८-२९ ॥

नवाँ अध्याय

भानुके द्वारा रङ्ग-पिङ्कका वध; प्रद्युम्न और शिशुपालका भयंकर युद्ध तथा चेदिदेशपर प्रद्युम्नकी विजय

श्रीनारदजी कहते हैं—गाजन्। यो कहकर शत्रुसूदन भानु ढाल तल्वार लेकर पैदल ही शत्रुमनोंमें उमी प्रकार धूम गये, जैसे जंगली हाथी जगलमें प्रवंश करता है। भानुने अपने खड़कमें शत्रु योद्धाओंकी भुजाएं कट डालीं। हाथी और धोंडे भी जब सामने या आस पास मिल जाते थे, तब वे अपनी तल्वारमें उनके दो टुकड़े कर डालते थे। व उम समराङ्गमें शत्रुओंका छेदन करते हुए अकेले ही विचरन और शोभा पाते ले। उनका दूसरा साथी भेदल खड़ था। जैसे कृष्ण और बादलोंसे आच्छादित होनेपर भी सूर्योदय अपने तेजसे उद्घासित होते हैं, उनी प्रवार हजुओंमें आवृत होनेपर भी बीबर भानु अपने विधाय तेजका परिवर्य दे रहे थे॥ १-७॥

मिथिलेश्वर। भानुके खड़क अनेकों कुम्भस्त्रक कठ गय थे, उन हाथियोंके स्वतं सेंसिये मोतीं रुग्णसिंगे वे प्रकार गिरते थे, जैसे पुष्पकमोंके क्षीण हो जानेपर स्वतान्त्री जड़ोंके तारे (ज्योतिर्भव रूप) वृण्डावन भूमिपर थे। परंतु १३ समराङ्गाम्य दृष्टिभावन (लक्षणाते) शत्रुसूदन भूमि परिवर्तन करके महाव थ वार शत्रु रङ्ग और पिङ्क के ऊपर नहीं रहे। भगवान् श्रीकृष्णके द्विये हुए खल्द्रव रङ्ग और पिङ्क के रूपोंको नष्ट करके भानुने धारणियोंके सहित उनके कंडोंके दो-दो टुकड़े कर डाले। तब महा-युद्ध वीर रङ्ग और पिङ्कने भी खड़ा केकर भानुपर प्रहार किया। परंतु भानुकी छाल तक पहुँचो ही वे दोनों खड़ दूँ कर ही गये। मात्र १३ तल्वारकी चोटें रङ्ग और पिङ्क, मस्तक पक्क थ थ ही पुद्धभूमिमें जा गिरे। यह अद्गुत भी बात हुई। वज्रीं वीर भानु सेनापतियोंसे प्रशासित ही रङ्ग और पिङ्कके मस्तक लेकर प्रद्युम्नके सामने आये। उस समय मामोंगा दुन्दुभियों के साथ देन-दुन्दुभियों भी बज उठीं। सब और जयकार होने लगा। देवताओंने घूल बरगाये। रङ्ग और पिङ्कके बारे जानेका समाचार सुनकर शिशुपालके रोगका सीमा न रही। वह विजयशील रथपर आरुद हो यादवोंके सामने गया। उसके साथ मदकी चारा बहानेवाले सोनेके होरेसे शुक और रमणित कम्बल (काढ़न वा छड़) वे अकहु

बहुतमें विशालकाय गजराज चले, जिनके हिलते हुए घंटोंकी प्रशसनाहट दूर दूरतक फैल रही थी। देवताओंके विमानोंकी भाँति शोभा पानेवाले रथों, वायुके तुल्य वेगशाली तुरंगमें तथा विद्युतमें शहद पराकर्मी वीरोंके द्वारा वह पृथ्वीतल्को निनादित करता हुआ जल रहा था॥ ८-१३॥

नरेश्वर। शिशुपालकी सेनाओं वाती देव धनुर्धारियोंमें भेष श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न इन्द्रके दिये हुए रथपर आरुद हो रहक आ। हांकर उसका सामना करनेके लिये चले। उन्होंने सम्पूर्ण दिशाओं और आकाशको गुंजाते हुए अपना शड्ज बजाया। दूररोपों मान देनेवाले नरेश। उस शड्ज-नादसे शत्रुओंके हृदयमें कंपकंपी होने लगी। शिशुपालकी विगत सेना राजप्रापाद या राजकीय दुर्गम थी। उसमें प्रवरा इन्हेंके लिये शक्तिमानन्दन प्रद्युम्नने महाया दोगोंका सोपान बनाया। दमधोपनन्दन बुद्धिमान् विशुद्धालंब लारपर भनुपका टकार करते हुए ब्रह्मालंका राजन। ॥ १४॥ उसमें दक्षत्रयज्ञीं रोखा था। उसके प्रवरा इन्हें सब नरे पैलता देख युद्धभूमिमें शक्तिमान-नन्दन प्रद्युम्न भी ग्रहालंका ही प्रयोग करके लीलापूर्वक शकुने ३। अस्त्रसा संहर २२ दिया। नरेश्वर। तब महा-दुष्टिमान् दिक्षुदाम्बने अङ्गारालंका प्रयोग किया, जिसे जमदाग्नि-नन्दन पश्चुरामने महेन्द्र पर्वतपर उसको दिया था। उस अस्त्रके द्वारा अङ्गारामी वर्षी होनेसे प्रद्युम्नकी सेना अस्त्रन्त झटकूल हो उठा। तब श्रीकृष्णकुमारने महादिव्य पञ्चन्यालंका प्रयोग किया। उसमें भंगद्वारा जलकी भोटी धाराएं विरायी जाने लगी, अतः सारे अङ्गार बुझ गये। तब शिशुपालने दूरपत होनेर गजालंका संधान किया, जिसकी शिथि उसे अपरस्त्र मुनिन मल्याचलपर दी थी। उस अस्त्रसे अस्त्रन्त उद्यम कराद्दो विशालकाय गजराज प्रकट होने लगे। उन्होंने महाल्या प्रद्युम्नकी सेनाओंको रणभूमिमें गिराना आरम्भ किया। इससे यादवोंकी सेनाओंमें महान् हाहाकार मच गया। यह दंडल युद्धमें होड लगाकर आगे बढ़नेवाले प्रद्युम्ने वृत्तिहाल्का संधान किया। उससे दूसिंहका ग्राकट्य उभा, जो अपनी गर्वनामे भूतल्को प्रतिष्ठनित कर रहे थे।

उनके अवाक चमक रहे थे । उनकी गर्दन और पूँछके बाल
बड़े-बड़े थे । पंजोंके नस इल्की कालके समान बड़े-बड़े होनेके
कारण उनके स्वरूपकी भयंकरताको बढ़ा रहे थे । दूसिंह
उस समराज्यमें उन हथियोंको भक्षण करते हुए झुंकाके
साथ सिहनाद करने लगे । उन हथियोंको कुमभस्यलोंको
विदीर्घ बरके उछलते हुए भगवान् नृष्णिंह रमस्त गज
समूहोंका मर्दन करके वही अन्तर्धान हो गये । तब भाष्मली
शिशुपालने रोषपूर्वक परिष नलया । परंतु माघ प्रधुमने
यमदण्डसे मारकर उसके दो ढुकड़े कर दिये । फिर तो
चेदिराज शिशुपालके रोपकी शीमा न रही । उसने ढाल
और तलवार लेकर प्रधुमपर इस प्रकार धावा किया, जैसे
पतंग प्रज्जलित अग्निकी ओर टूटता है । श्रीकृष्णकुमारने
वेगपूर्वक उसके ब्लडपर यमदण्डसे प्रहार किया, जिसमें ढाल-
सहित उसकी वह तलवार नूर-नूर हो गयी । फिर यादवेश्वर
प्रधुमने सहसा वरणके दिये हुए पाशमें दम्भोपुष्प शिशु-
पालको बाँधकर समराज्यमें भसीटना आरम्भ किया । अब
उन्होंने शिशुपालका काम तभाम करनेके लिये रोषपूर्वक
तलवार हाथमें ली । इतनेमें ही गदने वेगसे आग बढ़कर
उनके दोनों हाथ पकड़ लिये ॥ १४-३१ ॥

गद बोले—किमणीनन्दन ! परिषूपतम महात्मा
श्रीकृष्णके हाथमें इसका वध होनेवाला है । इसलिये तुम

इस प्रकार श्रीगंग-सहितामें विश्वजित्सदाष्ठके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें ‘गद-पिङ्का वध, शिशुपालका
मुद्द और चेदिदेशपर विजय’ नामक नवाँ अच्याम पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

**यादव-सेनाका कोङ्कण, कुटक, विर्गत, केरल, तैलंग, महाराष्ट्र और कर्नाटक आदि
देशोंपर विजय प्राप्तकर करूप देशमें जाना तथा वहाँ दन्तवक्रका घोर युद्ध**

श्रीनारदजीकहते हैं—मिथ्येश्वर ! तदनन्तर मनुतीर्थमें
स्नान करके प्रधुम बारंवार हुन्तुभि वजवाते हुए यादव सेनाके
साथ कोङ्कण देशमें गये । कोङ्कण देशका राजा भैवावी गदायुद्धमें
अत्यन्त कुशल था । वह मलयुद्धके द्वारा विपक्षीके बलकी
परीक्षा करनेके लिये अकेला ही आया । उसने सेनासहित
प्रधुमसे कहा—‘यादवेश्वर ! मुझे गदायुद्ध प्रदान करो ।
प्रभो ! मेरे बलका नाश करो’ ॥ १-३ ॥

प्रधुम बोले—हे मङ्ग ! इस भूतलपर एक से-एक

इसे मारकर देवताओंकी बात हड़ी न करो ॥ ३२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—गजन् । शिशुपालके बाँध
लिये जानेपर वहा भारी कोलहल भजा । उस समय चेदि-
राज दमघोष भेट लेकर प्रधुमके सामने आये । उन्हें आया
देव शीघ्र ही अपने अज्ञ-गाढ़ फैकर प्रधुम आगे बढ़े ।
उन्होंने चेदिराजके चरणोंमें महाक रखकर उन्हें प्रणाम
किया । महाराज दमघोष महात्मा प्रधुमपर गिलकर उन्हें
आशीर्वाद देते हुए गदगद काणिमें बोके ॥ ३३-३५ ॥

दमघोषने कहा—यादव-शिरोमणे प्रधुम ! तुम
धन्य हो । दयानित ! मेरे पून ; जो प्रसाद किया है, उसे
क्षमा न र दो ॥ ३६ ॥

श्रीप्रधुम बोले—प्रभो ! इसमें न मरा दोष है, न
आपका और न आपके पुत्रसा ही दोष है । जो कुछ
भी प्रिय अथवा अग्निय होता है, वह सब मैं कालका किया
हुआ ही मानता हूँ ॥ ३७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—गजन् । प्रधुमके यो कहने-
पर राजा दमघोष उनके द्वारा बाँधे गये शिशुपालको छुड़ा-
कर उसे साथ केचनिदिकापुरीमें गये । साक्षात् श्रीकृष्णके समान
तेजस्वी प्रधुमके बड़-पराक्रमका समाचार सुनकर प्रायः कोई
राजा उनके साथ युद्ध करनेको उद्यत नहीं हुए । सबने
चुपचाप उनकी सेवामें भेट अर्पित कर दी ॥ ३८-३९ ॥

बढ़कर बलवान् बीर हैं, अतः तुम अपने बलपर घमंड न
करो । भगवान् विष्णुकी माया वहा दुर्गम है । हमलोग
बहुत से बीर यहाँ एकत्र हैं और तुम अकेले ही इससे
युद्ध करनेके लिये आये हो । महामल ! यह अधर्म दिखावा
देता है, अतः इस समय लौट जाओ ॥ ४-५ ॥

मल्ल बोला—जब आपलोग बलशाली बीर होकर
भी युद्ध नहीं कर रहे हैं, तो मेरे पैरोंके नीचेसे होकर निकल
जाइये । तभी अब यहाँसे लौटूँगा ॥ ६ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मैथि । उस महोके बौ कहनेपर समस्त यादव-पुंगव बीर कोखसे भर गये । तब उसके देखते-देखते बलदेवजीके छोटे भाई बलवान् बीर गद गदा लेकर सामने लड़े हो गये । फिर वह भी उसके छमुख गदा उठाकर लड़ा हो गया । उस महावली महाने गदके ऊपर एक कही भारी गदा फैकी । गदने उसकी गदाको हाथमें थाम लिया और अपनी गदा उसके ऊपर दे यारी । गदकी गदासे आहत होकर वह पृथ्वीपर गिर पड़ा और मुखसे रक्त बमन करने लगा । अब उसने पुष्टकी इच्छा ल्याय दी । तदनन्तर कोकुणवासी मेघावीने श्रीहरिके पुत्र प्रशुद्धको प्रणाम करके यह—मैंने आपव्योमोंकी परीक्षाके लिये यह कार्य किया था । आप तो साक्षात् भगवान् ही हैं । कहो आप और कहाँ मध्ये जेण प्राहृत मनुष्य । मेरा अपराध क्षमा कीजिये । मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ७-१२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् । यो कहकर, मैट देकर और श्रीहरिके पुत्रको नमस्कार करके कोकुण देशका राजा श्वश्री-शिरोमणि मेघावी अपनी पुरीवों चला गया । कुटक देशका स्वामी मैति शिकार खेळनेके लिये नगरसे बाहर निकला था । उसे जाम्बवतीकुमार महाबाहु सामने आ पकड़ा । उससे मैट लेकर प्रशुद्ध दण्डकारण्यको गये । वहाँ मुनियोंके आश्रम देखते हुए भेनामहित श्रीकृष्ण-कुमार क्रमजः निर्विद्या, पदोर्जी तथा तापी नदीमें स्नान करके महाक्षेत्र शूर्पारकमें गये । वहाँसे आपा द्वैपायनी देवीका दर्शन करके शूर्पशूलकी शोभा देखते हुए प्रवर्षण गिरिपर गये, जहाँ भास्त्रात् भगवान् पर्जन्य (इन्द्र) नित्य वर्षा करते हैं । वहाँसे गोकर्ण नामक शिवक्षेत्रका दर्शन करते हुए महावली श्रीकृष्णकुमार अपने भैनियोंके साथ विगत और केरल देशोपर विजय पानेके लिये गये । नेत्रलों, राजा अभ्यष्टने मेरे मुखमें महात्मा प्रशुद्धके शम्भागमनानी बात सुनकर शीघ्र ही उन्हे मैट अर्पित कर दी । तब वे कृष्णायोगी नदाओं पार करके अपने सैनियोंकी पद-धूलि-राशिसे आक्षात्में अन्धकार-सा फैलते हुए तैलंग देशमें गये । तैलंग देशके राजाका नाम विशालाभ था । वे अपने नगरके उपर्वनमें सुन्दरियोंके साथ विहार करते थे । मधुर ध्वनियोंसे व्यास मृद्ग आदि बाजे बज रहे थे तथा अप्सराएँ उत्कृष्ट रामोद्वारा देवेन्द्रके समान उस राजाके सुयशका गान कर रही थीं । उस समय सुन्दरी रमणी रानी मन्दारमालिनीने

चूलसे व्यास आकाशका ओर देखकर राजाते कहा । रानीके विमोचन अरण लोध सुन गये थे ॥ १३-१४ ॥

मन्दारमालिनी बोली—राजन् । आप सदा विहारमें ही रह रहनेदे वराण दूरी किसी बातको नहीं जानते हैं, दिन रात अपना रामानंदजीका गण नज़र बने रहते हैं । और मैं भी यह यहाँ दूरी हुई अलंकोंकी सुगन्धपर झुभायी भग्नी होकर कामी यह न जान रुकी कि दुःख क्या होता है । ऐसु आज द्वारकाके राजा उग्रसेनके राजसूय ग्रन्थ कीड़ा राटकर दिव्यज्यके लिये निकले हुए वे यदुराजन यज्ञ लेते रहे । वह भग्नन दरेशोंको जीतकर यहाँ आ रहे । दर्दुनें ही पृथ्वी-स्वनि सुनिये । उसके लाय इतिहास नहीं है और ५०० वर्षों की अवधि भी मिली हुई है । इन्हें दोषउठा । तभी प्रलयकालके गर्जन लगता है, जो यहाँ तर रही है । शम्भव शम्भु प्रशुद्धके पास पुरातं मैट होके दीजिये । इन भारती हुई भूपशुन्दरियोंकी जारी रहिये, इनके लेने हुए कैजपाणीसे फूल छाड़ गये हैं । वे भग्नल (वस्त्रों) की वर्षा कर रही हैं और वनमें ग्रन्थ करनेके कारण इनके लैंगोंके शश्वार विगद गये हैं—स्वप्न प्राप्त नहीं हो रहे हैं ॥ २४-१७ ॥

पकीकी बात सुनकर राजा विशालाभ अत्यन्त प्रसन्न हो, मैट-सामर्थ्य नेत्र प्रशुद्धके सामने आये । उनके द्वारा पूजित और भग्नान्त हो भनवर्तीमें अष्ट साक्षात् प्रशुद्ध पम्पा सरोकर तीर्थमें स्नान वरके वहाँसे महाबाहुकी ओर चल दिये । महाबाहुके राजा विमल विष्णुभक्त थे । उन्होंने कहे भर्ति भावमें श्रीकृष्णकुमार प्रशुद्धका सब प्रकारसे पूजन किया । हस्ती प्रकार कर्णाटकके राजा सहस्रजित् स्वयं ही वहाँ नीं मैट नामग्राम लोहर जाये और गहात्मा प्रशुद्धको असन्त नहीं कुहाँने व्यापारों लिये उन परम प्रभु उग्रदात्मा कर्णाटक "नन देशा ॥ २८-११ ॥

मन्युलक्ष्मी : तैल दोगों देहेन होनेवाले विषयभोगोंपर विजय पानेवा नेत्रा नहीं हैं, उसी प्रकार साक्षात् भगवान् प्रशुद्ध यादवोंके साथ कर्षण देशको जीतनेके लिये गये । नरेश्वर । वहो महारङ्गपुरमें परम बुद्धिमान् राजा वृद्धशर्मा रहते थे, जो वसुदेवकी बहिन श्रुतदेवाके पति थे । उनका पुत्र दन्तवक श्रीकृष्णका शम्भु कहा गया है । उसने भी दिशुपाली भौति कुपित हो यादवोंके साथ स्वयं युद्ध करनेका विचार किया । यद्यपि भाता-पिताने

उसे मना किया, तथापि देस्योंके प्रति अनुराग रखनेवाले उस दैत्यने 'मैं यादवोंको मार डालूँगा'—इस प्रकार अपना क्रोच प्रकट किया। वह लाख भारकी बनी हुई भारी गदा लेकर प्रशुभ्यकी सेनाके समने अकेला ही युद्ध करनेके लिये गया। दन्तवक्रके शरीरका रंग काला था। वह कोयलेके पहाड़-सा जान पढ़ता था। उसकी जीभ लग्नपाती रहती थी और सूप बढ़ा भयकर था। वह इस ताढ़के बराबर जँचा था। महाकपर किरीट, कानोंमें कुण्डल तथा बाह्यपर सोनेके कवचनें विभूषित वह करुष-राजकुमार करबनीकी लड़े पहिने हुए था। उसके चक्रल चरणोंमें नूपुर बज रहे थे। वह अपने घेंगमें पृथ्यीको कँगाता, पर्वतों तथा बृक्षोंको गिराता और अपनी गदाके प्रहारमें शत्रुओंको कालके गालमें मेजाता हुआ यमराजके समान दुर्जय प्रतीत होता था। समराङ्गणमें दन्तवक्रको उपस्थित देव तथा समस्त यादव भयसे धर्म उठे। उसके आते ही महान् कोलाहल मच गया। प्रशुभ्यने उसके ऊपर बाहरबाहर धनुषकी टंकार करती हुई अठारह अक्षीहिणी विशाल सेना भेजी ॥ ३२-४१ ॥

राजन् ! जैसे हाथी किसी पर्वतपर चारों ओरसे टक्कर मारते हों, उसी प्रकार समस्त यादवोंने बाणों, फरसों, शतक्रियों तथा बुश्यज्ञियोंसे दन्तवक्रपर प्रहार करना आरम्भ किया। राजेन्द्र ! दन्तवक्रने अपनी गदासे रणभूमिमें बहुत-से उत्कट

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजिन्दूषणके अन्तर्गत नारद-बद्गुलाद्व-संवादमें 'नोहुण, दुष्टक, त्रिगर्द, केशल, तैलंग, महाराष्ट्र और कर्नाटकपर विजय पाकर यादव-सेनाका करुष देशमें गमन' नामक, दसवां अंग्रेज पुस्तक ॥ १० ॥

रायारहवाँ अध्याय

दन्तवक्रकी पराजय तथा करुष देशपर यादव-सेनाकी विजय

श्रीनारदजी कहते हैं—नव श्रीकृष्णके अठारह महारथी पुत्रोंने मिलकर महावली दन्तवक्रको क्षत-विक्षत कर दिया। धायल हुआ दन्तवक्र रक्तधारासे रक्खित हो उसी प्रकार अत्यन्त शोभा पाने लगा, जैसे महावरके रंगमें रंगा हुआ कोई ऊँचा महल सुशोभित हो रहा हो। उसने शत्रुओंके प्रहारको कुछ भी नहीं गिना। कृतवर्मने समराङ्गणमें उसे आण समूहोंद्वारा धायल किया, सात्यकिने तलवारसे चोट पहुँचायी और अक्षूरने उस महावली वीरपर शक्तिसे प्रहार किया। रोहिणीनन्दन सारणने उसके ऊपर कुठारसे आधात किया। रणदुर्मद दन्तवक्रने भी सात्यकि-

गजराजोंके झुम्भस्यल विदीर्ण करके उन्हें मार गिराया। किन्हीं हाथियोंको, जो किंकिणी-जालसे निनादित, सँकड़ोंसे सुशोभित, हौदोंमें अलंकृत और चक्रल धंटोंके रणत्कारसे युक्त थे, उसने पाँव पकड़कर उठा किया और जैसे हवा रईको दूर उड़ा ले जाती है, उसी प्रकार आकाशमें सौ योजन दूर फेंक दिया। वह दैत्यराज किन्हीं-किन्हीं हाथियोंकी सँड पकड़कर आकाशमें धूमाता और उन चिंचाइते दुए गजराजोंको विभिन्न दिशाओंमें फेंक देता था। किन्हीं हाथियोंको पीटकी हड्डियोंपर, पिंडोंकी कॉलोंमें—उभय पादवोंमें पैरोंमें आकस्मा उत्तरके वह दैत्य कालाग्निशूद्धकी भाँति शोभा पाता था। वह वीर सारथि, शोड़, ध्वजा और महारथियोंमहित गधोंसे आकाशमें उसी तरह उछाल देता था, जैसे आंधी नमलोंसे उड़ा ले जाती है। उसने घोड़ों और पैदल सेनिकोंसे भी चल्लूये, उठा-उठाकर आकाशमें फेंक दिया। उद्धुत ने महावली राजकुमार अपद या नीचे मुँह किये शब्दों तथा रक्षमय कैम्यूरोंसहित आकाश-से गिरते दुए तारोंके समान प्रतीत होते थे और मुँहसे रक्त बमन कर रहे थे। मैशिल ! उस दैत्यपुण्यवने अपनी गदासे यादव-सेनाको उसी प्रकार मथ डाला, जैसे भगवान् श्रीकृष्णने प्रलयकालके समुद्रको अपनी दंष्ट्रासे विषुव्य कर दिया था ॥ ४२-५० ॥

को गदामें नोट प., नार्गी, भनवर्मीको टाशमें और अक्षूरको लातमें मारा तथा नार्गी को भुजोंके नामसे आहत कर दिया। अक्षूर, उलवर्मी, रात्यर्पि, और भारण—ये चारों वीर आर्धिके उल्लाङ्ग हुए प्रभुर्वार्षि भार्ति मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़। तदनन्तर जाम्बवनीकुमार साम्नने उसकी गदा लेकर, गदाके ऊपर अपनी गदा रखकर उससे दन्तवक्रको मारा। दन्तवक्रने गदा फेंक दी और जाम्बवती कुमार साम्नको पकड़कर दोनों भुजोंमें रणमण्डलमें गिरा दिया। तब साम्नन भी उठकर उसके दोनों पैर पकड़कर उसे नृपृष्ठपर दे गारा। वह एक अद्भुत-सी बात

हुई। दन्तवक उठकर उस समय अद्विष्ट करने लगा। उसकी आवाजसे सात लोकों और पातालेभित समूचा ब्रह्माण्ड गूँज उठा। सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्वी और सहस्र घोड़ोंसे जुते हुए पताका-मण्डित दिव्य रथपर आस्थ छोड़कर आये हुए धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ प्रशुभ्रकी ओर देखकर दन्तवकने यह कठोर बात कही ॥ १-११ ॥

दन्तवक घोड़ा—तुम भगवत् यादव, वृष्णिवंशी और अन्धकवंशी लोग स्वल्पशक्तिवाले, तुच्छ, रणभूमिसे भागे हुए और युद्धभीक हो। राजा यथातिके शापसे तुम्हारा तेज भ्रष्ट हो गया है। तुम राज्यभ्रष्ट और निर्लज्ज हो। मैं अकेले हूँ और तम बहुमन्यक हो; तथापि अर्धम भागपर चलनेवाले तथा धर्मशास्त्रकी भयांदाको विलुप्त करनेवाले तुम नगधर्मोने मेरे भाष्य युड़ किया है। तुम्हारा पिता श्रीकृष्ण पहले नन्दके पशुओंका चरवाहा था। वह ग्वालोंकी बृहन खाता था, किंतु आज वही यादवोंका ईश्वर बना चैढ़ा है। उसने गोपियोंके घरमें मालान, दही, दी, दूध और तक आदि गोरक्षकी चोरी की थी। वह रासमण्डलमें राजिया बनकर नाचता था, किंतु अब जरासंघके भवसे उसने भी समुद्रकी शरण ले ली है। जो काल्यवनके सामने डरपोकी तरह भागा था, वही आज 'यदुनाथ' बना है। उसके दिये हुए थोड़े में राज्यों पाकर उपर्येन उस अत्यसारके लिये यज्ञोंमें श्रेष्ठ राजस्थ यश करेगा। कालकी गति हुर्लकृष्ण है। अहो! सारा संभार विचित्र हो गया। अत्यन्त दुर्बल सियार सिंह और व्याघ्रपर शासन करने चला है ॥ १२-१८ ॥

श्रीप्रशुभ्रकने कहा—ओ निन्दक ! पहिले कुण्डन-पुरमें तूने यादवोंके बड़े-बड़े बलों शायद नहीं देखा था, किंतु आज यहाँ देख लेगा। कल्पराज ! तुम्हरेग मेरे सम्बन्धी हो, यह जानकर मैं तुम्हें युद्ध नहीं करना चाहता था। किंतु तूने बल्यूर्वक युद्ध लेइ दिया। यह तेरे द्वारा धर्मशास्त्रानुमोदित कार्य ही तो किया गया है। नन्दराज साक्षात् द्रोण नामक बसु हैं, जो गोप-कुलमें अवतीर्ण हुए हैं। गोलोगमें जो गोपालगण हैं, वे साक्षात् श्रीकृष्णके रोमसे प्रकट हुए हैं और गोपियाँ श्रीराधाके रोमसे उद्भूत हुई हैं। वे सब-की-सब यहाँ ब्रजमें उतर आयी हैं। कुछ ऐसी भी गोपाङ्कनाएँ हैं,

जो पूर्वकृत पुष्टकमें तथा उत्तम वरोंके प्रभावसे श्रीकृष्ण-को प्राप्त हुई हैं। भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् परिपूर्णतम धर्मात्मा है, असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, गोलोकके स्वामी तथा परात्पर ब्रह्म हैं। जिनके अपने तेजसे सम्पूर्ण तेज विलीन होते हैं, उन्हें ब्रह्मा आदि उन्मुष्ट देवता साक्षात् 'परिपूर्णतम' कहते हैं, पूर्वकालमें जो चक्रवर्तीं राजा मरम्भ थे, वे ही श्रीकृष्णके वरदानसे यादवराज उप्रेषण हुए हैं। तू निरकृश और महामूर्ख है, जो महान् गुणशाली महापूरुषकी निन्दा करता है। जैसे सिंह गोदावरी आवाजपर ध्यान नहीं देता, उसी प्रकार महाराज उप्रेषण अथवा भगवान् श्रीकृष्ण तेरी बकवासपर कोई विचार नहीं करेंगे ॥ १३-२६ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! प्रशुभ्रकी ऐसी बात उनकर मदमत्त दन्तवक एक भारी गदा लेकर उसके रथपर दृट पड़ा। उसने अपनी गदासे झोट करके उस रथके सहस्र घोड़ोंको गिरा दिया और गर्जना करने लगा। उसका भयंकर रूप देखकर सब घोड़े भाग चले। तब प्रशुभ्रके भी गदा लेकर उसकी छातीमें बड़े जोरसे प्रहार किया। उस प्रहारसे देवराज दन्तवक मन-ही-मन कुछ ब्यकुछ हो उठा। अब उन दोनोंमें गदासे घोड़े युद्ध होने लगा। गदाओंसे परस्पर प्रहार करते हुए, वे दोनों बीर एक-दूसरेको रणभूमिमें दीदने और गर्जने लगे। राजन् ! उन्हें देखकर देसा जान पड़ता था, मानो पर्वतपर ही सिंह आपसमें जूझ रहे हों ॥ २७-३० ॥

दन्तवकने दोनों हाथोंसे श्रीकृष्णकुमारको पकड़कर धूमिपर उसी प्रकार गिरा दिया, जैसे एक सिंहने दूसरे सिंहको बल्यूर्वक पटक दिया हो। प्रशुभ्रने भी उठकर बल्यूर्वक उसके दोनों हाथ पकड़ लिये और भुजाओंदारा धूमाकर उसे पृथ्वीपर दे मारा। प्रशुभ्रके प्रदारमें वह रक्त बान करता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसकी हाँड़ुओं चूर नूर हो गयीं; शरीर शिथिल हो गया। उसे मृद्धर्या आ गयी। वह आमुतिम् घबगया हुआ प्रतीत होने लगा। दन्तवक इन्द्रके बग्रसे आहत हुए पर्वतकी भौति भूपृष्ठपर सुशोभित हो रहा था। उसके शरीरके घबकेमें समुद्रसहित पृथ्वी हिलने लगीं, दिग्गज विचलित हो उठे, तारे खिलक गये और समुद्र कॉपने लगे। राजेन्द्र ! उसके गिरनेके धमाकेमें तीनों लोकोंके कान बहरे हो गये। उसी समय कल्पराज महात्मा हृदयशार्मा रानी शुद्धेनाके साथ महारङ्ग-

पुरसे वहाँ आ पहुँचे । वे यादवोंके साथ बुन्दर ढंगसे संधि करना चाहते थे । मिथिलेश्वर । वे शम्भवशत्रु प्रद्युम्नको भेट

देकर, पुत्रको साथ ले, संधि करके यदुयुगवोंसे पुणित हो, पुनः महाराजपुरको चलं गये ॥ ३१-३७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित-क्षम्भुके अन्तर्गत नारद-नहुलाभ-संवादमें इन्तवक्ते साथ बुद्धने करूप देशपर विजयः नामक श्याहवाँ अथाग पूरा हुआ ॥ ११ ॥

—०००—

बारहवाँ अध्याय

उशीनर आदि देशोंपर प्रद्युम्नकी विजय तथा उनकी जिज्ञासापर मुनिवर अगस्त्यद्वारा तत्त्वज्ञानका प्रतिपादन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् । दक्षिण तागरमें स्नान करके यादवराज प्रद्युम्न वहाँसे सेनासहित उशीनर देशको छोतनके लिये आये, जहाँ श्वालोकी मण्डलीके साथ कोटि-कोटि भव्यमूर्तिवार्द्धा गौदैं विचरती और चरती हैं । उशीनर देशके लंग दूष पीते और गोरे रंगके मनोहर रूपवाले होते हैं । व मन्त्रवनकी भेट लेकर प्रद्युम्नके बामने गये । उनसे पूर्जित होकर प्रद्युम्नने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें दाखी, धोड़, रथ, रत्न, बल और भूषण आदि बहुत धन हासा । उशीनरका राजधानी चम्पावती नामक पुरी भाग और रत्नोल सम्पद थी । वह राजाओंसे उसी प्रकार शोभा यानी था, जैसे संपर्सि भोगवतपुरी । चम्पावतीके स्वामी वीर राजा देमाझर शाम ही भेट लेकर आये । उन्होंने श्रीकृष्ण-कुमार प्रद्युम्नको प्रणाम किया । उनसे संतुष्ट होकर प्रद्युम्नने उन्हें केशयुक्त कमलोंका माला दी और सहस्रदलोंकी शोभाए सम्पूर्ण एक दिव्य कमल भी अर्पित किया ॥ १-७ ॥

‘तदनन्तर महावाहु प्रद्युम्न बनुष धारण किये तथा बार-बार दुन्दुभि बजवाते हुए अपनों सनाके भाश विदर्भ देशको गये । कुण्ठिनपुरके राजा भीध्यकने वहों पधारे हुए बहिर्माणापुत्रहों । अपने यर ले आकर बहुत धन दे, सेनासहित उनका पूजन किया । तत्पश्चात् नानाको प्रणाम करके बलवान् यादवेश्वर बहिर्माणानन्दन कुन्त और दरद देशोंको गये । मार्गमें मल्याचलके चन्दनको स्पर्श करता हुआ समीर उनकी सेवा कर रहा था । श्रीखण्ड और केतकी पुष्पोंकी गन्धसे भरे हुए मल्याचलपर उन्होंने मुनिभेष्ट अगस्त्यका दर्शन किया, जो किसी समय महाबागरको पी गये थे । श्रीकृष्णकुमार होनों हाथ जोड़कर उन महामुनिको नमस्कार करके उनकी पर्णशालमें लड़े हो गये । मुर्नने शुभाशार्दूल लेकर उनका अभिनन्दन किया ॥ ८-१२ ॥

तब श्रीप्रद्युम्नने पूछा—मुनिश्रेष्ठ । यह जगत् तो हस्य-पदार्थ होनेके कारण मिथ्या है*, फिर सत्यकी भाँति कैसे स्थित है ! तथा जीव ब्रह्मका अंश होनेके कारण नित्य-मुन है, ऐसा होनेपर भी यह गुणोंगे कैसे बँध जाता है ? यह मेरा प्रश्न है, आप इसका भलीभाँति निरूपण कीजिये क्योंकि आप सर्वश, दिव्यदृष्टिमें सम्पन्न तथा समस्त ब्रह्मवेत्ताओं-में श्रेष्ठ हैं ॥ १३-१४ ॥

अगस्त्यजीने कहा—राजमणीनन्दन । तुम साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र हो, तथापि मुख्ये प्रक्षन करते हों ! तुम्हारा यह प्रक्षन पूछना रालमात्र है (क्योंकि तुम सर्वश हो) । प्रभो ! जैसे भगवान् श्रीहरि लोक-संग्रहके लिये ही कर्म करते हैं, उसी प्रकार तुम भी मनुष्योंका कल्याण करनेके लिये विचर रहे हो । जैसे सत्य सूर्यका जलमें जो प्रतिवेद्य दिखायी देता है, वह मिथ्या होनेपर भी सत्य-सा प्रतीत होता है, उसी प्रभार प्रकृति और परमात्माका प्रतिवेद्यस्तर पर यह हस्य जगत् अभूत् होनेपर भी सत्य-सा दृष्टिगोचर होता है । जैसे शारीरमें मुख, रस्तीमें सर्प तथा बालुका-राशिमें जलर्फी मत्यवत् प्रतीति होती है, उसी प्रकार यह सर् परमात्मा देहगत सत्त्वादि गुणोंसे बद्ध जान पड़ता है—अन्तःकरणरूपा दर्पणमें सत्त्वा प्रतिवेद्य ही जीवसमें प्रतीतिगोचर होता है । (गीरोमें मुख आबद्ध होनेपर भी बद्ध सा प्रतीत होता है, उसी प्रकार नित्यमुक्त परमात्मा सत्त्वादि गुणमय अन्तःकरणमें प्रतिविभित होकर बद्ध-सा जान पड़ता है) ॥ १५-१८ ॥

प्रद्युम्नने पूछा—ब्रह्म क्षिरोमणे । जिस उपायमे हठ

* जगत् के मिथ्यात्मक साभक भनुमान प्रभाण हम प्रक्षर
—सत्य, असत्य, इत्यमनसाद् ब्रह्महृष्टपदावद्यत् ।

वैराग्य प्राप्त करके देहधारी जीव कर्मपि बन्धनमें न पढ़े,
यह मुझे बताये ॥ १९ ॥

अवास्त्यजीने कहा—जो विनेवा आश्रय लेकर
अगत्को मनोमय (मनके सूक्ष्मसत्रमें प्रकट) मानकर
सनातन ब्रह्मका भजन करता है, वह परमपदको प्राप्त होता
है। राजन्! उस परमात्माको जन्म, मृत्यु, शोक, भोग,
बाल्य, यौवन, जरा, अकृता, मद, व्याधिः। डग, सुन,
दुःख, क्षुधा, रति, मानसिक निन्दा और भय कभी नहीं
प्राप्त होते; कर्मणि आत्मा निरांह (नेत्रारहित), निराकार,
सर्वथा अहंकारशुद्ध, सुखश्चमय, गुणोका आश्रय, साक्षात्
परमेश्वर, निष्ठल तथा आत्मद्रष्टा है। जिग्नोऽसुराश्वरमें
सदा पूर्ण एवं ज्ञानमय जाना है, तब वरज्ञा परमात्माको
आनकर यह जीव मुख्यरूपक विनारे ॥ २०—२३ ॥

जो पुरुष (आत्मा) इस जगत्के सो जानेपर भी
आगता है, उसको देखता है, उन द्रष्टाको यह छोक कभी नहीं
देखता। कदापि नहीं जानता; जैव विभिन्न गोंगे स्फटिक-
मणि कभी लिस नहीं होती। तथा जैव आपना कोटें, अग्नि
काष्ठसे और वायु नहीं हुई क्षुण्णे, तिस नहीं होती, उसी
प्रकार ब्रह्म गुणोंके नहीं हित नहीं होता। जो क्षुण्णाश्रोते,
व्यज्ञनाद्वारा व्यक्त होनेवाली भूति उन व्यज्ञनाश्रोतस कभी
ज्ञानका विषय नहीं होता, एवं लौकिक वास्त्योद्वारा कैसे
ज्ञान जा सकता है। उन शब्दार्थानात परब्रह्मको नमस्कार
है। दूसरे लोग उसे 'काङ्क्षकी' कहा देते हैं। अल्प विद्यान् ऐसे 'कर्त्ता' एवं 'धेय'
कहते हैं, दूसरे विचारक उसको 'आंखेय' एवं 'ब्रह्म' कहते हैं।
कोई 'परमात्मा' और 'ब्रह्मद्वय' नहीं है। प्रत्यक्ष, अनुमान,
निगमागम तथा आत्मानुभवके द्वारा परब्रह्मके स्वरूपका
विचार करके इस जगत्में अनामनभावमें 'वचते'। जन जल
के चञ्चल होनेसे उसमें प्रातिनिधित्व उपर्याप्त। चञ्चल-से प्रतीत
होने हैं और नेत्रोंके धूमनेसे चरही भी धूमरी-यी दिव्यायी होती
है, उसी प्रकार गुणोंके भ्रमणं गन्ते भ्रान्त होनेपर उसमें स्थित
आत्मा भी भ्रान्त-सा जान रहता है ॥ २४-३० ॥

राजन्! जैसे हाथों शुमाद्या जान दुन्हा अल्पतनक
मण्डलाकार धूमता जान पड़ता है, उसी प्रकार गुणोद्वारा भ्रान्त
मनके द्वारा अज्ञानविमोहित जीव ऐसा कहने और मानने
ज्ञाता है कि 'मैं कर्त्ता, मैं कर्ता हूं, यह मेरा है, वह दुर्भारा
है, यह दुर्भारा, यह मैं हूं, मैं दुर्भारी हूं और मैं दुर्भारी हूं' इत्यादि।

सत्त्व, रज और तम—ये तीनों प्रकृतिके गुण हैं, आत्माके नहीं।
उन गुणोद्वारा यह सारा जगत् उसी तरह व्याप्त है, जैसे
सूतसे बख्ल ओत-प्रोत होता है। सत्त्वगुणमें स्थित जीव ऊपर-
की जाने हैं, रजोगुणी जीव मध्यवर्ती लोकमें रहते हैं तथा
तमोगुणकी वृत्तिमें स्थित तामनजन नीचे (नरकादिमें) जाते
हैं। श्रीकृष्णकुमार! जैसे अँखेमें रसी हुई रसीमें सर्पबुद्धि
होती है, दूरसे मरीचिका (सूर्गकिरण) में जलकी भ्रान्ति
होनी है, उसी प्रकार अज्ञानमोहित जीव परब्रह्ममें इस
जगत्की भ्रान्ति धारणा बना लेता है। सुखको उसी तरह
आनंजनेवाला समझो, जैसे मण्डलवर्ती राजाओंका राज्य।
मनुष्योंका दुःख भी उसी प्रकार है, जैसे नरकवासियोंका।
बनमाला, देहके गुण तथा दिन और रात जैसे स्थिर नहीं
होते, उसी तरह सुख दुःख भी स्थिर नहीं है। जैसे तीर्थ-
यात्रियों या व्यापारियोंका समुदाय सदा साथ नहीं रहता,
उसी तरह यह इश्वर प्रपञ्च भी शाश्वत नहीं है। कोई भी वस्तु
नदा नहीं रहती। जैसे पंख निकल जानेपर एकीको धोकेले
और नदीके पार नले जानेपर पथिकको नावसे कोई प्रयोजन
नहीं रहता, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्त हो जानेपर अभियान उत्तरां
करनेवाले लोकसे क्या प्रयोजन रह जाता है। समदर्शी मुनि इसी
प्रकार अपने मार्यजा शीघ्र निरक्षय करके असङ्गभावसे
विनारे। जैसे अनेक जलाश्रोतमें एक ही चन्द्रमा प्रतिविभिन्न
होता है और जैसे काष्ठलमूहमें एक अग्नि व्याप्त है, उसी
प्रकार एक ही साक्षात् भगवान् परमात्मा सर्वथा विद्यमान
है। जैसे महान् आकाश घट और मटके बाहर तथा भीतर
भी अक्षिभावसे विद्यमान है, उसी प्रकार परमात्मा अपने
ही द्वाग उद्भावित देहवारियोंके बाहर-भीतर निर्विसरूपसे
विराजमान है। जो भगवान् श्रीकृष्णका शान्तिचित्त, ज्ञाननिष्ठ
एवं वैराग्यवान् भक्त है, उसे गुण उसी प्रकार नहीं छूते,
जैसे जल कमलदलको सर्व नहीं करता। जानी पुरुष सदा
आनन्दमग्न हो बालककी भाँति विनरता है। वह अपने
शरीरकी ओर उसी प्रकार हृषि नहीं रखता, जैसे मदिरा
पीकर भत्तवाला दुधा मनुष्य अपने पहिने हुए बछकी
मेंभाल नहीं रखता ॥ ३१-४१ ॥

राजन्! जैसे मूर्योदय होनेपर घरकी वस्तु दिखायी
देने लगती है, उसी प्रकार अज्ञानको पूर करके ज्ञानवान्
पुरुष ब्रह्मतत्त्वका साक्षात्कार कर लेता है। जैसे पृथक्-
पृथक् द्वारवाली इन्द्रियोंसे एक ही विषय अनेक गुणोंका

आश्रय प्रतीत होता है, उसी प्रकार एक ही ब्रह्म उसके प्रतिपादक शास्त्रमार्गोंसे अनेक-सा जान पड़ता है। नरेश्वर ! इस ब्रह्मको कोई परमपद कहते हैं, कोई वैष्णवधाम बताते हैं, कोई व्यापक बैकूण्ठ, कोई शान्त, कोई परम कैवल्य तथा कोई अविनाशी परमधाम कहते हैं। किन्तुकी मतमें वह अक्षरपट है, कोई उसे पराकाशा कहते हैं, कोई प्रकृतिसे परे लगाकंधाम बताते हैं और कोई गुराणवेत्ता उसको विशद निकुञ्ज कहते हैं। इस लोकमें रहनेवाला मानव उस पद-

को ज्ञान, वैराग्य और भक्तिसे प्राप्त करता है, दूसरे किसी साधनसे नहीं। परमपुरुष कैवल्यनाथ परात्पर पुरुषोचम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पदको मनुष्य उपर्युक्त साधनोंद्वारा उन्हींकी कृपासे प्राप्त करता है और उसे प्राप्त करके भक्त पुरुष कभी वहाँसे लैटा नहीं ॥ ४२-४७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! यह भागवत ज्ञान सुनकर श्रीकृष्णकुमार प्रशुभने दोनों हाथ जोड़, भक्ति-भावसे नमस्कार करके महामुनि अंगस्त्यजीका पूजन किया ॥ ४८ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्ववित्तस्त्रप्लके अन्तर्गत नाग-बहुलादवर्संबादमें 'उशीनग, विद्यम, कुन्त, दरद आदि देशोंपर विजयके प्रसङ्गमें अगम्य और प्रशुभकी ज्ञानशब्दों' नामक वाहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

शाल्व आदि देशों तथा द्विविद् वानरपर प्रशुभकी विजय; लङ्कासे विभीषणका आना और उन्हें भेट समर्पित करना

मारदजी कहते हैं—राजन् ! कृतमाला और तास्त्रणीं नदियोंमें स्नान करके श्रीयादवेश्वर प्रशुभ अपने यादव सैनिकोंके साथ गजपुरको गये। राजपुरका स्थानी राजा शाल्व था। वह मेरे मुँहसे शादवोंका आगमन सुनकर शीघ्र ही वानरराज द्विविदके पास गया। वीर द्विविद मिथ्रकी सहायता करनेके लिये उत्तम हो यादवोंके प्रति मनमें अस्वत्त कोध लेकर प्रशुभकी सेनाका सामना करनेके लिये गया। वह अपने पैरोंकी धमकसे पृथ्वीको हिला देता था। द्विविदने अपने नखों और दाँतोंद्वारा पतका और घजपटोंको चीर डाला। वे घ्वज कश्मीरी शालोंसे आषृत, मुद्राकृत तथा स्वर्णभूषित थे। उसने रथोंको ऊपर उछाल दिया, हथियोंपर वेगपूर्वक चढ़कर घोड़ोंको भगाया और वह वानरोचित किलकरियोंके साथ भौंहे नचाकर सबको भयभीत करने लगा। इस प्रकार कोलाहल मच जानेपर धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ प्रशुभ वारंवार धनुषकी टंकार करते हुए रथपर आरूढ़ हो उसके पास आ गये। मदमत्त द्विविद उस रथके आस-पास उछलने लगा और अपनी पूँछसे घोड़ोंसहित रथ, रथ और छत्रको कम्पित करने लगा। प्रशुभने अपने धनुषकी कोटिरे उसका गला पकड़कर खींचा। तब अस्वत्त कुपित हुए उस वानरने उनके ऊपर मुँहके से प्रहार किया। तदनन्तर प्रशुभने विधिपूर्वक धनुषपर प्रस्तुता चढ़ायी और कानतक खींचिकर छोड़े गये एक

बाणसे द्विविदको बींध दिया। राजेन्द्र ! उस बाणने आकाशमें आधे पहरतक द्विविदको धुमाकर सी योजन दूर लङ्कामें गिर दिया। वहाँ दो शङ्खीतक राधसोंके साथ उसका युद्ध हुआ और उसने राधसोंको मार गिराया। राजन् ! इधर यदु-कुल-तिलक प्रशुभने दुन्दुभिनाद करते हुए विजय प्राप्त करके शाल्वसे भेट ली और दक्षिण-मधुरा (मदुर) का दर्शन करके वे चिकूठ पर्वतपर जा चढ़े। उधर वानरराज द्विविद श्रीकृष्णसे मैनाक्के गिरावरपर गया, मैनाक्के सिंहल जाकर वह पुनः भारतवर्षमें आया। धीरे-धीरे वानरेन्द्र द्विविद हिमालयपर गया और हिमालयके शिखरसे प्राम्ल्योत्तिष्ठपुरको जा पहुँचा ॥ १-१४ ॥

यादवेश्वर प्रशुभ मलारदेशके अधिपति रामकृष्णपर विजय पाकर महासेन सेतुबन्ध तीर्थमें गये। महावीर श्रीकृष्णकुमार प्रशुभ शतयोजनविस्तृत मकारालय समुद्रका दर्शन करके उसके तटपर जाकर ठहर गये। वहाँ साम्र आदि भाइयों और अक्षूर आदि अपने यादवोंको बुलाकर योगेश्वरपर प्रशुभने सभामें उद्धवसे कहा ॥ १५-१७ ॥

प्रशुभ बोले—भोजकुलतिलक मन्त्रिवर उद्धवजी ! परम तेजस्वी लङ्कापति विभीषण इस द्वीपका राजा तथा राजस-समूहोंका सरदार है। यदि वह श्रीम भेट न दे तो बताइये, यहाँ हमें क्या करना चाहिये ? ॥ १८ ॥

उद्भवजीने कहा—प्रभो ! आप देवाधिदेव पुरुषो-स्तमोत्तम हैं । आप ही परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्र हैं, तथापि आप साधारण लोगोंकी मोति मुक्षसे पूछते हैं ! वहे-वहे योगीश्वर भी आपकी मायाका पार नहीं पाते । भूमन ! ब्रह्मा आदि देवता भी सदा पराजित होकर जिनके उत्तम अनुशासनका भार सदा अपने मस्तकपर ढोते हैं, वही साक्षात् पुरुषोत्तम आप हैं । मैं तो आपका दासानुदास हूँ, फिर मैं आपको क्या सलाह दूँगा ? ॥ १९-२० ॥

नारदजी कहते हैं—मैथिलेश्वर ! उद्भवके यो कहनेपर श्रीहरिस्वरूप भगवान् प्रवृत्त्वने एक ताइपत्र लेकर उत्तर अपना संदेश लिया—माथसराज ! तुम भोजराज उपर्यन्तके लिये भेट दो; यदि चलाभिमानवदा तुम मेरी वात नहीं सुनोगे तो मैं धनुषसे छोड़े गये बाणोद्धारा समुद्रपर नेतृ बांधकर सैन्यसमूहके साथ लड़ापर चढ़ाई करूँगा । यह लियन्तर प्रचण्ड-पराक्रमी प्रवृत्त्वने कोटण्ड हाथमे लिया और अपने पत्रको जागमे लगायर उस बाणको कानतक खींचा और छोड़ दिया । उस धनुषकी प्रत्यञ्चाको खींचनेमे विजलाकी गङ्गगङ्गाहटने समान टकार-खनि प्रकट हुई । उस नादमे पातालोत्तमानातो लोकोंमहित सारा ब्रह्मण्ड गूँज उठा । प्रवृत्त्वके धनुषसे छूटा हुआ वाण सम्पूर्ण दिव्याओंको प्रकाशित करता हुआ विद्युतके समान तड़तड़ान्तर विभीषणकी भभामे गिग । उसके गिरते ही सब राक्षस चकित होकर उठकर खड़े हो गये । उन दुष्टोंने वहे वेगसे अपने कवच और ग्रस्त ग्रहण कर लिये । महावली राक्षसराज विभीषण वाणमे पत्रको खींचकर पढ़ गये । सभामे वह पत्र पढ़कर उहे वडा विस्त्रय हुआ । उसी समय उस राजसभामे शुक्रान्तर्य आ पहुँचे । विभीषणने पाद्य आदि उपचारोंद्वारा उनका पूजन किया और हाथ जोड़, प्रणाम करके कहा ॥२१-२२॥

विभीषण बोले—भगवन् ! यह किसका वाण है ? भूतल्पर भोजराज कौन है और उनका चल क्या है, यह मुझे चताइये; क्योंकि आप साक्षात् दिव्यदृष्टिवाले हैं ॥२३॥

श्रीशुक्लने कहा—राक्षसराज ! इम विषयमे पुराण-वेत्ता विद्वान् इस प्राचीन इतिहासका वर्णन किया करते हैं, जिसके सुननेमात्रमे पापोंका नाश हो जाता है । पूर्व-कालमें ब्रह्माजीके पुत्र सनक आदि चार मुनि तीनों लोकोंमें भ्रमण करते हुए भगवान् विष्णुके दिव्यलोकमें गये । वे

नंगे बालकके रूपमें थे । उन्हें शिशु जानकर जय और विजय नामक द्वारपालोंने, जो अन्तःपुरमें पहरेदार थे, बैंतकी छड़ीसे रोक दिया । वे श्रीहरिके दर्शनकी लालता लेकर आये थे । गेके जानेपर उन्हें ब्रोध हुआ और उन्होंने उन दोनों द्वारपालोंको शाप देते हुए कहा—‘तुम दोनों दुष्ट हो; इसलिये असुर हो जाओ । तीन जन्मोंके पञ्चात् शुद्ध होओगे ।’ इस प्रकार शाप प्राप्त करके वे दोनों अपने भवनसे गिरे और भूमण्डलमें आकर दैत्यों तथा दानवोंसे पूर्जित दिति पुत्र हुए । उनमेंमे ज्येष्ठक। नाम हिरण्यकशिष्य था और छोटेका नाम हिरण्याक्ष । प्रलयके जलमे पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये भगवान् श्रीहरि यज्ञवाराहके रूपमें प्रकट हुए । उन्होंने महावली हिरण्याक्ष नामक दैत्यको मुक्तकेसे मार डाल और नाशात् चण्ड-पराक्रमी दृसिंह होकर क्याघू-कुमार प्रह्लादकी महायता करते हुए हिरण्य-कशिष्यका उदर विर्दीर्घ कर दिया । वे ही दोनों भाई फिर केशिनाके गर्भमें विश्रवाके पुत्र होकर उत्पन्न हुए, जो सम्पूर्ण लोकोंको एकमात्र ताप देनेवाले गवण और कुम्भकर्ण कहाये । श्रीरामचन्द्रजीके सायफ़ोंमे धात्रल होकर वे दोनों युद्धभूमिमें नदाके लिये मो गये । वे महान् वेगशाली राक्षसराज रामण और कुम्भकर्ण तुम्हारी आँखोंके समने मारे गये थे । अब उनका तीसरा जन्म हुआ । इस जन्ममें वे क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुए हैं । उनका नाम शिशुपाल और दन्तवक है । वे इस युगमें भी वहे वलवान् हैं । उन दोनोंके वधके लिये साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् अमरण्य-ब्रह्मण्डपति परात्पर गोलोकनाथ श्रीकृष्ण यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं । वे यादवेन्द्र बहुत-सी लीलाएँ करते हुए इन समय द्वारकामें विराजमान हैं । युधिष्ठिरके महायशमे शाल्वके साथ होनेवाले युद्धमें माधव शिशुपाल और दन्तवकका वध कर डालेंगे, इसमें संशय नहीं है । उन्होंके पुत्र शम्भरसहन प्रवृत्त्व दिव्यजयके लिये निकले हैं । वे जम्बूदीपके तमस्त राजाओंपर विजय प्राप्त करेंगे । उन सबके जात लिये जानेपर यदु-कुल-तिलक भोजराज उपर्यन्त द्वारकामें राजस्थ यश करेंगे । उन्हींके धनुषसे बल्लवर्णक छूटा हुआ यह प्रचण्ड वेगशाली वाण यहाँ आया है । इसपर उनके नामका चिह्न है । यह विद्युत-की गङ्गगङ्गाहटसे भी अधिक आवाज करनेवाला है । राक्षसराज ! यह वाण समस्त दिव्यमण्डलको उद्भासित करता हुआ यहाँतक आ पहुँचा है ॥ ३०-४५ ॥

नारदजी कहते हैं—नरेश्वर ! राक्षसोंके सरदार श्रीगम्भक विभीषणने यह जानकर कि भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् श्रीरामचन्द्रजी ही हैं, भेंट-सामग्री लेकर प्रद्युम्न की मेनाके पास गये। उस समय शीघ्र ही आकाशसे उतरकर मेघके समान स्थामकान्तिसे प्रकाशित होनेवाले विशालकाय विजयदर्शी विभीषण श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नकी परिक्रमा करके हाथ जोड़ उनके सामने खड़े हो गये ॥ ४६-४७ ॥

विभीषण बोले—प्रभो ! आप साक्षात् भगवान् वासुदेव तथा सबके स्त्री हैं, आपको नमस्कार है। आप ही संकर्णण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं; आपको प्रणाम है। मत्स्य, कुर्म और वराहावतार धारण करनेवाले आप परमेश्वरको वारंवार नमस्कार हैं। श्रीरामचन्द्रको नमस्कार है। भृगुकुलभूषण परशुरामजीको वारंवार नमस्कार है। आप भगवान् वामनको नमस्कार हैं। आप ही साक्षात् नरसिंह हैं, आपको वारंवार नमस्कार है। आप शुद्ध-बुद्धदेवको

नमस्कार हैं। सबकी पीड़ा हर देनेवाले कल्पिकरूप आप भगवान्को मेरा नमस्कार है॥ ४८-५० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! यो कहकर दूसरोंको मान देनेवाले विभीषणने श्रीहरिके पुत्र प्रद्युम्नका बड़े भक्तिभावसे सोलह उपचारोंद्वारा पूजन किया। उस समय उनकी बाली गदगद हो रही थी। फिर परम संतुष्ट हुए प्रद्युम्न उनको वैराग्यपूर्ण शान, शान्तिदायिनी भक्ति तथा प्रेमलक्षणा परानुरक्ति प्रदान की। साथ ही ब्रह्माजी-की दी हुई परम दिव्य पंशुरामनिर्भित मस्तकमणि तथा पुलस्थपौत्र कुवेरद्वारा पूर्वकालमें दी हुई रसोंकी दीक्षिमती माला प्रदान की। फिर चन्द्रमाजी दी हुई चन्द्रकान्त मणि तथा उत्तम पीताम्बर परम प्रभु प्रद्युम्न उन्हें अर्पित किये। तदनन्तर महाबली राक्षसराज विभीषण प्रद्युम्नको प्रणाम करके उन्हें भेंट देकर अपने पार्श्वदगांयों-के साथ लङ्घापुरीको लौट गये ॥ ५१-५५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्भ-सहितासे विश्वजित-स्तम्भके अन्तर्गत नारद-बहुलालव-संवादमें 'शत्रु, मल्लार एवं लङ्घापा विजय' नामक तंत्रहृष्ट अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

महार्षतके निकट दत्तात्रेयका दर्शन और उपदेश तथा महेन्द्रपर्वतपर परशुरामजीके द्वारा यादवसेनाका सत्कार और शेष भक्तके स्वरूपका निरूपण

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर श्रीकृष्ण-कुमार कामदेवमूरुप प्रद्युम्न श्रूपभ पर्वतका दर्शन करके श्रीराङ्गक्षेत्रमें गये। फिर काञ्छापुरी एवं सरिताओंमें श्रेष्ठ प्राचीका दर्शन करके, कावेरी नदीके पार जाकर संशयगिरिके नमीपर्वतीं देखोंगें गये। भगवान् प्रद्युम्न हरिके साथ यादवोंकी विद्वाल मेना भी थी। मैथिलेश्वर ! उन्होंने देखा कि उनके सैन्य-शिविरकी ओर एक खुले केशवाला दिग्मन्त्र अवधूत भागता नला आ रहा है। उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट है और उसपर धूल पड़ी हुई है। नालक उसके पीछे दौड़ रहे हैं और इधर-उधरमें तालियाँ पीट रहे हैं, कोलाहल करते हैं

और हँसते हैं। उस अवधूतको देखकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न उद्दिष्ट बोले ॥ १—५६ ॥

प्रद्युम्नने कहा—यह हृष्ट-पुष्ट शरीरवाला कौन पुरुष चालक, उन्मत्त और विशाचकी भाँति भागा आ रहा है ? यह लोगोंसे निरस्कृत होनेपर भी हँसता है और अत्यन्त आनन्दित होता है ॥ ५-६ ॥

उद्द्वच बोले—ये परमहंस अवधूत श्रीहरिके कलावतार साक्षात् महामुनि दत्तात्रेय हैं, जो सदा आनन्दमय देखे जाते हैं। इन्हेंके प्रसादमें पूर्ववर्तीं उक्षष नरेण सहस्रार्जुन आदि

* नमो भगवते तुम्य बासुदेवाय वेष्टे । प्रद्युम्नावानिरुद्धाय नमः संकर्णाय च ॥

नमो मत्स्याय कूपाय बराहाय नमो नमः । नमः श्रीरामचन्द्राय भागवाय नमो नमः ॥

शमनाय नमस्तुम्यं नृमिहाय नमो नमः । नपो बुद्धाय शुद्धाय कस्त्रे नारिणः ॥

(गण०, विश्वजित० १३ । ४८-५०)

तथा यदु एवं प्रह्लाद आदिने परम सिद्धि प्राप्त की है ॥७ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! यह सुनकर यदु-कुल-तिलक प्रशुभ्नने मुनिकी पूजा और बन्दमा करके दिव्य आमनपर विठाकर उनसे प्रभ किया ॥ ९ ॥

प्रशुभ्न बोले—भगवन् ! मेरे इदयमें एक संदेह है, प्रभो ! उसका नाश कीजिये । जगत्का स्वरूप क्या है, ब्रह्मके मार्ग कौन हैं तथा तत्त्व क्या है ? यह सब ठीक-ठीक बताइये ॥ १० ॥

दक्षाश्रेयने कहा—जबतक अन्धकारके कारण वस्तु दिखायी नहीं देती, तभीतक उल्का या मशालकी आवश्यकता होती है । जब महानन्द वसमें हो जाय, तब उल्काया क्या प्रयोजन है । साधो ! जगत् तभीतक टिका रहता है, जबतक तत्त्वका शान नहीं होता । परब्रह्म परमात्माके शान या प्राप्त हो जानेपर जगत्का क्या प्रयोजन है । जैसे मुखका प्रतिविष्ट दर्पणमें दिखाया देता है, परंतु वास्तविक शरीर उससे भिन्न है, उसी प्रकार प्रधान अर्थात् प्रकृतिमें प्रतिविष्ट चैतन्य जीव है, परंतु जानके आलोचनमें वह परात्पर परमात्मा सिद्ध होता है । जैसे सूर्योदय होनेपर भारी वस्तुएँ नेत्रसे दिखायी देती हैं, उसी प्रकार ज्ञानोदय होनेपर ब्रह्म तत्त्वका साक्षात्कार होता है । फिर जीव कहीं नहीं हृष्णोच्चर होता ॥ ११ -१४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इन प्रकार उपदेश सुनकर यादवराज प्रशुभ्नने उनको नमस्कार किया और सनाके साथ वे द्विविद् देशमें वैकुण्ठाचल (वैक्षटाचल) के पास गये । द्विविद् देशके स्थामी धर्मतत्त्व राजपि सत्यवाक्-वही भक्तिमें प्रशुभ्नका आदर-सत्कार किया । फिर श्रांशुको दर्शन करके वहोंके अद्भुत शिवाल्य तथा स्कन्दस्वामी । दर्शन प्राप्तकर वे पम्पा-सरोवरपर गये । तदनन्तर श्रीद्वारकानाथ प्रशुभ्न गोदावरी और भीमरथी आदि भगवन् तर्थोंका दर्शन न रहे द्वुर यहेन्द्राचलपर गये । उस पर्वतपर क्षत्रियोंका उन्नत करने-वाले भुगुंडी परशुरामजी विराजमान थे । उन्दू नमस्कार और उनकी परिक्रमा करके श्रीकृष्णनन्दन वहाँ खड़े हो गये । राजेन्द्र ! परशुरामजीने उहे आशीर्वाद देकर यादवोंकी चतुरझिणी सेनाका योगदाकिसे सत्कार किया । दाल, भास, चटनी, दहीमें भिरोयी हुई भाजीकी पकोड़ियों, सिखरन, अबलेह (सिरका या अचार), पालकका खाग, हृष्टभक्तिका (राव और नींजीका बना हुआ भोज्य

पदार्थ-विशेष), शक्करके मेलसे बना हुआ चिकोणाकार मिष्ठान (गुजिया, समोला आदि), बड़ा, मधुशीर्षक (मधुपर्क या घेवर आदि मिष्ठान-विशेष), फेणिका (फेनी), उपरिष (पूँडी या पूआ आदि), छिद्रुक शतपत्र (एक प्रकारकी मिठाई), चक्राभचिह्निका (चक्राकार चिह्नवाली मिठाई, इमिरती आदि), सुधाकुण्डलिका (जलेजी), धूतपूर (धीकी बनी हुई पूँडी), वायुपूर (माल्यूआ), चन्द्रकला, दधिस्थूली (दहीमें भींगकर पूँली हुई बड़ी), कपूरसे वासित खड़की बनी मिठाई, गोधूमपरिस्वा (खाजा), इनके साथ सुन्दर-सुन्दर फल, उत्तम दधि, मोदक (लड्हू आदि), शाक-सौधान (विविध शाकोंके समुदाय), मण्ड (दूधकी मल्हाई या शाम), स्वीर, दही, गायका धी, ताजा मालन, मण्डूरी (सागका रस), कुम्हड़ा, पापड, शक्किका (शक्किवर्वक दंपय, द्राक्षासव आदि), लस्सी, सुवीराम्ल (खट्टी कॉंजी), सुधारस (शहद या मांठा शब्दत), उत्तमोत्तम फल, मिथी, नाना प्रकारके फल, मोहनभोग, (हुल्ला), नम-कान पदार्थ, कस्तैले, मीठे, तींते, कढ़वे और खड़े अनेक प्रकारके भोज्य पदार्थ—इन सबको छपन भोग बहा गया है । भगुकुलभूषण परशुरामजीने अपने योग-बलसे इन सब पदार्थोंके पवत-जैम ढेर लगा दियं । सारी सेना भोजन वर चुकी, तब भी वहों ने खाद्य पदार्थोंके पवत हाथभर भी छोड़े नहीं हुए । परशुरामजीका यह बैभव देखकर सब लोग अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये । राजन् ! यदवोंसहित श्रीकृष्णकुमार प्रशुभ्नने उस समय परशुरामजीका नमस्कार करके सबके सामने इस प्रकार पूछा ॥ १५—३० ॥

प्रशुभ्न बोले—भगवन् ! आपने इम सब लोगोंको अत्यन्त उत्तम भोजन प्रदान किया । प्रभो ! सारी समुद्दियों और सिद्धियों आपके चरणोंमें लोटती हैं । अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि समस्त हरिभक्तोंमें श्रीहरिका प्रिय भक्त कौन है ! विग्रेन्द्र ! यह मुझे बताइये; क्योंकि आप परावर-केत्ताओंमें सबसे अष्ट हैं ॥ ३१-३२ ॥

रूपसिंहमुक्तोंका लहरोंमेही हृषा रहता है, वही आङ्गणचन्द्रका प्रिय भक्त कहा गया है। परमेश्वर ! जिस महापुरुषने अपने मन और इन्द्रियोंको बशमें कर रखता है, जो समस्त जंगम प्राणियोंके प्रति स्नेह एवं दयाका भाव रखता है, जो शान्त, सहनशील, अत्यन्त काशणिक, सबका सुदृढ़ एवं सत्पुरुष है, वही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका प्रिय भक्त कहा गया है। वह अपने चरणोंकी धूलिये सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करता है। जो निरन्तर परमेश्वर श्रीहरिके चरणोंकी धूलिका आश्रय ले, सम्पूर्ण ब्रह्मपद, इन्द्रपद, चक्रवर्ती सम्माट्के पद, इसातलके आधिपत्य, योगसिद्धि और मोक्षकी भी कभी इच्छा नहीं करता, वही भगवान्का श्रेष्ठ भक्त है। जो अकिञ्चन है, जिनको अपने किये हुए कर्मोंके फलमें विरक्ति है तथा जो श्रीहरिकी चरणरजमें ही आसक्त हैं, वे महामुनि भगवर्दय भक्तजन हीं भगवान्के उस परमपदका मेवन करते हैं; अन्य लोग उस नैरपेक्ष्य मुख्यका अनुभव नहीं करते हैं।

इस प्रकार श्रीगर्म-संहितामें विश्वजित्क्षण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्वन्संवादमें ‘द्रविड देशपर विजय’ नामक चाँदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

उद्धीश-डामर देशके राजा, वज्रादेशके अधिपति वीरधन्वा तथा असमके नरेश पुष्टपर यादव-सेनाकी विजय

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! दिविजयके वहाने गये । अङ्गदेशका स्वामी केवल अन्तःपुरका अधिपति भूभार हरण करनेवाले साक्षात् भगवान् प्रशुभ्न अङ्गदेशको होकर बनमें विहार करता था । वहाँ यादवोंने उसे जा पकड़ा,

* निष्क्रियनो हरिपदाव्यपरागच्छायः श्रीभक्त्याश्रवणकीर्तनात्परो यः ।
नदूपसिन्धुलहरीविनिमन्मन्त्रिः श्रीकृष्णचन्द्रविद्यतः कवितः स, भक्तः ॥
दान्मो महानविक्षयंगमवस्थलोऽय शान्तस्तिनिष्ठुरतिकाशणिकः द्वाहस्त ।
षांकुं पुनानि निजपादरजोभिरात् श्रीकृष्णचन्द्रविद्यतः कवितः परेषः ॥
ए. पारमेष्ठव्यमितिं न महेन्द्रविद्ययं नो सार्वभौमसनिदिं न रसाधिपत्यम् ।
नो धोगसिद्धिमपि नो नषुनभवं वा बालक्ष्यकं परभपादरजः स भक्तः ॥
निष्क्रियनोः स्वफूलकर्मफैलविरागा परत्पदं हरिजना मुनयो महानः ।
भक्ता जुषन्ति हरिपादरजः प्रसक्ता अन्ये विद्वन्ति न सुखं क्षिल नैरपेक्ष्यम् ॥
भक्ताभियो न विदितः पुरुषोत्तम्य शम्भुविद्विर्वच रमा न च रैहिणेयः ।
भक्ताननुव्रजति भक्तनिवद्वचित्ताइचूलामणिः सकललोकजनस्य कृष्णः ॥
गच्छज्ञिजं जनमनु प्रपुनाति लोकानावेदयन् हरिजने स्वरूपं महात्मा ।
तस्मादतीव भजता मगवान् मुकुन्दो मुकिं ददाति न करापि मुभक्तियोगम् ॥

(गर्ग०, विश्वजित० १४ । १४—३९)

तब उसने महात्मा प्रद्युम्नको पर्यास भेट दी ॥ १-२ ॥

उडीश-डामर (उडीसा) देशके राजा महाबली बृहद्धानुने प्रद्युम्नको भेट नहीं दी । वह अपने बलके अभिमानसे सत्त रहता था । प्रद्युम्नने जाम्बवती-कुमार वीरवर साम्बको उसे बशमें करनेके लिये भेजा । साम्ब सूर्यतुत्स्य तेजस्वी रथपर आरुढ़ हो, धनुष द्वारमें अकेले ही गये । नरेश्वर ! उन्होंने बाण-समूहोंसे डामर नगरको उसी प्रकार आन्ध्रादित भर दिया, जैसे मेघ तुपार-राशिसे किसी पवनको चारों ओरसे ढक देता है । इन प्रकार धर्षित एवं पराजित होकर डामराधीशने तत्काल हाथ जोड़ लिये और महात्मा प्रद्युम्नको नमस्कार करके भेट अर्पित की ॥ ३-६ ॥

तत्पश्चात् वज्रदेशके अधिपति मदमत्त एव वंश राजा वीरधन्वा एव, अक्षौहिणी सेनाके साथ युद्धके लिये यादव-सेनाके सम्मुख आये । वे वज्र बलवान् थे । यादवोंना औरसे धीर्घरिके पुथ चन्द्रभानुने प्रद्युम्नके देखते-देखते वीरधन्वाकी उस सेनाको बाणोद्वारा मिशताना भेदन कर दिया, जैसे कोई कटु वचनोंद्वारा मिशताना भेदन कर दे । उनके बाणोंमें विर्दाण हुए हाथियोंके मस्तकमें बमकते हुए भोती भूमिपर इस प्रकार गिरने लगे, मानो रातमें आकाशमें तारे विलर रहे हों । अनेक रथों वीर धराशारी हो गये । हाथी-योद्ध और पैदल मैनिक उनके बाणोंमें मस्तक कट जानेके कारण कुम्हड़ेके टुकड़ों जैसे इधर उधर गिरे दिवारी देते थे । क्षणभरमें वीरधन्वाकी सेना रक्तकी नदाके हरमें परिणत हो गयी, जो मनस्यों वीरोंका हर्ष बढ़ाता और डरपोकोवा भयभीत करती थी ॥ ७-११ ॥

कटे हुए मस्तक और धड़ विरोट, कुण्डल, केयूर, कंगन और अच्छ शङ्कोरहित दौड़ रहे थे । उनके कारण वहाँकी भूमि महामारी सी प्रतीत होती थी । कुम्हार, उन्माद, वेताल, भैरव तथा बहाराक्षस वहे वेगमें आकर शंकरजीके गलेकी मुण्डगाला यननेके लिये बहापर गिरे हुए मस्तकोंको उठा लेते थे । इस तरह जब सारी सेना मार गिरायी गयी, तब वीरधन्वा सामने आये, उन्होंने तुरंत ही वज्र-सरासी गदामें चन्द्रभानुपर चोट की । उस गदाके भारी प्रहारमें श्रीकृष्णकुमार चन्द्रभानु विनलित नहीं हुए । उन्होंने गदा लेकर तत्काल वीरधन्वाकी छातीपर दे मारी । उस गदाके प्रहारसे पीड़ित एवं मूर्छित हो मुँहसे रक्त बमन

करते हुए वीरधन्वा कटे हुए बृहदकी भौति भूतलम्पर गिर पड़े । दो घर्षमें उनको फिर चेतना हुई, तब उन वज्र-देशके नरेशने महात्मा प्रद्युम्नकी शरण ली ॥ १२-१७ ॥

राजन् ! जब भेट देकर वीरधन्वा अपने नगरको चले गये, तब अमित-पराक्रमी प्रद्युम्न ब्रह्मपुत्र नद पार करके असम देशमें गये । वहोंके राजा विष्वको पकड़कर यादवेश्वर प्रद्युम्नने भेट ली और यादवोंके साथ कामरूप देशमें गये । कामरूप देशके राजा पुण्ड्र इन्द्रजालकी विद्या (जादू) में वहे निपुण थे । वे अपनी मेनाके साथ प्रद्युम्नके सामने युद्धके लिये निकले । उस समय असमियों और यादवोंमें घोर युद्ध हुआ । बाण, कुठार, परिधि, शूल, खड्ग, शृष्टि तथा शक्तियोंसे प्रहार किया गया । मैथिलेश्वर ! तदनन्तर राजा पुण्ड्रने पिशाच, नाग तथा गधारीकी माया प्रकट की; फिर तो सब और गुहाक, गन्धर्व तथा कन्चे मास चन्द्रनेवाले पिशाच रणभूमिमें दौड़ने तथा यारंवर कोटि त्रोटि अङ्गारोंकी त्रुष्णि करने लगे । एक ही क्षणमें यादवोंकी मेनार शुँहसे विष बमन करने और फुकारते हुए सर्प टूट पड़े । गधेपर बैठे हुए टेढ़े मेढ़े दौत और लगलगाना हुई जीभवाले भयंकर राक्षस युद्धमें मनुष्योंको चबाते तथा भागते दिवार्या देने लगे । मिहके समान मुखवाले यक्ष तथा अक्षमुख किनर हाथोंमें शूल लिये 'मारो-काटो' वहते हुए इधर-उधर विनारने लगे । क्षणभरमें सारा आकाश मेयांकी घटासे आन्ध्रादित हो गया । राजन् ! बायुके बेगमें उड़ी हुई धूलके कारण सब और अन्धकार छा गया । भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरभेन तथा दशाह त्रेताके योद्धा उम महायुद्धमें भयभीत हो गये । यदुश्रेष्ठ 'वारोंनं अपने अन्ध शब्द नीचे डाल दिये ॥ १८-२८ ॥

मैथिल ! तब इस भयके निवारणका उपाय जाननेवाले श्रीपृष्णकुमार प्रद्युम्नने विताके दिये हुए धनुषको हाथमें लेकर बाणोंद्वारा सात्त्विक महाविद्याका प्रयोग किया । फिर जैसे सूर्य अपनी किरणोंमें कुहासे तथा बादलोंको छिन्न-भिन्न कर डालते हैं, उसी प्रकार प्रद्युम्नने बाणोंद्वारा पिशाचों, नागों, यक्षों, राक्षसों तथा गन्धवोंके घने अन्धकारको नष्ट कर दिया । जैसे इवा कमलको उड़ाकर पृथ्वीपर फेंक देती है, उसी प्रकार प्रद्युम्नने बाणोंद्वारा रथ और वाहनशहित शत्रु राजा पुण्ड्रको दो घडीतक आकाशमें धुमाकर रणभूमिमें पटक दिया । राजाकी मूर्छा दूर होनेपर वे पराजित हो

प्रशुम्नकी शरणमें गये और तत्काल भेटके रूपमें एक लाल बोडे और दस हजार हाथी देकर उन्होंने श्रीकृष्णकुमारको प्रणाम किया। वहाँसे अपनी सेनाद्वारा शोणनद और विपाशा (व्यास) नदी पार करते हुए यदुकुलनन्दन धनुर्धर वीर प्रशुम्न

केक्य देशमें आ पहुँचे। केक्य देशके राजा महाचली धृतकेतु बसुदेवका बहिन शाशात् श्रुतकीर्तिके महान् पति थे। उन्होंने यादवोंसहित प्रशुम्नका बड़े भक्ति-भावसे पूजन किया। राजन् ! वे श्रीकृष्णके प्रभावको जानते थे॥ २९-३५ ॥

इस प्रकाश श्रीगर्भ-संहितामें विश्वजित्स्तुप्तके अन्तर्गत नारद वहुलाल-संवादमें 'केक्य देशपर विजय' नामक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

सोलहवाँ अध्याय

मिथिलाके राजा धृतिद्वारा ब्रह्मचारीके रूपमें पधारे हुए प्रशुम्नका पूजन; उन दोनोंका शुभ संवाद; प्रशुम्नका राजाको प्रत्यक्ष दर्शन दे, उनसे पूजित हो शिविरमें जाना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! वहाँसे विजय-हुन्दुभि बजवाते हुए यदुनन्दन प्रशुम्न तुम्हारे मुख-सम्पन्न मिथिला देशमें आये। कल्याशोभित अत्यन्त ऊँचे स्वर्णमय सौध-शिखरमें युक्त मिथिलापुरीको दूरसे देखकर प्रशुम्नने उद्घवमें पूछा ॥ १-२ ॥

प्रशुम्न बोले—मन्त्रिप्रवर ! इस समय यह किसकी राजधानी मंगी दृष्टिमें आ रही है, जो वहुसंख्यक महलोंसे भोगवती पुराका भौति शोभा पाती है ? ॥ ३ ॥

उद्घवने कहा—मानद ! यह राजा जनकका पुरा मिथिला है। इस समय यहाँ मिथिलानरेश महाभागवत विदान् धृति रहते हैं। वे समस्त धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हैं। श्रीकृष्ण उनके इष्टदेव हैं और वे स्वयं भी श्रीहरिको यहुत प्रिय हैं। उनके पुत्रका नाम वहुलाश है, जो बचपनमें ही भगवानकी भक्ति करनेवाला है। उसे दर्शन देनेके लिये साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधारेंगे। राजकुमार वहुलाश तथा ब्राह्मण श्रुतदेवको द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्ण बहुत ही याद किया करते हैं। प्रभो ! इन्हें देवेन्द्र भी नहीं जीत सकते, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या; क्योंकि धृतिने अपनी परा भक्तिसे श्रीकृष्णको वशमें कर लिया है ॥ ४-७३ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णकुमार प्रशुम्न उद्घवजीको अपना शिष्य बनाकर उनके साथ राजा धृतिका दर्शन करनेके लिये आये। उद्घव-सहित प्रशुम्नने राजाकी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिये ही मिथिलापुरीको देखा। वहाँके सभी वीर कबच और शस्त्र भारण करके माला और तिळकसे सुशोभित थे। वे सब-के-सब

मालाद्वारा श्रीकृष्ण-नामका जप करते थे। मिथिलाके लोगोंके द्वार-द्वारपर श्रीहरिके नाम लिखे थे और श्रीकृष्णके सुन्दर-सुन्दर चित्र अঙ्कित थे। मानद ! वहाँ शरोका प्रत्येक दीवारपर गदा, पद्म, दसो अवतारके चित्र और शङ्ख, चक्र अङ्कित थे। घर-घरके ओंगानमें तुलसीके मन्दिर दिलायी देते थे ॥ ८-१२३ ॥

इस तरह मिथिलाके महलोंको देखते हुए उन्होंने वहाँके लोगोंपर भी दृष्टिपात किया, जो सब-के-सब माला-तिल-धारी भगवद्भक्त थे। उन्होंने केसर अथवा युद्धुमके वारह-वारह तिलक लगा रखते थे। वहाँके ब्राह्मण गोपाचन्दनकी मुदाओंमें चर्चित, शान्तस्वरूप तथा ऊर्ध्वगुण्डधारी थे। उनके अङ्गोंपर हरिमन्दिरके चित्र अङ्कित थे। ललाटमें गदाकी मुद्रा, सिरपर हरिनाम और दोनों भुजाओंमें चक्र, शङ्ख, पद्म, कूर्म और मत्स्य अङ्कित थे। किंतु ही लोगोंने भस्तकपर धनुष और बाणके चित्र तथा हृदयमें नन्दक नामक ल्लहर, मुखल और छलके चिह्न धारण कर रखते थे ॥ १३-१७ ॥

राजन् ! तदनन्तर प्रशुम्नने देखा—वहाँकी गर्ला-गर्लामें कुछ मनुष्य भागवत सुन रहे हैं। दूसरे लोग हरिवंश और महाभारत नामक इतिहास अवगत कर रहे हैं। कुछ लोग सनकुमारसंहिता, वासिष्ठसंहिता, याज्ञवल्क्यसंहिता, परशारसंहिता, गर्गसंहिता, पौलस्त्य-संहिता और धर्मसंहिता आदिका गठ कर रहे हैं। ब्रह्म-पुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, लिङ्गपुराण, गरुडपुराण, नारदायपुराण, भगवत्पुराण, अग्निपुराण, स्कन्दपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैरतपुराण, वामनपुराण,

मार्कण्डेयपुराण, बाराहपुराण, भस्यपुराण, कृष्णपुराण तथा ब्रह्माण्डपुराण—इन सब पुराणोंको गली-गलीमें, घर-घरमें वहाँके सब लोग सुनते थे। कुछ लोग श्रीरामचरणमूर्तमें पूर्ण वासीकिं-के महाकाव्य रामायणका पाठ करते थे। कुछ लोग स्मृतियोंके और कुछ ब्राह्मण वेदव्रीके स्वाध्यायमें लो थे। कुछ लोग मङ्गलधाम बैणाव यशका अनुष्ठान करते थे। वितने ही मनुष्य राधाकृष्ण, कृष्ण-कृष्ण आदि नामोंका बारंबार कीर्तन करते थे। कुछ लोग हरिकीर्तनमें तत्पर रहकर नाचते और गाते थे। वहाँके प्रत्येक मन्दिरमें मूदङ्ग, ताळ, झांस और बीणा आदि मनोहर वाद्योंके साथ लोगोंद्वारा किया जानेवाला हरिकीर्तन सुनायी पड़ता था। राजन् ! मिथिलाके घर-घरमें वहाँके निवासी प्रेमलक्षणा नवधार्भक्ति करते थे॥१८—२६॥

इस प्रकार नगरीका दर्शन करके भगवान् प्रद्युम्न हरिने राजद्वारपर पहुँचकर शीघ्र ही मैथिलनरेशका दर्शन किया। मैथिलेशकी सभामें वेदव्यास, शुक्रमुनि, याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ, गौतम, मैं और शूद्रस्पति बैठे थे। दूसरे भी धर्मके वक्ता। तथा हरिनिष्ठ मुनि वहाँ शूर्तिमान् वेदका भौति हथर-उथर बैठे दिखायी देते थे। नरेश्वर मैथिलेश्वर धृति वहाँ भक्तिभावसे नतमस्तक होकर बलदेवजीकी चरणपादुकार्णी विधिवत् पूजा कर रहे थे। वे श्रीकृष्ण और बलदेवके मुक्तिदायक नामोंका जप भी करते चाते थे। दिव्यसहित ब्रह्मचारीको आया देख राजा-ने उठकर नमस्कार किया। उनकी पाश आदि उपचारोंमें विधिवत् पूजा करके मैथिलेश्वर राजा धृति दोनों हाथ जोड़कर उनके आगे लट्ठे हो गये॥२७—३२॥

जनकने कहा—भगवन् ! आपके पदार्पणमें आज मेरा जन्म सफल हो गया, मेरा राज-भवन शुद्ध एवं परमोऽस्त्रल हो गया, देवता, शूष्मि और पितर- सब संतुष्ट हो गये। भगवन् ! आप-जैसे निर्प्रान्त और समदर्शी सामु भूतलपर दीनजनोंका कल्याण करनेके लिये ही विचरते हैं॥३३-३४॥

ब्रह्मचारी बोले—राजसिंह ! आप धन्य हैं, आपकी यह मिथिलापुरी धन्य है तथा विष्णु-भक्तिसे भरपूर आपकी सारी प्रजा भी धन्य है॥३५॥

जनकने कहा—प्रभो ! न तो यह नगरी मेरी है, न प्रजा मेरी है और न यह तथा धन-धान्य मेरे हैं। जी, पुत्र और पौत्रादि मेरे पास जो कुछ है, वह सब भगवान् श्रीकृष्णका ही है। साक्षात् परिष्णूतम भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं असंख्य

ब्रह्माण्डोंके अधिपति होकर गोलोकधाममें विराजते हैं। वे पुरुषोत्तम एक होकर भी स्वयं ही वासुदेव, संकर्षण, प्रबुद्ध और अनिष्ट—इन चार व्यूहोंके रूपमें भूतलपर प्रकट हुए हैं। महामुने ब्रह्मन् ! शरीर, मन, वाणी, दुष्कृति अथवा समस्त इन्द्रियोद्वारा मैंने जो भी पुण्यकर्म किया है, वह सब भगवान् श्रीकृष्णको समर्पित है॥३६-३९॥

ब्रह्मचारीने कहा—महाभाग, विष्णुभक्तशिरोमणे, विदेहराज ! तुम्हारी भक्तिमें सतुष्ट हो भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हें सायुज्य मोक्ष प्रदान करेंगे॥४०॥

जनक बोले—ब्रह्मन् ! मैं आप-जैसे श्रीकृष्णभक्त महामात्रोंका दास हूँ। मैंने अपने मनमें किसी हेतु अथवा कामनाको स्थान नहीं दिया है; अतः मैं एकत्व या सायुज्य-रूपा मुक्ति नहीं पाना चाहता॥४१॥

ब्रह्मचारीने कहा—राजन् ! तुम् हेतुरहित होकर अहेतुकी भक्ति करते हो, अतः निर्गुण भक्ति-भावके कारण तुम प्रेमके लक्षणोंसे सम्पन्न हो। साक्षात् भगवान् प्रद्युम्न दिविजयके लिये निर्जले हैं। वे आपके घरपर क्यों नहीं आये—इस यात्राको लेकर मेरे मनमें महान् संदेह हो गया है॥४२-४३॥

जनक बोले—भगवान् प्रद्युम्न साक्षात् अन्तर्यामी स्वयं श्रीराम हैं। वे सदा, सर्वत्र और सबव्यापी हैं। पिर बताइये तो सही, क्या वे यहाँ नहीं हैं ?॥४४॥

ब्रह्मचारीने कहा—यदि शानदृष्टिसे भी तुम श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नको यहाँ निरन्तर स्थित मानते हो तो दिव्यदृष्टियाले प्रह्लादकी भौति तुम उनका यहाँ प्रत्यक्ष दर्शन कराओ॥४५॥

श्रीनारदजी कहते हैं—बहुलाश्व ! यह सुनकर महाभागवत राजा धृतिने अपने मुखपर अश्रुधारा बहाते हुए गदूगद वार्णीमें कहा॥४६॥

जनक बोले—यदि मेरेद्वारा भगवान् श्रीहरिकी इस भूतलपर अहेतुकी भक्ति की गयी है तो श्रीहरिके पुत्र प्रद्युम्न मेरे सामने प्रकट हो जायें। यदि मैं श्रीकृष्ण-भक्तोंका दास होऊँ, यदि मुझपर उनकी कृपा हो और यदि सर्वत्र मेरी श्रीकृष्णबुद्धि हो तो मेरा यह मनोरथ पूर्ण हो जाय॥४७-४८॥

नारदजी कहते हैं—बहुलाश्व ! उनके इतना कहते हीं श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न तत्काल ब्रह्मचारीका रूप छोड़कर

गवरे देवने देवते अपने साक्षात् साम्प्रदे प्रदृढ़ हो गये। हरिमनिनिधि शिथि उद्धव भां गद्युद्ध हो गये। मेघोंके समान स्याम कान्ति, प्रकुल्ल कमलदलके समान विशाल नेत्र, लंबी लंबी भुजाएँ, जगत्के लोगोंका मन हर लेनेवाला रूप सबके सामने प्रकट हो गया। उनके श्रीअङ्गोंपर पीताम्बर शोभा दे रहा था। उनका शोभासम्बन्ध मुन्हारविन्द-...ल नीली शुश्मगली अलकावलियोंमें अलकृत था। दिविर शृनुके बाल्यादेके समान कान्तिमान विरीट, दिव्य चुण्डल, करधनी और वाजुद आदिंगे उनका दिव्य विप्रह उद्भासित हो रहा था। श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नको इस प्रकार देवकर राजा भृतिने उनको हाथ जोड़कर भाष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥४९-५१॥

जनक बोल—भूमन्! मेरा सौभाग्य महान् एव अत्यन्त

इस प्रकार श्रीगर्म-नंहितामें विश्वजितस्तप्तके अन्तर्गत नारद-बहुलादव-संवादमें 'जनकका उपर्याप्त' नामक सौलहना अस्याम पूर्ण हुआ ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

मगधदेशपर यादवोंकी विजय तथा मगधराज जरासंधकी पराजय

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर मत्स्यके चिह्नसे सुशोभित घजा फहराते हुए प्रद्युम्न मगधदेशपर विजय पानेके लिये अपनी सेनाके साथ उरंत गिरिवज्रकी ओर चल दिये। श्रोहरके पुत्र प्रद्युम्नको, विशेषतः दिविवजयके लिये, आया सुगर मगधगज जरासंधको बड़ा क्रौघ हुआ ॥ १-२ ॥

जरासंध बोला—समस्त यादव अत्यन्त तुच्छ और युद्धम डरनेवाले कायर हैं। वे ही आज पृथ्वीपर विजय पानेके लिये निकले हैं! जान पड़ता है, उनकी बुढ़ि भारी गर्भा दूर। इस दुर्लभा प्रद्युम्नका पिता माधव ग्यं में भयमें अपनी पुरी मथुरा छोड़कर मनुद्रकी शरणमें जा दिया है। प्रवर्णगिरिर मेंने वल्लाम और कृष्णको वल्लभूर्म भस्स कर दिया था, किन्तु ये छल्लूर्वक वृषभि भाग निकले और द्वारामें जाकर रहने ला। अब मैं म्यं कुशस्थलीपर चढ़ाई करूँगा और उन दोनों भाइयोंगो उत्तरसंसाहित बोध लाऊँगा। समझते थिये हुई इस पृथ्वीको यादवोंमें शून्य कर दूँगा ॥ २-६ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! यो कहकर बलवान्

धन्य है। अद्यो! ग्राज आपने नहीं अपने स्वरूप का साक्षात् दर्शन कराया। आज मेरा माहमा कथायू-कुमार प्रह्लादके समान नहीं गयी। आज मैं अपने कुलभूति शृतार्थ हो गया ॥ ५२ ॥

श्रीप्रथमनं कहा—न्यूपथेष्ट! तुम धन्य हो, मेरे प्रभावको जानेवाले भक्त हो। मैं इस समय तुम्हारे भक्तेभावकी परीक्षाके लिये ही यहाँ आया था। मैथिलेश्वर। आज ही तुम्हें मेरा साल्लय प्राप्त हो जाय और इस लोकमें तुम्हारे वल, आयुं और कार्तिका अत्यन्त विस्तार हो ॥ ५३-५४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! तुम्हारे पिता धृतिसे धूजिन हो भक्तवत्सल भगवान् प्रद्युम्न वहाँ आये हुए मंत्रोंके सामने ही अपने उत्तिरकी प्रेरणा चले गये ॥ ५५ ॥

राजा जरासंध तेर्वेस अक्षोहिणीं सेनाके साथ गिरिवज्र नगरमें बाहर निकला। मगधराजके साथ हाथियोंकी विशाल सेना थी। उन हाथियोंके मुखपर गोमूत्र, सिंहदूर-गदि एवं अस्त्रीदाया पत्र-रचना की गयी थी। उनके गण्डम्थलोंमें मदकी धारा बह रही थी। वे हाथा घरावत-कुलमें उत्पन्न होनेके कारण चार दोंतोंसे सुगोमेत थे और सौँडकी फुफकारामें बहुसंख्यक वृक्षोंको तोड़कर छेंकते नलते थे। उन गजराजोंसे मगधराजकी बेसी ही शोभा हो रहा था, जैसे मेघोंमें भगवान् इन्द्रजी होता है। राजन्! देवताओंके विभानोंके भमान आकाशवाले अगणित स्थ उत्पन्नके साथ चल रहे थे, जिनके ऊपर घ्वज फहराते थे, सारस बैठे थे, चौंबर हुल २० थे और चश्चल पांहयोंसे परं-भरं घ्वन प्रकट हो रहा था। बायुके समान वेगशाली तथा विचित्र विचित्र वर्णवले मदमत अश्व सुनहरे पट्टे और हार आदिमें सुगोमेत थे। उनकी गिराओ एवं बागडोरोंके ऊपर भागमें चैंबर (कल्प) सुशोभित थे। नव-न धारण इन्हें तगा हाथोंमें ढाल-तल्लवार एवं धगुर लिये वीरजन विद्याधरोंके समान शोभा पाते थे। उन सबके

साथ महाबली मागधराज युद्ध के लिये निकला। दुन्दुभियोंकी छुंकारें और धनुओंकी टकारोंसे दिशाएँ निनादित हो रही थीं। अरती छोलने लगी और सैनिकोंद्वाग उड़ायी गया घूस से आकाश छा गया। मैथिल ! जरासंधकी वह सेना उमड़ते हुए प्रलय-सागरके समान भवंतकर थी। उसे देखकर समस्त यादव चिस्त हो गये ॥ ७-१४ ॥

मागधराजके उस सैन्य-सागरको देखकर भगवान् प्रशुभ्नने दक्षिणाधर्त शङ्क यजाया और उसीके द्वारा मानो अपने योद्धाओंको अभयदान देते हुए कहा—‘इरो मत ।’ तदनन्तर महाबाहु साम्ब प्रशुभ्नके सामने ही वह अक्षौहिणी सेना लेकर भगवाजके साथ युद्ध करने लगे। उस रणभूमिमें हाथी हाथियोंसे और रथी रथियोंसे ज़ख्मने लगे। मैथिलेवर । धोड़े धोड़ोंसे और पैदल पैदलोंसे गिर गये। मागधों और यादवोंमें देवताओं और दानवोंके समान अद्भुत, रोमाञ्चकरी एवं भयंकर युद्ध होने लगा। कुछ धुक्सवार बीर हाथोंमें भाले लिये इधर-उधर भारकाट मचाते हुए गजारोहियों तथा हाथियोंके कुम्भस्तरोंपर बैठे हुए महायतोंको भी मार गिराते थे। कुछ योद्धा विशुत्के समान दीसिमती शक्तियोंको लेकर बल्युर्वक धनुओंपर फैकते थे। वे शक्तियों कवचधारी शशुओंको भी विद्धीर्ण करके अरतीमें समा जाती थीं। कितने ही बीर रणभूमिमें गरजते हुए रथोंके चक्रके उठा-उठाकर फैकते थे और सैनिकोंके समूहोंको उसी प्रकार छिन्न-भिन्न कर देते थे, जैसे सूर्य कुहातेको नष्ट कर देते हैं। कुछ लोग भिन्निपालों, मुद्रों, कुल्हाकियों, तलवारों, पटियों, छुरों, कटारों, रिहियों तथा सीखे निखिलों (खड़गों) से युद्ध करते थे। तोमरों, गदाओं और बाणोंसे कटकर बीरों, हाथियों और धोड़ोंके मस्तक पृथ्वीपर गिर रहे थे। वहाँ केवल धड़ हाथमें खड़ग लिये संग्राममें दौड़ते हुए वहे भयंकर प्रतीत होते थे और धोड़ों तथा मनुष्योंको भराशयी करते हुए, उछलते थे। बीरोंके ऊपर बीर गिर रहे थे। उनकी भुजाएँ छिन्न-भिन्न हो गयी थीं। कितने ही धोड़े बाणोंसे गद्दन कट जानेके कारण धोड़ोंपर ही गिर पड़ते थे। विश्वाधर और गन्धवंके जातिकी लियों वीरगतिशी प्राप्त हुए योद्धाओंको दिव्य रूपसे आकाशमें पहुँचनेपर उन्हें अपना पति बना लेना चाहती थीं। इसके लिये उन सबोंमें परम्पर महान् वल्ह होने लगता था। नरेश्वर ! कितने ही धर्मिय-धर्मपरायण और वश थीं संग्राममें शोभा पानेवाले योद्धा युद्धमें प्राण दे

देते थे, किन्तु एक पर भी पीछे नहीं हटते थे। वे सूर्य-मण्डलका भेदन करके परमपदको प्राप्त हो जाते थे और विश्वमारन्तकमें उसी प्रकार नाचते थे, जैसे मण्डलकार भूमिपर नट ॥ १५-२८ ॥

इस प्रकार साम्बके महाबार सैनिकोंने मागध-सेनाको नैद ढाला। वह सेना उनके देखते-देखते उसी प्रकार भाग चली, जैसे भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तिसे अशुभ नष्ट हो जाता है। किन्हींके कवच कट गये थे तो किन्हींके धनुष; कितने ही सैनिक खड़ग और रिहियोंको हाथसे फेंककर पीठ दिलाते हुए भाग रहे थे। अपनी सेनाको पलायन करती देख मागधराज धनुषकी ठंकार करता हुआ वहाँ आया और सबको अभयदान देते हुए बोला—‘इरो मत ।’ जरासंधने धनुषकी प्रत्याद्वारा अपनी सेनाको आगे बढ़नेकी उसी प्रकार प्रेरणा दी, जैसे कोई महावत अकुशमे हाथीको हॉक रहा हो। इसी समय साम्ब भी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने धनुषमें छूटे हुए दस बाणोंद्वारा महाबली मागधराजको समरभूमिमें धायल कर दिया। फिर जाम्बवतीकुमार साम्बने उसके धनुषकी प्रत्याद्वारा, जो सागरके उचाल तरंगोंके भयानक संघर्षकी भाँति शब्द करनेवाली थी, दस बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर ढाला। तदनन्तर महाबली जरासंधने हुसरा धनुष हाथमें लेकर दस अग्रगामी बाणोंद्वारा साम्बके धनुषको काट ढाला। जरापुत्र मागधेन्द्रने चार बाणोंसे चारों धोड़ोंको, दोसे घजको, तीनसे रथको और एकसे सारथियोंको मार ढाला। धनुषके कट जानेपर तथा धोड़ों और सारथियोंके मारे जानेपर रथहीन हुए महाबली साम्ब दूसरे रथपर नढ़ गये और अत्यन्त उप्र धनुषपर विधिपूर्वक प्रत्यक्षा चढ़ाकर उन्होंने सौ बाणोंद्वारा जरासंधके रथको चूर-चूर कर दिया। उस समय जरासंध रथ छोड़कर वहे वैगमे हाथीपर चढ़ गया। उस हाथीपर मागधेन्द्रकी बैसी ही शोभा हुई, जैसे ऐरावतपर चढ़े हुए इन्द्रकी होती है ॥ २९-३१ ॥

जरासंधके मनमें अत्यन्त कोष भरा हुआ था। उसने साम्बपर एक मतवाले हाथीको बढ़ाया, जिसके अङ्ग-अङ्गमें विचित्र पत्र रचना की गयी थी तथा जो देखनेमें काल, अन्तक और यमके समान भयंकर था। उस नागराजने अपनी दूँझसे रथसहित साम्ब की उठाकर चालकर करते हुए नौ योजन दूर फैक दिया। मैथिल ! उस समय साम्बकी सेनामें बड़ा भारी कोलाहल मच गया। फिर तो प्रशुभ्नके पाससे गह वेगपूर्वक उसी प्रकार उसकी सेनाके सामने आये, जैसे

सूर्य अन्धकारका नाश करते हुए उदयावल्से उदित हुए हैं। जरासंधके उस हाथीको बहुदेवनन्दन गदने मुक्केसे इस प्रकार मारा, जैसे इन्हने ऊँचे पर्वतपर बज्रसे प्रहार किया हो। उनके मुहिकप्रहारसे व्याकुल होकर वह हाथी भरतीपर गिर पड़ा। राजन्। वह उसी समय मृत्युका आस बन गया। वह अदूशुत-सी बात हुई। तब जरासंधने उठकर बड़े वेगसे गदा उठायी और उसे सहसा गदपर दे मारी। उस समय उस बलवान् बीरने बनके समान गर्जना की, किंतु उसके प्रहारसे गद समराङ्गणसे तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने तुरंत ही लाल भारकी बनी हुई गदा लेकर जरासंध-पर प्रहार किया और सिंहके समान गर्जना की। राजन्। उनके उस प्रहारसे व्यथित हो बलवान् बृहद्रथकुमार जरासंधने उठकर गदासहित गदको पकड़ लिया और बड़े रोषके साथ आकाशमें सौ योजन दूर केंक दिया। तब महाबली गदने भी जरासंधको उठाकर बुमाया और उसे आकाशमें एक सहस्र योजन दूर फेंक दिया। राजा मागध आकाशसे विन्यवर्तपर गिर पड़ा ॥ ४०-५० ॥

महाबली जरासंधने पुनः उठकर गदके साथ युद्ध आरम्भ किया। उसी समय साम्ब आ पहुँचे। उन्होंने मागधेश्वर जरासंधको पकड़कर पृथ्वीपर उसी प्रकार पटक दिया, जैसे एक सिंह दूसरे सिंहको बल्यूर्बक पछाड़ दे। तब मगधके राजाने एक मुक्केसे साम्बको और दूसरे मुक्केसे गदको मारा और समराङ्गणमें बड़े जोरसे गर्जना की। उसके मुक्केकी मारसे व्यथित हो गद और साम्ब दोनों मूर्छित हो गये। उस समय युद्धभूमिमें तत्काल ही महान् हाहाकार मन्त्र गया। फिर तो यादवराज प्रद्युम्न ऊँची पताकावाले रथके द्वारा एक अक्षौहिणी सेनाके साथ वहाँ पहुँचे और 'डरो मत' यों कहकर भनको अभयदान दिया। उन्हे देख जरासंधने लाल भारकी बनी हुई गदा हाथमें ली और जैसे

इस प्रकार श्रीगर्ग-सहितमें विश्वजितखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाल-संबादमें 'मागध-विजय' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अठारहवाँ अध्याय

गया, गोमती, सरयू एवं गङ्गाके तटवर्ती प्रदेश, काशी, प्रयाग एवं विन्ध्यदेशमें यादव-सेनाकी यात्रा; श्रीकृष्णके अठारह महारथी पुत्रोंका हस्तलाघव तथा विवाह; मधुरा, शूरसेन जनपदों एवं नन्द-गोदुलमें प्रद्युम्न आदिका समादर

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर श्रीकृष्ण-कुमार प्रद्युम्नने सैनिकोंसहित गयामें जाकर कल्युनदीमें स्नान किया। फिर अन्य देशोंको जीतनेके लिये बढ़ाये

जंगलमें दावानल फैल जाता है, उसी प्रकार उसने यादव-सेनामें प्रवेश किया। राजेन्द्र! उसने बीरोंसहित रथों, हाथियों तथा बहुत-से सिंधी घोड़ोंको इस तरह मार गिराया, मानो किसी महान् गजराजने बहुत-से कमलोंको उखाड़ फेंका हो। जरासंधकी जो सेना भाग गयी थी, वह भी सारी-की-सारी लौट आयी। उसने यादव-सेनाको चारों ओरसे वेरकर तीसे बाणोंसे मारना आरम्भ किया। यादवराज प्रद्युम्न उस युद्धमें निर्भय होकर लड़े लो। उन्होंने यारंवार धनुषकी टंकार करते हुए बाणोंद्वारा शत्रुओंको गिराना आरम्भ किया ॥ ५१-५८ ॥

उसी समय यदुपुरीसे बलदेवजी आ पहुँचे। वे समस्त सत्पुरुषोंके देखते-देखते वही प्रकट हो गये। महाबली बलदेवने कुपित होकर मगधराजकी विशाल सेनाको हलके अग्रभागसे झींचकर मुसल्ले मारना आरम्भ किया। उनके द्वारा मारे गये रथ, घोड़े, हाथी और पैदल मस्तक विदीर्ण हो जानेसे सौ योजनतक धरायायी हो गये। वे सब-के-सब कालके गालमें चले गये। उस समय देवताओं और मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ एक साथ बजने लगीं। देवतालोग बलदेवजीके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। यादवोंकी अपनी सेनामें तत्काल जोर-जोरसे जय-जयकार होने लगी। तदनन्तर प्रद्युम्न आदिने निश्चिन्त होकर भगवान् कामपाल (बलदेव) को नमस्कार किया। राजन्। इस प्रकार भक्तवत्सल महाबली भगवान् बलदेव मागधराजको जीतकर द्वारकाको चले गये। जरासंधका बुद्धिमान् पुत्र सहदेव मैट-साम्राज्य लेकर गिरिदुर्गसे निकला और शम्वरारि प्रद्युम्नजीके सामने उपस्थित हुआ। एक अरब घोड़े, दो लाल रथ और साठ इजार हाथी उसने प्रद्युम्नको नमस्कार करके दिये; क्योंकि वह प्रद्युम्नजीके प्रभावको जानता था ॥ ५९-६७ ॥

अगेको प्रस्थान किया। जरासंधको पराजित हुआ सुनकर उस समय अन्य राजा आत्मवद्या भयात् हो प्रद्युम्नकी दरणमें आये और उन सबने उन्हें मैट दी ॥ १-२ ॥

गोपती तथा पुण्यसलिला सरयूके तटपर होते हुए प्रशुभजी गङ्गाके किनारे काशीपुरीमें आये। वहाँ पर्णिंग्राह (विरोधी) काशिराज चिकार खेलनेके लिये गये थे, जो वही पकड़ लिये गये। काशिराजने भी यह सुनकर कि प्रशुभजी सेना विशाल है, उन्हें भेट अर्पित की ॥ ३-४ ॥

राजन् । तत्पञ्चात् यत्कान् प्रशुभ अपने सैनिकोंके साथ कोसल अनपदमें गये और अद्योध्याये निकट नन्दिमाममें उन्होंने अपनी सेनाकी छाबनी ढाल दी। शोभलराज नगनजितने, जो तत्त्वज्ञानी थे, बहुत से घोड़े, हाथी, रथ और महान् धन देकर शम्बरारि प्रशुभका पूजन किया। उत्तर दिनाकं स्वामी दीपतम, नेपालके राजा गज तथा विश्वाला नगराके स्वामी वर्ष्ण—इन सबने उन्हें भेट दी। नैमित्यारण्यके स्वामी वडे भगवद्भक्त और श्रीकृष्णके प्रभावको जानने आए थे। उन्होंने हाथ छोड़कर प्रशुभको बलि अर्पित की। इसके बाद श्रीकृष्णकुमार प्रयाग गये और वहाँ पापनाशिनी विशेषीमें स्नान करके उन्होंने महान् दान किया; उन्होंकि वेतीर्थ-राजके प्रभावको जानते थे। बीस हजार हाथी, दस लाख घोड़े, चार लाख रथ, सोनेकी माला तथा मुनहरे बलोंमें विशृणुत दस अरय गौएँ, दम भार स्वर्ण, एक लाख मोती, दो लाख नवरत्न, दस लाख बछत तथा दो लाख कहमीरी शाल एवं नये कम्बल हरिप्रिय तीर्थराजमें प्रशुभने ब्राह्मणों को दिये ॥ ५-१२६ ॥

मिथिलेश्वर ! काल्प देशका राजा पौष्ट्रह भगवान् श्रीकृष्णका शत्रु था, तथापि उसने भी गङ्गात होनेके कारण श्रीकृष्णकुमारका पूजन किया। पश्चाल और कन्तकुञ्ज देशमें प्रशुभके आतामनकी चात सुनकर वहाँके समस्त नरेश भयभीत हो गये। सबने अपने-अपने दुर्गोंके दरवाजे बंद कर लिये। सब लोग यादवराजमें भयानक हो दुसंगा आश्रय लेकर रहने लगे। किनने ही लोग भाय नहे। विन्ध्यदेशके अधिपति महाबली राजा दीर्घचाहु उत्तरम भास्य करनेके लिये शाम्भवि प्रशुभवी सेनामें नहीं ॥ ६-१६ ॥

दीर्घचाहु खोले—आप सब यादनेन्द्र दीर्घचाहुको लिये आये हैं; अतः मेरा मनोरथ पूर्ण रहीजिये। इसमें मेर चित्तमें सत्तोप होगा। जल्स भी हुए कोनके नरननों बाणमें बेचा जाय, किन्तु एक बूँद भी पाठी न भाँते श्रीर बाण उसमें खड़ा रहे, भरने के नहीं, ऐसा जिन्हें हाथने सूर्ति हो, वह अपने इस इसलाभवना परिचय दे। जो

मेरी इन प्रतिशक्तियों पूर्ण करेंगे, उन्हें मैं अपनी कन्याएँ ब्याह देंगा। आप समस्त यादवेन्द्रगण धनुर्वेदमें कुशल हैं। मैंने भी नारदर्जाके मुद्रसे पहले सुना था कि यादवलोग वडे बलवान् हैं ॥ १७-२० ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! राजा दीर्घचाहुकी बात सुनकर सब लोग विसित हो गये। उनमेंसे धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ प्रशुभजीने भरी सभामें विन्दुदेशके नरेशको आश्वासन देते हुए कहा—‘तथासु (ऐसा ही होगा)’। प्रशुभजीने पृथ्वीपर दो जगह बड़ा-सा बौस गाड़ दिया और उन दोनोंके बीचमें (अरणीकी भाँति) एक रसी तान दी। फिर उस रसीमें समस्त सत्पुरुषोंके देखते-देखते जलसे भरा एक काँचका घड़ा लटका दिया। फिर उन श्रीकृष्ण-कुमारने धनुष उठाया और उसे भली-भाँति देखकर उसकी दोरीपर बाणका संधान किया। वह बाण छूटा और काँचके पात्रको छेदकर बीचमें आधा निर्कल हुआ स्थित हो गया। एक ही ओर मुन और पङ्क दोनों हाषिगोचर होते थे। ऑनके घड़में बँसा हुआ वह बाण बादलमें प्रविष्ट सूर्यकी किरणके समान सुशोभित होता था। वह एक अमृत-सा हस्य था। त्रिकुदाके फलकी भाँति उस पत्रके न तो ढुकड़े हुए, न वह अपने स्थानसे विचलित हुआ; न उसमें कम्पन हुआ और न उससे एक बूँद पानी ही गिरा। विदेशराज ! भगवान् प्रशुभने फिर दूसरे बाणका संधान किया। वह भी पहले बाणका स्थान छोड़कर उस घड़में उसीकी भाँति स्थित हो गया ॥ २१-२६ ॥

तदनन्तर भास्यों भी धनुष लेकर पाँच बाण छोड़े। वे भी कान्च पात्रका भेदन करके उसमें आधे निकले हुए स्थित हो गये। तदनन्तर भास्यकिने भी धनुष लेकर एक ही बाण मारा, फिर उसके देखते-देखते वह काँचका पात्र न्यू-न्यू हो गया। यह देव भगवत् यादव तथा दूसरे-दूसरे भास्य, जो-जोर। इन्होंने लगे और बोले—‘भस-भस, तुम्हीं इस भूतनाशर भरनेवाले अभ्यन्तर समान महान् बाणधारी हो; तुम्हाँरे सामने अर्जुन, भरत तथा श्रीरामनन्दजी भी मात हैं। अथवा तुम त्रिपुरहन्ता कह हो। द्वोण, भास्यम, कर्ण तथा परशुरामजी भी तुमसे हार मान लेंगा’ ॥ २७-३० ॥

तदनन्तर दूसरा पात्र लगानकर धनुर्धरियोंमें श्रेष्ठ अनिदृद्धने उनके नामे जानकर उसे गौरसे देखकर हल्के हाथसे बाण मारा। वह बाण भी उस पात्रका भेदन करके

आशा निकला हुआ उसमें स्थित हो गया। उस पात्रसे पाँच हाथ लगर आकाशमें एक पत्थर लटकाकर दीसिमानने घनुप उठाया और उसपर एक बाणका संधान किया। वह बाण भी पात्रके निचले भागको भेदकर अनिरुद्धथाले बाणको आगे छोड़ता हुआ ऊपरवाले पत्थरसे जा टकराया और फिर वेगसे उस पात्रमें ही आकर स्थित हो गया। तथापि बाणबेशके कारण उस पात्रसे एक बूँद भी पानी नीचे नहीं गिरा। बाण जयतक गया-आया, तबतक भी जब पानीकी एक बूँद नहीं गिरी, तब यह चमत्कार देखकर सब बीर उन्हें बार-बार साझेबाद देने लगे। ३१-३५ ॥

तत्पश्चात् भानुने पात्रको अच्छी तरह देखा-भाला। फिर सबके देखते-देखते नेत्र बंद करके घनुप लेकर दूरसे बाण चलाया। उस बाणने भी उस समय पात्रका भेदन करके उसे अधोमुख कर दिया और फिर तत्काल ही उसका मुख ऊपरकी ओर करके वह उसमें आशा निकला हुआ स्थित हो गया; तब भी बाणके वेगसे एक बूँद भी जल नहीं गिरा और पात्र भी नहीं फूट सका। यह अद्भुत-सी बात हुई। इस प्रकार श्रीकृष्णके जो अठारह महारथी पुत्र थे, उन सबने पात्रका भेदन किया, किंतु जलका स्वाव नहीं हुआ। ३६-३९ ॥

यह हस्तलाघव देखकर बिन्दुदेशके राजा दीर्घवाहु बड़े विस्मित हुए। उन्होंने उनके हाथमें अपनी अठारह

इस प्रकार श्रीराम-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नाशद-बहुलादव-संबादमें बायुर तथा शूरसेन जनपदोंपर

विजयः नामक अठारहवाँ अस्याय पूरा हुआ। १८ ॥

उत्तीर्णवाँ अध्याय

यादव-सेनाका विस्तार; कौरवोंके पास उद्धवका दूतके रूपमें जाकर प्रश्नुमनका संदेश सुनाना; कौरवोंके कदु उत्तरसे रुष्ट यादवोंकी हस्तिनापुरपर चढ़ाई

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्। इसके बाद महाबाहु प्रश्नुमन अपनी सेनाओंके साथ उच्चस्थरसे दुन्दुभिनाद करते हुए बड़े वेगसे कुरुदेशमें गये। यीस योजन लंबी भूमियर उनकी सेनाके शिविर लगे थे। उस छावनी-का विस्तार भी दस योजनमें कम नहीं था। उस सेना-की विस्तृत छावनीमें आने-जानेके लिये पाँच योजन लंबी लड़क थी। वहाँ धनाक्षय वैश्योंने सहस्रों दूकानें लगा-

रकर्ती थीं। रत्नोंके पारखी (जौहरी), वस्त्रोंके व्यवसायी, काँचकी वस्तुओंके निर्माता, वायक (कपड़ा बुनने और सीनेवाले), रँगरेज, कुम्हार, कंदकार (मिश्री आदि बनानेवाले हल्लाई), तूलकार (कपासमेंसे रुई निकालने-वाले), पटकार (बज्रनिर्माण), टङ्कार (तार आदि टाँकेका काम करनेवाले) अथवा 'टङ्क' नामक औजार बनानेवाले, चित्रकार, पत्रकार (कागज बनानेवाले), नाई,

पुष्टि, शशकार, पर्णकार (दोने बनानेवाले), शिव्यी, लक्ष्मीकार (लक्ष्मी), माली, रजक, (छोटी), तेली, नमोली, पत्तयरोपर खुदाई करने या चिन्ह बनानेवाले, भड़नूज़, कान्चनेदी, स्थूल-स्थूल घोटी आदि रसोंका भेदन करने वाले—ये सभी कारीगर वहाँकी सङ्कपर हृषि-गोचर होते थे। कहीं मानुमतीका खेल दिखानेवाले बाजीगर थे, कहीं इन्द्रजाल फैलानेवाले जादूगर। कहीं नठ-दूस्य करते थे तो कहीं दो भालुओंका युद्ध होता था। कहीं उमरु यजा-यजाकर बानरोंके खेल दिखाये जाते थे, कहीं बारह प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित बाराङ्गनाओंके दूस्यका कार्यक्रम चल रहा था। वे बार बहुएँ अपने दिव्य सोलह शूलारोंसे अप्सराओंका भी मन हर लेती थीं। यथापि कौरवोंके लिये यादवोंकी सेना अपने भाई बन्धु-ओंही ही सेना थी; तथापि हस्तिनापुरमें उसका वहाँ भारी आलह फैल गया। वहाँके लोग वहे वेगसे इधर उधर लिखकर लो—वे ध्वनकर कहीं अन्यत्र चले जानेकी चेष्टामें ला गये। सब लोग अपने घरोंमें अरणाला (यिलाई, साँकल एवं ताले) लगाकर भागने लगे। धर-धरमें और जन-जनमें वहाँ भारी कोलाहल होने लगा—सबत्र इल्लचल मच गयी। शौर्य, पराक्रम और बलसे सम्पन्न कौरेय चक्रवर्ती राजा थे। वे समुद्र-तककी पृथ्वीके अधिपति थे, तथापि यादवोंकी विशाल सेना देखकर वे भी अस्तन्त शक्ति हो गये ॥१-१४॥

प्रद्युम्ने बुद्धिमत्तोमें भेष्ट उद्धवको दूत बनाकर भेजा। वे कौरवेन्द्र-नगर हस्तिनापुरमें जान्त्र धृतराष्ट्रमें भिले। महाराज धृतराष्ट्रके राजमहलका आँगन मदर्हा धारा बहानेवाले तथा कस्त्री और कुदुमसे विभूषित गण्डस्थलोंत सुदोभित हायियोंकी सिन्दूर रक्षित तैरङ्गपर बैठने और उनके कानोंसे प्रसाकित होनेवाले भ्रमरोंसे मण्डित था। हस्तिनापुरके स्वामी राजाभिराज धृतराष्ट्रकी सेवामें भीष्म, कर्ण, द्रोण, शत्य, कृपाचार्य, भूरित्रा, वाहूलीक, धौम्य, शकुनि, संजय, दुश्यालग, विनुर, लक्षण, दुर्योधन, अश्वत्थामा, सोमदत्त तथा श्रीयक्षेत्र उपस्थित थे। वे सब के-सब लोनेके लिहातनपर इवेत छत्र और चंक्रमें सुग्रेमित होकर बैठे थे। उसी समय वहाँ पर्णनगर उद्धवने महाराजों प्रणाम किया और हाथ जोड़कर भजने कहा ॥ १५-१८ ॥

उद्धव बोले—राजेन्द्र शिरोमणे ! प्रद्युम्नने आपके पास मेरे द्वारा जो संदेश कहलाया है, उसे सुनिये—‘महावली यादवगञ्ज उपरेक्षन समस्त भूपतियोंके भी स्वामी हैं। वे समस्त राजाओंको जीतकर राजसूय यश करेंगे। उन्हींके भेजे हुए रक्षितानन्दन प्रद्युम्न सेनाके साथ जम्बूदीपके अल्यन्त उद्भट बीर नरेशोंको जीतनेके लिये निकले हैं। वे नेदिराज शिशुपाल, शाल्व, जरासंध तथा दन्तवक आदि भूपालोंपर विजय पाकर यहाँतक आ पहुँचे हैं। आप उन्हें भेट दीजिये। यादव और कौरव एक दूसरेमें भाई बन्धु हैं। इन बन्धुओंमें एकता बनी रहे, इसके लिये आपको भेट और उपहार-सामग्री देनी ही चाहिये। ऐसा करनेमें कौरवों-वृष्णिवंशियोंमें कलह नहीं होगा। यदि आप भेट नहीं देंगे तो युद्ध अनिवार्य हो जायगा।’ यह उनकी कहीं हुई वात है, जिसे मैंने आपके सम्मुख प्रस्तुत किया है। महाराज ! यदि मुझसे कोई धृष्टिका हुई हो तो उसे क्षमा कीजिये, दूत सर्वथा निर्दोष होता है। अब आप जो उत्तर दें, उसे मैं वहाँ जाकर सुना दूँगा ॥ १९-२३ ॥

नारदजी कहने हैं—राजन् ! उद्धवका वह कथन सुनकर समस्त कौरव क्रोधमें तमतमा उठे। वे अपने शौर्य और पराक्रमके मद्देन उन्मत्त थे। उनके होठ फङ्कने लगे और वे रोले ॥ २४ ॥

कौरवोंने कहा—अहो ! काली गति हुल्कृष्ण है, यह जगत् विविध है, दुर्बल भियार भी वनमें सिंहके ऊपर धावा दोलन लगे हैं। जिन्हें हमारे सम्बन्धमें ही प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है, जिनको हमलोगोंने ही राज्य भिहासन दिया है, वे ही यादव अपने दाता ओंके प्रतिकूल उर्मा प्राप्त हिंसा उठा रहे हैं, जेंगे साप दूध पिलानेवाले दाता ओंको ही काट लेते हैं। समस्त वृष्णिवंशी सदाके डरपोक हैं, वे युद्धका अवसर आते ही व्याकुलचित हो जाते हैं; तथापि वे निर्लज्ज आज दम्लोगोपर इकमत उर्मा चले हैं। उपरेक्षनमें वह ही कितना है ! वह अनादीर्घ होकर भी, जम्बूदीपमें निवास करनेवाले समस्त राजाओंको जीतकर, उनमें भेट लेकर गजसूय यश करेगा—यह कितने आश्र्वयकी वात है ! जहाँ भीष्म, कर्ण, द्रोण, दुर्योधन आदि महापराक्रमी बीर बैठे हैं, वहाँ उपा दुर्विदि प्रद्युम्नने तुम्हें मन्त्री बनाकर भेजा है ! अतः हमारा यह कहना है कि यादे तुमलोगोंकी जीवित रहनेकी

इच्छा हो तो अपनी द्वारकापुरीको लैट जाओ। यदि नहीं जाओगे, तो तुम सब लोगोंको आज हम यमलोक भेज देंगे ॥ २५—३० ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! श्रीकृष्णविरोधी कौरवोंका इस प्रकार भाषण सुनकर उद्धवने प्रश्नमनके पास आ, सब कुछ कह सुनाया। कौरवोंकी बात सुनकर धनुर्धरोंमें भेष प्रश्नमनके होठ रोपके मारे फ़हकने लगे। वे शार्ङ्ग घनुप हाथमें लेकर बोले ॥ ३१-३२ ॥

प्रश्नमने कहा—कौरव यथापि हमारे बन्धु हैं, तथापि

इस प्रकार श्रीगण्ड-संहितामें विद्वजित्कृष्णके अन्तर्गत नारद-बहुलाश-संवादमें 'कौरवोंके लिये दूत-प्रेषण' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

ये भद्रसे उन्मत्त हो गये हैं। इसलिये उनकी अपने लोगोंने उनी प्रकार नष्ट कर डालेंगा, जैसे योगी कठोर निष्ठमोद्धारा अपने दैहिक रोगोंको नष्ट कर डालता है। यादवोंके सैन्य-समूहमें जो कोई भी बीर कौरवोंसे भेट दिलवानेका प्रयास नहीं करेगा, वह अपने माता-पिताका और सुत्र नहीं माना जायगा ॥ ३३-३४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! उनी क्षण भोज, ब्रह्मण और अन्धक आदि समान यादव कुपित हो अपनी सेनाओं-के साथ हस्तिनापुरगर जा चढ़े ॥ ३५ ॥

बीसवाँ अध्याय

कौरवोंकी सेनाका युद्धभूमिमें आना; दोनों ओरके सैनिकोंका तुमुल युद्ध
और प्रश्नमनके द्वारा दुर्योधनकी पराजय

नारदजी कहते हैं—राजन् ! उसी समय जिनकी क्रोधाग्नि भड़क उठी थी, वे समस्त कौरव भी अपनी-अपनी सेनाओंके साथ प्रश्नमनका सामना करनेके लिये निकले। रत्नजटित कम्बल (कालीन या श्वल) से अलंकृत और सोनेकी सॉकलोंसे सुशोभित साठ हजार हाथी विश्वध्वज फहराते हुए निकले। प्रलय-पयोधिके महान् आवत्सौ (भैंवरों एवं तरंगों) के टकरानेके समान गगनमेदिनी ध्वनि करनेवाली साठ हजार दुन्दुभियोंका

^१ गम्भीर घोष फैलानेवाले वे गजराज क्रमदः आगे बढ़ने लगे। लोहेके कबच बोधे तथा शिरक्षण धारण किये हो लाल महामल्त भी युद्धके लिये निकले। उनके साथ बहुत-से हाथी और सौंद भी थे। तदनन्तर सोनेके कंगन, बाजूबंद, क्रिरीट और सुन्दर कुण्डल पहने, स्वर्णमय कबच धारण किये हो लाल गजरोही योद्धा निकले। तसव्वात् पांछे कबच और टेढ़ी पर्याहासे सुशोभित हो लाल बांध धोद्धा, जो अनेक संग्रामोंमें विजयकीर्ति पा चुके थे, युद्धके लिये निकले। वे भी हाथियोंपर ही बैठे थे। कोई लाल रंगके बख्त पहने और लाल रंगके ही आभूषणोंसे विभूषित थे। कुछ हाथीसवार योद्धा कुछे रंगके कपड़े पहिने हुए थे, कुछ हरे खलोंसे सुसजित

थे। कुछ लोग श्वेत बख्त धारण किये हुए और कुछ गुलाबी कपड़ोंसे सजे हुए युद्धके लिये आये थे। करोड़ों राजन्यकुमार देव-विमानोंके समान रथोंपर बैठकर आये थे, जो अत्यन्त ऊँचे और सिंहध्वजसे सुशोभित थे। उन रथोंपर पताकाएँ फहरा रही थीं। अङ्ग-वङ्ग तथा सिन्धु देशोंमें उत्पन्न हुए चञ्चल धोड़ोंपर, जो मनके समान वेगशाली तथा सोनेके आभूषणोंसे विभूषित थे, उबार हो बहुत-से क्षत्रिय-योद्धा शब्द लिये नगरसे बाहर निकले ॥ १-१० ॥

राजन् ! लोहेके कबचोंसे अलंकृत तथा विशाखरोंके समान युद्धकुशल बहुसंख्यक बीर चारों ओरसे छांड-के-छांड निकलने लगे। मेरी, मृदग, पठह और आनक आदि युद्धके बाजे बजने लगे। सूत, मागध और वंदीजन कौरवों-का यथा गा रहे थे। धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन अपनी विशाल सेनाके बांध बहुत बड़े रथपर बैठा शोभा पा रहा था। वह रथ चन्द्रमण्डलके समान उज्ज्वल तथा चार योजनके धरेवाले छप्पसे अलंकृत हो, अत्यन्त मनोहर ग्रनीत होता था। वह छत्र उसे राजाओंकी ओरसे भेटके रूपमें ग्रास हुआ था। हीरेके बने हुए दण्डवाले बहुत-से व्यक्तन चौंब्र दुलानेवालोंके हाथोंमें सुशोभित हो उस रथकी शोभा बढ़ाते थे। उसमें श्वेत रंगके बोडे जूते हुए थे और उसके

अपर विद्युत्प्रभ फहा रहा था। तुर्योधनके अतिरिक्त, अन्य भूतराष्ट्र-पुत्र भी अल्प-अलग रथों बढ़े थे। उनके रथोंमें मी चाहन्कार योजनके बेरवाले छाँव, जिनमें मोताई की झालौं लटक रही थीं, शोभा दे रहे थे। भीम्य, कृष्णचार्य, द्वेषाचार्य, बाहुदाक, फण, शत्रुघ्नि, कुदिमान्, सोमदत्त, अश्वरथामा, धोम्य, बाहुदाक, फण, शत्रुघ्नि, कुदिमान्, सोमदत्त, अश्वरथामा, धोम्य, धनुधर शीर लक्षण, शकुनि, हुदशामन, बज्र, भूरि भवा तथा यशोंके साथ सुन्दर रथयोंके बैठकर आता हुआ गजा दुर्योधन मध्यांधने के साथ हनुकी कीति शोभा पा रहा था ॥ ११-१८६ ॥

राजन्! उसी समय इन्द्रप्रसाद्यन पाण्डवोंकी भेजी हुई दो 'कूनों' सेना कौरवोंकी सहायताके लिये आयी। कौरवोंकी सेना अश्वीहिणी सेनाओंके बलमें पृथ्वी हिलो ली, दिशाओंमें कोलाहल व्याप हो गया और उड़ती हुई शूलों आकाशमें अध्यकर छा गया। घोंड, हाथी तथा रथोंकी रेणुसे व्याप आकाशमें सूर्य एक तरेके समान प्रतीत होता था। भूतलधर अध्यकर फैल गया। समय देवता व्यक्ति हो गये। यक्ष-तत्र हाथियोंकी टकराने हुआ हृष्ट-हृष्टकर गिरते लगे। हुइसवार बीरोंके अश्ववालनते भूसाण्ड-मण्डल खुद गया। कौरव और द्विष्णव-विष्णवोंकी सेनाएं परस्पर लड़ने लगी। जैसे प्रलयकालमें सातों समुद्र अपनी तरांगोंसे टकराने लगते हैं, उसी प्रकार उस प्रथम पक्षकी सेनाएं तीखे शालोंमें परस्पर प्रहर करने लगी। जैसे याज पक्षी मासके लिये आपसमें जड़ते हैं, उसी प्रकार उस युद्धभूमिमें घोंड घोड़ोंमें, हाथी हाथियोंमें, रथों रथियोंमें और पदल पैदलोंमें भिड़ गये। महाकृत महावतोंसे, सार्वत्रीय भाग्यियोंगत तथा गजा राजाओंसे रोष्यवंक इस प्रकार युद्ध करने लगे, मानो तिहाई तिहाई पूरी शक्ति लगाकर युद्ध कर रहे हैं। तत्वार्थ, भाले, शक्ति, घड़े, पहिया, मुक्त्र, गदा, मुसल, चक्र, तोमर, शिन्हिपाल, दासधीं, भुजु़दी तथा कुठार आदि चर्मकाले अस्त्र-शस्त्रों एवं वाण-समूहोंद्वारा रोष्यवेशने भेरे हुए थोड़ा एक-दूसरोंके मसाक काटने लगे ॥ ११-२७६ ॥

राजभूमिमें वाणोंदारा अध्यकर फैल जानेपर धनुधरोंमें ऐसे प्रश्न वारंवार धनुषकी टंकार करते हुए दुर्योधनके साथ युद्ध करने लगे। वृषेश्वर! अनिकद मीधके साथ, दासमान् कृष्णचार्यके साथ, भानु द्वेषाचार्यके साथ, साम्य बाहुदाकके साथ, मधु कांकके साथ तथा वृद्धभानु शश्यके साथ भिड़ गये। मैथिल! श्रीकृष्णके पुत्र चित्रभानु कुदिमान्, सोमदत्तके साथ, हक भ्रष्टरथामाके साथ, अकृष्ण भौम्यके साथ,

पुनरु तुर्योधनामुन लःसण क साथ, कृष्णकुमार वेदवाहू उस भूतराष्ट्रमें गम्भीरन कार, श्रीहरिके पुत्र श्रुदेव भमराज्ञयमें हुइसामनके साथ तथा युनन्दन सजयके साथ युद्ध करने लगे। राजन्! यह विदुरके साथ, हनुकमीं भूत्रिश्वचाके साथ तथा अकूर यजकुमुके साथ संप्राम भूमिमें लड़ने लगे ॥ २८-३६ ॥

इस प्रकार दोनों सेनाओंमें परम्पर अत्यन्त भयकर युद्ध लिये गया। श्रीकृष्णकुमार प्रश्नुमने दुर्योधनकी विश्वाल सेनाओं अपने वाण-समूहोंद्वारा उसी प्रकार मथ डाल्य, जैसे वाराह-अवतारधारी भगवान्ने प्रलयकालके महासागरको अपनी दाढ़से विषुब्ध कर दिया था। वाणसे विदीर्ण मस्तकमाले हाथियोंके मुक्ताफल आकाशमें गिरते समय ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो गतमें भूतलधर तरे विक्षय रहे हों। मैथिलन्! प्रश्नुमने अपने वाणोंमें उस महासमरमें मारणि, रथों एवं रथोंको उसी तरह मार गिराया, जैसे वायु आने वेगमें वडे वडे वृक्षोंको धराशायी कर देती है ॥ ३५-३७२ ॥

उस समय दुर्योधन वाग वाग अपने धनुशको टकारता हुआ बहाँ आ पहुँचा। उसने उस युद्धमें दस वाणोंको प्रश्नुमनपर छोड़ा, किंतु यादवधर भगवान् प्रश्नुमने उन वाणोंको अपने ऊपर पहुँचनेके पहले ही काट दियाया। तब दुर्योधनने पुनः प्रश्नुमनके कबचको अपना निशाना बनाकर सोनेके पवालाले दस भयक नजाय । व भायक प्रश्नुमनके कबचको विदीर्ण करके उनके दरीरमें समा गये । तत्पश्चात् सहस्र वाण समूहोंद्वारा प्रहर करके भूतराष्ट्रके बलवान् पुत्र महावीर दुर्योधनमें प्रश्नुमनके रथके बहस वोडोंको मार डाला । फिर सौ वाणोंसे प्रत्ययासाहस उनके उत्तम धनुषको भी खण्डित कर दिया ॥ ३८-४१६ ॥

प्रश्नुमन उस रथोंसे उत्पादक तत्काल दूसरे रथपर जा बढ़े। इसके बाद उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके दिये हुए धनुषको हाथमें लेकर उत्तर यिष्पिवक प्रत्यज्ञा चढ़ायी और एक वाणसे संधान करके उसे अपने कानतक सींचा । फिर वाहुदण्डके बासें उम वाणको दुर्योधनके रथके नीचे बैंसा दिया । वह वाण दुर्योधनके रथमें ले उड़ा और दो बहीतक उसे आकाशमें बूमाता रहा । तत्पश्चात् जैसे छोटा वालक कमण्डलको फेंक देता है, उसी प्रकार उस वाणने दुर्योधनके रथको आकाशसे नीचे गिरा दिया । मींचे मिरनेसे वह

रथ तत्काल चूर-चूर हो गया। उसके सभां घोड़े सारथि-सहित भूत्युके ग्रास बन गये। महावली धृतराष्ट्रपुत्र तत्काल दूसरे रथपर जा बैठा। उसने दस सायकोंद्वारा युद्धभूमिमें प्रश्युमनको धायल कर दिया। उन सायकोंसे आहत होनेपर भी श्रीकृष्णकुमार प्रश्युमन फूलकी मालासे मारे गये हाथीकी भाँति तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने श्रीकृष्णके दिये हुए कोदण्डपर एक बाण रखा और उसे चला दिया। वह बाण रथसहित दुर्योधनको लेकर ज्यों ही महाकाशमें पहुँचा, ज्यों ही प्रश्युमनका छोड़ा

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित-कृष्णके अन्तर्गत नारद-बहुलाद्व-संवादमें 'यादव-कौरव-युद्धका वर्णन' नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

हुआ दूसरा बाण भी इत्यु उसे लेकर और भाँ आगे बढ़ गया। तबतक तीसरा बाण भी बहाँ पहुँचा। उसने अहव तथा सारथिसहित उस रथको लेकर राजमहिंद्रके आँगनमें आकाशसे धृतराष्ट्रके समीप इस प्रकार ला पटका; भानो बायुने कमलकौषको उड़ाकर नीचे डाल दिया हो। उस रथको वहाँ गिराकर वह बाण रणभूमिमें प्रश्युमनके पास लौट आया। नीचे गिरते ही वह रथ अङ्गारकी भाँति खिलर गया। दुर्योधन मुखसे रक्त बमन करता हुआ मूर्ढित हो गया ॥ ४२-५२ ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

कौरव तथा यादव वीरोंका घमासान युद्ध; बलराम और श्रीकृष्णका प्रकट होकर उनमें मेल कराना

धानारदजी कहते हैं—राजन् ! दुर्योधनके चले जानेपर वहा बड़ा भारा हाहाकार मचा। तब गङ्गानन्दन देवत्रत भीष्म तुरंत वहों प्रा पुन्चे और उन यादवोंके देखते-देखते यारवार धनुष उंकारते हुए यादव सेनाको उम्मी प्राप्त भस्म करने लंगे, जैसे प्रज्वलित दावानल किसी बनको दग्ध कर देता है ॥ १-२ ॥

भीष्मजी समस्त धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ, महान् भगवद्गत्त, विद्वान् और वीर-समुदायके अग्रगण्य थे। उन्होंने युद्धमें परद्युरामजीके भी छक्के छुड़ा दिये थे। उनके मैस्तकपर शिरल्लाण एवं मुकुट शोभा पाता था। उनकी अङ्ग-कान्ति गौर थी। दाढ़ी-मूँछके बाल सफेद हो गये थे। वे कौरवोंके पितामह थे, तो भी बल्यूर्वक युद्धभूमिमें विचरते हुए सोलह वर्षके नवयुवकके समान जान पड़ते थे। उन्होंने अपने बाणोंसे अनिश्चकी विशाल सेनाको मार गिराया। हाथियोंके मस्तक कट गये, घोड़ोंकी गदनें उत्तर गयीं। हाथमें तलवार लिये पैदल योद्धा बाणोंकी मार खाकर दो-दो दुकड़ोंमें विभक्त हो गये। रथोंके सारथि, घोड़ों और रथियोंको मारकर उन रथोंमें भी भीष्मने चूर्ण कर दिया। जिन राजकुमारोंके पैर कट गये थे, वे ऊर्ध्व-मुख होनेपर भी अधोमुख हो गये। हाथमें लड्ग और धनुष लिये योद्धा गाँहे कट जानेके कारण धराशायी हो गये। कुछ सैनिकोंके कबच छिप-भिप्प हो गये और वे

प्राणशूल्य होकर भूमिपर गिर पड़े। वहाँ गिरे हुए स्वर्ण-भूषित वीरों, घोड़ों, रथों और हाँथयोंसे वह युद्धमण्डल कटे हुए बुक्षोंसे बनकी भाँति शोभा पा रहा था। राजन् ! वह रणभूमि मूर्तिमर्ती महामरीके समान प्रतीत होती था। अङ्ग-शश्व उसके दोत, बाण केदा, ध्वजा-पताका उसके वध और हाथी उसके स्तान जान पड़ते थे। रथोंके पहिये उसके कानोंके कुण्डलसे प्रतीत होते थे ॥ ३—९२ ॥

वहाँ रक्त-स्नानमें प्रकट हुई नदी तीव्र बेगसे प्रवाहित होने लगी। उसमें रथ, घोड़े और मनुष्य भी वह चले। वह रक्त-स्रिता वैतरणीके समान मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्गम हो गया था। कूर्माण्ड, उन्माद और बैतालगण भैरवनाद करते हुए आये और छद्मीकी माला बनानेके लिये वहाँसे नरमुण्डोंका संग्रह करने लो। अपनी सेनाको रणभूमिमें गिरी देल महान् धनुर्धर-शिरोमणि अनिश्च बहुत बड़ी पताकावाले रथपर आस्त हाँ, भीष्मका सामना करनेके लिये आगे बढ़े। राजन् ! प्रल्यकालके महासागरसे उठी हुई ऊँची-ऊँची भँवरों और तरंगोंके भयानक घात-प्रतिघातसे प्रकट हुई ध्वनिके समान गर्भार नाद करनेवाली भीष्मके धनुषकी प्रत्यक्षाको प्रश्युमननन्दन अनिश्चने एक ही बाणसे काट डाला—ठीक उसी तरह, जैसे गहड़ने अपनी तीखी चोंचसे किसी नागिनके दो ढुँबे कर दिये हैं। तब मनस्त्री भीष्मने दूसरा धनुष लेकर उसपर प्रत्यक्षा

चदायी और युद्धभूमिमें सबके देखते देखते उसपर ब्रह्माज्ञका संधान किया। उसमें यड़ा प्रचण्ड तेज प्रकट हुआ। यह देख माधव अनिरुद्धने भी अपनी सेनाकी रक्षाके लिये स्वयं भी ब्रह्माज्ञका संधान किया। वे दोनों ब्रह्माज्ञ थारह सूर्योंके समान तेजस्वी होते परस्पर युद्ध करने लगे। तब अनिरुद्धने तीनों लोकोंका दहन करनेमें समर्थ उन दोनों अक्षेन्द्रोंका उपसंहार कर दिया। माथ ही उन यदु-कुल तिलक प्रनिरुद्धने गङ्गानन्दन भीष्मके विद्युत्के समान दीपियान् धनुषको भी सायंकाद्वारा उसी तरह काट डाला, जैसे सूर्य अपनी किरणोंमें कृष्णाम्भको नष्ट कर देता है। तब भीष्मने लाख भारकों वर्णी हुई सुदृढ़ गदा हाथमें लेफर उसे अनिरुद्धपर चलाया और भिष्मके भमान गजना की। जैसे गडड़ फिसी नाशिनको पत्रिं पकड़ ले, उसी प्रकार शाक्षात् भगवान् अनिरुद्धने भीष्मकी गदाको वायें हाथने पकड़ लिया और दाहिंे हाथमें अपनी गदा उनकी आतोपर दे भारी। उस गदाके प्रहारमें व्यथित हो गङ्गानन्दन भीष्म नूर्चित होकर रथमें गिर पड़। उस युद्धमण्डलमें वे आकाशमें पिंपे हुए सूर्यके समान जान पड़ते थे। तब वहाँ बड़े हुए महात्मा अनिरुद्धपर कृष्णाचार्यने सहसा शक्तिका प्रहार किया। उस समय रोपमें उनके अधर फड़क रहे थे। नरेश्वर! उस शक्तिमो कृष्णापुत्र दीपियानन्दने (अनिरुद्धतक पट्टनमें पहले) सार्गमें ही अपनी तीनवीं धार-बालीतलज्जारें उसी प्रकार काट दिया, जैसे किसीने यदु वचनमें मित्रता स्वार्णित कर दी हो। तदनन्तर गोपसे भरे हुए महावाहु द्रोणानार्यने वारंवार धनुषों टंकार करके भानुके ऊपर पर्वताज्ञका प्रयोग किया। धनुका सेनाको चूर्ण करते हुए बड़े बड़े पर्वत आकाशमें भिरने लगे। राजेन्द्र! उन पर्वतोंके गिरनेसे यादव सेनामें महान् द्वाहाकार भन्च गया॥१०-२५॥

तब श्रीकृष्णापुत्र भानुने वायव्याज्ञका प्रयोग किया। उससे प्रचण्ड आंधी प्रकट हुई, जिसमें भारे पवंत रण-भूमिसे उड़ गये। उसी व्यवस्थपर कुपित हुए बाहुकोंने आर्येयाज्ञका प्रयोग किया, जिससे दावानलसे विद्याल वनकी भाँति शशुकी सेना भस्त्रात् होने लगी। यह देख उस रणभूमिमें जाम्बवतीनन्दन साम्बने पर्जन्याज्ञका प्रयोग किया, जिसके द्वारा शानसे अहंकारकी भाँति वह अग्नि शान्त हो गयी। तब रोपमें भरे हुए कणें मधुकों ओइकर साम्बके ऊपर वीस बाण मारे। पिर वह बलवान् वीर भेषके समान गजना करने लगा। उसके वाणोंसे

आहत हो रथवहित भास्व दो घड़ीतक चक्र काटते रहे। फिर भन ही-मन कुछ व्याकुल हो एक लोक दूर जा गिरे। पिर तो उन्होंने रथ छोड़ दिया और गदा लेकर वे रणभूमिमें आ पहुँचे। उस गदाके द्वारा जाम्बवती कुमार साम्बने कर्णको गहरा चोट पटुनाया। राजन्! उस चोटसे पाइत हो महामर्णी वीर कर्ण पृथ्वीपर गिर पड़ा और समराङ्गमें सूर्चित हो गया। साम्य भी अग्ना धनुष लेफर दूसरे रथपर बड़े वंगमें जा चढ़े। उन्होंने वीर वाणोंसे शुल्कों और पांच वाणोंसे नामदत्तों धायल कर दिया। राजन्! इतना ही नहीं, उन्होंने दम वाणोंसे द्रोणापुत्र अश्वत्थामासी, सोलह वाणोंमें धार्मिकों, दम वाणोंमें लग्नातो, फल्गुनी शकुनीको, वीर वाणोंसे तुश्यामनको वाग। हा रांजय! हा वा वाणोंसे भूषित्रवानों तथा नां ताने नांगने यज्ञोत्तुको भा समराङ्गमें धायल नह दिया। पिर बलवान् वीर भास्व मेंके समान गजना नहने ला।। तदनन्तर भास्वने दम दम वाणोंसे वारंधरोंको एक एक हाथमें धार्मिकों और वीरोंको और पांच वाणोंसे अन्य वीरोंको चोट पटुनाया। जाम्बवतीकुमार साम्बका वह हस्तलब्धव देवनकर जपने एवं शत्रुपक्षके दर्भा सैनिक अस्तन। उसका तो गत हो गय। इसी समय भाष्मने उठकर अपना उत्तम धनुष हाथमें लिया और दस वाण मारकर साम्बके श्रेष्ठ ओइण्डको खांपित कर दिया। तदगत्तर महारथी वीर भाष्म, द्रोणाचाय तथा कर्ण - तीनोंने यादव नानाको तत्काल सायंकाद्वारा धायल करना उसी प्रकार आगम्य किया, जैसे तीनों गुण उत्तिक होनेपर शानदा नष्ट कर देते हैं॥ २६-३९२॥

मानद! दुर्योधन रथपर आळड़ हो पुनः युद्धके लिये आया। उसके साथ दस अक्षोहणा सेना थी, जिसका महान् कोणाहल ला रहा था। मिर्घेलवर! उस समय पुराणपुरुष देवदत्त यत्याम और ध्रौकृष्ण वहाँ प्रकट हो गयं। यत्यामके रथपर तालभूज और ध्रौकृष्णके रथपर गहड़व्यज शोभा दे रहे थे। वे दोनों भाई अपनी दिव्य-कान्तिसे समूर्ण दिशाओंको देवीप्रायमान कर रहे थे। उस समय देवता ज्य जपकार कर उठे। मुख्य-मुख्य गन्धर्व मनोहर गान करने लगे। देवताओंके अनक और दुन्दुभियोंकी ध्वनि होने लगी तथा देवाङ्गनाएँ सील (लवा) और पूल वरकाने लगीं। उसी समय युद्धशी वीर परमेश्वर यत्याम और ध्रौकृष्णके चरणोंमें प्रणाम करने लगे। दुर्योधन आंद कौरव सब और अज्ञ-शूष्म

रखकर उन्हें उत्तम बलि आर्पित करने लगे । सभी प्रसन्न थे और सबके हाथ लुड़े हुए थे । परमेश्वर श्रीहरिने अपने मदोन्मत्त प्रद्युम्न आदि पुत्रोंको डॉट बतार्थी और भीष्म आदि कौरवोंको प्रणाम करके, दुयोंधनसे मिलकर वे दोनों इस प्रकार बोले ॥ ४०-४५ ॥

श्रीबलराम और श्रीकृष्णने कहा—राजन् ! इन नालबुद्धिवाले यादवोंने जो कुछ किया है, उसके लिये क्षमा कर दो; अपने मनमें हुःग्व न मानो । नरेश्वर ! इन लोगोंने जो भी कठोर बात कही है, वह हम दोनोंके प्रति

इस प्रकार श्रीगर्भ-संहितामें विश्वजितलक्षणके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें ‘यादव और कौरवोंमें भेद’ नामक इक्षीसबाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

बाईसवाँ अध्याय

अर्जुनसहित प्रद्युम्नका कालयवन-पुत्र चण्डको जीतकर भारतवर्षके बाहर पूर्वोत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान

नारदजी कहते हैं—नाजन ! भाइयों तथा अन्यान्य कुरुनान्योंके साथ दुयोंधनको शान्त करके यदु-कुल-तिलक वल्लाम और श्रीकृष्ण पाण्डवोंमें मिलनेके लिये इन्द्रप्रस्थके गये । तब अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों तथा स्वजनोंके साथ श्रीकृष्णकी अवासानीके लिये इन्द्रप्रस्थसे बाहर आये । उनके साथ इन्द्रप्रस्थके अन्यान्य निवासी भी शङ्खचनि, हुन्दुभिनाद, वेदमन्त्रोंका घोष तथा वेणुवादन-पूर्वक पृथग्वर्षा करते हुए आये । वल्लाम और श्रीकृष्णको राजा युधिष्ठिरने दोनों भुजाओंसे स्वीच्छक हृदयसे लगा लिया और परमानन्दका अनुभव किया । वे योगीकी भाँति आनन्दमें झूल गये । प्रद्युम्न आदि श्रीकृष्णकुमारोंने भी श्रीयुधिष्ठिरको प्रणाम किया । युधिष्ठिरने उन सबको दोनों हाथोंमें पकड़कर आशीर्वाद दिया । श्रीहरिने स्वयं अर्जुन और भीमसेनको हृदयसे ल्याकर उनका कुण्डल-समाचार पूछा तथा नकुल और सहदेवने उनके चरणोंमें बन्दगा गयी ॥ १-५५ ॥

श्रीकृष्ण और वल्लाम साक्षात् परिपूर्णतम् शोहरि हैं, असंख्य ब्रह्माण्डोंके पालक हैं । भगवद्भक्त युधिष्ठिरने उन दोनों भाइयोंका पूर्णतर समादर किया । उन्होंने यदुकुलके मुख्य और प्रद्युम्न आदिको सैनिकोंसहित दिव्यजन्मके लिये

कही गयी मान लो । राजन् ! इस भूतचर यादव और कौरवोंमें कदापि किञ्चिन्मात्र भी कलह नहीं होना चाहिये । ये सब परस्पर सम्बन्धी और जाति हैं । हमलोग धोती और उत्तरीयकी भाँति परस्पर एक-दूसरेका प्रिय करनेवाले हैं ॥ ४६-४७ ॥

नारदजी कहते हैं—मैथिलेश्वर ! कौरवोंसे निरन्तर पूजित और सेवित हो देवेश्वर वल्लाम और श्रीकृष्ण प्रद्युम्न आदि यादवोंके साथ वहाँ अत्यन्त सुगोभित हुए ॥ ४८ ॥

—०००—

विश्वपूर्वक भेजा और सारी पुर्णीओं जोतनेके लिये आज्ञा दी । फिर वे दोनों भक्तवत्सल स्वयंस्वर बन्धु भाइयोंसहित घर्माराज युधिष्ठिरमें मिलकर द्वारकाको जले गये । राजन् ! गौर और श्याम वर्णवाले दोनों भाई, वल्लाम और श्रीकृष्ण सबके मनको हर लेनेवाले हैं । नरेश्वर ! इस प्रकार मैंने तुमसे श्रीकृष्णका चरित्र कहा । यह मनुष्योंको चारों पदार्थ देनेवाला है । अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ६-१३ ॥

बहुलाश्वने पूछा—मुने ! वल्लामसहित पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण जब कुशस्थलींको जले गये, तब माक्षात् भगवान् प्रद्युम्न हरिने क्या किया ? उनका अद्भुत चरित्र श्रवण करनेयोग्य तथा मनोहर है । जो जीवन्मुक्त शानी भक्त है, उनके लिये भी भगवन्नचरित्र सदा श्रवणीय है, फिर जिक्षासु भक्तोंके लिये तो कहना ही क्या । भगवान्का चरित्र अर्थात् भक्तोंको सदा अर्थ देनेवाला और आर्त भक्तोंकी पीड़िको शान्त करनेवाला है । इतना ही नहीं, स्यावर आदि चार प्रकारके जो जीव-समुदाय हैं, उन सबके पापोंका वह नाश करनेवाला है । दिव्यजयके इच्छुक श्रीहस्तिमार प्रद्युम्न किस प्रकार समूर्ण दिशाओंपर विजय प्राप्त करके पुनः सेनासहित द्वारकामें लौटे, यह सारा वृत्तान्त आप मुझे ठीक-ठीक बतलाइये । देवर्षे ! आप ब्रह्माजीके पुत्र और

संशात् सर्वदीर्घा भगवान् हैं, भगवान् श्रीकृष्णके मन हैं। अतः पहले श्रीहरिके मनस्वरूप आपको मेरा प्रणाम है॥ १०—१४॥

नारदजीने कहा—राजन् ! तुमने बहुत अच्छी बात कही। तुम भगवत्प्रभावके शास्त्र होनेके कारण धन्य हो। इस भूतलर श्रीकृष्णचरित्रको सुननेके पात्र (सुयोग्य अधिकारी) तुम्हाँ हो। नरेवर ! श्रीकृष्णके चले जानेपर अजातशत्रु राजा पुष्टिष्ठिरने शशुओंसे प्रशुम्नकी रक्षा करनेके लिये स्नेहवश उत्तरके साथ शीघ्र ही अपने माझे अर्जुनको भी जानेकी आशा दे दी; क्योंकि उनके मनमें बाहरी शशुओंसे प्रशुम्न आदिपर भय आनेकी आशङ्का हो गयी थी॥ १५—१६॥

मिथिलेवर ! तदनन्तर अर्जुनके साथ यहुप्रेष्ठ प्रशुम्न विशाल सेनाको अपने साथ लिये तत्काल विर्गत जनपदमें जा पहुँचे। विर्गतके राजा धनुर्धर सुशमाने शक्ति होकर, महामना प्रशुम्नको भेट दी। फिर मत्स्य देशके राजा विराटमें पूजित होकर, यादवेश्वर प्रशुम्नने सरस्वती नदीमें स्नान करके कूरक्षेन तीर्थका दर्शन किया। फिर पृथुदक, विन्दु-सरोवर, वित्तूप और सुदर्शन आदि तीर्थोंमें होते हुए, सरस्वतीमें स्नान करके, वहाँ अनेक प्रकारके दान दे दे आगे बढ़ गये। कौशाम्बी नगरीमें पहुँचनेपर सारस्वत प्रदेशके राजा कुशाम्बने प्रशुम्नको भेट नहीं दी; क्योंकि वे दुर्योधनके बड़ीभूत होनेके कारण उसके विछलगूँ थे। तथ प्रशुम्नकी आशा पाकर चाहदेखा, सुदेखा, पराकमी चाहदेह, सुनाह, चाहगुह, भद्रचाह, चाहचन्द्र, विनाह और दसवें चाह—इन दसों रुक्मिणीपुत्रोंने तिथि घोड़ोपर सवार हो, सबके देससे-देखाते कौशाम्बी नगरीको लारों ओरसे देर लिया। उनके बाथोंसे राजधानीके महलोंके शिलार, घ्वज, कलश और सोलिका आदि चूर-चूर होकर उसी प्रकार गिरने लगे, जैसे बानरोंके प्राहरसे लङ्घकी अट्टालिकाएँ दूट-दूटकर गिरने लगी थीं। रुक्मिणीकुमारोंने जय इस प्रकार बाणोंद्वारा अन्धकार फैल दिया, तब राजा कुशाम्ब हाथमें बहुत-सी भेट-सामग्री लिये नगरसे बाहर निकले। उन्होंने हाथ जोड़कर शम्भवारिको

* इतिहाससंक्षिप्त कौशाम्बी नगरी तो इत्यावाद जिलेके शोलोक नामसे असिंह प्रानके आस-पास रही है। यह बान सुशार्द आदिसे थी सिंह हो चुकी है। वहाँ जिस 'कौशाम्बी' की बात है, वह इसी ही है; राजा कुशाम्बके नामपर यही हुई रुक्मिणीके नामान्तरीके बान गया है।

नमस्कार किया और बहुत-सी भेट-सामग्री देकर भवार्त एवं भयविहृल राजाने नगरीकी रक्षा की। उनी समय सौवीरराज सुदेव, आमीरराज विनिधि, सिंहुपति चित्राङ्गद, अहमीरराज महीजा, जाङ्गलदेशाधिपति सुमेह, लाक्षेश्वर धर्मपति और गन्धवंरराज विडीजा—इन सबने भी, जो दुर्योधनके बद्धकर्ता थे, भयके कारण वलि अर्पित करके अस्त्रत विनीत होकर कृष्णकुमार प्रशुम्नको प्रणाम किया। तदनन्तर अपनी सेनाने घिरे हुए महाबाहु प्रशुम्न उद्धट बीर कलिके समान अरुंद और म्लेच्छ देशोंपर विजय पानिके लिये प्रस्तुत हुए॥ १७—३०॥

काल्पयनका महाबली पुष्प यवनेन्द्र चण्ड प्रशुम्नका आगमन सुनकर अत्यन्त कोधमें भर गया। 'आज मैं अपने पिताकी हत्या करवेगाले शशुके पुत्रका वध करके बापका बदला लूका दूँगा'—मन ही-मन ऐसा विचार करके दस करोड़ म्लेच्छोंकी सेना लिये, मदकी धारा बहाने और गर्जनेवाले ऊँचे गजराजपर आम्लद हो; आँखें लाल करके, वह महात्मा प्रशुम्नके लामने निकला। चण्डकी प्रेरणामें तीखे बाणोंकी बर्षा करनेवाली उस विशाल सेनाको आयी देव प्रशुम्न अपने सैनिकोंसे बोले॥ ३१—३४॥

प्रशुम्नने कहा—जो शशुम्नाका संहार करके शिरखाणसहित चण्डका मस्तक काटकर यहाँ ला देगा, उस बासको मैं अपनी सेनाका सेनापति बनाऊँगा॥ ३५॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! जब प्रशुम्न पास ही इस प्रकार कह रहे थे, तब गाण्डीवधारी कपिष्वज अर्जुनने बारंबार धनुषकी टंकार करते हुए अकेले ही शशुकी सेनामें प्रवेश किया। रणदुर्मद गाण्डीवधारीने गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए विशिष्टोंद्वारा भागने लाए हुए बीरों, रथों, हाथियों और घोड़ोंके दो-दो ढुकड़े कर ढाले। हाथीमें शक्ति, खड्ग तथा शृंष्टि (दुधारा स्वृंदा) लिये कितने ही शशु-सैनिक मुजाहँ कट जानेके कारण पृथ्वीपर गिर पड़े। कितने ही कबचधारी बीरोंके पैर कट गये और नस विदीर्घ हो गये। जिनके हौदे छिप-भिज हो गये और शरीर धायल हो गये थे, ऐसे हाथी पुद्भूमिमें इधर-उधर भागने लगे। उनके घंटे कहीं गिर गये और हौदे कहीं जा पड़े। वे अपनी हौदोंसे हाथियोंकी भी गिरते हुए भाग चले। अर्जुनके बाणोंसे दो-दो ढुक हुए हाथियों और घोड़ोंसे भरा हुआ वह समराङ्ग हँसुओंसे काटे गये कुम्हड़ोंसे ज्वाल

हुए खेत-बा जान पढ़ता था । फिर सो म्लेच्छ सैनिक अपने-अपने हथियार फेंक, समराज्ञ छोड़कर जोर-जोरसे भागने लगे—ठीक उसी तरह जैसे सूर्यकी किरणोंसे विदीर्घ हुए कुहासोंके समुदाय नष्ट हो जाते हैं ॥ ३६-४१ ॥

मैथिलेन्द्र ! हाथीपर बैठे हुए म्लेच्छराज चण्डने एक शक्ति बुमाकर अर्जुनके ऊपर फेंकी और सिंहके समान गर्जना की । राजेन्द्र ! बल्बान् श्रीकृष्ण-सला अर्जुनने विद्युल्लताके समान अपने ऊपर आती हुई उस शक्तिके गाण्डीब-मुक्त बाणोंद्वारा खेल-खेलमें ही सौ ढुकड़े कर डाले । महाम्लेच्छ चण्ड रोषसे भरकर जबतक धनुष उठाये, तब-तक ही गाण्डीबधारीने लीलापूर्वक एक बाण मारकर उसके उस धनुषको काट दिया । तब प्रचण्ड-पराक्रमी चण्डने दूसरा धनुष हाथमें लेकर प्रलयकालके महासागरकी बड़ी-बड़ी भैंटोंके टकरानेकी भाँति गम्भीर नाद करनेवाली अर्जुनकी प्रलयकांको उसी तरह काट दिया, जैसे गडड किसी मर्पिणीके ढुकड़े-ढुकड़े कर डाले । तब अर्जुनने ढालके साथ चमकती हुई अपनी तलवार ले ली और उससे चण्डके गजराजबी कुम्भस्थलीपर इस प्रकार प्रहार किया, मानो इन्द्रने पर्वतपर बब्र मार दिया हो । अर्जिनेवके दिये हुए उस खड़ामें उस हाथीका कुम्भस्थल फट गया । उसने निघाड़ करते हुए धरतीपर धुटने टेक दिये । फिर वह

इस प्रकार श्रीगर्ग-सहितामें विश्वनित्यसुप्तके अन्तर्गत नारद-बहुलश्व-संवादमें ‘बहुदिविजय’
नामक वाईसर्वा अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

तेईसवाँ अध्याय

१ यादव-सेनाका वाणासुरसे भैंट लेकर अलकापुरीको प्रस्ताव तथा यादवों और यथोंका युद्ध

नारदजी कहते हैं—राजन् ! नदों, नदियों और समुद्रोंने भी सेनासहित महात्मा प्रशुद्धको उनके तेजसे धर्षित हो रथ निकलनेके लिये मार्ग दे दिया ॥ १ ॥

कैलास शर्वतके पाहर्वभागमें वाणासुरका निवासस्थान शोणितपुर था । वहाँ शेष मानव-बीर यादवेश प्रशुद्ध गये । यशुवंशियोंको पुनः आशा देख, वाणासुरको बड़ा झोख हुआ । उसने बाहर अशोहिणी सेनाके द्वारा उनके साथ युद्ध करनेका विचार किया । इसी समय विश्वलधारी साक्षात् पुराणपुरम भैंश्वर देव नन्दी हृषीपर अस्तु हो

अस्तक सूर्योंसे हो गया । उस चण्डने भी तालवाले लैलक पाण्डुनन्दन अर्जुनपर प्रहार किया । परंतु कुछ कुछ लैलक अर्जुनने उसके खड़गको दालवर रोककर उसके ऊपर अवकी तल्लासे बार किया । इससे चण्डका विश्वलधारसहित मस्तक धड़से अलग हो गया । तदनन्तर अर्जुनने अपने धनुषपर प्रलयका चढ़ायी और चण्डके मस्तकको बालवर रखकर उसे धनुषपर स्थानकर चलाया और प्रशुद्धकी सेनामें उसे फेंक दिया ॥ ४२-५० ॥

उस समय जय-जयकारके साथ दुन्दुभि बजने लगी और देवतालोग अर्जुनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे । फिर श्रीकृष्णकुमार प्रशुद्धने उसी क्षण विजयध्वजसे विभूषित अपनी सेनाका अर्जुनको मेनापति बना दिया । उस समय यादव-सेनाके मुख्य वीरोंने हाथमें इवेत चँचर आदि लेकर कपिष्वज अर्जुनके काफर हवा की । फिर तो बेगजाली अर्जुदाशीशने प्रशुद्धकी शरण ली । उसने इसते हुए हाथ जोड़कर नमस्कार किया और भैंट अर्पित की । मोरझके राजा मन्दहासने भयभीत हो महात्मा प्रशुद्धको दस लाख धोड़े देकर नमस्कार किया । इस प्रकार भरतान्दपर विजय पाकर यदु-कुल-तिलक श्रीकृष्णकुमारने हिमालयको दक्षिण दिशामें करके पूर्वोत्तर दिशाकी ओर प्रस्ताव किया ॥ ५१-५५ ॥

हिमाचलपुरी उमाके साथ वाणासुरके पास आये और बोले ॥ २-४ ॥

शिवने कहा—असुरराज ! साश्रात् परिपूर्णतम भरवान् श्रीकृष्ण स्वयं असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, गोलोकके स्वामी तथा परात्पर परमात्मा हैं । हम तीनों—ब्रह्मा, विष्णु और शिव—उन्हींकी कला हैं और उनकी आशाको सदा अपने मस्तकपर धारण करते हैं; फिर तुम जैसे सामान्य कोटिके जीवोंकी सो आत ही कथा । उन्हींके पौत्र अनिरुद्धको तुमने बाँध किया

या; जिसके कारण उन्होंने अपने प्रभावमें संग्राममें तुम्हारी मुख्याएँ काट डाली थीं। क्या उन श्रीहरिको तुम नहीं जानते! (उन्हें इतनी जट्ठी भूल गये!) अतः तुम दानवोंके लिये श्रीहरिके पुत्र पूजनीय हैं। अनिदृष्ट तो तुम्हारे दामाद ही हैं, अतः तुम्हारे लिये उनके पूजनीय होनेमें तो कोई संशय नहीं है। असुरपुंजव! मैं तुम्हें युद्धके लिये आका नहीं देता। यदि नहीं मानोगे तो अपने बलसे युद्ध करो; परंतु तुम्हारे मनका युद्ध-विषयक संकल्प मुझे तो व्यर्थ ही दिखायी देता है॥ ५-९ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! भगवान् शिवके समझाने पर बाणमुखने अनिदृष्टको बुलाकर उनका पूजन किया और दैज दिया। फिर सेनासहित प्रद्युम्नका बन्धुके समान साहर पूजन करके महावाहु बाणने उन महात्माको दस इजार हाथी, पाँच लाख रथ तथा एक करोड़ घोड़े भेटमें दिये॥ १०-११३ ॥

महाराज ! तदनन्तर धनुर्धर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न अपने यादव सैनिकोंके साथ गुहाको (खाड़ी) से बग्निहत अलकापुरीको गये। नन्दा और अलकनन्दा—ये दो गङ्गाएँ परिस्वा (खाड़ी) की भौंति उस पुरीको घेरे हुए हैं। वहाँ वे दोनों नदियाँ रस्तोंकी बनी हुई सीढ़ियोंसे युक्त हैं। वह पुरी यक्षबधुओंसे सुशोभित है। विश्वाधरों और किंतौरोंकी सुन्दरियाँ सब ओरसे उसकी मलोहरताको बढ़ाती हैं। दिव्य नागकन्याओंसे सुशोभित भोगवती पुरीकी भौंति गुहाक-कन्याओंसे अलकापुरीकी शोभा हो रही थी। नरेश्वर ! कुबेरने प्रद्युम्नको भेट नहीं दी। यद्यपि वे श्रीहरिके प्रभावको जानते थे, तथापि उन्होंने भेट देना स्वीकार नहीं किया। अहो ! मायाका अस्ति नित्याना अद्भुत है। मैं लोकपाल हूँ, इस अकानसे वे सदा मौहित रहते थे। अतः बलवान् यहाँसे प्रेरित होकर उन्होंने युद्ध करनेका ही विचार किया; क्योंकि निर्वनको यदि धन मिल जाता है तो वह सारे बग्नको लूपनकृत मानने लगता है। फिर जो भूतल्पर नव-निधियोंके अधिष्ठित हैं, उनके अहंकारका क्या वर्णन हो सकता है। मानद ! उसी समय कुबेरका भेजा हुआ दूत ऐम्प्रकृष्ट प्रद्युम्नके पास आकर सभामें मस्तक छाकर उनसे इस प्रकार बोला॥ १२-१८३ ॥

ऐम्प्रकृष्टने कहा—राजन् ! यहु कुरुतेत्क ! अलकापुरीके स्वामी धनके अधीश्वर लोकपाल राजराज

कुबेरने जो संदेश दिया है, उसे आप सुनिये—“जैसे स्वर्गलोकमें प्रभु इन्द्र देवताओंके राजा कहे गये हैं, उसी प्रकार भूतल्पर एकमात्र मैं ही राजाओंका महान् अधिराज होनेके कारण ‘राजराज’ कहा गया हूँ। यद्यपि मेरा धर्म (शील-स्वभाव) मनुष्योंके ही समान है, तथापि भूतल्पर राजाधिराजोंने सदा मेरा पूजन किया है। इसलिये उप्रसेनको ही मुझे उत्तम भेट देनी चाहिये (मैं भेट लेनेका अधिकारी हूँ, देनेका नहीं)। इसलिये मैं यदुराज उप्रसेनको कदापि भेट नहीं दूँगा। यदि तुम नहीं मानोगे, तो युद्ध करेंगा, इसमें संशय नहीं”॥ १९-२२ ॥

नारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! दूतकी यह बात सुनकर भगवान् प्रद्युम्न हरि कुपित हो उठे। रोकने उनकी आँखें लाल हो गयी और होठ फड़ने लगे॥ २३ ॥

प्रद्युम्न बोले—विष्णिवंशियोंके स्वामी उप्रसेन राजराजोंके भी इन्द्र हैं। तुम्हारे स्वामी राजराज कुबेर उन्हें अच्छी तरह नहीं जानते; साक्षात् इन्द्रादि देवता भी उनकी चरण पादुकाओंसर अपने मुकुट रखदेते हैं। इन्हें भग्नसे ही उनहीं भेजायें अपनी सुधर्मा मभा थौर पारिजात वृक्ष अर्पित कर दिये हैं। बद्धानं श्यामकण्ठं घोड़े देकर उन्हें प्रणाम किया है। इन्हीं डग्पोक राजराजने उनके पास नवों निधियों पहुँचायी हैं। फिर भी उन महाबली महाराजको ये राजगाँउ नहीं जानते ! उन यादवराजकी समाने असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिष्ठित साक्षात् परिणामतम भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं विराजते हैं। यह सारा भूमण्डल जिनके एक मस्तकपर तिलकके समान दिखायी देता है, वे सहस्र मस्तकबाले अनन्त-देव भी उप्रसेनकी सभामें नित्य विराजमान रहते हैं। महाराज उप्रसेनने मुझे महात्मा कुबेरके लिये नाराचों (बाणों) की भेट देनेके निमित्त यहाँ भेजा है; अतः इस समय मैं यही करेंगा॥ २४-२९ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! यों कहकर प्रचण्ड-पराक्रमी प्रद्युम्नने अपना कोइण्ड उठाया और मुजल्प्योंसे धनुषकी ढोरी स्वीकृत हुए टंकार-स्वनि की। प्रत्यक्षाके अस्फोटनमें ही वेदात्मी गङ्गाद्विहटके समान भयंकर शब्द प्रकट हुआ। उससे सात लोकों तथा पातालोंसहित सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा। राजन् ! दिव्यज विच्छिन्न हो गये, तारे दूटने लगे और भूस्वण्ड-मण्डल हिल उठा। अनुशारियोंमें भेड़ प्रद्युम्नने तरकस्ते एक बाण सीचकर उसे अपने

)

T

यनुषकी प्रत्यक्षापर रक्षा और उसे छोड़ दिया। वाह शूर्योंके समान तेजस्वी उस बाणने समूर्ण दिक्षमण्डलको प्रकाशित करते हुए गुहाकराजके छत्र और चंचरको काट दिया। यह अत्यन्त विविच्छ काढ़ देखकर राजाराज कुवेरके कोषकी सीमा न रही। वे पुष्पकविमानपर आरूढ़ हो सैनिकोंके साथ युद्धकी कामनासे युरीके बाहर निकले। उनके साथ घण्टानाद और पार्श्वमीलि नामक यक्ष-मन्त्री भी थे। कुवेरके नलकूवर और मणिग्रीव नामक दोनों पुत्र यजके अश्रवागमे सुशोभित हो रहे थे। उनकी सेनाके कुछ यक्ष अश्रमुख थे, किनने ही यक्षोंके मुख लिंगके समान थे। कुछ सूंस और मगरके समान मुखवाले थे, कोई आधे पीछे और आधे काले थे, किन्हींके केश उपरकी ओर उठे थे। वे सूर्य-के-राव मदसे उभयत थे। टेंडे-मेंदे दाँत, लग्नाती हुई जीभ और विशाल दंडवाले महाबली यक्षोंके मुख विकराल दिखायी देते थे। वे कबन्च तथा ढाल-तलवार धारण किये हुए थे। शक्ति, शृष्टि, भुग्यण और परिष—ये आयुध उनके हाथोंमें देखे जाते थे। कुछ यक्षोंने धनुष और बाण ले रखे थे और किन्हींके हाथोंमें फरसे चमक रहे थे। युद्धके लिये निकले हुए हाथीसवार, रथारोही और घुड़सवार यक्षोंके सहस्रों मण्डल शोभा पाते थे। शङ्क और दुन्दुभियोंकी ध्वनिसे तथा सूत, माराध और वन्दीजनोंके

इस प्रकार श्रीगर्भ-सुहितमें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलादव-संवादमें 'यादव-सेनाकी

यक्षदेशपर चढ़ाई' नामक तेर्सवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

यादव-सेना और यक्ष-सेनाका धोर युद्ध

‘ओनारदजी कहते हैं—राजन्! अख्यात्याख्योंकी वशते वहाँ अन्धकार छा जानेपर महाबली मणिग्रीवने बाणोंद्वारा बैरी-वाहिनीका उसी प्रकार विष्वन आरम्भ किया, जैसे कोई कड़-चन्द्रचन्द्रोंद्वारा मिश्रताका नाश करे। मणिग्रीवके बाण-समूहोंसे क्षत-विक्षत हो, हाथी, घोड़े, रथ और वैदल सैनिक आँधीके उखाड़े हुए, वृक्षोंकी भाँति धरादायी होने लगे। उस समय श्रीकृष्ण और सत्यभासाके बलवान् पुत्र चन्द्रभानुने पाँच बाण मारकर मणिग्रीवके कोटिष्ठको खण्डित कर दिया तथा दस बाणोंसे उसके रथका छेदन करके बलवान् चन्द्रभानु घनके समान गजना करने लगे। यह देख मणिग्रीवने भी चन्द्रभानुपर

सुनिपाठ्ये भूतलपर कुवेरके बीर सैनिक आकाशमें विशुद्ध-गर्वनामे युक्त मेघोंके समान झन रहते थे ॥ ३०-४१ ॥

विरेशराज । इस प्रकार दिव्य महायोगमय सिद्धक्षेत्रसे करोड़ों मतवाले यक्ष निकल पड़े। उनके आ जासेपर प्रमथोंकी विशाल सेना उनकी सहायताके लिये आ पहुँची। किसने ही भूल और प्रमथ विकराल बदन और महोनमत दिखायी देते थे। उनके साथ डाकिनियोंके समुदाय, बातुधान, बैताल, विनायक, कूम्भाण्ड, उम्माद, प्रेत, मानुकागण, निशाचर, पिशाच, ब्रह्मराक्षस और भैरव भी थे, जो भीषण गर्जना करते हुए 'मारो, काटो, फाडो' की रट छाप रहे थे। इस प्रकार वहाँ करोड़ों भूतावलियाँ आ पहुँची, जो सांवर्तक मेघोंकी भाँति पृथ्वी और आकाशको आच्छादित किये हुए थीं। मोरपर बैठे हुए स्थामी कार्तिकेय तथा चूहेपर चढ़े हुए गणेशजी ढमरुकी ध्वनिके साथ वीरभद्रको लिये सबसे आगे आ पहुँचे। प्रमथगण उन दोनोंके यशका गान कर रहे थे। इस प्रकार पुष्यजनोंका यादबोंके साथ तुम्हुल युद्ध आरम्भ हुआ, जो अद्भुत और रोमाञ्चकारी था। रथी रथियोंसे, पैदल पैदलोंसे, घोड़े घोड़ोंसे और हाथी हाथियोंसे परस्पर जूझने लगे। राजेन्द्र। रथ, हाथी, घोड़े और पैदलोंके पैरोंसे उठी हुई घूँसे सूर्यवहित आकाशमण्डलको ढक दिया ॥ ४२-४१ ॥

अपनी शक्ति चलायी। मैथिल ! वह शक्ति समूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करती हुई वडा भारी उस्काके समान गिरा; परतु चन्द्रभानुने खेल-सा करते हुए उसे बाँधे हाथसे पकड़ लिया। उन्होंने उसी शक्तिके द्वारा समराङ्गमें महाबली मणिग्रीवको धावल कर दिया। तत्पश्चात् महाबली चन्द्रभानु उस रणभूमिमें पुनः गर्जना करने लगे। उस प्रहारसे मणिग्रीव पूर्वस्त होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। तब नलकूवरकी प्रेरणाते अमुरोंने बाणोंका जाल-सा विछाकर चन्द्रभानुको उसी प्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे बादल बर्फकालके सूर्यको ढक देते हैं ॥ १—४२ ॥

तब शीघ्रपुत्र दीसिमान् खड़ इथमें लेकर बड़े बैगमें
मन्त्रीकी सेनामें इस प्रकार बुझ गये; मानो सूर्यने कुहातेके भीतर
प्रवेश किया हो। उनके खड़-प्रहारसे किंतने ही यशोंके दो-
दो हृष्टहे हो गये; किंतने ही मस्तक, पैर, कंधे, बौहं, हाथ,
फाल और ओठ छिन्नभिन्न हो जानेके कारण युद्धमें पृथ्वीपर
गिर पड़े। किंती, कुण्डल और दिव्याणोंसहित उनके कटे
हुए शीघ्रस्य मस्तक रक्तकी धारा बहा रहे थे और उनसे
हकी हुए रणभूमि महामारी-सी जान पड़ती थी। मरनेसे
बचे हुए यायल यथा भयसे विहूल होकर भाग गये।
मिथिलेक्ष्मी ! उस समय यक्ष-सेनिकोंमें हाहाकार मच
गया ॥ ८—१२ ॥

तब क्यत्वधारी नलकूबर धनुषकी टंकार करते हुए
बहुत ऊँची पताकावाले रथपर आरुढ़ हो वहाँ आ पहुँचे और
“हरो मद”—यो कहकर अपने सैनिकोंको अभयदान देने
लगे। नलकूबरने पांच बाणोंसे कृतवर्मापर, दस बाणोंसे
अर्जुनपर और बीस बाणोंसे दीसिमानपर प्रहार किया। राजन्।
तब भगवान् कृतवर्मनि अपने सिंहनादसे सम्पूर्ण दिशाओंको
निनादित करते हुए पाँच विशिखोंद्वारा नलकूबरको करारी
चोट पहुँचायी। वे बाण नलकूबरका कवच पाढ़कर शारीरको
छेदते हुए उसके देखते-देखते धरातलमें उसी प्रकार समा गये,
जैसे सर्व याँचोंमें बुझ जाते हैं। कृतवर्माके बाणसे अङ्ग विदीर्ण
हो जानेके कारण नलकूबरको मूर्च्छित हुआ देख सारथि
हेममारी उहै रणभूमिसे दूर हटा ले गया। धण्टानाद और
पाश्वर्मीसि, कुमेरके ये दोनों मन्त्री अपने बाण समूहोंसे
यादगारी उद्धट सेनाकी धायल करने लगे। ग्रधपक्षसे युक्त
सुनहरे पंख और तीखे मुखवाले, मनके समान वैगशाली
उन दोनोंके बाण सूर्यकी किरणोंके समान सम्पूर्ण दिशाओंको
उद्धासित कर रहे थे ॥ १३—१९ ॥

तदनन्तर महावीर अर्जुनने उन मन्त्रियोंके बाणोंके
उत्तरमें बहुत से बाण चलाना आरम्भ किया। दोनों और
चलनेवाले बाणोंके संरक्षणे युद्धभूमिमें हजारों विस्तुलिङ्ग
(अग्निकण) प्रकट होने लगे। नरेश्वर ! आकाशमें
सातोतौंकी भौति चमकनेवाले वे चलन्ति विस्तुलिङ्ग अलात-
चक्रकी भौति छोमा याने लगे। एण सुर्यद और गायत्रीवधारी
अर्जुनने गायत्रीवधारीसे छूटे हुए विशिखोंद्वारा उस समस्त
बाण-समूहकी शपथमात्रमें काट गिराया। उन्होंने बाणोंके
समुदायसे दो शोलकके शेषमें पित्रय-सा कला दिया और बल-
मूर्ति उन दोनों मन्त्रियोंके अज्ञातहित रथोंको उस दौरे

अंदर कर लिया। वे दोनों मारे गये—यह जानकर समस्त
पुण्यजन (यक्ष) तत्काल युद्ध छोड़कर हाहाकार करते हुए
भाग चले ॥ २०—२३ ॥

उसी समय करोड़ों भूतवृन्द युद्धभूमिमें आ गये।
राजन् ! कोटि कोटि डाकिनियों रणभूमिमें हाथियोंको उड़ा-
उठाकर फेंकने लगीं। मनुष्यों, घोड़ों तथा रथियोंको पृथक्-
पृथक् सुँहमें ढालकर चशा लगीं। एक-एक मानवके पीछे
एक-एक भूत लगा था। दसके साथ दस भूत दौड़ते दिखायी
देते थे। प्रमथगणोंने खट्टवाङ्गसे बारंबार लोगोंको मारा और
गिराया। यातुधानियों रणमण्डलमें नरमुण्डोंको चशा रही थीं।
वेतालगण खप्परमें बहुत-सा रक्त लेलेकर पी रहे थे, चिनायक
नाचते और प्रेत गाते थे। कूप्याण्ड और उन्माद उस युद्ध-
भूमिमें गिरे हुए मस्तकोंका संग्रह करते थे। स्वर्गगामी
बीरोंके मस्तकोंका उनके द्वारा किया जानेवाला वह संग्रह
भगवान् शिवका मुण्डमाला बनानेके लिये था। मातृगण,
ब्रह्मराक्षस और भैरव उस युद्धमें कटकर गिरे हुए मस्तकोंको
गेंदकीतरह बारंबार उड़ाते फेंकते हुए हँसते, शिलाखिलाते और
अद्भुत करते थे। विकराल मुखवाले पिशाच बुरी तरह कूद-फौद
रहे थे। पिशाचिनियों युद्धमें बच्चोंको गरम-गरम रक्त पिलाती
थीं और बच्चोंको आवासन देते हुए कहती थीं—“वेटा ! मत
रोओ। इम तुम्हें इन लोगोंकी आंखे भी निकाल-निकालकर
देंगी” ॥ २४—२६ ॥

इस प्रकार भूतगणोंका बल बढ़ता देख बलदेवके
छोटे भाई वलवान् गद हाथमें गदा लेकर मेघोंके समान
गर्जना करने लगे। लाल भारकी उस मौर्चों गदासे गदने उस
विशाल भूतसेनानों उसी प्रकार मार गिराया, जैसे इन्द्र
वज्रसे पर्वतोंको धरातायी कर देते हैं। गदाकी मारसे मस्तक
फट जानेके कारण बहुत-से कूप्याण्ड, उन्माद, वेताल,
पिशाच और ब्रह्मराक्षस मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े।
गदने समराङ्गणमें डाकिनियोंके दोतौङ डाले, प्रमथोंके
कंधे विदीर्ण कर दिये और यातुधानियोंके मुख छिन्नभिन्न कर
दाले। राजन्। गदासे रंदी गये प्रेत दसों दिशाओंमें उसी
तरह भाग चले, जैसे प्रलयकालके समुद्रमें भगवान् बाराहकी
दाढ़ते अङ्ग-भङ्ग होनेके कारण दैत्य पलायन कर
गये थे ॥ ३२—३६ ॥

भूतगणोंके मार जानेपर वीरभद्र सामने आया। उस
वलवान् भूतनाथने बलदेवके छोटे भाई गदको गदासे मारा।
गदने उसकी गदाको अपनी गदापर रोक लिया और फिर

अपनी बड़ा उत्तरे ऊपर लगायी । जैविलेश्वर । वीरभद्र और यहाँ में बड़ा भवंतकर गदायुद हुआ । वे दोनों ही गदाएँ आमाकी शिखारियों छोड़ती हुई परस्पर उकाकर चूर्चूर हो गयी । फिर एक-दूसरे को लक्ष्यात्तेहुए उन दोनोंमें मल्लमुद्द छिड़ गया । वे भुजाओं, झुटों और पेरोंके आघातसे पर्वतोंको गिराते हुए लड़ने लगे । वीरभद्रने बल्लूरक करकीर पर्वतको उखाइकर अद्वाहत करते हुए उसको गदके ऊपर फेंका । गदने उस पर्वतको पकड़ लिया और फिर उसीके ऊपर उसे दे मारा । तब वल्लात् वीरभद्रने वीरवर गदको पकड़कर वहें बेगसे आक्रमणमें लाल योजन दूर फेंक दिया । वहाँसे भूमिपर गिरनेपर गदके मनमें कुछ व्याकुलता हो गयी । फिर भावाली गदने वीरभद्रको भी उठा लिया और बेगसे तुमाकर शीघ्र ही उसे भी लाल योजन दूर फेंक दिया । वीरभद्र कैथउ पर्वतके शिखरपर गिरा । गदके प्रहारसे तो वह पीड़ित था ही, अतः दो घड़ीतक मृच्छामें पड़ा रहा ॥ ३७-४५ ॥

तदनन्तर शक्ति उठाये स्वामिकार्तिकेय वहें बेगसे युद्ध-भूमिमें पहुँचे । उन्होंने अनिश्च और साम्बको लक्ष्य करके शीघ्र ही अपनी शक्ति चलायी । अनिश्चके रथका भेदन कर, साम्बको धायल करके, उनके रथको भी तोड़ती हुई वह शक्ति उस युद्धभूमिमें सहस्रों हाथियों, रथों और लक्ष्यों विरान्ते मारकर दसों दिशाओंमें चमकती और कढ़कती हुई निजलीकी तरह फुफकारती तर्पिणीके समान भूमियें तमा गयी । तब ज्ञोजसे भरे महाबाहु जाम्बवतीतुदार साम्बने प्रथमाका बोष करते हुए तरकससे एक बाण निकाला । वह बाण एक होता हुआ भी तरकससे बाहर निकले ही दूर हो गया । चनुषपर रखते समय लौ और सींचते समय उसने लहसु रूप धारण कर लिये । छूटते समय उस बाणके लाल रूप हो गये और लक्ष्योंतक पहुँचते-पहुँचते उसने कोटि रूप धारण कर लिये । इस प्रकार उस अनेक रूपधारी विशिखने शिखी (मोर) और शिखिवाहन स्वामिकार्तिकेयको धायल

करके लगाकरमें कोटि कोटि शीरोंको लियीर्थ ले लाय ॥ ४६-४७ ॥

कार्तिकेयके धत्त-विकाश होने और कुछ व्याकुलणित हो आनेवर चूहेपर वहें हुए गोपेश्वर गजानन रहाँ आ पहुँचे । उनके कुम्भस्त्रवर गोमूळ, सिन्दूर और कस्तूरीके द्वारा विविध पञ्च-स्त्रवना की गयी थी । उनका झुंझुर बहु-उण्ड कुम्भसे आलिस था । मिन्दूरपूर्ण कपोलोंके काटण उनकी बड़ी मनोहर आभा दिखायी देती थी । कानोंका उच्चावल वर्ण मानो कपूरकी खूँसे धब्बलित किया गया था । उनके कपोलोंपर वहाँ हुई महाशारसे जिनके अङ्ग विकुल हो रहे थे, वे मत्त्वाके भ्रमर उनके चश्चाल कर्णतालोंसे आहत हो, गुलारव करते हुए मानो संगीत, ताल और बासनिक रागकी सुहि कर रहे थे । उन मधुपोंसे लेखित भाल-चंद्र-धारी गणपति अनुपम शोभा पा रहे थे । उनकी अङ्ग-कान्ति बालरविके लमान अरुणोच्चल थी । उनकी गाँहोंमें निर्मल अङ्गद, गलेमें हेमनिर्मित हार और हँसुली थी तथा मस्तकपर धारण किये हुए मुकुटकी किरणोंके द्वारा वे सब ओरसे दीक्षिमात् दिखायी देते थे । वे चूहेपर विराजमान थे । उनके मुखमें एक ही दाँत था । गजाकार भव्य मूर्ति शोभा पा रही थी । उन्होंने हाथोंमें पाणी, अङ्गुष्ठा, कमल और कुठार-समूह धारण कर रखे थे । उनका कद जँचा था । उनके चार भुजाएँ थीं । वे बोर संग्राममें प्रवृत्त हो । किन्हीं शिखारियोंको हँस्यमें लपेटकर अपने अङ्गुष्ठाकी मारसे उनका कच्छमर निकाल देते थे । अनेक धारवाले फरसेसे समल शिखारियोंका लंहार करते हुए वे शीपरशुदामध्यीके समान बान पहते थे । पैदल बीरों, हाथियों, बोहों तथा रथ-समूहसे युक्त चतुरलिप्ती सेनाको धराशायिनी करके, रथसहित साम्बको पकड़कर, वे युद्धस्त्रले दूर फेंक रहे थे । उन्हें देखकर यदवगणोंसहित प्रसुम्नके मनमें बड़ा विशय हुआ । उन्होंने अपने परम तुदिमान् पुत्र अनिश्चसे वह उसम बात कही ॥ ५२-५७ ॥

इस प्रकार शीर्थ-स्त्रियोंमें विश्वपितृत्वके अन्तर्गत नारद-अङ्गुष्ठाम-संवादमें 'वक्तुदा'

'वर्ण' नामक औरीसदाँ वज्राव भूा हुआ ॥ २४ ॥

पचीसवाँ अध्याय

**प्रश्नुमनका एक बुत्तिके द्वारा गणेशजीको रणभूमिसे हटाकर गुहाकसेनापर विजय प्राप्त करना और
कुबेरका उनके लिये बहुतसी भेट-सामग्री देकर उनकी स्तुति करना; फिर प्राग्ज्योतिषपुरमें
भेट लेकर प्रश्नुमनका विरोधी वानर द्विविदको किञ्चिन्धामें फेंक देना**

प्रश्नुम बोले—बेटा ! ये महाबली गणेश साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णकी कला हैं। इन्हें देवता भी नहीं जीत सकते, फिर भूतलके मनुष्योंकी तो सात ही क्या है ? जिनके निकट इनका बास है, उनके पक्षकी पराजय नहीं होती। पूर्वकालमें भगवान् श्रीकृष्णने शिवलोकमें इन्हें ऐसा ही बर दिया था। यदि ये यहाँ रहेंगे तो हमलोगों की कहापि विजय नहीं हो सकती। भगवान् श्रीकृष्णके ब्रह्मानसे इनका बल बहुत बढ़ा-चढ़ा है और ये शशुभूमिसे जले गये हैं। इत्यिये दुम प्रचण्ड मार्जार (बड़ा भारी विलाव) होकर हुंकार करते हुए पुद्धभूमिसे यश्वरूपक इनके चूहोंके मार भगाओ। इस भग्नयुद्धमें अरने फूत्कारोंके द्वारा दसों दिवाओंमें उसे सदेहो। अबतक मैं शशुतेनापर विजय पाता हूँ, तबतक दुम इसे दीव ही बूर भगानेका प्रयास करो ॥ १-४३ ॥

गारदजी कहते हैं—राजन् ! तब भगवान् अनिरुद्धने प्रचण्ड मार्जारका ल्य धारण किया। वे गणेशजीमें अखलित ही रहे। बैण्डवी मायाके प्रभावसे गणेशजी उन्हें पहचान न सके। वह प्रचण्ड मार्जार विकट फूकार करता हुआ चूहोंके सामने कुद पढ़ा। राजन् ! वह शुद्ध फांड-फांडकर निरन्तर उसे देखने और तीले नलोंते किशोर चोट पहुँचाने लगा। चूहा उस विलावको देखते ही भयसे बिछूट हो गया और तुरंत कॉप्पता हुआ रणभूमिसे भग चला। कोपसे भरा हुआ मार्जार स्थूल ल्य धारण करके उसका पीछा करने लगा। गणेशजी बारंबार उस चूहोंको युद्धभूमिसी ओर लौटानेका प्रयत्न करने लगे; किंतु प्रचण्ड मार्जारसे पीछित चूहा युद्धभूमिकी ओर नहीं लौटा, नहीं लौटा। मैथिल ! वह सात दीपों, सात लघुओं, दिशाओं और विदिशाओंमें तथा ऊपरके दातों लैटोंमें भागता रहिता; किंतु उसे कहीं भी शान्ति नहीं मिली ॥ ५-१० ॥

राजन् ! गणेशजीको पीठपर लिये वह चूहा जहाँ लहाँ भगा, जहाँ-जहाँ प्रचण्ड-पराक्रमी मार्जार भी उसका

पीछा करता रहा। इस प्रकार चूहेसहित गणेशजी अब दुर्दूर दिशाओंमें जले गये और अपने पक्षके सभी प्रमथ गण विसित हो गये, तब पुष्पक-विमानपर बैठे हुए कुबेरने अपनी गुहाक-सम्बन्धिनी माया फैलायी। अपना दिव्य धनुष लेकर, महेश्वरको नमस्कार करके उन्होंने मन्त्रसहित कबच धारण किया और बाण-समूहोंका संधान किया। उसी समय आकाशमें प्रलयकालिक मेघ छा गये। विजलियोंकी गडगडाइट और महाभयंकर मेघोंकी घटासे अन्धकार फैल गया। श्वायीके समान मोटे-मोटे जलविन्दु और ओले गिरने लगे। बाहल अस्त्यन्त भयंकर जलधाराओंकी हृष्टि करने लगे। क्षणभरमें समस्त लम्होंने भूतलोंको आङ्गावित कर लिया। रणमण्डलमें सजीव पर्वत दिखायी पड़ने लगे। प्राकृत प्रलय हुआ जान यादव भयसे बिछूट हो गये। वे अस्त-शस्त्र त्यागकर बारंबार ‘श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण’ युकारने लगे। गुहाकोंकी उस मायाको जानकर भगवान् श्रीप्रश्नुम हरिने अपनी लक्षात्मिका विद्वान्, जो समस्त मायाओंको नष्ट करनेवाली है, अपकर बाणके बीचमें कामबीज (कर्णी) की स्थापना की। फिर उसके मुखपर प्रणव तथा श्रीबीज (अँ श्री) का आधान करके उसे कानतक सींचा और चतुर्भुज श्रीकृष्णका स्मरण करके विद्युतके समान ठंकार-ध्वनि करनेवाले धनुषसे भुजदण्डोद्धारा उस विशिलको चलाया। कोदण्ड-दण्डसे छूटे हुए उस विशिलने दिल्लाढलको उचोतित करते हुए उस गुहाक-सम्बन्धिनी मायाको उसी तरह नष्ट कर दिया, जैसे सूर्यदेव अन्धकारका ल्पंस कर देते हैं ॥ ११-२१३ ॥

यह देख पुष्पकपर बैठे हुए राजराज कुबेर भयमीत हो कोप उठे और यक्षोंके साथ समराङ्गणसे भागकर अपनी पुरीको चले गये। देवताओंग प्रश्नुमके ऊपर फूलोंकी बर्चा करने लगे। समस्त यादव जय-जयकार करते हुए इष्टके साथ इसने लगे। राजन् ! उस समय अस्त्यन्त इर्षित हो राजराज कुबेर हाथ लोड, भेट लेकर

शीत ही प्रशुद्धके उपर्यने गये । राजन् । हो सौंहोंसे
सुशोभित और चार दौलतोंसे युक्त, ऊँचाईमें पर्वतोंसे भी
होइ क्लेनेको दो लाल मदवर्णी हाथी, मोतीकी बदनवारोंसे
सुशोभित, सुवर्णनिर्धित, सूर्यतुल्य तेजस्वी एवं सौ
बोहोंसे लिखे हुए इस लाल रथ, चन्द्रमाके नमान इवेत
कानिकाले इस अरब बोहे, माणिक्यजटित चार लाल
चमकीली शिखिकाएँ तथा पिंजरोंमें बंद दो लाल सिंह
कुबेरने प्रशुद्धको भेट किये । विदेहराज ! चीति, मुग,
गवय और शिकारी कुत्ते एक-एक करोड़की संख्यामें
दिये । नृपेश्वर ! पिंजरोंमें विराजमान तोता, मैना, कोकिल,
सुनहरे हंस और अन्यान्य विचित्र पक्षी राजराजने
लाल-लालकी संख्यामें अर्पित किये ॥ २२-३०॥

कुबेरने विश्वकर्माका बनाया हुआ विष्णुदत्त नामक
एक विमान भी दिया, जिसमें मोतीकी छालरें लटक
रही थी । उसकी ऊँचाई आठ योजन और लंबाई-
चौड़ाई नौ योजनकी थी । उसमें लाल-लाल ध्वज और
कलश लो हुए थे । वह इच्छानुसार चलनेवाल विमान
सुवर्णमय शिखरोंसे सुशोभित तथा सहस्रों सूर्योंके समान
नेजस्वी था । मैथिल । उसके अतिरिक्त सहस्रों कल्पवृक्ष,
मैकड़ों कामधेनुएँ, सौ चिन्तामणियाँ तथा सौ दिव्य पारस
पथर भी कुबेरने दिये, जिनके स्पष्टमें लेहा भी सोना
हो जाता है । छत्र, चैंबर और सोनेके सिंहासन भी सौ-
सौकी संख्यामें भेट किये । दिव्य पश्चोंकी सुन्दर केसोंसे
युक्त माल ही । सौ द्वोष अमृत, नाना प्रकारके फल, रस-
जटित सोनेके आभूषण, दिव्य बज्ज, दिव्य कार्त्तान,
सोने-चाँदीके करोड़ों सुन्दर पात्र, अमोब शाल तथा कोटि
सुवर्णमुद्राएँ भी भेट कीं । बोक्त ढोनेवाले हाथियों और
मनुष्योंद्वारा सब लामान भेजकर कुबेरने नौ निधियाँ
प्रदान कीं । इस प्रकार महात्मा प्रशुद्धको भेट-सामग्री
अर्पित करके राजराजने उनकी परिकल्पना की और इससे
भरकर प्रणामपूर्वक उनसे कहा ॥ ३१-३८॥

कुबेर कोहे—आप भगवान् महात्मा पुरुष हैं; आपको
नमस्कार है । आप अनादि, सर्वज्ञ, निर्गुण एवं परमात्मा
हैं । प्रधान और पुरुष—दोनोंके निकल्ता और प्रस्तर-चैतन्य-
वाय हैं; आपको वारंवार नमस्कार है । स्वर्वंचोत्तिःस्वरूप
और वयाङ्गल अङ्गवाले आपको नमस्कार है । आप चालुदेवको
नमस्कार, लंकवर्णको नमस्कार, पशुओं, अनिष्ट एवं
लालस-भक्तोंके प्रतिपालक आपको नमस्कार है । आप ही

‘भद्रन’, ‘मार’ और ‘क्षमद’ आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं;
आपको वारंवार नमस्कार है । दर्शक, काम, पञ्चवाणी
अनन्त तथा शम्भरासुरके शाशु भी आप ही हैं; आपको
नमस्कार है । हे मनमय ! आपको नमस्कार है । हे
मीनकेतन ! आपको नमस्कार है । आप मनोभव देव तथा
कुसमेषु (पूर्णोंके बाण बारण करनेवाले) हैं; आपको
नमस्कार है । अनन्यज ! आपको नमस्कार है । रत्नपते !
आपको वारंवार नमस्कार है । आप पुष्पचन्द्रा और
मकरध्वजको नमस्कार हैं। प्रशु स्वर ! आपको नित्य नमस्कार है ।
जगद्विजयी आप कामदेवको लाल ग्रामम है ।
लक्ष्मयतीके भर्ता तथा सुन्दरीके पति आपको नमस्कार है ।
भूमन । ‘मैं यह कहूँगा, यह करता हूँ’, ‘यह मेरा है, यह
तुम्हारा है’, ‘मैं सुखी हूँ, दुखी हूँ’, ‘ये मेरे सुहृद लोग हैं’—इत्यादि वार्ते कहता हुआ यह लाल जात् अहंकारसे
मोहित हो रहा है । प्रधान, काल, अनन्तःकरण और शरीर-
अनित गुणोंद्वारा शास्त्रविशद्ध कर्म करनेवाला जनसमुदाय
वन्धनमें पढ़ता है । वह काँचमें बालकको, बालुका-
राशिमें जल्को और रस्तीमें सर्पको अपनी ओँखोंसे
देखता है, भ्रमको ही सत्य मानता है । यही दशा मेरी है ।
आज मैंने प्रूढतापश आपकी अवैल्लना की है । प्रभो !
आपकी मायासे मेरा चित्त मोहित था, इसीलिये मुझसे देशा
अपराध बन गया । परंतु जैसे पिता बालकके अपराधको
अपने मनमें स्थान नहीं देता, उसी प्रकार आप भी मेरे
अपराधको भुला देंगे । आपकी कृपामें फिर मेरी ऐसी
बुद्धि कभी न हो । आपके चरणारविन्दोंमें सदा मेरी
पराभक्ति बनी रहे, जिसे सर्वोत्कृष्ट माना गया है । आप
मुझे वैराग्ययुक्त ज्ञान, जो परम कल्याणका आधार है, प्रदान
करें और अपने भक्तजनोंके प्रशस्ति सत्सङ्गका अवसर
देते रहें ॥ ३९-५० ॥

* कुबेर उचाच

समस्तुम्भं मालते पुरुषाय महास्मने ॥
स्वादये सर्वादिदे निरुणाय महास्मने ॥
प्रथनसुखेदाय प्रस्तराम्भे नमो नमः ॥
स्वर्वंचोत्तिःस्वरूप इमामज्ञाय ते नमः ॥
नमस्ते चालुदेवाय नमः संकरणाय च ॥
प्रशुशासनिस्त्राय सात्त्वां पत्ते नमः ॥
वज्राय च मारय कंदर्पाय नमो नमः ॥

गारुदजी कहते हैं—राजन् ! जो प्रातःकाल उठकर प्रशुभ्नके कल्याणमय स्तोत्रका पाठ करेगा, उसके सकटकालमें आश्रम् भीहरि सदा तदायक होगे । ६ राजन् । इस प्रकार सुनि करनेवाले यश्चराज कुबेरसे भगवान् प्रशुभ्न हरिने कहा बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा ।’ फिर उन्होंने सिरपर धारण करने थोथ्य पश्चात् मणि दी । ‘इरो मत’ यों कहकर, अभ्यक्षान है, यादवेशर प्रशुभ्नने कुबेरको लीला-छत्र, चँचर और मधिमय सिंहासन प्रीति-पुरस्कारके रूपमें प्रदान किये । तदनन्तर प्रशुभ्नकी परिक्रमा करके धनेश्वर राजराज चले गये । महात्मा प्रशुभ्नके द्वारा राजराज कुबेरकी परायज्ञ हुई सुनकर किंचन्ही राजाओंने भी उनके साथ युद्ध नहीं किया । सबने साहसर भेट अर्पित की ॥ ५१-५४६ ॥

तत्प्रश्नात् महाबाहु प्रशुभ्न बहुत-मी दुन्दुभियोंका घोष फैलते हुए सारी सेनाके साथ प्राण्योतिशपुरको गये । वहाँ गौमातुरके पुत्र नीलने उनके तेजमे तिरस्कृत हो तस्काल

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्ववित्सुप्तके अन्तर्गत नारद-बहुलादव-संबादमें ‘यश्च-देशप्र विजय’ नामक पञ्चसर्वां अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

चूड़वीभवाँ अध्याय

किम्पुरुषवर्षके राजन्नलीपुरमें किम्पुरुखोंद्वारा हरिचरित्रिका गान; वहाँके राजाद्वारा भेट पाकर **यादव-सेनाका आगे जाना;** मार्गमें अजगररूपधारी शापश्रृष्ट गन्धर्वका उद्धार; **व्रसन्ततिलका पुरीके राजा शृङ्गर-तिलकको पराजित करके प्रशुभ्नका हरिवर्षके लिये प्रस्थान**

गारुदजी कहने हैं—राजन् ! तदनन्तर प्रशुभ्न कमलोंसे अलकृत भरोवरोंद्वारा सुगोभित दूसरे-दूसरे देजोंकी दिव्य वृक्षों और दिव्य लक्ष्मीओंसे व्याप तथा सहस्रदल ओर गये । प्रचण्ड-प्राक्रमी प्रशुभ्न तौ अक्षौहिणी सेनाके

दर्पकाय च कामय पश्चात्पाणव ते नमः । अनङ्गय नमस्तुर्यं नमस्ते शम्बरत्ये ॥

हे मन्मह नमस्तुर्यं नमस्ते यीकेगन । भनोमवाय देवाय नमस्ते कुमुमेषवे ॥

अनङ्गव नमस्तुर्यं रतिभने नमो नमः । नमस्ते पुष्पभुवे मकरज्ञव ते नमः ॥

स्वराव ग्रमवे निर्वं अग्नपित्रिकारिणे । नमो रवमवतीभने सुन्दरीपतये नमः ॥

इं करिष्यामि करोमि भूम् भवेदमसतीति तवेदमामृष् । अं चुक्षी दुःखसुतः शुद्धज्ञानो लोको शाहंकरदिमेहितोऽस्मिः ॥

प्रथान्नदाकाशवदेवैशुग्मः कुर्वत् विक्षमीणि ज्ञनो निवच्यते । कामेऽभेदं सेकत एव जीवनं गुणे च सर्व प्रत्योति सोऽस्मिः ॥

इं न्या ऐक्षमय यैक्षमयत्वन्मायवा मोहितवैतसा प्रयो । न मन्यसे शालकूनं पितेव हि भा भूत् पुनमे भतिरीकृशी मनाक् ॥

तदा भवेत्तदाकाशवदिव्यवेद्यकिः परा या च विकुर्वनीयतीय् । शान च वैराघ्यानं विश्वसदं देहि प्रशुभ्नं विश्वसाकुसंगमम् ॥

(गण०, विश्ववित्सुप्त० २५ । ३९-५०)

* नारद वचन

प्रशुभ्नव्य दृष्ट स्तोत्र भवत्प्रवाचन् ४: पठेत । सक्षमे गत्य भवत सहायः साहृदयः व्याप् ॥

(गण०, विश्ववित्सुप्त० २५ । ५१)

साथ यज्ञोदारा बताये हुए यारे किम्बुद्धवर्षमें गये । वहाँ
हेमकृट गिरिकी तराईमें रङ्गबल्लीपुर है । वहाँके निवासी
किम्बुद्ध शम्भरारि प्रशुभ्नके सुनते हुए कह रहे थे ॥ १—३ ॥

किम्बुद्ध कहते थे—अहो ! पुरियोंमें ऐष मधुरपुरी
अस्थन्त धन्य है, जिसमें साक्षात् परमेश्वर हरिने अवतार लिया
है । अहो ! यहुकुल सदा ही परम धन्य है, जिसमें समस्त
ब्रह्माण्डके पालक श्रीहरिका प्रादुर्भाव हुआ है । श्रुपुण
बसुदेवका वह निवास-मन्दिर भी धन्य है, जिसे गोलोकनाथने
अपनी उपस्थितिसे अस्थन्त मनोहर बना दिया है ।
देवताओंके लिये भी परम हुँस्त्रभ वह माधुर-मण्डल धन्य है,
जहाँ माधव विचरते हैं । वह मनोहर महावन धन्यातिधन्य
है, जहाँ शिशुरूपधारी श्रीहरि अपने जन्मस्थानको छोड़कर
गये, जहाँ शिशु बलरामके साथ श्रीकृष्ण विचरते हैं और
उनके दुधमुँहे बालकरूपका माता यशोदाने सुन्दर ढंगसे
लालन-पालन किया है । परापर परमात्मा श्रीकृष्णके
चरणारविन्दोंके शब्दन परागसे विराजित श्रीकृष्णावन
अस्थन्त पुण्यस्तम तीर्थ है, जहाँ गोप-बालों और बलरामजीके
साथ गौँप चरते हुए साक्षात् श्रीहरि विचरते हैं ।
जिस बृन्दावनमें भगवान् श्रीकृष्ण वज्रसुन्दरियोंके साथ
दानलीला, मानलीला तथा रासलीला करते हुए विचरते हैं,
उसके भी पवित्र यथाका तीनों लोकोंके लोग गान करते हैं ।
अहो ! बृषभानुनन्दिनी लीलावती श्रीराधा, जो अपने गोलोक-
धाममें शोभा पाती हैं, परम धन्य हैं, जिन्होंने भ्रमरोंके
गुलारबने व्यास कालिदीतटवर्ती बनमें श्रीकृष्णके साथ
विहार किया है । अहो ! कलिदनन्दिनी यमुना भी धन्य
हैं, जो भगवान् श्रीकृष्णके बायें कंधेसे प्रकट हुई हैं । उसके
तटपर भ्रमरोंकी व्यासिसे व्यास जो बंशीष्ट है, उसके तथा
उसके निकटवर्ती यमुनाजलके स्पर्शसे मनुष्य कृतार्थ हो
जाता है । जिसका प्रादुर्भाव भगवान् श्रीकृष्णके वक्षःस्थलसे
हुआ है तथा जिसके दर्शनसे पुनर्जन्म नहीं होता, वह उत्कृष्ट
गिरीन्द्रराज-राज गोवर्धन ब्रह्मण्डलमें विराजमान है । अहो !
बेकुण्ठ-लीलकी अधिकारिणी कुशस्थली नामधारी मनोहर
पुरी धन्यातिधन्य है, जो आकाशमें विशुभ्नमण्डलसे येजमालाकी
माँसि भूतव्याख बालक-मण्डलसे विराजमान है । उस कुशस्थलीमें
ही साक्षात् परमपुण्ड्र परमेश्वर चतुर्भूहस्य वारण करके
अस्थन्त शोभा पा रहे हैं । जिन्होंने राजा उपरेनको राजा
विराजकी पदवी दे दी, उन श्रीकृष्ण हरिको बारंबार
नमस्कार है । उन दुष्टिमान् राजा उपरेनसे प्रेरित हो महान्

बीर मकरध्वज प्रशुभ्न सम्पूर्ण जगत्पर विजय पानेके लिये
निकले हैं, जिनका तुर्लभ दर्शन पाकर आज इमल्लेग वर
ओरसे कृतार्थ हो जायेगे ॥ ४—१४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार दुखलल
यज्ञोदर्धक नरिंद्रोदारा श्रीहरिने निर्मल शिलेकको उसी प्रकार
और भी निर्मल बना दिया, जैसे पूर्ण चन्द्रमाकी किरणोंसे
मिलकर ऊँची उठसी हुई चमकीली तरंगोदारा म्वर्गीय गजराज
ऐरावत क्षीरसिंघुके दुर्घटको और भी उज्ज्वल बना देता है ।
नरेश्वर ! इस प्रकार शम्भरारि प्रशुभ्नने अपने निर्मल यज्ञका
गान सुनकर अस्थन्त इससे रोमाञ्चित-शरीर होकर उन
किम्बुद्धोंको केलूर, हार, नवरत्न, मनोहर किरीट, मणिमय
कुण्डल और कंगन आदि बहुत बन दिया । रङ्गबल्लीपुरके
स्वामी चन्द्रबंशी राजा सुवाहुने नमस्कार करके महाराजा
प्रशुभ्नको बलि (मैट) अर्पित की । उनपर प्रसन्न होकर
महामना मीनकेतन भगवान् प्रशुभ्नने उन्हे दिव्य चूहामनि
देकर इस प्रकार पूछा ॥ १५—१८ ॥

प्रशुभ्न बोले—राजन् सुवाहु ! इस नगरका
'रङ्गबल्लीपुर' नाम किम्बने रखा है ? यह नाम तो मैं पहले
पहल आपके ही मुँहसे सुन रहा हूँ, अतः इस विषयमें
आप सब कुछ मुझे बताइये ॥ १९ ॥

सुवाहुने कहा—राजन् ! पूर्वकालमें देवताओं और
भूतोंने मिलकर क्षीरसागरका मन्थन किया । उसमें चौदह
रत्न निकले । फिर उस भागसे अमृतपूर्ण मनोहर कला
निकला । उस कलशको साक्षात् कमलनयन श्रीहरिने
दोनों नेंगोंसे देखा । उसके नेंगोंसे हर्षके आँखोंकी एक बूँद
उस कलशमें गिर पड़ी । उससे एक बृक्ष उत्पन्न हुआ,
जिसे 'तुलसी' कहते हैं । भगवान् विष्णुने उस बृक्षका
नाम रखा—'रङ्गबल्ली' । उन्होंने किम्बुद्धवर्षके
हेमकृट पर्वतकी उपत्यकामें भूमिपर उष्टु रङ्गबल्लीकी
स्थापना की; अतः वह रङ्गबल्ली नामक बृक्ष सदा यहीं
विराजता है । उसी बृक्षके नामपर यह नगर 'रङ्गबल्लीपुर'
नामसे प्रसिद्ध हुआ । यहाँ प्रतिदिन रामपूजक महात्मा
हनुमानजी संगीतकुशल आष्टिष्ठेके साथ दर्शनके लिये
आया करते हैं ॥ २०—२५ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! यह सुनकर प्रशुभ्नजीने
मनोहारिणी रङ्गबल्लीजीका दर्शन किया और उसकी परिक्षण
करके वे अन्य देशोंको गये ॥ २६ ॥

ऐमकूटकी तत्त्वादीमें एक दशा भयंकर बन ग्रास हुआ, जो शिथियोंकी क्षकारसे युक्त और सिंह तथा चीतोंके दहानेकी आवाजसे असत था। जंगली गवराजोंसे और दुए उस बनमें गीदहों और उल्लुओंकी आवाज मुनावी देती थी। बाँस, पीपल, मधर, बरगद, घोड़पत्र, काली हरैकी बेंडों और बेरके बुक्कोंसे वह बन अस्थन्त बना जान पड़ता था। उस बनसे एक अजगर सौंप निकला, जो दस बोजन लंबा था। वह बारंबार झुकारता हुआ छुंड-के-झुंड हाथियोंको निगलने लगा। मिथिलेश्वर ! उस समय सेनामें हाहाकार मच गया। उसके प्रचण्ड विषसे मिली हुई बायुमें विभिन्न दिशाओंकी सारी वस्तुएँ भस्स हो जाती थीं। तब भानु, सुभानु, स्वर्मानु, प्रभानु, भानुमान, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, अतिभानु, श्रीभानु और प्रतिभानु—सभ्यभामाके इन दस पुत्रोंने तीखे बाणोंसे उस भयंकर एवं मदमत्त सर्पको बीचना आरम्भ किया। बाणोंसे सारे अङ्ग छिन्न-मिछ हो जानेके कारण वह पृथ्वीपर गिर पड़ा और सर्पका रूप छोड़कर एक तेजस्सी एवं दीसिमान् गन्धर्व हो गया। उसने समल श्रीकृष्ण-पुत्रोंको नमस्कार किया। देवता खूल बरसाने लगे और वह समस्त दिक्ष्मण्डलको उद्भासित करता हुआ विमानके द्वारा सर्वगलेको चला गया॥ २७-३५ ॥

वाहुदाख्यने पूछा—मुने ! यह गन्धर्व कौन था और पहलेके किस पापसे सर्प हुआ था, यह बताइये; क्योंकि आप भूत, वर्तमान और भविष्यकी बातें जाननेवालामें सबसे श्रेष्ठ हैं॥ ३६ ॥

वारदजी कहते हैं—राजन् ! अहिंसण गन्धर्वका जो सुन्दर भ्राता सुमति था, वह इनुमानजीसं रामायण पढ़नेके लिये आया। इनुमानजी हैमकूट पर्वतपर श्रीरामकी सेवामें प्राप्तकालसे लेकर चौदह षष्ठीतक लगे रहते थे। वे लक्ष्मण-सहित जानकीपति श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान कर रहे थे। इसी समय उसने सांपकी भाँति झुककार करके इनुमानजीका ध्यान भङ्ग कर दिया। तब बानरराज महावीर इनुमानजीने कुपित होकर सुमतिको शाप दे दिया—‘दुर्बुद्धे ! तू सर्प हो जा !’ सुमतिने उसी समय उनके चरणोंमें प्रणाम करके हाथ छोड़कर कहा—‘देव ! आप अपनी शरणमें आये हुए युक्त दीनकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये’॥ ३७-४१ ॥

तब प्रसन्न होकर चर्मण भगवान् इनुमानने सुमतिसे

कहा—‘द्वापरके अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णके पुत्रोंके धनुषसे छूटे हुए तीखे बाणोंद्वारा जब तुम्हारा शरीर विदीर्ण हो जायगा, तब तुम अपने गन्धर्व-शरीरको प्राप्त कर लोगो—इसमें सशय नहीं है।’ विदेहराज ! वही सुमति नामक गन्धर्व शापमें मुक्त हुआ। नपुरकर्णोंका शाप भी बरदानके तुल्य है; फिर उनका बरदान मोक्ष देनेवाला हो जाय, इसके लिये तो कहना ही क्या है॥ ४२-४३ ॥

तदनन्तर श्रीकृष्णकुमार महावाहु प्रशुभ ननोहर चैत्र-देवीको गये, जो वासनी और माधवी लक्ष्मीसे सुशोभित थे। यहाँ भ्रमरोंका ध्वनिसे शोभा पानेवाले सहस्रदल कमलोंका पराग मरोबरोंमें अन्नीर-चूर्णकी भाँति गिरता था। रास्तेमें इलायनी और लौगंकी लक्ष्माँ लहलहाती थीं, जो सेनिकोंके पैरोंसे कुचलकर धूलमें मिल जाती थीं। छुंड-के-झुंड भ्रमर हाथियोंके कण्ठतालामें ताढ़ित हो आस-पास मँडरते हुए शोभा पाते थे॥ ४४-४६ ॥

राजन् ! वहाँके पुरुष दस हजार हाथियोंके समान बलवान् होते हैं। उनके शरीरपर छारियों नहीं दिखायी देतीं। उनके बाल नहीं पकते और शरीरमें पसीना, शकावट एवं दुर्गन्ध नहीं होती। वहाँ प्रतिदिन ब्रेता-युक्ते समान समय रहता है। दिव्य ओषधियों तथा नदियोंके गुणकारी प्रभावमें वहाँके लोगोंकी आयु दस हजार वर्षकी हुआ करती है। वहा अमृतके समान जल और स्वर्णमयी भूमि शोभा पाती है। उस भूमिमें मोती, मैंगो, वैदूर्य आदि रत्नोंकी उत्पत्ति होती है। वहाँकी मदमत्त रमणियों नहीं सुन्दरी और अक्षय यौवनमें विभूषित होती हैं। वे वहाँके उपवनोंमें दूरसं दैसी चमकती हैं, जैसे बादलोंमें विजलिया॥ ४७-५० ॥

वहाँ वसन्ततिलका नामकी एक सुन्दर सुरम्य नगरी है, जहाँ शृङ्गर-सिलक नामके महाबली राजा राज्य करते हैं। विजयी वर्षोंको एकत्र करके, स्वयं भी कवच धारण किये, हाथीपर सवार हो, वे राजा शृङ्गर-सिलक प्रशुभके नामने युद्धके लिये निकले। उस समय लाम्ब, सुमित्र, पुरुजित, शतजित, सहस्रजित, विजय, चित्रकेतु, वसुमान, द्रविड़ और कत्तु-जाम्बवतीके इन दस पुत्रोंने वहाँ नाराचोंसे दुर्दिन उपस्थित कर दिया। मैथिल ! उन बाणोंसे विदीर्ण होकर विपक्षी योद्धा भागने लगे। बाणोंसे अन्धकार छा जानेपर वहाँ महान् कोलाहल मच गया। तब महाबली श्री-तिलकन हाथीपर बैठे बैठे ही विश्वले

टोषपूर्वक साम्बकी छातीपर चोट पहुँचायी तथा अन्य शोद्धाओंको अपने धनुषसे कूटे हुए बाणोंद्वारा भराशायी कर दिया । वे युद्धभूमिमें अकेले इस प्रकार विचरने लो, जैसे वनमें दावानल फैल रहा हो । उन नमय गदने आकर उनके महमत्त हाथीको उसकी सँड पकड़कर पृथ्वीपर पटक दिया । राजा शृङ्खर-तिलक भी तत्काल दूर जा गिरे ।

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजितस्त्रिके अन्तर्गत नरद-बहुलाद्य-संवादमें किम्बुकस्त्रिपर
विजयनामक ठन्डीसर्वां अध्याय पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सत्ताईसर्वाँ अध्याय

**प्रशुम्नद्वारा गरुडास्का प्रयोग होनेपर गीर्घोंके आकमणसे यादव-सेनाकी रक्षा;
दशार्णदेशपर विजय तथा दशार्णमोचन तीर्थमें स्नान**

नारदजी कहते हैं—राजन् । हरिवर्ष नामक खण्ड सम्पूर्ण सम्पदाओंसे सम्पन्न है । मिथिलेश्वर ! उसकी सीमा साक्षात् निश्च वर्वत है । वीरोंके कोदण्डोंकी टंकार-ध्वनिसे वहाँका बन्धनान्त व्यास हो जानेपर, वहाँसे एक-एक कोसके लंबे शारीर और तीखी चोंचवाले महाशृंग तथा गश्छ पक्षी उड़े । नरेश्वर ! वे सब-के-सब दीर्घायु और भूखे थे । उन्होंने यादव-सेनिकों, हाथियों और घोड़ोंको भी अपना ग्रास बनाना आरम्भ किया । आकाश पक्षियोंसे व्यास हो गया । उनकी पाँखोंकी इबासे आँधी-सी उठने लगी । सेनामें अन्धकार छा गया और महान् हाहाकार होने लगा ॥ १-४ ॥

तब महाबाहु श्रीकृष्णकुमार प्रशुम्नने गरुडास्का उंधान किया । उस अञ्चसे साक्षात् विनानन्दन पक्षिराज गश्छ प्रकट हो गये । अन्धकारसे भी दुई उस सेनामें पहुँचकर पक्षिराजने अपनी चोंच और चमकीले पंखोंकी मोरसे कितने ही गीर्घों, कुलिङ्गों और गरुडोंको भराशायी कर दिया । उन सबका धमंड नूर हो गया, पंख कट गये और वे सब पक्षी क्षत-विक्षत हो गश्छके भयसे धबराकर दसों दिशाओंमें भाग गये ॥ ५-७३ ॥

तदनन्तर महाबाहु श्रीकृष्णकुमार दशार्ण जनपदमें गये । दशार्ण देशके राजा शुभाङ्ग सूर्यवंशी क्षत्रिय थे । युद्धमें उनका बल दस हजार हाथियोंके समान हो जाता था । वे निष्कौशाम्नीयुरीके अधिपति थे । वेदव्यासके मुखसे प्रशुम्नका प्रचण्ड पौरुष सुनकर वे दशार्णा नदी पार करके आ गये थे । शुभाङ्गने हाथ जोड़कर किरीटसहित अपना मस्तक छुका

फिर तो भृपसे व्याकुल हो उन्होंने युद्धमें उसी क्षय दोनों हाथ जोड़ लिये और एक अरब घोड़े, एक लास रथ और दस हजार हाथी प्रशुम्नको मैटमें दिये ॥ ५१-६० ॥

इस प्रकार किम्बुकस्त्रिपर विजय पाकर महाबली श्रीकृष्णकुमार प्रशुम्न निषादोंके दिखाये हुए मार्गसे हरिवर्षकी ओर प्रस्थित हुए ॥ ६१ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजितस्त्रिके अन्तर्गत नरद-बहुलाद्य-संवादमें किम्बुकस्त्रिपर

विजयनामक ठन्डीसर्वां अध्याय पूरा हुआ ॥ २६ ॥

दिग्य और महात्मा प्रशुम्नको उत्तम रत्नोंकी मैट दी । सर्वत्र व्यापक और सर्वदर्शीं साक्षात् भगवान् प्रशुम्नने शुभाङ्गसे लोकसंग्रहकी इच्छासे इस प्रकार पूछा ॥ ८-१२ ॥

प्रशुम्नने कहा— निष्कौशाम्नीयुरीके अधीश्वर राजन् । यह देश 'दशार्ण' क्यों कहलाता है ! किसके नामपर इसका ऐसा नाम हुआ है, यह मुझे बताइये ॥ १३ ॥

शुभाङ्गने कहा—पूर्वकालमें भगवान् नृसिंह हिरण्यकशिपुको मारकर प्रह्लादके साथ वहाँ आये और हरिवर्षमें ही वस गये । भक्तवत्सल भगवान् नृसिंहने प्रह्लादसे कहा ॥ १४३ ॥

नृसिंह बोले—पुत्र ! तुम मेरे शान्त-भक्त हो; तथापि तुम्हारे पिताका मेरेद्वारा बघ हुआ है; अतः महामते ! मैं तुम्हारे बंशमें अब और किसीको नहीं मारूँगा ॥ १५ ॥

शुभाङ्ग कहते हैं—क्षिमणीनन्दन ! इस प्रकार कहते हुए भगवान् नृसिंहके दोनों नेत्रोंसे आनन्दजनित जलविन्दु पृथ्वीपर गिरे । उन विन्दुओंसे 'मङ्गलायन सरोवर' प्रकट हो गया । तब वरप्राप्त धर्मात्मा प्रह्लाद हर्षविहृत हो दोनों हाथ जोड़कर भगवान् नृसिंहसे बोले ॥ १६-१७ ॥

प्रह्लादने कहा—भक्तजनप्रतिपालक परमेश्वर ! मैंने माता-पिताकी सेवा नहीं की; अतः मैं उनके शूणसे कैसे ब्रुक होऊँगा ? ॥ १८ ॥

नृसिंह बोले—महाभाग ! तुम मेरे नेत्र-अस्त्रसे प्रकट हुए इस मङ्गलायन तीर्थमें स्नान करो । इससे तुम दस प्रकारके

शृणौसे कुटकारा पा जाओगे । मासा, पिला, पल्ली, पुञ्च, गुरु, देवता, नाशन, इरण्यात, शृणि तथा पिलरोका शृण 'दशार्ण' कहता है । जो इस महातीर्थमें स्नान कर लेगा, वह सबकी अवृत्तिमें तप्त हो तो भी दस प्रकारके शृणौसे कुटकारा पा जायगा—इसमें सदाय नहीं है ॥ १९-२१ ॥

शुभाह कहते हैं—क्याधू-कुमार प्रह्लाद इस 'दशार्णमोचन तीर्थ'में स्नान करके सब शृणौसे मुक्त हो गये । वे आज भी निष्ठगिरिसे यहाँ इस तीर्थमें नहानेके

इस प्रकार श्रीगंग-संहितामें विश्वविजयकथके अन्तर्गत नापद-बहुलादव-संवादमें 'दशार्ण देशपर विजय' नामक सत्तार्हसदाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७ ॥

लिये आया करते हैं । दशार्णमोचन तीर्थके निकटका देश 'दशार्ण' कहलाता है । उसीके स्रोतमें प्रकट हुई यह नदी 'दशार्ण' कहलानी है ॥ २२-२३ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् । यह सुनकर भगवान् प्रशुभने भगवत् परिकरोंके साथ दशार्णमोचन तीर्थमें स्नान और दान किया । नरेश्वर । जो दशार्णमोचनकी कथा भी सुन लेगा, वह इस शृणौसे मुक्त हो जायगा और मोक्षका भागी होगा ॥ २४-२५ ॥

अद्वैहसवाँ अध्याय

उत्तरकुरुवर्षपर यादवोंकी विजय; वाराहीपुरीमें राजा गुणाकरद्वारा प्रशुभनका समादर

नारदजी कहते हैं—राजन् । इसके बाद महानाडु प्रशुभ सुमेषके उत्तरवतीं और शङ्खवान् पर्वतके पास बसे हुए विचित्र समृद्धिशाली 'उत्तरकुरु' नामक देशमें गये । वहाँ 'भद्रा' नामकी गङ्गामें स्नान करके वे वाराहीनगरीमें जा पहुँचे, वहाँ कुरुवर्षके अधिपति चक्रवतीं सप्ताट् गुणाकर राज्य करते थे ॥ १-२ ॥

राजा गुणाकरने वहाँ भारी सामर्ग्रीका संचय करके देशविर्गणोंसे विर रहकर दसवें अश्वमेष यशका अनुष्ठान आयोग्य किया था । उन्होंने एक मनोहर इवत्वर्ष श्यामकर्ण अश्व छोड़ा था और उनके पुत्र वीरधन्वा उस अश्वकी रक्षाके लिये निकले थे । प्रचण्ड-पराक्रमी महावीर वीरधन्वा उस बोडेकी देस-भाल करते हुए दस अक्षोहिणी सेनाके साथ विचर रहे थे । वीर, चन्द्र, सेन, चित्रगु, वेगवान्, आम, शङ्ख, वसु, भीमान् और कुन्ति- नागजितीके इन दस पुरोंने सब ओरसे शुभ्र बोडेको बेरकर पकड़ लिया और हरसे भरे हुए वे 'यह किसका छोड़ा हुआ छोड़ा है!' - यों कहते हुए प्रशुभकी सेनाके पास आये । उसके ललाटमें बैठे हुए पञ्चको पढ़कर प्रशुभको बद्ध विस्तय हुआ । तमसा यादव द्वायोंमें उत्तम आयुध लिये विस्तयमें पढ़े हुए थे ॥ ३-८ ॥

नरेश्वर । इसनेमें ही उस बोडेको लोजती हुई वीरधन्वा की सेना वहाँ आ पहुँची । उसकी सेनाके लोग धाव वाहिनीसे उड़ती हुई धूलकी देसकर आश्वर्यचकित हो दूर

ही स्वेच्छा रह गये । वे मन-ही-मन सोचने लो—'प्रचण्ड-पराक्रमी राजा गुणाकरके शासन-कालमें कुरुवर्ष-मण्डलमें दस्यु किंवा लुटेरे कहीं नहीं हैं । गौओंके चरकर लौटनेका भी समय नहीं हुआ है । कहींसे बवण्डर उठा हो, यह भी नहीं जान पहुँचा । फिर यह सूर्यमण्डलको आच्छादित कर लेनेवाला धूल-समूह कहासे आया ?' दूसरी सेनाके लोग जब इस प्रकार यातें कर रहे थे, उसी समय घनुषकी टकार, हथियोरी चिंगाड़, गजराजोंकी चीतकार, शोड़ोंकी हिनहिनाहट तथा रणवादीर्थोंका ध्वनि इन सबकी मिली-खुली आवाज सुनाया दी ॥ ९-११ ॥

तब श्रीकृष्णकुमार प्रशुभनकी प्रेरणासे उद्धवजी तुरत ही वीरधन्वाकी सेनामें पहुँचकर, रथपर बैठे हुए गुणाकरके औरस-पुत्र सूर्यतुस्य तेजस्वी वीरधन्वाको प्रणाम करके उनसे इस प्रकार बोले—'राजन् । भूपालों-के इन्द्र, द्वारकाधीश, यदु-कुल-भूषण महाराज उत्तरेण जम्बूदीपके राजाओंको जीतकर राजसूय यज्ञ करेंगे । उनकी प्रेरणासे घनुर्धोरोंमें श्रेष्ठ वीर प्रशुभ भारतवर्ष, किम्पुरुषवर्ष तथा हरिवर्षको जीतकर उत्तरकुरुवर्षमें पश्चारे हैं । उत्तरकुरुवर्षके स्वामी भी महात्मा प्रशुभनको अवश्य मैट देंगे । दस अक्षोहिणी सेनाके साथ आये हुए प्रशुभ-का कुबेरने भी पूजन किया है, अतः तुम्हें भी महात्मा प्रशुभनको उपहार देना चाहिये । उनके हारा बाँधे गये यज्ञपशुको लौटा लेनेकी शक्ति इस भूतस्त्रर और किरणमें है ।

साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उनके सहायक हैं । यदि उपहार-दान और सम्मान करो, तब तो भल होगा; अन्यथा युद्ध होना अनिवार्य है ॥ १२-१७३ ॥

बीरधन्वने कहा—राजाधिराज गुणाकरका पूजन तो देवराज हन्दने भी किया है, अतः वे महात्मा प्रशुभको मैट नहीं देंगे । रमणीय शृङ्खलान् पर्वतपर भगवान् वराह विद्यमान हैं, जिनकी सेवा भूमिदेवी सदा अस्थन्त आदरके साथ करती हैं । उन्हींके क्षेत्रमें राजा गुणाकरने भगवान् वराहके व्यानारूपक तपस्या की है । इस इजार वर्ष पूर्ण होनेपर वाराहरूपधारी भगवान् हरिने संतुष्ट होकर अपने भक्त राजासे कहा—‘वर माँगो ।’ राजाने श्रीहरिको नमस्कार करके पुलकित और प्रेमसे चिह्नित होकर कहा—‘भगवन् ।’ आपको छोड़कर दूसरा कोई देवता, अमूर अथवा मनुष्य मुझे भूतखल्पर जीतनेवाला न हो, यही मेरा अभीष्ट वर है ।’ तब ‘तथात्मा’ कहकर भगवान् वही अन्तर्धान हो गये । इसलिये महाराज गुणाकरके यशःस्वरूप अश्वको आपलेग स्वतः छोड़ दें । नहीं तो, मैं आपलोगोंके साथ युद्ध करूँगा, इसमें संशय नहीं है ॥ १८-२४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् । बीरधन्वनके यों कहनेपर उद्धवने वहाँसे शीघ्र अपनी सेनामें आकर वहाँ जो बात हुई थी, वह सब यादवोंकी सभामें सुना दी । तब श्रुतकर्मा, शृष्टि, वीर, सुवाहु, भद्र, एकल, शान्ति, दर्श, पूर्णमास और सोमक—कालिन्दीके ये दस पुत्र प्रशुभन् के देखते-देखते दस अक्षौहिणी सेनाके साथ युद्धके लिये आगे आगये । फिर तो प्रचण्ड-पराक्रमी उत्तरकुदवासियोंके साथ यादव-बीरोंका इस प्रकार दुश्म युद्ध होने लगा, जैसे दो समुद्र आपसमें टकरा गये हों । चमकते हुए तीखे अश-शङ्खोंसे बीर-शिरोमणियोंकी बड़ी शोभा होने लगी । क्षण-मात्रमें रक्तकी बड़ी भयंकर नदी वह चली । राजेन्द्र ! वह बधिरकी नदी सौ योजनतक फैल गयी । तब मरनेसे बचे हुए उत्तरकुदके छोग भाग चले—ठीक उसी तरह जैसे शरत्काल आनेपर बादलोंके समूह छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ॥ २५-३०३ ॥

कालिन्दीके बलवान् पुत्र महावीर पूर्णमासने अपने बाज-समूहोंद्वारा बीरधन्वनके रथको चूर-चूर कर दिया । बीरधन्वने रथहीन हो जानेपर भी बारंबार शुभकी टंकार करते हुए महावली पूर्णमासपर बीत बाजोंसे प्रहार किया,

परंतु पूर्णमासने स्वयं भी बाज मारकर उन बीसों बाजोंके बीचसे दो-दो ढुकड़े कर दिये । राजेन्द्र ! बीरधन्वने भी एक बाज मारकर पूर्णमासकी गम्भीर ध्वनि करनेवाली प्रत्यक्षाको उसी तरह काट दिया, जैसे कोई कट्टुबचनसे भिजताको खण्डित कर देता है । तब महावली पूर्णमासने अस भारकी बनी हुई भारी गदा हाथमें ले द्वारंत ही बीरधन्वापर है मारी । गदाके प्रहारसे व्यथित हो मद्दोक्ट योद्धा बीरधन्वने श्रीकृष्णपुत्र पूर्णमासपर परिषसे प्रहार किया । तब पूर्णमासने उठकर पबन नामक पर्वतको उखाड़ लिया । फिर उन श्रीहरिकुमारने दोनों इयोंसे उस पर्वतको शुमाकर बाराहीपुरीमें बैगपूर्वक छेंक दिया । बीरधन्वा उस पर्वतपर ही थे, अतः वे भी उसके साथ गुणाकरके यशस्वियमें जा गिरे और मुंहसे रक्त बमन करते हुए मूर्छित हो गये । उनका युद्धविषयक बेग नष्ट हो गया था ॥ ३१-३९ ॥

उस समय बाराहीपुरीमें महान् हाहाकार मच गया । देवताओं और मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं । देवताओंने पूर्णमासके ऊपर फूलोंकी वर्षा की । अपने पुत्रको मूर्छित हुआ देख राजा गुणाकर यशस्वियसे उठकर लड़े हो गये और उन्होंने अपना दिव्य कोदण्ड लेकर युद्ध करनेका विचार किया । धर्मस्थानें श्रेष्ठ और सर्वश विद्वान् मुनीन्द्र बामदेव उस यशमें होता थे । उन्हें युद्धमें जानेके लिये उद्घत देख बामदेवजीने उनसे कहा ॥ ४०-४२ ॥

बामदेवजी बोले—राजन् । तुम नहीं जानते कि परिपूर्णतम परमात्मा श्रीहरि देवताओंका महान् कार्य सिद्ध करनेके लिये यदुदुरुलमें अवतीर्ण हुए हैं । पृथ्वीका भार उतारने और भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये यदुदुरुलमें अवतीर्ण हो वे साक्षात् भगवान् द्वारकापुरीमें विराजते हैं । उन्हीं श्रीकृष्णने उग्रसेनके यज्ञकी सिद्धिके लिये सम्पूर्ण अग्नत्वोंको जीतनेके निमित्त अपने पुत्र यादवेश्वर प्रशुभन्को मेजा है ॥ ४३-४४ ॥

गुणाकरने कहा—ब्रह्मन् ! आप परावर-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं; अतः मुझे परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णका लक्षण बताइये ॥ ४५ ॥

बामदेवजी बोले—जिनके अपने तेजमें अन्य सारे तेज छीन हो जाते हैं, उन्हें साक्षात् परिपूर्णतम परमात्मा श्रीहरि कहते हैं । अंशांश, अंदा, अवेश, कला तथा पूर्ण-अक्षतारके ये याँच मैद हैं । व्याप आदि महर्षियोंने छठा

परिपूर्णतम् सत्यं कहा है। परिपूर्णतम् तो साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं, यूसरा नहीं; क्योंकि उन्होंने एक कार्यके लिये आकर करोड़ों कार्य किये हैं ॥ ४६-४८ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! श्रीकृष्णका माहात्म्य सुनकर राजा गुणाकरने वैर छोड़ दिया और भेट-उपहार लेकर वे प्रश्नमनका दर्शन करनेके लिये आये। श्रीकृष्ण कुमारकी परिक्रमा करके राजाने उन्हें नमस्कार किया और भेट देकर नैवेंसे अशु बहाते हुए वे गद्गद वाणीमें बोले ॥ ४९-५० ॥

गुणाकरने कहा—प्रभो ! आज मेरा जन्म सफल हो गया। आजके दिन मेरा कुल पवित्र हुआ। आज मेरे सारे करु और सम्पूर्ण क्रियाएँ आपके दर्शनसे गफल हो गयीं।

इस प्रकार श्रीर्ग-सहितमें विश्वजितस्त्रष्टुके अन्तर्गत नारद-बहुलादव-संवादमें ‘उत्तरकुरुवर्षपर यादबोकी विजय’ नामक अद्वैतसर्वां अस्याग पूरा हुआ ॥ २८ ॥

उन्तीसवाँ अध्याय

प्रश्नमनकी हिरण्मयवर्षपर विजय; मधुमक्षियों और वानरोंके आकमणसे छुटकारा; राजा देवसखसे भेटकी ग्रासि तथा चन्द्रकान्ता नदीमें स्नान

नारदजी कहते हैं—राजन् ! महाबाहु श्रीकृष्णकुमार प्रश्नम उत्तरकुरुवर्षपर विजय पाकर ‘हिरण्मय’ नामक वर्षको जीतनेके लिये गये, जहाँ ‘स्नोत’ नामका विशाल एवं दीतिमातृ सीमापर्वत शोभा पाता है। वहाँ कूर्मावतारधारा साक्षात् भगवान् श्रीहरि विशालते हैं और अर्थमा उनकी आदाधनामें रहते हैं। हिरण्मयवर्षमें ‘पुष्पमाला’ नदीके तटपर ‘चित्रवन’ नामसे प्रसिद्ध एक विशाल वन है, जो पूर्लों और फलोंके भासे ल्या रहता है। कंद और भूलक्षी तो वह स्वतः निधि ही है। मैथिलेश्वर ! वहाँ नल और नीलके वंशज वानर रहते हैं, जिन्हे ब्रतायुगमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने स्वापित किया था ॥ १—४ ॥

सेनाका कोलाहल सुनकर वे युद्धका कामनामें बाहर निकले और भौंहें टेढ़ी किये, क्षोधके बर्दीभूत हो, उछलते हुए प्रश्नमनकी सेनापर ढूट पड़े। नरेश्वर ! वे नलों, दाँतों और पूँछोंसे बोड़ों, इयियों और मनुष्योंको धाष्ठल करने ले। रथोंको अपनी पूँछोंमें बाँधकर वे बलरूपक आकाशमें फैक देते थे। कुछ वानर विजयवर्षजनाथके विजयरथको और अर्जुनके

गर्दीं । परेण ! भूमन् ! आपके चरणोंकी भक्ति ही परमार्थस्या है। सामुपुरुषोंके सङ्गसे आपकी वह परा भक्ति हमें सदा प्राप्त हो। आप ही अपने भन्नोंपर कृपा करनेवाले साक्षात् भक्तवत्सल भगवान् हैं। आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ ५१-५२ ॥

प्रश्नमनने कहा—राजन् ! आपको शान और वैराग्यसे युक्त प्रेमलक्षणा-भक्ति तो प्राप्त ही है, मेरे भक्तोंका सङ्ग भी आपको मिलता रहे। आपके यहाँ भागवती श्री सदा ननी रहे ॥ ५३ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! यों कहकर प्रसन्न हुए भक्तवत्सल श्रीकृष्णकुमार भगवान् प्रश्नमने राजाको अवश्येष यशका बोड़ा लौटा दिया ॥ ५४ ॥

कपिष्वज रथको लालूल्ये बाँधकर आकाशमें उड़ गये। कपिष्वज अर्जुनकी व्यजापर साक्षात् भगवान् कपीन्द्र हनुमान् निवास करते थे। वे अर्जुनके सखा थे। उन्होंने कृपित हो सम्पूर्ण दिशाओंमें अपनी पूँछ धुमाकर उन आकमणकरी वानरोंको बाँध-बाँधकर पृथ्वीपर पटकना आरम्भ किया। तब उन्हें पहचानकर समस्त श्रीरामकिंकर वानर हर्षसे भर गये ॥ ५—९ ॥

राजन् ! उन वानरोंने हाथ जोड़कर धारे-धारे सब ओरसे आकर पवनपुत्रको प्रणाम किया। कुछ आलिङ्गन करने ले, कुछ बेगें उछलने ले और कुछ वानर उनकी पूँछ और पैरोंको चूमने ले। महावीर अर्जुनीकुमारने उन्हें हृदयसे ल्याकर उनके शरीरपर हाथ फेरा और उन्हें आशीर्वाद देकर उनका कुशल-समाचार पूछा। नरेश्वर ! उन्हें प्रणाम करके सब वानर चित्रवनमें चले गये और हनुमान्जी अर्जुनके व्यञ्जयमें अन्तर्धान हो गये ॥ १०—१२३ ॥

तदनन्तर मीनऋज प्रश्नम भक्त नामक देवता से होते हुए हृषिवंशियोंके साथ वार-नार दुन्हुमि बजवाते हुए अपने

चढे। मकरगिरिके पास उनकी हुन्हुभियोंकी खानि हुनकर मधु भक्षण करनेवाली करोड़ों मधुमक्खियाँ उड़कर आ गयी। उन्होंने सारी सेनाके ढँसना आरम्भ किया। उस समय हाथी भी चाल्कार कर उठे। तब महाबाहु श्रीकृष्णकुमारन् वायव्याख का संधान किया। राजन्! उस अस्त्रमें उठी हुई बायुसे प्रताइत हो वे सब मधुमक्खिया दसों दिशाओंमें उड़ गयी। मिर्यालैवर ! उस देशके सभी मनुष्योंके मुख भगर-में थे ॥ १३—१४ ॥

उसके बाद छिपिडभ देहा आया, जहाँ हाथियोंके समान मुखवाले लोग दिखायां दिये। इस प्रकार अनेक देशोंका दर्शन करते हुए श्रीकृष्णकुमार शिशुङ्ग देशमें गये। वहों भी उन्होंने शूद्रधारी मनुष्य देखे। विशुङ्गगिरिके पास स्वर्णन्चर्चिका नामकी नगरी थी। जिसमें सोनेके महल शोभा पाते थे। वह दिव्य पुरी रत्ननिर्मित परकोटोंमें सुगोभित थी। मङ्गलकी निवासभूता वह नगरी चन्द्रकान्ता नदीके तट पर विराजमान था। राजन्! जैसे हन्द्र अमरावर्ती पुरीमें प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार प्रशुभ्नने उस पुरामें पदार्पण किया। जैसे नागों और नागकन्याओंसे भोगवतीपुरीकी शोभा होती है, उसी प्रकार विशुद्धकी-भी दीसिवाले सुवर्णसदृश गौरवणके श्री-पुरायोंसे वह स्वर्णन्चर्चिका नगरी सुगोभित थी। वहाँके मलबान् राजा महावीर देवसत्य नाममें प्रसिद्ध थे। उन्होंने मेरे मुँहमें यादव-सेनाके बलका वृत्तान्त सुनकर भैटकी सुवर्णमय सामग्री ले, वहे भक्तिभावामें प्रशुभ्नका गूजन किया।

इस प्रकार श्रीगां-संहितामें विश्वजितस्तप्तके अन्तर्गत नारद-बहुकाशव-संबद्धमें ‘हिरण्यवर्षपर विजय’

नामक उन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९ ॥

तीमवाँ अध्याय

रम्यकवर्षमें कलङ्क राक्षसपर विजयः नैश्चेयसत्त्वन, मानवी नगरी तथा मानवगिरिका दर्शन; श्राद्धदेव मनुद्धारा प्रशुभ्नकी स्तुति

नारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार हिरण्यवर्षपर विजय पाकर महाबली प्रशुभ्न देवलोककी भाँति प्रकाशित होनेवाले रम्यकवर्षमें गये। उसका सीमा-पर्वत लक्षात् गिरिराज ‘नील’ है। उसके उत्तरवर्ती काले देशमें मयंकर नादसे परिपूर्ण ‘भीमनादिनी’ नामकी नगरी है। वहाँ काल्पनिका पुरुष कलङ्क नामक। राक्षस रहस्या, वेतायुगमें श्रीरामचन्द्रवीरोंसे ढरकर युद्धभूमिमें भाग

महाबाहु भगवान् प्रशुभ्न इन्हे उनसे पूछा—‘आप कौन लोगोंकी शोभा चन्द्रमाके समान कैसे है? यह मुझे जीघ बताइये’ ॥ १७—२३ ॥

देवसत्य बोले—यदृत्तम ! पितरोंके स्त्रीमी अर्यमाने कूमरसधारी भगवान् लक्ष्मीपतिके होनों चरणोंका जिस जलसे प्रश्नालन किया, उस चरणोदकसे एक महानदी प्रकट हो गयी, जो विश्वतपवर्षके शिवरमें नीचेको उत्तरती है। एक समयकी बात है—मनुके पुत्र प्रमेष्ठाको उनके गुरुने गौवेंकी रक्षाका कार्य सौंपा था। उन्होंने रक्षिके समय सिंहकी आशङ्कामें तलवार चलाकर चिना जाने एक कपिल गौका बध कर दिया। तब गुरुबर वसिष्ठके शापमें वे शूद्रत्वको प्राप्त हो गये और उनका शरीर कुष्ठरोगमें पांडित हो गया। तब वे तीर्थोंमें विचरने ले। इस नदीमें स्नान करके वे मनुपुत्र गलित कुष्ठ रोगसे मुक्त हो गये और उनके शरीरकी कान्ति चन्द्रमाके समान हो गयी। तभीमें हिरण्यवर्षके भीतर यह नदी ‘चन्द्रकान्ता’ नामसे प्रसिद्ध हुई। जैसे मनुकुमार प्रमेष्ठा चन्द्रकान्ता नदीमें स्नान करके गलित-कुष्ठसे मुक्त हुए, तबसे हम सब लोग नियमपूर्वक इस नदीमें स्नान करने लगे। दृष्टेत्रम ! यही कारण है कि इस पृथ्वीपर हमलेग चन्द्रमाके तुत्य रूपवाले हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ २४—३० ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर महाबाहु प्रशुभ्नने यादवोंके साथ चन्द्रकान्ता नदीमें स्नान करके अनेक प्रकारके दान दिये ॥ ३१ ॥

आया था। वह लक्ष्मपुरीमें यहाँ आकर राक्षसोंके साथ निवास करता था। उसने इस हजार राक्षसोंके साथ यादवोंसे युद्ध करनेका निश्चय किया। काले रंगका वह राक्षसराज गच्छपर आलड़ हो यादव-सेनाके सामने आया। यादवों और राक्षसोंमें घोर युद्ध होने लगा। प्रबोध, गाढ़वान्, लिंग, बल, प्रबल, ऊर्ध्वर्ग, सह, ओज, महाशक्ति तथा अपराजित—लक्ष्मणाके गर्भमें उत्पन्न हुए श्रीकृष्णके थे

उस कस्याणस्तरम् पुन्र तीखे और चमकीले बाणोंकी बर्णा करते हुए सबसे आगे आ गये। जैसे बायुके बेगसे बादल छिप-भिप हो जाते हैं, उसी प्रकार उन्होंने बाणसमूहोंद्वारा राक्षस-सेनाको तहस-नहस कर दिया। उनके बाणोंसे अङ्ग छिप-भिप हो जानेपर वे रणदुर्मद राक्षस मदमत्त हो यादव-सेनापर चिशूली और मुद्ररोंकी बर्णा करने लगे। उस समय राक्षसराज कलहू इश्योंतो तथा रथियोंको चबाता हुआ आगे बढ़ा। वह धोड़ों और अङ्ग-शास्त्रोंसहित मनुष्योंको तस्काल मुँहमें ढाल लेता था। हौदों, रन्जटिट शूलों तथा घण्टा-नादसे युन हाथियोंको फैरोंकी ओरसे उठाकर कल्यूर्बक आकाशमें फेंक देता था। तब श्रीहरिके पुन्र प्रयोगने कपीन्द्राखका संधान किया। उस बाणसे लाक्षात् बायुपुन्र बलवान् इनुमान् प्रकट हुए। उन्होंने जैसे बायुरुद्धोंको उढ़ा देती है, उसी प्रकार उस राक्षसको आकाशमें सौ योजन दूर फेंक दिया ॥ १-१२ ॥

तब हनुमान्‌जीको पहचानकर राक्षसराज कलहूने गर्जना करते हुए लाल भारकी बनी हुई भारी गदा उनके ऊपर केंकी। हनुमान्‌जी बेगसे उछले और वह गदा भूमिपर गिर पड़ी। उछलते हुए बानरराजने, बार-बार भौंहें टेढ़ी करते हुए, कलहूने एक मुक्का मारा और उसका क्रिया ले लिया। तब कलहूने भी उस समय उन्हें मारनेके लिये अपना चिशूल हाथमें लिया; किंतु वे कपीन्द्र हनुमान् बेगसे उछलकर उसकी पीठपर कूद पड़े और दोनों हाथोंसे पकड़कर उसे भूमिपर गिरा दिया। फिर वैदुर्य पर्वतको ले जाकर उसके ऊपर ढाल दिया। पर्वतके गिरनेसे उसका कच्चूर निकल गया, उसके सारे अङ्ग चूर-चूर हो गये और वह मृत्युका ग्रास बन गया ॥ १३-१७ ॥

उस समय शङ्ख-विनिके साथ जय जयकार होने लगा और लाक्षात् भगवान् हनुमान् वहीं अन्त्यधीन हो गये। देवताओंने प्रशुभ्यपर फूलोंकी बर्णा की। फिर अपनी नेनामें भिरे हुए महाबाहु प्रशुभ्य मनुकी स्वर्णमर्या मनोहारिणी नगरीमें गये। वहाँ नैःश्रेयस नामक बन था, जो कल्पवृक्षों तथा कस्याणस्तरमें विरा हुआ था। हरिचन्दन, मन्दार और पारिजात उस बनकी शोभा बढ़ाते थे। संतानवृक्षके पुष्पोंकी सुगन्धसे मिथित बायु उस बनमें सुखास फैला रही थी। केतकी, चम्पालक्षा और कुटज उपर्योगमें परिसेवित वह बन माधवी लक्षाओंके पुष्प-कल्प-समन्वित समृद्धसे व्याप था।

कल्पव करते हुए विहंगमोंके बृन्दसे वह बन वैकुण्ठलोक-सा सुन्दर प्रतीत होता था। वहाँ चारधि नामसे प्रतिदृष्ट एक पर्वत था, जिसकी लंबाई पांच सौ योजन थी। राजन् ! उस पर्वतके निचले भागका विस्तार सौ योजनका था। नर-कोकिल, कोतिलाँ, मोर, भारम, तोते, चकवे, चकोर, इंस और दात्यूह (परीहा) नामक पक्षी वहाँ कल्पव करते थे। भीमी श्रुतुओंके फूलोंकी शोभामें सम्पन्न वह नैःश्रेयस-बन नन्दनवनको तिरस्कृत करता था। मिथिलेश्वर ! वहाँ मृतोंके बन्धने सिंहोंके साथ खेलते थे। नेवले सर्पोंके साथ वैरविहीन होकर रहते थे। वहाँ भ्रमरोंके गुजारवसे युक्त दस हजार सरोवर थे, जिनमें दीसिमान् शतदल और सहस्रदल कमल गोभा दे रहे थे। इधर-उधर सब ओर सर्वं बन वह सुन्दर बन मूर्तिमान् आनन्द-सा जान पड़ता था। सर्वं विद्वान् प्रशुभ्यने उस बनकी शोभा देखकर निकले हुए नागरिकोंसे यह अभीष्ट प्रश्न पूछा ॥ १८-२८ ॥

प्रशुभ्य बोले— हे पवित्र शासनमे रहनेवाले लोगो ! यह रमणीय नगरी किसकी है और यह अद्भुत बन भी किसका है ? आपलेग विस्तारपूर्वक सब बात बतायें ॥ २९ ॥

उन लोगोंने कहा—नरेश्वर ! वैवस्तत मनु, जो इस समय रमणीय मानव पर्वतपर भस्यावतारभारी भगवान् नारायण हरिकी आराधनामें लो हैं और वहाँ सदा निवास करनेवाले मस्त्य भगवान्‌की बन्दनापूर्वक बड़ी भारी तपस्या करते हैं, उन्हींकी यह रमणीय नगरी है और उन्हींका यह नैःश्रेयसवन है। यहाँकी भूमि और यह पर्वत दोनों वैकुण्ठ-लोकसे लाये गये हैं। आप वह राजा, जो इस पृथ्वीपर विराजमान हैं, इन्हीं वैवस्तत मनुके बंशज हैं, चाहे वे सूर्य-बंशके हों या चन्द्रबंशके ॥ ३०-३२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं— राजन् ! समस्त क्षत्रियोंके उन बृह ग्रपितामह शाद्देव भनुका परिचय पाकर श्रीकृष्णकुमार प्रशुभ्य बड़े विसित हुए। लोगोंकी यात सुनकर तस्काल भाव्योंने तथा अन्य बादवोंसे भिरे हुए प्रशुभ्यने मानवगिरिपर चढ़कर भगवान् शाद्देवका दर्शन किया। वे सौ सूर्योंके समान तेजस्वी जान पड़ते थे और अपनी कान्तिसे दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे। वे महायोगी-मय राजेन्द्र शान्तरूप थे। महाराज ! वे वैद्यव्यास और शुक आदिसे तथा वसिष्ठ और वृहस्पति आदिसे परस्पर श्रीहरिका यश सुनते थे। यादवोंके साथ प्रशुभ्यने हाथ जोड़कर उन्हें

प्रणाम किया और वे उनके सामने लड़े हो गये । श्रीहरिके प्रभावको जानेवाले मनुने उन्हें उठकर आसन दिया और गहौर बाणीमें इस प्रकार कहा ॥ ३३—३७ ॥

मनु बोले—वासुदेव, संकर्षण, प्रभुज्ञ और अनिरुद्ध-रूपमें प्रकट आप भरतज्ञ-प्रतिपालक प्रभुको नमस्कार है । आप ही अनादि, आत्मा तथा अन्तर्यामी पुरुष हैं । आप प्रकृतिसे परे होनेके कारण सत्त्वादि तीनों गुणोंसे अतीत हैं । प्रकृतिको अपनी शक्तिसे वशमें करके गुणोंद्वारा ओष्ठ विश्वकी सृष्टि, पालन और संहर भरते हैं । अतः अशान-कल्पित इम प्रपञ्चको सब ओरसे छोड़कर इस सम्मूर्ण जगत्को मनका संरूपमात्र जानकर मायासे परे जो निरुण आदिपुरुष, सर्ववा, सर्वके आदिकरण, अन्तर्यामी एवं सनातन परमात्मा हैं, उन्हीं आपका मैं आश्रय लेता हूँ । जो इस विश्वके सो जानेपर भी जागते हैं; जिन्हे जगत्के लोग नहीं जानते; जो सन्तुमें परे, सर्वद्वाष्टा एवं आदिपुरुष हैं; जिन्हे भ्रशानोजन नहीं देख पाते; जो सर्वथा स्वच्छ—शुद्ध-तुद्ध स्वरूप है, उन आप परमात्माका मैं भजन करता हूँ । जैसे आकाश घटने, अग्नि काष्ठसे तथा वायु अपने ऊपर छाये हुए धूल-कणोंमें लिप्त नहीं होते, उसी प्रकार आप समस्त गुणोंमें निर्लिप्त हैं । जैसे स्फटिक मणि दूसरे दूसरे रंगोंके सम्पर्कमें उम रंगकी दिसायी देनेपर भी स्वरूपतः परम उज्ज्वल है, उसी प्रकार आप भी परम विशुद्ध हैं । व्यज्ञना, लक्षण अथवा अभिधा शक्तिसे, वाणीके विभिन्न मार्गोंसे तथा स्फोटपरायण वैयाकरणोंद्वारा भी परमाथ-पदका सम्बन्धान नहीं प्राप्त किया जाता । मात्रु वाच्यार्थ एवं उत्तम व्यनिके द्वारा भी जिसका वोध नहीं हो पाता, वही व्रज लौकिक वाक्योद्वारा कैसे जाना जा सकता है । जिसे इम पृथ्वीपर कुछ लोग (मीमांसक) 'कर्म' कहते हैं, कुछ लोग (नैयायिक) 'कर्ता' कहते हैं, कोई 'काल', कोई 'परम योग' और कोई 'विचार' यताते हैं, उसे ही वेदान्तवेता शानी पुरुष व्यज्ञ कहते हैं । जिसे इस लोकमें कालज्ञ गुण, शानेन्द्रियों, चित्त, मन और कुद्धि नहीं छू पाती हैं, जहाँ अहंकार और महसूसकी भी पहुँच नहीं है तथा वेद भी जिसका वर्णन नहीं कर पाते, वह 'परब्रह्म' है । जैसे विनगारियों अङ्गिमें प्रवेश करती हैं, उसी प्रकार वारे तत्त्व उस परब्रह्ममें ही विलीन होते हैं । जिसे संतलोग 'हिरण्यगर्भ', 'परमात्मतत्त्व' और 'वासुदेव' कहते हैं, ऐसे व्रजस्वरूप आप ही 'पूरुषोल्लभोत्तम'

है—यह जानकर मैं उद्द अस्त्रभावमें विनाश करता हूँ ॥ ३८—४६ ॥

* नमस्ते वासुदेवाय नमः भक्तेणाय च ।
प्रभुन्नायानिरक्षाय नामता गते नमः ॥
अनानिरात्मा पुरुषस्तमेव
त्वं निर्मुणोऽपि पृष्ठैः परस्तम् ।
मता वशीकृत्य वल्लभानं
गुणैः सुजन्मेव च पापि विश्वम् ॥
नतो विवेकं स विद्याय सर्वो
मत्त्वादिलं चात्र मनोभवं त्वगत् ।
मायापर निर्मुणमादिपूरुषं
सर्वत्रात्मं पुरुषं मनात्मनम् ॥
आगति वोऽस्मिन् शब्दनगेन साम
नाम जनो वेद मन् पर च ।
पश्चन्मात्रं पुरुषं हि कर्जनो
न पश्यति स्वच्छमल च च भवते ॥
वदा नपोऽपि वदनो न सज्जते
घटेन काढेन रजोभिराहैः ।
वदा भवान् सर्वगुणैर्व निर्वनो
वर्णैर्वया स्थात् स्फटिको नहोउच्चलः ॥
व्याघ्रेन वा लक्षण्या च वाच्यै-
रथं पश्च स्फोटपरायणैः परम् ।
न वायते वद्धनिनोर्मेन सद-
वाच्येन तद् वदा कुरुतु लोकिने ॥
वदनि केचिद् भ्रुवि कर्ते कर्ते यत्-
कालं च केचिद् परदेवमेव तद् ।
केचिद् विनार प्रददनि यत् तद्
वद्धेति वेदान्मविदो वदनि ॥
य न स्पृशन्नीह गुणा न व्यालजा
वानेन्द्रिय वित्तमनो न तु दृश्यः ।
नहात् वेदो वदनापि नपर
विद्यनि मदें इनले शुर्वल्लभत् ॥
दिरण्यगमं परमात्मतत्त्वं
थद् वासुदेवं प्रददनि मनः ।
पश्चविवं त्वा पुरुषोल्लभोत्तम
मत्ता सदाहं विचरात्मस्तः ॥
(गंगा०, विश्वजित० ३० । ३८—४६)

‘नारदजी कहते हैं—राजन् ! मनुका यह बचन सुनकर उस समय भगवान् प्रश्नम् हरि मन्द-मन्द मुसकुराते हुए गम्भीर वाणीद्वारा उन्हें मोहित करते हुए-से बोले ॥ ४७ ॥

प्रश्नम् जो कहा—महाराज ! आप हम क्षत्रियोंके आदिराजा, पितामह, बृह, स्लाघनीय तथा धर्म-धुरंधर हैं । राजन् ! हमलोग आपके द्वारा रक्षणीय तथा सर्वतः पालनीय प्रजा हैं । आप जो दिव्य तप करते हैं, उससे

इस प्रकार श्रीगर्भ-संहितामें विश्वजित्सुखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश-संवादमें ‘मानवदेशपर विजय’ नामक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३० ॥

इकर्त्तासवाँ अध्याय

रम्यकवर्षमें मन्मथशालिनी पुरीके लोगोंद्वारा श्रीकृष्णलीलाका गान; प्रजापति व्यति मंवत्सरद्वारा प्रशुभ्नका पूजनः कामवनमें प्रशुभ्नका अपने कामदेव-स्वरूपमें विलय

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार रम्यकवर्ष पर विजय पाकर महावली श्रीकृष्णकुमार प्रशुभ्न मुमेच पर्वतके पूर्वभागमें स्थित ‘केतुमाला’वर्षमें गये ॥ ४ ॥

भियिलैवर ! उस वासका भीमापवत् ‘भान्यवान्’ है, जहाँसे ‘नार’ नामवाली महापातकनाशिनी । गङ्गा प्रवाहित होती है । माल्यवान् गिरिके पास मन्मथशालिनी पुरी है, जो अपने रसमय परकोटी और महलोंमें देवताओंकी राजधानी (अमरावती) की भौति शोभा पाती है । राजन् ! वहाँके पुरुष कामदेवके समान कान्तिमान हैं । उनका ब्रह्म कान्ति शरद-ऋतुके प्रकुपल नाल-कमलके समान होती है और उनके नेत्र भी विकसित कमल-दलका शोभाको लज्जित करते हैं । यहाँका नव-योवना कामिनिया पाताम्बर धारण करके पूर्णोंके हार रहनकर मनोहर वेशमें कन्दुक काढ़ा किया करती हैं । उनके शरीरका स्वर्ण ऊरके प्रवाहित होनेवाला वायु मतशाले भ्रमरोंसी ज्वानमें निनादित हो जाते और ऐसे ज्वान विस्तृत भू-भागको सुनाभित करती है । उस पुरामें निवास करनेवाले बहुमुत मनुभ्य नगरमें बाहर निकले और प्रशुभ्नके सुनते-सुनते आमरा रेके गय ॥ ५ ॥ गान करने क्षमा ॥ ५-७ ॥

केतुमालशासी बोले—जो जगत् का पाहा हर छेने-शाले नाशात् प्रवान्-पुरुषेवर आदिदेव शेषनाशकी शर्व्यापन दावन करते हैं और जिन्होंने देवताओंकी प्रायना सुनत-

जगत्को सुख भिलता है । आप-जैसे साधुपुरुष परमात्मा श्रीहरिके स्वरूप हैं; अतः वे ही सदा हृदनेसेव्य हैं । साधुपुरुष ही मनुष्योंके अन्तःकरणमें छाये हुए मोहन्य-कारक हरण करते हैं, सूयदेव नहीं ॥ ४८-५० ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! यों कहकर मनुको प्रणाम करके, उनकी अनुमति के, परिक्रमा करके, भगवान् श्रीकृष्णकुमार प्रशुभ्न स्वयं नीचेकी भूमिपर उत्तर गये ॥ ५१ ॥

इस प्रकार श्रीगर्भ-संहितामें विश्वजित्सुखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश-संवादमें ‘मानवदेशपर विजय’ नामक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३० ॥

भूलोकका रथा करनेके लिये भारतवर्षमें अवतार लिया है, उन भगवान्-पुरुषोंसमझो नमस्कार है । वे प्रकट होनेके बाद माता-पिताको बन्धनमुक्त करके शिशुरूपमें पिता के परमे नन्दभवनको चले गये, वहाँ दयामर्यी नन्दपनी यशोदाने वहैं प्याराम उनका लालन-पालन किया, अनन्त मङ्गलमर्यी शोभाम सम्पन्न उन्होंने अपनेको मारनेके लिये आयी हुईं पूतनाके प्राणोंका अपहरण कर लिया । खालक-रूपमें ही लोते हुए उन श्रीनन्दनन्दनने छकड़ेको उलट दिया और महादेव्य तुणाथर्तकी पाठपर चढ़कर उस मार गिराया । माताको अपने विश्वरूपका दर्शन कराया, गगांचायके द्वारा उनका नामकरण-संस्कार हुआ और गगांचायने उनकी सुन्दर शौभाग्य-स्त्रीमांका बांगन किया । ब्रजके लोगोंने उन्हें लाल लड़ाया, उनके द्वारा मालनचोरी-की लालाएँ हुईं । इयाम मनोहररूपधारी कोमल वालक श्रीकृष्णने दहाके मटके फोड़कर उसमेंसे खूब दही खाया और माताने जब छोटी-सी रसमींस उन्हे ओखलीमें बौध दिया, तब उन्होंने वह ओखली अटकाकर दो यमल बृक्षोंको तोड़ दिया, हृदयावनमें बछड़ा और खाल-बालोंके साथ वहुसंख्यक चलड़ोंके नमुदायको चराते

तथा बेणु बजाते हुए उन मदनमोहन-वैष्णवी प्रभुने अष्टमुक्तके मुखमें पढ़े हुए गोपीं और गोपीओंकी रक्षा की और जब ब्रह्माजी चलाएं और बछड़ोंको खुदा ले गये, तब वे स्वयं ही तस्कल गोप-बालक और बछड़े बनकर पूर्ववत् सराय कार्य चलाने लगे, वे ही भगवान् श्रीकृष्ण सबके शरीरमें क्षेत्रज्ञ एवं अन्तर्भावी असमा हैं। वे ही अनन्त, पूर्ण, प्रधान और पुरुषके ईश्वर (क्षर और अक्षरसे अलीत पुरुषोत्तम) तथा आदिदेव हैं। वे अजन्मा प्रभु ग्वाल-बाल और बछड़ोंका रूप धारण करके ब्रजके अन्य बालकोंमें विहार करते और ब्रह्माजीको मोहित करते हुए नव और विचरने लगे ॥ ८-१४ ॥

उन्होंने बलवान् घेनुकासुरको बलपूर्वक ताढ़के बृक्षपर दे मारा और ताढ़-फल लेकर चले आये। फिर यमुनाके जलमें कूदकर सहस्र कालियनागको जा पकड़ा और उसके फलोंपर नृत्य करके उसे जलसे बाहर निकाल दिया। तदनन्तर वे दावानलको पी गये और बल्यामजीके सहयोगसे शीघ्र ही सुट्ठु मुष्टिका-प्रहार करके उन्होंने प्रलम्बासुरको मौतके बाट उतार दिया। वनमें मधुर स्वरसे बेणु बजाकर उन्होंने ब्रजवधुओंको वहाँ बुला लिया और उनके मुखसे अपनी कीर्तिका गान सुना। यमुनामें नन्म स्नान करनेवाली गोप-किशोरियोंके दिव्य वस्त्र चुराये और वनमें आङ्गण-पलियोंके दिये हुए भातका ग्वाल-बालोंके साथ भरपेट भोजन किया। इन्द्र-पूजा बंद करके गोवर्धन-पूजा नादू करनेपर जब पर्जन्यदेव धोर वर्षा करने लगे, तब कृपापूर्वक उन्होंने पशुओंकी रक्षा करनेके लिये गोवर्धन पर्वतको छत्रकी भूति उठा लिया—ठीक उसी तरह जैसे माधवरण बालक गोवर छत्ता उठा ले। जैसे गजराज अनायास कमलका फूल उठा लेता है, उसी प्रकार एक हाथपर पर्वत उठाये भगवान् को देखकर दाचोपति इन्द्रने इनकी सुन्तुति की। बुरागलोंमें जाकर वहाँसे नन्दजीको सुरक्षित ले आये तथा स्वजनोंको भावानन्दे अनन्धकारसे परे अपने दिव्य परमधारम गोलोकका दर्शन कराया। श्रीराममण्डलमें उपरिथ द्वी भगवान्नने ब्रज-मुन्दरियोंके साथ रास-कीड़ा की और यमुना-पुलिनपर गोपाङ्गनाओंके साथ विहार किया ॥ १५-१८ ॥

ब्रजसुन्दरियोंको अपने माथक यौवनपर अभिमान करते देख उनके उस मानका अपहरण करनेके लिये भगवान् उनक बाचसे अन्तर्भावन हो गये। तब उनके दर्शनके

लिये व्याकुल हुई ब्रजाङ्गनाएं उन्होंकी कीर्तिका धान करने लगीं। तदनन्तर विरहसे व्याकुल हुई उन शङ्खालयोंके बीच फूलोंके हर धारण किये, मनोहररूपधारी साक्षात् मदनमोहन श्रीहरि पुनः प्रकट हो गये। बृक्षावनमें श्यामसुन्दरने शवरराजकी परम मुन्द्री किशोरियोंके साथ उसी प्रकार रमण किया, जैसे आदिदेव भगवान् विष्णु अपनी विभूतियोंके साथ रमण करते हैं। उस समय वहें-वहें देवताओंने उनकी सुन्तुति की। उन माधवने रास-द्वारालयमें केसूर, कुण्डल और किरेट आदि आभूषणोंसे मनोहर वेष धारण करके रमण किया। भगवान्नने अभिकावनमें नन्दराजको अज्ञातके मुखसे छुड़कार उस सर्पको भी मोक्ष प्रदान किया। शङ्खचूड़ यहसे उसकी मणि ले ली। गोपोंने उनकी सुन्तुति की और उन्होंने बृशभरूपधारी अरिष्ठासुरका एक सींग पकड़कर उसे पृथ्वीपर पटक दिया और एक ही हाथसे उसे मार डाला। कंसको बढ़ा भय हो गया था, इसलिये उसने केशीको येजा। वह मेषके समान काला एवं प्रचण्ड शक्तिशाली दानव था। भगवान्नने उसे एक बार पकड़कर छोड़ दिया। किंतु अब पुनः वहें बेगसे उसने आक्रमण किया, तब श्रीकृष्णने उसके मुँहके भीतर अपनी बौह डाल दी और इस युक्तिसे उसे मार डाला ॥ १९-२२ ॥

भगवान् नारदने जिनकी सौभाग्य-स्त्रीमीका अनेक प्रकारसे वर्णन किया है, उन परमात्मा श्रीहरिने व्योमासुरको भी प्राणहीन कर दिया। अकूरके द्वारा उन आदिदेवके महान् ऐश्वर्यका वर्णन किया गया। वे गोपीजनोंके अन्यन्त विरहातुर चित्तको भी चुरानेवाले हैं। उन्होंने अपने हितकारी श्वफलकपुत्र अकूरको जलके भीतर अपना दिव्य रूप दिखाकर फिर समेट लिया। उनके साथ वे परमेश्वर मधुराके उपवनमें पहुँचे और माल-कालों तथा बल्यामजीके साथ उन्होंने मधुरासुरीका दर्शन किया। स्वच्छन्दतापूर्वक मधुपुरीमें विचरते हुए श्रीहरिने कटुवाही रजको मौतके बाट उतार दिया। अपने प्रेमी दर्जीको उत्तम वर दिये, फूलोंकी माला अर्पित करनेवाले मालीपर कृष्ण की, कुञ्जाको सीशी करके बुम्बरी बनाया और कंसकी यशशालामें रक्खे हुए बनुषको नवाते हुए सहस्र उसे लोह डाला। रङ्गदालके द्वारपर कुबस्त्रा पैह हाथीका बध करके दो राजकीय पहलवानोंके रङ्गभूषित

पकड़कर कैसको भी जा पकड़ा और उसे अखाइमें गिराकर प्राणशून्य कर दिया। फिर माता-पिताओं कैदमें छुड़ाकर बहाल, दाकिणाली उद्गतेनको मधुरापुरुषका राजा बना दिया। नन्होंको प्रवक्ष करके बहुत भेट दां; गोपोंको ललाकर उन भक्तों द्वारा तृष्ण करके बहुत कुछ निवेदन किया और उन्हें ब्रजको लैटाकर वे गुरुके घरमें विद्या पढ़नेके लिये गये। वहाँ अध्ययन नमाम करके श्रीकृष्णने समुद्रवानी पद्मजल नामक दानवका वध करनेके पश्चात् गुरुके मरे हुए पुत्रको यमलोकमें लाकर दक्षिणांके द्वयमें उन्हें अर्पित किया। उद्दत्को भेजकर अपने प्रेम संदेशमें गोपीजनोंको अनुशृहोत किया और अकृतको हस्तिनापुर भेजकर पाण्डवोंका नमाचार जाना। तदनन्तर श्रीकृष्णने चलवान् जरासंधको पराजित करके सुचुकुन्दकी दृष्टिसे प्रकट हुई अग्निके द्वारा काल्यथनको भस्त कर दिया। २३-२८।

इसके बाद अपने रहनेके लिये श्रीहरिने अद्भुत पुरी कुठास्थलीका नियांग करके कुण्डनपुरसं भीष्मक-कन्या छक्षिणीका अपहरण किया। अपने पुत्रके द्वारा श्रुति गम्भीरका वध कराया तथा युद्धमें शूक्षराज जामवानको जातकर उसमें ग्रात हुई मणि राजा उपरेनको दे दी। तत्पश्चात् परमेश्वर श्रीकृष्ण नम्यभामांक पति हुए। उन्होंने अपने बह्युर सत्रांजतका वध करनेवाले शतघन्माका शिर काट किया और कुछ कालके बाद सूर्यपुत्री यमुनाके भाथ विदाह किया। इसके बाद उन्होंने अवन्ति-राजकुमारी मिश्रहन्दका हरण किया तथा स्वयंवर-गृहमें सात वृषभोंका दमन करके श्रीकृष्णने कोसलाज नगनजित्की पुत्री सत्याका पाणिग्रहण किया। तत्पश्चात् केकयराज-कन्या भद्राका हरण किया और स्थान्यं भद्रदेवके राजाकी पुत्री लक्ष्मणाको स्वयंवरमें जीता। युद्ध-भूमिमें दाल-समूहोंद्वारा सेनासहित भौमाकुरको जातकर सोलह सहस्र सुन्दरीयोंको वे व्याह लाये। सत्यभामाकी इच्छामें उन्होंने केवल यक्षाको भाथ लेकर स्वयंमें इन्द्रको पराहा किया और वहाँमें पारिजात वृक्ष तथा सुधर्मी सभाको वे उठा लाये। उन्होंने धूत-सभामें चलरामजी-

इस प्रकार अंगर्ग-साहस्रमें विश्वजितस्त्रष्णके अन्दर्गत नारद-बहुलाय-संवादमें 'मन्मथदेशपर विजय' नामक इस्तीसर्वी अच्छाय पूरा हुआ। ३१।

के द्वारा हुए इकमीको मरवा ढाल और बाणासुरकी सहस्र भुजाओंमें दोको छोड़कर शेष लबके सौ-सौ डुकड़े कर ढाले। उन परमात्माने राजा उपरेनके राजस्वय बक्षकी सिद्धिके निमित्त सम्भ्रूं जगत्को जीतनेके लिये अपने पुत्र अन्धरशत्रु प्रद्युम्नजीको भेजा, जो भूमण्डलके समस्त गजाओंको जीतकर यहाँ केतुमालातिपर विजय पानेके लिये आये हैं। उनको हमारा नमस्कार है। २९-३३।

जारदजी कहने हैं—राजन् ! यह सब सुनकर प्रसन्न हो महामनस्त्री श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न हरिने उन लोगोंको कुण्डल, कढ़, हीरा, मणि, हाथी और घोड़े पुरस्कारके रूपमें दिये। उम मन्मथशालिनी पुरीमें महान् प्रजापति व्यति संवासरेप्रद्युम्नको नमस्कार करके भेट अर्पित की। ३४-३५।

तदनन्तर महाबाहु प्रद्युम्न दिव्य कामवनमें गये, जो अन्य साधारण लोगोंके लिये अगम्य था; केवल प्रजापतिकी पुत्रियाँ उसमें जा सकती थीं। वह सुन्दर वन साक्षात् कामदेवका क्रीडास्थल था और कामाळके तेजसे चारों ओरसे सुरक्षित था। वहाँ नारियोंका गर्म प्राणशून्य होकर गिर पड़ता था, वर्षभर भी टिक नहीं पाता था। ३६-३७।

राजन् ! उस समय उस उक्त कामवनसे पूलोंके पांच बाण लिये पुष्पघन्वा कामदेव निकले। उनके श्याम शरीरपर पीताम्बर धोमा पा रहा था। उनका रूप अत्यन्त मनोहर था। उन्होंने अपने धनुषकी प्रत्यक्षाका गम्भीर धोष फैलाया। उनके बाणका स्पर्श होते ही यादव-बीर अपने सैनिकों, घोड़ों, हाथियों और पैदलोंके भाथ स्वतः काममोहित होकर गिर पड़े। उनके बाणके वेगका वर्णन नहीं हो सकता। तदनन्तर जगदीश्वरोंके भी ईश्वर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न उसी समय कामदेवके स्वस्थमें विलीन हो गये, जैसे पानी पानीमें मिल जाता है। नरेश्वर ! सैनिकोंसहित समस्त यादव रुक्मणी-नन्दन प्रद्युम्नको कामदेवका पूर्ण-स्वरूप जानकर तत्काल नकित हो गये। ३८-४०।

बत्तीसवाँ अध्याय

**भद्राश्वर्षमें भद्रश्वाके द्वारा प्रद्युम्नका पूजन तथा तालिम; यादव-सेनाकी चन्द्रावती
पुरीपर चढ़ाई; श्रीकृष्णकुमार वृक्कके द्वारा हिरण्याक्ष-पुत्र हृष्टका वध**

श्रीमारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर महाबाहु श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न समूचे केतुमाल्वर्षपर विजय पाकर, अनुग धारण किये, योग समूद्रियोंसे युक्त, 'भद्राश्वर्षमें गये, जिसकी सीमाका पर्वत साक्षात् 'पान्धमादन' वडी शोभा पाता है, जहाँसे पापनाशिनी गङ्गा 'सीता' नामसे प्रवाहित होती है। वहाँ सर्वपापनाशक 'वेदक्षेत्र' नामक महार्त्तर्थ है, जहाँ महाबाहु हयप्रीव हरिका निवास है। भर्मपुत्र भद्रश्वाव उनकी सेवा करते हैं ॥ १-२३ ॥

सीता-गङ्गाके पुलिनपर महात्मा प्रद्युम्नकी सेनाके शिविर पड़ गये, जो सुनहरे बछोंके कारण बड़े भनोहर जान पड़ते थे। भद्राश्व देवके अधिपति भर्मपुत्र महाबली महात्मा भद्रश्वावने भक्तिभावसे परिक्रमा करके श्रीकृष्ण-कुमारको प्रणाम किया और उन्हें भेंट अर्पित की। पिर वे उनसे बोले ॥ ४-५ ॥

भद्रश्वावने कहा—प्रभो ! आप साक्षात् पूर्ण—परिपूर्णतम भगवान् हैं। साधुपुरुषोंकी रक्षाके निमित्त ही दिविजयके लिये निकले हैं। भगवान् ! आपने पूर्वकालमें शम्वर नामक 'त्यक्तो परास्त किया था। उसका छोटा भाई उत्कच बड़ा दुष्ट था, जो गोकुलमें छकड़ेपर जा बैठा था। वह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके द्वारा मारा गया; परंतु उसका बड़ा भाई महादुष्ट बलवान् शकुनि अभी जीवित है। देव ! वह आपसे ही परास्त होनेयेग्य है, दूसरा कोई कदापि उसे जीत नहीं सकता ॥ ६-८३ ॥

प्रद्युम्नने पूछा—भर्मनन्दन ! देव्यराज शकुनि किसके बंशमें उत्पन्न हुआ है, उसका निवास किस नगरमें है और उसका बल क्या है—यह बताइये ॥ ९३ ॥

भद्रश्वावने कहा—भगवन् ! कश्यप मुनिके द्वारा दितिके गर्भसे दो आदिदैत्य उत्पन्न हुए, जिनमें बड़का नाम हिरण्यकशिषु और छोटेका नाम हिरण्याक्ष था। हिरण्याक्षके भी नौ पुत्र हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं—शकुनि, शम्वर, हृष्ट, भूत-संतापन, वृक्क, कालनाभ, महानाभ, हरिसमश्रु तथा उत्कच। देवकूटसे दक्षिण

दिशामें जटरगिरिकी तराईमें चन्द्रावती नामक पुरी है, जो दैत्योंके दुर्गसे सुशोभित है। वहाँ छः भाइयोंसे शिरा हुआ शकुनि निवास करता है। यदूस्तम् । शृणिलोग जय-जय यशका आरम्भ करते हैं, तब-तब वह उनके यशको भड़ा कर देता है। भक्तजनपालक ! उससे इन्द्र आदि देवता भी उद्दिश्य हो उठे हैं। देव ! वह देवद्रोही देव्यराज आपसे ही जीते जाने योग्य है; क्योंकि आपने भनोंकी शान्तिके लिये सम्पूर्ण जगत्को जीता है। आप भगवान् प्रद्युम्नको नमस्कार है। चतुर्भूहरूप आपको प्रणाम है। गी, ब्राह्मण, देवता, साधु तथा वेदोंके प्रतिपालक आपको नमस्कार है ॥ १०-१७ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार प्रार्थना करनेपर साक्षात् भगवान् प्रद्युम्न इरिने राजा भद्रश्वाको 'दरिये मर'—यों कहकर अभयदान दिया। तदनन्तर महाबाहु प्रद्युम्नने अपनी सेनाके साथ चन्द्रावतीपुरीमें पहुँचनेके लिये वहाँसे तत्काल प्रस्थान किया। शकुनिको मेरे मुँहसे यह समाचार मिल गया कि 'तुम्हे मारनेके लिये यदुकुलतिलक प्रद्युम्न आ रहे हैं।' यह सुनकर उम्म देव्यराजने दैत्योंकी सभामें शूल उठाकर कहा ॥ १८-२० ॥

शकुनि बोला—बड़े सौभाग्य और प्रसन्नताकी भात है कि मेरा शशु प्रद्युम्न स्वयं यहाँ आ रहा है। दैत्यो ! मुझे उम्म परास्त करना है; क्योंकि मुझपर मेरे भाईका शृण पहलेसे ही चढ़ा हुआ है। जिसने पूर्वकालमें मेरे भाई शम्वरको मारा था, उसी अपराधके कारण मैं यादवोर्माहत उस प्रद्युम्नको मार डालूँगा। इसलिये असुरो ! तुमलोग जाओ और उसकी सेनाका विघ्नन करो। तत्पश्चात् मैं उसका, देवराज इन्द्रका और देवताओंका भी वध करूँगा ॥ २१-२३ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! शकुनिकी आवज सुनकर महाबली दैत्य हृष्ट एक करोड़ दैत्योंकी सेना साथ लिये यादव-सेनाके समुद्र युद्धके लिये आया। लीलासे ही मानव-दारीर धारण करनेवाले भगवान् प्रद्युम्नने अपनी सम्पूर्ण सेनाका यज्ञवूह बनाया, अर्थात् गृष्णकी आकृतिमें

वाणी देनाको चाहा किया । अबूहमै चौंचके स्थानपर अनुष्ठानीयोग्य अनिवार्य लड़े हुए, ग्रीष्म-भागमें अर्जुन तथा पृथ्वीभागमें आम्बवतीकुमार साम्ब विराजमान हुए । राजन् । दोनों दैरोंकी जगह दीसिमान् और गद लड़े हुए, उदयभागमें पार्णि और पुच्छभागमें श्रीकृष्णकुमार भानु थे ॥ २४-२७ ॥

नरेश्वर । सीता-गङ्गाके तटपर यादवोंके साथ दैत्योंका उसी प्रकार घोर युद्ध तुआ, जैसे समुद्र समुद्रोंसे टक्का रहे हों । जैसे बादल जलकी धारा बरसाते हैं, उसी प्रकार दामव यादवोंपर वाण, विश्वल, मुसल, मुद्र, तोमर तथा शृष्टियोंकी शृष्टि करने ल्ये । राजन् । देनाओंके पैरोंसे उड़ी हुई अपार शूलने सूर्य और आकाशको आच्छादित कर दिया । किनीनी अपना बाण भी नहीं दिखायी देता था । जैसे वधकोंके बादल सूर्यको आच्छादित करके अन्वकार फैला देते हैं, वही हशा उस तमय हुई थी ॥ २८-३० ॥

बृक, हर्ष, अनिल, गृष्म, वर्षन, उत्तराद, भद्राग, पावन, वहि और दसवें क्षुष्मि—मिश्रन्दाके थे दम पुत्र दानवोंके साथ युद्ध करने ल्ये । जब वाणोंमें अन्धकार छा गया, तब श्रीहरिकुमार बृक वारंवार धनुषकी ठंडाएं बरते हुए सबसे आगे आ गये । वे बाण समूहोंगे दैत्योंको विदीर्ण करने ल्ये, जैसे कोई कदुबयनोंमें मित्रतानो स्थिरण करे । उन्होंने दैत्य सेनाके हाथियों, रथों और पैदल वीरोंसे धरायायी कर दिया । वे कवच और धनुष कट जानेके कारण समराङ्गणमें गिर पड़े ॥ ३१-३४ ॥

बृकके वाणोंसे जिनके पैर कट गये थे, वे आँधोंके उत्तराढ़े हुए बृकोंकी भासि भरनीपर गिर गये । किन्हींके मुँह नीचेकी ओर थे और किन्हींके अपरकी ओर । राजन् । बाण समूहोंसे भुजाओंके छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण वे रणस्थिरमें फूटे हुए बरंनोंके देर में शोभित होते थे । उस रणस्थिरमें हाथी वाणोंकी भारसे दो टूक दोकर पड़े थे और बुरीसे काटे गये कूप्पाङ्कोंके टुकड़ोंके रामान प्रतीत होते थे ॥ ३५-३६२ ॥

इसी समय महाबली हृष्ट चिह्नपर चढ़कर आया । उसने दस बाण मारकर बृकके कवच और धनुषकी प्रस्त्रज्ञाको काट डाला । फिर चार वाणोंसे चारों घोड़े, दो

इस प्रकार श्रीगर्भ-सहितामें विश्वजित-खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें हृष्ट दैत्यका वध ।

नामक बत्तीसवाँ अश्वाय पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

वाणोंसे सारथि और तीन वाणोंसे ध्वज स्थिरत कर दिये । फिर वीस बाण मारकर उस दानवराजने बृकके रथको नष्ट कर दिया । धनुष छट गया, घोड़े और सारथि मार डाले गये, तब बृह दूमरे रथपर जा नदे तथा रोश्युर्वक धनुष हाथमें लिया । इतनेमें ही असुर हृष्टने बृकके उस धनुषको भी छाट डाला । तब यादवपुंगव बृकने गदा हाथमें लेकर भिंहके मस्तकपर तथा उमकी पीठपर बैठे हुए दैत्यपर भी प्रहार लिया । तब क्रोधमें भरे हुए सिंहने समराङ्गणमें उछलाकर अपने नलों, दाँतों और पंजोंसे अनेक योधाओंको मार गिराया । उसकी जीभ लगलगा रही थी, अगल चमक रहे थे । उसने भीषण हुंकार करके बृकको उसी भाँति गिरा दिया, जैसे हाथी केलेके तनेको धरायायी कर दे ॥ ३७-४४ ॥

नरेश्वर । बृकने उस भिंहको दोनों हाथोंसे पकड़कर पृथ्वी-पर दे मारा । फिर वे उसके ऊपर चढ़कर वैसे ही गजने ल्ये, जैसे एक पहलवान दूमरे पहलवानको पटककर उसकी छातीपर चढ़ बैठे और गजने ल्ये । जब वह भिंह पुनः उछलने और उसके शरीरको बल्यूँ, नवाने ल्या, तब बलवान् विश्रृत्वन्दा-कुमारने उसके ऊपर पूरे मुक्का मारा । उसके मुक्केकी मारमें सिंहने दम तोड़ दिया । तब कुप्रित हुए दैत्यप्रवर हृष्टने उसके ऊपर माघ हा शूल फेका । किंतु बड़ी भारी उल्काके समान तेजस्वी उस शूलको बृकने तलवारसे उसी प्रकार दूक-दूक कर दिया, जैसे गरुड अपनी तीखी चौंचके प्रहारसे किनी सर्पके दुकड़े दुकड़े कर डाले । हृष्टने भी अपनी तलवार ले रहा गजना की और भूतलको कँपाते हुए उसने महाबली बृकके मस्तकपर उसके द्वारा प्रहार किया । तब बलवान् वृकने तलवारकी स्थानपर दैत्यके वारको रोका तथा अपने बड़गोंके द्वारा दैत्यके कंधेपर चोट पहुँचायी । उस बड़गों दैत्यका सिर कटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा । किरीट और कुण्डलोंमें युक्त वह मस्तक गिरे हुए कमण्डलके समान शोमा पाता था ॥ ४४-५० ॥

महाराज ! हृष्टके मारे जानेपर शेष दैत्य भयसे व्याकुल हो भागकर चन्द्रावतीपुरीको चले गये । उस समय देवताओं और मनुष्योंकी हुन्हुभियाँ वज उटीं और देवतालोग बृकके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने ल्ये ॥ ५१-५२ ॥

तीतीसवाँ अध्याय

संग्रामजितके हाथसे भूत-संतापनका वध

नारदजी कहते हैं—राजन् । हृषके मारा गया
कुनकर शकुनिके श्रोधकी सीमा न रही । उसने देवताओं-
को भी भय देनेवाले अपने भाइयोंको भेजा । भूत-संतापन
नामक दैत्य हाथीपर चढ़कर निकला । हृषक दैत्य गधेपर
और काळमाभ सूअरपर चढ़कर आया । महानाभ मतवाके
ऊंटपर तथा इरिदमशु तिमिगिल (अतिकाय मगरमच्छ)
पर बैठकर निकला ॥ १-२३ ॥

मयासुरका बनाया हुआ एक विजयदील रथ था,
जिसपर वैजयन्ति पताका फहराती थी । इसीलिये वह
'वैजयन्त' और 'जंत्र' कहलाता था । उसका विस्तार पॉच
योजनका था और उसमें एक हजार घोड़ोंसे हुए थे ।
वह मायामय रथ हच्छानुसार चलनेवाला तथा सैकड़ों
पताकाओंसे सुधोंभेत था । उसमें एक हजार कलश लो
थे और मोरीकी शालें लटक रही थीं । वह रक्षमय आभूषणोंसे
विभूषित राखा था नन्दमाओंके समान उज्ज्वल था । उसमें
एक हजार पाहियं लों थं तथा उसमें लटकाये गये बहुतसे
घंटे उसकी शोभा बढ़ाते थे । शकुनि उसी रथपर आरूढ़ हो
सके एंडे युद्धकी इच्छामें निकला ॥ ३-६ ॥

मैथिलेश्वर ! उसके साथ वारह अक्षीहिणी दैत्योंकी सेना
थी । धनुषोंकी टंकार, बीरोंके सिंहनाद, घोड़ोंकी हिनहिनाहट,
रथोंकी वरमाहट तथा हाथियोंकी चीकारोंसे मानो समस्त
दिक्षमण्डल गर्जना कर रहा था । दैत्येनाके अभियानसे
समस्त भूमण्डल कौपने ल्या । नरेश्वर ! अनेकानेक पर्वत
चरायांसी हो गये । समुद्र विशुद्ध हो उठे और अपनी
मर्यादाको लाँच गये । देवताओंने तुरंत ही अमरावतीपुरीके
दरवाजे बंद कर लिये और वहों अर्गल ढाल दी । उस
धारण सेनाको देखकर धनुर्धारियोंमें शेष, बछान् तथा
बैरंशाली बीर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न यदुकुलके श्रेष्ठ बीरोंसे
इस प्रकार बोके ॥ ७-१० ॥

प्रधुम्नने कहा—बीरो ! भूतलपर जो हमारा यह शरीर
है, पॉच भूतोंका बना हुआ है, केनके समान क्षणभूतर
है, कर्म और गुण आदिसे इसका निर्माण हुआ है । इसका
आना-जाना ल्या रहता है तथा वह कालके अधीन है ।

यह जगत् बालकोंके रचे हुए खिलवाड़के समान है ।
विद्वान् पुरुष इसके लिये कभी ज्ञोक नहीं करते । साम्बिक
पुरुष ऊर्जलोकमें गमन करते हैं, राजस मनुष्य मध्यलोकमें
स्थित होते हैं और तामस जीव नीचेके नरकलोकोंमें जाते
हैं । इन तीनोंसे जो भिन्न है, वे वारंवार कर्मानुसार विन्दरते
हुए नाना योनियोंमें जन्मते-मरते रहते हैं । यह लोक सब औरसे
भयप्रस्त है; जैसे नेत्रोंके धूमनेसे धरती व्यर्थ ही धूमती-सी
प्रतीत होती है, उसी प्रकार यह मनःकल्पित समूर्ण जगत्
आन्त होता है । जैसे वॉच (दर्पण आदि) में प्रतिविम्बित
अपने ही स्वल्पको देखकर बालक मुख होता है, उसी
प्रकार यहों सब कुछ आन्तिपूर्ण है । जैसे मण्डलवर्ती जनोंका
सुख अस्थिर होता है, उसी प्रकार पातालनिवासियोंका भी
सुख अचल नहीं है । यहोंद्वारा उपलब्ध देवताओंके सुखको
भी इसी प्रकार चञ्चल समझना चाहिये । श्रेष्ठ पुरुष यही
सोचकर समस्त सांसारिक सुखको तिनकेके समान त्याग देते
हैं । श्रद्धुके गुण, देहके गुण और स्वभाव प्रतिदिन जाते
—परिवर्तित होते रहते हैं; उसी प्रकार मनुष्योंका भी
आवागमन ल्या रहता है । यहाँ जो-जो इश्वरान वस्तु है,
वह कोई भी सत्य नहीं है । जैसे यात्रामें राहगीरोंका समागम
होता है और फिर सब-के-सब जहाँ-तहाँ चले जाते हैं, उसी
प्रकार यहों सब आगमापायी है, कुछ भी स्थिर नहीं
है । जैसे इस लोकमें देखी हुई वस्तु उस्का या विद्युत्-
विलासके समान अस्थिर है, उसी प्रकार पारजैकिक बस्तुके
विवरमें भी समझना चाहिये । उन दोनोंसे क्या प्रयोजन सिद्ध
होता है ? अतः सर्वत्र परमेश्वर श्रीहरिको देखते हुए कस्याण-
मार्गका निष्कर्ष करके सदा उसीपर चलना चाहिये । जैसे
जलयानोंके समूहमें सर्वत्र एक ही चम्द्रमा प्रतिशेषित होता
है तथा जैसे समिधाओंके समुदायमें एक ही अप्रितच्छका
बोध होता है, उसी प्रकार एक ही परमात्मा भगवान् स्वयं
निर्मित देहारियोंके भीतर और बाहर अनेक-सा जान
पड़ता है । जो ज्ञाननिष्ठ है, अस्यन्त वैराग्यका आभ्य ले
चुका है, भगवान् श्रीकृष्णका भक्त है और किसी भी वस्तु-
की अपेक्षा नहीं रखता, वह तपोवनमें निवास करे
वा धर्म, उठे दीनों गुण सर्वथा स्पृश नहीं करते । इसीलिये

संन्यासी, जिसने परमपर ब्रह्मका साक्षात्कार कर लिया है, उदा मुखी एवं आनन्दमय हो बालककी तरह विचरता है। जैसे भविराके मदसे अध्या तुआ मनुष्य यह नहीं देखता कि ऐरेहारा पहना तुआ वज्र शरीरपर है या गिर गया, उसी प्रकार सिद्ध युद्ध समस्त सिद्धियोंके कारणभूत शरीरके विषयमें वह नहीं देखता कि वह प्रारब्धवश है या गिर गया अध्या कहीं आता है या जाता है। जैसे सूर्योदय होनेपर सारा अन्धकार नष्ट हो जाता है और घरमें रक्षी तुई बस्तु लोगोंको यथावस्थित रूपसे दिखायी देने लगती है, उसी प्रकार ज्ञानोदय होनेपर अज्ञानान्धकार मिट जाता है और अपने शरीरके भीतर ही परब्रह्म प्रकाशित होने लगता है। जैसे इन्द्रियोंके पृथक्-पृथक् मार्गने तीनों गुणोंके आन्ध्रभूत परमार्थ बस्तुका उन्नयन (सम्यग्नान) नहीं हो सकता, उसी प्रकार अनन्त परमात्माका एकमात्र अद्वितीय धारा मुनियोंके बताये विभिन्न शास्त्रमार्गोद्धारा पूर्णतः नहीं जाना जा सकता। कुछ लोग वैष्णवाधामनों 'परमपद' कहते हैं, कोई वैकुण्ठको परमेश्वरका 'परमधारा' बताते हैं, कोई अज्ञानान्धकारसे परे जो शान्तस्वरूप परम वस्तु है, उसे 'परमपद' मानते हैं और कुछ लोग कंवल्य मोक्षको ही 'परमधारा' की संज्ञा देते हैं। कोई अशर तत्त्वकी उच्छृङ्खलाका प्रतिपादन करते हैं, कोई गोलोक धामको ही सबका आदिकारण कहते हैं तथा कुछ लोग भगवान्-की निज लीलाओंसे परिर्ण निकुञ्जको ही 'सर्वोत्कृष्ण पद' बताते हैं। मननशील मुनि इन सबके रूपमें श्रीकृष्णपदको ही प्राप्त करता है ॥ ११-२३ ॥

मारदणी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णकुमार प्रश्नमनकी यह बात द्वन्द्व भैरवर्षक छान प्राप्त करके, इर्ष और डालाउसे भैर द्वारा बाद-भैर वीरोंने शश प्रहण कर लिये। फिर सौ लीता-मङ्गलके तटपर यादवोंके साथ दैत्योंका दम्रुल युद्ध तुआ—वैरे ही, जैसे उद्गुके तटपर वानरोंके साथ राक्षसोंका तुआ था। रथी रथियोंसे, पैदल वैदलीसे, युद्धवार युद्धवारोंसे और गजारोही गजारोहियोंसे जड़ाने लगे। महावतोंसे प्रेरित द्वृष्ट, होदोंसे मुशोभित कुछ उन्मत्त गजराज मेषाद्धरसे युक्त गिरिराजोंके समान दिखायी देते थे। राजन्! वे समराङ्गमें झुक्कारते-चिन्धारते तथा साँकलोंसे युक्त सूँडोद्धारा रथियों, युद्धवारों तथा पैदल वीरोंको धराशायी करते द्वृष्ट विचर रहे थे। वे बोहों और सारथियोंसहित रथोंको दृश्य उद्धकर चुम्हियर पटक देते और वक्रूर्बक मुन:

उठाकर आकाशमें केक देते थे। राजन्! उस युद्धभूमिमें सब और दोइते हुए क्षत-विक्षत गजराज कुछ लोगोंको युद्ध सैँडोद्धारा विदीर्ण करके उन्हें पैरोंसे मसल देते थे। महाराज! युद्धसवारोद्धारा प्रेरित पंखयुक्त घोड़े रथोंको लाँघकर हाथियोंके कुम्भस्थलपर चढ़ जाते थे। कुछ महाशीर युद्धके मदमें उन्मत्त हो, हाथमें शक्ति लिये घोड़ोंके द्वारा हाथियोंके कुम्भस्थलपर पहुँचकर गजारोही नरेशोंको उर्सा प्रकार मार डालते थे, जैसे सिंह यूथपति गजराजोंको मार गिराते हैं। कुछ युद्धसवार योद्धा तलवारोंके बेगमें सामनेकी संनाको विर्द्धर्ण करते हुए उसी प्रकार सकुशल आगे नक्ल जाते थे, जैसे वायु अपने बेगमें लीलापूर्वक कमलवनको रौद्रदक आगे बढ़ जाती है। कुछ युद्धसवार समराङ्गमें उठलने हुए खड़गोद्धारा उसी प्रकार आपसमें ही आधात प्रत्याधात करने लगते थे, जैसे आकाशमें पक्षी किसी मांसके ढुकड़ेके लिये एक दूसरोंको लौंचसे मारने लगते हैं। कुछ पैदल योद्धा खड़गोंसे, कुछ फरसों और चक्रोंसे तथा कुछ योद्धा तारोंसे भालोंसे फलोंकी तरह विपक्षियोंके मस्तक काट लेते हैं ॥ २४—३५ ॥

संग्रामजिन्, वृद्धसंन, शूर, प्रहरण, विजित्, जय, सुभद्र, वाम, सत्यक तथा अश्वयु—भद्रके गर्भसे उत्पन्न हुए ये श्रोकृष्णके दस औरस पुत्र सबसे आगे आकर दैत्यपुंगवोंके साथ युद्ध करने लगे। महाराज! हाथीपर चढ़े हुए महान् असुर भूत-संतापनने अपने नाराजोंकी वशसे दुर्दिनका हवय उपस्थित कर दिया। भूत-संतापनके बाणोद्धारा अन्धकार फैला हिये जानेपर श्रीकृष्णके बलवान् पुत्र संग्रामजित् उसका लाग्ना करनेके लिये आये। उन्होंने रणभूमिमें सैकड़ों बाण भारकर भूत-संतापनकी धायल कर दिया। तब बलवान् भूत-संतापनने प्रलयकालके समुद्रोंके संबर्षसे प्रकट होनेवाले संप्रामजित् के चतुराही प्रत्यक्षाद्वे बाण द्वारा दाग दिया। तब संग्रामजिल्लने विषुवूके समान दीसिमान् अपना दूसरा धनुष छेकर उत्थपर विचिपूर्वक प्रथमा चढ़ायी, फिर सौ बाण छोड़े। वे बाण भूत-संतापनके धनुपानी प्रथमा, लोहनिर्मित कवच, शरीर और हाथीका छेदन भेदन करते हुए धरतीमें समा गये। बाणोंके उस प्रहरसे पांडित ही भूत-संतापन मन-ही-मन कुछ बकराया, फिर उस बलवान् बीरने अपने हाथीको आगे बढ़ाया।

काल और यमके लाभ भयानक उस हाथीको आक्रमण करते देखा, बल्लान् संग्रामजितने अपना दिव्य लकड़ छेकर रणभूमिमें उसके लगार प्रहार किया। उस लकड़-प्रहारसे उसकी हँड़ीके दो ढुकड़े हो गये और वह भयानक चीकार करता तथा गण्डस्थलसे मद बहाता हुआ भूत-संतापनको छोड़कर जगत्की कमित करता हुआ भागा। वहेन्हें वीरोंको धराशायी करता हुआ और बारबार बढ़े बजाता हुआ सीधे दैत्यपुरी चन्द्रावतीको चला गया। कोई भी बलपूर्वक उसे रोक न सका ॥ ३६—४७ ॥

इस प्रकार हाथीके संग्रामभूमिसे भाग जानेपर वहाँ महान् कोलाहल मच गया। तब भूत-संतापनने श्रीकृष्ण-पुत्रके ऊपर तीखी धारवाला चक्र चलाया, जो श्रीपाश्चूत्रके सूर्यकी भाँति उद्भासित हो रहा था। महाराज ! उस बूमते चक्रको अपने ऊपर आया देख बल्लान् भद्राकुमारने अपने चक्रद्वारा लोलापूर्वक उसके सौ ढुकड़े कर डाले। तब उस महान् असुरने जटरगिरिका एक शिखर उखाइकर आकाश-मण्डलको निनादित करते हुए श्रीकृष्ण-पुत्रपर फौका। राजेन्द्र ! संग्रामजितने उस शिखरको बलपूर्वक दोनों हाथोंसे

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वविद्यालयके अन्तर्गत नारद-बहुलालव-संवादमें ‘भूत-संतापन दैत्यका दधि’ नामक दैतीसर्वो अध्याय पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

पकड़ लिया और उसीके द्वारा रणभूमिमें भूत-संतापनको प्रहार किया। तब दैत्यपुरी भूत-संतापन समूचे जहरस्तिको उखाइकर उसे हाथमें ले, संग्रामभूमिमें लहा हुआ अब मैं इसी पर्वतसे संग्राममें तुम्हारा कमल तमाम कर दूँगा’—इस प्रकार मुखसे कहने लगा। यह देख श्रीहरिके पुअं संग्रामजितने भी देवकृष्ण नामक प्रहार उखाइ लिया और मुखसे कहा—‘मैं भी इसीसे युद्धभूमिमें तेरे प्राण के हूँगा’ ॥ ४८—५४ ॥

राजेन्द्र ! यों कहकर वे उसके सामने लड़े हो गये। वह अद्भुत-सी घटना हुई। नरेश्वर ! पर्वत वेंकते हुए भूत-संतापनपर बल्लान् संग्रामजितने संग्राममें अपने हाथके पर्वतसे प्रहार किया। भारी घोसे युक्त जठर और देवकृष्ण दोनों पर्वत दैत्यके मस्तकपर गिरे। उनसे दो वज्रोंके टकरानेका-सा भयानक शब्द हुआ। विदेहराज ! दोनोंकी चोटें गिरकर भूत-संतापन मृत्युका ग्रास बन गया और उसकी चोटि संग्रामजितमें बिलीन हो गयी। संग्रामजितकी मेनामें विजयसूचक कुन्दुभियों बजने लगीं और देवता उन भद्राकुमारके ऊपर फूल बरसाने लगे ॥ ५५—५९ ॥

चौंतीसवाँ अध्याय

अनिष्टद्वारे हुक दैत्यका वध

१ श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! संग्रामजितके द्वारा उस महायुद्धमें भूत-संतापनके मारे जानेपर दैत्य-सेनाओंमें महान् हाहाकार मच गया। तब शंखनि, हुक, कालानाम और महानाम तथा हरिलक्ष्मि—वे आँख वीर रणभूमिमें उतरे ॥ १२ ॥

श्रीकृष्णकुमार प्रसुत शंखनिके साथ हुक करने को और अनिष्टद्वारे हुकके साथ । साथ कालानाम और श्रीनिमान् महानामसे भिन्न गये। बल्लान् वीर श्रीकृष्ण-कुमार भानु हरिलक्ष्मि नामक असुरके साथ छाड़ने लगे। सबके आगे ये बनुधरोंमें श्रेष्ठ अनिष्टद्वार। वे अपने बाणोंद्वारा दैत्योंको उसी प्रकार विदीर्ण करने लगे, जैसे इन्द्र वज्रसे पर्वतोंका भेदन करते हैं। अनिष्टद्वारके बाणोंसे दैत्योंके पैर कंपे और झुटने कट गये। वे सब-के सब

मूर्च्छित हो तेज ह्याके उखाड़े हुए हुक्षोंकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े। अनिष्टद्वारके तीखे बाणोंसे जिनके मेवदम्बर (होड़), कुम्भस्तक और हँड़े छिल-मिल हो गयी थीं, हाँस हृष्ट गये और कक्ष कट गये थे, वे हाथी रणभूमिमें उसी प्रकार गिरे, जैसे वज्रके आघातसे पर्वत छार आये हैं। हाथियोंके हो हुकड़े होकर पड़े थे और उनके ऊपर कस्तीरी छूल चमक रही थी। हाथियोंके विदीर्ण कुम्भस्तकोंसे इष्टर-उष्टर बिलरे हुए मोती चमक रहे थे। राजेन्द्र ! वे बाणजन्य अन्धकारमें उसी प्रकार उदीत हो रहे थे, जैसे रातमें तारे चमकनाते हैं। अनिष्टद्वारके बाणोंसे प्रबर्धित किसने ही वीर मूर्च्छित होकर भूमिपर पड़े थे। वह हृष्ट अद्भुत-सा प्रसीत होता था। किसने ही रथी भूमिपर गिरे थे और उनके रथ सने लड़े थे। कुछ

विश्वायोंके कटे हुए भक्तके प्रेते दिवायी देते ये जैसे हाथीके पेटमें कैपके पक्के ॥ ३—१०५ ॥

इति— । एक ही क्षणमें उस संग्रामके भीतर दैत्योंकी रेणाओंमें इन्हाँ अधिक रक्त गिरा कि उसकी भवानक नदी वह चली । हाथी उसमें प्राहके समान जान पड़ते थे; ऊँटों पर्व गांधीके बड़े एवं मुख आदि कच्छप जान पड़ते थे; रथ कूँतके समान प्रतीत होते थे, केदा वेवरका भ्रम उत्पन्न करते थे और कटी हुई भुजाएँ सर्पिणी-सी जान पड़ती थीं । कटे हाथ उसमें मछलियाँ थे और मुँहट, रसहार पर्व कुण्डल कंकड़-पत्तरका स्थान ले रहे थे । शब्द, शक्ति, लक्ष, शहू, चौंबर और घज वालुका-राशिके समान थे, रथोंके बड़के भैवरका भ्रम पैदा करते थे । दोनों ओरकी सेनाएँ ही उस रक्त-सरिताके दोनों तट थीं । बुपेश्वर । सौ बोजनतक फैली हुई वह सूनकी नदी वैतरणीके समान भयंकर जान पड़ती थी । प्रमथ, मैरव, भूत, वेशाल और वोगिनीयण उस रण भण्डलमें अद्वाहस करते, नाचते और निरम्तर खप्परमें सून लेकर पांत थे । वे मगावान् बद्रकी मुण्डमाला बनानेके लिये नरमुण्डोंवा संग्रह भी करते थे । सिंहपर चढ़ा हुई भद्रकाली सैनियों डाकिनियोंके साथ आकर उस समराज्ञामें दैत्योंको अपना ग्रास बनाती और अद्वाहस करती थीं । विमानपर बैठी हुई विवाहियाँ, गन्धवंशन्याएँ और अप्सराएँ क्षत्रिय-घर्ममें किंतु रहकर बीर गतिको प्राप्त हुए देवतस्तुप धीरोंका वतिस्तुपमें वरण करती थीं । आकाशमें उन धीरोंको पतिस्तुपमें चुनते समय वे सुन्दरियों परस्पर कलह कर बैठती थीं । कोई कहती—“ये मेरे योग्य हैं, उम्मलेशोंके योग्य नहीं” । इस तरह वे विहूल-नित्य हो विवाद कर रही थीं । कुछ बीर घर्ममें तत्पर रहकर समरकी रक्षाभूमिसे दूनिक भी किंचित नहीं हुए, इसलिये वे सुर्यमण्डलका भैदन करके दिव्य विज्ञुपदको जा पहुँचे । कुछ दैत्य अनिश्चको अपने शकुंक रूपमें देशकर भाग लड़े हुए । कुछ असुर अपना अपना युद्ध छोड़कर दूसों विश्वायोंमें पछायन कर गये ॥ ११—२१५ ॥

उसी समय गधेपर चढ़ा हुआ भयंकर महादेव्य तृक गर्वता करता तथा वार-वार धनुष ढंकारता हुआ तृक करते थाया । उस रणतृप्ति दैत्योंमें भी वह बाण मारकर अनिश्चके ग्रस्तावाहित धनुषको काट दिया ।

धनुष कट जानेपर महावली अनिश्चदने दूसरा धनुष हाथमें लिया और दस बाण मारकर तृकके कोदण्डको भी लालित कर दिया । इसपर तृकके होठ रोपसे फटक उठे । उसने विश्वल उठाकर जीव व्यप्तियाँ हुए धनुर्भरोंमें श्रेष्ठ अनिश्चदसे कहा ॥ २२—२५५ ॥

दैत्य बोला—तू पराक्रमी क्षत्रिय है और तूने आज मेरी सेनाका विनाश किया है, इसलिये मैं अभी तुझे मार डालूँगा । तू मेरा उत्तम पराक्रम देखो । यदि मैं मुद्दमें तुझे नहीं मार सकूँ तो मेरी शपथ मुन ले—मुझे ब्राह्मण, गौ, गर्भस्थ शिष्ठ और वालवोंकी हत्याका सदा ही पाप लो ॥ २७—२८ ॥

अनिश्चदने कहा—दैत्य । जो लेग सूँहसे बढ़-बढ़कर बातें बनाते हैं, वे यहाँ कुछ नहीं कर पाते । मैं अभी तुझे मार डालूँगा । तुम मेरा उत्तम पराक्रम देखो । यदि मैं मुद्दमें तुझे नहीं मार सकूँ तो मेरी शपथ मुन ले—मुझे ब्राह्मण, गौ, गर्भस्थ शिष्ठ और वालवोंकी हत्याका सदा ही पाप लो ॥ २७—२८ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् । गधेपर बैठे हुए महादुष्ट तृकने भी शपथ खाकर धनुर्भरोंमें श्रेष्ठ अनिश्चदपर विश्वलसे प्रहार किया । परंतु राजन् । प्रशुमननन्दन अनिश्चदने उस विश्वलको बाये हाथसे पकड़ लिया और सहसा उससे महावली दैत्य तृकको धायल कर दिया । तब तो वह असुर कोष्ठं भर गया । उसने एक भारी गदा चलकर सहसा अनिश्चके रथको बलपूर्वक चूर-चूर कर डाला । तब प्रशुमनकुमारने तीव्री धारवाली तलवारसे शशुकी होनों झुजाएँ उसी तरह काट डालीं, जैसे इन्हें बत्रसे शीघ्र ही पर्वतोंकी दोनों पाँडें काट दी थीं । तब वह नारदजीने देव्य पैरोंसे पृथ्वीको कूपाता हुआ व्यवसायी जीमसे तृक भयंकर सूँह फैलकर देसा दिवायी देने लगा, मानो वह सारे आकाशको ही पी जायगा । परंतु विकरक दैत्योंवाके उस देव्यवालने, जैसे मगरमच्छ किसी वह मस्त्यको नियाड़ जाय, उसी प्रकार प्रशुमनकुमार अनिश्चदको अपना ग्रास बना लिया ॥ २९—३४५ ॥

महाराज ! वे श्रीकृष्णके पौत्र थे, इसलिये दैत्यके पेटमें जानेपर भी श्रीकृष्णकी कृपासे मरे नहीं, मछलीके पेटमें पड़े हुए प्रशुमनकी भाँति बच गये । जैसे अभासुरके पेटमें जाकर भी श्रीकृष्ण और व्याघ्र-वाङ्ग बच गये थे,

जैसे ब्रह्मासुरके उदरमें लब्ज अधिक जही मरे थे और जैसे ब्रह्मासुरके उदरमें जाकर भी इन्ह बच गये थे, उसी प्रकार ब्रह्मासुरके घटमें अनिष्टद्वारी प्राण-क्षति हो गयी ॥ ३५—३६ ॥

विद्युतराज । उस समय यादवोंकी ऐनामें हाहाकार मच गया । तब बलदेवके छोटे भाई बलवान् गदने गदा लेकर उसे महाबली बृक देखके मस्तकपर मारा । देखका सिर फट गया और उससे रक्तकी बूँदें टपकने लगी । रक्तकी धारासे उस विशालकाय देखकी उसी तरह शोभा हुई, जैसे गेहमिभित जलकी धारासे विच्छाचल मुद्दोभित होता है ॥ ३७—३९ ॥

इस प्रकार श्रीगर्भ-सहितामें विश्वविज्ञानपदके अन्तर्गत नारद-ब्रह्माश्व-संबादमें 'बृक देखका वध'

नामक चौतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

४५ तीसवाँ अध्याय

साम्बाद्वारा कालनाभ देखका वध

बहुलाश्व थोड़े—पुने ! आश्वर्य है, प्रशुभ्यकुमारने बहा अद्युषुत युद्ध किया । महादेव बृकके मारे जानेपर फिर उस समराङ्गमें क्या हुआ ? ॥ १ ॥

नारदउनि कहा—राजन् ! बृकको मारा गया देख महान् असुर कालनाभ यार-बार धनुष ठंकारता हुआ सूअरपर घढ़कर रणभूमिमें आया । उस असुरने समराङ्गमें अकूटको बीस, गदको दस, अर्जुनको दस, सात्यकिको पाँच, कृत-वर्षाको दस, प्रशुभ्यको सौ, अनिष्टद्वारीको बीस, दीसिमानको पाँच और लाभको नी आण मारकर उन सबको धायल कर दिया । उसके बाणोंकी चौटसे दो घड़ीके लिये वे सभी वीर व्याकुल हो गये । उन सबके बोडे भी मारे गये तथा रथ रणभूमिमें चूर-चूर हो गये । उसके हाथकी झुर्ती देखकर रुकिमणीनन्दन प्रसन्न हो गये । उन्होंने कालनाभको समराङ्गमें सावुवाद देकर उसकी भृत्य-भूरि प्रशंसा की ॥ २—३६ ॥

तत्प्रथात् प्रशुभ्यने अपना धनुष लेकर उत्तर पक्ष बाण रक्षा । कीषणद्वे छुटे हुए उस बाणने उस देखके विशालकाय सूखरके ऊपर उठाकर लाल-बोजन सूर स्फोटको सीमातक के बाकर शुभाते हुए आकाशसे भवंतर गड़ना करनेवाले समुद्रमें गिर दिया । तत्प्रथात् लालत् भगवान् प्रशुभ्यने भूसे वास्तवा संधान किया । उस बाणने

सद्वन्द्व अर्जुनने असुनी तकार लेकर अनावस्था ही उसके दोनों दैर काट डाले । दैर घट जानेपर वह पंख-कटे पर्वतकी माँति वरतीपर गिर पहा । अस्तित्व अपनी तलवारसे उसका घेट काढ़कर बाहर लिकल आये । जैसे इन्हने ब्रह्मासुरको मारा था, उसी प्रकार अनिष्टद्वारी अपनी तलवारसे उसका मस्तक काट डाल । उस समय यादव-ऐनामें जय-जयकार होने लगी तथा देवताओं और मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं । देवतालोग अनिष्टद्वारीके ऊपर फूँड़ोंकी बर्षा करने लगे । राजन् ! यह अद्युत द्वचान्त मैने तुमसे कह दुनाया, अब और क्या दुनाना चाहते हो ? ॥ ४०—४३ ॥

भी महाबली कालनाभको ऊपर के जाकर शुभाते हुए बल-पूर्वक चन्द्रावतीपुरीमें पटक दिया । वहाँ गिरनेपर कालनाभके मनमें कुछ बबराहट हुई । वह देखराज जल भारकी बनी हुई भारी गदा हाथमें लेकर पुनः रणभूमिमें आ पहुँचा और यादव-ऐनाका विनाश करने लगा ॥ ७—११ ॥

ब्रह्म-सद्वा गदासे हाथी, रथ, धोड़े और बैदल बीरोंको वह बड़े देखसे उसी प्रकार धंसाशयी करने लगा, जैसे आँखी शूक्रोंको गिरा देती है; किंतुको दोनों हाथोंसे उठाकर वह बल्लूचक आकाशमें कैक देता था । राजन् ! वे आकाशसे पृथ्वीपर वर्षाके ओलोंकी माँति गिरते थे । तब जाम्बवतीकुमार साम्बने गदा लेकर महान् असुर कालनाभके मस्तकपर गही चौट पहुँचायी । रणमण्डलके भीतर गदाओंद्वारा उन दोनों बीरोंमें थोर युद्ध होने लगा । वे दोनों ही गदाएँ आगकी चिनगारियाँ छोड़ती हुई परस्पर टकराकर चूर-चूर हो गयी । फिर वे दोनों थोर दूसरी गदाएँ लेकर उद्धके लिये लड़े हुए । उस समय कालनाभने जाम्बवतीकुमार साम्बने कहा—'मैं एक प्रहारले ही दुष्मारा काम तभास कर उकता हूँ, इसमें उंशय नहीं है' । तब उस रणभूमिमें लाल बोडे—'पहके तुम मेरे ऊपर प्रहार करो !' तब कालनाभने लालके मस्तकपर गदासे छोट की, किंतु जाम्बवतीनन्दन साम्बने

महाके ऊपर गंडा दौक ली और अपनी गंडासे कालनाभ दैत्यकी छातीमें आवात किया। उस गंडाकी चौटसे दैत्यकी छाती कट गयी और वह मुँहसे रक्त बग्न करता हुआ श्राणशूल्य हो गङ्गाके भरे हुए पर्वतकी भाँति पृथ्वीपर रिह पड़ा ॥ १२-२० ॥

इस प्रकार श्रीराम-सहितमें विश्वविस्त्रृष्टके अन्तर्गत नारद-बुद्धकाश-संवादमें 'कालनाभ दैत्यका

नामक नामक ऐतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

नरेश्वर। तब सो अथ-अस्त्राद होने लगी और तत्पुरुष शास्त्रको वासुवाद देने लगे। देवताओं और मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ एक साथ ही बज उठीं। देवतालोग शास्त्रकी देनाके ऊपर फूल अरसाने लगे, विश्वाधरियाँ नाम्बने लगीं और गन्धर्वण सानन्द गीत गाने लगे ॥ २१-२२ ॥

छत्तीसवाँ अध्याय

दीसिमानद्वारा महानाभका वध

बारकर्जी कहते हैं—राजन् ! कालनाभ दैत्यके गिर आनेपर दैत्यसेनामें बड़ा भारी कोलहल मचा। तब महानाभ नामक दैत्य ऊँटपर नढ़कर नमराङ्गणमें आया। वह मायावी दैत्यराज मुँहमें आग उगलने लगा। उस आगसे दसों (दिशाएँ) प्रज्वलित हो उठीं और धरतीके वृक्ष जलने लगे। महाराज । वीरोंके क्वच, पगड़ी, कटिबन्ध और अँगरखा आदि भूजके पूल (सुआड़ी) तथा रुईके समान जल उठे। राजन् ! समुद्रतटवर्ती नगरोंके बने हुए पीले, लाल, लफेद, काले, चितकबरे और सूक्ष्म शूलों तथा हेम-रसनायनित कष्ठीरी कालीनोसहित बहुतसे हाथों उस समराङ्गणमें दावानलसे दग्ध होनेवाले वृक्षोंसहित पर्वतोंकी भाँति जल रहे थे। महानकपर धारण करने गये रहनों, चामरों, हारों और सुनहरे साज-चांडोंके साथ जलने हुए घोड़े उस युद्ध-भूमिमें दावामिसे दग्ध होनेवाले हरियोंकी भाँति उछलते और चौकड़ी भरते थे ॥ १-६ ॥

अपनी सेनाको भयमें व्याकुल देख श्रीकृष्णकुमार दीसिमानने उस मायामधी आगको बुझानेके लिये पार्जन्याख्य-का संधान किया। फिर तो उस बाणसे प्रलयकालके मेघोंकी भाँति नील जलधर प्रकट हुए और भयंकर गर्जना करते हुए अल्पकी धाराएँ वरसाने लगे। महाराज । उस धारा-सम्मानसे भूतलस्तर पारसु अत्यु प्रकट हो गयी। नर कोकिल, मादा कोकिल, और और मारस आदि पक्षी अपनी मधुर श्लोकियाँ बोलने लगे। मेढ़क भी घर-दर करने लगे। इन्द्रियों (जीर-बहुटी) नामक खाल रंगके छुंड-के-छुंड कीट जहाँ-सहाँ

शोभित होने लगे। मैथिलेन्द्र ! इन्द्रघनुष और विषुन्मालाने आकाश उड़ीस दिलायी देने लगा ॥ ७-१० ॥

इस प्रकार उस आगके बुझ जानेपर महान् अमुर महानाभने दीसिमानके ऊपर बड़े रोषसे अपना तीखा त्रिशूल चलाया। सर्पकी भाँति अपनी ओर आते हुए उस त्रिशूलको रोहिणीपुष्प दीसिमानने युद्धभूमिमें तलवारसे उसी प्रकार काट डाला, जैसे गडडने अपनी चौंचते किंती नागके दो दुकड़े कर दिये हों। महानाभका बाइन उद्धट ऊँट उन्हें दाँतसे काटनेके लिये आगे बढ़ा। तब दीसिमानने समराङ्गणमें उसके ऊपर अपनी तलवारसे छोट की। खड़से उसकी गर्दन कट गयी और वह दो दुक हो पृथ्वीपर गिर पड़ा। महानाभके देखते-देखते उस ऊँटके प्राण-पखेर उड़ गये। तब दैत्य महानाभ बड़े बेगसे हाथीपर जा चढ़ा और हाथमें शूल लेकर ब्लोम-मण्डलको अपनी गर्जनासे गुँजाता हुआ फिर युद्धके लिये आ गया। श्रीकृष्णनन्दन दीसिमान् चञ्चल और काले रंगके सिंधी घोड़ेपर चढ़कर विषुतके समान कान्तिमान् खड़ासे अद्भुत शोभा पाने लगे। उन्होंने घोड़ेके घेटमें एक ल्याघी और वह भूतलसे उछलकर हाथीके कुम्भशब्दम् इस प्रकार जा चढ़ा, मानो कोई सिंह पर्वतके विश्वरपर बड़े बेगसे चढ़ गया हो ॥ ११-१७ ॥

फिर श्रीकृष्णकुमार दीसिमानने तीखी धारवाले खड़से महानाभके मस्तकको सहृ धड़से अस्त्र कर दिया। बाण-बर्षी करती हुई उस बुद्धामाली सेनाका दीसिमानने अपनी तलवारसे उसी तरह संहार कर आया, जैसे यिह इण्डियोंके छुंडको दीर ढाकता है। कुछ देख खड़से मरे गये, शेष

रणभूमिए प्रवापत कर गये । देखता हीतिमन्त्रके मस्तकपर अप्सराओंके समुदाय बस करने लगे । शशियों, मुनियों फूलोंकी लड़ा करने लगे, किन्तु और गन्धर्व गाने लगे तथा और देवताओंने श्रीहरिके पुत्रका सावन किया ॥ १८-२१ ॥

इस ग्रन्थ श्रीगर्भ-संहितामें विश्वजित्यस्त्रके अन्तर्गत नारद-चहुलाहव-संबद्धमें 'महानामका

वध' नामक छत्तीसवाँ अध्यात्र पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

सतीसर्वाँ अध्याय

श्रीकृष्ण-पुत्र भानुके हाथसे हरिषमधु दैत्यका वध

नारदजी कहते हैं—राजन् । महानाम भारा गया, यह सुनकर तथा दैत्येना पत्तयन कर गयी—यह देख-कर, मगरमन्त्रपर चढ़ा हुआ है इरिषमधु समरभूमिमें आया । उस समय इरिषमधु दैत्यके ओढ़ फड़क रहे थे, उसने यादोंके मुनते हुए अस्थन्त कठोर बचन कहा ॥ १-२ ॥

हरिषमधु बोला—अरे । तुम सब लोग मेरी शक्तिके सामने क्या हो ? स्वस्य-पराक्रमी भनुष्य ही तो हो । दीन-हीन होनेपर भी केवल अङ्ग-शर्णोंके बलपर जीतते हो । तुम-जैसे लोगोंमें पुरुषार्थ ही क्या है ? यदि तुम्हारे दलमें कोई भी बलवान् हो तो मेरे साथ चिना अङ्ग-शर्णके महायुद्ध करे, जिससे तुम्हारे पौरुषका पता लगे ॥ ३-४ ॥

नारदजी कहते हैं—दैत्यकी ऐसी यात सुनकर और उसके अस्थन्त उद्भट शरीरको देखकर सब लोग परस्पर उसकी प्रशंसा करते हुए मौन रह गये—उसे कोई उचर न दे सके । तब सत्यभामाके बलवान् पुत्र भानु भन-ही-भन भगवान् श्रीकृष्णका समरण करते हुए रणभूमिमें अङ्ग-शर्ण त्यागकर सहस्र उसके सामने लड़े हो गये । राजन् । महाबली 'हरिषमधु तिर्यगिति' (मगरमन्त्र) की पीठसे उत्तरकर भुजाओंपर ताल ठोकता हुआ सम्मन होकर सामने खड़ा हो गया । जैसे हो हाथी बनमें दाँतोद्वारा परस्पर प्रहार करते हों, उसी प्रकार वे दोनों थीर बाँहोंसे बाँह मिलकर एक दूसरेको बलपूर्वक ढकेलने लगे ॥ ५-८ ॥

राजदत्तजन्म । उस दैत्यने मानुको अपनी भुजाओंसे ली योजन पीछे उसी प्रकार ढकेल दिया, जैसे एक लिह-दूसरे लिहको बलपूर्वक पछाड़ देता है । तब पुनः श्रीकृष्णकुमारने महान् अङ्ग इरिषमधुको बलपूर्वक लड़ा सहस्र योजन पीछे ढकेल दिया । तत्पश्चात् दैत्ययज्ञ इरिषमधुने अपनी बाँहको भानुके कंपेंगे कंपाकर उन्हें अपनी कम्पपर के लिया और फिर कुछ लगा पकड़कर उन्हें सूखीपर पटक दिया । तब भानुने

अपने बाहुबलसे उसे पीठपर ले लिया और उसकी जाँचे पकड़कर उस दैत्यको भरतीपर दे मारा । तदनन्तर वे दोनों पुनः उठकर भुजाओंपर ताल ठोकते हुए लड़े हो गये । राजन् । वे दोनों कुर्ता दिलाते हुए गुड़ और तरंगकी भाँति एक दूसरेसे छड़ने लगे । दैत्यने अपने बाहुबलसे श्रीकृष्ण-मन्दन मानुके पैर पकड़कर उन्हें आकाशमें लाल योजन दूर फेंक दिया । आकाशसे गिरनेपर भानुको मन-ही-मन कुछ व्याकुलता हुई; किंतु वैसे शैल-शिलरसे गिरकर प्रहार बच गये थे, उसी प्रकार श्रीहरिकी कृपासे भानुकी भी रक्षा हो गयी । तब श्रीकृष्णकुमारने हरिषमधुकी लंबी दाढ़ी पकड़कर उसे मुमाया और आकाशमें लाल योजन दूर फेंक दिया । आकाशसे गिरनेपर उसके मनमें भी कुछ व्याकुलता हुई । फिर उसने दाढ़ीको अपने मुँहपर सँभालकर भानुको एक मुक्का मारा ॥ ९-१७ ॥

राजन् । फिर दो घड़ीतक उन दोनोंमें मुखका-मुक्कोंका मुद्द चलता रहा । हरिषमधुका अङ्ग-अङ्ग पिल उठा । तब उसने भानुके मस्तकपर बढ़े लेगसे पथर मारा । तब तो भानुके क्रोधकी सीमा न रही । उन्होंने लाल आँखें करके एक शूष्मा उत्ताहा और उसे दैत्यके मस्तकपर दे मारा । हरिषमधुने भी एक शूष्मा लेकर उसे भानुके मस्तकपर चलाया । उस समय उस महादैत्यके नेत्र लाल हो गये थे और वह क्रोधसे मूर्छित होकर अपना विवेक लो बैठा था । उसने एक हाथीकी दैंद पकड़कर उस हाथीके दारा ही भानुपर प्रहार किया । भानुने एक दूसरा हाथी लेकर उसके चलाये हुए हाथीको हाथमें पकड़ लिया और महादैत्य हरिषमधुपर दृद्धा-पूर्वक हाथसे ही प्रहार किया । वह हाथी चीकार कर उठा । दैत्यने उस हाथीको लेकर भरतीपर पटक दिया और उसके हाँहों दौँस उत्ताहकर उन्हाँसि भानुको छोट चुनौताही ।

श्री श्रीम भागुको वस्त्रोभित करके आकाशवाणी हुई—
इह देखनी मूल्य इच्छी दाढ़ीमें ही है। यह महान् असुर
भगवान् शिवके दिये हुए वरदानसे अस्तन्त प्रथल हो
गया है॥ १८-२३॥

महाराज ! आकाशवाणीका यह कथन सुनकर भागु
क्षेत्रसे भरकर दौड़े। उन्होंने दोनों हाथोंसे दैत्यके पैंव
पकड़कर बारंबार गर्जना करते हुए उसे बुमाया और सबके
देखते-देखते भूषणपर उसी तरह पटक दिया, जैसे बालक
कमण्डलको गिरा देता है॥ २५-२५॥

इस प्रकार श्रीगण-सहितामें विश्वजित-सम्भवके अन्तर्गत नारद-ब्रह्माश-संवादमें हरिमन्त्र
दैत्यका वध नामक सैतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३७॥

अङ्गतीसवाँ अध्याय

प्रथम और शङ्कुनिके घोर युद्धका वर्णन

ब्रह्माश्वने पूछा—मुनिशेष ! हरिमन्त्र आदि
भाईयोंको मारा गया जानकर महान् असुर शङ्कुनिने आगे
क्या किया ?॥ १॥

नारदजीने कहा—राजन् ! हरिमन्त्रके भारे जानेपर
शङ्कुनि क्रोधसे अचेतता हो गया। आताओंकी मूर्ख-
से उत्पन्न हुए शोकमें दूषकर लमराङ्गमें दैत्योंको सम्प्रोभित
करके उसने कहा॥ २॥

शङ्कुनि बोला—हे पौलेम और कालकेयगण ! तुम
सब लोग मेरी बत तुनो ! अहो ! दैत्यका बल अद्भुत है,
उसके कारण क्या उल्ट-फेर नहीं हो सकता ? मेरे भाई काल-
नाभने पूर्वकालमें समुद्र-मन्थनके अवसरपर यमराजको जीत
लिया था, परंतु दैत्यवश वह भी यहाँ मनुष्योंके हाथसे मारा
गया। शम्भरने साक्षात् सूर्यदेवको परात्म किया था, किंतु वह
बालक श्रीकृष्णकुमारके हाथसे पराजित हुआ। उत्कन्च
महाराजियोंमें भी महायती था और इन्द्रपर भी विजय पा
सुका था, परंतु वह भी बालकृष्णके हाथों मारा गया, यह
बात मैंने नारदजीके मुखसे दुन्ही थी। पहले समुद्र-मन्थनके
समय जिसने दमकत असुरोंके समक्ष अग्निदेवको पराजित
किया था, वह मेरा भाई हड़ भी एक मनुष्यहारा, मर
शियाया गया। जिसके सम्मेते पूर्वकालमें वहाँ दैत्या भी
परम्परीत ही कुदडे गीढ़ दिखाकर भाग गये थे, उस भूत-

फिर हम्मोंसे बड़ ल्याकर उसके मुँहसे दाढ़ी उत्तम
ली और महान् असुरके मस्तकपर एक मुक्का मारा।
दृष्टेश्वर ! फिर तो दैत्य हरिमन्त्रकी तकाल मूर्ख हो गयी
और मनुष्यों तथा देवताओंके विजय-सूचक नगारे एक
साथ ही बजने लगे। जय-जयकारकी ध्वनि सब और व्यास
हो उठी और देवनायक नाचने लगे॥ २६-२८॥

राजन् ! देवता प्रसन्न हो पुष्पवर्जा करने लगे। इस
प्रकार मैंने तुमसे श्रीकृष्णके पुत्रोंके परम अद्भुत पराक्रमका
वर्णन किया है। अब और क्या सुनना चाहते हो ?॥ २९-३०॥

संतापनको भी तुच्छ पराक्रमवाले मनुष्योंने मार डाला। जिसने
पहले महायुद्धमें अपने पराक्रमदारा भगवान् शिवको संतुष्ट
किया था, उस बृकको यहाँ मुद्दमें तुच्छ द्वृष्णिवंशियोंने
मार गिराया। मेरे भाई महानाभने देवलेकमें बायुको भी
परात्म किया था, किंतु यहाँ इस समय उसको श्री यदुकुलके
मनुष्योंने मार डाला। हा दैव ! जिसने स्वर्गलेकमें बलवान्
इन्द्रपुत्रको परात्म किया था, उस हरिमन्त्रको भी यहाँ
मानवोंने मार गिराया। इसलिये मैं शपथ खाकर कहता
हूँ कि इस पृथ्वीको मैं आदर्वोंसे शृन्य कर दूँगा॥ ३-११॥

जरासंघ, शाल्व, बुद्धिमान् द्वन्दवकन्त्र तथा शिशुपाल—जै
मेरे मित्र हैं। मुतल लोकसे प्रचण्ड-प्रराक्रमी दानवोंको तुलाकर
इन मित्रों तथा आपलोगोंके साथ मैं देवताओंको जीतनेके
लिये जाऊँगा और उस युद्धमें बाणाद्वारा भी हमारे
साथ होगा। प्रथम आदि जो उद्भट यादव हैं, उन
दुरात्माओंको जीतकर और जियोंसहित देवताओंको बाँधकर
मैं मेहरबनकी गुकाके मुँहमें डाल दूँगा। गौ, बाह्यण,
देवता, सायु, बैद, तपस्वी, शक, आदि त्रिसिंहु तथा नाना
तीर्थोंका सेवन करनेवाले धर्मतात्माओंको भी मैं निस्तरीह मार
डाऊँगा। फिर मुख्यपूर्वक विवरकरा। देवताओंपर विकल्प
पलोंवाल यमवशी पराक्रमी राजा कंस चन्द्र था। वह मेरा
मित्र और परम युद्धदूषा। लेकिन वहाँ है कि आज यह
इस भूतलमर विचारन नहीं है॥ ३३-३५॥

ज्ञानवली कहते हैं—राजन्। मैं काहकर महावली दानवराज दैत्य शकुनि तुम्हाँ लक्ष्य प्रशुम्नके सामने आ गया। लक्ष्य भार लोहेके लमान छुट्ट रथ्य विश्वास बनुष लेठर उसने उसकी प्रश्वासाके ठंकारित किया। उसका वह धनुष मध्याकुरका बनाया हुआ था। उस बनुषकी टंकार-चनिसे दिग्गजोंके कम्बन बहरे हो गये। अगेक रथसे हृष गये और उमुद अपनी मर्दानीसे विचलित हो उठे। नरेश्वर! लक्ष्य ब्रह्माप्त गैंग उठा और भूमण्डल काँपने लगा। उसकी प्रश्वासाके घोर शब्दसे विहळ हो योद्धाओंके ऊर दोहरा गिर पड़े। हाथी रथभूमि छोड़कर मारने लगे और थोड़े युद्धभूमिसे उछलने-कूदने लगे। १७—२१॥

इस प्रकार सब लोग अचानक अवसे बवराकर भागने लगे। तब महान् बल-पराक्रमसे युक्त गद आदि बीर रथपर बैठकर धनुषकी टंकार करते हुए बहाँ आये। शकुनिने संग्राम-भूमिसे अखुनको दस बाण मारे। इससे रथसहित गायावीधारी अर्जुन चार कोस दूर जाकर गिरे। रणहुर्मद शकुनिने गदके ऊपर बीस बाणोंसे प्रहार किया। राजन्। उसने गदको रथसहित व्योमगण्डलमें फेंक दिया और जोर-जोरसे गर्जना करने लगा। राजन्। उस बीरने रथसहित धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिश्चको चालीस बाणोंसे चींच ढाल्य और अपने खिंचनादसे आकाश-मण्डलको निनादित कर दिया। अनिश्चका बोझोंसहित रथ सोलह कोस दूर आ गिरा। विदेहराज! शकुनिने समराङ्गणमें साम्बको सौ बाण मारे। राजन्। साम्ब भी रथसहित आकाशमें जा समरभूमिसे बासीस योजन दूर मार्गपर जा गिरे। २२—२७॥

तपश्चात् प्रशुम्नके सामने आया देख शकुनि क्रोधसे भर गया तथा उसने राष्ट्रसमें सहस्र बाण-समूहोंसे उन्हें घायल कर दिया। राजन्। प्रशुम्नका रथ दो घटीतक चक्कर काटता हुआ सौ कोस दूर पृथ्वीपर हस प्रकार आ गिरा, मानो किरीके द्वारा कमण्डल फेंक दिया गया हो। शकुनिका बल देखकर समस्त यादव चकित हो उठे। जैसे हाथी पश्चासे लिर टकराते हैं, उसी प्रकार समस्त यादव नाना प्रकारके अज्ञ-शब्दोंद्वारा उस दैत्यको घायल करने लगे। गद, अर्जुन, अनिश्च एवं आमवलीकुमार लाभ अपने बनुषकी टंकार करते हुए पुनः युद्धभूमिये आ गये। राजन्। तबनन्तर महावाहु प्रशुम्न बाहुके समान वैश्वाली रथपर बैठकर बनुषकी टंकार करते हुए युद्ध-मण्डलमें आ पहुँचे। शकुनिके बनुषकी प्रश्वासा प्रश्व-कालके समुद्दीके टकरानेके शब्द-जैसी भयंकर ठंकार करती थी।

श्रीकृष्णकुमारने दस बाण मास्कर उत्ते काट दिया। तिर उहस बाणोंसे उसके सहस्र बोझोंको सौ विद्युलोहारा उसके रथको और बीस बाण मास्कर उसके सातविंशे बृह्यवीकरण गिरा दिया। तब उसने रथको उठाकर उसमें शुल्क लोहे और दूसरा सारथि बैठकर वह दैत्यराज पुनः रथपर आखद हुआ। राजन्। तपश्चात् उसने प्रचण्ड परामर्शे युक्त कोषण्डपर प्रश्वासा चढ़ायी। इसके बाद यीठपर पहे हुए तरफसे सौ बाण खींचकर उसने बनुषपर लखे और कानतक सौंचकर प्रशुम्नसे कहा ॥ २८—३७॥

शकुनि बोला—तुम सब लोगोंमें मेरे मुख्य बाहु तथा मदमस योद्धा हो, अतः पहले तुम्हारा ही बध करूँगा। तपश्चात् स्वस्य तेजवाले यादवोंकी सारी सेनाका संहार कर डालूँगा ॥ ३८॥

प्रशुम्नने कहा—असुर! प्राणियोंकी आयु सदा कालके बलसे नह होती या बीतती है। वह बारंबार छायाकी तरह आती-जाती है। जैसे बादलोंकी पक्की आकाशमें बायुकी शक्तिसे आती-जाती है, उसी तरह युख-दुःख भी कालकी प्रेरणासे आता-जाता रहता है। जैसे किसान बोयी हुई खेतीको सौंचता है और जब वह पक जाती है, तब स्वयं उसे हुएसे सब ओरसे काट लेता है, उसी प्रकार हुर्बय काल अपनी ही रक्षी हुई देहधारियोंकी श्रेणीको अपने गुणोद्धारा पालता है और फिर समय आनेपर उसका संहार कर डालता है। जीव तो अहंकारसे मोहित होकर ही देश मानता है कि वैय यह करूँगा, मैं यह करता हूँ; यह मेरा है और वह तेरा है; मैं दुखी हूँ, दुखी हूँ और ये मेरे सुदृढ़ हैं। इत्यादि ॥ ३९—४१॥

शकुनि बोला—तुम अन्य हो, जो अपनी बाणीद्वारा शूष्य-मुनियोंका अनुकरण करते हो। तीन गुणोंके अनुसार पृथक्-पृथक् जो प्राणियोंका स्वभाव है, उसका उनके लिये सामा करना कठिन होता है ॥ ४२॥

ज्ञानवली कहते हैं—मैथिलेन्द्र! युद्धसालमें इस प्रकार परस्पर सलालको बाँते करते हुए प्रशुम्न और शकुनि इन्ह और दूसरुकी भाँति युद्ध करने लगे। शकुनिके बनुषसे बहु दुष्प विशिष्ट सूर्यकी किरणोंके समान चमक उठे, परंतु श्रीकृष्णकुमारने एक ही बाणसे उन सबको काट दिया—ठीक उसी तरह, जैसे एक ही कटुक्कनसे मनुष्य

पुराणी मित्रताको भी संजित कर देता है। तब रण-दुर्बद्ध शकुनिने लाल भारकी बनी मारी और चिशाल गदा हाथमें लेकर प्रशुभ्नके मस्तकपर दे मारी। साथात् भगवान् प्रशुभ्नने अपनी बड़-सरीखी गदासे उसकी गदाके सौ टुकडे कर दिये—उसी प्रकार जैसे कोई ढंडा भारकर काँचके बरतन छूट-हूट कर दे। तब रोपके आवेदने युक्त हुए उस दैत्यने एक चमचमाता हुआ चिशल हाथमें लिया और उपस्थरसे गर्जना करते हुए उसके हारा प्रशुभ्नके मस्तकपर प्रहार किया। श्रीकृष्णकुमार प्रशुभ्नने भी चिशल मारकर दैत्यके चिशलके सौ टुकडे कर डाले। इसके बाद इकिमणीनम्हनने एक तीसी बरछी लेकर शकुनिके ऊपर चलयी॥ ४३—४८॥

बरछीसे उसकी छाती छिद गयी। इससे उसके मनमें कुछ घबराहट हुई, तथापि उसने समराङ्गणमें प्रशुभ्नको परिषसे पीट दिया। तब भगवान् शकिमणीकुमारने यमदण्ड लेकर दैत्यके उस अद्भुत परिषको उसके हारा चूर-चूर कर डाला। इतना ही नहीं, वेगपूर्वक चलये हुए उस यम-दण्डसे सहसा उसके बोझोंको, सारथियों और उस दिव्य

इस प्रकार श्रीगण-संहितामें विश्वविजितसंग्रहके अन्तर्गत नारद-बहुलद्व-संवादमें ‘शकुनि और प्रशुभ्नके युद्धका वर्णन’ नामक अठतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३८॥

उनतालीसवाँ अध्याय

शकुनिके माधामय अख्योका प्रशुभ्नद्वारा निवारण तथा उनके चलये हुए श्रीकृष्णान्नसे युद्धस्तलमें भगवान् श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव

नारदजी कहते हैं—गहाराज ! शकुनिने फिर उठकर जब अपनी सेनाका विनाश हुआ देखा, तब उसने लाल भारके समान भारी घनुण हाथमें लिया। राजन् ! उस प्रचण्ड-चिकमशाली कोषदण्डपर तीसा बाण रखकर भगवान् दैत्यराज शकुनिने रणभूमिमें प्रशुभ्नसे कहा॥ १-२॥

शकुनि बोल—राजन् ! इस भूतल्यर कर्म ही प्रधान है। महात् कर्म ही साकात् शुद्ध तथा सामर्प्यशाली इत्यर है। पहाँ कर्मसे ही उत्तमा और नीचता प्रकट होती है तथा उस कर्मसे ही लिखय और परालय होती है। जैसे लह्यों गोओंके दीन्दये छोड़ा हुआ बछड़ा लपुर्खोंके देखते-देखते अपनी मात्राको हौँड़ लेता है, जैसे ही जिसने भी शुभाश्रुम कर्म किया है, उसके हारा किसा हुआ कर्म सहस्रों मनुष्योंके होने-

रथको भी बराशाथी कर दिया। नरेवर ! शारीरके भर जानेपर और बोधेत्तहित रथ एवं परिषके भी चूर-चूर हो जानेपर उस महादेवने रोप पूर्वक लह्ज हाथमें लिया। मैथिल ! जैसे गहड़ किसी उपके दो टुकडे कर दे, उसी प्रकार महावीर प्रशुभ्नने यमदण्डके हारा उसके लह्जके दो टुकडे कर डाले। इसके बाद श्रीकृष्णकुमारने उसी यमदण्डसे दैत्यके कंधेपर प्रहार किया। उसके आवाससे शकुनिको तत्काल मूर्छा आ गयी। तदनन्तर क्रोधसे भरे हुए प्रशुभ्नने तत्काल दैत्य-सेनाके भीतर प्रवेश किया। जैसे दावानल जंगलको जलाता है, उसी प्रकार वे उस सेनाके बड़े-बड़े दीरोंको धराशाथी करने लगे। मात्र शकुनिने उस यमदण्डके हारा यमराजकी भाँति हाथियों, घोड़ों, रथों और उन आताशी दैत्योंको भार गिराया। दैत्योंके पैर, मुख, अङ्ग और भुजाएँ छिन्न-भिन्न हो गयीं। वे समस्त दैत्य और दानव कालके गालमें चले गए। भीम-पराक्रमी प्रशुभ्नको यमराजका रूप धारण किये देख कितने ही दैत्य युद्धभूमिये अपना-अपना स्थान छोड़कर दसों दिशाओंमें माल गये॥ ४९—५८॥

पर भी उस कर्ताको ही प्राप्त होता है। इसके अनुसार मैं सुहृद कर्म करके उसके हारा अपने शशुत्वरूप तुमको अवश्य जीत लैंगा। इसके लिये मैंने शपथ लायी है। तुम भी दीव ही इसका प्रतीकार करो, जिससे इस भूमिपर तुम्हारी पराजय न हो॥ ५—५॥

प्रशुभ्नने कहा—दैत्यराज ! यदि तुम कर्मको प्रधान मानते हो तो यह भी जान लो कि कालके विना उसका कोई फल नहीं होता। कर्म करनेपर भी उसके पाक या परिणाममें कभी-कभी विना उपस्थित हो जाता है, जहाँ ऐह विद्वान् पुरुषोंने सदा काल या समयको ही बलिष्ठ माना है। दैत्यराज ! मुझों, कर्मके परिपाकका अवसर आनेपर भी कर्ताओंके विना उसका फल करायि नहीं प्राप्त होता। इसलिये ऐह

पुक्त कर्ताओं ही प्रकार मानते हैं, कर्म और कालके नहीं। कुछ लोग योग (उपाय) को ही प्रकार मानते हैं; क्योंकि उसके बिना भूतलक्षण कोई भी कर्म और उसके कालकी सिद्धि नहीं हो सकती। कर्त, कर्म और कर्ताके इते हुए भी योगके बिना सब अर्थ हो जाता है। योग, कर्म, कर्ता और कालके इते हुए भी विविधानके बिना सब अर्थ हो जाता है, जैसे परिषापके प्रकार आदिका विचार किये बिना फलका यथावत् जाग्रत नहीं होता। योग, कर्म, कर्ता, काल और विविधानके होनेपर भी व्याप-पुरुषके बिना कुछ भी नहीं होता। इसलिये मैं उन परिषूर्णतम भयावानको नमस्कार करता हूँ, जिनसे अखिल विविधका ज्ञान होता है ॥ ९—१० ॥

शकुनि बोला—हे महाबाहु प्रशुभू ! तुम तो साक्षात् जानके निजि हो, तुम्हारे दर्शनमात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। जो तुम्हारा सङ्ग पाकर प्रतिदिन तुमसे बारालाप करते हैं, उनकी महिमाका बर्णन करनेमें सो चार मुखबाले ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं ॥ ११—१२ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! यो कहकर मायाकी और बलवान् देव्यराज शकुनिने मयासुरसे सीखे हुए रौरकालका संचान किया। राजन् ! उस अज्ञसे बड़े-बड़े नाग, दंदशूक और विषेले विच्छू करोड़ोंकी संख्यामें निकले। वे सब-के-सब बड़े विकराल और रौद्रप्रभारी थे। उनके द्वारा डसी हुई सारी तेना उनके फुफकारोंसे मतवाली हो गयी। यह देस परम बुद्धिमान् प्रशुभूने गद्धाराका संचान किया। उस अज्ञसे कोटि-कोटि गरुड, नीलकण्ठ, मोर तथा अन्य भयानक पक्षी उस देव्यके देखते-देखते प्रकट हुए। उन पक्षियोंने उस युद्धमें नागों, दंदशूकों तथा विच्छूओंको निश्चल किया। फिर वे तीली चौंच और बड़ी पाँखबाले पक्षी क्षण-भरमें अहस्य हो गये ॥ १३—१७ ॥

राजन् ! तब उस रणदुर्गद देव्य शकुनिने भी राक्षसी, गान्धर्वी, गौणकी और पैशाची मायाका संचान किया। उन बाणोंसे निकले हुए विकराल और काले रूपबाले करोड़ों भूत और प्रेत वहाँ अङ्गारोंकी वर्षा करने लगे। उस तामसी और पैशाची मायाको जानकर युद्धाभिलापी श्रीकृष्णकुमार मीनवधक प्रशुभूने सखाराका संचान किया। राजन् ! उस बाणसे करोड़ों विष्णुपार्वद प्रकट हुए, जिन्होंने उस पैशाची मायाको जैसे ही नष्ट कर दिया, जैसे गद्ध नाशिनसी वह कर दे। तब उस मायाकी देखने पुनः गौणकी मायाका संचान

किया, जिससे गर्वन-शर्वन करते हुए करोड़ों महानक-सेव प्रकट हुए। वे मळ, मृश, रक्ष, मेहा, मवा और इहीरी वर्षा करने लगे। महाराज ! उस गौणकी मायाको जलसर मणसान् प्रशुभू हरिने उसके बिनाशके लिये बाणसर शूकरपालका संचान किया। उस बाणसे वर्ष व्यनि करनेवाले भगवन् वक्ष-बाराहका प्राकृत्य हुआ। वे जैसे अपनी सठाएँ (गर्वनके बाल) हिलाकर तीसी दाढ़से बादलोंको विहीरा करते हुए उसी प्रकार शोभा पाने लगे, जैसे मस गवराज बाँड़के झुँझोंको तेजसा-प्लेकता शोभा पाता है ॥ १८—१५ ॥

तदनन्तर उस देखने रणमण्डलमें गान्धर्वी माया प्रकट की। युद्ध अहस्य हो गया और वहाँ लोनेके करोड़ों महाल सदे हो गये। उपुरुषोंके देखते-देखते वे त्वर्णमय भवन बड़ों और अलंकारोंसे सज गये। वहाँ विशावरियाँ और गङ्गवर्ष नाचने-गाने लगे। नरेश्वर ! मृद्दल, ताल और बादलोंके मोहक शब्दों तथा रागयुक्त हाव-भाव और कटाक्षोद्धारा लोगोंको संतुष्ट करती हुई सोहङ्क वर्षकी-सी अवस्थावाली कमल-नयनी, मनोमोहिनी, सुन्दरी रमणियाँ वहाँ प्रकट हो गयीं। उनके रूप-खालमय तथा राघसे जब समस्त वृष्णिवंशी पुरुष मोहित हो गये, तब उस मोहिनी गान्धर्वी मायाको जानकर उसके निवारणके लिये महावली प्रशुभूने रणभूमिमें ज्ञानाङ्गका संचान किया ॥ २६—३० ॥

तृपेश्वर ! उस समय शानोदय होनेपर सबके मोहका नाश हो गया। उस मायाके नष्ट हो जानेपर क्रोधसे भरे हुए मायाकी देव्यराज शकुनिने राक्षसी मायाका संचान किया। राजन् ! फिर तो क्षणभरमें सारा आकाश पंखधारी पर्वतोंसे आच्छादित हो गया। पृथ्वीपर बोर अनधकार छा गया, मानो प्रलयकालमें मेघोंकी ओर बटा विर आयी हो। आकाशसे चारों ओर जले बृक्ष, प्रक्षर-खण्ड, हार्कुयाँ, चढ़, रक्ष, गदाएँ, परिष, सङ्ग और मुसल आदि बरसने लगे। विदेहराज ! पर्वत मेघोंके समान आकाशमें घूमने लगे। हाथियों और बोडोंको अपना भक्षण बनाते हुए सेकड़ों राक्षस और यातुकान हाथोंमें शूल लिये ब्काट ढालो, फाल ढालो। इत्यादि कहते हुए हांगोचर होने लगे। रणमण्डलमें बहुतसे लिंग, व्याप्र और बाराह दिखायी देने लगे, जो अपने नस्तोद्धारा हाथियोंको विहीरा करते हुए उनके बासीरोंको खाता रहे थे। अपनी लेनाको पर्याप्त करली देख महावली प्रशुभूने उस राक्षसी मायाको जीतनेके लिये नरालीहाराका

चार्यान्व किया । इससे सकात् दौद्धरायारी भगवान् नरसिंह ही प्रकट हो गये, जिनके अध्यात्मक रहे थे, जीम अस्त्राम रही थी तथा वहेवहे नस्त और पूँछ उनकी शोभा बढ़ाते थे । बाल हिं रहे थे, मुँह छरावना दिखायी देता था और वे दुंकरसे अत्यन्त भीषण प्रतीत होते थे । रणमण्डलमें लिङ्गानाद करते हुए वे लड़े हो गये । उनके उस लिङ्गानादसे सब पाताल और सातों लोकोंसहित सारा वृक्षाण्ड गूँज उठा, दिग्यज विचलित हो गये, तारे खिसक गये और भूस्तण्ड-मण्डल काँपने लगा । वे अपने तीखे नस्तोंसे दैत्योंके देखते-देखते हृष्टोंसहित पर्वतोंको आकाशमें उठाकर उनकी सेनाके बीच भू-पृष्ठपरपठक देते थे । राक्षसोंको पकड़कर वहेवेसे फाढ़ डालते थे । उन नरहरिने युद्धस्थलमें यातुआनोंको अपने पैरोंसे मसल डाला । सिंहों, व्याघ्रों और बाराहोंको तीखे नस्तोंसे विदीर्ण करके आकाशमें फेंक दिया । फिर वे भगवान् विष्णु वर्णी अन्तर्धान हो गये ॥ ३१-४१ ॥

इस प्रकार राक्षसी मायाके नष्ट हो जानेपर रुक्मिणी नन्दन प्रशुभने तमरक्षणमें विजयदायक मौलिन्द नामक शकुन बजाया । उस समय दुन्तुभियोंकी ध्वनिसे मिथित जय-जय धोष होने लगा । प्रशुभके ऊपर देवतालोग पूल बरसाने लगे । अपनी मायाके नष्ट हो जानेपर देव्यराज शकुनि रथ और सैनिकोंके साथ वहीं अटक्य हो गया । इसके बाद उसने मय नामक हैत्यद्वारा लिखायी हुई देतेयी माया प्रकट की । उस समय विजलीयों कड़कके साथ हाथीकी सूँड़ोंके समान मोटी जलधाराएँ बरसाते हुए सांबरक्ष मेघगण सत्पुरुषोंके देखते-देखते आकाशमें छा गये । एक ही क्षणमें सारे समुद्र प्रचण्ड आँधीसे कधित और क्षुभित हो परस्पर टकराते हुए अपने मँबरोंसे समस्त भूमण्डलको आप्लावित करने लगे । उसमें यादवोंके आत्मीय जनोंसहित सारे हृष्ट छूट गये ।

इस प्रकार श्रीगांग-सहितामें दिव्यजितस्थापके अन्तर्गत नारद-बहुलाय-संबादमें श्रीकृष्णका आगमन नामक उन्तालीसाँवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३२ ॥

चालीसवाँ अध्याय

शकुनिके जीवस्वरूप शुक्रवान् विभव

शरणजी कहते हैं—राजन् । शकुनिके झड़ि जानेपर केवलनयन भगवान् श्रीकृष्णने प्रशुभमें आदि समल शाद्योंको बुझाकर इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

यह देख समझ बाह्य बहुत मध्यमीत हो गये तथा राम-कृष्णके नामोंका कीर्तन करते हुए अपना सारा परामर्श भूल गये । राजेन्द्र । एक ही क्षणमें वे सब लोग चुपचाप पराजित हो गये । तब महाबाहु प्रशुभने प्रचण्ड परामर्शके आश्रयभूत कोहण्डपर बाण रखकर उनके ऊपर सहस्रा श्रीकृष्णाम्बालका संधान किया ॥ ४४-५१ ॥

मिथिलेश्वर ! उस समय वहाँ कुञ्जस्थली पुरीके प्रातःकालीन करोड़ों सूर्योंके समान कान्तिमान् उस्कष्ट तेजःपुष्ट स्वयं इस प्रकार प्रकट हुआ, मानो वह अपने अभीष्ट अर्थात् मूर्तिमान् रूप हो । वह तेज इत्यों दिशाओंका अनुरूपन कर रहा था । उस परम तेजके भीतर नूतन जलधरके समान स्थाम छविये सुशोभित, सुवर्णमय कमलकी रेणुके सहशा पीत बलनसे समझकृत, भ्रमरोंके गुजारकसे निनावित, कुन्तल-राधिघारी, वैजयन्तीमाला पहने, भीवस्तन्चिह्न एवं उत्तम कौस्तुभरलसे सुशोभित वक्षवाले, प्रकुल शुभज्ञके तुल्य विशालज्ञेचन, चार भुजाधारी श्रीकृष्ण हृष्णोचर हुए । उनके महत्वकपर मुन्द्रर किरीट, कष्ठमें मनोहर हार तथा चरणोंमें नवल नूपुर शोभा दे रहे थे । कानोंमें नूतन सर्वकी-सी कान्तिबाले सोनेके कुण्डल शालमला रहे थे ॥ ५२-५४ ॥

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णको देखकर यदुवंशी अथवान्त हर्षसे खिल उठे । उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर उन परमेश्वरको प्रणाम किया । मिथिलेश्वर ! उस समय देवतालोग सब औरसे पूल बरसाकर जोर-जोरसे जय-जयकार करने लगे । तत्काल आये हुए शार्ङ्गघनुषधारी भगवान् श्रीकृष्णने अपने शार्ङ्गघनुषसे छूटे हुए एक ही बाणसे लीलापूर्वक शकुनिके प्रस्त्रज्ञासहित कोहण्डके रोषपूर्वक खण्डित कर दिया । धनुष कट जानेपर तिरस्कृत हुआ शकुनि युद्ध छोड़कर अपने अस्त्र-शस्त्रोंका समूह के आनेके लिये चन्द्रावतीपुरीको चला गया ॥ ५५-५७ ॥

श्रीभगवान् शोडे—पूर्वकालमें सुमेह पर्वतके उत्तर-भागमें इस शकुनि नामक दैत्यने चार मुग्नोत्तम विश्वामी रहकर सप्तवाहारा भगवान् विष्णुको संतुष्ट किया । चार मुग्न

शकुनि हो जानेपर साक्षात् भैश्वरदेवने प्रसन्न होकर दद्यने
किया और कहा—‘कर माँजो !’ देख शकुनिने उनको प्रणाम
किया । उसका रोम-रोम सिंह उड़ा और नेहोंमें प्रेमके अङ्गू
खलक आये । उसने दोनों हाथ जोड़कर गदगद बाणीमें
भीरसे कहा—‘प्रभो ! यदि मैं मरूँ तो भूतलका सर्व होते
ही फिर जी जाऊँ और आकाशमें भी हे देव ! वो बहीतक
मेरी मृत्यु न हो !’ देवके इस प्रकार कहनेपर भगवान्
हरने उसे दोनों वर दे दिये और पिंजरेमें रक्षे हुए एक
तोतेको देकर उस नमस्कार देत्यते कहा—‘निष्पाप देव !
यह तोता तुम्हारे जीवके तुत्य है । तुम इसकी सदा रक्षा
करना । अमुर ! इसके मर जानेपर तुम्हें यह जानना चाहिये
कि मेरी ही मृत्यु हो गयी है ।’ उसे इस प्रकार वर देकर
रुद्रेव अन्तर्धान हो गये । इसलिये तुर्गमें तोतेकी मृत्यु हो
जानेपर शकुनिका वध होगा ॥ २-८ ॥

नारदजी कहते हैं—यह कहकर बीरोंकी उस सभामें
भगवान् देवकीनन्दनने गरुड़को शीर्ष बुलाकर हँसते हुए
मुखसे कहा ॥ ९ ॥

श्रीभगवान् बोले—परम बुद्धिमान् गरुड ! मेरी
बात सुनो, तुम चन्द्रावतीपुरीको जाओ । वह पुरी सौ
योजन विस्तृत है और देवोंकी सेनासे धिरी हुई है । सुकर्ण
और रस्तोंसे मनोहर प्रतीत होनेवाले गगनचुम्बी महलों
तथा विचित्र उपबनों एवं उत्तानोंसे मुश्किलित है । वहेंचे
देव्य उसकी शोभा नढ़ते हैं । उसके प्रथेक तुर्गमें और
दरवाजोंपर दैत्यपुंसक उसकी रक्षा करते हैं (उस पुरीमें
आकर तुम शकुनिके महलके भीतर पिंजरेमें सुरक्षित तोतेको
मार डाले) ॥ १०-११३ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् । उस पुरीको देखनेके
लिये गरुडने सूखम स्पष्ट धारण कर लिया । वे देवोंसे अलक्षित
रहकर, अहूसिकाओं तथा लोलिकाओंका निरीक्षण करते
हुए, उड़-उड़कर एक महलते हूसरे महलमें होते हुए
शकुनिके महलमें आ पहुँचे । देव्यके जीवस्वरूप शुक्रकी
सोब करते हुए गरुडजी ध्वनिपर वहाँ लैके रहे । उस
समय दैत्यराज शकुनि वहाँ युद्धके लिये कवच धारण
किये माँसि-माँसिके अस-शास्त्र ले रहा था । उस बीरका
हृदय ओप्से भरा हुआ था । राजन् । उसकी छी मदालडा
उसकी कंपरमें दोनों हाथ छालकर लौटी ॥ १२-१५ ॥

शकुनिके लिये राजन् । प्राप्तवाप्त ! हुक्कारे लोरे
युद्ध, अनुकूल चक्रवेदके भाई लगा उद्दमट दैत्यधर
युद्धमें मारे गये । यादवोंके लाल युद्ध करनेके लिये व जायो;
बन्धोंके उनके पक्षमें साक्षात् भगवान् भीहरि वह गये हैं ।
उन्हें तत्काल घेंट अपित करो, जिससे कस्याणकी प्राप्ति
हो ॥ १६-१७ ॥

शकुनि बोला—प्रिये । यदवोंने बलपूर्वक मेरे
भाइयोंका वध किया है, अतः मैं अपनी सेनाओंहाँस उन्हें
अवधय मारूँगा । भगवान् शिवके बदानसे भूतख्यर मेरी
मृत्यु नहीं होगी । प्रिये ! चन्द्रनामक उपदीपमें सुन्दर पतंग
पर्वतपर इस समय मेरा जीवरूपी शुक्र विद्यमान है । यह-
चूड़ नामक सर्व दिन-रात उसकी रक्षा करता है । इस
बातको कोई नहीं जानता । फिर मेरी मृत्यु कैसे हो
सकती है ॥ १८-१० ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् । शुक्रविश्वक वृत्तान्त
सुनकर दिव्यवाहन गरुडने वहाँसे चन्द्रनामक उपदीपमें
जानेका विचार किया । वेगसे उड़ते हुए गरुड समुद्रके
तटपर जा पहुँचे और चन्द्रदीपकी लोग लोग करते हुए आकाश-
में विचरने लगे । शतयोजन विस्तृत एवं भयंकर गर्जना
करनेवाले समुद्रपर हड्डिपात करते हुए पक्षिराज गरुड ल्ला-
हृन्दसे मनोरम तिलहृन्दीपमें पहुँच गये । वहाँके लोगोंसे
गरुडने पूछा—‘इस स्थानका क्या नाम है ?’ उत्तर मिला—
‘सिंहलदीप !’ तब वहाँसे उड़ते हुए गरुड वहे वेगसे चिकूट-
पर्वतके दिल्लरपर बसी हुई ल्लामें जा पहुँचे । ल्ला जाकर
वहाँसे भी उड़े और पाञ्चजन्यदीपमें चले गये । पाञ्चजन्य-
सागरके निकट पहुँचनेपर बलवान् पक्षिराज गरुडको बड़ी
भूत लगी । इन्होंने इठात् तीली चौचदारा यहुत से मर्त्य
पकड़ लिये । उन्हीं मर्त्योंमें एक बड़ा भारी मगर भी आ
गया, जो दो योजन लंबा था । उसने गरुडका एक पैर
पकड़ लिया और पानीके भीतर लीनने लगा । गरुड अपना
बल लगाकर उसे किमरेकी और लीनने लगे । राजन् ।
उस समय वहे बहीतक उन दोनोंमें लीनातानी चली
रही । गरुडका वेग बड़ा ग्रवण्ड हो । उन्होंने अपनी तीसी
बोक्से उस मगरकी पीठपर इस प्रकार चोट की, मानो
यमराजने यमदण्डसे ग्रहार किया हो । उसी समय वह
मगरका रूप छोड़कर तत्काल एक महान् विद्याधर हो
गया । उसने लालात् गरुडको मरक छुकाया और हँसते
हुए रहा ॥ २१-३० ॥

विद्याधर द्वेरात्—मैं पूर्णकालमें हेमकुण्डल नामक विद्याधर विद्याधर था । एक दिन देवमण्डलमें सम्मिलित हो गए अपान्तरतमामें रुदान करनेके लिये गया । वहाँ मुनिभेद कुरुस्थ पहुँचे जान कर रहे थे । हँसी-हँसीमें उनका भौत वक्षकर मैं उन्हें भौतके भीतर खनिच के गया । तब कुरुस्थने दुखी शाय देते हुए कहा—‘हुर्दे ! तू मगर हो जा ।’ तब मैंने उन्हें अनुनय-विनयसे प्रसन्न किया । वे शीघ्र ही प्रसन्न हो गये और कर देते हुए बोले—‘गदडकी चौंचका ग्रहण होनेपर तुम मगरकी योनिसे छूट जाओगे ।’ शुभ्रत । आज आपकी कृपासे मैं कुरुस्थ मुनिके शायसे कुटकरा पा गया ॥ ३१-३४ ॥

आरद्वजी कहते हैं—यों कहकर जब हेमकुण्डल नामक विद्याधर स्वर्गलेकको चाला गया, तब गदड दोनों पाँखोंसे उड़कर बहासे अधमण्डलमें पहुँच गये । वहाँसे विष्णुर्बक उड़ते हुए वे इरिण नामक उपदीपमें गये । वहाँ अपान्तरतमा नामक मुनि बही भारी तपस्या करते थे । उनके आधममें जानेपर पश्चिराज गदडकी एक पौख टूटकर गिर गयी । उसे देखकर अपान्तरतमा नामक मुनि गदडसे बोले—‘पश्चिन । मेरे मस्तकपर अपनी पाँख रखकर तुम द्वारपूर्वक चढ़े जाओ ।’ तब गदड उनके मस्तकपर पाँख रखकर आगे बढ़ गये । अपने ही समान अनेक-नेक चन्द्रोपम पंख गदडने उनके लिएपर देखे । इससे उन्हें बहा विस्त्रय हुआ । तब अपान्तरतमा मुनि गदडसे बोले—‘पश्चिराज । जब-जब श्रीकृष्णका अवतार होता है, तब-तब तदा गदडकी एक पाँख यहाँ गिरती है । कल्य-कल्पमें श्रीकृष्णचन्द्रका अवतार होता है और तब-तब मेरे मस्तकपर गदडका पंख गिरता है ।’ इस प्रकार यहाँ अनन्त पंख पढ़े हैं । जो तबके आदि-अन्त बताये जाते हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको मैं मस्तक छुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ३५-४१ ॥

आरद्वजी कहते हैं—यह मुनकर गदड आधर्य-चलित हो उठे । उन्होंने उन मुनिभरको प्रणाम करके फिर अपनी उड़ान भरी और आकाशमण्डलमें होते हुए वे रमणकदीपमें चले गये । वहाँ तरफसे बलि लेकर वे आवर्तक-दीपमें गये और वहाँके मुखाकुण्डमें मुखका पान करके उड़ान । पश्चिराज द्वारपूर्वीपमें जा पहुँचे । वहाँ उन्होंने मुखसे चन्द्रदीपका पता पूछा । फिर मेरे कहनेते पक्षी गदड उड़तर विद्याधी भोट गये । इस तरह वे जगेवर चन्द्रामीपके

पर्वतपर जा पहुँचे । वहाँ विनानन्दनने जलमुण्ड और अग्निर्ग देखा । मिथिलेश्वर । बल्दान् पश्चिराजने दोरे जलमुण्डको अपनी चौंचमें लेकर उसीसे अग्निर्गको मुशा दिया । वहाँ पर्वतीय कन्दरके द्वारपर जो लक्ष्मी दैत्य सोये थे, वे उठ लड़े हुए । उनके साथ दो घडीतक गदडका युद्ध चलता रहा । पश्चिराजने युद्धमें अपने पंजोंसे किंतने ही राक्षसोंको विद्यार्थ कर डाला, किन्हींको पाँखोंसे मारकर चराजायी कर दिया । कुछ दैत्योंको चौंचसे पकड़कर बल्दान् पश्चिराजने पर्वतके पृष्ठभागपर पटक दिया और फिर उठाकर बल्यूर्बक आकाशमें फेंक दिया । कुछ मर गये और शेष दैत्य दसों दिशाओंमें भाग गये । इस तरह दैत्योंका संहर करके पश्चिराज गुफामें घुस गये ॥ ४२-५० ॥

वहाँ शङ्खचूड नामक सर्पके मस्तकपर उन्होंने अपने चमकीले दौसे आजात किया । शङ्खचूड गदडको देखकर अन्यन्त तिरस्कृत हो पिंजरेके तोतूको पानीमें फेंककर दीध्र ही वहाँसे पलायन कर गया । राजन् । गदडने पिंजरेसहित शुकको तत्काल अपनी चौंचमें लेकर आकाशमें उड़ते हुए युद्धस्थलमें जानेका विचार किया । तथतक भागे हुए दैत्योंका महान् कोलाहल आरम्भ हुआ । नरेश्वर । ‘तोता ले गया, तोता ले गया’—इस प्रकार चिल्हाते हुए उन अमुरोंकी आवाज आकाशमें और सम्पूर्ण दिशाओंमें फैल गयी और दैत्यकी सेनाओंके लोगोंने भी इस बातको सुना ॥ ५१-५४ ॥

त्वर्ग, भूतल एवं समस्त ब्रह्माण्डमें ‘तोता ले गया, तोता ले गया’की आवाज गूँज उठी । उसे मुनकर अमुरोंसहित शुकुनि सशक्त हो गया । वह शूल लेकर तत्काल चन्द्रावतीपुरीसे उठा और गदड तोतेको ले गये हैं—यह मुनकर रोषर्पूर्वक उनका पीछा करने लगा । उसने गदडको अपने शूलोंमें भारा, तो भी उन्होंने मुखसे तोतेको नहीं छोड़ा । वे सातों समुद्र और सातों द्वीपोंका निरीक्षण करते हुए आगे बढ़ते गये । दैत्यराज शुकुनिने प्रस्तेक दिशामें और आकाशके भीतर भी उनका पीछा किया । राजन् । नागान्तक गदड आकाशमें झायण करते हुए कोटि योजनतक चढ़े गये । दैत्यके चिल्हालकी सारले-वे क्षत-विक्षत हो गये, तथापि मुखसे तोतेको छोड़ नहीं सके ॥ ५५-५८ ॥

राजन् । खल योजन ऊँचे आकाशमें जानेपर पश्चिम-उहित शुक फस्तरकी भाँति मुमेश्वरवर्तके विश्वरामर, वहे

अन्तर्गत है। शकुनिने घोर युद्ध; सात बार मारे जानेपर भी उसका भूमिके सर्वसे पुनः जी उठाया। ३५

फैसे गिरा। मिथ्या दृढ़ गया और तोते के प्राण-पर्सेल उड़ गये। तदगम्तर गहड़ उस महायुद्धमें श्रीकृष्णके पाव चले गये। राजदूत। देख शकुनि शिव-चित्त हो चढ़ावती-पुरीमें लौट गया॥५९-६१॥

इस प्रकार श्रीगंग-संहितामें विश्वजित-शकुनके अन्तर्गत नारद-महालद्व-संवादमें भगवान् श्रीकृष्ण नामक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥५०॥



इकतालीसवाँ अध्याय

शकुनिका घोर युद्ध; सात बार मारे जानेपर भी उसका भूमिके सर्वसे पुनः जी उठाया; अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णद्वारा युक्तिपूर्वक उसका वध

नारदजी कहते हैं—राजन्! शेष दैत्योंको लेकर नाना प्रकारके अच्छ-बाबू धारण किये बलवान् वीर शकुनि, दिव्य मनोहर अथ उच्चैःभवापर आकृद हो, क्षेष्ठे अचेत-सा होकर, धनुषकी टंकार करता हुआ भगवान् श्रीकृष्णके भी सम्मुख युद्ध करनेके लिये आ गया॥१-२॥

रणदुर्मद देख शकुनि तथा उसकी सेनाका पुनः आगमन देख समस्त वृष्णिवंशियोंने अपने-अपने आयुध उठा लिये। उस समय दैत्योंका यादबोके साथ घोर युद्ध हुआ। वीरोंके साथ वीर इस तरह जूझने लगे, जैसे सिंहोंके साथ सिंह लड़ रहे हों। राजन्! मेषधी गर्जनाके समान बारंबार कोदण्डकी टंकार करता हुआ शकुनि सबके आगे था। उसने नाराचौद्वारा दुर्दिन उपस्थित कर दिया। बाणोंका अन्धकार छा जानेपर शार्झधनुष धारण करनेवाले भगवान् गदाधर्यज अपने उस धनुषसे उसी प्रकार सुशोभित हुए, जैसे इन्द्रधनुषसे मेषधी शोभा होती है। साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने अपने एक ही बाणसे सीक्षणपूर्वक असुर शकुनिके बाण-समूहोंको काट डाला॥३-७॥

मिथिलेश्वर! युद्धमें अपने कोदण्डको कानतक सीन्चकर शकुनिने भगवान् श्रीकृष्णके हृदयमें दस बाण मारे। तब प्रलय-समुद्रके भगवान् आवतोके भीषण संशषके समान गम्भीर नाद करनेवाली शकुनिके धनुषकी प्रत्यञ्चाको श्रीकृष्णने इस बाणोंसे काट डाला। नरेश्वर! मायावी देख शकुनि सबके देखते-देखते सौ रूप धारण करके श्रीहरिके साथ युद्ध करने लगा। तब साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण एक सहस्र रूप धारण करके उस देखके साथ युद्ध करने लगे, वह अद्भुत सी बात हुई। भगवान् देखताजे शकुनिने भयान्त्रके बनाये हुए अग्निशुल्प लैबली विश्वलोकुमाकर उसे श्रीहरिके ऊपर लगा दिया। तब कुपित हुए

परिपूर्णतम महाबाहु श्रीहरिने उस विशूलको बैसे ही काट दिया, जैसे तीखी चौचाला गहड़ किसी सर्पके टूक-टूक कर डाले॥८-१३॥

तदगम्तर क्षेष्ठे भरे हुए महाबाहु श्रीहरिने शकुनिके मस्तकपर अपनी गदा चलायी तथा उस वज्रधनुष गदाकी चोटसे उस दैत्यको थोड़ेसे नीचे गिर दिया। गदाकी चोटसे पांडित हुआ देख क्षणभरके लिये मूर्छित हो गया। फिर युद्धस्थलमें अपनी गदा लेकर वह माधवके साथ युद्ध करने लगा॥१४-१५॥

उस समय रणमण्डलमें गदाओंद्वारा उन दोनोंके बीच घोर युद्ध हुआ। गदाओंके टकरानेका चट-चट शब्द बड़के टकरानेकी भौति सुनायी पहता था। श्रीकृष्णकी गदासे चूर-चूर होकर शकुनिकी गदा पृथ्वीपर गिर पही। वह युद्धमें सबके देखते देखते अङ्गारकी भौति दहकने लगी। जैसे पंचतकी कन्दरामें दो सिंह छाड़ते हों, जैसे बनमें दो मरवाले हाथी जूझते हों, उसी प्रकार समराङ्गणमें वे दोनों—श्रीकृष्ण और शकुनि परस्पर युद्ध करने लगे। शकुनिने श्रीकृष्णको सी बोजन पीछे कर दिया और श्रीकृष्णने उसे भूतलपर लहस योजन पीछे ढकेल दिया। तब विभुवननाथ श्रीहरिने उसे दोनों सुजाओंमें पकड़कर जाँघोंके खड़केसे जमीनपर बैसे ही पटक दिया, जैसे किसी बालकने कमण्डल केंद्र दिया हो। इससे उस दैत्यको कुछ व्यथा हुई। फिर उस युद्ध-दुर्मद हुराचारी शकुनिने जाह्नवि पवतको पकड़कर उसे श्रीकृष्णपर चला दिया। पवतको अपने ऊपर आता देख कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने पुनः उसे उसीकी ओर छोटा दिया। इस प्रकार अच-शब्दका उपारण करते हुए वे दोनों एक-दूसरोंपर सखी पर्वतके द्वारा प्रहर करते

रहे । राजन् । उस पर्वतके आकाशसे उन दोनोंने चक्रवर्ती-
पुरीके ओर चूंच कर दिया ॥ १६-२२२ ॥

उस समय दैत्य शकुनिने अस्त्रज्ञ कुचित हो डाल-
तालपर उठा ली और महात्मा श्रीकृष्णके सामने वह युद्धके
लिये आ गया । तब मगान् शार्ङ्गधने अपना शार्ङ्गधनुष
लेकर उसके ऊपर सहस्र अर्चन्तन्त्रमुख बाणका उधान किया;
जो युद्धसंगमे ग्रीष्मशूतुके सूर्यके समान उद्भासित हो
उठा । शार्ङ्गधनुषसे छटा हुआ वह दैत्य बाण दिक्षण्डलको
विद्युतित करता हुआ शकुनिनका मस्तक काटकर भूमिका
मैदान करके तल्लोकमें चला गया । उस समय दैत्य शकुनि
प्राणशूल्य होकर युद्धस्थलमें गिर पड़ा । मिथिलेश्वर !
भूमिका स्पर्श होते ही वह क्षणभरमें पुनः जीवित हो उठा ।
अपने कटे हुए मस्तकको अपने ही हाथसे धड़पर रखकर
वह युद्ध करनेके लिये पुनः उठ रहा हुआ, वह अद्भुत-सी
घटना हुई ॥ २३-२७२ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्णके हाथसे सात वार मारे जानेपर भी वह
महान् असुर भूमिके स्पर्शसे जी उठा तथा राहुकी भाँति
फिर उठ रहा हुआ । अब वह अकेले ही यादव-कुलका
छंडार करनेके लिये उथात हुआ । वनमें दावानल्की भाँति
उस शक्तिशाली महादेव्यने तत्काल यादव-सेनामें प्रवेश
किया । उसने घोड़ी और अस्त्र-शस्त्रोंसहित महावीर
सुदूरवर्षोंको तथा मदमत्त हाथियोंको भुजाओंसे पकड़कर
आकाशमें लाज योजन दूर केंद्र दिया । किन्तु हाथियोंका
मौँह, किन्तुके दोनों कंधे तथा किन्तुके दोनों कक्ष पकड़कर
फेंकता हुआ वह दैत्य काल्यनि रुद्रके समान जान पड़ता
था ॥ २८-२१२ ॥

उस दैत्यके दोनों पैरों और हाथोंने उस महासमरमें जब
भारी आत्म उत्पन्न कर दिया और महात्मा श्रीकृष्णकी सेनामें
जोसे हाताकार होने लगा, तब विद्यवक्षक साक्षात् मगान्
श्रीकृष्णने साथुपुरुषोंकी रक्षाके लिये अपने अस्त्र सुदर्शनचक्रका
प्रयोग किया । उनके हाथसे छटा हुआ तीका सुदर्शनचक्र
प्रवक्षकासके क्षेत्रि खोड़ी दीतिमती प्रभासे प्रज्वलित हो
उठा । उसने उस महासुरमें शकुनिके सुहृद मस्तकको उसी
तरह काट किया, जैसे वहने इत्यसुरका मस्तक काटा था ।

सत् शक्तय श्रीमत्-संहितामें विद्यविद्युत्सूक्ष्मके अन्तर्गत नाय-मुहूरत-संबंधमें शकुनि दैत्यम्

वज्र नामक इक्षुवाक्यसंबंधीय सूता हुआ ॥ ४३ ॥

तदनत्तक मगान् श्रीकृष्णने महासमरमें और हुए शकुनिके
बल्मूर्वक आकाशमें केंद्र दिया । फिर श्रीपतिने आहवाने
कहा—‘तुमलोग इसके शरीरको बांधोंसे ऊपर-ही ऊपर
फेंकते रहो ॥’ ३२-३५ ॥

गारदजी कहते हैं—राजन् । श्रीहरिकी ऐसी बात
मुनकर तमस्त यादवओं वीर आकाशसे गिरते हुए उस
दैत्यको चमकीले बांधोंसे ताढ़ित करने लगे । राजन् ।
दीतिमानके बांधोंसे आहत हो वह दैत्य लोगोंके देखते-देखते
गोदकी भाँति सौ योजन ऊपर चल गया । फिर साम्भके
बाणका बक्का पाकर वह एक सहस्र योजन ऊपर चल्य
गया । जब वह पुनः आकाशसे नीचे गिरने लगा, तब अर्जुनने
अपने बाणसे उसपर चोट की । उस बाणसे वह दैत्यराज
दस हजार योजन ऊपर चल गया । तदनन्तर जब वह नीचे
आने लगा, तब अनिषद्धके बाणने उसे लाल योजन ऊपर
उछाल दिया । इसके बाद प्रद्युम्नके बाणसे वह दस लाख
योजन ऊपर उठ गया । तत्पश्चात् उसे पुनः आकाशसे नीचे
गिरते देख योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने उसपर बाण
मारा, जिससे वह कोटि योजन ऊपर चल गया । इस प्रकार
दो पहरतक वह दैत्य आकाशमें ही स्थित रह गया, उसे
नीचे नहीं गिरने दिया ॥ ३६-४१ ॥

तदनन्तर साक्षात् श्रीहरिने उसके ऊपर दूसरा बाण
मारा । उस बाणने कम्पूर्ण दिशाओंमें उसको कोटि योजनतक
मुमाकर समुद्रमें बैठे ही ला पटका, जैसे इवाने कमलके फूलको
उडाकर नीचे डाल दिया हो । राजन् । इस प्रकार जब उस
दैत्यकी भूम्य हो गयी, तब उसके शरीरसे एक प्रकाशमान
स्व॒ति निकली और वह नारों ओरसे परिक्रमा देकर भगवान्
श्रीकृष्णमें बिलीन हो गयी । उस समय भूतल और आकाशमें
जय-जयकार होने लगी । विद्यावरियाँ और गन्धवंकन्धार्य
आनन्दमन्त्र हो आकाशमें दृत्य करने लगी, किनर और
गन्धर्व यश गाने लो तथा सिद्ध और चारण स्तुति सुनाने
लगे । समस्त भूमियों और मुग्नियोंने श्रीहरिकी भूरि-भूरि
प्रशंसा की । ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र और सूर्य आदि वेद देवता
वहाँ आ गये और श्रीकृष्णके ऊपर फूलोंकी शर्णी करने
लगे ॥ ४२-४७ ॥

ब्रयालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका यादवोंके साथ चन्द्रावतीपुरीमें शकुनि-पुत्रोंको वहाँका राज्य
देना तथा शकुनि आदिके पूर्व जन्मोंका परिचय

आरदजी कहते हैं—राज्ञ ! वचे हुए देव रणभूमिसे भाग गये । यादवेन्द्र भगवान् श्रीहरि बीणा, बैण, मृदग और दुन्दुभि आदि बाजे बजाते और सूत, भागध एवं कद्मी-जनोंके मुख से अपने यशका गान सुनते हुए, पुत्रों तथा अन्य यादवोंके साथ सेनासे विरकर शाहू, चक्र, गदा, कमल और शार्दूलनुपसे मुद्राभित हो, देवताओंसहित चन्द्रावतीपुरीमें गये । वहाँ अपने पतिके मारे जानेके कारण रानी मदालसा शकुनिके पुत्रोंगोदमें लिये हुएसे आतुर हो अत्यन्त करुणाजनक विळाप कर रही थी । उसके मुखपर अशुधारा वह रही थी और वह अत्यन्त दीन हो गयी थी । उसने तुरंत ही हाथ जोड़कर अपने बच्चोंके श्रीकृष्णके चरणोंमें डाल दिया और भगवान्को नमस्कार करके कहा ॥ १-५ ॥

मदालसा बोली—प्रभो ! आहिदेव ! आप भूतल का भार उतानेके लिये यदुकुलमें अक्तीर्ण हुए हैं । आप ही संसारके स्थान हैं और प्रलयकाल आनेपर आप ही इसका संहार करेंगे; किन्तु कभी आप गुणोंसे लिख नहीं होते । मैं आपकी अनुकूलता प्राप्त करनेके लिये आपके चरणोंमें प्रणाम करती हूँ । मेरा बेटा बहुत डरा हुआ है । आप इच्छी रक्षा कीजिये । देव ! इसके मलाकपर अपना चरद इस्तर लिये । देवेष ! जगन्निवास ! मेरे पतिने आपका जो अपराध किया है, उसे क्षमा कीजिये ॥ ६-७ ॥

आरदजी कहते हैं—राज्ञ ! मदालसाके यों कहने-पर महावति भगवान् श्रीकृष्णने उस बालकके मस्तकपर अपने दोनों हाथ रखकर चन्द्रावतीका सारा राज्य उसे दे दिया । फिर कल्पयन्तरनी लंबी आयु देकर वैराघ्यपूर्ण जीन एवं अपनी भक्ति प्रदान की । तदनन्तर उस शकुनिकुमारको श्रीकृष्णने अपने गलेकी सुन्दर भाला उतारकर दे दी । शकुनिने यहले युद्धमें इन्द्रसे जो उन्मो-ज्या बोहा, चिन्मामणि रक्ष, कामधेनु और कल्पतृष्ण छीन लिये थे, वे सब श्रीजनार्दनने प्रसन्नतर्वक देनेको लौटा दिये; क्योंकि भगवान् रक्ष ही जीवों, जागरण, देवताओं, रातुओं तथा देहोंके प्रतिशक्तक हैं ॥ ८-११ ॥

शकुलाभने पूछा—देवते ! पूर्वकालमें वे महावली शकुनि आदि देव तौन थे और केते इन्हें मोक्षकी प्राप्ति हुई । इस बातको लेकर मेरे मनमें बड़ा आस्तर्य हो रहा है ॥ १२ ॥

आरदजी कहते हैं—राज्ञ ! पूर्वकालके ब्रह्मकर्त्ता की बात है, परावसु गन्धवोंका राजा था । उसके बड़े सुन्दर नी औरस पुत्र हुए । वे सभी कामदेवके समान रूप-सौन्दर्य-शाली, दिव्य भूषणोंसे विभूषित और गीत-वाच-विद्वान् देव वे तथा प्रतिदिन ब्रह्मलोकमें गान किया करते थे । उनके नाम है—मन्दार, मन्दर, मन्द, मन्दहात, महावल, हुदैन, सुषन, सौध और श्रीभानु । एक लम्य ब्रह्मालीने अपनी पुत्री वानेश्वरा सरस्वतीको मोहपूरक देखा । विधाताके इस व्यवहारको लम्य करके परावसुके पुत्र मन-ही-मन हँसने लगे । सुरश्रेष्ठ ब्रह्माके प्रति अपराध करनेके कारण उन्हें तामसी योनिमें जाना पड़ा । इनेतवाराहकल्प आनेपर वे नवों गन्धर्व हिरण्याक्षकी पत्नीके गम्भीरे उत्पन्न हुए । उस लम्य उनके नाम इस प्रकार हुए—शकुनि, शम्वर, हृष्ट, भूत-संतापन, बृक, कालनाभ, महानाभ, हरिशमशु तथा उत्कच । एक दिनकी बात है, अपने धरपर आये हुए अपान्तरतमा मुनिको नमस्कार करके उनकी विधिवत् पूजा करनेके पश्चात् उन सबने आदरण्वर्षक इस प्रकार पूछा ॥ १३-१९ ॥

लम्य बोले—ग्रहन् ! मुनिये । आप अपने मुँहसे कहते हैं कि कैवल्यके स्वामी साक्षात् भगवान् श्रीहरि हैं, वे भक्तवत्सल भगवान् भक्तोंको मोक्ष प्रदान करते हैं; परंतु हमलोग आसुरी-योनिमें पहकर सदा कुपङ्गमें तप्पर रहनेवाले और हुए हैं, हमने कभी भगवान्की भक्ति नहीं की । अतः इस लम्यमें हमारा मोक्ष कैसे होगा ? ग्रहन् ! हमै परम कल्पाणका उत्तम बताएंगे; क्योंकि प्रभो ! आप दीनजनोंके कल्पाणके लिये ही उगतमें चिन्हरते रहते हैं ॥ २०-२२ ॥

अपान्तरतमाने कहा—देवशकुलारो । गुण पृथक्-पृथक् नहीं रहते, वे सब मिले-जुले होते हैं । अथवा जिसके से सुन है, वे उससे विलग नहीं होते । अतः उन्हीं गुणोंके हाथ जो गुणालीला मोक्षाकालक, भरमात्मा श्रीहरिका अवल करते हैं हैं, वे देवते उन परमात्माको प्राप्त हो जाके हैं ।

प्रियं विषय, सौहार्द, स्वेह, भय, कोष तथा स्मय (अभिमान)—इन भावों या गुणोंको सदा श्रीकृष्णके प्रति प्रशुल्प करके देखताण उन्हमें छीन हो गये। उदाहरणः भगवान् गृहिणीपर्के साथ एकता (एक कुल, कुटुम्ब या गौत्र) का सम्बन्ध मननेके कारण प्रजापतिगण मुक्त हो गये। भगवान्के प्रति सौहार्द स्वापित करनेसे कथाध्युच प्रहारने भगवान्को पा लिया। श्रीहरिके प्रति स्नैहसे सुतपा भुजि, मक्ते हिरण्यकशिषु, कोथसे तुम्हारे पिता हिरण्यक तथा स्मय (अभिमान) से श्रुतियोंने शोणिजोंके लिये भी परम पुरुष पदको प्राप्त कर लिया। जिस किसी भावसे

सम्बन्ध हो, श्रीकृष्णमें मनको छाये। ये देवताओंमें भक्तियोगके द्वारा ही भगवान्में मन छाकर उनका काम प्राप्त करते हैं ॥ २३-२७ ॥

भारद्वजी कहते हैं—राजन् ! यों कहकर अपान्तरतमा मुनि अन्तर्धान हो गये। तबसे शकुनि अदिने वरिष्ठांतम् श्रीहरिमें वैरभाव स्थापित किया। उन्होंने वैरभावसे ही परमेश्वर श्रीकृष्णको पा लिया। राजेन्द्र ! इसमें कोई आश्वर्य न मानो। जैसे कीड़ा भ्रमरका चिन्तन करनेसे तद्रूप हो जाता है, उसी प्रकार भगवान्विन्तन करनेवाला जीव भगवान्का सारल्प्य प्राप्त कर लेता है ॥ २८-२९ ॥

इस प्रकार श्रीनर्त-संहितामें विश्वजितसंष्टके अन्तर्गत नारद-बुद्धाश्व-संवादमें ‘शकुनि-पुत्रम् रुपा’ नामक बयानीसर्वां अध्याय पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

तैतालीसर्वाँ अध्याय

इलाहृतवर्षमें राजा शोभनसे भेटकी ग्रासि; स्वायम्भूत मनुकी तपोभूमिमें मूर्तिमती सिद्धियोंका निवास; लीलावतीपुरीमें अग्निदेवसे उपायनकी उपलब्धिः वेदनगरमें मूर्तिमान् वेद, राग, ताल, स्वर, ग्राम और नृत्यके भेदोंका वर्णन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् । इस प्रकार भद्राश्ववर्षपर विषय पाकर श्रीयादवेश्वर हरि यादव-सैनिकोंके साथ इलाहृतवर्षको गये ॥ १ ॥

मिथिलेश्वर ! इलाहृतवर्षमें ही रक्षमय शिखरोंसे दुश्यभित, देवताओंका निवासस्थान, दीसिमान्, स्वर्णमय पर्वत शिरिरजाभिराज ‘मुमें’ है, जो भूमण्डलरूपी कल्पकी कर्णिकाके समान शोभा पाता है। उसके चारों ओर मन्दर, मेघ-मन्दर, सुपार्व तथा कुमुद—ये चार पर्वत शोभा पाते हैं। इन चारोंसे जिरा हुआ वह एक शिरिराज सुपेक्ष धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चार पदार्थोंते पुक्त मनोरथकी भाँति शोभा पाता है ॥ २-३ ॥

उस इलाहृतवर्षमें अम्बुजलके रससे उत्पन्न होनेवाला आम्बूनद नामक स्वतंत्र वर्ण उपलब्ध होता है। वहाँ अम्बूरससे ‘अद्योदा’ नामकी नदी प्रकट हुई है, जिसका अल्प पीनेसे इस भूतल्पर कोई रोग नहीं होता। राजन् । वहाँ कब्ज्यहृष्टसे उत्पन्न ‘कादम्ब’ नामक मधुकी, पांच धाराएं भग्नादित होती हैं, जिनके पीनेसे मनुष्योंको कभी स्वास-भर्ती, विशर्षण (कानिका फीका पदना),

थकावट तथा दुर्गन्ध अदि दोष नहीं प्राप्त होते। उन मधु-धाराओंसे कामपूरक नद प्रकट हुए हैं, जो मनुष्योंकी इच्छाके अनुसार रस, अन्न, वस्त्र, सुन्दर आभूषण, शाया तथा आसन आदि जो-जो दिव्य फल हैं, उन सबको अर्पित करते हैं। इसी प्रकार वहाँ सुप्रसिद्ध ऋष्वन्तन है, जहाँ भगवान् संकरण विराजते हैं, जिस बनसे भगवान् शिव स्वतः अपनी प्रेयसी ज्योतिर्कोंके साथ रमण करते हैं तथा जिसमें गये हुए पुरुष तत्काल क्लीरपर्यं परिणत हो जाते हैं। स्वर्णमय कमल, शीतल वसन्त वासु, केसरके हृष्ट, लवहङ्ग-लताओंके समूह तथा देवघुणोंकी सुगन्धके लेवनसे मदान्ध भ्रमर—ये सब इलाहृतवर्षकी अत्यन्त शोभा बढ़ाते हैं। वेदवंशिके अकुर्दींसे विचित्र लगानेवाली वहाँकी मनोहर स्वर्णमयी भूमिको बेलसे हुए भगवान् श्रीहरिने अखंकारमणित देवताओंसे पूर्ण इलाहृतवर्षको जीतकर वहाँसे भेट महण की ॥ ४-९ ॥

पूर्वकालके सत्यघुणमें राजा मुकुरुन्दके जामता शोभनसे भास्तवर्षमें एकाहृषीका प्रत करके जो पुण्य अर्जन किया, उसके फलस्वरूप देवताओंने उन्हें महाराज्यवद् निवास दे दिया। आज भी वह राजघुणार कुलेलकी भाँति रहनी रहता-

यात्राके साथ यहाँ राज्य करता है । मिथिलेश्वर । वह परम कुन्दर शोभन भेंट देकर देवपवर भगवान् श्रीकृष्णके लाभने आया । अनुकूलतिलक श्रीहरिकी परिकल्पना करके शोभन उनके वरणारबिन्दोमें पढ़ गया और भक्तिपूर्वक प्रणाम करके उन परमात्माको शीघ्र ही भेंट देकर पुनः मन्दराचलको छला गया ॥ १०—१२ ॥

बहुलाभ्यने पूछा—देवपिंपर । राजा शोभनके चले जानेपर भगवान्, मधुसद्दनने आगे कौन-सा कार्य किया, यह बताइये ॥ १३ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् । उस मन्दराचलके शिखरपर एक परम दिव्य तरोकर है, उसमें स्वर्णमय कमल खिलते हैं । यह देखकर किरीटधारी अञ्जनने माधव श्रीकृष्णसे पूछा—देवकीनन्दन ! सुवर्णमयी लक्षाओं और स्वर्णमय कमलोंसे व्याप्त यह अद्भुत कुण्ड किसका है ? मुझे बताइये ॥ १४—१५ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—स्वायम्भुव मनुके कुलमें उत्पन्न आदि राजाधिराज पृथुने यहाँ दिव्य तप किया था । उन्हींका यह अद्भुत दिव्य कुण्ड है । पार्थ ! इसका जल पीकर मनुष्य सब पार्थोंसे मुक्त हो जाता है तथा इसमें स्नान करके नरेश ग्राणी भी मेरे परमधारमें पहुँच जाता है ॥ १६—१७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् । यहीं साक्षात् भगवान् एक तपोभूमिमें पदार्पण किया, यहाँ सदा आठों सिद्धियों शूर्तिमती होकर वृत्त्य करती हैं । उन तिद्धियोंको देखकर उद्धवने सनातन भगवान्से पूछा ॥ १८ ॥

* उद्धव बोले—भगवन् । मन्दराचलके उसीप यह किउकी तपोभूमि है ! प्रभो ! यहाँ कौन-सी तिद्धियों शूर्तिमती होकर विराज रही है—कृपया यह बतावें ॥ १९ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—उद्धव ! यहाँ पूर्वकालमें स्वायम्भुव मनुने तपस्या की थी । उन्हींकी यह सुन्दर तपोभूमि है, जो आज भी परम कस्याणकारिणी है । यहीं नारी-रूपधारिणी शाठ सिद्धियाँ सदा विवरण रहती हैं । यहाँ जो कोई भी आ आय, उसे भी आठों सिद्धियों प्राप्त हो जाती है । यहाँ एक क्षण भी तपस्या करके मानव देवत्व प्राप्त कर लेता है । चतुर्षुर्लक्षण भी इस तपोभूमिके साहात्म्यका कर्त्तव्य करनेमें समर्थ नहीं है ॥ २०—२२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् । यो कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी सेवासे घिरे हुए और बारंबार हुन्हुमि

बहुवाते हुए उन अव्याप्त उद्धव-प्रेतोंसे गये, जहाँ शूर्तिमती हिरण्यकशिपु देखने तपस्या की थी और यहाँ लोकवर्ती नामकी एक स्वर्णमयी नगरी है । उस लोकवर्तीके स्वामी साक्षात् वीतिहास नामधारी अग्नि है, जो उत्तम व्रतका पालन करते हुए निष्प मूर्तिमान् होकर राज्य करते हैं । उन बनंजायदेवने भी परम पुरुष परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रको भेंट देकर उनकी उत्तम स्तुति की ॥ २३—२५ ॥

इस प्रकार सारे इकानुवृत्तपर्वका दर्शन करते हुए देवाधिदेव भगवान् श्रीकृष्ण वेदनगरमें गये, जो अम्बूदीपका प्रक मनोरम स्थान है । उस नगरमें भगवान् निगम (वेद) सदा शूर्तिमान् होकर दिव्यायी देते हैं । उनकी सभामें सदा वीणा-युक्तकधारिणी वाणेवता वाणी (सरत्वती) सुन्दर एवं मङ्गलके अधिष्ठानभूत श्रीकृष्ण-चरितका गान करती है । नरेश्वर ! उर्वशी और विप्रविनिति आदि अस्तराएँ यहाँ दृश्य करती हैं और अपने हाथ-भाव तथा कटाक्षोदाता देवेश्वरको दिखाती रहती हैं । मैं, विश्वावसु, तुम्हुरु, सुदर्शन तथा चित्ररथ—ये सब लोग वैष्ण, वीणा, मृदग, मुरु-यष्टि आदि वाद्योंको लड़ताल एवं कुन्दुमिके साथ विधिवत् बजाया करते हैं । नरेश्वर ! यहाँ हन्त्र, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा सानुनासिक और निरनुनासिक—इन अठारह मेंदोंके साथ स्तुतियाँ गायी जाती हैं । नरेश्वर ! वेदपुरों आठों लाल, लातों स्वर और तीनों ग्राम शूर्तिमान् होकर बिजलते हैं ॥ २७—२८ ॥

वेदनगरमें राग-रागिनियाँ भी शूर्तिमती होकर निवाल करती हैं । मैरव, मेघमहार, दीपक, माल्कोश, श्रीराग और हिन्दोल—ये सब राग बताये गये हैं । इनकी पाँच-पाँच तिद्धियाँ—रागिनियाँ हैं और आठ-आठ पुत्र हैं । नरेश्वर ! के सब यहाँ शूर्तिमान् होकर विचरते हैं । ‘भैरव’ भूरे रंगका है, ‘प्लालकोश’ का रंग तोतके समान हरा है, ‘भेवमल्लार’ की कान्ति मोरके समान है । ‘दीपक’-का रंग सुखांके समान है और ‘श्रीराग’ अरण रंगका है । मिथिलेश्वर ! ‘हिन्दोल’का रंग दिव्य हंसके समान शोभा पाता है ॥ २९—३० ॥

बहुलाभ्यने पूछा—मुनिश्रेष्ठ ! ताल, स्वर, ग्राम और

१. ‘म इ ठ क’—इन स्वरोंमेंसे प्रत्येकके कल, दीर्घ और चतुर—ये तीन-सीन मेद होते हैं; किर प्रत्येकके उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित—ये तीन मेद होकरे नी मेद हुए । पिर उन स्वरके सानुनासिक और निरनुनासिक मेद होकरे अठारह मेद होते हैं ।

स्वर—इनके विषये विदाने भेद हैं ? इन सबका नामोद्देश-
भूतके सर्वत्र कीचिंति ॥ ३३ ॥

शारदजीने कहा—राजन् । स्वपक, चर्चरीक, परमठ,
विष्णु, कमङ्ग, भस्त्रक, अटिरू और बुटा—ये आठ ताल हैं ।
राजन् । निषाद, शृणुषम, गान्धार, घड्ज, मध्यम, वैष्णव
संघ पञ्चम—ये सात स्वर कहे गये हैं । माधुर्य, गान्धार और

इस प्रकार शीर्ष-संहितामें विश्वविद्यालयके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्वर-संसदमें 'वेदनगरका वर्णन'
नामक तैतालीसर्वां अध्याय पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

त्रौम्य—ये तीन ग्राम माने गये हैं । राठ, दाम्भूव, नारद-
गान्धर्व, दैनर, वैद्यावर, गौहर्षक और आप्तवर्ष—ये आठ
नृथके भेद हैं । ये सभी दस-दस हाव-भाव और अनुभावों-
से युक्त हैं । स्वरोंका वैष्णव करनेवाला पद 'सा रे ग म प थ
नि'—इस प्रकार है । राजन् ! यह सब मैंने तुम्हें कहा, अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ४०—४४ ॥

चौवालीसर्वाँ अध्याय

रागिनियों तथा रागपुत्रोंके नाम और वैद आदिके द्वारा भगवान्‌का स्वरण

बहुलाश्वरने पूछा—देवरे ! रागिनियों और राग-
पुत्रोंके नाम सुने बताइये; क्योंकि परावरवेता विद्वानोंमें आप
सबसे भेद हैं ॥ १ ॥

शारदजीने कहा—राजन् । काल्येद, देशमेद और
स्वरमित्रित कियाके भैदसे विद्वानोंने गीतके छप्पन करोड़
भेद बताये हैं । दृपेश्वर ! इन सबके अन्तर्भेद तो अनन्त हैं । अनन्दस्वरकृप जो शब्दब्रह्मस्य श्रीहरि है, इन्हींको
दृप राग समझो । इसलिये भूतलभर इन सबके जो मुख्य-
मुख्य भेद हैं, उन्हींका मैं तुम्हारे सामने वर्णन करूँगा ॥ २-३५ ॥

भैरवी, पिङ्गल, शार्ही, लीलावती और आगरी—ये
स्वैरकरणकी पाँच रागिनियाँ बतलायी गयी हैं । महर्षि,
सुषुद्ध, पिङ्गल, माराष्ट्र, विज्ञवल, वैशाख, लक्ष्मि और
पञ्चम—ये भैरवरामके भिन्न-भिन्न आठ पुत्र बतलाये गये
हैं । मिथिलेश्वर । यिष्णा, जयजयवन्ती, विचिष्णा, व्रजमस्तारी,
अन्धकारी—ये भैरवस्वर रागकी पाँच मनोहारिणी
रागिनियाँ कही गयी हैं । इयामकार, सोरठ, नट, उद्धायन,
केदार, व्रजरहस्य, जलधार और विहाग—ये मस्तक रागके
आठ पुत्र प्राचीन विद्वानोंने बताये हैं । कंठचुड़ी, मङ्गरी,
टोड़ी, गुर्जरी और शाकरी—ये दीपक रागकी पाँच रागिनियाँ
विद्यात हैं । विदेहराज । कल्याण, शुभकाम, गौड़कल्याण,
कामकृष्ण, कालहरा, रामलंबावन, सुखनामा और मन्दहास—
ये विद्यानीहारा दीपक रागके आठ पुत्र कहे गये हैं ।
मिथिलेश्वर । गान्धारी, वैद्यावचारी, चनाभी, सर्वगी तथा
शृणुषमरी—ये पाँच संकरमध्यक्षमें भाजकोश रागकी रागिनियाँ
कही गयी हैं । येष, मन्त्रक, गान्धाराचार, कौशिक, चन्द्रहर,

शुंघुट, विहार तथा नन्द—, मालकोश रागके आठ पुत्र
बतलाये गये हैं ॥ ४—१५५ ॥

राजेन्द्र ! कैराटी, कर्णाटी, गौरी, गोरावटी तथा चतुर्वर्णन-
काण्ड—ये पुरातन परिषेष्वारा कही गयी श्रीरागकी विद्यात
पाँच रागिनियाँ हैं । महाराज । सासङ्ग, सागर, गौर, मरहत,
पञ्चशार, गोविन्द, इमीर तथा गीर्भीर—ये श्रीरागके
आठ मनोहर पुत्र हैं । बसन्ती, परजा, हेरी, तैलङ्गी और
सुन्दरी—ये हिन्दोल रागकी पाँच रागिनियाँ प्रसिद्ध हैं ।
मैथिलेन्द्र । मङ्गल, बसन्त, विनोद, कुमुद, विहित, विमास,
स्वर तथा मण्डल—विद्वानोंद्वारा ये आठ हिन्दोल रागके
पुत्र कहे गये हैं ॥ १६—२१ ॥

बहुलाश्वरने पूछा—शब्दब्रह्मस्य श्रीहरिके साक्षात्
स्वरूप महात्मा निगम (वैद) के, जो रागमण्डलमें हिन्दोलके
नामसे विद्यात हैं, पृथक्-पृथक् अङ्ग इस भूतलभर कौन-
कौन से है—यह सुने बताइये ॥ २२-२३ ॥

शारदजीने कहा—राजन् । वैदस्वरूप श्रीहरिका मुख
'व्याक्रण' कहा गया है, पिङ्गल-कथित 'छन्दःशास्त्र' उनका
पैर बताया जाता है, 'मीमांसा-शास्त्र' (क्रमकाण्ड) हाथ है,
'ज्योतिष-शास्त्र'को नेत्र बताया गया है । 'आमुर्वेद' पृष्ठदेवा,
'धनुर्वेद' वस्त्रशास्त्र, 'पान्धववेद' इतना और वैदेशिक
शास्त्र मन है । सांख्य त्रुदि, न्यायवाद अहंकार और वैदान्त
महात्मा वैदका चित्र है । मिथिलेश्वर । रागस्वर और शास्त्र
है, उसे वैदराजका विद्यरूप कहा जाता है । अब और क्या सुनना चाहते हो ?
॥ १४-१७ ॥

बहुताहमें तूहा—जैसे ! उस वेदपुरमें आकर साक्षात् भगवान् आदिने कहा किया यह मुहे बताइये ज्ञानी काय साक्षात् हिम्बहशी है ॥ २८ ॥

आरद्धानि कहा—राजन् ! यादवेश श्रीकृष्ण वेदपुरमें आये, तब निगम (वेद) भी सरस्वतीके साथ बैठ लेकर आये । गन्धर्व, अस्त्रा, ग्राम, ताळ, स्वर तथा भेदोंसहित राग भी उनके साथ थे । उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान्को प्रणाम किया । देवताओंके भी देवता साक्षात् भगवान् जनार्दन वेदपर प्रसन्न हो समस्त यादवोंके समझ उनसे बोले ॥ २९—३१ ॥

अभीभगवान्ने कहा—निगम ! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार कोई कर माँगो । मेरे प्रसन्न होनेपर तीनों छोकोंमें भक्तोंके लिये कौन-सी वस्तु दुर्लभ है ॥ ३२ ॥

वेद बोले—देव ! परमेश्वर ! यदि आप प्रसन्न हैं तो यहाँ मेरे जो ये उत्तम पार्षद हैं, उन सबको अपने दिव्य रूपका दर्शन कराइये । अत्यन्त उद्दीप्त तेजवाले अपने निज धाम गोलोकमें आपका जो स्वरूप है तथा बृन्दावनमें और वहाँके रासमण्डलमें आपका जो रूप प्रकट होता है, उसकाये सब लोग दर्शन करना चाहते हैं ॥ ३३—३४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मैथिलेश्वर ! वेदका कथन सुनकर साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णने श्रीराधाके साथ अपने परम दिव्य रूपका उन्हें दर्शन कराया । उस अनुपम सुन्दर रूपको देखकर उब लोग मूर्च्छित हो गये । अपना शरीर तथा सुख भुजकर वे सभी सात्त्विक भावोंसे पूरित हो गये । राजन् ! उस समय अस्तन्त इधरें उत्सुर्क हो के वायोंके मधुर शब्दोंके साथ संपुष्टवायोंके देखते-देखते भगवान्के समझ नाचने और गान करने लो । मैथिलेश्वर ! भगवान्का माधुर्यमय अनुरूप जैसा सुना गया था, वैसा ही देखा गया और उसी प्रकार वेद आदिने (उसका नीचे दिये शब्दोंमें) बर्णन किया ॥ ३५—३८ ॥

वेदने कहा—देव ! आप सरस्वत, शानदान, उत्त-असुरसे परे व्यापक, सनातन, प्रशान्तरूप, विमलासनक, सम, सहत, प्रकाशरूप, परम द्वार्ग, परस्पर, सम अपने वाप (विमल वापाम) ज्ञान द्वारा पर्यंत वाकानके अनन्त-

कोनिरस करनेवाले व्याप्त हैं; आपको ज्ञान लक्ष्य है ॥ ३३ ॥

सरस्वती बोली—भगवन् ! योगीलोग आपको परम व्योतीतःस्वरूप जानते हैं, वही भक्तजन आपको चिन्मय विमहसे युक्त बताते हैं । इस उमय जो आपके चरणारविन्दु-युगल देखे गये हैं, वे सरस्वत व्योतीतोंके अधीक्षर हैं । मैं उद्या मेरे लिये कल्याणकारी हूँ ॥ ४० ॥

श्राव्यवर्ष बोले—प्रभो ! इथाम और मौर तेजके रूपमें अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित जो आपका तेजोमय स्वरूप है, वह आपने अपनी इच्छासे प्रकट किया है । उन्हीं युगल धामों (स्वरूपों)से आप नित्य उसी प्रकार पूर्णतमा विराजित रहते हैं, जैसे मैंने इथाम वर्ण तथा विजडीसे शोभा पाता हूँ ॥ ४१ ॥

अप्सराभासोंने कहा—जैसे तमाल सुर्वर्णमयी लक्षाएं, मेघ विश्वनामालसे तथा जैसे नील गिरिराज सोनेकी खानसे सुशोभित होता है, उसी प्रकार आप आदिपुरुष इथामसुन्दर अपनी प्रेयसी श्रीराधारानीके नित्य साहचर्यसे शोभा पाते हैं ॥ ४२ ॥

तीनों ग्राम बोले—जिनके चरणारविन्दोंके पावन परागको द्विव, रमा (लक्ष्मी), शानोपुरुष तथा देवताओं-

- | | | |
|-------------------------------------|---------|------|
| १. सरस्वतमात्रं | सदस्परं | वृह- |
| सरस्वत प्रशान्त विभवं समं महत् । | | |
| त्वा त्रिष्ठु बन्दे वसु दुर्गमं परं | | |
| स्वरा सरस्वत्या परिभूतेऽवग् ॥ | | |
| २. महः परं त्वा किल बोगिनो विषुः | | |
| समित्रादं तत्र बदन्ति सारवताः । | | |
| तृष्णं तु चतु वदयोदयं चे | | |
| स्वेताम भूत्यामहसामधीकरन् ॥ | | |
| ३. इथाम च गीरं विदितं स्वास्त्रा | | |
| हृतं तथा भाम निजेष्वया हि । | | |
| विराजते विष्यमलं च ताम्ना | | |
| वस्त्रे चक्रा येचकदामिनोऽन्याम् ॥ | | |
| ४. वेद तमाकः वल्लीतवस्त्रा | | |
| वस्त्रे चक्रा वल्लीत्या चकासि । | | |
| वीक्षेषितरुजो निष्पत्तिमहस्या | | |
| श्रीराधाराद्यन्तु नवा रमणा च ॥ | | |

शहित भीरुदा अपने चिह्नमें धारण करना चाहती हैं, वाघवके उन चरण-कमलोंका सदा भजन करो ॥ ४३ ॥

शहितोने कहा—जिनके कारण राजा बड़ि सत्यवर्णप्रेरित हुए, उन्हीं भगवान्को बड़ि अर्पित करनी चाहिये। अपने संतत चिच्छरपी गुफामें श्रीहरिके उस चरणको ही प्रतिष्ठित करके उसकी सेवा करो ॥ ४४ ॥

गान (लघु) बोले—संतजन जिनकी धारण लेकर गुरुज्ञानको निकाल कींकते हैं, श्रीराघव-माघवके उन दिव्य

इस प्रकार श्रीराम-संहितामें विश्वविद्युलम् के अन्तर्गत नारद-बहुलाद्व-संवादमें वेदादिके द्वारा की गयी सुनिका वर्णन नामक औवाहीसर्वां अध्यय पूरा हुआ ॥ ४४ ॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

रागिनियों तथा राग-पुत्रोद्धारा भगवान् श्रीकृष्णका स्वन और उनका द्वारकापुरीके लिये प्रस्थान

नारदजी कहते हैं—राजा! तदनन्तर भैरव आदि रागभग भगवान् श्रीहरिके सामने उपस्थित हुए और रूपके अनुरूप उनके प्रथेक अवयवका दर्शन करके अत्यन्त हर्षित हुए। श्रीहरिके विग्रहमें जिस-जिस अङ्गपर उनकी हृषि पहरता था, वहीं-वहीं वह ठहर जाती थी। लावण्य-विशेषका अनुभव करके वह वहाँसे इटनेमें समर्थ नहीं होती थी। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके उस अत्यन्त अद्भुत रूपका दर्शन करके वे भी पृथक्-पृथक् उसका गुणगान करने लगे ॥ १—३ ॥

भैरव बोला—श्रीहरिके दोनों शुटनोंका चिन्तन करो, जिन्हें सदा अहुमें लेकर कमला अपने कमलोपम कर्में उनकी सेवा करती हैं ॥ ४ ॥

भैरवमङ्गारने कहा—सर्वव्यापी भगवान् श्रीकृष्णकी दोनों ऊँचे, मानो कढ़लीसलम् हैं; सोनेके लंबे हैं, तेजसे पूर्ण हैं, अनुषम शोभावे सम्पन्न हैं तथा पीताम्बरसे ढकी हुई हैं। उन दोनों कन्दनीय ऊरु-युगलका मैं ज्ञान करता हूँ ॥ ५ ॥

५. वस्त्र पदस्य परागं शम्भुरमाकांदेवः । इच्छति चेतसि रात्रि तं वस्त्रं शाश्वतदम् ॥

६. वेग बड़िः सद्विहरेतालिमेव इते । तं वज्रं पादं तु देष्वेतसि तद्ये तुहरे ॥

७. विश्वविद्युल शहितःसं सन्तो वच्छरणं गताः । राघवापवदोदिव्यं वज्रान् पदपूज्यम् ॥

८. वाहिनिकव्यग्रहुत्विवरतीव विश्वकं मिक्तिमुनिश्चेहितं त्रुष्टिदासंविद्युतदम् ।

द्वारकानन्दपुरं विश्वविद्युतापात्रं चक्षुसि पदावरे हसि इतामि रात्रापदेः ॥

चरण-कमलोंको इस सदा हृदयमें धारण करो ॥ ४५ ॥

स्वर बोले—जो शरद श्रुतके प्रकृत्य वृजकी शोभा-को अत्यन्त तिरस्कृत कर देते हैं, मुनिस्त्री भ्रमर जिनका आस्वादन करते हैं, जो ब्रह्म, कमल और शङ्ख आदिके चिह्नोंसे तुशेभित हैं, जिनपर सोनेके न्यूपर चमक रहे हैं तथा जिन्होंने भक्तोंके श्रिविष्व तापोंका उन्मूलन कर दिया है, श्रीराघवलम्बके उन चक्षुल-शुतिशाली युगल चरणारकिन्द्रोंको मैं हृदयमें धारण करता हूँ ॥ ४६ ॥

दीपक रागने कहा—भगवान्के कटिभागसे नीचे जो समूर्ण चरण हैं, वे समस्त सुखोंको देनेवाले हैं तथा सुवर्ण-सींसी कान्ति धारण करते हैं, उन सुप्रसिद्ध चरणोंका भजन करो ॥ ६ ॥

मालकोश बोला—भगवान् श्रीहरिकी जो कमर है, वह केशके समान अत्यन्त पतली है और वह मनुष्योंकी हृषिका मान हर लेती है, अर्थात् उस कटिको देखनेमें हृषि समर्थ नहीं हो पाती; वह मन्द-मन्द समीके चलनेपर भी अत्यन्त कमित होने या लचकने लगती है। इस प्रकार वह सभके चित्तको हर लेनेवाली है। मैं विनाम महाकरे उसकी बन्दना करता हूँ ॥ ७ ॥

श्रीराग बोला—राधिकावलम्बका जो नामि-सरोवर है, उसका मैं अपने हृदयमें प्रतिदिन ध्यान करता हूँ। वह पुष्करकुण्डके समान शोभा पाता है। विश्वलीलम् लहरोंसे उसकी मनोहरता बढ़ गयी है और वहाँकी रोमावलीने कामदेवके कीड़ा-काननको तिरस्कृत कर दिया है ॥ ८ ॥

हिम्बेष्ट—रामने कहा—उदरमें जो विकल्पीकी पंक्ति है, वह क्या अस्तीकी पंक्ति (बर्षाला) है ? अथवा पीपलके फूलपर मोहन-समय विलापी देती है ? क्या कमल-दलपर कोई स्वाम रेखा है या उदरमें यह रोमाघि फैली हुई है ? ॥ ९ ॥

बैरवरागकी राजिनियाँ बोलीं—श्रीकृष्ण हरिका जो पीताम्बर है, वह दीसिमान् इन्द्रधनुष तो नहीं है ! सोनेके तारोंकी शिल्पकलाद्वारा वह मनोहर ढंगसे टँका हुआ है। उसका ही भजन करो, वह मनुष्योंका दुःख हर ऐनेवाल है ॥ १० ॥

मैरवके पुण्योंने कहा—भगवन् ! आपकी चारों भुजाएँ चारों समुद्रोंके समान उम्भूर्ण विश्वको परिपूर्ण करने-वाली हैं, चार पदार्थोंके समान आनन्ददायिनी हैं, लोक-रसी बँदोबाके विलानमें दाढ़का काम देती हैं तथा भूमिको धारण करनेमें दिग्गजोंके समान प्रसीत होती हैं ॥ ११ ॥

मेघमङ्गारकी राजिनियाँ बोलीं—सर्ववृद्धभ भूमिपाते भगवान्, श्रीहरिके मधुर अधरका, हे मन ! त् सदा चिन्तन कर । वह लाल रंगके विष्व-फलकी-सी कानिंतसे मण्डित है तथा नृतन जयाकुमुखके लाल दलोंकी माँति उसका झुन्हर स्वरूप है ॥ १२ ॥

मेघमङ्गारके बेटे बोले—परमेश्वर श्रीकृष्णकी जो निर्मल दन्त-पक्षि है, उसका सदा व्यान करो । उसने कपूर, केवड़ोंके फूल मोती, हीरे श्रीखण्ड चन्दन, चन्द्रमा, चपल, अमृत तथा मस्तिष्क-पुष्पोंकी कानिंतको पहुँचेसे ही तिरस्कृत कर दिया है ॥ १३ ॥

वीरपक रामकी राजिनियोंने कहा—भगवन् ! निकलनोंकी रक्षा करनेमें समर्थ तथा अभीष बस्तु देनेमें इस जो आपके शुगळ नियनोंका क्षयकाकाश है, वह रात-दिन इसीरी रक्षा करे । वह कटाक फामदेवके बाणोंका परीक्षक है—उससे भी तीव्र शक्तिवाल है । उसने सण्ठी लावण्यकी दीवा ले ली है, अर्थात् वह समस्त लावण्यकी राधि है । उसने अपनी उदासताके समाने कल्पशृङ्खलोंकी भी तिरस्कृत कर दिया है तथा उसके एक-दो नहीं, करोड़ों लक्ष्य हैं ॥ १४ ॥

वीरपके पुत्र बोले—या ये सूरज कमलके जीव दो कुलिङ्ग (गौरीया) पक्षी दें हैं या तीनों छोड़ोंके द्वितीय नाश करनेके लिये ही तीसी तज्ज्वर हैं या कामदेवों दो विकल्पीक चक्रुप हैं; अथवा रघुवान्

श्रीकृष्णके शुक्लदण्डमें तुरात भूमिपाल शोभा या ये हैं भरपा ॥

मालकोशकी राजिनियोंने कहा—झुन्हर कमल-मण्डलपर दो चञ्चल कुण्डल हत्य कर रहे हैं, मालों अल्पमण्डलमें दो नाशिनीं नाच रही हैं, अथवा मकरनदसे परिपूर्ण कमलपर भगवावली मँडरा रही हो ॥ १६ ॥

मालकोशके पुत्र बोले—आकाश-मण्डलमें सूर्योदय उदित हुए हैं या गेषमालामें विजली चमक रही है अथवा यदुपति भगवान् श्रीकृष्णके गण्डमण्डल (कपोलदय) पर व्योतिके लण्ठन-सा कमक-निर्मित कुण्डल शक्तमाला रहा है ॥ १७ ॥

श्रीरामकी राजिनियाँ बोलीं—दो कुलिङ्ग जिना दो खड़ान पक्षियोंकी पंक्तियोंका परस्पर युद्ध हुआ । उनके मध्यमें बीच-याव करनेके लिये प्रकुप्ल कमलपर एक तोता निकट आ गया है, जो अहण विष्व-फलको प्राप्त करनेकी इच्छाए वहाँ बैठा शोभा पाता है (वहाँ कुलिङ्ग या खड़ान पक्षी भगवानके दोनों नेत्र हैं, उनके बीचमें बैठा हुआ तोता नाशिका है, प्रकुप्ल कमल मुख है । और अहण विष्व-फल अधर है) ॥ १८ ॥

श्रीरामके पुत्र बोले—जिन्होंने अपनी कमरमें पीताम्बर बाँध रखा है, महत्कपर भोर-मुकुट धारण किया है और श्रीवाको एक ओर हुक्का दिया है, जो हाथमें लकुटी और बंशी लिये हैं तथा जिनके कानोंमें कुण्डल हिल रहे हैं, उन पद्मतर नटवर-वेषधारी श्रीहरिका मैं भजन करता हूँ ॥ १९ ॥

हिम्बेष्टरागकी राजिनियाँ बोलीं—जिनकी व्याय कानिंतकी अल्पाकोंके पूर्वों उपमा दी जाती है, जो वसुनाके तटपर कहम-कानकेमें सज्जभागमें विराजमान है तथा नवी अवश्यकी गोपसुन्दरियोंके साथ विहार करते हुए शोभा पाते हैं, वे वनमाली हम सबके मँडालका विसार करें ॥ २० ॥

हिम्बेष्टरागके पुण्योंने कहा—हरे ! भूतलगर मेरे लगान पातकी नहीं है और आपके समान कोई पापापहारी भी नहीं है । इसलिये आपको लगान्नायदेव मानकर मैं

* परिकीरतीतपट दरि लिखिलिरीटनटीकतकपरद,

कुण्डलेषुकरं चल्लमण्डं एहतरं नटवेषरं सत्ये ॥

(गर्व०, विष्ववित० ४५ । १९ ।)

† असीकुद्धमोपेष्वक्षिविवृत्तान्तान्तरमन्तरमन्तरम् ।

क्षमोपवृष्वविहारकाली वलमाली वित्तनेतु नहान्ति ॥

(गर्व०, विष्ववित० ४५ । १० ।)

शरणमीला होते हैं । आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा मेरे प्रसि
द्धि किये ॥ २३ ॥

शारदीयी कहते हैं—राजन् ! रागोदासा किये गये
उपर्युक्त घ्यानको जो सदा सुनता अथवा पढ़ता है, भक्त-
बलान् भगवान् श्रीकृष्ण उसके नेत्रोंके समझ प्रकट हो
जाते हैं । इस प्रकार वेद आदिको अपने स्वरूपका दर्शन
करके साक्षात् श्रीहरि उन सबके देखते-देखते चतुर्सुज
शार्हपाणि बन गये ॥ २२-२३ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्णका दर्शन करके जब देवतालोग
अपने गाँगोंके साथ चले गये, तब सेनामें अपने पुत्र युद्धकुल-

इस प्रकार श्रीकृष्णका दर्शन करके जब देवतालोग
वर्णन नामक पैतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४५ ॥

छियालीसवाँ अध्याय

यादवों और गन्धवोंका युद्ध, बलभद्रजीका प्राक्षय, उनके द्वारा गन्धर्वसेनाका संहार,
गन्धर्वराजकी पराजय, वसन्तमालती नगरीका हल्द्वारा कर्षण; गन्धर्वराजका
भेट लेकर शरणमें आना और उनपर बलरामजीकी कृपा

शारदीयी कहते हैं—राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णके
द्वारकापुरीको छले जानेपर प्रश्नुमन अपने सैनिकोंके साथ
कामदुष्नदके समीप गये । वहाँ गन्धवोंकी मनोहारिणी हेम-
रथमयी वसन्तमालती नामकी नगरी है, जिसका विस्तार सौ
योजनका है । लघु-लघु आँके समूह, हल्लायची, केसर, जायफल,
जायजी, श्रीसंख चन्दन और पारिजातके वृक्ष उस पुरीकी
शोभा बढ़ाते थे । मत्तवाले भ्रमरोंके गुजारबसे निनादित,
विचित्र पक्षियोंके कल्पवसे मुखरित तथा गन्धवोंसे सुशोभित
वह नगरी नगोंसे युक्त भोगवतीपुरीके समान शोभा
पाती थी ॥ १-४ ॥

वहीं पतंग नामसे प्रसिद्ध महायली गन्धर्वराज राज्य
करते थे, जो थड़े पुण्यात्मा थे और जिनका बल पौरुष
देवराज इन्द्रके समान था । उन्होंने दुना कि दिग्बिजयके
लिये निकले हुए प्रश्नुम आ रहे हैं, तब उन गन्धर्वराजने
उद्भट गन्धवोंसे युक्त होकर युद्ध करनेका निश्चय किया ।
रथ, थड़े, हाथी और पैदल दस करोड़ गन्धवोंके साथ
राजा पतंग प्रश्नुमके सामने युद्धके लिये आये ।
गन्धवों और याहूओंमें यहा भयंकर युद्ध हुआ । भालों,
याहूओं, परियों, युद्धसें लोमरों तथा शूद्रियोंकी मार होने

तिलक शम्पर-शम्पु प्रश्नुमको स्थापित करके परात्पर भगवान्
श्रीहरिने अपनी द्वारकापुरीमें जानेका विचार किया ।
मिथिलेश्वर ! उनके रथपर भजीर, बंदा और किञ्चिणीकी
मधुर ज्वनि होने लगी । सुन्दर कांस-पञ्च (काँस) की
आवाज भी उसमें मिल गयी । दाढ़कने उस रथमें सुन्दीव आदि
चक्षुल थोड़े जोते दिये । वह उक्त रथसुख आमृषणोंसे
सजाया मथा था, उसके आगे वेद-मन्त्रोंका शोष भी होता था
और उसके ऊपरका गहड़ध्वज प्रभखनके बेगसे फहरा रहा
था । ऐसे रथके द्वारा वेदपुरीको छोड़कर परमात्मा श्रीहरि
यादववृन्दसे मण्डित द्वारकापुरीको चले गये ॥ २४-२७ ॥

लगी । याणोंसे अन्धकार फैल जानेपर अतिरथी बलवान्
बीर पतंग धनुषको टंकाते हुए आगे थड़े और मैघके
समान गर्जना करने लगे । बलदेवजीके बलवान् अनुज
गदने गदा लेकर गन्धवोंकी सेनाको वैसे ही धराशायी करना
आरम्भ किया, जैसे देवराज इन्द्र बड़से पर्वतोंको दहा
देते हैं ॥ ५-१० ॥

गदकी गदाके प्रहारसे कितने ही गन्धर्व युद्धभूमिमें
गिर गये, उनके रथ चूर-चूर हो गये और समस्त इथियों-
के कुम्भस्थल फट गये । कितने ही युद्धचार बीर भी युद्ध-
के मुहानेपर प्राणशूल्य होकर पड़ गये । सुजाएँ कट जानेसे
कितने ही गन्धर्व उत्ताजमुख और औंचेमुख पड़े दिलासी
देते थे । क्षणमात्रमें गन्धवोंकी सेनामें खूनकी नदी बह
चली । प्रमथगण भगवान् बड़की युद्धमाला बनानेके
लिये युद्धभूमिमें नरमुण्डोंका उम्ह करने लगे । सिंहपर
चढ़ी हुई भद्रकाली सैकड़ों द्वाकिनियोंके साथ युद्धभूमिमें
आकर खप्परमें खून भर-भरकर पीती दिलासी देने
लगी ॥ ११-१४ ॥

इस तरह गदके द्वारा किये गये युद्धमें जब गन्धर्वसम्प
प्रस्तुत करने लगे, तब गन्धवोंके राजा पतंग यह कह

गजतेजाके साथ बहाँ आ पहुँचे । विश्वेश्वर । पतंगने आवे ही मध्यमी छातीसे गदा मारी । गदने भी अपनी वशसे पतंगके बलपर चल्पूर्वक चोट पहुँचायी । उन दोनों में दो बड़ीतक गदासुख चलत रहा । उनकी दोनों गदाएँ आगमी चिनगारियाँ बिलेती हुई चूर-चूर हो गयी । रणदुर्घटे पतंगने लाल भारकी मारी गदा लेकर तुरंत ही गदके मस्तकपर मारी । गदाके उस प्रहारसे गद क्षणभर के लिये शूर्णित हो गये । इस प्रकार भगवन्ना पतंगने जब दोर युद्ध किया, तब उसी समय द्वारकापुरीमे एक तेजपुरा आ पहुँचा ॥ १५-१६ ॥

समस्त यादवोंने करोड़ों सूर्योंके तुत्य तेजस्वी उस तेज-पुराको देखा । उसके भीतरसे गोरे अङ्गवाले महावली भक्तवत्सल भगवान् बलदेव सहसा प्रकट हो गये । नीलमध्यरथाली बलवाली बलरामने कुपित हो गन्धवोंकी सारी सेनाको हल्से खींचकर मुसल्ले घरना आरम्भ किया । बहुत-से रथों, हाथियों और घोड़ोंको उन्होंने कालके गालमें पहुँचा दिया । शास्त्राचारियोंमें श्रेष्ठ वीर सब-के-सब चूर-चूर हुए पत्थरोंकी भाँति एक साथ ही भूतलभर विसर गये । पतंग भी रथहीन हो भारी भयके करण बहाँसे बसन्तमालती पुरीमें चले गये और पुनः यादवोंसे युद्ध करनेके लिये सेनाका व्यूह बनाने लगे ॥ २०-२४ ॥

नरेश्वर ! सौ योजन विस्तृत गन्धवोंकी सम्पूर्ण बसन्त-मालती नामकी भगवानीको हल्से उपाटकर कुपित हुए बलदेवजीने कामदुष नदमें गिरानेके लिये खींचा । उस नगरीके भवन घडाघड घराशायी होने लगे । फिर तो सत्काल वहाँ इहाकार मच गया । अपनी नगरीको टेढ़ी या करवट लेती हुई नौकाकी भाँति डगमगाती देख पतंग सर्वथा पराभूत हो, तत्काल समस्त गन्धवोंके साथ हाथ जोड़, भैंट-सामग्रीके साथ वहाँ आ पहुँचा ॥ २५-२७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलालव-संवादमें 'बसन्तमालती नगरीका कर्ण' नामक छियालीसदों अथाय पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

उसले दो लाल ऐसे विमान बलदेवजीको भैंट लिये औ सुवर्णोंके समान कालिकाले तथा विश्वज रज्ञोंसे ब्रह्मिण थे । मोतीकी बंदनवारे उनकी शौभा बहाती थीं । विश्वकर्मनि उन विमानोंको दस-दस दोलन विस्तृत बनाया था । वे सबीं विमान इच्छानुसार चलनेवाले तथा कोटि-कोटि कल्पों प्रबं पताकाओंसे कुगोपित थे । उनसे लहजों सूर्योंके समान प्रकाश फैल रहा था । चार लाल गौड़, दस अरब घोड़े, इलावन्नी, लङ्घन केसर और आयफलोंके साथ दिव्य अमृतफलोंमें भेरे करोड़ों पश्च उपहारके रूपमें लाकर उन्होंने दिये । फिर वे नमस्कार करके तिरस्तुतकी भाँति हाथ जोड़कर बलवान्नीसे बोले, उन्हें बलभद्रजीके प्रभावका पूरा परिचय मिल गया था ॥ २८-३१ ॥

पतंगने कहा—राम ! महापराक्रमी नलराम ! मैंने आपके पराक्रमको पहले नहीं जानाशा, इसलिये अपराध कर बैठा । जिनके एक फलपर सारा भूमण्डल तिलके समान दिलायी देता है, उनके सामने कौन ठहर सकता है । भगवन् । कामपाल । देवाधिदेव । आपको नमस्कार है । साक्षात् अनन्त एवं शोषस्वरूप आप बलरामको बारंबार प्रणाम है । अन्तु देव ! आपकी जय हो, जय हो । परात्पर ! साक्षात् अनन्त ! आपकी कीर्ति दिग्नन्तरक फैली हुई है । आप समस्त देवताओं, मुनीन्द्रों और फारीन्द्रोंसे श्रेष्ठ हैं । मुसल-जारी । आप बलवान् हलधरको नमस्कार है* ॥ ३२-३४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् । पतंगके इस प्रकार सुनि करनेपर महावली बलभद्रजीका चित्त प्रसन्न हो गया । उन्होंने गन्धवोंको 'अब तुम मत छोरो'—यों कहकर अभयदान दिया । तदनन्तर यादवेश्वर बलदेव अपने चरणोंमें पढ़े हुए प्रशुभ्यको मेनाके संचालक-पदपर स्थापित करके, यादवोंसे प्रशंसित हो शीघ्र ही द्वारकापुरीको चले गये ॥ ३५-३६ ॥

* अब असाधुत ऐसे परात्पर समयमन्तर दिग्नन्तरहोते । छलुमीन्द्रकणीन्द्रकराम से मुसलिने बिल्ले नमः ॥

संतालीसवाँ अध्याय

यादव-सेनाके साथ शक्तसखका युद्ध और उसकी पराजय

नारदजी कहते हैं—राजन् ! नइनन्दर महाबीर प्रशुभुन आपनी किल्य-दुन्दुभि यज्ञाते हुए यादव-सेनिकोंके साथ मधुशारा नदीके तटपर गये। सुर्वर्णगिरिके किनारे कुबेर-के मुम्हर बनमें, जो सुनहरे हंसों और काङ्गनी लतिकाओंसे सम्पन्न है, पहुँचे। मिथिलेश्वर ! हिमालयकी गुफाएँ देवताओंके लिये दुर्योका काम देती हैं। वहाँ दानवोंकी पहुँच नहीं हो पाती। वहाँ गङ्गातटवर्ती बैतकी शाहियाँ छायां रहती हैं। कभी-कभी दानवोंसे डरकर स्वर्गसे भागे हुए आठों लोकपालोंकी निधियाँ वहाँ निवास करती हैं॥ १-४ ॥

शक्तसख नामक देव-शिरोमणि उस प्रान्तके अधिगति है। प्रशुभुनका आवामन सुनकर उन्होंने उनके साथ युद्ध करनेका विचार किया। प्रशुभुनके मेजे हुए कुद्दिमानोंमें भेड़ लाकात् उद्धव मार्गदर्शी लोगोंसे रास्ता पूछते हुए शक्तसखकी नगरीमें गये। सभामें पहुँचकर मनिप्रवर प्रशुभुन उद्धवने राजा इन्द्रसखको नमस्कार करके प्रशुभुनकी कही युर वातें विद्वारके साथ कह सुनायी॥ ५-७ ॥

उद्धव बोले—यादवोंके इन्ह, द्वारकापुरीके स्वामी राजाधिराज उपरेन अम्बूदीपके नरेशोंको जीतकर राजसूय यह करेंगी। उनके द्वारा दिविजयके लिये मेजे गये बलवान् दक्षिणीनन्दन प्रशुभुन अपने तेजसे भारत आदि वर्षोंको जीतकर आज ही इलावृतवर्षपर विजय पानेके लिये आये हैं। उन श्रीकृष्णकुमारका यह महान् है। यदि आप अपने कुलकी कुशाल चाहते हों तो श्रीघ्र ही उन्हें भेट दीजिये। तर्वर्षोंमें श्रेष्ठ नरेश। यदि आप भेट नहीं हैं तो आपके साथ युद्ध अनिवार्य होगा॥ ८-१० ॥

शक्तसख बोले—दूत ! सुनो। देवतालेग भी सदा मेरी पूजा करते हैं, फिर मनुष्योंकी तो यात ही क्या है। मैं सिद्ध हूँ, महाबीर हूँ और एक लाख हाथियोंके समान बलवान् हूँ। आठों लोकपालोंके आधिपत्य। रक्षक हूँ। कुबेरके समान योद्धासे सम्पन्न तथा इन्हके समान उद्धट शक्तिशाली हूँ। उपरेनको ही मुझे उत्तम उपायमें भेट करता चाहिये। मैंने पहले कभी किसीको भेट नहीं ही है, इसलिये ये सुनहरे यतुराजको भी भेट नहीं हैंगा॥ ११-१३ ॥

उद्धव बोले—यादवोंके तेजसे जैसे कुबेरको लिम्प्लार प्राप्त हुआ है और उन्हें भेट देनी पड़ी है; जैसे वैश्वेशके बलवान् राजा शङ्करतिलकने भेट दी है; हरिवर्षके राजा शुभाङ्ग, उत्तराखण्डके स्वामी गुणाकर, दैत्योंके सखा राक्षसराज लङ्घापति संवत्सर, केतुमाल और शकुनि आदि यद्य-यद्य असुरोंने जैसे भेट दी है, राजन् ! उसी तरह उन्हींगी-सीं सुदशामें पहनेपर आप भी प्रशुभुनको भेट देंगे॥ १४-१६ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! उद्धवकी उपर्युक्त वात सुनकर बलवान् शक्तसखने कुपित हो उद्धवको इस प्रकार उत्तर दिया—‘भगवद्गुप्त-शिरोमणि ! सुनो। ज्व-तक मैं भेट दूँ, तबतक तुम यहाँ ठहरो। अन्यथा तुम जाने नहीं पाओगे। महामते ! मेरी यह वात सत्य है, सत्य है॥ १७-१८ ॥

उद्धव बोले—हम मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ और श्रेष्ठ कान् प्रदान करनेवाले हैं। जो हमारी शिक्षा नहीं मानते, उनका मङ्गल नहीं होता॥ १९ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार शक्तसखने उद्धवको वहाँ नजरबंद कर लिया। उद्धवके नहीं लैटनेसे यदुवंशी लोग चिनित हो गये। उन्हें देखे बिना उन सबके कई दिन योत गये। तब मेरे मुखसे उद्धवजीके अवरोधका नमान्चार सुनकर भगवान् प्रशुभुन हरि चिप्या-सुरको जीतनेके लिये यात्रा करनेवाले महादेवजीके समान शक्तग्नपर विजय पानेके लिये चले। उनके साथ समस्त यादन अभ्यु और नारी मेना थी। प्रशुभुनजी सुवर्णादिकी गुफाके द्वारपर जा पहुँचे। दुन्दुभियोंकी ध्वनिसे विश्रित वीर योद्धाओंके योद्धोंकी टंकारों, योद्धोंके दिनहिनाहटकी आवाजों तथा हाथियोंकी चिंगारोंसे दसों दिशाएँ गँज उठीं। सेनिकोंके दैरेसे उड़ी हुई धूल भी सब और व्याप्त हो गयी। शक्तसखकी सेना यादवोंसे युद्ध करने लगी। भयंकर युद्ध होने लगा, योम-यष्ठल अस्त-शङ्कोंसे आच्छादित हो गया। नृपेश्वर ! यह सब देखकर मेझ-पर्वतके निवासी समस्त देवता भयभीत हो उठे॥ २०-२४ ॥

इसी समय कोखसे भरा और रथपर चढ़ा महाराजों

शक्तसल इस अहोहिती सेनाके साथ आगे बढ़कर बाहरोंके साथ तुद्ध करने लगा । देवताओंका यादबींके साथ तुद्ध तुद्ध छिंग गया । राज्ञ् ! प्राकृत प्रक्षेपके समय चारों उम्मीदोंके टक्करानेसे ऐसी भीषण अनि होती है, जैसा ही महान् कोचाहल वहाँ होने लगा । अज्ज-शक्तसल वहाँ अन्धकार-सा छा गया । उस समय बलदेवके छोटे भाई रोहिणीनन्दन वीर लारण कबच धारण किये, हाथीपर बेठकर, बारंबार धनुषकी टंकार करते हुए सबसे आगे आ गये और अपने कोदण्डसे छूटे हुए बाणोंद्वारा शक्तसल-की सेनाका संहार करने लगे । सारणके बाणसमूहोंसे कितने ही बीरोंके दो-दो ढुकडे हो गये । युद्धभूमिमें बुद्धुत-से रथ करबट लेकर बृक्षोंके समान धराशाखी हो गये । उस समय जिनके कुम्भस्तुल फट गये थे, उन हथियोंके मोती इधर-उधर गिर रहे थे । बाणोंके अन्धकारमें वे चिल्हे हुए मोती रात्रिकालमें तारागणोंके समान चमकने लगे । कटते हुए बोडों, पैदल योद्धाओं तथा हथियोंसे वह समराक्षण भूतगणोंसे युक्त भूतनाथके कीड़ासाल महाश्वमशान-सा जान पढ़ता था । सारणका बल देखकर सब देवता भाग चले । उनके कोदण्ड छिंग-भिज हो गये; कबच चारों ओरें फट गये ॥ २५-३३ ॥

अपनी सेनाको पलायन करती देख बलवान् शक्तसल धनुष टंकारता दुआ वहाँ आ पहुँचा और वहे जोरसे मेघकी भाँति गर्जना करने लगा । वीर धनुर्जर बलवान् शक्तसलने समराक्षणमें अर्जुनको दृश्य, साम्ब और अनिकद्दको लौ-सौ, गहूको दो सौ तथा सारणको एक सहस्र बाण मारे । उसके बाणोंकी मारसे रथी वीर दो-दो घटीतक उसी प्रकार चक्कर काटने लगे, जैसे कुम्भारके चाक घूम रहे हों । वह अद्भुत-सी बात दुर्ई । उस तरह चक्कर काटनेसे बोडे मूर्खोंके प्राप्त यन गये, रथोंके बन्धन ढीले पह गये, रथियोंके मनमें सेद होने लगा और सारथि भी युद्धमें पूर्णित हो गये ॥ ३४-३८ ॥

राजेन्द्र ! उस समय आनन्दीनन्दन साम्ब दूसरे रथपर आखड़ हो बल्पूर्वक धनुष टंकारते हुए आये । उन्होंने शक्तसलके धनुषको दृष्ट बाणोंसे छिंग-भिज कर छाला । दो बाणोंसे उसके सारथियों और लौ बाणोंसे बोडोंको

शक्तसल भैरवकर तहस बाणोंद्वारा उठाके रखके भी तूर-तूर कर दिया । धनुषके कट जाने तथा बोडों और बाणोंमें मारे जानेपर रथीहीन हुए शक्तसलने भरवाहे गजराजका आखड़ हो रोषपूर्वक छूल हाथमें के लिया । बलवान् शक्तसलने उस छूलसे साम्बकी छातीमें खोट की । उस आघातसे साम्बका मन कुछ व्यापुर हो गया ॥ ३९-४० ॥

शक्तसलका हाथी एक-एक योजनका डग भरता था । उसका रंग कजलगिरिके समान कलम था । उनकी ऊँचाई चार योजनकी थी । उसके हो दाँत आवे योजनरक आगे निकले हुए थे । वह वहे जोरसे विष्वाकृता था । उसके चार-चार योजन विस्तृत तीन सूँहे थी । उनके द्वारा वह सौंकलोंको गिराता, हाथियों और बीरोंको कुचलता तथा रथों और बोडोंको इधर-उधर दाँतों और पैरोंसे बिनाह करता हुआ काल, अन्तक और बग्गे के समान विसारी देता था । शक्तसे प्रेरित उस महान् गजराजको आते और विचरते देख यादव-सेनिक भयभीत हो युद्धसे भाव चले ॥ ४३-४४ ॥

उस समय बलदेवजीके छोटे भाई बलवान् गदने गदा सेकर उस बल-सरीली गदासे उक्त गजराजके कुम्भस्तुलर वहे जोरसे आघात किया । उस आघातसे उसका कुम्भस्तुल फट गया और वह हाथी युद्धस्तुलमें पंख कटे हुए पर्वतके समान ढह गया । वह अद्भुत-सी बात हुई ॥ ४७-४८ ॥

तदनन्तर शक्तसलने ज्यों ही रोषपूर्वक गदा उठानेकी बेष्टा की, ज्यों ही गदने अपनी गदासे उसकी छातीमें चोट पहुँचायी । उस आघातसे वह हाथीसहित गिर पड़ा और मूर्छित हो गया । फिर उठकर उसने युद्धस्तुलमें दोनों हाथोंसि गदा उठायी । गद और शक्तसल दोनों इच्छ प्रकार परस्पर गदायुद करने लगे, जैसे रङ्गशालामें दो मल्ल और अंगलमें दो हाथी लड़ रहे हों । तब बलदेवके छोटे भाई बलवान् गदने अपनी दोनों भुजाओंसे उस बीरको उठा लिया और बल्पूर्वक उसे सौ योजन ऊपर उसके जगरमें फेंक दिया । उस समय यादव-सेनामें जय-जयकार होने लगी, विजयकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और सब लोग बारंबार गदकी प्रवृद्धि करने लगे ॥ ४९-५३ ॥

इस प्रकार श्रीमर्त्त-सहितामें विश्वित्सुखके अन्तर्गत नारद-बहुकाश-संवादमें 'शक्तसलका युद्ध' नामक तेलकीसार्व अन्नाद्य पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

अडितालीसवाँ अध्याय

शक्तसत्त्वका प्रशुभ्नको भेट अर्पण, प्रशुभ्नका लीलावतीपुरीके स्वयंवरमें सुन्दरीको प्राप्त करना तथा हल्लूतवर्षसे लौटकर भारत एवं द्वारकापुरीमें आना

जारचडी कहते हैं—राजन् ! अपने नगरमें गिरकर शक्तसत्त्व अस्तन्त मूर्खित हो गया । फिर उस मूर्खसे वह उदा । उठनेपर भी एक क्षणतक उसे बड़ी घबराहट रही ॥ १ ॥

तदनन्तर श्रीकृष्णकुमार प्रशुभ्नको परम्परा जानकर शक्तसत्त्व बड़ी उत्तालीके साथ अपने पाससे भेट-सामग्री लैकर यादव-सेनाके समीप गया । ऐरावतकुलमें उत्पन्न हुए लीन तूँह और चार दाँतबाले इकेत रंगके एक हजार मदवर्णी शारी, सुवर्णगिरिपर उत्पन्न हुए दो योजन विस्तृत शरीरवाले तथा दिग्गजोंके समान उन्मत्त पर्वताकार एक करोड़ हाथी, जिनके मुख दिव्य थे और जिनकी गति भी दिव्य थी, करोड़ोंकी संख्यामें उपस्थित किये गये । राजन् ! इन उद्देशके साथ सोनेके बने हुए उत्तम दिव्य रथ भी थे, जिनकी संख्या सौ अरब थी । इस हजार विमान भेटके लिये आवे गये, जो सौ-हो योजन विस्तारसे सुशोभित थे । इस लाल कामबेनु गौरँ और एक हजार पारिजात बृह अस्तुत किये गये । तदानोंमें परिषुष्ठ हुए सीपके मोती, जो पन्थपर चढ़ाकर चमकाये गये थे तथा चमेलीके इत्रसे आद्र, शिरीष-कुमुखोंसे सजित तथा हूँफके फेनकी तरह सफेद करोड़ों शायाएँ लाली गयीं, जिनपर सुन्दर तकिये भी रखले गये थे । हाथीके दाँतकी बनी हुई उनकी पाटियाँ रलोंसे जटित थीं और उनके पायोंमें भी सुवर्ण तथा रत्न जड़े गये थे । विचित्र वितान (चंदोवे) और दीवारोंपर लाले जानेवाले वज्र, करोड़ोंकी संख्यामें भेट किये गये । छूनेमें कोमल एवं चितकबरे आसन तथा विश्वर्कमाहारा रचित बड़े-बड़े तकिये दिये गये, जो मोतियोंके गुच्छों और सुवर्ण-रत्न आदिके द्वारा लचित थे । वे सभ सहस्रोंकी संख्यामें थे । हजारों परदे, करोड़ों पालकियाँ, छज्र, चंबर और दिव्य लिहालनोंके साथ करोड़ों व्यजन, जो राजलक्ष्मीके भूषण थे, प्रस्तुत किये गये । कोटि द्वेष असूत, सुधर्मा सभा, सर्वतोमद्र मण्डल, सहस्रदल कमल, हीरे, पन्ने और मोती दिये गये । कोटि भार गोमेद और नीलम दिये गये, सहस्रों भार सर्यकाल; चन्द्रकान्त और वैदूर्य मणियोंके थे । कोटि भार समन्तक मणियोंके लाये गये थे । नरेश्वर । पश्चात भारोंकी संख्या एक अरब थी । जाग्नून्द

सुवर्ण, हाटक सुवर्ण तथा सुवर्णगिरिसे प्राप्त सुखणीके भी कोटि-कोटि भार प्रस्तुत किये गये ॥ २-१६ ॥

मैथिलेश्वर । आठ लोकपालोंके आधिपत्यकी रक्षा करनेवाला शक्तसत्त्व अपना राज्य तथा देवताओंकी सम्पूर्ण निधियोंको भेटके लिये लेकर उद्वजीके साथ यादव-सेनाके पास गया और कुशलताके लिये वह अद्भुत भेट अर्पित करके उसने प्रशुभ्नको हाथ जोड़कर प्रणाम किया । शम्बरशत्रु प्रशुभ्नने संतुष्ट होकर उसे रस्तगाला अर्पित की और उस राज्यपर उसीको पुनः स्थापित कर दिया । राजन् ! सण्पुरुषोंका ऐसा ही स्वभाव होता है ॥ १७-१९ ॥

इत प्रकार जिसने प्रशुभ्नको भेट दी थी, उस शक्तसत्त्वको जीतकर वे सेनासहित आये गये । अब उनके सैनिकोंकी छावनी अबणोदा नदीके टटपर पड़ी । महामूल्य रलोंसे जटिल चंदोवे सौ योजनतक तन गये । वहाँ दिव्य पताकाएँ फहराने लगीं और वहाँकी भूमिपर विजय-ध्वजकी स्थापना हो गयी । उन ध्वजा-पताकाओंके कारण वह शिविरसमूह उत्ताल तरंगोंसे युक्त महालागरकी भाँति शोभा पाने लगा ॥ २०-२१ ॥

राजन् । इसी समय आकाशसे ऐरावतपर चढ़े हुए देवराज इन्द्र सहस्र सेनासहित वहाँ उत्तर आये । देवताओंकी दुन्दुभियाँ भी उनके साथ-साथ बजती आयीं । यह देव सम्पूर्ण यादव-वीरोंने वहे बेगसे अपने अख-शाल उठा लिये । पुनः देवराज इन्द्रको पहचानकर समस्त नरेश वहे प्रसन्न हुए । उस समय इन्द्रने भरी सभामें प्रशुभ्नसे कहा—“महाबाहु नरेश ! तुम परावर वेत्ताओंमें श्रेष्ठ हो, अतः मेरी बात सुनो ! सुवर्णगिरिके शिखरोंपर लीलावती नामसे प्रतिद एक सुन्दर पुरी है । वहाँ विद्याधरोंके राजा सुकृति राज्य करते हैं । उनकी एक सुन्दरी नामबाली कन्या है, जो सौ चन्द्रमाओंके समान रूप-आकृत्यसे सुशोभित और परम सुन्दरी है । राजन् ! उसके स्वयंवरमें समस्त लोकपाल और देवता दिव्यरूप धारण करके आये हैं; किन्तु वह राजकन्या कहती है कि ‘जिसको देखकर मैं मूर्खित हो जाऊँगी, वही मेरा पति होगा ।’ यह बात कहकर वह सुन्दर वर पानेकी इच्छा रखती है । तुम उस उत्सवमें भी अपने समस्त भाइयोंके साथ सहसा चले और देवकून्दसे मणित उस सुन्दर स्वयंवरको देखो” ॥ २२-२९ ॥

भारतजी कहते हैं—राजन् । यह सुनकर भगवान् प्रद्युम्न अपने व्युत्कृष्णी भाइयोंसहित देवताओंसे साथ सहस्र कीखतीपुरीमें गये । वहाँ स्वयंबर हो रहा था, वहाँका प्राकृण बड़ा विशाल था । जहे गये देवताओंके कारण उसकी मनोहरता बढ़ गयी थी । उस स्थानपर चन्दन, आर, कस्तूरी और केसरके द्रवका छिकाव किया गया था । मोतीकी बंदनवारों, बहुमूल्य वितानों और जामूनद तुवरणके आसनोंसे वह स्वयंबर-भवन साक्षात् दूसरे इन्द्रलोक-ना शोभा पाता था ॥ ३०-३२ ॥

नरेश्वर ! प्रद्युम्न उस स्वयंबरमें गये और लिंग जैसे किसी पर्वतके विश्वरपर बैठता है, उसी प्रकार सबके देखते-देखते एक दिव्य आसनपर विराजमान हुए । मैथिल ! वहाँ जितने प्रजापाति, मुनि, देवता, रुद्रगण, मरुद्वाण, आदित्यगण, वसुगण, अग्नि, दोनों अश्विनीकुमार, यम, वरण, सोम, कुबेर, इन्द्र, सिंह, विद्यावर, गन्धर्व, किनर तथा अन्यान्य सभी समानत एवं रत्नभरणोंसे विभूषित देव थे, उन्होंने प्रद्युम्नको आया देख अपने विवाहकी आशा छोड़ दी ॥ ३३-३६ ॥

इसी समय सुन्दरी हाथमें रत्नमाला लिये अपने रूप-स्वयंपर्यंगे रति और रम्भाको भी तिरस्कृत करती हुई सी निकली । वह वराङ्गी अङ्गना सरस्वती, लक्ष्मी तथा रूपवती शर्चकी विडम्बना करती हुई सी जान पढ़ती थी । मैथिल ! जिसे देवतकर सब और समस्त समाजद मोहको प्राप्त हो गये, वह लक्ष्मीके समान राजकुमारी सुन्दरी सब लोगोंके सामने अपने लिये योग्य वरकी इस प्रकार सोज करने लगी, मानो चपला नूतन अलभरको ढूँढ़ रही हो ॥ ३७-३८ ॥

दिव्याभ्यरथारी तथा प्रद्युम्नल कमलालके समान विशाल लोचनवाले नरलोकसुन्दर वीर प्रद्युम्नके पास पहुँचकर वह सुन्दरी विश्वाधरी भूर्णित हो गयी । फिर योद्धी ही देरमें उसे चेत हुआ । वह उठी और अनन्दविभोर होकर प्रद्युम्नके गलेमें सुन्दर माला ढालकर खड़ी रह गयी । मैथिलेश्वर ! विद्याधरोंके राजा सुकृतिने अपनी पुत्री सुन्दरीको प्रद्युम्नके हाथमें दे दिया । सब और मालालिक वादा वज उठे, जिन्होंने इस वैवाहिक मङ्गलको देवतकर देवताओंग सहन न कर सके । उन लोगोंने उस स्वयंबरकी चारों ओरसे उसी प्रकार घेर लिया, जैसे प्रचण्ड मेघोंने सूर्य-देवको आच्छादित कर लिया हो । उन देवताओंको घोषके वर्णित हो बनुष उठाये और सुदूरके महसे उद्धत हुए देख साक्षात् प्रद्युम्न हरिने भगवान् श्रीकृष्णके हिते हुए

इस प्रकार श्रीकृष्णकीहास्यमें विविधानकालके अन्तर्गत नारद-सुनुदार-संवादमें 'प्रद्युम्नका अस्त्राभ्यंग' कामक अवसरोंमें अस्त्राभ्यंग हुआ ॥ ४८ ॥

वापरलहित ऐह चनुषको हाथमें लेकर वदवोंके साथ लिहनाद किया । मिथिलेश्वर ! उनके चनुषसे लूटे हुए चमकाली बाणोंद्वारा देवताओंके अस्त्र-शस्त्र छिप-भिप हो गये, उनके कबचोंकी धबियाँ उड़ गयीं । जैसे सर्वों किरणोंसे कुहासेके बादल फट जाते हैं, उसी प्रकार के देवता दसों दिशाओंमें भाग सहे हुए ॥ ३३-४३ ॥

इस प्रकार साक्षात् भगवान् प्रद्युम्न स्वयंबर जीतकर और इलायुतलप्पदपर विजय पाकर भारतवर्षको ज्ञानेके लिये उद्धत हुए । भाइयों, यादवों, सैनिकों तथा लम्बा मन्त्रीजनोंके साथ विजय-दुन्दुभि जगाते हुए वे भारत-खण्डमें आये । अनेक देशोंको देखते हुए श्रीकृष्ण-विजयी बलवान् वीर श्रीकृष्णकुमार जमशः आनंदप्रदेशमें और द्वारकाके देशोंमें आये । प्रद्युम्नके द्वारा भेजे गये बुद्धिमानोंमें शेष साक्षात् उद्धवने राजउमामें पहुँचकर राजा उप्रसेनको तथा भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया । प्रत्येक वर्षमें क्षया-क्षया हुआ और श्रीकृष्णपर विजय करके सिली, वह सारा वृत्तान्त उद्धवजीने यथोचित रूपसे कह सुनावा ॥ ४४-४८ ॥

तब राजा उप्रसेन श्रीकृष्ण-बलदेव एवं सम्पूर्ण हृदजनोंके साथ प्रद्युम्नको लानेके लिये निकले । गीत-वादीयोंकी ज्ञनि तथा वेद-मन्त्रोंके गम्भीर घोषके साथ मोतियों, सोलों और शूलोंकी वर्षायुवक मङ्गलमाठ करते हुए लोग उनकी अगवानीके लिये आये । नरेश्वर ! एक गजराजको आगे करके सोनेके कलश, गन्धर्व, अप्सराएँ, शहू, हुन्दुभि, बेणु, गध, अक्षत, सोनेके पात्र, पूल, धूप तथा जौके अफुर साथ लिये राजा उप्रसेन प्रद्युम्नके सम्मुख आये ॥ ४९-५२ ॥

मैथिल ! श्रीकृष्णकुमारने यादव-वन्धुओंके साथ खड़ के जाकर महाराज उप्रसेनके सामने रख दिया और हाथ जोड़कर प्रणाम किया । मीन-केतन प्रद्युम्नने श्रीकृष्ण-बलदामको मस्तक छुकाकर समस्त हृदजनोंको प्रणाम करनेके अनन्दर शीघ्र जाकर श्रीगणोचार्यके चरणोंमें नमस्कार किया । राजा उप्रसेन भूरि-भूरि प्रशंसा करके, वैदिक-मन्त्रों तथा ब्राह्मणोंके लहयोगसे विधिवत् पूजन करके, प्रद्युम्नको हाथीपर विठाकर द्वारकापुरीमें गये । द्वारकामें तर्वत्र—स्वर-धरमें मङ्गल-उत्सव हुआ । नरेश्वर ! इस प्रकार मैने दुमहारी पूछी हुई सब बातें कहीं, अब और क्या मुनना चाहते हो ! ॥ ५३-५६ ॥

उनचासवाँ अध्याय

राजस्थान वहाँ शिखियों, आशाओं, राजाओं, तीर्थों, क्षेत्रों, देवगणों तथा सुहृद-सम्बन्धियोंका शुभागमन

ब्रह्मकाश्चने पूछा—विप्रवर् । आप परावर-वेत्ताओंमें
भेद हैः असः मुझे यह बताइये कि राजा उप्रसेनने कित
प्रकार यज्ञस्थ यजका विधिपूर्वक अनुष्ठान किया ॥ १ ॥

राजवृक्षिणे कहा—राजन् । तदनन्तर समस्त
वर्मामाणीमें भेद राजा उप्रसेनने भगवान् श्रीकृष्णकी
वाहायतसे कठुराज राजस्थका सम्पादन किया । यदुकुलके
आशार्थ गर्भजीसे यजनपूर्वक मुहूर्ते पूछकर भाई-बन्धुओं तथा
मुहूर्तोंको निमत्रण दिया । अत्यन्त भक्तिभावसे बुलाये जानेपर
कहा, मुनि तथा आशाण—एव लोग अपने पुत्रों और
शिष्योंके साथ द्वारकामें आये ॥ २—४ ॥

राजन् । साक्षात् वेदव्याख, शुकदेव, पराशर, मैत्रेय,
पैत॑, लुमन्तु, तुर्वासा, वैश्यायन, जैमिनि, भार्गव पछुराम,
द्वाष्टवेष, असित, अङ्गिरा, वामदेव, अश्रि, वसिष्ठ, कप्त,
विश्वामित्र, शतानन्द, भारद्वाज, गौतम, कपिल, सनकादि,
किंवद्द, पतञ्जलि, प्रोणाचार्य, कृपाचार्य, प्राकृविषयक, मुनि-
भेद शाश्विष्य तथा हृस्ते-कूषरे मुनि वहाँ शिष्योंसहित
पठाए । श्रावा, शिव, हन्म, देवगण, रुद्रगण, आदित्यगण,
महावर्ण, समस्त वसुओं, अरिनि, दोगों अश्विनीकुमार, यम,
वशस, लोक, कुर्वेर, गणेश, रिद्ध, विद्याधर, गन्धर्व तथा
किंवर आदिका शुभागमन हुआ । गन्धर्व-सुन्दरियाँ,
अप्सरायें और समस्त विद्यालिदियों वहाँ आयी । वेताल,
दानव, दैत्य, प्रह्लाद, बलि, भीषण राक्षसोंके साथ लक्ष्मपति
विभीषण तथा समस्त वानरोंके साथ वायुनन्दन हिनुमान्
पठाए । शृङ्खी और दादायाके बन्ध पश्चियोंके साथ वल्लभाज
शुक्रराज आम्बवान्दका आगमन हुआ । समस्त पक्षियोंके
साथ वल्लभान् वायुराज गरुड आये । समस्त राष्ट्रगणोंको साथ
किंव वल्लभान् नागराज वायुके पठाए । समर्प कामधेनुओंके
साथ गोकुपचारिणी पूर्णीका आगमन हुआ । समस्त मूर्तिमान्
वर्णोंके साथ भेद और हिमाल्य पठाए । गुरुओं, शूक्रों और

इस प्रकार श्रीर्म-संवितामें विश्ववित्स्वप्तके अन्तर्गत नारद-ब्रह्मकाश्चन-संवादमें ‘स्वजन-शुभागमन’

वामक उनचासवाँ आव्याय पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

पचासवाँ अध्याय

राजस्थ यजका भजलभय उत्सव; देवताओं, आशाओं तथा अतिथियोंका दान-पानसे सत्कार

राजवृक्षी बहते हैं—राजन् । अर्थसिद्धिके दारभूत
विष्टरक केषमें, जी रैष्टक पर्वत और लम्बुके दीर्घमें

स्थित है, यजका आरम्भ हुआ । उस यजमें जो कुण्ड बना,
उसका विसार पाँच योजनका था । वस्तुकुण्ड एक योजनका

और पाँच कुप्त दो कोलमें बनाये गये। वे सभी कुर्प्प
मेलाल, भर्त, विकार और वेदियोंके साथ कुन्द्र दंगों
निर्मित हुए थे। वहाँका महान् यजकामहात्म्य एक हजार हाथ
काँचा था। सुबर्णमय यजमण्डपका विस्तार पाँच बोलनका
था, जो चौंदों और बंदनवारोंसे सुशोभित था। केलेके
लाई उल्की शोभा बढ़ती थे ॥ १-४ ॥

भोज, बृंधि, अन्वक, मधु, शूरसेन तथा दद्यार्ह वंशके
शादवोंसे विरुद्ध हुए राजा उप्रसेन देवताओंसे युक्त इन्द्रकी
भाँति उस यजमण्डपमें शोभा पाते थे। जैसे परमात्मा अपनी
विभूतियोंसे शोभा प्राप्ता है, उसी प्रकार परिपूर्णतम भगवान्
यशावतार श्रीकृष्ण उस यज्ञमें अपने पुत्रों और पौत्रोंसे
सुशोभित होते थे ॥ ५-६ ॥

महान् सम्भारका संचय करके, गर्गांचार्यको गुरु
बनाकर गुरुराज उप्रसेनने क्रतुश्रेष्ठ राजसूय यजकी दीक्षा ली।
मैथिलि । उस यज्ञमें दस लाख होता, दस लाख दीक्षित
अच्छर्यु और पाँच लाख उद्घाटी थे। अग्निकुण्डमें हाथीकी
खूँडके समान मोटी धृतकी धारा गिरायी जाती थी, जिसे
खा-पीकर अग्निदेवता अजीर्ण रोगके शिकार हो गये। उन
दिनों तीनों लोकोंमें कोई भी जीव भूखे नहीं रह गये। उब
देवता सोमायान करके अजीर्णके रोगी हो गये ॥ ७-१० ॥

अपनी धर्मपली रचितमतीके साथ बलवान् यादवराज
उप्रसेनने पिण्डारक तीर्थमें यजका अवधृथ-स्नान किया। वे
व्यास आदि मुनीश्वरोंके साथ वेद-मन्त्रोंके द्वारा विधिपूर्वक
नहाये। जैसे दक्षिणाते यजकी शोभा होती है, उसी तरह रानी
रचितमतीके साथ यजा उप्रसेनकी शोभा हुई। देवताओं
तथा मनुष्योंकी कुन्द्रमित्यां जलने लगीं और देवता उप्रसेनके
छार पूल बरसाने लगे। सोनेके हारसे विभूतिनीदहलाल
हाथी उप्रसेनने दान किये। सौ अरब घोड़े उन्होंने यजानात्में
दक्षिणाके रूपमें दिये। बहुमूल्य हरों और बलोंके साथ
करोड़ों नवरत्न मुनिवर गर्गांचार्यको भेट किये। साथ ही

इस प्रकार शीर्ण-संहितामें विश्वजित्यस्तकके अन्तर्गत नारद-बहुलास-संबादमें उप्रसेनके महान् अम्बुदयके प्रसादमें
‘राजसूय-यज्ञोत्तमका वर्णन’ वामक यजास्तानां अवाय पूरा हुआ ॥ ५० ॥

विश्वजित्यस्तक समूह

* पूर्णः परेषः अस्तेषः भ्रुः कुलुः गो वः पुराणः पुराणः ।

मूलविति वे तत्त्व कार्य विविता कुर्प्पिति तीर्थ लकुलं नरास्ते ॥

कलेग यजत्व इरि: परेष्वी भर्त विदेहेषु त्रुष्णितारपद ।

वोऽमृत्युज्युर्मृत्यो वदोः कुर्वे तस्मै नवोऽनन्तराण्य शृङ्गते ॥

(गो०, विश्वजित्य० ५० । २४-२५)

श्रीबलभद्रस्थान वर्णनः

श्रीबलभद्रस्थान

पहला अध्याय

श्रीबलभद्रजीके अवतारका कारण

राजा बहुलाक्ष्मने कहा—ब्रह्मन् । आपके भीमुदासे मैंने अमृतकी अपेक्षा भी परम मधुर, मङ्गलस्यमय, परम अद्भुत विश्ववित्तस्थानका अवण किया । महात्मा श्रीकृष्ण परिपूर्णतम भगवान् हैं, उनकी सोलह हजार परिणयोंमेंसे प्रथेष्ठानके दह-दह पुञ्च हुए । मुनिवर । उनके फिर करोड़ों पुञ्च और पीछे उत्तर दुए । पृथ्वीके रजकण गिने जा सकते हैं, किंतु कोई विद्वान् कवि भी श्रीकृष्णके बंशजोंकी गणना करनेमें समर्थ नहीं है । महात्मा बलरामजीकी देवती पाली थीं । उनके एक मी पुञ्च नहीं हुआ । कृपापूर्वक इसका रहस्य क्या है ॥ १—४ ॥

श्रीबलारदजी कहने लगे—तुम्हारा प्रश्न बहुत सुन्दर है । भगवान् अन्युतके बड़े भाई भगवान् संकरण कामपाल हैं । उन बलरामजीकी कथा मैं तुम्हारे सामने भलीभाँति बर्णन करूँगा । दुर्योधनके गुरु प्राहृष्टियाक नामक मुनि बोगियोंके और मुनियोंके अधीक्षकर थे । वे एक दिन हस्तिनापुर पधारे । दुर्योधनने महान् आदरके साथ उनका विविध उपचारोंके द्वारा सम्पूर्ण प्रकारसे पूजन किया । फिर वे अहम्गृह्यवान् तिंहारनपर विराजित हुए । दुर्योधन उनकी अनन्ता और प्रदक्षिणा करके, हाथ जोड़कर उनके सामने बैठ गया । फिर अपने मनके संदेशोंको स्वरण करके उनसे कहा—‘भगवान् संकरण साक्षात् बलभद्रजीका इस भूमण्डलमें किस कारणसे और किनकी आर्थनामे शुभागमन हुआ । उन्होंने मेरे नगरको उल्टाकर टेढ़ा कर दिया था । वे मेरे गुरु हैं । मुझको उन्होंने ही गदायुद सिखाया था । आप उनके प्रभावका विस्तारपूर्वक बर्णन कीजिये’ ॥ ५—९ ॥

प्राइविष्टिक सुनिते कहा—कुरुसत्तम सुवराह । याहवेष्ट बलभद्रजीका प्रभाव मुनो । उनके मुननेसे पार्थोंका सम्पूर्णतया बिनाश हो जाता है । इसी हापरके अन्तकी बात है, राजाओंके कर्पटे करोड़ों-करोड़ों दैत्योंनाओंने उत्तर द्वे कर पृथ्वीको स्थानक भारते देखा दिया । तब पृथ्वीने यीकां स्वप्न दरण करके स्वप्नमूल ब्रह्माजीकी शरण ली । दैत्योंके द्वारा देवताओंकी शरण ली ।

सम्पूर्ण देवताओंके और शंकरजीके साथ श्रीवैकुण्ठनाथकी आगे किया और भगवान् वामनदेवके बायें पैरके औंगुलेके नससे कटे हुए ऊर्ज्व ब्रह्माप्पकटाहके छिद्रके द्वारा वे बाहर निकले । वहाँ ब्रह्माजी देवताओंसहित ब्रह्माद्रव (श्रीब्रह्माजी) के समीप उपस्थित हुए और उसमें करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्डोंको छुटकते देखा । तदनन्तर वे विराजा नदीके तटपर पहुँचे । इसके बाद देवताओंके साथ ब्रह्माने अनन्तकोटि सूर्योंकी घ्योतियोंके समान तेजोमण्डलके दर्शन किये । उन्होंने ध्यान और प्रणाम किया । वहाँ देवताओंसहित ब्रह्माजीको भगवान् संकरणके दर्शन हुए । उनके हजार मुख थे और उनका श्रीविग्रह अनन्त शुणोंसे लक्षित था । वे अनन्त भगवान् कुण्डलकामोंविराजित थे । उन अनन्तकी गोदमें उन्हें बृन्दावन, यमुना नदी, गोवर्धन गिरि, कुञ्ज-निकुञ्ज, लता-बेलोंकी कतारें, भाँति-भाँतिके शूक्ष, गोपाल, गोपी और गोकुलसे परिपूर्ण सर्वलोके द्वारा नमस्कृत परमसुन्दर गोलोकधामकी उपलब्धि हुई और वहाँ निकुञ्जोदयर स्थायं भगवान्की अनुभावि प्राप्त करके वे अन्तःपुरमें पहुँचे । वहाँ उस निजनिकुञ्जमें साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र विराजित थे, जो अनन्त ब्रह्माण्डोंके स्वामी हैं । उन राधापति भगवान्की स्थामसुन्दर कान्ति है । वे पीताम्बर पहने हुए हैं । उनके गलेमें बनमाला सुशोभित है और वे बंशी धारण किये हुए हैं । ज्वनि करते हुए स्वर्णके बूपुर, किञ्चित्पी, कड़े, बाजूबंद, हार, उज्ज्वल आमार्पा कौस्तुभ्याणि तथा औंगूठियोंसे अलंकृत हैं । करोड़ों-करोड़ों बाल-सूर्योंके समान शुतिवाले किरीट और कुण्डल उन्हें सुशोभित कर रहे हैं । उनका मुख-कमल अलकावस्थियोंसे समलंकृत है । ऐसे कमल-ददन भगवान्को ब्रह्मा आदि देवताओंनि नमस्कार किया और पृथ्वीके भारका सभा इत्यान्त उन्हें कह मुनाया । भगवान् श्रीकृष्णने उनकी सब यातोंको मुन-जानकर अपने निज जन समस्त देवताओंको पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये यथायोग्य आदेश दिया और सहस्र मुखवाले भगवान्

अनन्तर के लोकहने करो—हो अवस्था । तुम पहले कुमुदशब्दी होयो । तदनन्तर मैं देखती हूँ तुमके लोकों अवस्था
पर्याप्ति देखती है गर्भमें आकर फिर रोहिणीके उद्धर से प्रकट होऊँगा ॥ १०-१६ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण-सहितामें श्रीकलभद्रस्त्रके अन्तर्गत श्रीविष्णुक मुनि और तुम्हेंमनके संवादमें
‘श्रीकलभद्रके अवतारका कारण’ नामक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

श्रीकलभद्रजीके अवतारकी तैयारी

प्राक्षिपिक मुनिने कहा——इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके कहनेपर हजार मुखवाले अनन्त जानेके लिये तैयार होकर अपनी सभामें आकर विराजित हुए । उसी समय सिद्ध, चारण और गन्धर्वोंने आकर अवस्था विनीत भावसे सिर छुकाकर उन्हें सब ओरसे नमस्कार किया । इसके बाद तालके चिह्नसे सुशोभित ज्वजाशाले दिव्य रथमें घोड़े जोतकर सुमति नामक सारथि उनके सम्मुख उपस्थित हुआ । शशुकी सेनाका विदारण करनेवाला ‘मुखल’, देवतोंका कच्चूमर निकालनेवाला ‘हल’ और ब्रह्मण्य नामक ‘कवच’ भी उ.के सामने आकर उपस्थित हो गया । तदनन्तर वहाँ सबके देखते-देखते बलभद्रजीकी सभामें श्रीशेषजी रमावैकुण्ठसे पधारे । उनके एक सहस्र फलोंपर मुकुट सुशोभित थे । सिद्ध-चारणगण तथा पाणिनि और पतञ्जलि आदि मुनि उनकी स्तुति कर रहे थे । ऐसे वे शेषजी आकर स्तुति करके संकरणके श्रीविष्णुमें विलीन हो गये । उसके बाद अवित्तवैकुण्ठसे लहसुवदन शेषजीका वहाँ शुभागमन हुआ । वे अजैकपाद, अहिरुञ्ज्य, बहुरूप, महद आदि रुद्रोंसे पिरे हुए थे । भयंकर प्रेत और विनायक आदि उनके चारों ओर फैले थे । बलमाम-सभामें आकर शेषनामने उनका साधन किया और सबन करनेके पश्चात् वे उन्हींके शरीरमें विलीन हो गये । तदनन्तर श्वेतदीपसे कुमुद और कुमुदाश आदि प्रधान पार्शदोंके द्वारा देखित, हजार फलोंके ऊपर विराजमान मुकुटोंसे सुशोभित, नीलाम्बरधारी, श्वेतपर्वतके समान प्रभावाले, नील कुन्तलकी कान्तिसे मण्डित, भयंकर रूपशाले शेषजी पधारे और वे भी सबके देखते-देखते अनन्तके देहमें विलीन हो गये । फिर उसी समय हजार-वर्षसे शेषजी आये । भगवती दार्ढीकी दासी करोड़ों लियोंके मूल उनकी सेवा कर रहे थे । मुकुट-मण्डित हजार मुखीयाके शेषजी चमकमाते हुए किरीट, कुण्डल और बाल्हाकरे शुशोभित थे । सभामें आकर वे भी भगवान् अनन्तके

श्रीविष्णुमें प्रवेश कर गये । तदनन्तर पातालके वर्तीत हजार योजन नीचेसे शेषजी आये । वे हजार मुखवाले शेषजी ‘भगवान् की लामसी’ कलासे समझ ये । उन्होंने अनन्त सूर्योंके समान प्रकाशमान किरीट बारण कर रखा था । व्यास, पराशर, रुक्म, सनन्दन, सनकुमार, नारद, सांख्यायन, पुरुष्य, बृहस्पति और मैत्रेय आदि महर्षियोंकी संनिधिसे उनकी अपार शोभा हो रही थी । बासुकि, महाशङ्क, इवेत, धनंजय, धृतराष्ट्र, कुरुक्ष, कालिय, तक्षक, कम्बल, अश्वतर और देवदत्तादि नागराज उन्हें बँबर हुए रहे थे । कस्तुरी, अगर, केलर और चन्दनके द्वारा अनुष्ठित बहुत-सी नागकन्याएँ उनकी सेवा कर रही थीं । सिद्ध, चारण, गन्धर्व और विशाखरोंके द्वारा उनका यशोगमन हो रहा था । हाटकेश्वर, विपुरुष, कल, कालकेय, कलि और निवातकवचादि देवत उनके अनुयायी होकर आगे-आगे चल रहे थे । ग्यारह बड़ व्यूहाकारसे उनके आगे-आगे और कस्तूरीमृग, कामधेनु तथा बहुण उनके पीछे चल रहे थे । बीणा, मृदुङ्ग, ताल और तुनुभिके शब्द हो रहे थे । वे कणिधर गजराजके समान तीव्र गतिसे वहाँ पधारे । उनके एक कलपर यह सारा भूमण्डल चरवाके दानेकी तरह प्रतीत हो रहा था । ऐसे शेषजी वहाँ आकर भगवान् महा अनन्तके श्रीविष्णुमें प्रविष्ट हो गये ॥ १-८ ॥

सभाके सम्पूर्ण पार्शदोंने इस विचित्र श्रीलको देखा और वे उन्हें परिणीतम भगवान् समझकर सबसा अवनत और आश्चर्यचकित हो गये । तदनन्तर अनन्तमुख महान्, अनन्त मगान्, संकरणने सिद्धपार्शदोंसे कहा—‘भूमिका भार हरण करनेके लिये मैं भूमण्डलपर चलूँगा । इसलिये तुमलोग आकर यादवकुलमें जन्म प्राप्त करो ।’ तदनन्तर वे तुमसे सारथिसे बोले—‘तुम यहे भगवान् और शूलीर हो । तुम यहाँ ही रहो । किसी प्रकारका शोक न करो । लिए उम्म शुद्धाभिमत्ती होकर मैं तुम्हें यह करूँगा,

उमी समय तास्चिहित दिव्य रथको लेकर तुम मेरे समीप आ जाना । हे इल और मुसल ! मैं जब-जब तुम्हारा सरण कर्ने, तब-तब तुम बैरे जानने प्रकट हो जाना । कबन । तुम भी बैरे ही प्रकट होना । हे पाणिनि आदि, व्यास आदि तथा कुमुद आदि मुनियो ! न्यारह द्वो ! हे कोटि-कोटि द्वो ! शिरिजापति श्रीशंकरजी ! गन्धधनो ! वासुकि आदि नागराजो ! निवातकबचादि देवो ! हे वरण और कामधेनु ! मैं भूमण्डलपर भारतवर्षमें यदुकुलमें अवतार देंगा । तुम सब वहाँ सदा-सर्वदा मेरा दर्शन करना' ॥ १९-२४ ॥

प्राङ्गिष्ठाक मुनि कहने लगे—इस प्रकार आशा पाकर वे सभी अपने-अपने स्थानोंको चले गये । उनके चले आनेके अनन्तर भगवान् अनन्तने नागकन्याओंके यूथसे कहा—‘मैं तुम्हारा अभिग्राम जानता हूँ, तुम सभी तपस्याके द्वारा गोपोंके घर जन्म लेकर मेरा दर्शन करना । किसी समय कालिन्दीके तटपर मनोहर रासमण्डलमें तुम्हारे

इस प्रकार श्रीर्ग-सहितमें श्रीबहुभद्रसुप्तके अन्तर्गत श्रीप्राङ्गिष्ठाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें
‘बहुभद्रजीके अवतारकी तैयारी’ नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

ज्योतिष्मतीका उपाख्यान

प्राङ्गिष्ठाक मुनिने कहा—तदनन्तर करोड़ों शारदीय चन्द्रमाओंकी कान्तिवाली स्वयं नागलक्ष्मी महान् रथपर सवार होकर वहाँ पधारी । करोड़ों सखियों उनकी शोभा बढ़ा रही थी । उन्होंने आकर अपने स्वामी महान् अनन्त भगवान् संकर्षणसे कहा—‘भगवन् ! मैं भी आपके साथ ही भूमण्डलपर चलूँगा । आपके वियोगकी व्यथा मुझे इतना व्याकुल कर दैगी कि मैं अपने प्राणोंको नहीं रख सकूँगी ।’ नागलक्ष्मीका गला भर आया था । भगवान् अनन्तने, जो समस्त जगत्के कारणके भी कारण हैं, भक्तोंका दृश्य-निवारण करना ही जिनका स्वभाव है और जिनका श्रीविग्रह देवतावतके समान दृश्य, सर्वरूप है, अपनी दिव्यताकी यह दशा देखकर कहा—‘हे रमेश ! तुम शोक मत करो । पृथ्वीपर भाकर देवतीकी देहमें विलीन हो जाओ । फिर मेरी द्वेषमें जपालिल हो जाओशी !’ यह सुनकर नागलक्ष्मी बोली—‘जिसकी दीनहै जिसकी जल है और जहाँ जाती है—आप

साथ रात करके मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा ।’ तदनन्तर निवातकबचोंके राजा कहिने हाथ लोडकर प्रभुओंचरण कमलोंमें पुष्पाञ्जलि अर्पण की और भगवान्के चरणोंमें मस्तक टेककर कहा—‘भगवन् ! मुझे आशा दीजिये, मेरे लिये क्या काम होगा ? आप जहाँ पधारेंगे, वहाँ ही मैं भी चलूँगा । पिताजी ! आपके वियोगमें मुझे महान् दृश्य होगा; आप भक्तवत्सल हैं, अतएव मुझे साथ ले जालिये ।’ इस प्रकार प्रार्थना सुनकर भगवान् अनन्तने प्रसन्न हो अपने भक्त कलिराजसे कहा—‘तुम मेरे साथ मुख्यपूर्वक भारतवर्षमें चलो । तुम वहाँ कौशकुलमें धूतराष्ट्रके पुच्छ दुर्योधनके नाममें विस्थात चक्रवर्ती राजा बनो । मैं तुम्हारी सहायता करूँगा, तुम्हें गदायुद्ध सिखाऊँगा ।’ इस प्रकार कहनेपर उन्हें नमस्कार करके राजा कहि अपने स्थानपर चला गया । उसी कहि तुमने दुर्योधनके रूपमें जन्म लिया है । भगवान् विष्णुकी मायासे दूसरों अपने स्वरूपकी स्वृति नहीं है ॥ १५-२० ॥

विस्तारसे मुझे बताइये ।’ यह सुनकर भगवान् अनन्तने मुस्कराते हुए अपनी प्रियासे कहा—॥ १—५ ॥

‘आदि सुषिकी बात है । कहूँके गर्भसे कहयपजीके पुत्र-रूपमें मैं उत्पन्न हुआ था । भगवान् श्रीकृष्णकी आङ्गोचे मैंने अखण्ड भूमण्डलको कमण्डलके समान अपने एक फलपर धारण कर लिया और सब लोकोंसे नीचेके लोकमें जाकर मैं विराजित हो गया । मेरे इस प्रकार वहाँ स्थित होनेपर चमुच्च-के पुच्छ अतिवल चाकुल नामक मरु सप्तद्वीपमध्य अस्त्रज्ञ पृथ्वीमण्डलके सर्वगुणतम्पञ्च समाद् दुष्प, चहे-बहे मण्ड-लेश्वर राजा उनके चरणकमलोंपर अपने मस्तक भिसा करते थे । इन्द्रादि देवतावत भी उनका धासन मानते थे । प्रजाण अनुष्माले के चाकुप मनु शशुध्योंके समस्त वस्त्र-गर्वको चूर्ण करके स्थित थे । उन चाकुप मनुके कुत्स्तादि अनेक पुच्छ हुए । तदनन्तर मनुने यह किया और उनके कहकुलसे ज्योतिष्मती नामकी एक कल्पा उत्पन्न हुई । एक दिन चाकुप

मुझे स्मृतिकथा अपनी उत्तर कम्बासे पूछ—‘बताओ, तुम कैसा वर चाहती हो ?’ तब कथाने उत्तर दिया कि ‘जो सबसे अधिक बलवान् हूँ, वे ही मेरे स्वामी बनें ।’ यह सुनकर राजा ने इन्द्रको सबसे अधिक बलवान्, समरकर बुलाया । वज्रधारी इन्द्रके सामने आनेपर राजा ने आदरपूर्वक उन्हें आसनार बैठाया और कहा—‘आपकी अपेक्षा कोई और अधिक बलवान् है कि नहीं, यह आप सत्य-सत्य बताइये । नहीं तो स्मृति कहती है—पूज्यी देवीने कहा है कि ‘सत्यसे बदकर कोई धर्म नहीं है; मैं तब कुछ सहन कर सकती हूँ, परंतु मिथ्यावादी मनुष्यका भार मुझमे नहीं सहा जाता ॥’ । इन्द्रने कहा—‘मैं बलवान् नहीं हूँ । बायु देवता मुझसे अधिक बलवान् हैं । मैं उन्हींकी सहायतारे कार्य किया करता हूँ ।’ यों कहकर इन्द्र चले गये । तब राजा ने बायुका आवाहन किया और उनसे पूछा—‘सच-सच बताइये, आपसे भी बदकर कोई बलवान् है ?’ बायु बोले—‘पर्वत मुझसे बलवान् हैं; क्योंकि मेरा वैग उन्हें उत्ताड़ नहीं सकता ।’ यह कहकर बायु चले गये । तब राजा ने पर्वतोंको बुलाया और कहा—‘सच बताइये, भूमण्डलमें आपसे अधिक बलवान् कौन है ?’ पर्वतोंने उत्तर दिया—‘इमलोगोंको अपने ऊपर धारण करनेके कारण भूमण्डल इसमें अधिक बलवान् है ।’ पर्वत इतना कहकर चले गये । तब राजा ने भूमण्डलको बुलाकर पूछा—‘सत्य सत्य बताओ, तुमसे भी अधिक कोई शक्ति-सम्पन्न है या नहीं ?’ ॥ ६—१४ ॥

यह सुनकर भूमण्डलने कहा—‘मुझसे अधिक बलवान् भगवान् संकर्षण हैं ।’ वे निष्ठ अनन्त, अनन्त गुणोंके समुद्र

इस प्रकार श्रीगण-संहितामें श्रीबलभद्रजलके अन्तर्गत श्रीप्राह्लदिपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें
‘ज्योतिष्मतीका उपासनात्’ नामक तीसरा अस्त्र पूरा हुआ ॥ ३ ॥

बौद्ध अध्याय

देवतीका उपासनान

श्रीमहामन्त्रने कहा—‘तदनन्तर देवकों चन्द्रमाओंके समान कानितवाली, तपस्यामें संल्या, नवयोगना, सुन्दरी ज्योतिष्मतीपर इन्द्र, यम, कुबेर, अग्नि, वहण, सूर्य, चन्द्रमा, महाल, तुष्णि, शृहस्ति, शुक्र और शनैश्चकी हड्डि पही । उल्लके रूपकी देखकर उनके अंदर उसे ग्रास

हैं । वे आदिदेव हैं, बायुदेवस्य हैं, उनके इत्यार मुख हैं । उनका विद्युत गजराजके समान विद्याल है, वे सौम्यके समान उद्धरण प्रभावाल हैं, करोदों सूर्योंके समान उनकी अद्वितीय है । वे सुन्दरतामें करोदों कामदेवोंके गर्वको चूर्ण करतेवाले हैं । कमल-पत्रके समान उनके सुन्दर नेत्र हैं । वे विष्णु निर्मल कमल-कर्णिकाओंकी मालासे सुदोभित हैं, जिनके परिमलका पान करनेके लिये भ्रमरोंके गूढ़ गुंजार करते रहते हैं । सिद्ध, चारण, गन्धर्व और श्रेष्ठ विद्याधरोंके द्वारा जिनका यशोगान होता रहता है; देवता, दानव, सर्प और मुनिगण जिनका सदा आराधन करते हैं और जो सबसे ऊपर विराजमान हैं; जिनके एक मस्तकपर पर्वत, नदी, समुद्र, बन और करोदों-करोदों प्राणियोंसे अलंकृत अखण्ड भूमण्डल दिखायी देता है और तीनों लोकोंमें जिनका नाम-कीर्तन करनेसे शिलोकीका वध करनेवाला भी कैवल्य-मोक्षको प्राप्त करता है—ऐसे प्रभावसम्पन्न, समस्त कारणोंके कारण, सबके ईश्वर और सबसे अधिक शक्तिशाली भगवान् संकर्षण हैं । वे रसातलके मूलभागमें विराजमान हैं । उनसे बदकर दूसरा कोई नहीं है’ ॥ १५—१७ ॥

महामन्त्रने कहा—‘इह प्रकार कहकर भूमण्डलके चले जानेपर मेरे माधुर्य और प्रभावको जानकर ज्योतिष्मतीने पिता की आशा ली और मुझे प्राप्त करनेके लिये विन्ध्याचल पर्वतपर तप करने लगी गयी । उसने लाल बर्णोंतक वहाँ तपस्या की । वह गर्भीके दिनोंमें पञ्चामिके दीप्तमें बैठकर तप करती, वर्षमें निरन्तर जल-धाराको सहन करती और सर्दीके दिनोंमें कण्ठपर्यन्त ठंडे जलमें छूटी रहती । वह तपस्याके कालमें नीचे जमीनपर ही सोया करती ॥ १८-१९ ॥

* यह तपस्या फैले रखे हुए हैं देखा र भूमिका । उन्हें सौम्यलं सम्बोधित करें भूमिकापर भरव ॥ (गण०, शैवमन्त्र० १ । ११)

लग्ने अक्षर कहो ॥ यह सुनकर ज्योतिष्मती बोली कि “अब आपको मासान् अनन्त मेरे साथी हो, मैं हरीसिंहे तप कर रही हूँ ॥” ज्योतिष्मतीकी यह बात सुनकर इन्द्रादि देवता इस पढ़े और अद्ग-अलग अपनी बात कहनेको तैयार हो गये । उनमें सबसे पहले इन्होंने बोले ॥ १-२ ॥

इन्द्रने कहा—उपराजको स्वामी बनानेके लिये तुम अर्थ ही तप कर रही हो । मैं देवताओंका याजा हूँ । मैंने सौ अश्वमेष यज्ञ किये हैं और मैं स्वयं दुष्टारे सामने उपस्थित हूँ । तुम मुझे वरण कर लो ॥ ३ ॥

यमराज बोले—मैं सारे जगत्के प्राणियोंका दण्ड-विषान करनेवाल यमराज हूँ । तुम मुझे वरण कर लो और पितृलोकमें मेरी सबसे श्रेष्ठ पत्नी होकर रहो ॥ ४ ॥

कुबेरने कहा—वरानने । मैं सम्पूर्ण धनका स्वामी हूँ । तुम मुझे राजाभिराज समझो और संकरणके प्रति ग्रीष्मि छोड़कर दीप्र मुझे पतिष्ठप्तमें वरण कर लो ॥ ५ ॥

अग्निदेव बोले—विश्वाल्लोचने । मैं सम्पूर्ण यज्ञोंमें प्रतिष्ठित, समस्त देवताओंका मुखरूप हूँ । अन्य सभीके प्रति बाहनाका स्थाग करके तुम मुझे भजो ॥ ६ ॥

बहुजने कहा—भासिनी । मैं अल्परोक्तका स्वामी एवं औकात हूँ । मेरे हाथमें सदा पाश रहता है । सातों समुद्रोंका देवत्य मेरा ही वैभव है । यह समरकर तुम मुझे पतिष्ठप्तमें वरण करो ॥ ७ ॥

सूर्योदयता बोले—हे चाकुवालमजे ! मैं जगत्का नेत्र हूँ । मेरी प्रचण्ड किरणें सर्वं व्याप्त रहती हैं । अतएव पातालमें रहनेवाले अनन्तका स्थाग करके तुम स्वर्गके अधूषणस्य मुहको वरण करो ॥ ८ ॥

चन्द्रमाने कहा—मैं ओषधियोंका अधीश्वर, नक्षत्रोंका राजा, अमृतकी खान एवं ब्राह्मणश्रेष्ठ हूँ और कामिनियोंको बल प्रदान करनेवाल हूँ । हे गजगमिनी ! तुम मेरी उपासना करो ॥ ९ ॥

महाक बोले—यह पृथ्वी मेरी माता है और साकात् उपराजन भगवान् भेरे पिता हैं । मेरा नाम महाक है । हे कस्याणी ! संधरके विपुल कस्याणकी कामना करनेवाली तुम मुझे अपना पति बनाओ ॥ १० ॥

इन्द्रने कहा—मैं ब्रह्मिश्वर, शरवीर और कामिनियों-

के रूपको बढ़ानेवाला हुध हूँ । तुम सब देवताओंका परिषद्वारा करके मेरे साथ आनन्दका अनुभव करो ॥ ११ ॥

शृहस्पति बोले—मैं देवताओंका आचार्य, बुद्धिमान्, वाणीका स्वामी साकात् शृहस्पति हूँ । हे श्रमे ! यह समरकर तुम मेरी उपासना करो ॥ १२ ॥

शुक्रने कहा—मैं दैत्योंका गुह, शृणुके बंधमें उत्पन्न साकात् कवि हूँ । महाप्रादे । तुम अपने कल्याणकी बात सोचकर मेरी भासिनी बन जाओ ॥ १३ ॥

शनि बोले—कल्याणी ! मैं सबसे अधिक बलवान् हूँ । देवताओंके ऊपर भी मेरा प्रभाव है । अपनी दृष्टिसे सारे संसारको भस्त्र कर ढालेकी मुखमें शक्ति है । अतएव आरी निन्ताओंका स्थाग करके तुम मुझे पतिष्ठप्तमें वरण कर लो ॥ १४ ॥

भगवान् महामन्त्रने कहा—इन सबकी बात सुनते ही ज्योतिष्मतीके नेत्र लाल हो गये, उनका अधर काँपने लगा और भौंहे टेढ़ी हो गयी । क्रोधकी आग भड़क उठी । फिर उन्होंने मेरा स्वरण किया और अनन्त क्रोधके आवश्यमें आ गयी । ज्योतिष्मतीके क्रोधसे ब्रह्मलोकसे लेकर पाताल एवं भूमण्डलस्थित सारा ब्रह्मण्ड काँप उठा । सब और महान् भय छा गया ॥ १५-१६ ॥

यह देखते ही शापके भयसे काँपते हुए इन्द्रादि देवताओंने सब दिवाओंसे पूजनकी सामग्री ली और ज्योतिष्मतीके चरण-कमलोंपर गिरकर हे बच्चाओ ! बच्चाओ ! पुकारने लगे । इन्द्रादि देवताओंके द्वारा इस प्रकार शान्त करनेका प्रयत्न करनेपर भी ज्योतिष्मतीने उन्हें पृथक्-पृथक् शाप दे दिया ॥ १७ ॥

ज्योतिष्मती बोली—शनि ! तू हुध है, मुझे छलनेके लिये यहाँ आया है । तू अभी पहुँचे जा । तेरी नीची इहि हो जाय । तू अस्पन्त काल-कल्पटा और दुबल-पतल हो जा, निन्दनीय काके उड़द साथ कर और काले तिलका तेल रिखा कर । शुक ! तू अभी एक बौद्धसे काना हो जा । शृहस्पति ! तू ज्ञीभाषको प्राप्त हो जा । हुध ! तेरा बार (दिन) निष्कल हो जाय । शुश्रावरको किसीके कुछ कहने और कहीं याजा करनेपर उफलता नहीं मिलेगी । महाक ! तू बंदरके उमान् मुख्यालय हो जा ।

भगवान् । तेरे यज्ञस्थान का देश हो जाय । इन्द्र ! तेरे हाँस हृष्ट आयें । अदल । तू लक्ष्मीर रोगका विकार हो जा । अग्नि ! तू सब कुछ सामेवाल कर जा । तुम्हेर ! तेरा पुष्पक विमान छिन जाय । अमराज । बलवान् राजस युद्धमें तेरा मान-भङ्ग करें और तू शक्तिशाली राक्षसोंसे कुदमें हार जा । देवाखम इन्द्र । तू मुझे इरनेके लिये आपा है और अपने मुँहसे तूने परमामाकी निन्दा की है । स्वर्गमें किसी राजाके द्वारा तेरी पक्षी शची हर ली जायगी, वह स्वर्ण-सुखाका भोग करेगा और तू वहाँसे भगा दिया जायगा । और स्वर्गके राजा ! किसी राक्षसके द्वारा युद्धमें तेरी हार होगी । तू पाशमें बाँधा जायगा और वे लङ्घापुरीमें ले आकर तुम्हे अन्धकारपूर्ण कारणारमें डाल देंगे ॥ १८-२३ ॥

भगवान्, महानन्द बोले— तदनन्तर ज्योतिष्मतीके द्वारा शापको प्राप्तकर देवताओंके बीच इन्द्र कुपित हो गये और इन्द्रने भी ज्योतिष्मतीको शाप दे दिया—‘हे क्रोधकारिणी ! संकर्षणको पतिके रूपमें प्राप्त करके भी इस जन्म अथवा दूसरे जन्ममें अथवा कभी तुम्हारे घरमें पुत्रोस्सब नहीं होगा ।’ इन्द्र ज्योतिष्मतीके तेजसे बड़े तिरस्कृत हो गये थे । उन्होंने इस प्रकार कहकर सारे देवताओंके साथ स्वर्ण-की यात्रा की । ज्योतिष्मती फिर तपस्यामें लग गयी ॥ २४ ॥

तदनन्तर सारे अग्नतके कारणभूत ब्रह्माजीकी इहि ज्योतिष्मतीके तपकी ओर गयी और वे हँसपर सबार होकर ब्रह्मादिव ब्रह्मण और ब्राह्मी आदि शक्तियोंके साथ अपने भवनसे बहाँ पश्चारे । आकाशमें ही स्थित हुए ब्रह्माने उसको ‘सम्बोधन करके कहा—‘ज्योतिष्मती, चाक्षुष मनुकी पुत्री ! तुम्हारा तप सफल हो गया । इस तपमें तुम सिद्ध हो गयी । मैं तुमपर अखन्त प्रसन्न हूँ । तुम घर माँगो’ ॥ २५-२६ ॥

ब्रह्माजीकी बात सुनकर ज्योतिष्मती कण्ठपर्यन्त जल्से बाहर निकली । उसने ब्रह्माजीको प्रणाम किया, उसका स्वावर किया और यह हाथ जोड़कर कहने लगी—‘भगवान् ! यदि निष्प्रथ ही आप मुक्तपर प्रसन्न हैं तो इजार मुखदाले भगवान्, संकर्षण मेरे पति हैं, यह मुझे घर दीजिये ।’ देवशेष ब्रह्माजीने यह सुनकर उत्तरमें कहा—‘पुत्री ! तुम्हारा मनोरथ दुर्लभ है तथापि मैं उसे पूर्ण करूँगा । आजसे ही देवस्थ मनवन्तर प्राप्तम् हुआ है । इसकी सत्तार्हत चतुर्युगी बीत आनेसर भगवान्, संकर्षण तुम्हारे पति होंगे ।’ यह

सुनकर ज्योतिष्मतीने ब्रह्माजीसे कहा—‘स्वेच्छा यत्कर्त् । यह तो बहा लंबा समय है । आप सब कुछ करतेरै सत्त्वर्थ हैं, अतएव मेरा मनोरथ शीघ्र पूर्ण कीजिये । नहीं तो जैसे मैंने देवताओंको शाप दिया है, वैसे ही आपको भी शाप दे दूँगी ।’

ज्योतिष्मतीके इस प्रकार कहनेपर ब्रह्माजी शापके भयसे हर गये और क्षणभर विचार करनेके बाद बोले—‘शाकुमारी ! तुम आनंद, देशके राजा रेवतके यहाँ कल्पा बनो । वे राजा कुशलस्त्रीमें वर्तमान हैं । किर इसी अस्त्रमें तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो जायगा । किसी कारणसे सत्तार्हत चतुर्युगीका समय एक घड़ीके समान बीत जायगा ।’ ज्योतिष्मतीको इस प्रकार वर देकर ब्रह्माजी वही अन्तर्धान हो गये ॥ २७-३० ॥

तदनन्तर ज्योतिष्मतीने आनंद देशमें कुशलस्त्रीके राजा रेवतकी पक्षीसे जन्म धारण किया । उस समय उसका नाम रेवती रक्खा गया । वह रूप, गुण और उदासतासे सुशोभित, नूतन कमलके समान नेत्रबाली रेवती विवाहके योग्य हो गयी ॥ ३१ ॥

एक दिन राजा रेवत अन्तःपुरमें अपनी भार्याके साथ बैठे थे । उन्होंने स्नेहबद्ध कल्याणे कहा—‘तुम कौसा वर चाहती हो, यताओ ।’ यह सुनकर उसी समय रेवतीने कहा—‘जो सबमें बलवान् हैं, वही मेरे पति हों ॥ ३२ ॥

यह सुनकर राजा रेवत कल्याणोंलेकर, अपनी भार्याके साथ दीर्घायु बलवान् वरकी खोजके लिये रथपर सबार हो सभी लोकोंको लैंचते हुए ब्रह्मलोकको गये । वहाँ घड़ीभर ठहरे । इतनेमें ही पृथ्वीलोकके सत्तार्हत चतुर्युगोंका समय पूरा हो गया । महानन्तरने नागलक्ष्मीसे कहा—‘रम्भोह ! वह रेवती अब भी ब्रह्मलोकमें ही है । तुम उसकी देहमें प्रवेश कर जाओ और आवेशावतारिणी बनो । तदनन्तर द्वारकामें आकर मेरे साथ आनन्दका उपभोग करना’ ॥ ३३-३४ ॥

प्राढ़विष्याक मुखि बोले— नागलक्ष्मीने महानन्तरके इन वचनोंको सुनकर अपने स्वामी भगवान् संकर्षणकी आशा ली और ब्रह्मलोकमें आकर रेवतीके विग्रहमें आविष्ट हो गयी ॥ ३५ ॥

क्षैरवेन्द्र दुर्योधन ! तदनन्तर भगवान् संकर्षण पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये सर्वलोकनमस्तुत गोलोक-

भास्ते पृथ्वीपर अवतीर्ण दुष्ट । यही भगवान् बलयद्वारा का लमस वायोंका नाथ करनेवाला और परम ब्रह्मस्यहम् है । अनन्तनामन्त्रान्त है । मैंने यह तुम्हारो सुनाया है । यह शुक्रराज ! अब आगे तुम क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीगर्भ-संहितामें श्रीब्रह्मदलाष्टके अन्तर्गत श्रीप्राण्डिविषाक शुभि और दुर्घटनके

संवादमें 'वैती-उच्छ्वास' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

श्रीब्रह्मस्यहम् और श्रीकृष्णका प्राक्त्य

तुर्थोंधनने कहा—सुनिराज ! पूर्वजन्ममें मैं भगवान् संकर्षणका भक्त था, अतः मैं धन्य हूँ । आपने मुझे वह स्वरण करा दिया । साथ ही भगवान् वासुदेवकी अभावमुक्त परम अद्युत महिमा भी आपने सुनायी । अब यह बतानेकी कृपा कीजिये कि भगवान् ब्रह्मस्यहम् और श्रीकृष्णनन्दने पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर अपने पिताकी नगरी मथुरासे ब्रजमें कैसे गमन किया और ब्रजवासियोंसे वे गुपरूपमें किस प्रकार रहे ॥ १ ॥

श्राविष्याक शुभि बोले—यादवोंकी पुरी मथुरामें राजा उग्रसेन थे । एक समय उनके बड़े भाई देवकीकी कन्या देवकीसे वसुदेवजीका विवाह हुआ । विवाहके उपरान्त वर-वधुवी विदाईके समय उग्रसेननन्दन कंस स्वयं वसुदेव-देवकीया रथ चलाने लगा । उसी समय आकाशवाणी दुई—अरे नियोध ! दूर जिनका रथ चला रहा है, उसीका आठबाँ गर्भ तेग विनाश करेगा । यह सुनते ही कालेमि-तनय भद्रान् दैत्य कंस हाथमें ताल्यार लेकर वहिन देवकीका वध करनेको तैयार हो गया । उसी क्षण वसुदेवजीने कंसको भम्भाकर कहा कि 'तुम इसका वध भत करो । जिनमें तुम्होंको और मुझको भी भय हो रहा है, देवकीके गर्भमें उत्तरान्न वे जितने पुर्ण होंगे, मैं सबको लाकर तुम्हें दे दूँगा ।' वसुदेवजीकी वातपर विश्वास करके कंसने देवकी, वसुदेव द्वानोंको काशायारम्य बंद करवा दिया और वह निश्चिन्त हो गया ।

तदनन्तर देवकीके पहला पुत्र उत्पन्न हुआ । वसुदेवजीने उसे तुरंत आकर कंसको है दिया । कंसने समझा, वसुदेवजी कहे सत्यवादी हैं । अतएव उसने छहकोका वध नहीं किया । इसके उपरान्त उसके यहाँ नारदजी पश्चारे और उन्होंने कहा—जैसे अहोंकी टेढ़ी चाल है, वैसे ही देवताओंकी चाल भी उलटी होती है ।

लमस वायोंका नाथ करनेवाला और परम ब्रह्मस्यहम् है ।

शुक्रराज ! अब आगे तुम क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ३६ ॥

संवादमें 'वैती-उच्छ्वास'

नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

सम्भव है, इधर-उधरसे गिननेपर यही लक्ष्यका आठबाँ माना जाय और तुम्हारा शुभ बने । विशेष बात तो यह है कि तारे वादवोंके रूपमें देवता ही अवतीर्ण हैं और वे सभी तुम्हारा वध चाहते हैं । नारदजीसे इस प्रकारकी बात सुनी, तबसे कंस देवकीसे उत्पन्न प्रयेक लक्ष्यको मारने लगा । उस समय कंसके भयसे वादवोंमें भगवद्व भव गयी और वे भगवान् कष्ठोंका अनुभव करने लगे । तदनन्तर देवकीके सातवें गर्भमें भगवान् अनन्तका आगमन हुआ । वसुदेवजीकी एक दूसरी पत्नी रोहिणी भी कंसके भयसे नन्दनावाके यहाँ गोकृलमें यहा करती थी । भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञा पान्न योगमाया भगवान् अनन्तको देवकीके उदरसे खोन्चकर वसुदेव-पत्नी रोहिणीके गर्भमें स्थापित करनेको तैयार हो गयी ॥ २—७ ॥

वहाँ ये बलेक हैं—

देववत्ता: प्रसम्ये गर्भे हृष्णोक्तिवर्धने ।

व्रजं प्रजीते रोहिण्यामनन्ते योगमायता ॥

अहो गर्भः क विश्व इत्युत्पादुरा ज्याः ॥ ८ ॥

अथ व्रजे पद्मविनेषु भावे

स्वाती च वस्त्राणं च सिंहे तुष्टे च ।

उच्चंग्रन्थैः पद्मभिरात्मे च

लग्ने तुष्टास्ये दिवमध्यदेशे ॥ ९ ॥

तुष्टे वर्षस्तु च तुष्टवर्षं

जनेतु तुष्टस्य च वारिविन्दूतः ।

वर्ष वैको वसुदेवस्यां

विशालमय वर्षात्पुर्व लभात्तेऽप्त ॥ १० ॥

नद्योऽपि तुष्टे विशुद्धात्तर्त्तरी

दंडी द्विवेष्यो वित्तुरं गर्वा च ।

गोपाय रसात्पूर्व तुष्टवायां

वर्षैर्विहामात्तरात्तराम ॥ ११ ॥

देवकीका सातवाँ गर्भ एक ही साथ हर्ष और शोक बढ़ानेलाया था । योगमायाने उसे बजमें ले जाकर रोहिणीके गर्भमें खापित कर दिया । तब मधुराके लोगोंने कहा—‘अहो ! देवकीका गर्भ कहाँ चल गया ? वहे आश्वर्यकी बात है ।’ उसके पाँच दिन बाद भाइपद मासके शुक्लपक्षकी पञ्ची तिथिको, जो साति नक्षत्र और बुधवारसे मुक्त थी, मध्याह्नके समय, तुला लग्नमें, जब पाँच ग्रह उच्चके होकर स्थित थे, ब्रजमें बसुदेव-पन्नी रोहिणीके गर्भसे अपने तेजके द्वारा नन्द-भवनको उद्भासित करते हुए महाराम बख्तामजी प्रकट हुए । उस समय मेघोंने जलविन्दु बरसाये और देवताओंने पुष्पोंकी वृष्टि की । नन्दजीने शिशुका जातकर्म संस्कार करवाया । ब्राह्मणोंको दस लाख गौएँ दानमें दी, फिर गोपोंको बुलाकर अच्छे-अच्छे गायकोंके संगीतके साथ महा-महोस्तव मनाया ॥ ८-११ ॥

तदनन्तर देवकीके आठवें गर्भसे अर्द्धरात्रिके समय परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णकद्र अवर्तार्ण हुए । उसी समय इधर नन्दरानी यशोदाजीके गर्भसे कन्याके रूपमें योगमाया प्रकट हुई । योगमायाके प्रभावसे सारा जगत् सो गया था । तब भगवान् श्रीकृष्णकी आकासे बसुदेवजी श्रीकृष्ण-नन्दको लेकर यमुनाके उस पार बृन्दावनमें पहुँच गये और यशोदाके शयनागारमें जाकर उन्होंने यशोदाकी गोदमें बालक श्रीकृष्णको मुला दिया और कन्याको लेकर वे अपने स्थानपर लौट आये । इसके बाद कारागारमें बालककी

इस प्रकार श्रीगर्भ-संहितामें श्रीबलमद्रकृष्णके अन्तर्गत श्रीप्राद्विषाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें ‘श्रीबलराम और श्रीकृष्णका प्राकाश’ नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

छठा अध्याय

प्राद्विषाक मुनिके द्वारा श्रीराम-कृष्णकी ब्रजलीलाका वर्णन

दुर्योधनने पूछा—मुनिराम ! भगवान् अनन्त श्रीबलरामजी और अनन्त-लीलाकारी भगवान् श्रीकृष्णने भूमण्डलपर अवतार लेकर विवरण किया । अब संक्षेपमें यह बतानेकी कृपा कीजिये कि ब्रजमें, मधुरामें, द्वारकामें और अन्यत्र उन्होंने क्या-क्या लोलायें की ॥ २ ॥

प्राद्विषाक मुनिने उत्तर दिया—दुर्योधन ! भगवान् श्रीकृष्णने प्रकट होते ही अद्भुत लीला आरम्भ कर दी । उन्होंने यमुनाको मोक्ष प्रदान किया, शकटासुर और तुणाकर्त्त-

रदन-बनि सुनावी पढ़ी । शमुके भयसे हरा हुआ कहे तुरंत आ पहुँचा और उसने तत्काल उत्पन्न हुई उष कन्याको उठा लिया एवं उसे एक दिलापर पटक दिया । ठीक उसी समय कंसके हाथसे छूटकर कन्या वहे ज्वरसे उछली और ऊपर आकाशमें जाकर योगमायाके रूपमें परिणत हो गयी । ठिक, चारण, गन्धर्व और मुनिगण उनका स्वचन कर रहे थे । योगमायाने कंससे कहा—‘ने दुष्ट ! तेरा पूर्वका शमु कहीं उत्पन्न हो चुका है । तू इन बेचारे दीन बहुदेव देवकीको व्यर्थ ही क्यों कष्ट है रहा है ?’ इस प्रकार कहकर वे योगमाया विन्ध्याचलको चली गयीं ।

देवीके इन बचनोंमें कंस वहे आश्वर्यमें पड़ गया । फिर उसने देवकी और बसुदेवको तो छोड़ दिया और पूतना आदि दैत्योंको बुलाकर आशा दी कि ‘दस दिनके अद्वर पैदा हुए जितने भी बालक हों, सबको मार डालो ।’ कंसकी आशा पाकर दैत्यगण बालकोंका वध करने लगे । इधर नन्दने भी पुत्र-जन्म सुनकर महान् उत्सव मनानेकी योजना की । हे कुशराज ! इस प्रकार कंसके भयके बहाने भगवान् बलराम और श्रीकृष्ण ब्रजमें पधारे । वे अपनी मायासे ही वहाँ गुप्तस्थानमें रहे और ब्रजवासियोंपर कृपा करनेके लिये ब्रजमें प्रकट होते ही विविध प्रकारकी अद्भुत बाल-लीला करने लगे । अब तुम क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १२—१६ ॥

किया, गोपालोंके साथ याथे चराते हुए इन्द्रावनमें विचरण किया। फिर ताल्बनमें गधेके समान देकनेवाल जो बेनुकासुर दैत्य रहता था, उसने अपनी बुलसी चलकर बल्लामजीको चोट पहुँचानेकी बेदा की। तब शक्तिशाली बल्लदेवजीने दोनों हाथोंते उसे पकड़कर दाढ़के बुक्षपर दे भारा। वह फिर उठकर सामने आया तो बल्लामजीने उसे पुनः ज्यीनपर दे पटका। फल्यः उसका फिर घूँट गया और वह मूर्च्छित हो गया। तब बल्लामजीने शीघ्र ही उसके एक मुळा मारा, जिससे उसके प्राण-पर्खेर उह गये। तदनन्तर श्रीकृष्णने कालिन्यागका दमन, दावाग्नि-पान आदि लोलाएँ कीं, फिर श्रीराधिकाजीके प्रति प्रेम-प्रकाश करके उनके प्रेमकी परीक्षा ली, इन्द्रावनमें विहार किया, हाव-भावयुक्त दानलीला और मानलीला, शङ्ख-चूडादिका वध और शिवासुरि-उपाख्यान इत्यादिके प्रवचनकी बहुत-सी लीलाएँ कीं।

तदनन्तर एक समय गोवर्धन-पूजा की गयी। इन्द्रने यह-भागसे वज्रित होनेपर कुपित होकर सांवर्तक आदि मेघोंके द्वारा बल्मण्डलपर धोर बर्षा आस्तम कर दी। सारे ब्रजवासी भवसे व्याकुल हो गये। भगवान् श्रीकृष्णने उनको आतुर देखकर—‘हरो मत’ यों कहकर अभय दान दिया। फिर उन्होंने गिरिराज गोवर्धनको उतारकर, जैसे बालक छशक (कुकुरसुत्ता) को उठा लेता है, ठीक ऐसे ही गोवर्धनको अपने एक हाथपर रख लिया। सात वर्षोंकी अवस्थावाले श्रीकृष्ण पूरे सात दिनोंतक पर्वत-को हाथपर उठाये विना हिले-हुले अविचल रहे रहे। तब तो समूर्ध देवताओंके साथ इन्द्र भयभीत हो गये और उन्होंने अन्यन्त नदियाके साथ मुकुट छुकाकर भगवान् श्रीकृष्णके मङ्गलव्यय युगल चरणोंमें प्रणाम किया, उनकी स्तुति की और अभिनेप किया। तदनन्तर कामधेनु सुरभि और देवता तथा मुनियोंके साथ वे स्वर्गको चले गये। गोवर्धन-धारणकी इस अद्भुत लीलाको देखकर सभी गोप अथवत् विस्मित हो गये। फिर श्रीकृष्णने खेतमें मोती आदिके शीब बोकर मोती उपजानेका चमत्कार-मय ऐश्वर्य गोपोंको दिखाया। २-८।

‘तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने शुतिरूपा, शूतिरूपा, मैथिली, कोखलदेविवालिनी, अयोध्यावासिनी, यज्ञसीता, पुस्तिका, समावेशकुरुक्षालिनी तथा इचेतदीपनिवासिनी, ऊर्मिवृष्णुष्टवासिनी, अविज्ञपद्यासिनी, श्रीलेकाशल-

निवासिनी, दिव्या, अदिव्या, विदुणवृत्ति, भूमि, गोपी, देवधी, जालंधरी, बाहिर्भूती, पुरन्धी, अप्सरा, सुतल्लालिनी और नागेन्द्रकन्या आदि गोपीयूधोंके साथ पृथक्-पृथक् रास-पञ्चलकी रचना की ॥ ९ ॥

एक समय श्रीबल्लामजीके साथ श्रीकृष्णचन्द्र भाण्डीर-वनमें गोपवालोंके साथ गौएँ चराने गये। वहाँ जाकर एक दूसरेको ढोने और ढोवानेका खेल करने लगे। उस समय वहाँ प्रलम्बासुर नामक एक दैत्य गोप-बालकका बेदा धारणकर खेलमें शामिल हो गया, बल्लामजी उसपर विजयी हुए। अतः उन्हें पीठपर चढ़ाकर वह चलने लगा। वह गिरिराजके समान विशाल देहवाला असुर मसुराकी ओर जाना चाहता था कि उस असुरकी पीठपर सवार अमित-पराक्रमी श्रीबल्देवजीने, रोमें भरकर जैसे इन्द्र किसी पर्वतपर प्रहार करे, वैसे ही उसके मस्तकपर मुष्टि-प्रहार किया। उस प्रहारसे बजकी चोट लाये हुए पहाड़की तरह असुरका तिर ढूक-ढूक हो गया और उसी क्षण वह भूमिपर गिर पड़ा ॥ १०-११ ॥

एक समय गरमीके दिनोंमें सभी गौएँ और गोपाल किसी मूँजके बनमें जा पहुँचे। इतनेमें ही वहाँ वह जोरकी प्रल्याग्रिके समान दावाग्नि जल उठी और वह चारों तरफ फैल गयी। तब गोपालगण ‘हे राम ! हे कृष्ण ! हम शरणागत गोपालोंकी रक्षा करो, रक्षा करो !’ यों पुकार उठे। भगवान्-ते तुरंत कहा—‘हरो मत ! तुम सब अपनी-अपनी ऑंखें मूँद लो !’ यों कहकर भगवान् उस भीषण दावाग्रिको पी गये। तदनन्तर गोपाल और गायोंके साथ भगवान् श्रीकृष्ण भाण्डीर-वनसे यमुनाके तटपर पधारे और अशोक-वनमें यहदीक्षित द्विजोंकी पसियोंके द्वारा लाया हुआ भोजन प्रहण किया। इसके बाद एक दिन ब्रजमें नन्दवावाको वरण देवताने अपहरण कर लिया, तब भगवान्-ते वरणका मान-भङ्ग करके नन्द आदि गोपोंको समूर्ध लेकोंके द्वारा नमस्कृत वैकुण्ठके दशन कराये। इसके अनन्तर एक दिन अभिका-कानमें सरस्वती नदीके तटपर सुदर्शन नामक सर्प नन्दजीको निश्चलने लगा। तब भगवान् श्रीकृष्णने अलिल लोकपालोंके द्वारा वन्दनीय अपने चरण-कमलका उससे स्पर्श कराया। चरण-स्पर्श प्राप्त होते ही वह सर्प-वारीरसे मुक्त हो गया। एक समय श्रीकृष्ण बल्लामजीके साथ गोप-बालकोंको लिये आँखमिचौरी और चोर-लालूकार-

का सेवा कील रहे थे । उसी समय कंसका सहा व्योमासुर चोरके रूपमें बहाँ आया । भगवान् श्रीकृष्णने अपनी प्रत्यक्ष दोनों भुजाओंसे उसे पकड़कर दसों दिशाओंमें झुमाते हुए पृथ्वीपर पटक दिया । इसी प्रकार कंसका भेजा हुआ अपिकासुर बैलके रूपमें आया । भगवान् ने उसके दोनों ऊंग पकड़कर उसे भी बराशायी कर दिया । तब

इस प्रकार श्रीगर्ण-संहितामें श्रीबलभद्रकृष्णके अन्तर्गत श्रीप्राह्लिपक मुनि और दुर्योधनके संवादमें
‘श्रीरामकृष्णकी ब्रजकीलाका वर्णन’ नामक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

श्रीराम-कृष्णकी मथुरा-लीलाका वर्णन

श्रीप्राह्लिपक मुनि बोले—युवराज दुर्योधन ! भगवान् बलरामजी और श्रीकृष्णचन्द्रने मथुरामें जो-जो लीलाएँ कीं, उनका संक्षेपमें वर्णन कर रहा हूँ। मुनो । कुछ समयके पश्चात् कालनेमिकुमार कंसने बलराम और श्रीकृष्णको बुलानेके लिये अकूरजीको भेजा । अकूरजी ब्रजमें पधारे । श्रीकृष्णको मथुरा जानेके लिये प्रस्तुत देखकर गोपियाँ विरहने आतुर हो गयीं । भगवान् ने उन सबको अल्प-अल्प बुलाकर आशासन दिया । फिर बलरामजीवहित स्वयं रथपर सवार होकर अकूरजीके साथ मथुराकी ओर चढ़े । जाते समय रास्तेमें यमुनाजी पड़ी । उसके जलमें भगवान् ने अकूरको अपने तेज या धामके दर्शन कराये । तदनन्तर पूर्वाह्नके समय वे मथुरामें जा पहुँचे और अपराह्नकाल्यक मथुरापुरीको सब ओरसे देखते रहे । लीलारूपमें मनव्यका वेष धारण किये हुए श्रीराम-कृष्ण सक्षात् पुराण-पुरुष हैं । मथुरा नगरीके सभी नर-नारियोंके मनमें उनके दर्शनका आनन्द प्राप्त करनेकी अभिलाषा उत्पन्न हो गयी और वे अपना सारा काम-धाम छोड़कर, जैसे नदियाँ समुद्रकी ओर दौड़ती हैं, वैसे ही उनकी ओर दौड़ पड़े । कोटि-कोटि कामदेवोंका दर्प चूर्ण करनेवाले भगवान् राम-कृष्णने अपना सौन्दर्य सबको दिखालाया और उन सबका मन हरण करते हुए वे स्वेच्छावे विचरण करने लगे ॥ १-३ ॥

तदनन्तर राजमार्गमें भगवान् ने घोरी और रँगरेत्से कपड़ोंकी याचना की; परंतु उन्होंने जब वज्र नहीं दिये, तब सबके देखते-देखते ही हाथोंसे ग्रहार करके घोरी और रँगरेत होनोंको छछ घीरने सुक कर दिया । तदनन्तर भगवान् को

नारदजीने लाकर कंसको श्रीकृष्णकी देशी लीलाएँ दुनायीं । सुनकर कंसने केदीको भेजा, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसके मुहँमें अपनी भुजा प्रवेश कराकर उसके मर्मको भेद डाला । श्रीकृष्णने हुए प्रकार बलरामजी-के लाय ब्रज-भण्डलमें अनेक अद्भुत लीलाओंकी रचना की ॥ १२-१७ ॥

एक दर्जी मिला । उसने वज्रोंके द्वारा उनको सजाया और भगवान् ने उसे अपना सारूप्य प्रदान कर दिया । फिर कुञ्जा सैरनन्दी मिली । वह तीन जगहमें टेढ़ी थी । चन्द्र-ग्रहण करनेके बहाने भगवान् ने उसको सीधी कर दिया । वह तीनों लोकोंमें सुन्दरी बन गयी । तत्पश्चात् वहाँके वैश्य व्यापारियोंसे बातचीत की और कुछ बच्चोंको साथ लेवर, जहाँ कंसका धनुष रखा था, उस स्थानपर वे जा पहुँचे । वह धनुष स्वरूपसे मणित था और सात ताह बृक्षोंके बराबर उसकी लंबाई थी । हजारों पुरुषोंके द्वारा भी वह उठाया नहीं जा सकता था । वह धनुष अष्टधातुसे बना हुआ था, अत्यन्त भारी था और उसका बोझ लाल भारके समान था । कंसने वह धनुष परमुरामजीसे प्राप्त किया था । वह वैष्णव (भगवान् विष्णुसे सम्बन्ध रखनेवाला) धनुष साक्षात् भगवान् शेषके समान कुण्डलाकार था । भगवान् श्रीकृष्णने उसे देखा और बल्पूर्वक उठा लिया; फिर सब लोगोंके देखते-देखते ही लीलापूर्वक उस धनुषको चढ़ाया और कानतक तानकर ले गये । तदनन्तर दोनों भुजाओंका सहारा ल्याकर उसको बीचसे उसी प्रकार तोड़ डाला, जैसे हाथी अपनी दृङ्कसे गन्धेको तोड़ देता है । धनुषके दूटनेकी भयानक घनिसे पातालसहित ससळेकमय सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा । तारे और दिग्गजाग्नि अपने स्थानसे विचलित हो चके । इतना ही नहीं, सारा भूमण्डल हो घड़ीतक यात्रीकी तरह कॉपता रह गया ॥ ४-७ ॥

अपराह्नके समय रँगरात्मके द्वारपर कुवलयापीढ़ दाढ़ी दिखायी दिया । भगवान् ने उसके सभीप आकर बालकीलाके

स्वप्नमें खण्डभर उसके साथ युद्ध किया, तदनन्तर उसकी हँडको पकड़कर उसे इच्छ-उधर झुमाया और फिर वैसे ही लगीनपर पटक दिया, जैसे आळक कमण्डलुको पटक दे। कुण्डलयापीह द्वारीका इच्छ प्रकार वध करके भीबल्लाम और कृष्णचन्द्र कंस-रन्धित रक्षभूमिमें पहुँचे और उन्होंने बहाँपर बैठे हुए उभी खोरोंको उनके अपने-अपने भावके अनुसार वयथ-योग्य दर्शन दिये। फिर अखाड़ेमें पहुँचकर मस्लयुद्धके लिये जा डटे और कंसके सामने सब लोगोंके देखते-देखते ही भगवान् भल्लाम और कृष्णचन्द्रने चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और सोशाळको भराशायी कर दिया। श्रीकृष्णके इन कार्योंको देखकर कंस तुर्वचनोंके द्वारा उनका तिरस्कार करने लगा। इसी बीच भगवान् श्रीकृष्ण कूदकर उस कटुभाषी कंसके अस्तन्त ऊँचे मञ्चपर चढ़ गये। तुरंत मूसुके समान श्रीकृष्णको सामने आया देखकर कंस मञ्चसे उठा और भगवान्की भर्त्तना करते हुए उसने उसी क्षण ढाल और तल्लारको हाथमें उठा किया। श्रीकृष्णने तुरंत ढाल-तल्लार लिये हुए कंसको, जैसे गहड़ अपनी चौचसे विषधर सर्पको पकड़ ले, वैसे ही चल्लूर्वक अपनी प्रचाढ़ भुजाओंसे पकड़ लिया। पर गहड़की चौचसे जिस प्रकार सर्प छूटकर निकल भागे, उसी प्रकार कंस भगवान्के भुज-वधनसे निकल गया और ढाल-तल्लार लेकर फिर लड़नेके लिये तैयार हो गया। भगवान् श्रीकृष्ण और कंस—दोनों मञ्चपर आ गये और वेगपूर्वक एक दूसरेपर आक्रमण करते हुए वैसे ही सुशोभित हुए, जैसे पर्वतपर दो सिंह लड़ते हुए शोभित हैं। तदनन्तर कंस उछलकर सौ हाथ ऊपर आकाशमें चला गया, तब भगवान् श्रीकृष्णने भी वैसे ही उछलकर बाजकी तरह उसे पकड़ लिया। कंस पुनः श्रीकृष्णके हाथोंमें छूटकर निकल भागा, तब त्रिलोकको धारण करनेवाले श्रीकृष्णने फिर अपने प्रचण्ड भुजदण्डोंसे उसको पकड़ लिया और इच्छ-उधर झुमाते हुए महाकाशसे उसे मञ्चपर पटक दिया। जैसे त्रिजड़ी शिरनेसे बुक्ष टूट जाता है, उनी प्रकार कंसके शिरते ही मञ्चके लम्बे टूट गये। बज्रके समान कठोर शरीरका वह कंस नीचे शिर पड़ा। एक बार उसे कुछ व्याकुलता हुई; परंतु वह फिर सहसा उठा और महात्मा श्रीकृष्णके साथ जूहने लगा। भगवान् श्रीकृष्णने अपनी भुजाओंसे पकड़कर उसे मञ्चपर पटक दिया, और वे

उसकी छातीपर चढ़ बैठे। तब उन्होंने उसके शिरके पकड़कर केजा खींचते हुए, जैसे पर्वतसे कोई चढ़ानके शिराये, वैसे ही उसे मञ्चसे नीचे अखाड़ेमें निरा दिया। तदनन्तर उसके आधारस्वल्प अनन्त-मराक्षमशाली सनातन पुरुष भगवान् स्वयं वेगपूर्वक मञ्चसे कूदकर कंसके ऊपर जा पड़े। इस प्रकार दोनोंके शिरनेसे पृथ्वी कुछ नीचे खँस गयी और सारा भूमण्डल तीन घड़ीतक थालीकी तरह कँपता रह गया। कंसके प्राण निकल गये। सबके देखते-देखते ही जैसे भूमि-पर पड़े हुए गजराजको सिंह खींच रहा हो, वैसे ही वे कंसके शरीरको घसीटने लगे। राजाओंमें हाहाकार मच गया। लोग कहने लगे—‘अओ! कैसे आश्वयकी बात है कि वैरभावसे स्वरण करनेवाला कंस भी उन प्रभुके मालयको वैसे ही प्राप्त हो गया, जैसे कीड़ा भूङ्गीके रूपमें परिणत हो जाता है॥ ८-१५॥

कंसकी मृत्यु देखकर उसके छोटे भाई तत्काल ढाल-तल्लार लेकर वहाँ आ डटे। उनपर बलभद्रजीकी हृषि पही और उन्होंने मुद्रर उठाकर सब औरसे प्रहार करते हुए सबको भराशायी कर दिया। तब देवताओंकी हुन्दुभियाँ बज उठीं। सर्वत्र जय-जयकारकी ज्वनि होने लगी। देवताओंने पुष्योंकी वर्षी की। विद्याधरियाँ तृत्य करने लगीं और विद्याधर, गन्धवं तथा किंनर भगवान्का यशोगान करने लगे। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने सबको आश्वासन देकर माता-पिताको बन्धनमुक्त किया और उग्रसेनको राज्य सौंप दिया। फिर यज्ञोपवात-संस्कार समन्व होनेपर सांदीपनि मुनिके समीप जाकर समस्त विद्याओंका अध्ययन किया। दक्षिणारूपमें मेरे हुए गुरुपुत्रोंको लाकर प्रदान किया, शङ्खासुरका वध किया। फिर वे मथुरामें आकर निवास करने लगे। बजकी व्यथाको हूर करनेके लिये भगवान्ने उद्धवको वहाँ भेजा। फिर स्वयं वहाँ जाकर रासमण्डलमें श्रीराधा और गोपियोंको अपने दर्शन कराये। रासमें शृङ्ग शृष्टि कुक्कुट मुक्ति दी। फिर मथुरामें मथुरानरेदोके सहज कार्य करते हुए विराजमान हुए। बलरामजीने भी कोलासुरका वध करके मथुरापुरीमें शुभागमन किया। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम-की हजारों-हजारों पवित्र और विचित्र लीलाएँ मथुरामें सम्भव हुईं॥ १६-१७॥

इस श्लोकमें श्रीराम-संहितामें श्रीबलभद्रस्त्रके अन्तगत श्रीप्रात्मविपक्ष मुनि और हुरोंवनके संवादमें ‘श्रीराम-कृष्णकी मथुरा-कीकाका वर्णन’ बालक सप्तवर्षी अक्षय पूरा हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

श्रीराम-कृष्णकी द्वारका-लीलाका वर्णन

प्राचीनिक सुनिष्ठे कहा—मुवराज दुर्योधन ! अब भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीराम और श्रीकृष्णकी द्वारका-लीलाओंको लेखपरमें सुनो । धूतराष्ट्र-तनय ! जब कंणका देहावसान हो गया, तब उसके न रहनेपर भी उसके साथ अन्तरङ्ग मैशीका निर्वाह करनेके लिये जरासंघ आया । भगवान्ने उसपर विजय प्राप्त की । तदनन्तर उम्रुदके शीचमें द्वारका-कुरुका निर्माण किया । फिर एक ही रात्रिमें अपने सारे बन्धु-जात्यजोंको वहाँ भेजकर उनके रहनेकी व्यवस्था की । काल्यवनके आनेपर मुचुकुन्दद्वारा उसका वध करवाया । तदनन्तर बलरामजी और श्रीकृष्ण दोनों प्रवर्षण पर्वतपर गये और वहाँसे द्वारकाको प्रस्थान किया ॥ १ ॥

ब्रह्मलोकसे लैटे हुए युजा रेवतने रत्न आदि आभूषणोंसे अलंकृत कन्या रेवतीको लेकर आगमन किया और प्रतापी चलरामजीके हाथोंमें उसे सर्विच समर्पण कर दिया । फिर राजा रेवत तप करनेके लिये बद्रिकाभासको चले गये । उसके बाद श्रीकृष्णने कुण्डिनपुर जाकर शशुओंके देखते-देखते दक्षिणीजीवीका हरण किया एवं जाम्बवती, सत्यभामा, कालिन्दी, मित्रविन्दा, नाम्नजिती, भद्रा और छ्यमणाका एवं भौमासुरका वध करके सोलह हजार एक सौ राजकन्याओंका पाणिग्रहण किया । राजन् । श्रीष्मककुमारी दक्षिणीके गर्भसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रथम पुत्र प्रबुद्ध तुष्ट । ये कामदेवके अवतार अपने पिता श्रीकृष्णके समान ही मुहूर थे । इनसे अनिरुद्धका जन्म हुआ, जो ब्रह्माके अवतार है ॥ २—४ ॥

तत्पश्चात् एक समय राजा उग्रसेनके वहाँ राजसूय यज्ञका प्रस्ताव हुआ और दिव्यजयके लिये प्रश्नुमजीने बीड़ा उठा लिया । यादों तथा अपने भाइयोंके साथ उन्होंने विजययात्रा आरम्भ की और जम्बूदीपके नौ खण्डोंपर विजय प्राप्त करके कामतृष्ण नदके समीप पहुँचे । वहाँ बसन्तमालती नामक नगरीके स्तामी गन्धर्वराज पतंगके साथ उनका युद्ध हुआ । गदा-युद्ध आरम्भ होनेपर बलदेवजीके छोटे भाई गदने गदाके द्वारा गदाधारी पतंगपर प्रहर किया । पतंगने भी गदाके द्वारा क्षेत्रे केरले गदके हृदयपर आवात किया । इस प्रकार दो घटीतक दोनोंका

युद्ध होनेके पश्चात् पतंगकी गदाके प्रहरसे युद्धपरके लिये गदको मूच्छा आ गयी । उस समय हाहाकार मच गया और हसी शीच करोड़ों सदोंके समान तेजस्वी बलभद्रजी वहाँ प्रकट हो गये । उन्होंने गन्धवोंकी सारी सेनाको इलकी नोकके द्वारा लींच लिया और उसके लूपर कठोर मुसल्का प्रहार करना आरम्भ कर दिया । इससे पतंगकी सारी सेना—शूरवीर योद्धा, हाथी और रथ सभी चूर-चूर हो गये । तब तो रथ-हीन पतंग भयभीत होकर अपने नगरको छल गया और यादोंसे युद्ध करनेके लिये फिरसे व्यूहाकार सेना सजाने लगा । बलभद्रजीको जब इसका पता ल्या, तब वे अत्यन्त कुद्द होकर गन्धवोंकी बसन्तमालती नामकी उस विशाल नगरीको, जिसका विस्तार सौ योजनमें था, इलके द्वारा उखाड़ लिया और कामतृष्ण नदमें हुवा देनेके लिये उसे लींचने लगे । नगरीके महांडों और धरोंका गिरना-चूहना आरम्भ हो गया । चारों ओर हाहाकार मच उठा । सारी नगरी समुद्रमें चक्कर लाती हुई टेढ़ी नावकी तरह धूमने लगी । यह देखकर गन्धर्वराज पतंग भयभीत हो गये और अपने गन्धर्व भाई-बन्धुओंके साथ हाथ जोड़कर बलभद्रजीके समीप उपस्थित हुए । उन्होंने विश्वकर्मीके द्वारा निर्मित दो लाल विमान, चार लाल हाथी, एक करोड़ घोड़े और दस करोड़ स्वर्ण तथा दिव्य रत्नोंका भार बलदेवजीकी लेवामें समर्पण किया और प्रदक्षिणा करके उनको प्रणाम किया ॥ ५—९ ॥

फिर साम्बको छुड़ानेके लिये बलरामजी वहाँ तुम्हारे इस्तिनापुरमें पशारे और तुम सबके सामने ही उन्होंने इलकी नोकसे तुम्हारे नगरको उखाड़ लिया और गङ्गामें हुबोनेके लिये लींचने लगे । फिर नागकन्या गोपियोंके साथ रास-मण्डलमें यमुनाजीको भी उन्होंने अपने हलकी नोकसे लींचा । तदनन्तर, एक समयकी बात है, नारदजीकी प्रेरणासे भौमासुरका सखा और सुग्रीवका मन्त्री द्विविद नामक बंदर युद्ध करनेके लिये आया । रेवतक पर्वतपर बलरामजीके साथ चार घडीतक उसका युद्ध हुआ । वह हृष्ण और शिल्वोंके द्वारा बलरामजीपर प्रहर कर रहा था । उसी लिंगिमें बलरामजीने मुसल्के द्वारा उसके मस्तकपर घोट पहुँचायी । पर वह मरा नहीं और फिरसे बलरामजीको

मुक्ता मारकर दोहा । भगवान् अन्युलके थहे भाई बल्लामजीने अपने दोनों हाथोंसे उसे पकड़ लिया और रेखक पर्वतपर दे मारा, फिर उसके हृष्टवर्णे थहे जोरसे मुहिं-प्रहार किया । तब बंदर नीचे गिर गया । उसके पिरनेसे हुएवहित सारा पर्वत कमण्डली तरह कौपने लगा ॥ १०-११ ॥

प्रिय हृष्टोचन ! तदनन्तर पाष्ठोंके साथ तुमलोगोंके युद्धका उत्थोग मुनकर बल्लामजी तीर्थयात्राके साहने नागरिकों और ब्राह्मणोंको साथ लेकर द्वारकाकी प्रदक्षिणा करके पुरीसे आहर निकले । फिर उन्होंने एकाशम और प्रभातमें स्नान किया । पवित्र दिशामें स्थित सरस्वती, प्रतिसूता, सैन्धवारण्य, अमूर्मार्ग, उत्पलावर्त, अरुद (आशू), ऐमवन्त और सिन्धु-नदीमें पृथक्-पृथक् स्नान किया । तदनन्तर विन्दुसर, प्रितकृप, चुदर्शन, अवितीर्थ, औशनस, आग्नेय, बायव, सौदाम, शुहतीर्थ और आददेव आदि तीर्थोंमें स्नान किया । तदनन्तर उत्तर दिशामें आकर कैलस, करबीर, महायोग, गगेश, कौबेर, प्राण्योतिष, रक्षावल्ली, सीताराम आदि क्षेत्र, चैत्रदेश, बसन्तलिलक, दशार्ण, भद्र, कूर्मतीर्थ, पुष्टमाला, चित्रबण, चन्द्रकान्त, नैश्येत, मनु पर्वत, चक्षु, कामशालिनी, कामवन, वेदक्षेत्र, सीता, पृथुतीर्थ, तपोभूमि, लीलाचती, वेदनगर, गान्धर्व, शक्र, भीमरथी, श्रीजाह्वी, कालिङ्गी, हरिद्वार, कुरुक्षेत्र, मधुरा और पुष्कर आदि तीर्थोंमें स्नान किया । फिर वहाँसे संभलाम और सूकरक्षेत्र (सौरी)में गये । इस प्रकार तीर्थोंकी यात्रा करते हुए साक्षात् संकरण श्रीबल्लामजी नैमित्यारण्यमें पहुँचे ॥ १२-१३ ॥

बल्लामजीको आया देखकर शौनकादि मुनियोंने खड़े होकर उनको प्रणाम किया और उनकी अच्छी की । वहाँ वेदव्यासजीके हित्य रोमहर्षणजी विराजमान थे । वे खड़े नहीं हुए । बल्लामजीने यह देखकर हाथमें लो कुशा लिये हुए थे, उसीकी नोकसे मुनिको निहत कर दिया । यह देखकर सब मुनि हाहाकार करने लगे । बल्लामजीने यह सब रेखा । समस्त लोकोंको पवित्र कलेजाले होनेपर भी उन्होंने लोक-संग्रहके लिये अपनी शुदिकी कामनाते बारह महीनेतक तीर्थ-स्नान करनेका ग्रन्त के लिया । वहाँ हस्तलका पुत्र बल्लाम नामक वैष्ण रहता था । वह नैमित्यारण्यमें पतोंके अवसरपर भयानक आँखीके साथ-साथ

धूलकी तथा तुर्गन्धार्थी पीढ़, कमिर, विडा, मूज, मदिरा और मांस आदिकी वर्षा करता । उसकी जीम लदा कल्पवलया करती, वशके समान हड़ उसके अङ्ग थे । कल्पगिरिके समान उसकी काढ़ी व्याहृति थी और तपावे हुए तांबेके समान मूँड-हाढ़ीशाल्य वह असुर वडा ही भयानक हीस पड़ता था । शृणि-ब्राह्मणोंकी शान्तिके लिये उस भयानक असुरको बल्लामजीने आकाशमें र्खाचक्र उसके मस्तकपर मुखलके द्वारा प्रहार किया । मुखलकी चोट लगते ही उसके प्राण निकल गये और वह आकाशमें कमण्डलकी तरह नीचे गिर पड़ा । तदनन्तर प्रसन्नतासे खिले हुए मुखबाले मुनियोंने बल्लामजीका स्वावन किया, उनको थहे आशीर्वाद दिये और जिस प्रकार बुन्नासुरका बध करनेवाले इन्द्रका देवतालोगोंने अभिषेक किया था, उसी प्रकार बल्लामजीका अभिषेक किया । तदनन्तर मुनियोंसे आशा देकर बल्लामजीने सरयू, कीशिकी (कोसी), मानसरोवर, गण्डकी और गौतमी आदि तीर्थोंमें स्नान किया । फिर अयोध्या, मन्दिराम, बहिर्घट्ती और ब्रह्मावर्त आदि तीर्थोंमें स्नान करके वे तीर्थराज प्रथागमें पधारे और वहाँ दस हजार हाथियोंका दान किया । तदनन्तर चित्रकूट, विन्ध्याचल, काशी, विपाशा, शौण, मिथिला और गया आदि तीर्थोंमें स्नान करके गङ्गासागर-संगमपर गये और वहाँ स्वर्णके सींगोंसे और मुन्दर बज्जोंसे सुशोभित हो करोड़ गोएं ब्राह्मणोंको दान दीं । प्रत्येक गौपर स्वर्ण और रनोंका भार पृथक्-रूपसे लदा हुआ था । तदनन्तर वहाँसे दक्षिण दिशामें आकर क्रमशः महेन्द्रादि पर्वत, सप्त गोदावरी, वेणी, पम्या, भीमरथी, स्कन्दक्षेत्र, श्रीशैल, वेष्टुट, काञ्जी, कावेरी, श्रीरङ्ग, शृणुभाद्रि, समुद्रसेतु, कृतमाला, ताम्रपर्णी, मल्याचल, कुलाचल, दक्षिणसिन्धु, फाल्गुनतीर्थ, पंचायत्न, गोकर्ण, शूरपारक, तापी, पयोणी, निर्विन्ध्या, दण्डक, रेखा, माहिष्मती और अवन्तिका आदि तीर्थोंका स्वयं भगवान् संकरणने सेवन किया । तपश्चात् तुम्हारी सहायताके लिये विश्वसन (कुरुक्षेत्र) में पधारेंगे । यह मैंने बल्लामजीका परम पावन तीर्थयात्रा-चरित्र तुम्हारे सामने बर्णन किया । कौरवेन्द्र ! यह सम्पूर्ण पार्णीका नाश करनेवाला, सर्वकस्याणकारी पवित्र प्रसाद है । अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ! ॥ १४-१८ ॥

इस प्रकार श्रीनर्स-सौहित्यमें श्रीबल्लामद्वारास्त्रके अन्तर्गत श्रीप्रसूतिपक्ष मुनि और हृष्टोचनके संवादमें
श्रीबल्लाम-कृष्णकी हारका-कीरतान दर्जन जामक आठवीं अष्टाव शूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवीं अध्याय

श्रीबलरामजीकी रासलीलाका वर्णन

तुर्योंधनने पूळा—भगवन् मुनिसत्तम् । भगवान् बलभद्रजीने नागकन्या गोपियोंके साथ यमुनाजीके तटपर कब विहार किया था ? ॥ १ ॥

ग्राह-विषाक्त मुणि बोले—एक समयकी बात है, ब्रजके सुहृद-बन्धुओंको देखनेकी बलरामजीके मनमें बड़ी उत्कष्टा पैदा हो गयी। तब वे अपने तालध्वजसे युक्त रथपर सवार होकर द्वारकासे निकले और गौओं, गोपालों तथा गोपियोंसे भरे गोकुलमें जा पहुँचे। नन्दराज और यशोदाजी भी बहुत दिनोंमें उन्हें देखनेके लिये उत्कण्ठित थे, अतएव उन्होंने उनको हृदयसे लगा लिया। फिर बलभद्रजी गौओं, गोपियों और गोपालोंसे मिले और पूरे वसन्तके दो महीने उन्होंने बहाँ निवास किया। पहले जिन नागकन्याओंके गोपी होनेका वर्णन आ चुका है, उन्होंने गर्गाचार्यजीसे बलभद्रजीका पञ्चाङ्गका प्राप्त करके उसे लिद्ध किया था। उसीके प्रभावसे बलभद्रजीने प्रसन्न होकर कालिन्दीके तटपर उनके साथ। रासमण्डलमें रास-कीड़ा की। उस दिन चैत्रकी पूर्णिमा थी। अद्य वर्षके पूर्ण चन्द्र उदित होकर सरे बनको अपनी रंग-विरंगी किरणोंसे रंगित कर रहे थे। शीतल पवन कमलके मकरन्द और परागको लिये सर्वज्ञ मन्द गतिसे प्रवाहित हो रहा था। आनन्ददायिनी यमुना अपनी चक्षुल ल्हारियोंसे निर्मल पुलिनभूमिको व्याप्त कर रही थी। कुञ्जोंकी प्राकृण-भूमि लिविध निकुञ्ज-पुराँसे सुशोभित तथा चमचमाते दुए सुन्दर पल्लवों और पुर्णोंके परागसे आवृत थी। मोर और कोयल मधुर स्वरमें कूज रहे थे और मधुपान-मत्त मधुकरोंकी मधुर-ध्वनिसे सुखरित ग्रज-भूमि अस्थन शोभाको प्राप्त हो रही थी।

बलरामजीके पैरोंमें नूपुरकी मधुर ध्वनि हो रही थी। चमकसी दुई मणियोंके कड़े, करघनी, केयरू, हाउ किरीट और कुण्डलोंसे वे अलंकृत थे। उनके बदनपर कमल-इलकी कटा छा रही थी। वे नीलाम्बर धारण किये दुए थे। उनके विमल कमल-इलके समान नेत्र थे। ऐसे श्रीबलदेवजी यक्षियोंके साथ यशोदाजी भाँति रासमण्डलमें गोपियोंके द्वारा घिरे दुए विराजित थे। २—५ ॥

३ जिसमें पद्मति, पद्म, सोम, कमल और सहस्रनाम—साथमें है वीथ अह देखते हैं, उसे 'पञ्चाङ्ग' कहते हैं।

तदनन्तर वरणके द्वारा प्रेरित वास्त्री देवी चूक्षोंके कोटरोंसे प्रकट होकर बहने लगीं। उस पुष्पासनकी सुगन्धसे सारा बन सुगन्धमय हो गया। मधुके छोभसे मधुकर-पुळ मधुर गुंजार करने लगा। वास्त्रि-पानसे मद-विहळ, कमल-दलके समान विशाल और अद्वित नेत्रबाले बलदेवजीके अङ्ग प्रेमवेशसे चक्षुल हो उठे। तदनन्तर लील-विहारजन्य धमके कारण बलकणकी भाँति पसीनेकी छूँदें उनके मुखपर प्रकट हो गयीं और उन्होंने कपोलोंपर रचित चित्रकारीको धो दिया। तदनन्तर गजराजकी-सी चालबाले और गजेन्द्र ऐरावतकी छूँदेंके समान विशाल भुजाओंकाले बलदेवजी गोपियोंके साथ बैसे ही कीड़ा करने लगे, जैसे उन्मत्त मातक हथिनियोंके साथ करता है। उनके सिंहस्कन्धतुल्य कंधेपर हल और हाथमें मुसल सुशोभित था। करोड़ों-करोड़ों पूर्ण चन्द्रमाओंकी प्रभाके समान उनका तेज छिटक रहा था। देवीपामान रनोंके भजीर, चक्षुल नूपुर, मधुर शब्द करती दुई स्वर्णमयी किञ्चिणी, कड़े, लाटड़, हार, श्रीकण्ठ, अङ्गूठियाँ और सिरपर दिल्ल मणि-भूषण सुशोभित थे। काली नागिनको लजानेवाली कृष्ण अलकावलीकी बेणीसे युक्त और कपोलोंपर विश्रित मनोहर पश्चावलियोंसे सुशोभित गोप-सुन्दरियोंके साथ अस्तित्व भुवनपति भगवान् बलरामजी वहाँ विराजित होकर रास-विहार करने लगे ॥ ६ ॥

फिर यमुनाके किनारे बनमें विचरण और कीड़ा करते हुए बलदेवजीके मुख-कमलपर पसीनेकी छूँदें दिखायी देने लगीं। तब उन्होंने स्नान तथा जल-कीड़ा करनेके लिये दूरसे ही यमुनाजीको पुकारा, परंतु यमुना नहीं आयी। फिर तो बलदेवजीने क्षोषमें भरकर हलकी नोकसे यमुनाजीको सींच लिया और कहा—‘आज मैंने तुमको बुलाया, किंतु तुम मेरा अपमान करके नहीं आयी। तुम मनमाना बताव करनेवाली हो। अच्छा, अभी इस मुसलके द्वारा मैं तुम्हारे सौ ढुकड़े कर देता हूँ।’ यमुनाजीको जब बलरामजीने इस प्रकार ढाँटा, तब वे अस्थन भयभीत होकर उनके चरण-कमलोंपर फिर पड़ीं और बोलीं—‘हे लोकाभिराम राम ! हे संकरण ! बलभद्र ! हे महाबाहो ॥। मैं आपके असीम बह-पराक्रमका

नहीं जानती थी। आपके एक ही महाकपर सारा भूस्त्रम्भसङ्खल
उर्जोंके समान पहा रहता है। मैं आपके परम प्रभावसे
अनभिहृ हूँ और आपकी शरणमें आयी हूँ। आप भक्तवत्सल
हैं। मुझे छोड़ दीजिये।' इस प्रकार प्रार्थना करनेपर
गोपराज बलभद्रजीने यमुनाको छोड़ दिया और हथिनियोंके
साथ भगवान्की भाँति वे गोपियोंके साथ जलकीड़ा करने
ले। उदनन्तर उनके यमुनासे बाहर निकलनेपर यमुनाजीने
आकर उन्हें बहुत-से नील बछ और स्वर्ण तथा रत्नोंके
आभूषण मेंट किये। दुर्योधन। बलरामजीने उन सब
वस्त्राभूषणोंको पृथक्-पृथक् गोपियोंमें बांट दिया और स्वयं

नीलाम्बर तथा नवीन रत्नोंसे निर्मित स्वर्णमालाको धारण करके
ऐरावतकी भाँति विराजमान हो गये। कौरबेन्द्र। इस प्रकार
कीर्तिरत यादवभेष बलरामजीने वसन्त अमृतकी शक्तिको
व्यतीत किया। जिस प्रकार इस्तिनामुरको देखनेपर भगवान्
बलरामजीके पराक्रमका दर्शन होता है, उसी प्रकार आजहातक
यमुनाजी टेढ़े मार्गसे प्रवाहित होती हुई उनकी शक्तिको
सूचित कर रही हैं। भगवान् बलरामजीके इस रासलीलाके
प्रसङ्गको जो मनुष्य सुनता अथवा सुनाता है, वह सारे
पापोंसे मुक्त होकर परमानन्द-पदको प्राप्त होता है।
युवराज! अब क्या सुनना चाहते हो? ॥ ७—११ ॥

इस प्रकार श्रीगर्भ-सहितमें श्रीबलभद्रसङ्खके अन्तर्गत श्रीप्राद्विष्टक सुनि और दुर्योधनके संवादमें

'श्रीबलरामजीकी रासलीलाका वर्णन' नामक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

श्रीबलभद्रजीकी पूजा-पद्धति और पटल

दुर्योधनने कहा—भगवन्! आप सर्वश हैं। यह
बतानेकी कृपा कीजिये कि गोपियोंके यूथको श्रीगर्भाचार्यजीने
बलभद्र-पञ्चाङ्ग किस प्रकार प्रदान किया था ॥ १ ॥

प्राद्विष्टक सुनि बोले—कुरुराज! एक बार गर्गजी
यमुना-स्नान करनेके लिये गर्गाचलसे चलकर ब्रजपुरमें पथारे।
यमुनाजीके ठटकी छलित लताएँ पवनके प्रवाहसे हिल
रही थीं। पुर्वोंके सौरभसे मत्त द्वुष्प भ्रमोंके समूह गुंजार
कर रहे थे। इस प्रकारके यमुना-स्नानपर एक निकुञ्जके नीचे
एकान्तमें श्रीगर्भाचार्य भगवान् बलराम और श्रीकृष्णका ध्यान
करने ले। उस समय गोपियोंने आकर उनको प्रणाम
किया। उनको स्वरण हो आया कि इस पूर्वजन्मकी नागेन्द्र-
कन्याएँ हैं। तब उन्होंने बलभद्रजीको प्राप्त करनेके लिये
गर्गजीसे लेवाका साधन पूछा। कन्याओंकी इस अनुपम
भक्तिकी देखकर उनके उद्देश्यकी सिद्धिके लिये गर्गजीने
उनको पद्मिति, पठल, सोन, कवच और सहस्रनाम—यह
पञ्चाङ्ग साधन प्रदान किया। अथ बताओ, तुम और क्या
सुनना चाहते हो? ॥ २ ॥

दुर्योधनने कहा—ब्रह्मन् गुरुदेव! आप भक्तवत्सल
हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप कृपया बलरामजीकी
'पद्धति'का वर्णन कीजिये, जिसे आनकर मैं सिद्धि प्राप्त कर
सकूँ ॥ ३ ॥

श्रीप्राद्विष्टक सुनि बोले—सरासराम! जिससे महा-

प्रभु बलरामजी प्रसन्न हो जाते हैं, उस बलभद्र-पद्धतिके नियम
सुनो। वे भगवान् बलरामजी सहजमुखबाले हैं। समस्त
भुवनोंके अधीक्षक हैं। बहुत-से दान और तीर्थसेवनसे
उनकी प्राप्ति नहीं हो सकती। वे तो केवल 'अनन्य-भक्ति'से
प्राप्त होते हैं। श्रीहरिके बड़े भाई उन बलरामजीकी भक्ति
सप्तसङ्गके द्वारा शीघ्र प्राप्त हो सकती है। जिनमें प्रेमलक्षण
भक्तिका उदय हो जाता है, वे ही सिद्ध पुरुष हैं। ब्राह्म-
मुहूर्तमें उठते ही भगवान् राम-कृष्णके नामोंका उच्चारण करे,
फिर गुरुदेवको और पृथ्वीको (मनसे) प्रणाम करके पृथ्वीपर पैर
रखें। तदनन्तर स्नान-आचमन करके निर्जनमें कुशासनपर
बैठ जाय, दोनों हाथ गोदमें रख ले और अपनी नाशिकाके
अग्रभागपर हृषि जमाकर परमदेव सनातन हरि भगवान्
श्रीबलरामजीका ध्यान करे। उनका गौरवर्ण है। उन्होंने
नीलाम्बर धारण कर रखा है। वे बनमालासे विभूषित हैं। बहुती
मनमोहन मूर्ति है। ऐसे हल्दधर भगवान् बलरामजीको प्रसन्न
करनेके लिये नियम उनका ध्यान करना चाहिये। धावकको
चाहिये कि वह बाह्य-भीतरसे पवित्र हो, मौन-जागरण करे और
क्रोधका ल्यग करके तीनों कालमें संच्चा-बन्दन करे। यत्वमें
कोई कामना, लोभ और गौह न रहे। सत्यभाषण करे।
जितेन्द्रिय होकर एक बार भाव पाशका भोजन करे। दो
बार जलपान करे। पवित्र रेशमी बछ पहने और लग्निपर
शयन करे। इस प्रकार हः शशुओपर विजय प्राप्त कर

एकाग्र मनसे भजन करनेपर समूर्ख कारणोंके कारण श्रवि-
पूर्णतम साक्षात् भगवान् श्रीसंकर्षणजी उदाके लिये प्रसन्न हो
जाने हैं । महाशुद्ध कौरबराज ! इस प्रकार मैंने महात्मा
बलभद्रजीवी 'पद्मति'का वर्णन किया, अब तुम और क्या
सुनना चाहते हो ! ॥ ४-१४ ॥

‘तुर्योधित्वे कहा—मुनिराज ! अब देवदेव बलरामजी
का 'पटल' सुनाइये, जिसका साधन करके मैं मदा उनके
चरण-कमलोंकी सेवा कर लङूँ ॥ १५ ॥

प्रात्यविषयाक मुनि बोले—भगवान् बलरामजीका
पटल महान् गोपनीय और सिद्धि प्रदान करनेवाला है । इसे
पहले ब्राह्मजीने एकान्त स्थानमें महात्मा नारदजीको
दिया था । पहले प्रणव (ॐ) लिखकर फिर कामचीज
(कली) लिखना चाहिये । तत्पश्चात् 'कालिन्दीमेदन'
और 'संकर्षण'—इन दो पदोंको चतुर्घन्त लिखकर
अन्तमें स्वाहा जोड़ देना चाहिये । यो करनेपर 'ॐ' कली
कालिन्दीमेदनाय संकर्षणाय 'स्वाहा'—यह मन्त्र बन जाता
है । यह बोड्डाक्षर मन्त्रराज ब्राह्मजीके द्वारा कहा गया है ।
मनुष्यको ब्रत केरल इस मन्त्रका एक लाल सोलह हजार जप
करना चाहिये । इस प्रकार करनेपर साक्ष इस लोक और पर-
लोकमें परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता है, इसमें कोई संदेह
नहीं । मन्त्र-जपके बाद विशेष रूपसे महापूजा करनी
चाहिये । (उसका विधान यह है—) राजन् । मनोरम
स्थापितलपर कर्मिकास्थित के सरोंसे उज्ज्वल बत्तीस दलोंकाला
एक सुन्दर पाँच रंगका कमल अछित करे । उसपर मङ्गलमय
स्वर्ण-सिंहासन रखें । उसके ऊपर बलरामजीकी परम ओह
मूर्तिको पथराकर उनकी भर्तीमाँसि पूजा करे । ॐ नमो
भगवते तुर्योधेवाय बासुदेवाय संकर्षणाय सहकारवाय
महामन्त्राय स्वाहा—इस मन्त्रसे शिखा-बन्धन करे ।
तत्पश्चात् श्रीबलरामजीको सब दिसाओंमें प्रणाम करके
उनके सम्मुख अस्त्र विनयपूर्वक बैठ जाय । फिर 'ॐ'
जय जयानन्द बलभद्र कामपात्र ताकाश कालिन्दीमेदन
आविराविर्द्ध मन सम्मुखी भव ।' इसको पढ़ार
आवाहन कर ॥ १६-२२ ॥

तदनन्तर 'नमस्तेऽस्तु सौरपात्रे हलसुसकार रौहिष्येव
श्रीकाम्बर हाम देवतीरमय नमस्तेऽस्तु ।' इस मन्त्रके द्वारा

इस प्रकार श्रीभगवान्-सहितमें श्रीकलभद्रजीके अस्तर्गत श्रीप्रात्यहिष्यक मुनि और तुर्योधित्वके संवादमें 'श्रीबलभद्रजीकी
मूर्ति-प्राप्ति और पटल' बास्तव इसवाँ आज्ञाम पूरा हुआ ॥ १० ॥

आसन, पात्र, अर्द्ध, स्वानीय, योगदीत, बल, भूषण, मन्त्र,
अक्षत, पुष्प, मधुपर्क, धूप, हीप, नैवेद्य, पुष्पाङ्गुलि आदि
उपचार प्रदान करे । अनन्तर ॐ विष्णुवे मधुसूक्षमाय
बामनाय त्रिविक्रमाय श्रीधराय हरीकेशाय वधनामाय
दामोदराय संकर्षणाय बासुदेवाय प्रसुम्नायानिश्वायार्दिवेशाय
पुरुषोत्तमाय श्रीकृष्णाय नमः ।'

—इस मन्त्रके द्वारा पाद, गुलफ, जानु, ऊरु, कटि,
उदर, पार्श्व, पीठ, भुजा, कंधे, अधर, नेत्र और मस्तक
आदि सर्वाङ्गकी पृथक्-पृथक् पूजा करे । इसके बाद शहू,
चक, गदा, पदम्, अंसि, धनुष, वेत्र, हल, मुसल, कौस्तुभ,
बनमाला, श्रीवत्स, पीताम्बर, नीलाम्बर बंशी, वेत्र, गदाधार
और तालाशु व्यजरे चिह्नित रथ, दाढ़क, तुमति, कुमद,
कुमुदाशु और श्रीदामा—इन शब्दोंके पहले ॐ और अन्तमें
त्वर्यों विभक्ति लगाकर अन्तमें 'नमः' शब्द जोड़ दे । इसले
'ॐ शङ्कराय नमः', 'ॐ चक्राय नमः'—ऐसा रूप बन जायगा ।
इन मन्त्रोंके द्वारा सबका पूजन करे । इसी प्रकार कमलके लघ
ओर अपने-अपने स्थानपर विष्वकूर्मेन, वेदव्यास, दुर्गा, गणेश,
दिक्षात् और नवमी आदिका भी पृथक्-पृथक् पूजन करना
चाहिये । तदनन्तर परिसमूहन आदि स्थालीपाकके विधानसे
अग्निदेवकी पूजा करके पूर्वोक्त ॐ कली कालिन्दीमेदनाय
संकर्षणाय स्वाहा ।—यह मन्त्रसे पचीत हजार आहुतियों दे ।
फिर इसी प्रकार ॐ नमो भगवते बासुदेवाय—इस द्वादशाक्षर
मन्त्रसे आठ हजार और चतुर्घन्त इस लक्षण नमो भगवते
तुर्यं बासुदेवाय साक्षिणे । प्रसुम्नायानिश्वाय नमः संकर्षणाय
ष ॥—इस मन्त्रसे आठ हजार आहुतियों दे । इसके बाद
अग्निकी प्रदक्षिणा करे और आचार्यको नमस्कार करके
उन्हें सूत्यवान् वज्र, स्वर्णके आभूषण, ताम्रपात्र, सधत्ता
गौ और स्वर्ण आदि दक्षिणा देकर प्रसन्न करे । फिर
ब्राह्मणोंका पूजन-स्वाक्षर करके उनको तथा नगरवासी जनोंको
ओजन कराये । तत्पश्चात् आचार्यको प्रणाम वरे । जो
पुरुष इस पटल पद्मतिके अनुसार श्रीबलरामजीका स्वरण-
पूजन करता है, वह इस लोक और परलोकमें विविध सिद्धियों
और समृद्धियोंके द्वारा सुसम्पन्न होता है । हे राजन् । भगवान्
बलरामजीका यह गोपनीय और सर्वतिदिप्रद 'पटल' तुमको
सुना दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥२३-२५॥

ग्यारहवाँ अध्याय

श्रीबलरामस्तोत्रं

तुयोधन्वे कहा—महामुनि प्राद्विषपाकजी ! अब भगवान् श्रीबलरामजीका वह स्तोत्र, जो साक्षात् समस्त सिद्धियोंको प्रदान करनेवाला है, कुपारूपक मुझसे कहिये ॥ १ ॥

प्राद्विषपाक मुनि बोले—राजन् ! बलरामजीका स्तोत्र श्रीवेदव्यासजीके द्वारा प्रणीत है, यह मनुष्योंको समस्त सिद्धियाँ और मोक्ष भी प्रदान करनेवाला है । इस शुभ स्वराजको तुम सुनो ॥ २ ॥

“देवादिदेव ! मगवन् ! कामपाल ! आपको नमस्कार ! हे बलरामजी ! आप साक्षात् अनन्त और शेषजी हैं, आपको नमस्कार । आप पृथ्वीको भारण करनेवाले, परिपूर्ण ज्ञान, स्वयं प्रकाशमान, हाथमें हल लिये हुए, हजार मस्तकोंसे युक्त संकरण हैं । आपको नित्य मेरे नमस्कार है । पुरुषब्रह्म बलरामजी । आप भगवान्, अन्युतके बड़े भाई हैं, रेषाँके स्वामी हैं, इह आपका शश है और आप प्रकृत्यासुरक्ष संहार करनेवाले हैं । आप मेरी रक्षा करें । भगवान् बलराम, बलभ्रष्ट और तालव्यजको मेरे बार-बार नमस्कार हैं । आप गौरवर्ख हैं,

इस प्रकार श्रीराम-सहितमें श्रीबलरामदर्शनके अन्तर्गत श्रीप्राद्विषपाक मुनि और तुयोधनके संवादमें
श्रीबलरामस्तोत्रं नामक म्यारहाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

* तुयोधन उच्चाच—

स्तोत्रं श्रीबलदेवस्त्र प्राद्विषपाक महामुने । वह मी हृष्या साक्षात् सर्वसिद्धिमव्यक्तम् ॥

प्राद्विषपाक उच्चाच—

स्वराजं तु रामस्य वेदव्याससहनं शुभम् । सर्वसिद्धिमदं राजन् शुण कैवल्यं वृणाम् ॥

देवादिदेव भगवन् कामपाल नमोऽस्तु ते । नमोऽनन्ताय शैशव साक्षात्त्वामाव ते नमः ॥

भराभराय पूर्णाय स्वपान्ने सीरपाण्ये । दाहकशिरसे नित्यं नमः संकरंपाव ते ॥

देवतिरप्यं स्वं वे बलदेवोऽस्तुताप्रभः । इलयुध प्रलभ्यन पाहि मी पुरुषेत्तम् ॥

वशव्य बलभ्रष्ट तालव्याय नमो नमः । नीलाभराय गौराय रौद्रिण्याय ते नमः ॥

देवुकारिसुहिक्षारिः कृद्यरिष्यवलन्तकः । इवम्यरिः कृपकर्णारिः कृम्याणकारित्यमेव हि ॥

काकिन्दीवेदनोऽसि त्वं इस्तिनापुरकर्पकः । हिविदारिषीदैदौ ब्रह्मण्डलमण्डलः ॥

कंतज्ञातुष्टाहन्त्रासि तीर्थयात्राकरः प्रशुः । तुयोधनहुरः साक्षात् पाहि प्रभी स्वनः ॥

अथ ज्ञान्युन देव परापर स्वपान्न दिग्भगवान्मुनः । क्षम्युनीम्दकारीक्षकराय ते तुसिणे वलिणे हलिणे नमः ॥

५: पठेत् सततं सत्वनं नरः स तु श्रेरः परमं वक्ष्यावैत् । क्षम्यति सर्वज्ञं स्वरित्यनं भवति तत्य भन्नं स्वजनं बनम् ॥

(गण०, कलम० ११ । १—११)

बारहवाँ अध्याय

श्रीबलदाम-कवच

कुशोर्घ्नमे कहा—महामुने । भीमान् गर्णाचार्यने
गोपियोंको जो स्व तरहसे रक्षा करनेवाला दिव्य कवच
दिया था, आप् उसे मुक्तको प्रदान कीजिये ॥ १ ॥

ग्रामद्विषयक मुनि बोले—मनुष्य जलमें स्नान करके
देशमी वस्त्र धारण करे, कुशासनपर बैठे और हाथमें
कुशकी पवित्री पहनकर मन्त्रका शोषण करे । तदनन्तर
अन्युताप्रत्य भगवान् बलदामजीका स्मरण करके उहें
प्रणाम करे । फिर मनको एकाप्र करके मन्त्ररूपी कवचको
धारण करे ॥ २ ॥

जो भगवान् गोलोकधामके अधिष्ठित हैं, जिनका कीर्तन
परम पवित्र है, वे परमेश्वर शशुभेंसे मेरी रक्षा करें ।
जिनके मस्तकपर भूमण्डल-सरसोंकी तरह प्रतीत होता
है, वे भगवान् भूमण्डलमें मेरी रक्षा करें । इलधर-
भगवान् सेनामें और युद्धमें सदा मेरी रक्षा करें ।
मुत्सुलधारी भगवान् दुर्गमें और आदिदेव भगवान् संकर्षण
वनमें मेरी रक्षा करें । यमुनाके प्रवाहको रोकनेवाले
भगवान् जलमें और नीलाम्बरधारी भगवान् अग्निमें
निरन्तर मेरी रक्षा करें । भगवान् राम वायु (आँखी)में
मेरी रक्षा करें । शूल्य (आकाश)में भगवान् बलदेव
और महान् समुद्रमें अनन्तबुपु भगवान् मेरी सदा रक्षा
करें । पर्वतोंपर भगवान् चानुदेव मेरी रक्षा करें । घोर

इस प्रकार श्रीगर्ण-संहितामें श्रीबलद्वामपद्मके
संवादमें 'श्रीबलदामकवच' नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

* कुशोर्घ्न उचाच—

गोपीन्ध्यः कवचं दत्तं गर्णाचार्येण भीमता । सर्वरक्षाकरं दिव्यं हैि महं महामुने ॥

ग्रामद्विषयक उचाच—

स्नात्या जले श्वीम्भरः कुशासनः पवित्राणिः कृष्णवासाङ्गः ।

स्मृत्याथ नत्वा बलमच्युताप्रत्यं संचारयेद् वर्तं समाहितो भवेत् ॥

गोलोकधामाधिष्ठितः परेश्वरः परेतु मां पातु पवित्रकीर्तनः ।

भूमण्डलं सर्वपवर् विलक्षणे यन्मूर्धिन आं पातु स भूमिवाहके ॥

सेनातु मां रक्षतु सीराणिकुर्वे सदा रक्षतु मां इली च ।

दुर्गेषु चोच्यान्मुसर्की सदा मी बनेतु संकाणि आविदेषः ॥

कलिम्बजावेगहरो ज्ञेतु नीलाम्बरे रक्षतु मां सदामी ।

वायी च रामोऽनुषु ये वक्ष्य महार्णवेऽनन्तबुपुः सदा मात् ॥

विवादमें हजार मस्तकधाले प्रभु, ऐसमें श्रीरोहिणीनन्दन तथा
विषतिमें भगवान् क्षमपाल मेरी रक्षा करें । ऐनुकासुरके
शशु भगवान् काम (कामना) से मेरी सदा रक्षा करें ।
द्विविदपर प्रहार करनेवाले भगवान् क्रोधने, वल्लके शशु
भगवान् लोभसे और, जरासंधके शशु भगवान् मोहसे
सदा मेरी रक्षा करें । भगवान् द्वृष्णिधुर्य प्रातःकालके
समय, भगवान् मथुरापुरी-नरेश पूर्वक (प्रहर दिन चढ़े),
गोपसदा मध्याह्नमें और खराद् भगवान् पराह्न (दिनके पिछले
पहर) में सदा मेरी रक्षा करें । भगवान् फणीन्द्र सायंकालमें
तथा परात्पर प्रदोषके समय मेरी सदा रक्षा करें । मर्यादिं
और प्रत्यूषकालके समय भगवान् दुरन्तदीर्घ मेरी सदा
रक्षा करें । कोनेमें रेवतीपति, दिशाओंमें प्रलभ्वासुरके
शशु, नीचे यदूहाः, ऊपर शलभद और दूर अथवा पाव
सब द्विशाओंमें भगवान् बलदेवजी मेरी सदा रक्षा करें ।
भीतरसे पुरुषोत्तम और बाहरसे महाशङ्क नागेन्द्रलीला
मेरी सदा रक्षा करें और पूर्ण परमेश्वर महान् हरि स्वर्यं
सदा-सर्वदा मेरे हृदयमें निवास करते हुए उल्काष
रूपमें सदा मेरी रक्षा करें ॥ ३-११ ॥

श्रीबलभद्रजीके इस उत्तम कवचको देव तथा
असुरोंके भयका नाश करनेवाला, पापरूप ईर्ष्यनको
जलानेके लिये साक्षात् अनिरुप और विघ्नोंके
घटका विनाश करनेवाल सिद्धासनरूप समझेः ॥ १२ ॥

तेरहाँ आयत

बलभद्र-सहसनाम

तुर्णोधने कहा—महामुने प्राङ्गविपाकर्ता । भगवान् बलभद्रके सहसनामको, जो देवताओंके लिये भी गोपनीय—
अशात है, मुझसे कहिये ॥ १ ॥

प्राङ्गविपाक सुनि थोले—साधु, साधु ! महाराज !
तुम्हारा यश संकर्षण निर्मल है । तुमने दिसके लिये प्रश्न किया
है, वह परम देवदुर्लभ सहसनाम गर्गजीके द्वारा कथित है ।
उन दिव्य सहस्र नामोंका वर्णन मैं तुम्हारे सामने कर रहा
हूँ । गर्गाचार्यजीने यमुनाजीके मङ्गलमय टटपर यह सहसनाम
गोपियोंको प्रदान किया था ॥ २ ॥

विनियोग

‘१. अत्य श्रीकल्पभृत्युगमसहस्रनामस्त्रियस्य गर्गाचार्य
विवितः, २. तुम्हुपुष्टुपुष्टुः, ३. संकर्षणः परमात्मा देवता, ४. बलभद्र इति
वीजाः, ५. देवतीरमण इति वाकिः, ६. अनन्त दृष्टि कीरकम्, ७. बलभद्र-
श्रीतिर्थं वाये विनियोगः’ ॥ ३ ॥

(इस बलभद्रसहस्रनामस्त्रियस्य गर्गाचार्य श्रूति
है, अनुष्टुपुष्टुपुष्टुः, परमात्मा संकर्षण देवता है, बलभद्र
वीज है, देवतीरमण शक्ति है, अनन्त दृष्टि कीरकम्, बलभद्र-
श्रीतिर्थं वाये विनियोग है ॥ ३ ॥)

इसको पढ़कर सहसनाम-पाठके लिये विनियोगका जल
छोड़ दे । तत्पश्चात् इस प्रकार ध्यान करे—

ध्यान

स्फुरद्यमलकिरीटं किञ्चिणीकल्पाणाहै
चक्रदलकर्पोरं कुण्डलश्रेष्ठसाक्षात् ।
तुहिनगिरिमनोऽनं नीकलेषाम्बरपालं
इलमुसलविशालं कामपालं समीक्षे ॥ ४ ॥

जिनका निर्मल किरीट दमक रहा है, जो करधनी तथा
कङ्गणोंसे अलंकृत हैं, चक्रल अलकाकर्णीसे जिनके कपोल
सुशोभित हैं, जिनका सुख-कमल कुण्डलोंसे देवीवासन है
जो हिमाचल गिरिके समान मनोहर उच्चवल हैं तथा नीलाम्बर
धारण किये हुए हैं । विशाल इलमुसल धारण करनेवाले उन
भगवान् कामपाल बलभद्रजीका मैं सबन करता हूँ ॥ ४ ॥

सहस्रनाम आरम्भ

१. ॐ बलभद्र, २. रामभद्र, ३. राम, ४. संकर्षण,
५. अनुष्टुपु, ६. देवतीरमण, ७. देव, ८. कामपाल,
९. हलायुध ॥ ५ ॥

श्रीवादुदेवोऽवतु पवर्तेतु सहस्रार्थं च महाविवादे ।
तेगेतु मा रक्षतु दीदिणेयो मा कामपालोऽवतु वा विपत्तु ॥
कामाद् सदा रक्षतु वेनुकारिः कोशाद् सदा मा दिविविवादी ।
लेवाद् सदा रक्षतु वस्त्वारिमोहाद् सदा मा किल महाभारिः ॥
प्रातः सदा रक्षतु इष्टिषुर्यः प्राते सदा मा मधुरपुरेणः ।
मध्यदिने गोपसखः प्रपातु वस्त्राद् पराहेऽवतु मा सदैव ॥
साय फणीन्द्रोऽवतु मा सदैव परात्परो रक्षतु मा प्रदेषे ।
पूर्णे निशीवे च दुर्जनवीर्यः प्रत्यूषकाकेऽवतु मा सदैव ॥
विवितु मा रक्षतु देवतीपतिरिद्धु प्रत्यन्नासिरिरो यद्ददृः ।
अद्व्यं सदा मा बलभद्र आराद् तथा समन्वाद् बलदेव एव दि ॥
अमः सदाव्याद् पुरुषोत्तमो वहिनीमेष्वक्षेत्रोऽवतु मा वहावकः ।
सदानन्दरम्भं च वसन् इरिः स्वयं प्रपातु पूर्णः परमेष्वक्षेत्रे महाम् ॥
देवस्त्रुत्युग्मा भवनाशनं च हुन्नाशनं पापवैच्यनाशनम् ।
विनाशनं विष्ववट्टम् विदि सिद्धासनं वर्षवरं ॥ बलभद्रः ॥

(गर्ग०, बलभद्र० १३ । १-१२)

१६. नीलाम्बर, १७. श्वेतवर्ण, १८. वलदेव,
१९. अष्टुताम्बर, २०. प्रलम्बिन, २१. महावीर,
२२. दीहिष्य, २३. प्रतापदान ॥ ६ ॥

२४. तालाङ्ग, २५. मुखली, २०. हली, २१. हरि,
२२. यनुकर, २३. वली, २४. सीरपणि, २५. पश-
पणि, २६. लगुडी, २७. वेणुवादन ॥ ७ ॥

२८. कालिन्दीमेदन, २९. थीर, ३०. थल, ३१.
प्रबल, ३२. ऊर्ज्ञग, ३३. वासुदेवकला, ३४. अनम्त,
३५. सहस्रवदन, ३६. लराद् ॥ ८ ॥

३७. वसु, ३८. वसुमती, ३९. भर्ती, ४०. वासुदेव,
४१. वसुरम, ४२. यदूरम, ४३. यादवेन्द्र, ४४.
माधव, ४५. वृष्णिवल्लभ ॥ ९ ॥

४६. द्वारकेश, ४७. मायुरेश, ४८. दानी, ४९.
मानी, ५०. महामना, ५१. पूर्ण, ५२. पुराण, ५३.
पुरुष, ५४. परेश, ५५. परमेश्वर ॥ १० ॥

५६. परिपूर्णतम, ५७. साकाश, परम, ५८.
पुरुषोत्तम, ५९. अनम्त, ६०. शाश्वत, ६१. शेष,
६२. भगवान्, ६३. प्रकृते: पर ॥ ११ ॥

६४. जीवात्मा, ६५. परमात्मा, ६६. अन्त-
रात्मा, ६७. ध्रुव, ६८. अव्यय, ६९. चतुर्भूह, ७०.
चतुर्वेद, ७१. चतुर्मूर्ति, ७२. चतुर्यथ ॥ १२ ॥

७३. प्रधान, ७४. प्रकृति, ७५. साक्षी, ७६.
संघात, ७७. संघवान्, ७८. सखी, ७९. महामना,
८०. सुखिसख, ८१. चेत, ८२. अहंकार, ८३.
आकृत ॥ १३ ॥

८४. इन्द्रियेश, ८५. वेष्टा, ८६. आत्मा, ८७.
आम, ८८. कर्म, ८९. इर्म, ९०. अद्वितीय, ९१. द्वितीय,
९२. विराकार, ९३. विरक्षम ॥ १४ ॥

९४. विराद्, ९५. सज्जाद्, ९६. महैष,
९७. आधार, ९८. स्वास्तु, ९९. वरिष्णुमान्,
१००. फणीन्द्र, १०१. फणिराज, १०२. सहस्र-
फणिमण्डित ॥ १५ ॥

१०३. फणीश्वर, १०४. फणी, १०५. द्वृक्ति,
१०६. घूस्तारी, १०७. चीत्कर, १०८. ग्रन्थ, १०९.
गणिहार, ११०. गणिधर, १११. वितली, ११२.
सुतली, ११३. तरी ॥ १६ ॥

११४. ब्रह्मली, ११५. चुतकेश, ११६. वायुक,
११७. तलातल, ११८. रसातल, ११९. भेसितल,
१२०. सुरदल, १२१. महातल ॥ १७ ॥

१२२. वासुकि, १२३. शश्वद्युदाम, १२४. वेष्टवत्,
१२५. धनंजय, १२६. कमलाश्व, १२७. वेगतर,
१२८. धृतराष्ट्र, १२९. महामुख ॥ १८ ॥

१३०. वाहणीमदमत्ताङ्ग, १३१. मदधूर्णित-
लोचन, १३२. पश्चात्, १३३. पश्चमाली, १३४. वस्त्राली,
१३५. मधुध्रवा ॥ १९ ॥

१३६. कोटिकंदपलाशव्य, १३७. नारकात्मा-
समर्चित, १३८. नूपुरी, १३९. कटिसूची, १४०.
कटकी, १४१. कलकाकृष्णी ॥ २० ॥

१४२. सुकुटी, १४३. कुष्ठली, १४४. दण्डी,
१४५. शिखण्डी, १४६. लक्ष्मणण्डली, १४७. कलि,
१४८. कलिपिय, १४९. काल, १५०. निवार-
कवचेश्वर ॥ २१ ॥

१५१. संहारकृत, १५२. रुद्रवत्, १५३.
कालानि, १५४. प्रलय, १५५. लय, १५६. महाहि,
१५७. पाणिनि, १५८. शास्त्राकार, १५९. भाष्यकार,
१६०. पतञ्जलि ॥ २२ ॥

१६१. कात्यायन, १६२. फणिकामू, १६३.
स्तोदायन, १६४. उरंगम, १६५. वैकुण्ठ, १६६.
यात्रिक, १६७. यह, १६८. वामन, १६९. हरिण,
१७०. हरि ॥ २३ ॥

१७१. कृष्ण, १७२. विष्णु, १७३. महाविष्णु,
१७४. ग्रभविष्णु, १७५. विशेषवित, १७६. हंस,
१७७. योगेश्वर, १७८. कूर्म, १७९. बाराह, १८०.
नारद, १८१. मुति ॥ २४ ॥

१८२. सगक, १८३. कपिल, १८४. मत्य, १८५.
कमठ, १८६. वेष्मङ्गल, १८७. दत्तवेय, १८८. पृष्ठ,
१८९. दृढ, १९०. ग्रृष्णम, १९१. भार्गवोत्तम ॥ २५ ॥

१९२. धन्वस्त्रदि, १९३. नृसिंह, १९४. कलिक,
१९५. नारायण, १९६. नर, १९७. रामचन्द्र,
१९८. राघवेन्द्र, १९९. कोसलेन्द्र, २००.
रघुवह ॥ २६ ॥

२०१. काकुतस्य, २०२. करुणासिंशु, २०३.
राजेन्द्र, २०४. सर्वसहज, २०५. शूर, २०६.

वासरपि, २०७. आसा, २०८. कौसल्यानन्दवर्जन
॥ २७ ॥

२०९. सौमित्रि, २१०. भरत, २११. धन्वी,
२१२. शत्रुघ्नि, २१३. शत्रुघ्नापत्र, २१४. लिप्ती,
२१५. कवची, २१६. शाही, २१७. शरी, २१८.
उयाहतकोष्ठक ॥ २८ ॥

२१९. वस्त्रगोधाकुलिक्षण, २२०. शाम्भुकोदण्ड-
भल्ल, २२१. यक्षज्ञाता, २२२. यक्षभर्ता, २२३.
मारीचिदधकारक ॥ २९ ॥

२२४. असुरारि, २२५. ताढ़कारि, २२६.
विभीषणसहायकृत, २२७. पितॄवाक्यकर, २२८.
हर्षी, २२९. विराधारि, २३०. वनेश्वर ॥ ३० ॥

२३१. मुलि, २३२. मुलिप्रिय, २३३. चिन्ह-
कूट्टरप्यनिवासकृत, २३४. कवल्यहा, २३५.
दण्डकेश, २३६. राम, २३७. राजीवलोचन ॥ ३१ ॥

२३८. मतक्ष, २३९. धनसंचारी, २४०. नेता,
२४१. पञ्चवटीपति, २४२. सुश्रीव, २४३. सुश्रीव-
सखा, २४४. हनुमत्यीतमानस ॥ ३२ ॥

२४५. सेतुबन्ध, २४६. रावणारि, २४७.
लक्षावहनतप्तपर, २४८. रावण्यरि, २४९. पुण्यकस्य,
२५०. आनन्दीविरहातुर ॥ ३३ ॥

२५१. अयोध्याधिपति, २५२. श्रीमान्, २५३.
लघणारि, २५४. सुरार्चित, २५५. सूर्यवंशी, २५६.
चम्द्रवंशी, २५७. वंशीशार्द्धविशारद ॥ ३४ ॥

२५८. गोपति, २५९. गोपवृन्देश, २६०. गोप,
२६१. गोपीशातावृत, २६२. गोकुलेश, २६३.
गोपपुत्र, २६४. गोपाल, २६५. गोपणाथय ॥ ३५ ॥

२६६. पूर्णारि, २६७. वकारि, २६८. तृणावन-
विषातक, २६९. अष्टारि, २७०. धेनुकारि, २७१.
ग्रहस्त्रारि, २७२. वज्रेश्वर ॥ ३६ ॥

२७३. अरिष्टहाँ, २७४. केशिशाक्षु, २७५.
स्वेमासुरविशाशकृत, २७६. अग्निपान, २७७.
वुम्पान, २७८. कृष्णावनलता, २७९. आधित ॥ ३७ ॥

२८०. यशोमतीसुन, २८१. भवय, २८२.
रेहिणीलालिता २८३. शिशु, २८४. रासगण्डल-
मध्यस्थ, २८५. रासगण्डलमध्यस्थ ॥ ३८ ॥

२८६. गोपिकाशातयूथार्थी, २८७. लक्ष्मी-
धोषेष्ट, २८८. गोवर्द्धनसमुद्धर्ता, २८९. दाशुजित,
२९०. वज्ररक्षक ॥ ३९ ॥

२९१. वृषभानुष्ठर, २९२. वन्द, २९३. आलम्ब,
२९४. नन्दवर्जन, २९५. नन्दराजसुत, २९६. श्रीषा,
२९७. कंसारि, २९८. कालियान्तक ॥ ४० ॥

२९९. रजकारि, ३००. मुष्टिकारि, ३०१.
कंसकोदण्डभजन, ३०२. चाणूरारि, ३०३. कूटहस्ता,
३०४. शलारि, ३०५. तोशालान्तक ॥ ४१ ॥

३०६. कंसभातुनिहस्ता, ३०७. मल्लयुद्धप्रवर्तक,
३०८. गजहस्ता, ३०९. कंसहस्ता, ३१०. कालहस्ता,
३११. कलहस्ता ॥ ४२ ॥

३१२. मागधारि, ३१३. यवनहा, ३१४.
पाण्डुपुत्रसहायकृत, ३१५. चतुर्सुज, ३१६.
द्यामलाङ्ग, ३१७. सौस्य, ३१८. औषगविभित्य
॥ ४३ ॥

३१९. युद्धभृत, ३२०. उद्धवसखा, ३२१. मन्त्री,
३२२. मन्त्रविशारद, ३२३. वीरहा, ३२४. वीरमथन,
३२५. शत्रुघ्नर, ३२६. वक्षधर, ३२७. गदाधर
॥ ४४ ॥

३२८. रेवतीचित्तहर्ता, ३२९. रेवतीहर्षवर्जन,
३३०. रेवतीग्राणनाथ, ३३१. रेवतीप्रियकारक ॥ ४५ ॥

३३२. ज्योति, ३३३. ज्योतिष्मतीभर्ता, ३३४.
रैवताद्रिविहारकृत, ३३५. धृतिनाथ, ३३६.
धनाध्यक्ष, ३३७. दानाध्यक्ष, ३३८. धनेश्वर ॥ ४६ ॥

३३९. मैथिलार्चितपादाब्ज, ३४०. मानद,
३४१. भक्तवत्सल, ३४२. दुर्योधनगुरु, ३४३.
गुर्वी, ३४४. गदाशिक्षाकर, ३४५. कमी ॥ ४७ ॥

३४६. मुरारि, ३४७. मदन, ३४८. मद्य,
३४९. अनिरुद्ध, ३५०. धन्विनांवर, ३५१. कलपवृक्ष,
३५२. कलपवृक्षी, ३५३. कलपवृक्षवनप्रभु ॥ ४८ ॥

३५४. स्यमन्तकमणि, ३५५. माम्य, ३५६.
गाण्डीवी, ३५७. कौरबेश्वर, ३५८. कूप्पराज-
खण्डनकर, ३५९. कूप्पराजप्रहारकृत ॥ ४९ ॥

३६०. सेव्य, ३६१. रेवतजामता, ३६२.
मधुसेवित, ३६३. माधवसेवित, ३६४. कलित,

३६५. पुष्टसर्वार्थ, ३६६. हष, ३६७. पुष, ३६८.
प्रहर्षित ॥ ५० ॥

३६९. वाराणसीगत, ३७०. कुड़, ३७१. सर्व,
३७२. पौष्ट्रकधारक, ३७३. सुमन्दी, ३७४. शिखरी,
३७५. शिल्पी, ३७६. द्विविदाङ्गनिषूदन ॥ ५१ ॥

३७७. हस्तिनापुरसंकर्षी, ३७८. रथी, ३७९.
कौवपूजित, ३८०. विश्वकर्मा, ३८१. विश्वधर्मा,
३८२. वेवशर्मा, ३८३. दयानिधि ॥ ५२ ॥

३८४. महाराज, ३८५. सुखधर, ३८६.
महाराजोपलक्षण, ३८७. सिद्धर्गीत, ३८८. सिद्धकथ,
३८९. शुक्लचामरवीजित ॥ ५३ ॥

३९०. ताराक्ष, ३९१. करिनास, ३९२. विश्वोष्ट,
३९३. सुस्मितच्छवि, ३९४. करीन्द्र, ३९५.
कर्दोर्मण्ड, ३९६. प्रचण्ड, ३९७. मेघमण्डल ॥ ५४ ॥

३९८. कणाटवक्षा, ३९९. पीनांस, ४००. पशपाद,
४०१. स्फुरवृद्धि, ४०२. महाविभूति, ४०३. भूतेश,
४०४. बन्धमोक्षी, ४०५. समीक्षण ॥ ५५ ॥

४०६. वैद्यशकु, ४०७. रात्रुसंध, ४०८. वन्दवक
निषूदक, ४०९. अजातशकु, ४१०. पापाम, ४११.
हरिदाससहायकृत ॥ ५६ ॥

४१२. शालबाहु, ४१३. शालवहन्ता, ४१४.
तीर्थयार्थी, ४१५. जनेश्वर, ४१६. नैमित्यारण्ययाकार्यी,
४१७. गोमतीतीरवासकृत ॥ ५७ ॥

४१८. गणकीस्नानवान, ४१९. कम्बी,
४२०. वैजयन्तीविराजित, ४२१. अमलान, ४२२.
पक्षजधर, ४२३. विषादी, ४२४. शोणसंज्ञुत ॥ ५८ ॥

४२५. प्रयागसीर्थराज, ४२६. सरयू, ४२७.
सेतुबन्धन, ४२८. गयाशिर, ४२९. धनद, ४३०.
पौलस्त्य, ४३१. पुलवाम ॥ ५९ ॥

४३२. गङ्गासागरसङ्गार्थी, ४३३. सप्तगोदावरी
पति, ४३४. वेणी, ४३५. भीमरथी, ४३६. गोदा,
४३७. तात्पर्णी, ४३८. वटोदका ॥ ६० ॥

४३९. हलमाला, ४४०. महापुण्या, ४४१.
कलेशी, ४४२. पवसिनी, ४४३. प्रतीकी, ४४४.
सुश्रधा, ४४५. वेणी, ४४६. त्रिवेणी, ४४७.
सरयूपमा ॥ ६१ ॥

४४८. कल्पा, ४४९. पक्षा, ४४१०. गर्वदा,
४४१. गङ्गा, ४४२. भागीरथी, ४४३. लक्षी,
४४४. सिद्धधर्म, ४४५. प्रभास्त्र, ४४६. तिन्दु,
४४७. विन्दुसरोवर ॥ ६२ ॥

४४८. पुष्कर, ४४९. सैन्धव, ४५०. जम्बू,
४५१. नरनारायणाश्रम, ४५२. कुरुक्षेत्रपति, ४५३.
राम, ४५४. जामदग्न्य, ४५५. महामुनि ॥ ६३ ॥

४५६. इत्यलात्मजहन्ता, ४५७. सुदामा, ४५८.
सौख्यदायक, ४५९. विश्वजित्, ४६०. विश्वनाथ,
४६१. त्रिलोकविजयी, ४६२. जयी ॥ ६४ ॥

४६३. वसन्तमातृतीकर्षी, ४६४. गद, ४६५.
गद, ४६६. गदाप्रज, ४६७. गुणार्णव, ४६८.
गुणनिधि, ४६९. गुणपात्री, ४७०. गुणाकर ॥ ६५ ॥

४७१. रङ्गबल्ली, ४७२. जलाकार, ४७३. निर्मुण,
४७४. सगुण, ४७५. वृहत्, ४७६. हष, ४७७. भुव,
४८८. भवत्, ४८९. भूत, ४९०. भविष्यत, ४९१.
अल्पविग्रह ॥ ६६ ॥

४९२. अनादि, ४९३. आदि, ४९४. आवद्य,
४९५. प्रत्यधामा, ४९६. निरन्तर, ४९७. गुणातीत,
४९८. सम, ४९९. साम्य, ५००. समहक्, ५०१.
निर्विकल्पक ॥ ६७ ॥

५०२. गूढ, ५०३. च्यूढ, ५०४. गुण, ५०५.
गौण, ५०६. गुणभास, ५०७. गुणाकृत, ५०८.
नित्य, ५०९. अक्षर, ५१०. निर्विकार, ५११.
क्षर, ५१२. अजक्षमुख, ५१३. अमृत ॥ ६८ ॥

५१४. सर्वदा, ५१५. सर्ववित, ५१६. सार्थ,
५१७. समवुद्धि, ५१८. समप्रभ, ५१९. अङ्गेय,
५२०. अच्छेद, ५२१. आपूर्ण, ५२२. अशोभ्य,
५२३. अदाह, ५२४. अनिवर्तक ॥ ६९ ॥

५२५. ब्रह्म, ५२६. ब्रह्मधर, ५२७. ब्रह्मा,
५२८. ब्राह्मक, ५२९. ब्राह्मक, ५३०. कवि, ५३१.
आध्यात्म, ५३२. अधिभूत, ५३३. अधिवैष, ५३४.
स्वाध्यय, ५३५. अथय ॥ ७० ॥

५३६. महावासु, ५३७. महावीर, ५३८.
चेष्टा, ५३९. सप्तनुस्थित, ५४०. प्रेरक,
५४१. बोधक, ५४२. बोधी, ५४३.
अयोधिशतिकाण ॥ ७१ ॥

५४४. अंशांशा, ५४५. नरवेश, ५४६. अवनार, ५४७. भूपरिस्थिन, ५४८. मह, ५४९. जन, ५५०. तप, ५५१. सन्य, ५५२. भू, ५५३. भुव, ५५४. स्व ॥ ७२ ॥

५५५. नैमित्तिक, ५५६. प्राह्णिक, ५५७. आत्यन्तिकमय लय, ५५८. सर्ग, ५५९. विसर्ग, ५६०. सर्गादि, ५६१. निरोध, ५६२. रोध, ५६३. ऊतिमान ॥ ७३ ॥

५६४. मन्त्रवन्तरावनार, ५६५. मनु, ५६६. मनुसुन, ५६७. अनघ, ५६८. स्वयम्भू, ५६९. शास्त्रमय, ५७०. शाकु, ५७१. स्वायम्भुव-सहायकृत ॥ ७४ ॥

५७२. सुरालय, ५७३. देवगिरि, ५७४. मंर, ५७५. हेम, ५७६. अर्चित, ५७७. गिरि, ५७८. गिरिश, ५७९. गणामय, ५८०. गौरी, ५८१. ईशा, ५८२. गिरिगढ़र ॥ ७५ ॥

५८३. विन्ध्य, ५८४. शिक्षट, ५८५. मैनाक, ५८६. सुखेल, ५८७. पारिमद्रक, ५८८. पतंग, ५८९. त्रिशिर, ५९०. कङ्क, ५९१. जारुधि, ५९२. शैलसत्तम ॥ ७६ ॥

५९३. कालस्त्र, ५९४. बृहत्सानु, ५९५. दरीभृत, ५९६. नन्दिकेश्वर, ५९७. संतान, ५९८. तक्षराज, ५९९. मन्दार, ६००. पारिजातक ॥ ७७ ॥

६०१. जयन्तकृत, ६०२. जयन्ताङ्ग, ६०३. जयन्ती, ६०४. दिग, ६०५. जयाकुल, ६०६. बृशहा, ६०७. देवलोक, ६०८. शाशी, ६०९. कुमुदवान्यव ॥ ७८ ॥

६१०. नक्षेश, ६११. सुधा, ६१२. सिन्धु, ६१३. सूग, ६१४. पुरय, ६१५. पुनर्वसु, ६१६. हस्त, ६१७. अभिजित, ६१८. अवण, ६१९. वैधृत, ६२०. भास्करोदय ॥ ७९ ॥

६२१. एन्द्र, ६२२. सात्य, ६२३. शुभ, ६२४. शुक्र, ६२५. व्यतीयात, ६२६. ध्रुव, ६२७. भस्म, ६२८. शिशुमार, ६२९. देवमय, ६३०. व्रतलोक, ६३१. विलक्षण ॥ ८० ॥

६३२. गम, ६३३. वैकुण्ठनाथ, ६३४. व्यापी, ६३५. वैकुण्ठनायक, ६३६. इवेनद्वीप, ६३७. अजितपद, ६३८. लोकालोकचलाश्रित ॥ ८१ ॥

६३९. भूमि, ६४०. वैकुण्ठदेव, ६४१. कोटि-ब्रह्माण्डकारक, ६४२. असंख्यब्रह्माण्डपति, ६४३. गोलोकेश, ६४४. गदां पति ॥ ८२ ॥

६४५. गोलोकधामधिषण, ६४६. गोपिकाकण्ठ-भूषण, ६४७. हीधर, ६४८. श्रीधर, ६४९. लीलाधर, ६५०. गिरिधर, ६५१. धुरी ॥ ८३ ॥

६५२. कुम्तधारी, ६५३. त्रिशूली, ६५४. बीमत्सी, ६५५. धर्घरस्वन, ६५६. दूलर्पितगज, ६५७. सूच्यर्पितगज, ६५८. गजचर्मधर, ६५९. गजी ॥ ८४ ॥

६६०. अनन्तमाली, ६६१. मुण्डमाली, ६६२. व्याली, ६६३. दण्डकमण्डलु, ६६४. वेनालभृत, ६६५. भूतसंघ, ६६६. कृष्णपण्डगणसंवृत ॥ ८५ ॥

६६७. प्रमथेश, ६६८. पशुपति, ६६९. मृडाली, ६७०. ईशा, ६७१. मृद, ६७२. वृष, ६७३. कृतास्त-संघारि, ६७४. कालसंघारि, ६७५. कृष्ण, ६७६. कल्यान्तमैरव ॥ ८६ ॥

६७७. बडालन, ६७८. वीरभद्र, ६७९. दक्षयज्ञविघातक, ६८०. खर्पराशी, ६८१. विवाशी, ६८२. शकिहस्त, ६८३. शिवा, ६८४. अर्थद ॥ ८७ ॥

६८५. पिनाकटुकारकर, ६८६. चलज्ञानकारनूपुर, ६८७. पण्डित, ६८८. तर्क-विद्वान, ६८९. वेदपाठी, ६९०. श्रुतीश्वर ॥ ८८ ॥

६९१. वेदान्तकृत, ६९२. सांख्यशास्त्री, ६९३. मीमांसी, ६९४. कणनाममाक, ६९५. काणादि, ६९६. गोतम, ६९७. वादी, ६९८. वाद, ६९९. नैयायिक, ७००. नय ॥ ८९ ॥

७०१. वैशेषिक, ७०२. धर्मशास्त्री, ७०३. सर्वशास्त्रार्थतत्त्वग, ७०४. वैयाकरणकृत, ७०५. छन्द, ७०६. वैयास, ७०७. प्राह्णि, ७०८. वज्र ॥ ९० ॥

७०९. पाराशारीसंहितावित्, ७१०. काल्यकृत,
७११. नाटकमय, ७१२. पौराणिक, ७१३. स्मृतिकर,
७१४. वैद्य, ७१५. विद्यविजारद ॥ ९१ ॥

७१६. अलंकार, ७१७. लक्षणार्थ, ७१८. व्यक्त्य-
वित्, ७१९. ध्वनिवित्, ७२०. ध्वनि, ७२१.
वाक्यस्फोट, ७२२. पदस्फोट, ७२३. स्फोटद्विति,
७२४. रसार्थवित् ॥ ९२ ॥

७२५. शृङ्खार, ७२६. उज्ज्वल, ७२७. सच्छु,
७२८. अद्भुत, ७२९. हास्य, ७३०. भयानक, ७३१.
अश्वस्थ, ७३२. यवभोजी, ७३३. यवकीत,
७३४. यवाशन ॥ ९३ ॥

७३५. प्रह्लादरक्षक, ७३६. स्त्रिग्य, ७३७.
पेलवंशविवर्धन, ७३८. गताधि, ७३९. अस्वरीषाह,
७४०. विगाधि, ७४१. गाधीनां वर ॥ ९४ ॥

७४२. नानामणिसमाकीर्ण, ७४३. नामारत्न-
विभूषण, ७४४. नानापुण्यधर, ७४५. पुण्यी, ७४६.
पुण्यधन्वा, ७४७. प्रपुणित ॥ ९५ ॥

७४८. नानाचन्द्रमण्ड्याद्य, ७४९. नानापुण्य-
रसार्चित, ७५०. नानावर्णमय, ७५१. वर्ण, ७५२.
सदा नानावस्थाधर ॥ ९६ ॥

७५३. नानापश्चाकर, ७५४. कौदी, ७५५.
नानाकौशेयवेषधृक्, ७५६. रत्नकम्बलधारी, ७५७.
धौतवस्त्रसमावृत ॥ ९७ ॥

७५८. उत्तरीयधर, ७५९. पूर्ण, ७६०.
वस्त्रकम्बुजवान्, ७६१. संघवान्, ७६२. पीतोष्णीय,
७६३. सितोष्णीय, ७६४. रक्तोष्णीय, ७६५.
दिग्मवर ॥ ९८ ॥

७६६. विद्याह, ७६७. विद्यरचन, ७६८.
विद्यालोकविलोकित, ७६९. सर्वोपम, ७७०. निरपम,
७७१. गोलोकाङ्गीकृताहम् ॥ ९९ ॥

७७२. कृतस्त्रोत्सङ्गगोलोक, ७७३. कृष्णली,
७७४. भूत, ७७५. आखित, ७७६. मायुर, ७७७.
मसुरा, ७७८. आदर्शी, ७७९. वस्त्रसञ्ज्ञ-
स्त्रेवत् ॥ १०० ॥

ग० सं० अं० ४३—

७८०. दधिहर्ता, ७८१. दुर्जहर, ७८२. नवनीत-
सिताशन, ७८३. नक्षत्रक, ७८४. तप्तहारी, ७८५.
दधिचौर्यकृतनथम् ॥ १०१ ॥

७८६. प्रभावतीबद्धकर, ७८७. वामी, ७८८.
दामोदर, ७८९. इमी, ७९०. सिकताभूमिचारी,
७९१. बालकेलि, ७९२. व्रजार्भक ॥ १०२ ॥

७९३. धूलिधूसरसूर्याह, ७९४. काकपक्षधर,
७९५. सुधी, ७९६. मुक्तकेश, ७९७. वत्सवृद्ध,
७९८. कालिम्बीकूलवीक्षण ॥ १०३ ॥

७९९. जलकोलाहली, ८००. कूली, ८०१.
पङ्कमाङ्गणलेपक, ८०२. श्रीबृन्दावनसंचारी, ८०३.
वंशिवदतटस्थित ॥ १०४ ॥

८०४. महावननिवासी, ८०५. लोहार्गलवना-
धिय, ८०६. सानु, ८०७. प्रियतम, ८०८. सान्ध्य, ८०९.
सान्धीश, ८१०. गतसान्ध्यस ॥ १०५ ॥

८११. रङ्गनाथ, ८१२. विद्वलेश, ८१३.
मुक्तिनाथ, ८१४. अघनाशक, ८१५. सुकीर्ति, ८१६.
सुयशा, ८१७. स्फीत, ८१८. यदास्ती, ८१९.
रङ्गरङ्गन ॥ १०६ ॥

८२०. राघटक, ८२१. रागपुत्र, ८२२. रागिणी,
८२३. रमणोत्सुक, ८२४. दीपक, ८२५. मेघमङ्गार,
८२६. श्रीराग, ८२७. मालकोशक ॥ १०७ ॥

८२८. हिन्दोल, ८२९. भैरवाख्य, ८३०. स्वर-
जातिस्तर, ८३१. सृदु, ८३२. ताल, ८३३. मान,
८३४. प्रमाण, ८३५. स्वरगम्य, ८३६.
कलास्तर ॥ १०८ ॥

८३७. शमी, ८३८. हयामी, ८३९. शतानन्द,
८४०. शतयाम, ८४१. शतकतु, ८४२. जागर, ८४३.
सुत, ८४४. आसुत, ८४५. सुषुत, ८४६. स्वप्न,
८४७. उर्वर ॥ १०९ ॥

८४८. ऊर्ज, ८४९. स्फूर्ज, ८५०. निर्जर, ८५१.
विज्वर, ८५२. उवरवर्जित, ८५३. उवरजित, ८५४.
उवरकर्ता, ८५५. उवरयुक्त, ८५६. उवर, ८५७.
उवर ॥ ११० ॥

८५८. जाम्बवान्, ८५९. जम्बुकाशही, ८६०. जम्बूद्वीप, ८६१. द्विषारिहा, ८६२. शाल्मलि, ८६३. शाल्मलिद्वीप, ८६४. प्लक्ष, ८६५. द्वजस्वनेश्वर ॥ १११ ॥

८६६. कुशधारी, ८६७. कुशा, ८६८. कौशी, ८६९. कौशिक, ८७०. कुशविग्रह, ८७१. कुशास्थली-पति, ८७२. काशीनाथ, ८७३. भैरवशासन ॥ ११२ ॥

८७४. दाशार्थ, ८७५. सात्यत, ८७६. द्रुष्णि, ८७७. भोज, ८७८. अधकनिवासकृत, ८७९. अन्धक, ८८०. दुन्दुभि, ८८१. घोन, ८८२. ग्रघोन, ८८३. सात्यतां पति ॥ ११३ ॥

८८४. शूरसेन, ८८५. अनुविषय, ८८६. भोजेश्वर, ८८७. बृष्णिश्वर, ८८८. अधकेश्वर, ८८९. आतुक, ८९०. सर्वजीनिङ्ग, ८९१. उप्रसेन, ८९२. महोद्ध्रवाक् ॥ ११४ ॥

८९३. उप्रसेनपति, ८९४. प्रार्थ, ८९५. प्रार्थ, ८९६. यतुसभापति, ८९७. सुधर्माधिपति, ८९८. सत्य, ८९९. बृहिणिक्रावृत, ९००. भिषक् ॥ ११५ ॥

९०१. सभाशील, ९०२. सभादीप, ९०३. सभानिन, ९०४. सभारवि, ९०५. सभाचन्द्र, ९०६. सभाभास, ९०७. सभावेद, ९०८. सभापति ॥ ११६ ॥

९०९. प्रजार्थद, ९१०. प्रजाभर्ता, ९११. प्रजापालनतत्पर, ९१२. द्वारकादुर्गसंचारी, ९१३. द्वारकाप्रहविष्ट ॥ ११७ ॥

९१४. द्वारकादुर्गसंहर्ता, ९१५. द्वारकाजनमङ्गल, ९१६. जगन्मत्ता, ९१७. जगत्त्राता, ९१८. जगद्भर्ता, ९१९. जगत्पिता ॥ ११८ ॥

९२०. जगद्भुतु, ९२१. जगद्भाता, ९२२. जगन्मित्र, ९२३. जगत्सख, ९२४. जगत्येव, ९२५. जगत्य, ९२६. जगत्पावरजो दधत् ॥ ११९ ॥

९२७. जगत्पावरजस्यही, ९२८. जगत्पाविषेषक, ९२९. विप्राकृष्णजलपूताङ्ग, ९३०. विप्रसेवा-परायण ॥ १२० ॥

९३१. विप्रतुक्य, ९३२. विप्रहित, ९३३.

विप्रतितमहाकथ, ९३४. विप्रपादजलपूताङ्ग, ९३५. विप्रपादेकप्रिय ॥ १२१ ॥

९३६. विप्रभक्त, ९३७. विप्रगुरु, ९३८. विप्र, ९३९. विप्रपदानुग, ९४०. अक्षौहिणीबृत, ९४१. योद्धा, ९४२. प्रतिमापञ्चसंयुत ॥ १२२ ॥

९४३. चतुर, ९४४. अङ्गिरा, ९४५. पश्चवती, ९४६. सामन्तोदधृतपातुक, ९४७. गजकोटिप्रथायी, ९४८. रथकोटिजयध्वज ॥ १२३ ॥

९४९. महारथ, ९५०. अतिरथ, ९५१. जैश्वल्यन्दन-मास्तित, ९५२. नारायणार्थी, ९५३. ब्रह्मार्थी, ९५४. रणश्लाघी, ९५५. रणोद्धर ॥ १२४ ॥

९५६. मदोत्कृष्ट, ९५७. युद्धवीर, ९५८. देवासुर-भयंकर, ९५९. करिकर्णमङ्गल्येऽत्कुन्तलवयासकुण्डल ॥ १२५ ॥

९५०. अग्रग, ९५१. वीरसमर्द, ९५२. महैल, ९५३. रणदुर्मद, ९५४. भट्टप्रतिभट, ९५५. प्रोत्य, ९५६. वाणवर्षी, ९५७. इच्छोद ॥ १२६ ॥

९५८. खड्गलपिण्डसर्वाङ्ग, ९५९. बोडशाढ, ९६०. षड्क्षधर, ९६१. वीरघोष, ९६२. अक्षिलष्टवपु, ९६३. वजाङ्ग, ९६४. वजामेदन ॥ १२७ ॥

९७५. रुग्णवज्ञ, ९७६. भगवद्गम्त, ९७७. शशु-निर्भर्त्सनोदयत, ९७८. अहद्वास, ९७९. पहुधर, ९८०. पहुरालीपति, ९८१. पदु ॥ १२८ ॥

९८२. कल, ९८३. पठहवादित्र, ९८४. हुंकार, ९८५. गर्जितसन, ९८६. साधु, ९८७. भक्तपराधीन, ९८८. स्वतन्त्र, ९८९. साधुभूषण ॥ १२९ ॥

९९०. अस्ततन्त्र, ९९१. साधुमय, ९९२. मणाक-साधुप्रस्तमना, ९९३. साधुप्रिय, ९९४. साधुधन, ९९५. साधुज्ञाति, ९९६. सुधाधन ॥ १३० ॥

९९७. साधुवारी, ९९८. साधुवित्स, ९९९. साधुविषय, १०००. शुभास्यद ।

इस प्रकार भगवान् बलभद्रजीके एक सहस नामोंका वर्णन किया गया ॥ १३१ ॥

माहात्म्य-अध्ययन

यह सहस्रनाम मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि और चतुर्वर्ग (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) फल प्रदान करनेवाला है। जो इसका सौ बार पाठ करता है, वह इस लोकमें विद्यावान् होता है। इस सहस्रनामका पाठ करनेसे मनुष्य लक्ष्मी, वैभव, सद्वंशमें जन्म, रूप, बल तथा तेज सब कुछ प्राप्त करता है। गङ्गाजी एवं यमुनाजीके तटपर अथवा देवाल्य (देवमन्दिर) में इसके एक हजार पाठ करनेसे जगदर्शी सिद्धि मिलती है। इसके पाठसे पुत्रकी कामनावालेको पुत्र तथा धनार्थीको धन प्राप्त होता है। गन्धनमें पड़ा मनुष्य उससे मुक्त हो जाता है और रोगीका रोग चला जाता है। जो मनुष्य पुरश्चाणकी विधिमें पद्धति, पटल, स्तोत्र, कवच-सहित इस सहस्रनामका दस हजार बार पाठ करता है तथा होम, तपण, गोदान तथा ब्राह्मणका पूजनहृष्ट कर्म विधिवत् करता है, वह समस्त भूमण्डलका स्वामी चक्रवर्ती राजा होता है। वह अनेक सामन्त राजाओंसे विरा रहता है। मदकी गन्धने विहूल भ्रमर मतवाले हाथियोंके कानोंकी चपेटसे आहत हो उड़ते हुए उसके द्वारपर जाकर उसकी दोभावढाते रहते हैं। गजेन्द्र ! यदि कोई मनुष्य निष्कामभावमें

इम प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत प्राद्विषिक-दुर्योधन-संवादमें श्रीबलभद्र

सहस्रनाम' नामक तंगहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

~~~~~

### श्रीबलभद्रखण्ड सम्पूर्ण

\* इनि नामा सहस्रं तु बलभद्रस्य कीर्तिम् ॥

|                   |                                                                            |                                                                        |                          |          |
|-------------------|----------------------------------------------------------------------------|------------------------------------------------------------------------|--------------------------|----------|
| सर्वसिद्धिप्रद    | नणा                                                                        | चतुर्वर्गफलप्रदम् । शनवारं पठेष्टस्तु                                  | स विद्यावान्             | भवेदिह ॥ |
| शनिरा             | न विभूतिं वाभिजन                                                           | रूपमेव च । बलमोत्तमं                                                   | पठनात्सर्वं प्राप्नोनि   | भानवः ॥  |
| गङ्गाकूलेऽप्य     | कालिन्दीकूले                                                               | देवालये तथा । सहस्रार्थपाठेन                                           | बलात् सिद्धिः प्रजायते ॥ |          |
| पुश्चार्थी        | लभते पुत्र धनाथा लभते धनम् । बलात्मुच्यते चढो रोगी                         | रोगाक्षिवर्ती ॥                                                        |                          |          |
| अनुतावर्त्तपाठे   | च                                                                          | पुरश्चर्वाविद्यानन्तः । होमतर्पणगोदानविप्राचीनकृत्यमात्                |                          | ॥        |
| पटलं पद्धतिं      | स्तोत्रं कवचं                                                              | तु विद्याय च । महामण्डलभर्ता स्यान्मिष्ठो मण्डलेश्वरः ॥                |                          |          |
| भर्तुमकारंप्रहिता | मदगन्धेन                                                                   | विहूला । अलंकरणे नद्वार भ्रमद्भूतावर्ता भृशम् ॥                        |                          |          |
| निष्कारणः         | पठेष्टस्तु                                                                 | प्रीत्यर्थं रेतीपर्तेः । नामा सहस्रं राजेन्द्र स श्रीकन्मुक्त उच्यते ॥ |                          |          |
| सदा               | वसेत्यस्य गृहे                                                             | बलभद्रोऽन्युताग्रजः । महायात्क्षयि जनः पठेष्टाभसहस्रकम् ॥              |                          |          |
| द्विष्वा          | मेस्समं पाप मुक्त्वा सर्वसुखं त्विदि । परात्परं महाराज गोलोक धाम यानि हि ॥ |                                                                        |                          |          |

( गर्ग-संहिता, श्लमद् २३ । १३२-१४४ )

## श्रीविज्ञानसंग्रह

### पहला अध्याय

#### द्वारकामें वेदव्यासजीका आगमन और उग्रसेनद्वारा उनका स्वागत-पूजन

राजा बहुलाश्वने कहा—मुने ! भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रके उस भक्तिमार्गका, जो सर्वश्रेष्ठ है तथा जिसके प्रभावमें मैं भी भक्त बन जाऊँ, वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

नारदजी बोले—राजन् ! वेदव्यासजीके मुखमें मुने हुए भक्तिमार्गमा मैं वर्णन करता हूँ । यह वह मार्ग है, जिसपर चलनेसे भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न हो जाते हैं ॥ २ ॥

जनकजी ! अपने भुजदण्डोंके बलमें उद्धृत हन्दपर विजय प्राप्त करके भगवान् श्रीकृष्णने द्वारकामें सुधर्मा नामकी दिव्य सभाकी प्रतिष्ठा की थी । राजन् ! विश्वकर्माके द्वारा इन्हें गये वैद्युत मणिके खंभोंकी करोड़ों पंक्तियों उसके मण्डपकी ओमा बढ़ाती थीं । वहाँकी भूमि पश्चाराग-मणिसे जड़ी गयी थीं । उसपर मूर्गोंकी दीवालेमें कई विभाग बने थे, जिनपर रग विंशंगे चौदोंवे ओमा दे रहे थे और मोतियोंकी झालंग लटकायी हुई थीं । उसकी दीवालें विहासनके आसारकी थीं । उनराग काले मेघमें कौंधनेवाली विजलीका-सा प्राण फैलानेवाले जाम्बूनर सुवर्णके करोड़ों चमन्चमते हुए कलश सुशोभित थे । वहाँ प्रातःकालीन सूर्यकी खांति चमकनेवाले रत्नमय केयूर, करधनी, कङ्कण और नूपुरोंसे सैकड़ों चन्द्रमाओंकी प्रभाको छिटकानेवाली गन्धोंकी लियों हर्षमें भरकर गान किया करती थीं और सुमधुर वायोंके साथ विद्वाधरियाँ परस्पर लग-डॉट स्वती हुई नृत्य करती थीं । उसके चारों कोनोंमें मनोहर देववृक्षों सहित नन्दन, सर्वतोभद्र, ब्रैव्य एवं चैत्ररथ नामक बन सुशोभित थे । महाराज ! उस सभाप्रदेशके अन्तर्गत स्वच्छ जल्वाले लालों सरोवर तथा भ्रमरोंसे भरपूर बहुतमें हजार दलबाले कमल दिखायी पड़ते थे । इस प्रकारकी वह सुधर्मा सभा खजा एवं पताकाओंमें अलंकृत तथा दम योजनके विस्तारवाली थी । पाँच योजनकी उसकी ऊँचाई थी । इसमें गया हुआ पुरुष अपनेको सर्वश्रेष्ठ समक्षता है । जिसे वहाँका सिंहासन उपलब्ध हो जाता, वह तो ‘मैं इन्द्र हूँ’—यों कहना करने लगता है । चिन्होंकीमैं जिसने चानुर्य गुण हैं,

वे सभी उस पुरुषके शरीरमें आकर रहने लगते हैं । वहाँ जितनी देर मनुष्य ठहरता है, उतनी देरतक शोक-मोह, जरा मृत्यु तथा भूख-प्यास—ये छः प्रकारकी ऊर्मियों (विकार) उसके पास नहीं फटकतीं । महाराज ! जितने मनुष्य वहाँ प्रवेश करते हैं, उतनी ही बड़ी वह सभा अपने प्रभावमें दिखायी देने लगती है । जनकजी ! यादबोकी संख्या छप्पन करोड़ थी । अनुचरोंसहित वे सभी उन सभा-भवनके आँगनके एक चौथाई भागमें ही समाये हुए दील पड़ते थे । महाराज ! जहाँ साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही विराजमान रहते थे, उस सभाका वर्णन कौन कर सकता है ।

उस सभामें एक दिन महाराज उग्रसेन विराजमान थे । करोड़ों यादब उन्हे धेरे हुए थे । सूत, मागध और बन्दियों-द्वारा महाराजका यशोगान हो रहा था । साक्षात् पराभाव कुमार मुनिवर वेदव्यासजी आकाशमार्गमें वहाँ पथारं । उनके गरीबकी कान्ति मेघके समान श्यामल थी और वे विजलीके समान पीली जड़ा धारण किये हुए थे । उन्हे देखकर यदुराज तुरत उठ न्हड़े हुए और उन्होंने हाथ जोड़कर मुनिको प्रणाम किया । फिर उन्हे आसनपर बिठाकर तथा पूजाके उपचार समर्पित कर वे मुनिके सामने खड़े हो गये ॥ ३-१९ ॥

राजा उग्रसेन बोले—ब्रह्मन् ! आज आपके यहाँ पधारनेपर मेरा जन्म, महल तथा धर्मचरण—सब कुछ सफल हो गया । भगवन् ! आप जैसे सदा आनन्दस्वरूप महानुभावोंकी कुशल तो स्वयं श्रीकृष्णचन्द्रको अभीष्ट है । किर भी अपनी कुशल कहिये, जिससे मैं निश्चिन्त हो जाऊँ । प्रथो ! आपके समान साधुपुरुष जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ-वहाँ लौकिकी और पारलौकिकी दोनों प्रकारकी सिद्धियाँ रहती ही हैं । मुनिवर व्यासजी ! जहाँ संत पुरुष एक क्षण भी निवास करते हैं, वहाँ स्वयं श्रीहरि रहते हैं; ब्रह्मन् ! फिर लौकिक गुणोंकी तो वात ही क्या है । मुनिवर ! मैंने पूर्वजन्ममें कौन सा पुण्य अश्रवा यश किया था, जिसके परम्परालूप मुझे

द्वारकाका राज्य प्राप्त हो गया । यही नहीं, आपके समान वड़े-वड़े ब्राह्मण देवता मेरे महलोंमें प्रतिदिन पवधारते रहने हैं । इसमें मैं अनुमान करता हूँ कि, मैंने निम्नदेह भवते वडा पुण्य किया है ॥ २०-२५ ॥

व्यासजीने कहा—महाराज ! तुम धन्य हो तथा तुम्हारा निर्मल बुद्धिको भी धन्यवाट है । राजन ! पूर्वजन्ममें तुमने ममसे वडा पुण्य किया था । राजन ! तुम्हारा नाम महत्त था । मनमें किसी भी प्रकारकी कामना न रखकर तुमने विश्वजित् नामका यज्ञ किया था । उसमें भगवान् श्रीहरि

उस प्रणाल श्रीगर्ग-संहितामें श्रीविज्ञानलक्षणके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें ‘द्वारकाम श्रीवेदःगामकः

भागमन’ नामक पहला अध्याय समाप्त हुआ ॥१॥

प्रसन्न हुए । तुम्हारे निष्काममात्रमें तुम्हें यह परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है । श्रीकृष्णचन्द्र भाभान् विष्वृण्ठम् भगवान् श्रीहरि ही है । अनन्त व्रश्चाण्ड उनके अधीन हैं और वे परात्पर परम गोलोकके स्वामी हैं । वे परम स्वतन्त्र होनेवर मी भक्तिके बड़ीभूत हो तुम्हारे भहलोंमें विश्वजते हैं । पदुराज ! यही विनिश्च यात है कि भजन करनेवालोंको भगवान् मुक्ति दे देते हैं, किंतु भक्तिका याधन कभी नहीं देते । राजन ! इसीलिये, भक्तियोगको वहुत दुर्लभ समझो ॥ २६-२० ॥

## दूसरा अध्याय

### व्यासजीके द्वारा गतियोंका निरूपण

राजा उग्रसेन बोले—आपके द्वारा किये गये वर्णनको मुनकर मैं कृतकृत्य हो गया तथा आनन्दसे भर गया हूँ । आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की । मेरे मनमें उठे हुए भद्रेहको दूर करनेमें आप ही समर्थ हैं । ब्रह्मन् ! भक्तम् कर्मोंकी क्या गति होती है, उनका क्या लक्षण है और उनके कितने भेद हैं ? इसे तत्त्वतः कहनेकी कृपा कीजिये ॥ १२ ॥

व्यासजीने कहा—राजन् ! गुणोंके भाव सम्बन्धसे सभी कर्म सकाम हो जाते हैं, वे ही फलका त्याग कर देनेपर निष्काम हो जाते हैं । यदुराज ! जो सकाम कर्म है, उसे बन्धन समझो । जो निष्काम कर्म होता है, वह मोक्ष देनेवाला है । अतएव वह परम मङ्गलमय होता है । सत्य, रज और तम—इन तीन गुणोंकी उत्पत्ति प्रकृतिमें होती है । जैसे भगवान् विष्णुसे सारे पदार्थ व्याप्त हैं, उसी प्रकार गुणोंमें सम्पूर्ण विश्व ओतप्रोत है । सत्त्वगुणकी स्थितिमें जिनके प्राण निकलते हैं, वे स्वर्गलोकमें जाने हैं, रजोगुणमें प्रयाण करनेवाले नरलोकके अधिकारी होते हैं तथा तमोगुणकी अधिकतामें मरनेवालेको नरककी यातना मोगनी पढ़ती है । जो गुणोंके सम्बन्धसे रहित होते हैं, वे श्रीकृष्णको प्राप्त होते हैं ।

राजन् ! जिन्होंने बनवारी होकर पञ्चानियोंका सेवनरूप तप किया है, वे निष्पाप होकर सप्तरियोंके लोकमें चले जाते हैं । जो सन्धान-आश्रमके निष्मयोंका

पालन करनेवाले श्रिदण्डधारी हैं तथा जिन्होंने इन्द्रिय एवं मनके स्वभावपर विजय पा ली है, वे सत्यलोकके यात्री होते हैं । जो निर्मल चित्तवाले ऊर्ध्वरेता योगिराज अष्टाङ्गयोगका सवन करते हैं, वे उसके प्रभावमें जनलोक अथवा महर्लोकमें जाते हैं । इसमें कुछ भी सदृश नहीं है । यजका अनुष्ठान करनेवाला पुरुष वहुत वर्णोत्तम इन्द्रलोकमें यास पाता है । दानशील व्यक्ति, नन्दलोकको और ब्रतशील पुरुष दूर्घटलोकको जाता है । तीर्थोंकी यात्रा, करनेवाले अग्निलोकको, सत्यप्रतिश वरुणलोकको, विष्णुके उपासक वंकुण्ठलोकको तथा डिवकी आराधना करनेवाले डिवलोकको प्रयाण करते हैं । जो सुख, दैक्षण्य और सतानका कामनामें नित्य पितरोका पूजन करते हैं, वे दक्षिण-मार्गमें अयंमाके साथ पितॄलोकको चले जाते हैं । इसी प्रकार पौच देवोंका उपासना करनेवाले सार्वतोष खगलोकके अधिकारी होते हैं, प्रजापतियोंके उपासक दक्ष आदि प्रजापतियोंके लोक को जाते हैं, भूतोंको पूजनेवाले भूतलोकको और यक्षोंको पूजनेवाले यक्षलोकमें प्रयाण करते हैं । राजन ! जो जिसके भक्त होते हैं, वे उसीके लोकमें जाते हैं—इसमें कुछ भी संदेह नहीं है । राजन् ! जैसे ही बुरे सङ्गके बड़ीभूत होकर पापमें रचे पचे रहनेवाले लोग अमलोकमें जाते हैं, जो दाढ़ण नरकोंसे छिरा हुआ है । महामने ! बहालोकपर्यन्त जितने भी लोक हैं, उनमें जानेपर पुनरागमन होता है । राजन ! इसमें हुम समझ लो कि सम्पूर्ण लोक पुनरावर्ती

है। सकाम-कर्मियोंकी यही गमनागमनरूप गति होती है। जयतक जीवके पुण्य समाप्त नहीं होते, तथतक वह स्वर्वद्योक्तमें विहार करता है। पुण्यके शेष हो जानेपर उसे न जाहनेपर भी कालकी प्रेरणासे नीचे गिरना पड़ता है। अतः हे महाबाहु यादवेन्द्र ! कर्ममें पक्षका स्वाग कर देना चाहिये। मनुष्यको चाहिये कि वह शान और दैराण्यसे युक्त होकर निष्काम भक्त हो जाय। फिर प्रेमलक्षणा भक्तिके द्वारा भगवान् श्रीहरिके भक्तजनोंका प्रीतिपात्र बनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरण-कमलोंकी, जो अभ्य प्रदान करनेवाले हैं और जो परमहंसोंद्वारा सेवित हैं, उपासना करनी चाहिये। जो हठपूर्वक समस्त लोकोंका संहार करनेवाली है, वह मृत्यु भी उस भगवद्वाममें पहुँच जानेपर शान्त हो जाती है॥ ३-२१ ॥

**राजा उत्तरसेन बोले—**भगवन् ! समस्त लोकोंको पुनरावर्ती कहा गया है। इस बातसे उन सभी लोकोंके प्रति मेरे अन्तःकरणमें निस्संदेह विराग उत्पन्न हो गया है। ब्रह्मन् ! जहाँ जाकर प्राणी वापस नहीं लैटा और जो सबसे परे है, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वह परम धाम कहाँपर है—यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये॥ २२-२३ ॥

**श्रीव्यासजीने कहा—**जहाँ गये हुए प्राणी वहाँसे लौटते नहीं, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वह धाम ब्रह्माण्डोंके

इस प्रकार श्रीर्गी-सहितमें श्रीविजानसंपदके अन्दरान्त नारद-बहुलवन्-संवादमें व्यासजीके द्वारा

गतियोंका निरूपण नामक दूसरा अध्याय समाप्त हुआ॥ २ ॥

## तीसरा अध्याय

### सकाम एवं निष्काम भक्तियोगका वर्णन

**राजा उत्तरसेनने कहा—**ब्रह्मन् ! गुण और कर्मकी गति आपके श्रीमुखसे मैं सुन चुका। सभी लोक आवागमनसे युक्त हैं, यह भी भलीभांति निन्दित हो गया। निष्कामभावसे साक्षात् श्रीहरिका सेवन करनेपर भक्तोंको वह उत्तम धाम, जो दिव्य एवं दूसरोंके लिये हुरुम्भ है, मिलता है—यह भी सुन लिया। आप वर्णन करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। अब मुझे यह बताइये कि भक्तियोग, जिसके प्रभावसे भक्तवत्सल भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, कितने प्रकारका है !॥ १-३ ॥

**श्रीव्यासजी बोले—**दरकानरेण ! तुम धन्वं हो, तुम श्रीहरिके प्रेमी हो तथा भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे

बाहर है। विश्वजन उसे ही उत्तम ‘गोलोकधाम’ कहते हैं। जीव-समूहसे भग हुआ पचास करोड़ योजनमें विस्तृत यह ब्रह्माण्ड है। इसके आगे इससे तुगुनी अर्थात् सौ करोड़ योजनके विस्तारवाली ब्रह्मद्वय नामकी जलराशि है, जिसमें यह ब्रह्माण्ड परमाणुके समान दिखायी पड़ता है। उसमें इसके अतिरिक्त करोड़ों ब्रह्माण्ड और हैं। उसके उस पार वह गोलोक है, जहाँ न सूर्यका प्रकाश है, न चन्द्रमाका और न अग्निका ही। काम, क्रोध, लोभ और मोहकी वहाँ गति नहीं है। वहाँ न शोक है न बुद्धापा है, न मृत्यु है और न पीड़ा है। वहाँ प्रकृति और काल भी नहीं हैं, फिर गुणोंका तो प्रबेश वहाँ हो ही कैसे सकता है। जो स्वयं अनिर्वाच्य है, वह शब्दब्रह्म (वेद) भी उस लोकका वर्णन करनेमें असमर्थ है। भगवान् श्रीकृष्णके लेजसे प्रकट हुए अनेक पार्श्व वहाँ रहते हैं। राजन् ! जो इन्द्रियों तथा मनपर विजय पाये हुए अकिञ्चन भक्त हैं, अर्थात् सांसारिक प्राणिपदार्थोंमें जिनका कहीं कुछ भी ममत्व नहीं रह गया है, जो सबमें समान भाव रखनेवाले हैं, जो भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंके मकरन्द-रसमें सदा निमग्न रहते हैं तथा जो प्रेमलक्षणा भक्तिसे युक्त एवं सर्वदाके लिये कामनासे सर्वथा रहित हो गये हैं, वे ही समस्त लोकोंको लॉघकर उस उत्तम भगवद्वाममें जाने हैं—इसमें तनिक भी सदैह नहीं है॥ २४-३ ॥

इष्टदेव हैं। तुमने भक्तियोगके सम्बन्धमें प्रश्न किया है, इससे तुम्हारी वह निर्मल बुद्धि भी धन्व है। यादव ! जिसे सुनकर संसारका संहार करनेवाला घोर पापी भी शुद्ध हो जाता है, उस भक्तियोगका वर्णन विस्तारपूर्वक तुम्हें सुनाता हूँ। राजन् ! सगुण और निर्गुण—भेदसे भक्तियोग दो प्रकारका है। सगुणके अनेक भेद हैं और निर्गुणका एक ही लक्षण है। देहधारियोंके गुणानुसार सगुण भक्तिके विभिन्न प्रकार होते हैं। उन गुणोंसे युक्त तीन तरहके भक्त होते हैं। उनका वर्णन अल्प-अल्प सुनो। जो मेद-हृषि रखनेवाला कोधी पुरुष हिंता, दम्भ और मात्सर्यका आध्य लेकर श्रीहरिकी भक्ति करता है, उसे ‘तामस भक्तः’

कहा गया है। राजन् ! जो यदा, ऐश्वर्य तथा इन्द्रियोंके विषयोंको लक्ष्य करके अत्यधिक श्रीहरिकी उपासना करता है, उसकी गणना 'राजसिक' भक्तोंमें है। जो कर्मक्षयका उद्देश्य लेकर अयेद-इष्टिसे मोक्षके लिये भगवान् विष्णुकी उपासना करता है, वह भक्त 'सात्त्विक' कहा जाता है। महामते ! अर्थार्थी, आर्त, जिशासु और शानी—ये चार प्रकारके पुरुष भगवान् विष्णुका भजन करते हैं। इन्होंने स्वयं अपना कल्याण कर लिया है। यों भक्तियोगके अनेक प्रकार हैं। भक्तियोगके द्वारा जो श्रीहरिका पूजन करते हैं, वे सकामी भक्त भी वहे सुकृती-पुण्यात्मा हैं॥ ४-१२ ॥

इसी प्रकार अब निर्गुण भक्तियोगका लक्षण सुनो। जैसे गङ्गाजीका जल स्वामानिक ही समुद्रकी ओर प्रवाहित होता है, उसी प्रकार श्रवणमात्रसे साक्षात् परिपूर्णतम एवं सम्पूर्ण कारणोंके भी कारण भगवान् श्रीकृष्णके प्रति जिना ही कारण मनकी गति आविन्दित्वा एवं अखण्डितरूपसे प्रवाहित होने लगे, इसे 'निर्गुणभक्ति' कहा गया है। मानद ! अब निर्गुण भक्तोंके लक्षण सुनो। भगवान्के उन भक्तोंकी अखण्ड नूमण्डलके राज्य, ब्रह्माके पद, इन्द्रासन, पातालके स्वामित्व तथा योगकी सिद्धियोंमें भी स्पृहा नहीं रहती। यादवेश्वर ! भगवदनुरागका आनन्द उनपर छाया रहता है, इसीलिये वे भगवान्के द्वारा दिये जानेपर भी सालोक्य मुक्तिकी कभी स्वीकार नहीं करते। दूर रहनेपर जैसा प्रेम होता है, समीप आनेपर वैसा नहीं होता, यह सोचकर वे निष्काम भक्त भगवान्के विरहमें व्याकुल रहना पसद करते हैं, अतः सामीप्य मुक्तिकी भी हच्छा नहीं करते। किन्तु भक्तोंको भगवान् सारूप्य मुक्ति देते हैं, किन्तु निरपेक्ष होनेके कारण भक्त उसे भी स्वीकार नहीं करते। समानत्वकी अभिमति होनेपर भी केवल भगवान्की सेवाके प्रति ही उनकी उत्कण्ठा बनी रहती है। ऐसे भक्त एकत्व (सायुज्य) अथवा ब्रह्मके साथ एकतारूप कैवल्यको भी कभी नहीं लेते। उनका अभिप्राय यह है कि यदि ऐसा हो जाय तो सामी और सेवकके घर्में अन्तर ही क्या रह जायगा। जो निरपेक्ष

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीविज्ञानसूक्ष्मके अन्तर्गत नारद-ब्रह्माश्व-संबादमें 'सकाम-निष्काम भक्तियोगका वर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३ ॥

### चौथा अध्याय

#### भक्त-संतकी महिमाका वर्णन

श्रीव्यासजी बोले—जो आकाश, वायु, जल, अग्नि, वृत्ती तथा भृह-नक्षत्रों एवं तारागणोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी

भक्त होते हैं, उनकी सबमें समान हड्डि रहती है। उनका स्वभाव शान्त होता है और वे किसीसे वैर नहीं रखते। उनकी यह धारणा है कि कैवल्यसे लेकर सांसारिक समस्त पदोंका ग्रहण करना सकामभावके ही अन्तर्गत है। जिस प्रकार फूलोंकी गन्धको नासिका ही जानती है, आँखको उसका शान नहीं होता, ठीक वैसे ही निरपेक्षतारूप महान् आनन्दको भगवान्के निष्काम भक्त ही जानते हैं। जैसे रसको बनानेवाला हाथ रसके स्वादसे सदा अनभिष्ठ ही रहता है, उसी प्रकार सकामी भक्त कभी भी उस आनन्दको नहीं जान सकते। अतएव राजन्। इस भक्तियोगको ही तुम परम श्रेष्ठ पद समझो। अब निष्काम भक्तोंकी उपासना-पद्धतिका तुम्हारे सामने वर्णन करता हूँ, उसका स्वरूप है—भगवान् विष्णुका स्वरण, उसके नाम-गुणोंका कीर्तन, श्रवण, चरणोंकी सेवा, अर्चन, वन्दन, दास्य, स्वयं और अपनेको भगवान्के चरणोंमें निवेदित कर देना। राजन् ! जो निरन्तर भगवान्की प्रेमलक्षणा भक्ति करते हैं, वे भगवद्भावकी भावना करनेवाले भक्त जगत्‌में दुर्लभ हैं॥ २३—२६ ॥

जो बड़ोंके प्रति सम्मान, छोटोंके प्रति सब तरहसे दया तथा अपनी बराबरीबालोंके साथ मित्रताका वर्ताव करते हैं, सम्पूर्ण जीवोंपर जिनकी सदा दया रहती है, जो भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंके मधुकर हैं, जिन्हें भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनकी लाल्मा बनी रहती है, जो अपने विदेशस्थ स्वामीको याद करनेवाली छोटी भौति भगवान् श्रीकृष्णको याद करते रहते हैं, भगवान् श्रीकृष्णके स्वरणसे जिनका रोम-रोम पुलकित हो उठता है, नेत्रोंसे आनन्दकी धारा बहने लगती है, भगवान्के विरहमें कभी-कभी जिनके शरीरका गंग बदल जाता है, जो मधुर वाणीसे 'श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! हरे !' की रट लगाये रहते हैं तथा रातदिन भगवान् श्रीहरिमें जिनकी ल्यान लम्ही रहती है, वे ही भागवतोत्तम—भगवान्के उत्तम भक्त हैं॥ २७—३० ॥

ज्ञानीकरते हुए चार-चार हर्षित होते हैं, करोड़ों कामदेवोंके मोहित करनेवाले—राजानायक तर्फात्मा नन्दनन्दन

श्रीकृष्णचन्द्र उन भक्तोंके सामने बोलने हुए इष्टिगोचर होने लगते हैं। महा आनन्दस्वरूप उन भगवान्का दर्शन प्राप्त करके वे अत्यन्त हर्षमें भर जाते हैं और ठहाका मारकर हँसने लगते हैं। वे कभी योलेन और कभी दौड़ ल्याया करते हैं। कभी गाते, कभी नाचते और कभी चूप हो रहते हैं। भगवान् विष्णुके वे उत्तम भक्त कृतकृत्य हो गये रहते हैं। वे भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूप ही होते हैं। उनके दर्शनमात्रमें मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। काल अथवा यमराज—कोई भी उन्हें दण्ड देनेमें समर्थ नहीं होता। ऐसे भक्तोंके वामभागमें कौमोदकी गदा, दक्षिणमें सुदर्शन चक्र, आगे शार्ङ्ग धनुष, पीछे वादलकी भाँति गर्जनेवाला पाञ्चजन्य शङ्ख, नन्दन नामका महान् तलवार, वत्तचन्द्र नामक ढाल और अनेकों तीव्रे व्याण-भगवान्के य सभी प्रधान-प्रधान आयुध रात-दिन सजग रहकर उनकी रक्षा किया करते हैं। इसी प्रकार महान् कमल उनके ऊपर वारचार लगाया करनेके लिये प्रस्तुत रहता है। उन सतपुरुषोंके श्रमको गुरुड़जी पखोंकी इबासे दूर करते रहते हैं। जहाँ-जहाँ उपर्युक्त इन महात्मा पुरुषोंका गमन होता है, वहाँ-वहाँ स्वयं श्रीहरि पधारते हैं और अपने शोभायुक्त चरण-कमलोंके परागमें उस भू-भागको तीर्थ बना देते हैं। जहाँ सतउन एक ज्ञान भी ढहरते हैं, वहाँ तीर्थोंका निवाम हो जाता है। यदि उम स्थानपर किसी पापीका भी देहावसान हो जाय तो उम भगवान् विष्णुका परमपद प्राप्त हो जाता है। जिन्हे भगवान् श्रीकृष्ण इष्ट हैं, उनको दूरसे ही देखकर आधि-व्याधि, भृत् प्रेत और पिताम्ह दसों दिशाओंमें भाग लड़े होने हैं। अनपेक्ष साधु पुरुषोंको नदी, नद, पर्वत, समुद्र तथा दूसरे व्यवधान भी सब जगह मार्ग दे देते हैं। जो साधु है, जानमें निष्ठा रखनेवाले हैं, जिनका विषयोंसे विराग हो जुआ है, जिनकी जगत्मै किसीमें दशुत्ता नहीं होती ऐसे महात्मा पुरुषोंका दर्शन पुण्यहीन मनुष्योंके लिये अत्यन्त कठिन है। भगवान् श्रीकृष्णका भन्न जिस कुलमें उत्पन्न होता है, वह कुल स्वयं मलिन ही क्यों न हो, उस तुम व्राजाणवंडका भौति अत्यन्त निर्मल समझो। राजन्! भगवान् श्रीकृष्णका भक्त तो अपने पितृकुलके दस पुरुषोंको तार रेता है। इतना ही नहीं, उसके ज्ञातु-कुल तथा पत्नीकुलकी भी दस दम पीढ़ियों नक्काशना एवं पापोंके वन्धनसं मुन् हो जाती है। अहस्या पुरुषोंके

सम्बन्धी, पोष्यवर्ग, नौकर, सुहृद्दन, शत्रु, भर ढोनेवाले, घरमें रहनेवाले पक्षी, चांटियाँ, मच्छर तथा कीट-पतल भी—सभी पावन वन जाते हैं। देवेशर भगवान् श्रीकृष्णका भन्न प्रेम देशमें भी, जो ब्राह्मणके रहने योग्य नहीं है तथा जिसमें कृष्णसार मृग नहीं दिखायी देते अथवा सौवीर, कीकट, मगध एवं भलेच्छाके देशमें रहनेपर भी लोगोंको पवित्र करनेवाला होता है। राजन्! जो संत पुरुषोंसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं, वे ज्ञानयोग, धर्म, तीर्थ एवं यज्ञसे वर्जित होते हुए भी भगवान् श्रीहरिके मन्दिर (धाम) में जले जाने हैं। इन प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके भक्तोंकी महिमा मैंने कह सुनायी। इसके बर्णनसे ही मनुष्योंको चारों पदार्थ उपलब्ध हो जाते हैं। अब आगे क्या सुनना चाहते हो? || १-२० ||

**राजा उग्रसेनने पृष्ठा—भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र साक्षात् परिपूर्णतम परमात्मा हैं। दुरात्मा दन्तवक्तकी व्योति उनमें लीन हो गयी। ऐसी बात सुनी गयी है। विप्रवर ! यह महान् आश्रयकी बात है; क्योंकि महात्मा पुरुषोंको प्राप्त होने योग्य साधुज्य पद अन्य किसी साधारण व्यक्तिको, और वह भी एक दानुको, कैसे सुलभ हो गया? || २१-२२ ||**

**श्रीव्यासजी बोले—राजन्!** ‘यह मेरा है और यह मैं हूँ—यह विषमता त्रिगुणात्मक प्राणियोंमें रहती है; क्योंकि वे काम-क्रोधादिमें रचेन्पन्चे रहते हैं। परम प्रभु श्रीहरिके अंदर ऐसी भावना नहीं होती। जो किसी भी भावसे भगवान्में अपना मन लगाता है, उसे श्रीहरिकी सूखपता उपलब्ध हो जाती है—ठीक उसी प्रकार, जैसे कीड़ा भूँझीके स्फुरणमें परिणत हो जाता है। संख्ययोगके साधनके बिना भी मनुष्य स्नेह, काम, भय, क्रोध, एकता तथा सुहृदताका भाव रखकर भगवान्से तन्मयता प्राप्त कर लेते हैं। राजन्! नन्द-यशोदा आदिने तथा बसुदेव आदि दूसरे-दूसरे लोगोंने स्नेहसं और गोपियोंने कामभावसे भगवान्को प्राप्त किया, न कि ब्रह्मभावनामें। कारण यह है कि वे भगवान्के रूप, गुण एवं माधुर्यभावमें अपना मन भृत्यभाँति लगाये रहते थे। तुम्हरे पुत्र कंसको भयके कारण उनका साधुज्य प्राप्त हुआ। इस दन्तवक्तको और शिशुपाल आदि दूसरोंको क्रोधसं, तुम सभी यादबोंकी एकता—सजातीयताके भावसं तथा हमलोगोंको सुइदतासे भगवान् सुलभ हुए हैं। अतएव किसी भी उपायसे भगवान् श्रीकृष्णमें मन

लगाना चाहिये । रात-दिन स्मरण करते रहना— होता । यही कारण है कि देखण भगवान् श्रीहरिम् यह गङ्गुके लिये ही सम्भव है; और कहीं ऐसा नहीं शब्दभाव किया करते हैं ॥ २३—२९ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीविज्ञानवण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलादव-संवादमें 'भक्त संतकी महिमाका वर्णन' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

## पाँचवाँ अध्याय

### भक्तिकी महिमाका वर्णन

श्रीव्यासजीने कहा—राजन् ! वत्सासुर, अघासुर, घेनुसुर, वकासुर, पूतना, केदी, कालयनन, अरिष्टासुर, प्रलभासुर, द्रिविद नामक बदंग, रत्नल, शङ्क और शालव इन भग्नाने जब प्रकृति और तुद्धनों से प्रभुको प्राप्त कर लिया, तब फिर भक्तिभाव रखनेवाले उन्हें प्राप्त कर लें, इसमें न होना ही क्या है । राजन् ! गुर्वकालकी बात है—अत्यन्त बलदाली मधु और कैटभ नामके दानव, इसी प्रकार हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिरु तथा गवण और कुम्भकर्ण भी भगवान् विष्णुके भाथ बैंग ठानकर उनके परमपदको प्राप्त हो गये । फिर जो सदा गत्तुङ्गमें प्रेग करते थे तथा अत्यन्त आदरणीय भगवानके श्रीभग्नुक्त चरण-कमलोंके मकरन्द एवं परागमें जिनका मन तुभाया रहता था—ऐसे प्रह्लाद, वाणासुर, राजा वलि, शङ्कचूड़ एवं विभीषण आदि किस-किसने भगवान् विष्णुके धामको नहीं प्राप्त किया ? देवर्षि नारद, बृहस्पति, वसिष्ठ, पराशर आदि तथा सांख्यायन, असित, शुक्रदेव एवं लूनक प्रभुति निष्काम भक्त—जो कमल-लोचन भगवानके चरण-कमलोंके मकरन्दके प्रधान भ्रमर कहे जाते हैं— नूमण्डलमें विना ही स्वार्थके प्रमण करते रहते हैं । यसि, उत्कल, अङ्ग, भरत, अर्जुन, जनकजी, गांधि, प्रियवत, यदु आदि एवं अम्बरीष तथा अन्य निष्काम भक्त एवं श्रेष्ठ परमहंस गण भगवान् श्रीकृष्णकी अमृतमयी कृथके पानमें मलत हुए छूसते हैं । मन्दोदरी, मतहङ्गमुनिजी शिष्या भक्तिमती शवरी, लारा, अविमुनिकी प्रिया साध्नी अनसूया, अहल्या, कुन्ती और द्रुपदीशुभारी द्रौपदी—ये सभी प्रशंसनीय भक्त-महिलाएँ हो चुकी हैं । परमहंसोंके समान ही इनकी भी ख्याति है । सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान्, जामवान्, गरुड, जटायु, काकभुशुण्ड आदि तिर्यक्

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीविज्ञानवण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलादव-संवादमें 'भक्तिकी महिमाका

वर्णन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

## छठा अध्याय

### मन्दिर-निर्माण तथा विग्रहप्रतिष्ठा एवं पूजाकी विधि

राजा उग्रसेनने पूछा—सुने । यहस्य कर्म-ग्रहसे  
महा रहता है । ऐसी क्रीन-सी विधि है, जिसके द्वारा यह  
कर्मासक्त गृहरथ महात्मा श्रीकृष्णकी सेवा कर सके । उसे  
कहनेकी कृपा कीजिये । ( साथ ही यह भी बताइये कि )  
जिसके जीवनमें भक्तिका अङ्गुर ही नहीं है अथवा है तो वह  
चढ़ता नहीं, ऐसे व्यक्तिमें स्वयं श्रीहरि किस प्रकार  
प्रसन्न हो सकते हैं ॥ १२ ॥

श्रीव्यासजी घोले—यदि भक्तिका अङ्गुर न हो तो  
सत्युर्धीका सङ्ग करना चाहिये । सत्सङ्गसे वह अङ्गुर  
उत्पन्न हो सकता है और वेगसे बढ़ भी जाता है । राजन् ।  
भगवान् श्रीकृष्णके सेवनकी विधि, जिसके प्रभावसे यह  
यहस्य भी शीघ्र भगवान् श्रीकृष्णको प्राप्त कर सकता है  
और जो अस्त्वं सुलभ है, वह तुम्हें मैं बतलाता हूँ ।  
जिसकी आचार्यके सत्कृत्ये उत्पत्ति हुई हो तथा जो भगवान्  
श्रीकृष्णके ज्ञानमें दर्शन है, उनको शुरू बनाकर मनुष्य  
सिद्धि पाता है । मनुष्यको चाहिये कि वह ऐसे शुद्धसे  
महात्मा श्रीकृष्णकी सेवा-विधि सीखे । जो भगवान् विष्णुकी  
दीक्षासे रहित है, उसका सब कुछ निष्फल हो जाता है । गुरुहीन  
गानदङ्का दर्शन करनेपर पुरुषका पुण्य नष्ट हो जाता है ॥ ३-७ ॥

सनातन भगवान् श्रीहरिका मन्दिर उत्तरसुन्दर बनवाना  
चाहिये । उसमें ऊँचा आलन स्थापित करके उसके ऊपर  
कलशसे सुशोभित पीट स्थापित करे । उसमें तीन 'सौँडी  
बनाये, जिनके नाम सह, चित् एवं आनन्द रखे ।  
आसनको भूत्यवान् बलसे ढककर उत्तर रुईकी गही  
विला दे । उसके आसपास तकिये लगाकर उन्हें स्वर्णके तारोंसे  
निर्मित बलसे ढक दे । दीक्षालोपर भाँति-भाँतिके चित्र  
अङ्कित करे और भीतर पर्दी लगा दे । सब ओर मण्डप  
बनाये तथा लोण-बंहनबार, झरेले, जलके फूहरे तथा  
जालियोंसे मन्दिरको खूब जगाओ जाय । मन्दिरके आँगनमें  
चाँदीके सुन्दर सभामण्डप बनाये जाओ । वहाँ आँगनके बीच  
तुलसीजीका मनोहर चूपूरा हो । मन्दिरके बाहरी द्वारपर  
दो हाथी बनाकर चाहिये । राजन् । कैसे ही बनाकर दो  
लिह भी बैठा दे । मन्दिरका शिखर सोनेका हो । शिखरपर  
उसके नीचे शक्ति बनवा दे । मन्दिरके द्वारपर अगङ्ग-बगङ्ग  
श्रीहरिके महारूपमय नाम लिखने चाहिये । दीक्षालूपर एक

ओर गदा, पदा, शङ्ख और शार्ङ्गधनुष अङ्कित करायें ।  
बार्यी और तरकस और दाहिनी तरफ केवल बाणकी चित्रकारी  
बनवाये । मन्दिरके पिछले भागमें शतकन्द्र नामक दाल,  
नन्दक नामवाली तलबार, इल और मुसल प्रयत्नांगुर्वक  
अङ्कित कराये । लिंगासनकी पीठपर गोपियों तथा गौओंको,  
उसकी सीटीपर गोपालोंको और किंवालिपर 'जय' एवं 'विजय'  
लिखे । देहर्लीपर कल्पबूष्ठ, लंबोपर मनोहर लताएँ,  
जहाँ तहाँ दीक्षालोपर पापनादिनी गङ्गा, यमुना, खन्दासन,  
गोवद्धन, नूरहरण तथा रास-मण्डल आदिके लीलाचित्र  
अङ्कित कराये । फिर प्रयत्न करके चित्रकृट, पञ्चबटी, राम  
एवं रावणका युद्ध अङ्कित कराये, किंतु उसमें जानकी-इरणका  
प्रसङ्ग अङ्कित न कराया जाय । दसों अवतारोंके चित्र, नर-  
नारायणाश्रम (वद्विकाश्रम), सातों पुरियाँ, तीनों ग्राम, नीं बन  
और नीं ऊपर भूमिके चित्र अङ्कित कराये । बुद्धिमान् पुरुष  
इस प्रकारके चित्रोंको अङ्कित कराके मन्दिरका निर्माण  
कराये । तदनन्तर उसमें भगवान् श्रीकृष्णके विग्रहकी  
स्थापना करे । श्रीकृष्णकी किंशोर अवस्था हो और वे हाथमें  
याँसुरी लिये उसे बजाना ही चाहते हीं तथा उनका दाहिना  
पैर टेढ़ा हो—इस प्रकारका रूप सेवाके लिये सर्वोत्तम माना  
गया है । भक्त परम भक्तिके साथ इस प्रकारके विग्रहबद्धपकी  
शीघ्र ही गुरुके द्वारा मन्दिरमें प्रतिष्ठा करा दे और फिर  
अस्त्वं भावके साथ सेवामें तत्पर हो जाय । जीवन्तों  
भगवान्के प्रसादके रसमें, नालिकाको तुलसीदलकी सुगन्धमें  
और कानोंको भगवान्के कथा-भवणमें लगा दे । इन प्रकार  
सेवापरायण हो जाय । भागवतोत्तम पुरुषोंका कहना है कि  
जो भावको जाननेवाला पुरुष रात-दिन श्रीकृष्णकी सेवा  
करता है, वही प्रेमजलशयस्पन्द उत्सम भक्त है । राजन् ।  
एक हजार अश्वमेष और सौ राजसूय वह भगवान् श्रीकृष्णके  
सेवनकी सोलहवीं कलाके एक अंशके लगावर भी नहीं हैं ।  
जो मनुष्य श्रीकृष्णसन्दर्भकी स्तीलकथा तथा सेवाके उपदेशकक्ष-  
भी दर्शन कर लेता है, वह करोड़ों जनको किये हुए  
पापोंसे बहु जाता है—इसमें कोई संशय नहीं है । वेहवसान  
हो जानेपर उसे के आनेके लिये स्वाम्यसुनारके समान  
मनोहर विग्रहके भगवान्को पार्वद घोलेकरे इस लेन्दर  
होके आते हैं ॥ ८-८८ ॥

इस प्रकार श्रीर्म-सहितमें श्रीविज्ञानदर्शके अस्त्वं असद-नमुक्तव्य-संवादमें 'मन्दिरमनियं तथा विग्रह-प्रतिष्ठा  
एवं पूजाकी विधि' नामक शब्द व्याप्त भूता है ॥ ८ ॥

## सातवाँ अध्याय

### नित्यकर्म और पूजा-विधिका वर्णन

**श्रीबेदव्यासजी बोले—**राजन्। ब्राह्ममुद्दृतमें उठकर भगवान् गोविन्द, गुरुदेव और कायय आदि शृणियोंके नामोंका बारंबार उच्चारण करे। तत्पश्चात् वह हरिभक्त भूमिको प्रणाम करके जमीनपर पैर रखते। फिर वह स्त्राम भक्त आच्यन करके तत्काल आनन्दपूर्वक आसनपर बैठ जाय। हाथोंको गोदमें स्वकर इनास रोककर (गुरुदेवका) ध्यान करे—भगवान् गुरुदेव शानमुद्दा धारण किये हुए हैं, उनका स्वरूप अरथन्त शान्त है और वे स्वस्तिकासनमें विषय रहे हैं। यों गुरुदेवका ध्यान करनेके पश्चात् भक्त प्रकाश भन होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका ध्यान करे—श्रीकृष्णचन्द्रकी अवस्था कियोर है, श्यामल श्राविग्रह है, जो करोंमें बंधी एवं बेंतसं विभूषित अरथन्त है। मनोहर है। ८५ प्रकार श्रीहरिका ध्यान करनेके पश्चात् बाहर चला जाय। महाराज ! यहसु पुष्ट कैसे पवित्र होता है—अब उस विधानकी पूरा-पूरा खुनो ॥ १—५ ॥

मिठी लेफर 'अशक्तान्ते' इत्यादि मन्त्रमें शौचकं अन्तमें एक बार लिङ्गमें, तीन बार गुदामें, इस बार बायेहाथमें, सात बार दोनों हाथोंमें तथा तीन-तीन बार प्रत्येक पैरमें मिठी और जल क्षाकर शुद्धि करे। ब्रह्मचारी और बानप्रस्थको इनमें दूना करना चाहिये। भगवान्की सेवा करनेवाले संन्यासीकी शुद्धि इससे चौगुना करनेपर होती है। गोगी और पथिकोंकी इसके आधेसे तथा शूद्ध एवं स्त्रीका उससे भी आधेसे पवित्र होनेका विधान है। शौचकंभूत रक्षित मनुस्मृती सारी कियाएँ निष्फल हो जाती हैं। मुखका शुद्धि भी होनी चाहिये; क्योंकि मुखशुद्धिसे रक्षित मनुष्यके मन्त्र फल देनेवाले नहीं होते। 'बनस्ते ! दुर्द मेरे लिये आयु, बल, वीर्य, यदि, पुत्र, पशु, धन, ब्रह्मान् और ब्रह्म प्रवान् करो।'—इस मन्त्रका उच्चारण करके दहुन ग्रहण करे। बबूल, दूधवाले तृक, कपास निरुप्ती, आँखल, बट, एरंड और बुर्जन्युक तृक दहुनके लिये निषिद्ध हैं। फिर हाथ जोडे हुए 'हरिहर' इस मन्त्रके उच्चारणपूर्वक भगवान् सूर्यको प्रणाम करे। तदनन्तर स्वस्थचित्र हो ग्रहण आदि भगवान् श्रीहरिके

\* आशुरुं वस्त्री वर्णः पश्चः पशुवधनि च ।

सहस्रा च वेष्ट च लं ने देहि बनस्ते ॥

भक्तोंको प्रणाम करे। तुलसीकी मिठी ल्पाकर स्नान करे। स्नान करसे समय 'धीगङ्गाष्ठक' और 'यमुनाष्ठक'का सविधि पाठ करना चाहिये। अयोध्या, मधुरा, मायावती (हरद्वार), काशी, काशी, अवनिता (उज्जैन) और द्वारावतीपुरी (द्वारका)—ये सात पुरियाँ मोक्ष देनेवाली हैं। (अतः इनकी स्वरण करना चाहिये।) महायोगमें शालग्राम, हरिमन्दिरमें सम्भलग्राम और कोसलमें नन्दिग्राम—ये तीन ग्राम कहे गये हैं (इन तीन आसोंका स्वरण करे)। दृष्टिकारण्य, सैन्धवारण्य, जम्बूमार्ग, पुष्कल, उत्तरावर्त, नेमिषारण्य, कुरुजाङ्गल, अर्जुद और हेमन्त—ये नौ अरण्य माने गये हैं। इन सभी तीर्थोंके नाम बारंबार उच्चारण करके स्नान करे। स्नानके बाद उत्तम रेग्मी (अहिंसासुक) वज्र पहने। बारह तिळक और आठ मुद्राएँ धारण करे। फिर संध्या करके पवित्र हो मौन होकर भगवान् श्रीकृष्णके मन्दिरमें जाय ॥ ६—१९ ॥

षष्ठा-ताली बजाकर, 'जय हो, जय हो' इत्यादि शब्दोंका उच्चारण करते हुए कहे—

'उसिंहेचिष्ठ गोविन्द योगमिद्वा विहाय च ।'

'भगवान् गोविन्द ! योगमिद्राका परिवाग करके उठिये—उठिये ।' राजन्। भगवान्को उठानेका यह (सार्व) मन्त्र है। इसका उच्चारण करके श्रीहरिको जगाये। तत्पश्चात् भङ्गल-आरती लेकर भगवान्के मुखपर चुमाय। तदनन्तर देश एवं कालके प्रभावको जानेयाला तथा भावका जाला वह भक्त (तदनुकूल ही) भगवान्को स्नान कराकर भङ्गलमय बस्त्राभूपाणोंके द्वारा भगवान्का शृङ्खाल करे। पश्चात् आरती करके भगवान्को अज्ञभोग अर्पण करे। भौति भौतिके रसमय उच्चम भौत्य पदार्थका महाभोग निवेदन करके महाभोगकी आरती करे। तदनन्तर भगवान्को शयन कराये। इसके बाद तुलसीकी गत्तसे तुक्क परम प्रसादसे नित्यप्रति स्वयं ग्रहण करे। जो नित्य इस प्रकार भगवान्की पूजा करता है, वह कृतार्थ हो जाता है—इसमें कोई संदेह नहीं है। इसके बाद विधिवत् मध्याह्नसे यज्ञप्रोग निवेदन करके राजभोगकी आसी करे। फिर भगवान्को शयन कराये। दिनको बार बही शेष

इनेपर यथाविधि शुद्ध बजाकर श्रीहरिको उठाये; तदनन्तर लंब्याङ्गी आरती करके दूध आदि निवेदन करे। प्रदेषकाल आनेपर प्रदेषकी आरती करे। उसमें उसम गिर्णानका भोग लगाकर श्रीहरिको शापन करये। राजन्। यह राज-तेवा है—राजाओंके लिये ही इस प्रकारकी सेवाका विधान है। अतः इसका नाम 'राजसी' है ॥ २०-२८ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीविज्ञानसंग्रहके अन्तर्गत नारद-बहुताश-संवादमें 'नित्यकर्म और पूजा-विधिका वर्णन'

नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णकी सेवामें दक्षिचित् हो सम्यक् प्रकारसे व्या हुआ मनुष्य अपने सौ कुलोंको तारकर आस्थानिक परम पदको प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, रामनवमी, राघवाष्टमी, अश्वकृष्ट, बामन-द्वादशी, गृहिं-चतुर्दशी तथा अनन्तचतुर्दशी—इन अवसरोंपर भगवान् श्रीकृष्णकी महापूजा करनी चाहिये ॥ २९-३० ॥

## आठवाँ अध्याय

### पूजा-विधिका वर्णन

**श्रीविज्ञानस्त्री वोले—**तदनन्तर स्नान एवं नित्य नैमित्तिक क्रियाका सम्पादन करके शुद्ध स्वपिण्डवार पाँच रंगोंसे युक्त मण्डल बनाये। वेदकी शृङ्खलाओंदारा विधिवत् मङ्गलमय दिव्य उज्ज्वल कमलकी रचना करे। उसमें बत्तीस दल हों और वह केसर और कणिकासे युक्त हो। राजन्। कणिकाके ऊपर श्रीहरिका सुन्दर रिंगासन स्थापित करके उत्तरपर राष्ट्र, राम, भूदेवी और विरजाकी स्थापना करे। उन देवियोंके मध्यमें साक्षात् पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णको प्रतिष्ठित करे। कमलके आठ दलोंमें राजिकाजीकी मङ्गलमयी आठ तुन्द्री सखियाँ रहें। इसके बाद आठ दलोंमें भगवान् श्रीकृष्णके सखाओंकी स्थापना करे। इसी प्रकार सोलह दलोंपर सखियोंके दो-दो लक्ष्मीय रहें। फिर त्रिविभान्, पुरुष कमलके समीप शुद्ध, चक्र, गदा, पद्म, नक्षत्र नामक तल्लार, शार्दूलघुण, वाणि, हड्ड, सुखल, शैक्षण्यमणि, चमस्तक, श्रीकल, नीलाम्बर, शीताम्बर, चंद्री और चंद्र—इन सबको स्थापित करे। फिर त्रिलक्षणमें साक्षात्कार एवं गङ्गाकल्पतेरुक रथ, त्रिपति एवं दावक नामकों का लागि, गङ्गड, त्रिमूर्ति, तन्द्रा, सुनाम, चम्पा, गङ्गाच, वाणि, व्याघ्र और त्रिलक्षणकी विदान्, पुरुष वल्लभेनक स्थापना करे। इसी प्रकार उत्तर दिशाओंमें शृङ्खल-पृथक्, दिक्षालोंकी पश्चाता चाहिये। फिर वही विष्वकर्मा, शिव, विष्णु, त्रिगुण, लक्ष्मी, गणेश, नवघ्रह, वृक्षण तथा वैदेश चालुक्याओंकी आवत्त दे। कमलके अगले भागमें वेदीपर पञ्चात्मक शीतिहोत्रकी स्थापना करें। इसके बाद व्याघ्रहन करके आलन, पाश, विदेशार्थी, स्त्रीन;

यशोपवीत, वस्त्र, चन्दन, अक्षत, मधुपक, फूल, धूप, दीप, आभूषण, स्वादिष्ट नैवेद्य, आन्तमन, ताम्बूल और दक्षिणा समर्पण करे। प्रदक्षिणा और प्रार्थना करके आरती करे। फिर नमस्कार करे। हर एक कमंके लिये अल्प-अल्प विधान है—आवाहनमें पुष्प, आसनमें दो कुशा और पाद्यमें श्यामादूर्वा और अपराजिताका उपयोग करे। यादव ! अर्ध्यमें सुन्दर गन्धवाले पुष्प रखने चाहिये। राजन्। स्नानके जलमें चन्दन, खस, कागूर, तुकुम और और अगुइ मिलावे। महामते ! इसी प्रकारका जल स्नान-के लिये उत्तम होता है। मधुपकमें ऑबला एवं कमल, धूपमें अष्टगन्ध और दीपमें कपूर देना चाहिये। पाँछे रंगका यशोपवीत, वज्रमें पीताम्बर, भूरगके स्थानपर सोना और गन्धके स्थानमें कुकुम तथा चन्दन देने चाहिये। फूलोंमें तुलसीकी मङ्गरी, अक्षतोंमें चावल और नैवेद्यमें नाना प्रकारके पकवाल और घट्टरु भोजन-पदार्थ उत्तम मालने गये हैं। जलमें कैदल गङ्गाकल और थनुनाकल। गङ्गन्। भोजनेपराम्ब आजमनके लक्ष्मी जावकल और छहोल मिला है। ताम्बूलमें लौंग और इकलकची मिला है। दक्षिणा-के स्थानपर मुख्य अर्पण करे। प्रदक्षिणाके प्रकारकी दूममा और आरतीमें लौंग धूप लिया जायें हैं। महारथ ! प्रार्थनमें भगवान् श्रीहरिकी देवतामुकुर भरीक छरना और नमस्कारके स्थानपर अस्त्र बद्ध होकर ताम्बूल-दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये। तदनन्तर पूजाको चाहिये कि वह पवित्र होकर दावशावर मन्त्रसे शिला बौंद के और पूजाकी सभी सामग्रियाँ आगे रखकर भगवान् लामने बैठ जाय ॥ १-२४ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीविज्ञानसंग्रहके अन्तर्गत नारद-बहुताश-संवादमें 'पूजा-विधिका वर्णन'

नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

## नवाँ अध्याय

### पूजोपचार तथा पूजन-प्रकारका वर्णन

धीर्घासलजी बोले—महाराज ! पूजन-सामग्री अर्थण कलेके तुम्हर मन्त्र वेदमें कहे गये हैं । मैं तुम्हारे लिये उनका वर्णन करता हूँ । एकाप्र-सन होकर सुनो ॥ १ ॥

( मन्त्रोंका उचारण करते हुए पूजा करनी चाहिये । मन्त्र अर्थसहित निश्चिलिखित हैं । )

आवाहन—गोलोकधामाधिष्ठते रमापते

गोविन्द दमोदर दीनवत्सल ।  
राधापते माधव सात्वतां पते  
सिंहासनेऽस्मिन् मम सम्मुखो भव ॥

गोविन्द ! आप गोलोकधामके स्थानी हैं । दीनोपर दया करना आपका स्वभाव है । दमोदर ! आप लक्ष्मी एवं राधिकाजीके प्राणनाथ हैं । यादवोंके अधीश्वर हैं । माधव ! इस सिंहासनपर मेरे सामने आप विराजमान होइये ॥ २ ॥

आसन—धीर्घासरागस्तुरुद्धर्षपुरुष

महार्षैष्ट्यैख्यित्यदावाम् ।  
बैकुण्ठ बैकुण्ठपते युहाण  
पीतं तदिद्धाटकमुभ्यण्डम् ॥

बैकुण्ठपते ! इस आसनके ऊपरकी पीठपर नीलम चमक रहा है । पांवोंमें बैदूर्यमणि (पुलराज) जड़ी गयी है । यह विजयीके स्थान चमकती हुई सुवर्णकी कलशियोंसे उक्त है । कृष्ण आप इसे प्रहण कीजिये ॥ ३ ॥

पद—परं सिंहं विर्भुलौकमपात्रे

समाहृतं विन्युसरोवरमस्ति ।  
बोगेश बोगेश अग्निवास  
युहाण यस्तं प्रयामसि पादी ॥

बोगेश ! हरके त्रिपात्रके पात्रमें विन्युसरोवरसे लालर तुम्हें लकड़ा गया है । बोगेश ! आप ब्रह्मके अविद्याता हैं । मैं आपके शरणीको श्रमास करता हूँ । आप इस पात्रको स्वीकार करें ॥ ४ ॥

पर्ण—उद्धास्यमपुष्पतसमिवर्त

सिमलापर्यन्तर्वदरसितम् ।  
अस्तिसुहाण रक्षरमण श्रभो  
यतुर्यते यतुताय यदूषम् ॥

रमो-हल्क प्रभो ! यतुपते ! यतुताय ! यदूषम ! क्यद तथा

चम्पाके पुष्पोंसे समन्वित तथा बाहरमें भैरु त्रुट इस लिमेके उच्चम अर्थको श्रहण करें ॥ ५ ॥

स्नान—कालसीरपातीरसिलिङ्गिस्तेज

सुमसिलस्तेजसिरवता जडेन ।  
स्नानं कुठ त्वं यतुताय देव  
गोविन्द गोपालक तीर्थवाद ॥

गोविन्द ! आप वाहिनीके स्थानी तथा गौरोंकी स्था करनेवाले हैं । आपके नरण तीर्थस्वरूप हैं । भगवन् ! केसर, चन्दन, चमेली और सुसन्ते सुवासित यह जल है । आप इससे स्नान कीजिये ॥ ६ ॥

मनुष्म—मध्याह्नस्त्रुपुरुष्मभवधमायहं

सिंहासनम्पर्कमनोहरं परम् ।  
युहाण विष्णो मधुपर्कमेन  
संदृश्य पीताम्बर सात्वतां पते ॥

यहुपते ! आप पीताम्बर आण करनेवाले हैं । आपके लिये मधुपर्क तैयार है । यह मध्याह्नके प्रचण्ड मर्त्यण्डके उत्तापजनित भ्रमको दूर करनेवाला है । मिथ्यीके यिल जानेसे यह अथन्त मनोहर हो गया है । भगवन् ! आप इसकी ओर हड्डि छालकर इसे स्तीकार करनेकी कृपा करें ॥ ७ ॥

पर—विभो सर्वतः प्रस्फुरत् ग्रोज्यवलं च

स्फुरद्रस्त्रशून्यं परं तुर्लभं च ।  
स्ततो निर्मितं पश्चिमालकवर्णं  
युहाणाम्बरं देव पीताम्बराक्षयम् ॥

प्रभो ! 'पीताम्बर' नामक वस्त्र प्रस्तुत है । इसकी प्रभा अल्पत दर्शक है, इसकी फिरणे तब और हिटक ही है । परम हुर्लभ यह वस्त्र अपने-आप वसा हुआ है । कमलके केशर-तैला इसका रंग है । कृष्ण आप इसे प्रहण करें ॥ ८ ॥

यज्ञोपवीत—सुवृद्धीभ्रमीपीतवर्णं सुपेन्द्रैः

परं ग्रोशितं वेदविशिर्मितं च ।  
युभं पश्चाक्षर्येषु नैप्रियिकेषु  
प्रभो यह यज्ञोपवीतं युहाण ॥

भगवन् ! सुवर्णके लंगात चमचमाता हुआ हूँके पीके शर्णका यह यज्ञोपवीत है । उच्चम मन्त्रोद्धारा भवीभाँति

इसका ग्रोकण हुआ है । वेदव ब्राह्मणोंने इसकी रचना की है । पाँच नैमित्तिक कर्मोंमें इसका उपयोग कल्याणदायक होता है । प्रभो ! आप इसे प्रहण कीजिये ॥ ९ ॥

**अनूष्ठ—कल्पकरत्समयं मयनिर्मिलं**  
मद्यनदक्षकदनं सदनं रुचाम् ।

उपस्थि पूष्टमुख्यविभूषणं  
सकललोकविभूषणं गृहाताम् ॥

अखिललोकविभूषण । सोने एवं रत्नोंसे बना हुआ यह खुर्वर्णमय भूषण उपस्थित है । वह मयके हाथकी कारीगरी है । कामदेवकी कान्तिको कीका करनेवाला यह प्रभाका भंडार है । भगवन् ! प्रातःकार्यीन सूर्यके समान चमचमाता यह भूषण आप स्वाकर कीजिये ॥ १० ॥

**अनूष्ठ—संब्येन्दुशोभं वहुमङ्गलं शी-**  
काशीनीरपादीकरपक्षुकुञ्जम् ।

समष्टहनं गाथ्यक्षयं गृहाण  
समदनमृग्णिद्वारकार्द्धभारदारिन् ॥

सांकेतिकके चन्द्रमाके समान ब्रोमायमान, अनेक महालोके देवेवाला, केसर एवं कपूरसे थुक यह गन्धराशि आपका अलंकार है । सम्पूर्ण छोकोंके भारको दूर करनेवाले भगवन् ! आप इसे प्रहण कीजिये ॥ ११ ॥

**अनूष्ठ—व्यापादं व्रजाणा पूर्वमुत्ताव**  
आहौस्तोयैः सिद्धितान् विष्णुना य ।

क्षेत्रेणापाद् रथितान् रात्रसेभ्यः  
साक्षात् भूमध्यस्तांस्त्वं गृहाण ॥

पहले व्रजाने व्रजावत् देशमें जिन्हें बोया था, भगवान् विष्णुने वेदमय जलमें जिनका लेचन किया तथा शंकरजीने उमीप आकर रात्रसेमें जिनकी रक्षा की, भगवन् ! उन अक्षरोंको स्वर्य आप प्रहण कीजिये ॥ १२ ॥

**अनूष्ठ—मन्दारसंतानकपारिजात-**  
कल्पतुम्बधीहरिचन्दनानाम् ।

गृहाण पुष्पाणि हरे तुलस्या  
सिद्धाणि साक्षात्क्षयमञ्चयीभिः ॥

भगवन् ! मन्दार, संतानक, पारिजात, कल्पतुम्ब और हरिचन्दनके ये पुष्प उपस्थित हैं । नक्तने महारियोंके साथ तुलसीपत्रोंका भी इनमें समिग्रण हुआ है । आप इन्हे प्रहण करें ॥ १३ ॥

**अनूष्ठ—कल्पपादीकल्पूर्णमित्यं**  
वहुमङ्गलोकादीपत्तं ॥

सद्यसुगन्धीकृतहर्म्यदेशं

द्वारावतीभूष गृहाण धूपम् ॥

द्वारकावीश ! जो लौग पदं मल्यामिके चूंगोंसे प्रक्षित है, वेदता, दानव एवं मनुष्योंको अननिदत्त करनेकी जिसमें शक्ति है तथा जो तत्काल महलोंको सुगन्धित बनानेवाला है, ऐसे धूपको आप प्रहण कीजिये ॥ १४ ॥

**दीप—तमोहरिणं शानमूर्ति मनोहं**  
लसद्वर्तिकर्पूरपूरं गवाज्यम् ।

जगत्ताथ देव प्रभो विश्वकीप  
स्फुरज्ज्योतिः दीपमुख्यं गृहाण ॥

प्रभो ! आप जगत्के सामी एवं विश्वको प्रकाशित करनेवाले हैं । अन्धकारका नाश करनेवाला ज्ञानस्वरूप यह प्रधान दीप आपके लिये तैयार है, जो वसियोंमें सजाया हुआ अस्फूट मनोहर जान पड़ता है । वह गायके धीसे पूर्ण है । साथ ही इसमें क्षुर भी छोड़ा गया है । भगवन् ! इस प्रकार चमचमाती हुई लौगले इस दीपको स्वीकार करें ॥ १५ ॥

**नैवेद्य—रसे:** शरैर्वेदविधिव्यवस्थितं  
रसे रसाकृतं च यशोमतीकृतम् ।

गृहाण नैवेद्यमिदं सुरोचकं  
शब्दामृतं सुम्बर नन्दमन्दन ॥

नन्दमन्दन ! पहरसे युक्त एवं वेदोक विधिसे तैवार किया हुआ नैवेद्य आपके लिये उपस्थित है । यह रसोंमें भयपूर है और वशोदासीने इसे बनाया है । स्वादिष्ट होनेके साथ गोवृतके प्रयोगसे वह अमृतमय बन गया है । अतः इसे आप प्रहण कीजिये ॥ १६ ॥

**अनूष्ठ—महोपादीवेदावलात्** समुद्रभृतं  
सुवर्जपात्रेण हिमाशुद्धीतकम् ।

सुनिर्मलामभो द्यमूर्तोपमं जलं  
गृहाण राधावर भक्तवस्तल ॥

भक्तवस्तल ! गङ्गोत्रीकी धाराते यत्पूर्वक प्रात किया हुआ यह अमृतमय जल है, जो हिमस्तमके दुर्घटकी भौंति हीतक है । यह तुलसीके पात्रमें रसा चाय है और इससे अति निर्मल आमा निकल रही है । राधावर ! आप इसे स्वीकार कीजिये ॥ १७ ॥

**भाष्मन—राधापते** शीघ्रितापते प्रभो  
विष्यपते स्वर्यपते च सूरपते ।

वहुमङ्गलातीपलमुख्यवस्थितं  
सरं गृहाणात्मनं दूषयिते ॥

होकरते । आप भगवानी विश्वके साथी हैं ।  
सर्वेश्वर । आप जलसीधीके प्राणमात्र एवं भूमण्डलके  
अधीश्वर हैं । इयानिये । कहुँठ, जायफल और पुष्पोंसे  
सुखासित यह उसम आचमनीय प्रस्तुत है । प्रभो । इसे  
ग्रहण कीजिये ॥ १८ ॥

ताम्बू—आतीकलौलासुलब्रह्माणा-

बहूदलैः पूराफलैहृष्ट संशुद्धम् ।

सुकासुधाखादिरसारयुक्तं

शृहाण ताम्बूलमिदं रमेश ॥

रमेश ! जायफल, इलायची, लौंग, नागकेचर, सुपारी,  
मोतीकी भस्म और सैके के सारसे युक्त यह ताम्बूल स्वीकार  
कीजिये ॥ १९ ॥

दक्षिणा—नाकपालवसुपालमीलिमि-

वंमिदताडप्रियुगलं प्रभो हरे ।

दक्षिणां परिशृहाण माधव

लोकदक्षवर दक्षिणाप्ते ॥

प्रभो ! नाकपाल और वसुपालोंके मुकुटोंसे आपके  
युगल चरण-कमलकी पूजा हुई है । आप दक्षिणाके पति  
हैं । प्राणियोंको बन प्रदान करनेमें आप बड़े कुशल हैं ।  
भगवन् ! आप यह दक्षिणा ग्रहण करें ॥ २० ॥

नीराजन—प्रस्फुरत्यरभद्रीसिमङ्गलं

गोषृताकनवपञ्चवर्तिकम् ।

आर्तिकं परिशृहाण चार्तिहृष्ट

पुष्पकीर्तिविशदीकृतावने ॥

आर्तिहृष्ट ! ऐह प्रकाशसे युक्त दीक्षियी यह मङ्गलमय  
आरती है । गायके छोसे भीती हुई चौदह कर्कियाँ इसमें  
छोड़ी हैं । अपनी पवित्र कीर्तिका विकार करनेवाले भगवन् ।  
आप इसे ग्रहण कीजिये ॥ २१ ॥

नमस्कार—नामोऽस्वरमासाय सहस्रमूर्ति

सहस्रपादस्तिविदोक्षवाहये ।

सहस्रमाम्ये पुरुषाय दावहते

सहस्रकोटीशुग्राभासिये नवः ॥

ओ अवस्त ! किनके इतारों विश्रह हैं, किनके अरण,  
वंश, वानु, जन्म, सत्त्व एवं नेतृत्वी वंशस्य भी इतरोंसे  
है, की नित्य हैं, किनके इतारों नाम हैं दया को करों  
तुम्हीनो, वारथ करनेवाले हैं, उन परत मुख्य भगवान्के  
लिये मेरा नमस्कार है ॥ २२ ॥

प्रश्निणा—स्वप्नसतीर्थ्यद्वादशसूर्यकलिङ्गं वासनम् ।

लभेत् परस्य शाश्वतं करोति वा यद्युहिष्मामन्त्रम् ।

जो मनुष्य परम प्रभु भगवान्की प्रदक्षिणा करता है,  
उसके लिये सम्पूर्ण तीर्थ, यह, दान तथा घूर्त (कुँझ, बाली,  
पोलरा आदि सुखदाने, जलीया लघावाले आदिते उपाय हुआ)  
फल सुखम हो जाता है ॥ २३ ॥

प्रथमा—हरे मत्स्यः पातकी नास्ति भूमौ

तथा स्वप्नसतो नास्ति पापापात्री ।

इति स्वं च मत्स्य जगद्वाय देव

यथेष्ठाभवेत्ते तथा मां कुरु त्वम् ॥

भगवन् ! जगत्तमे मेरे समान कोई पारी नहीं है और  
आपके तमान कोई पापका इण करनेवाल भी नहीं है;  
प्रभो ! यह तमहकर, है जगत्राय ! फिर आपको जो उकित  
जान पढ़े, वेळा ही मेरे साथ कीजिये ॥ २४ ॥

सुनी—संहालमार्ये स्वप्नसत्तरं वद्य-

क्षुभ्यत्प्रदार्यार्थं विभवं समं वदत् ।

त्वा ब्रह्म वन्ने हि सुदुर्गमं परं

सदा लधामा परिमूर्तकैतवम् ॥

जो वेतनास्वरूप है, उत एवं अस्तुते परे हैं, ओ नित्य,  
है, किनका विराहकूप है, जो शान्तमूर्ति है, ऐवर्वद्वरकूप है,  
सर्वज तम है, किन्हें पाना अव्यन्त कठिन है तथा किन्होंने  
अपने तेजसे मायाको सदा तिरस्त कर रखा है, उन आप  
परम ब्रह्मकी मैं बन्दना करता हूँ ॥ २५ ॥

महामते ! इस प्रकार इन मन्त्रोदारा देवेश्वर भगवान्  
की पूजा करे । फिर श्रीकृष्णको प्रणाम करके वलपूर्वक  
उनके उर्वाङ्का पूजन करना चाहिये । फिर—

१ नमो नारायण्य पुरुषाव नदामने ।

विश्वासस्त्वचीर्याय महाहंसाय भीमहि ॥

( २० )

—इस मन्त्रका उचारण करके प्राणायाम करे । तदनन्तर  
मनवान्, विष्णु, मधुसून, वामन, त्रिविक्रम, औषट,  
हृषीकेश, पश्चान, वामोदर, उंकरण, वामुदेव, प्रशुम्न,  
अग्निश्व, अपीष्वाय और भगवान् पुष्पोत्तम श्रीकृष्णके लिये  
मेरा नमस्कार है । ( ओ नमस्कार करना चाहिये । )

—इसी प्रकार वैर, शुक्र, ज्यानु, ऊह, कटि, उद्दु  
पीठ, भुजा, कंपे, जान, नाक, अचर, नेत्र और भगवान्के  
लिये मैं अलग-अलग पूजा करता हूँ—ौं वाहकर उर्वाङ्क  
पूजा करनी चाहिये ।

फिर सखी, लक्षा, शशु, चक्र, गदा, पद्म, असि, शशुष, चाल, हड, मुसल, कौस्तुभमणि, वनमाला, औकल, पीताम्बर, नीलम्बर, चंदी, बैंट आदि तथा तात्त्वज्ञ एवं गणवाच्चजसे युक्त रथ, दाढ़क और सुमति सारपिं, गद्द, कुमुद, नम्ब, सुनन्द, चण्ड, महावल, कुमुदास आदि एवं विष्वक्षेत्र, शिव, ब्रह्मा, तुर्गा, गणेश, दिव्यपाल, चक्र, नवग्रह और षोडश-मातृकाओंका आवाहन करे। इनके नामके साथ छँकार लगाकर नमुर्धन्तका प्रयोग करके 'नमः' शब्द जोड़ दे। तपश्चात् भन्नोद्धार इन सबका पूजन करे।

\* मनो वासुदेवाय नमः संकरेण्याय च ।  
भ्रम्मयावाक्यिलक्ष्माय सारवतां पतये नमः ॥

—इस मन्त्रसे लौ बार आहुति देनी चाहिये। फिर भगवान्‌की प्रदक्षिणा करके महाप्रोत्ता निवेदित करे। तपश्चात् पृथ्वीपर साक्षात् शङ्खचतुर्ष प्रणाम करके वह मन्त्र पढ़े—‘यों सदा’ इत्यादि। (इसका भाव यह है—) जो निरन्तर ध्यान करने योग्य हैं, जिनके प्रभावसे अपमानित नहीं होना पड़ता, जो मनोरथसे पूर्ण करनेवाले हैं, जो लीयोंके आवार हैं, दिव एवं व्रक्षाजीने जिनका स्ववन किया है, जो शरण देनेमें कुशल हैं, भूतोंका दुःख दूर करना जिनका स्वभाव है, जो प्रणतज्जनोंका पालन करनेवाले तथा संसाररूपी उम्मुक्षु-

इस प्रकार श्रीगण-सहितामें श्रीनिहानदाचके अन्तर्गत नमद-चूकाशद-संसदमें ‘पूजोपवास तथा

पूजन-प्रकारका वर्णन’ नामक नवाँ लक्षाव पूरा हुआ ॥ ९ ॥

के लिये लक्षाव है, भगवान् शुद्धवेत्तम् । यात्रके उन चरण-कल्पलोकोंमें प्रणाम करता हूँ ॥ २६—३० ॥

राजद् ! इह प्रकार भल्ल भगवान्को प्रणाम करके भगवान्मत्तोंके साथ विविवत् पुनः आरती करे। उत्त समय विवेकी पुष्टको चाहिये कि बड़ी, घण्टा, बीजा, बाँसुदी, करताल और मुद्रा आदि बाजोंके साथ भगवान्का कीर्तन करे। उत्त समय भगवान्को जन्म प्रेममें विहृत हुए भगवान्के सामने नाचते हैं, उनके जय-जयकारकी ध्वनि प्रकट करते हहते हैं और वे भगवान्की सुन्दर छात्र-कथाका गान करने आते हैं। तदनन्तर प्रभुको पुनः नमस्कार करके सूर्यके समान उड़ाकल मन्दिरमें महामा श्रीकृष्णचन्द्र-को भक्तीयोंसे शयन कराये ॥ ३१—३४ ॥

राजद् ! इह प्रकार जो दत्तचित्त होकर भगवान् श्रीकृष्णकी सेवा करता है, उसे इवर्गके रहनेवाले देवतालोग प्रणाम किया करते हैं। महाराज ! वह श्रीहरिका भन्न भी मृत्युके अवसरपर स्वर्गमें पैर रखकर भगवान्के परमधाम गोषेकको, जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है, चला जाता है। यह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवाका विधान है। मैंने इसका वर्णन कर दिया। यह मनुष्योंको चारों पदार्थ देनेवाला है। अब तुम फिर कहा सुनना चाहते हो ! ॥ ३५—३७ ॥

## दसवाँ अध्याय

### परमार्थशक्ता स्वरूप-निरूपण

राजा उत्तरसेनों कहा—आप भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूप हैं। आपने मेरे ऊपर वक्ती कृपा की। आपके शीमुखसे दाक्षात् भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा-पद्धति विकार-पूर्वक मैंने सुन ली। इससे मैं सफल-जीवन हो गया। अहो ! प्राणियोंमें वक्ती भूमर्त्ता भरी दुर्द है। के बोझ, मोह और शहके असर, भृत्याके हो गये हैं। इसीसे उन्होंने विद्वान् उत्तम्न नहीं होता और न कभी वे भगवान्का भजन ही करते हैं। भगवान् ! अपहर्ता यह मोहिका शक्ति वही अद्भुत है। प्रभो ! वह मोह केर से उत्तम्न दुर्द और किंव अकार इसकी लिप्ति होगी। वह वक्तानेही कृपा कीजिये ॥ १-५ ॥

श्रीकृष्णसभी बोले—जिस प्रकार अस्ते कई चक्रमा दिव्यादी पहुँचते हैं, वहके चक्रमा बैगते वे दक्षिणेष्ठ देखे

हैं, किंतु वास्तवमें हैं कुछ नहीं, विस्तुल प्रतिविम्ब मात्र हैं, ठीक ऐसे ही परम प्रभुकी प्रतिविम्बरूपा यह माया फैली दुर्द है। उसीके प्रभावसे येरा और मैं का भाव उत्तम्न हो जानेपर संसार कायम हो जाता है। माया, काल, अन्तः-करण और देहसे गुणोंकी उत्पत्ति होती है। मनुष्य इनके द्वारा विपरीत कर्म करता हुआ करकर्में पृष्ठ जाता है। इनियोंका ही यह अपाव है कि इरणमें वास्तव कालमें जल और रस्तमें लोकोंका मान होने जाता है। राजद् ! वह जाता, मोहमय है। इसमें रजेशुण और तमेशुण कूट-कूलन भरे हैं। कंठी-कंठी उत्पत्तुका भी प्राप्तुमय होता है। वह अनका विषय है, विकल्पमात्र है और असरपर है। अकारशक्तके दरान यह श्रीकृष्णपूर्वक परिवर्तित होता रहता है—इस प्रकार जानो। मैंने वह कह दिया, वह जाता हूँ और

यह कहूँगा, यह मेरा है, यह तेह है। मैं बुझती हूँ, मैं हुःखमें पढ़ गया। [लोग मुझसे बिना कारण प्रेम करनेवाले हैं]—इस प्रकार मनुष्य कहता रहता है। मेरा तो यह मत है कि मनुष्य अहंकारके कारण सुध-सुध सो बैठा है। ॥४-७॥

**राजा** उड़ानेसे पूछा—ब्रह्मन् ! कृपापूर्वक मुश परमात्माके लक्षणोंका वर्णन कीजिये । साथ ही यह भी बताइये कि विद्वानोंने पूजा-पद्धतिमें भगवान् श्रीकृष्णके लक्षण कितने प्रकारके बताये हैं ? ॥ ८ ॥

**श्रीब्रियासजी** बोले—सनातन प्रभु जन्म और मरणसे रहित हैं। शोक और मोह उनके पास भी नहीं फटकते युवावस्था तथा बुद्धापा आदिका कोई भेद उनमें नहीं है। अहंकार-मद, हुःख-सुख, भय, रोग, क्षुधा, पिपासा, कामना, रति और मानसिक व्याधि—इनके वे अविश्व इैं। मुनीश्वरोंने जिस आत्माको पहचाना है, वह निरीह है, बिना देहका है, सर्वत्र उसकी गति है, वह अहंकारशून्य है, शुद्धब्रह्म है, उसमें सभी गुण रहते हैं, वह स्वतः सबसे परे है, निष्कल एवं स्वयं मङ्गलरूप है और ज्ञानका साकार विग्रह है। वह आत्मा इस जगत्के लो जानेपर भी जागता रहता है। यह देहधारी मनुष्य उसे नहीं जानता किंतु वह सबको जानता रहता है। वही आव्यपुरुष है। वह सबको देखता है; किंतु यह प्राणी उसका साक्षात्कार नहीं कर पाता। उस स्वच्छ एवं मल्ले रहित आत्माकी मैं उपासना करता हूँ। ॥ ९-११ ॥

जिस प्रकार घटसे आकाश, काष्ठसे अग्नि एवं धूरसे पवन व्याप्त नहीं होता तथा दंगोंसे स्वच्छ स्फटिकवर्णमें किंतु प्रकारकी विरूपता नहीं आती, ठीक ऐसे ही यह सनातन पुरुष गुणोंके रहे हुए भी उनसे लिप्यतमान नहीं होता। वह ‘करु’ शब्दसे वाच्य परमात्मा लक्षणा, स्वज्ञना, वाक्चालुरी, अर्थों, पदस्पोदयशब्दमें शब्दों तथा सर्वोक्तम गुणियोंके द्वारा भी ज्ञानका विषय नहीं होता; किंतु कौकिक प्राणी तो उसे बाज़ ही कहते रहता है; भूमध्यवर्त उसे किसने क्यों बक्साँ, किसने ‘कर्म’, किसने ‘काल’, किसने ‘परम मुक्तर’ तथा किसने ‘विदार’ कहते हैं। परंतु वेदान्तशास्त्री तो उसे बक्साँ ही कहते हैं। उच्च परमात्मके कालसे उत्पन्न होनेवाले गुण सर्वशः नहीं कहते। माया, इन्द्रिय, चित्त, मन, कुर्दि और सहस्रव्य श्री उत्तम प्रहर नहीं कर सकते, वेद वर्णन नहीं कर पाता।

तथा अग्निमें विश्वारीकी भौति उत्तमे उभी प्राणी विश्वीन हो जाते हैं। वही परमात्मा सर्वोपरि विराजमान है। किंतु संत-जन हिरण्यगर्भ, परमारथतत्व और भगवान् कामुदेश कहते हैं, उन्हीं बेष्टतम देवके स्वरूपका विचार करके मोह छोड़कर आसक्तिरहित होकर बिचरे ॥ १२-१६ ॥

जिस प्रकार एक ही चन्द्रमा अनेक जल्याओंमें अल्प-अल्प दीखता है तथा एक ही अग्नि अनन्त काष्ठोंमें वर्तमान है, उसी प्रकार एक ही परम प्रभु भगवान् अपने द्वारा बनाये हुए विभिन्न जीवोंके भीतर एवं बाहर विराज रहे हैं। जिस प्रकार सूर्योदय हो जानेपर रात्रिसम्बन्धी अन्धकार नष्ट हो जाता है और धरकी वस्तुएँ मनुष्योंके दृष्टिशक्ति द्वारा बनायी हैं, ठीक ऐसे ही ज्ञानका प्रादुर्भाव होते ही अज्ञानस्वी अन्धकार भाग जाता है। फिर तो दरीरमें ही मनुष्योंके द्रष्टव्यकी उपलक्षित हो जाती है। जैसे इन्द्रियोंकी प्रवृत्तियाँ अल्प-अल्प हैं, उनके भेदसे गुणोंके एक ही विषयमें नाना अर्थकी प्रतीति होती है, उसी प्रकार अनन्त परम प्रभु भगवानका तेजोमय स्वरूप एक ही है, जब कि मुनियोंके शास्त्र अनेक हैं, जिनके कारण उसका भेदपूर्वक वर्णन किया गया है। जो पुरुषोंतरम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र साक्षात् श्रीहरि हैं, अपने भक्तोंपर कृपा करना जिनका स्वभाव बन गया है, जो कैवल्यनाय हैं तथा जिन्होंने राजा द्रुगका उद्धार किया है, उन स्वयं पूर्णवद्ध परमेश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १७-२० ॥

**श्रीब्रियासजी** कहते हैं—इस प्रकार कहकर भगवान् वेदव्याख्यानीने राजा उड़ानेसे जानेके लिये स्वीकृति ली। तत्प्रभात् सम्पूर्ण यादवोंके देखते-देखते वे वही अन्तर्भानि हो गये। मैंने भगवान् श्रीहरिके प्रति भक्ति बद्धानेवाला यह ‘विजानसंख्य’ द्वारे कह दुनाया। इसका विस्तृत वर्णन किया गया है। इसे भोताग्नेयोंको मोक्ष प्रदान करनेवाला कहा गया है। गर्वान्वानें इसका वर्णन किया है। अतएव गर्व-कंहिता नामसे इस ग्रन्थकी प्रसिद्धि हुई है। वह संहिता लग्नपूर्ण शब्दोंके इरनेवाली, परम पवित्र तथा ज्ञाती प्रकारके ग्रनोरयोंको देखेवाली है। (अवतार) गोष्ठीक, हृषीकेन, गिरिराज, मायुर, मधुरा, द्वारका, विश्वजित्, वज्रपाद तथा विजान—इन नौ शब्दोंमें इसका वर्णन हुआ है। भगवान्। जिस प्रकार नौ उत्तम शब्दोंसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका श्रीविग्रह विभूषित है तथा भारत भादि नौ शब्दोंसे पृथ्वी असन्तु बुझोमित

है, डीक वैसे ही हन नौ खण्डोंद्वारा मुनिप्रणीत यह 'गर्व-संहिता' निरन्तर शोभा पा रही है। जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी औंसुलिङ्गमें तपसे द्वारा सुर्वर्णकी मुद्रिका नौ रत्नोंसे अलंकृत है, वैसे ही चतुर्बाहुफल्लों देनेवालीके हृपमें यह गर्व-संहिता सर्ग और विसर्ग आदि नौ अङ्गोंसे सुशोभित है। महाराज ! जो पुरुष भक्तिपूर्वक निरन्तर मुनिप्रणीत गर्व-संहिताका श्रवण करते हैं, उन्हें संसारमें प्रचुर सुख मिलता है और अन्तमें वे गोलोकधारामको चढ़े जाते हैं। यदि वन्ध्या रुदी भी अनेक पुत्रोंकी उस्कट लालसाने दुःख हो पीताम्बरधर भगवान् श्रीकृष्णकी वन्दना करके इस संहिताका श्रवण करे तो वह शीघ्र ही अपने घरके आँगनमें बहुतसे शालकोंको शुभाती द्वारा निरन्तर उनके साथ-साथ घूमने लगती है। इस कथाको सुनकर रोगी मनुष्य रोगिति, भयमीति पुरुष भयमें तथा वन्धनप्राप्त पुरुष वन्धनमें सुख हो जाता है। निर्धनको विपुल सम्पत्ति मिल जाती है और मूर्ख दुरंत ही पण्डित हो सकता है। जो घनाढ़ी राजा कार्तिकके महीनेमें मुनिप्रणीत 'गर्व-संहिता' का श्रवण करता है, निस्तंदेह वह चक्रवर्ती राजा हो जायगा और वडे-वडे राजालोग उसकी चरण-पादुकाको उठाकर रक्षणेंगे। वह मनकी चालके समान तेज चलनेवाले सिन्धुदेवावासी धोड़ो और विन्ध्यगिरिपर उसका होनेवाले विशाल हाथियोंसे सम्भव होगा। वैतालिक आदि उसका बद्धोगान करेंगे और वारदधूलन उसकी सेवा करेंगी। जिसके सोनेके सींग हों, ताँबेकी पीठ हो, चाँदीके खुर हों और जिसे आभूषणोंसे सज्जया गया हो—जो प्रत्येक खण्डको सुननेके बाद ऐसी दो गौओंका दान करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। अनंकजी ! यही यदि निष्कामधारकसे समूची 'गर्व-संहिता' का श्रवण करता है तो भक्तवस्तु भगवान् श्रीकृष्ण उसके हृदय-कमलपर सदा निवास करने लगते हैं ॥२१-३३॥

**श्रीगर्वजी बोले—**श्रावण ! इस प्रकार कहकर

इस प्रकार श्रीगर्व-संहितागे श्रीविहानवाचके अन्तर्गत नाम-हृषुपाद-स्वेदमें परमस्पता स्वरूप-निरूपण नामक दसवाँ अव्याप्त पूरा हुआ ॥ १० ॥

### श्रीमहार्व-संहिता, विहानवाच सम्पूर्ण

[ श्रीगर्व-संहिताके नौ खण्ड पूरे हो गये। 'अश्वमेष'का प्रत्यक्ष शेष रह गया, उसे सुनानेके लिये महर्षि गर्वाचार्यजी नुगः कथाका आरम्भ करेंगी और अश्वमेषखण्ड सुनायेंगे। तब गर्व-संहिता पूर्ण होगी । ]

दिव्यदर्शी भगवान् नारद मुनि राजा बहुलक्ष्मि अनुमति देकर लक्ष्मि देखते देखते आकाशमें चढ़े गये। तब महाराज बहुलक्ष्मि भगवान् श्रीहरिकी इस संहिताको सुनकर श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये द्वारा अपनेको भलीभाँति कृत-कृत्य समझ लिया। श्रावण ! तुम्हारे प्रश्न करनेपर मैंने यह संहिता कही है। किन्हींके द्वारा सुनने अथवा पाठ करनेसे भी यह करोड़ यज्ञोंका फल देनेवाली होती है ॥ ३४-३६ ॥

**श्रीशौनकजीने कहा—**मुनिवर ! आपका सङ्ग मिल जानेपर मैं धन्य एवं कृतार्थ हो गया। साथ ही भगवान् श्रीकृष्णमें प्रेम बढ़ानेवाली यह उत्तम भक्ति भी मुझे प्राप्त हो गयी। जो मुनियोंके विशाल हृदयरूपी मान-सरोबरमें विचरनेवाले राजाहंशु हैं, सम्पूर्ण आनन्दोंसे पूर्ण मधुर नाद करनेवाली जिनकी याँसुरी है, जिनकी कल्प संसारमें फैली द्वारा है, जिन्होंने शूरसेनके वंशमें अवतार धारण किया है तथा संत पुरुषोंने जिनकी प्रशंसा गयी है, वे अपने बाहुबलिसे कंसका वध करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण दुम्हारी रक्षा करें। इस प्रकार मुनिवर गर्वाचार्य ने सम्पूर्ण मुनियोंको आशीर्वाद दिया। साथ ही उनसे आशा मँगी और प्रसन्नमन हो, जानेके लिये तैयार हो गये। फिर सर्ग-विसर्ग आदि नौ अङ्गोंसे दुःख 'गर्व-संहिता'का, जो स्वर्ग प्रदान करनेवाली तथा चारों पदार्थोंको देनेमें कुदाल है, प्रतिपादन करके गर्वजी गर्वाचल्यर चढ़े गये। मैं भगवान् श्रीराधारपतिके उन शुभल चरण-कमलोंको अपने हृदयमें स्थापित करता हूँ, जो शरद शूद्रके विकलित कमलोंकी शोभा धारण करनेके कारण उनके अत्यन्त द्वेषपात्र हो रहे हैं, मुनिस्त्री भ्रमर जिनका निरन्तर देवन करते हैं, जो बज्र और कमलके चिह्नोंसे आशूत हैं, जिनपर सोनेके नूपुर चमक रहे हैं, जिन्होंने भक्तोंके तापका सदा ही निवारण किया है तथा जिनकी दिव्य ज्ञाति छिटक रही है ॥ ३७-४० ॥

## क्षमा-ग्रार्थना और नव निवेदन

इस बार कल्याणके विशेषाङ्कके प्रकाशनमें बड़ी गढ़-बढ़ी तथा देर हो गयी। इसके कारण 'कल्याण'के प्रेमी ग्राहकों तथा पाठकोंको जो परेशनी हुई, इजारे पत्र लिखने पड़े, समय तथा पैसोंके व्यर्थ व्ययके तथा मानस-कल्पना हुआ, इसके लिये हमें बड़ा ही हुए हैं। 'कल्याण'के लंबे जीवनमें इस प्रकारकी अनिविचितता तथा अव्यवस्था अन्तक कभी नहीं हुई।

पहले 'यन्त्र-मन्त्र-तन्त्राङ्क'के प्रकाशित करनेका विचार हुआ। लेखोंके विषयोंकी सूची हमारे उत्तम श्रद्धेय सर्वमान्य विद्वान् तथा अनुभवी तपोमूर्ति म० डा० प० श्रीगोपीनाथजी कविराजने बना दी थी। उनकी 'कल्याण' पर सदा ही अहैतुकी कृपा रहती है। परंतु कई कारणोंसे उसे स्थगित रखकर 'अग्निपुराणाङ्क' निकालना निश्चय हुआ। अग्निपुराणका अनुवाद प्रायः पहले हो चुका था, पर संशोधन शेष था और बीच-बीचके कुछ अंशोंका अनुवाद इसलिये नहीं हो पाया था कि उसके लिये उन-उन विषयोंके दूसरे दूसरे ग्रन्थोंके परिशीलनकी तथा उन-उन विषयोंके विद्वान् महानुभावोंके परामर्शकी आवश्यकता थी। लोचा था, काम हो जायगा। पर पूरा काम नहीं हो पाया। ऐसा लगा कि अग्निपुराणकी पूरी सामग्री तैयार करनेमें बहुत देर होगी और विशेषाङ्कके प्रकाशनमें अवाञ्छनीय विलम्ब हो जायगा। इसलिये यह निश्चय किया गया कि जितना अंश अग्निपुराणका तैयार है, उतना दे दिया जाय और शेष पृष्ठोंमें श्रीगर्भ-संहिताका अनुवाद, जितना जा सके, देकर विशेषाङ्क शीघ्र प्रकाशित कर दिया जाय; क्योंकि गर्भ-संहिताका अनुवाद भी पहलेका एक विद्वान् महोदयके द्वारा किया हुआ रखता था।

बहुदी विशेषाङ्क प्रकाशित हो जाय—यह इच्छा तो थी ही, साथ ही गर्भ-संहिताके प्रकाशनमें एक दूसरा हेतु भी था। अग्निपुराण वहै ही महात्म्यका प्रन्थ है, वह ज्ञानकोष है। विविध विषयोंपर सारण्यर्थित विवेचन तथा शान-विज्ञान-कल्य आदिके वर्णनकी हिल्से अग्निपुराणकी उपयोगिता सर्वथा सिद्ध है और सर्वमान्य है। परंतु 'कल्याण'के ग्राहकों पाठकोंमें ऐसे इजारे पुरुष और महिलाएँ हैं, जो केवल भगवद्गुण-स्त्रियोंमें ही विशेष अनुराग रखते हैं। उन लोगोंका यह आमरह रहा कि 'अग्निपुराण'के साथ-साथ भगवान्के शीख-चरित्र तथा गुण-महत्वका सरल वर्णन करनेकाले किसी अन्य ग्रन्थको भी प्रकाशित किया जाय। अतः अग्निपुराणके

साथ-साथ गर्भ-संहिताका प्रकाशन करना निश्चय किया गया। यह कारण थी और अब भी है कि यह विशेषाङ्क 'विशेषाङ्कता' और 'समाप्त'—दोनों प्रकारकी दुन्दर समझीत सम्भव्य होनेके कारण सभी तरहके पाठकोंके लिये अस्वस्त चर्चिकर और आनन्दप्रद हो जायगा।

कुछ सज्जनोंको दो ग्रन्थोंका आधा-आधा प्रकाशन पसंद नहीं आया। उन्होंने जो युक्तियाँ हैं, वे भी अवश्य आदरणीय हैं, हम उनके सन्दर्भके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए अपनी विकल्पताके लिये करत्तद्वारा छाइते हैं।

विशेष हेतु तो हमारा था—विशेषाङ्क शीघ्र प्रकाशित हो जाय, पर दैव दुर्योगकते हो गया सर्वथा विपरीत। हमारे प्रधान सम्पादक भाई श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार अस्वस्य हो गये, वे काम देख नहीं सके। साथ ही गर्भ-संहिताके अनुवादको भी फिरते देख जानेकी आवश्यकता समझी गयी। यह कार्य एक विद्वान् सज्जनको सौंपा गया। वे अपनी जानमें, जितना समय उनको अपने स्थायी कामके अतिरिक्त मिलता था, इसीमें लगाते थे, पर संशोधनका काम अधिक निकल आया और प्रयत्न करते रहनेपर भी देर होती गयी।

पहले सोचा था कि जनवरीके अन्ततक अङ्क तैयार हो जायगा। इसलिये वह संकोचते ऐसी सच्चना प्रकाशित की गयी थी, पर काम नहीं हो पाया। बीचमें चित्रकार अस्वस्थ हो गये, इससे चित्र बननेमें देर हो गयी और जितने चित्र देनेका विचार था, उतने तो अन्ततक बन ही नहीं पाये। मीलसे समयपर कागज नहीं आ सके, इसलिये भी छपाईमें बाधा आयी। इन्हीं सब कारणोंसे देर होती गयी और अब मार्चके अन्तमें विशेषाङ्क तैयार हो पाया है। प्रतिदिन पांच इजारेसे अधिक रजिस्ट्री नहीं जा पाती, इसलिये बहुत-से ग्राहकोंको तो और भी देरते अङ्क मिलेगा।

ऐसे हो जानेके कारण ही फरवरी तथा मार्चके 'साथारण अङ्क' भी विशेषाङ्कके ताथ ही मैंजे जा रहे हैं। आशा है, इससे कुछ संतोष होगा।

'कल्याण'के प्रेमी ग्राहकों-पाठकोंकी 'कल्याण'के प्रति जो विशुद्ध ग्रीति, आस्मीशता, सन्नातना है, उसीके भरोसे हम आशा करते हैं कि वे कृपया हमें छमा करेंगे। हम तो उनके सहा कृतज्ञ हैं ही।



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

Made with  
By  
**Avinash/Shashi**

Icreator of  
hinduism  
server!

वद्यपि यह प्रार्थना कर दी गयी थी कि 'इत विशेषाङ्कमे  
केव शामद ही जा सकेंगे। केवक महानुभाव धमा करें।'  
वद्यपि 'कस्याण'के साथ आस्मीयता रखनेवाले कृपाङ्क  
विद्वान् महानुभावोंने बहुत-से केव भेजनेकी कृपा की। पर  
उनमेंसे एक भी केव विशेषाङ्कमे नहीं जा सका। कुछ केव  
फरवरी तथा मार्चके अङ्कोंमें दिये गये हैं, कुछ सम्भवतः  
अगले अङ्कोंमें दिये जायें। इसके लिये हमारे भद्रास्पद  
केवक महानुभाव धमा करें, यह विनीत प्रार्थना है।

परंतु भगवान्की कृपासे 'अग्निपुराण'का तथा 'गर्ग-  
संहिता'का जितना अंश प्रकाशित हुआ है, वह विभिन्न  
हष्टिक्षेपणवाले पाठकोंके लिये बहा ही उपादेय, शानदर्शक,  
सरल, उनके यथार्थ 'अन्युदयमें सहायक तथा 'निःशेषस'  
या भगवद्येम-प्राप्तिके अस्यतक निश्चितरूपसे सुखपूर्वक पहुँचा  
हेनेवाला सुन्दर राजमार्ग-रूप है।

भारतीय धर्म तथा सम्यता-संस्कृतिमें भौतिकता या  
भौतिकोंका निषेध नहीं है, बरं उनकी मानव-जीवनके एक  
क्षेत्रमें आवश्यकता बतायी गयी है, पर वे हेतु चाहिये  
धर्मके द्वारा नियन्त्रित तथा मोक्ष या भगवद्येम-प्राप्तिके  
साधनरूप। केवल 'भोग' तो आसुदी सम्पदाकी बस्तु है  
और वह मनुष्यका अशःपतन करनेवाली है। अधिभौतिक  
उत्त्राति हो, पर वह हो अच्यात्मकी भूमिकापर—आच्यात्मिक  
क्षयकी पूर्ति के लिये। पेशा न होनेपर केवल 'कामोपभोग-  
परायणता' तो मनुष्यको असुर-राक्षस बनाकर उसके अपने  
तथा जगत्के अन्यान्य प्राणियोंके लिये धोर संताप, अद्यान्ति,  
चिन्ता, पाप तथा दुर्गतिकी प्राप्ति करानेवाली होती है।  
आजके भौतिकवादी भोगपरायण मानव-जगत्में वहीं हो रहा  
है और इसी कारण नये-नये उपद्रव, अशान्ति, पाप तथा  
हृःस बढ़ रहे हैं। भारतमें भी इस अनर्थका उत्पादन  
करनेवाली भोगपरायणताका विस्तार बड़े जोरेसे हो रहा है।  
अतएव इस समय इसकी बही आवश्यकता है कि मानव  
पतनके प्रवाहसे निकलकर—पाप-पथसे छौटकर फिर वास्तविक  
उत्थान, प्रगति तथा पुण्यके पथपर आरुद्ध हो, इस दिशामें  
वहि उचित रूपसे अव्ययन तथा तदनुसार कार्य किये जायें  
तो यह विशेषाङ्क बहुत कुछ सहायक हो सकता है और  
किसी अंशमें भी पेशा हो सका तो भगवान्की बही कृपा  
होगी और इमखेगोंके लिये वहि आनन्दकी बात होगी।  
भगवान् इस लक्ष्ये उद्देश्यि है।

ग्रन्थोंके अनुवाद तथा उम्मादनमें जो श्रुटियाँ—भूँड़े  
हैं, उसके लिये इस धमा चाहते हैं। दोनों ग्रन्थोंके अनुवाद  
महानुभावोंकी कृपाके लिये उन्हें शाशुद्धि। इस कार्यमें हम  
आस्मीय पाण्डेय पं. श्रीरामनारायणदत्तजी शाश्वति हमें बहुत  
बही सहायता मिली है। उसके लिये हम उनके हृदयसे छृतक हैं।

इस अङ्कमें अग्निपुराणके दो सौ अध्याय और गर्ग-  
संहिताके नौ खण्ड प्रकाशित हो रहे हैं। आगामी वर्ष  
विशेषाङ्कके रूपमें अग्निपुराणका शेष अंश तथा गर्ग-  
संहिताका बचा हुआ दसवाँ अश्वमेध-खण्ड एवं माहात्म्य  
प्रकाशित करनेका विचार है। होगा तो वही, जो श्रीभगवान्  
के मङ्गल-विधानके अनुषार होना है।

अग्निपुराणके कई विषय वहे कठिन हैं तथा उनमें कुछ  
विषयोंका तो वर्तमानमें प्रचलन भी नहीं है तथा कुछके  
रूपमें ही परिवर्तन हो गया है। उन विषयोंके विद्वानोंको  
लोजकर उनसे सहायता भी ली गयी। अपनी समझसे पूरी  
सतर्कता रखली गयी, इतनेपर भी कुछ श्रुटियाँ रह गयी ही  
होंगी। जानकार अधिकारी विद्वान् उन श्रुटियोंको बतानेकी  
कृपा करेंगे तो कभी पुस्तकरूपमें प्रकाशित करते समय उन  
श्रुटियोंको सुधारा जा सकता है। अनुवादके कार्यमें जिन अन्य  
विद्वानोंने हमारी सहायता की है, उनके हम बहुत धन हैं।

गर्ग-संहिताकी हिंदीमें छपी वेंकटेश्वरकी पुस्तकमें कई  
अध्याय नहीं थे। स्वर्गीय श्रीपञ्चानन तर्करत्न महोदयके द्वारा  
सम्पादित बंगलामें छपी पुस्तकमें वे अध्याय मिले। उनका  
अनुवाद भी इसमें दे दिया गया है।

अग्निपुराणके ३२०, गर्ग-संहिताके ३७८ कुल ६९८  
पृष्ठ हुए। इस समा-प्रार्थना' के दो पृष्ठ जोड़नेपर विशेषाङ्कके  
७०० पृष्ठ पूरे हो गये।

वास्तवमें 'कल्याण' का यह काम भगवान्का काम है।  
इस तो निमित्समान है। सब उन्हींकी कृपाशक्तिसे होता है।  
इमें तो इस कार्यके करनेमें यदि कहीं कुछ मगवस्मृति हो  
जाती है तो यही हमारा परम सौभाग्य है और यह भी  
भगवत्कृपासे ही मिला है।

इम पुनः अपनी जान-अनजानमें हुई भूलों साथ  
अपराह्नोंके लिये धमा चाहते हैं और नम निवेदन करते हैं कि  
पाठ्यग्रन्थ इस विशेषाङ्कका अच्छी तरह से अव्ययन करके  
काम उठावें।

निवेदक—

चिम्मगलाल गोस्वामी, सम्पादक